(आचार्यश्री जिनउदयसागर जी महाराज की
आज्ञानुवर्ती प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज की
स्वर्ण-जयन्ती के उपलक्ष्य पर अभिनन्दन-ग्रन्थ)

---

*

- निर्देशन :
  गणि मणिप्रभसागर जी

- प्रधान सम्पादिका :
  साध्वीश्री शशिप्रभा श्री जी

- प्रकाशन :
  श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ
  जयपुर (राजस्थान)

लूनिया परिवार की ओर से सप्रेम भेंट

सम्पादक मण्डल :

- प्रबन्ध सम्पादक .

श्रीचन्द सुराना "सरस"
सुरेन्द्र बोथरा

- सह सम्पादक :

मदनलाल शर्मा

सदस्य :

१ साध्वी प्रियदर्शनाश्री
२ साध्वी सम्यग्दर्शनाश्री
३ श्री भवरलाल नाहटा
४ म० विनयसागर
५ डा० नरेन्द्र भानावत
६ श्री राजेन्द्रकुमार श्रीमाल
७ डा० महेन्द्रसागर प्रचन्डिया
८ श्री ज्योतिकुमार कोठारी
९ श्रीमती रत्ना लूनिया

- अर्थ सौजन्य :

स्व० श्री केसरीचन्दजी लूनिया परिवार के सौजन्य मे।

- प्राप्ति स्थान ·

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ
मोतीसिह भोमियो का रास्ता,
जोहरी बाजार
जयपुर—३०२००३
दूरभाष ४३८८४

- विजयकुमार पुखराज लूनिया

मोतीसिह भोमियो का रास्ता,
जोहरी बाजार
जयपुर—३०२००३
दूरभाष ४४६७१

- मुद्रण

श्रीचन्द सुराना के निर्देशन मे दिवाकर-प्रकाशन, ए-७, अवागढ हाउस, एम० जी० रोड, अजना सिनेमा के सामने, आगरा–२८२००२ के लिए कामधेनु प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स आगरा।

वि० स० २०४६ वैशाख पूर्णिमा
ईस्वी सन् १९८९ · २० मई
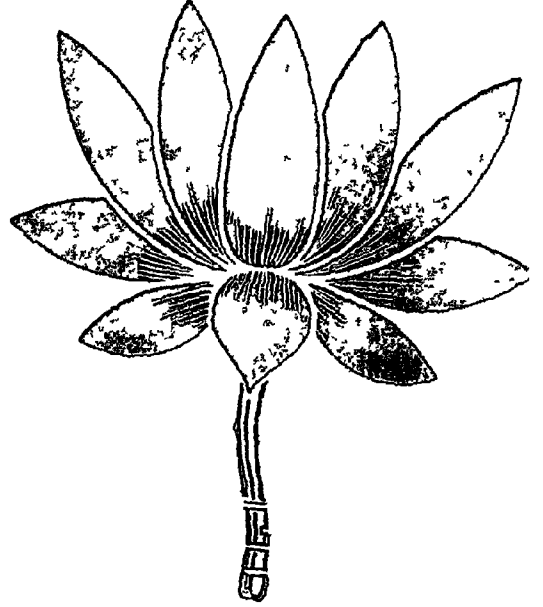
जिनका जीवन कमल पत्र सम निर्लेप

शुभ्र चन्द्रिका सा शुभ्र-शीतल

सयम-समता-शुचिता का सम्पुट है,

सेवा स्वाध्याय-सरलता ही जिनका पर्याय है,

भक्ति-विनम्रता-मृदुता जिनकी पहचान है,

उन

ज्ञानयोगिनी, आगमज्योति, श्रमणीरत्न गुरुवर्य्या

पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज

के

दीक्षा पर्याय के अर्धशतक के शुभारम्भ पर

सविनय-सभक्ति समर्पित

विनेय

—साध्वी शशिप्रभाश्री

—साध्वी प्रियदर्शनाश्री

नाणेणं दंसणेण च,
चरित्तेण तहेव य।
खतीय मुत्तीए,
वड्ढमाणो भवाहि य ॥

तुम ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शान्ति-क्षमा और मुक्ति-निर्लोभता के पथ पर सतत आगे बढ़ो।

—उत्तराध्ययन सूत्र २२/२६

संसार सागर घोर तर कन्ने ! लहु लहु।

हे पुण्य शालिनीकन्ये ! तुम ससार सागर को अतिशीघ्र पार करो। —उत्त० २२/३१

भद्दं ते ! भद्दं ते !
अभग्गेहिं नाण—दंसणचरित्तेहिं
अजियाइं जिणाहि इंदियाइं
जियं च पालेहि समणधम्मं ॥

तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो। तुम निरतिचार ज्ञान-दर्शन और चारित्र से नहीं जीती हुई इन्द्रियों को जीतो, विजयी बनकर श्रमण धर्म का पालन करो।

—कल्पसूत्र ११२

भारतीय धर्म परम्परा मे जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है, एक ऐसी उदात्त परम्परा है, जिसमे साधना-उपासना के क्षेत्र मे, स्त्री-पुरुष का समान महत्व है, समान ही अधिकार है। और समान गरिमा प्राप्त है। यहाँ सिर्फ मधुर प्रिय और उदार शब्दो के पुष्प अर्पित कर नारी की पूजा ही नही की गई है, बल्कि प्रत्येक क्षेत्र मे आत्मविश्वास के सर्वोच्च स्वरूप मे उसकी समान स्थिति को स्वीकार कर उसका समान महत्व प्रतिष्ठित किया गया है।

आज तक के जैन इतिहास को उठाकर देखने से यह बात दिन के उजाले की तरह उद्भासित है कि इस पवित्र परम्परा मे आदिकाल से जगन्माता भगवती मरुदेवा, ब्राह्मी-सुन्दरी, तीर्थंकर भगवती मल्ली, महासती सीता, अञ्जना साध्वी तीर्थ प्रमुखा चन्दनबाला आदि की एक ऐसी अखण्ड उज्ज्वल परम्परा रही है, जो गगा की तरह पवित्र है ही, इस धर्मंगगा को सदा अभिसिंचित और सवर्धित भी करती रही है। इसी पुण्य परम्परा के पावन सम्पोष से भारतीय धर्म, सस्कृति-सभ्यता सदा पुष्पित-फलित होती रही है।

नारी न केवल नारी है, किन्तु वह "न-अरि" के रूप मे विश्वमैत्री व विश्व-वात्सल्य की प्रतीक है। सस्कृति की सरक्षिका है।

जैन परम्परा की इसी पुण्य कडी मे आज श्वेताम्बर खरतरगच्छ परम्परा मे आर्या प्रवर्तिनी श्रीसज्जन श्रीजी महाराज एक ऐसा ही उदात्त व्यक्तित्व है, जो भारतीय नारी और साध्वी परम्परा का गौरव कही जा सकती है। आपश्री के चतुर्मुखी व्यक्तित्व का दिग्दर्शन प्रस्तुत ग्रन्थ मे अकित है, अत यहाँ पुनरुक्ति न करके हम इतना ही कहना चाहते हैं कि प्रवर्तिनी सज्जन श्रीजी का जीवन साधना की एक अखण्ड ज्योति है, जिसका प्रकाश अतीत को भी आलोकित करता है, वर्तमान दीपित है ही, और आने वाला कल भी उद्दीपित रहेगा।

ऐसी पुण्यशालिनी सयम साधिका का दर्शन वन्दन एक महान पुण्य का प्रसग है, इसका अभिनन्दन सत्य-शील-साधुता का अभिनन्दन है। आपश्री की दीक्षा के ४७ वर्ष सम्पन्न हो गये है, यह पाँचवा दशक पूर्ण होते ही अर्धशतक पूर्ण हो जायेगा। इसी शुभ अवसर को लक्ष्य मे लेकर हमारे जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ श्री सघ ने आपश्री का अभिनन्दन करने का शुभ निश्चय किया है जो अवसर आज प्राप्त हो रहा है। हमे अत्यधिक आनन्दानुभूति हो रही है।

सन्तो का अभिनन्दन किसी भौतिक उपहार से नही किया जाता, वे तो ज्ञान, सयम एव तपस्या के जीवन्त रूप होते हैं, अत उनका अभिनन्दन भी उसी के अनुरूप होना चाहिए। हमारी इस परिकल्पना को साकाररूप प्रदान किया है गुरुवर्याश्रीजी की प्रधानशिष्या विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्री, प्रियदर्शनाश्रीजी आदि साध्वी मडल ने। उनकी उदात्त कल्पना

एव सृजन धार्मिता का ही यह सुपरिणाम है कि एक श्रमणी के गौरव रूप में इतना श्रेष्ठ अभिनन्दन ग्रन्थ तयार हो सका।

इस महान कार्य मे गणीप्रवर श्रीमणिप्रभसागरजी महाराज का मार्गदर्शन, सम्प्रेरणा तो उसी प्रकार रही है, जिस प्रकार ज्योति को प्रज्ज्वलित होने मे तेल और बाती का सयोग-सुयोग।

हमे अत्यधिक प्रसन्नता और गौरव है कि इस महान ग्रन्थ के प्रकाशन मे पूज्य प्रवर्तिनी श्रीजी के ससारपक्षीय परिवार ने महत्वपूर्ण आधारभूत भूमिका निबाही है। पूज्य प्रवर्तिनी श्रीजी का जन्म जयपुर के लूनिया परिवार मे हुआ। आज आपके परिवार मे सभी प्रकार की समृद्धि, सम्पन्नता और सुसस्कारिता देखी जाती है। आपके परिवार के प्रमुख सदस्य, श्रीविजयकुमार जी, श्री पुखराजजी, माणकचन्द जी सुरेशकुमारजी, श्रीमती रत्नाजी, सायरजी, पन्ना मकलेचा आदि समस्त परिवार ने इस अभिनन्दन ग्रन्थ को सम्पन्न कराने मे न केवल आर्थिक कितु सम्पूर्ण भावनात्मक सहयोग भी प्रदान किया है।

श्रीपुखराज जी लूनिया अत्यन्त उत्साही, मृदुभाषी, मिलनसार एव धार्मिकवृत्ति के धनी है। क्रियात्मकता आपका विशिष्टगुण है। इसी विशिष्ट गुण के कारण आपने रत्न व्यवसाय मे देश और विदेश मे अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। सन् १९६० मे ये तेरापथ युवक परिषद जयपुर के मत्री पद पर आसीन हुए थे तथा सन् १९६७ मे आयोजित सभी जैन सम्प्रदायो की अखिल भारतीय कान्फ्रेंस के सह सयोजन का दायित्व आपने कुशलता से निभाया। युवावस्था ही मे आपने आचार्य श्री तुलसी की प्रेरणा से "अणुव्रत" आचारनिष्ठा को अपना लिया था। धर्म प्रचार का कार्य आप अनवरत चलाते आ रहे हैं। न्यूयार्क शहर मे स्थापित "जैन सेन्टर" के आप जन्मदाता सदस्य एव उपसभापति रह चुके है। यह श्री पुखराज जी की ही प्रेरणा एव अनवरत परिश्रम का फल है कि प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्री जी का "अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रकाशित हो रहा है। साधुजनो का साधुत्व, उनका व्यक्तित्व एव कृतित्व प्रचारित प्रकाशित करना भी निसदेह साधुवाद की ही पात्रता रखता है।

श्री पुखराजजी के छोटे भाई माणकचन्दजी लूनिया भी अत्यन्त क्रियाशील, अनुभवी व्यापारी एव धार्मिकवृत्ति के है। रत्नव्यवसाय में आपने भी अपने कीर्तिमान स्थापित किये है। अल्प-भाषी किन्तु चिंतनशील माणकचन्दजी एव उनकी सुशीला पत्नी सायरजी लूनिया ने भी ग्रन्थ सम्पादन मे अपना पूरा-पूरा योगदान दिया। निस्सदेह आप धन्यवाद के पात्र हैं। एक अत्यन्त प्राचीन (अनुमानत २५०० वर्ष) जैन मन्दिर के जीर्णोद्धार मे भी सघ के साथ आप पूर्ण प्रयत्नशील है। दोनो ही भाइयो ने अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन मे अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया है।

श्रीपुखराज चन्दजी लूनिया एव उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रत्ना लूनिया ने तो रात-दिन का अथक श्रम करके अतीव सुरुचिपूर्वक इस कार्य को सम्पन्न कराया है। अत हम आपके तथा समस्त लूनिया परिवार जयपुर के विशेष आभारी है।

साथ ही विद्वद्सपादक मडल एव सभी सहयोगी सज्जनो के प्रति भी हम कृतज्ञ है। हमे अत्यन्त गौरव व प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है, कि पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करवाने का सहज श्रेय हमारे खरतरगच्छ श्री सघ को प्राप्त हो रहा है। हम श्री सघ की ओर से पूज्य प्रवर्तिनी जी म का पुन पुन वन्दन अभिनन्दन करते है।

उत्तमचन्द बडेर
(मन्त्री)

जतनकवर गोलेच्छा
(अध्यक्ष)

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ श्री सघ, जयपुर।

जैन धर्म मे रत्नत्रय का सर्वाधिक महत्व है। रत्नत्रय के क्रम मे एक ओर सम्यग्ज्ञान, दर्शन चारित्र है, तो दूसरी ओर देव-गुरु-धर्म है। जिसप्रकार दर्शन (सम्यक्त्व) ज्ञान एव चारित्र को सतुलित और मोक्ष-अभिमुख रखता है, उसी प्रकार गुरु भी देव और धर्म के बीच का सन्तुलन है। गुरु ही देव का स्वरूप समझाता है, धर्म का मार्ग बताता है, इस कारण 'गुरु' की अपरम्पार महिमा है। भारतीय मनीषियो ने 'गुरुरेव परब्रह्म'' कहकर गुरु को अत्यन्त श्रद्धा और आदर्श का केन्द्र बना दिया है।

गुरु वह अद्भुत कलाकार है, जो मृत्पिण्ड समान शिष्य को महामानव के रूप मे प्रतिष्ठित कर सकता है। पत्थर को भगवान और कण को सुमेरु बना सकता है, इसलि! शिष्य के लिए गुरु-पूजा, गुरु-भक्ति न केवल एक आवश्यक, अनिवार्य कर्त्तव्य है, किन्तु यह एक आत्मसन्तोष और मानसिक प्रफुल्लता का विषय भी बन जाता है। गुरु-पूजा करके ही शिष्य अपनी साधना, उपासना, ज्ञानार्जना को कृतकृत्य व सार्थक/सफल समझता है। भारतीय सस्कृति मे इसे ही "गुरु-दक्षिणा" की गरिमा से मडित किया गया है।

श्रद्धेया पूज्य प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी महाराज हम सब के लिए "गुरु" के सर्वोच्च सिंहासन पर विराजित श्रद्धा का वह जीवन्त रूप है, जिसके प्रति हमारे अन्त करण के महासागर मे श्रद्धा-विनय-भक्ति-वहुमान-कृतज्ञता की भाव ऊर्मिया उछल रही है। भावोर्मियो का यह ज्वार कभी-कभी इतना प्रखर हो जाता है कि हम जीवन को उनके चरणो मे समर्पित करके भी स्वय को ऋणमुक्त नही समझ सकती, उनका उपकार शब्दातीत है, कालातीत है। आगम की भाषा मे दुष्प्रतिकार-दुप्पडियारे है।

श्रद्धेया गुरुणीश्री का जीवन साधुता का जीवन्तस्वरूप है। इस विषय मे अधिक चर्चा यहाँ नही करु गी, चूकि इस विषय मे सैकडो विचारको ने जो कहा है, अनुभव किया है, यह सब प्रस्तुत ग्रन्थ मे है ही, पाठक पढे गे ही। मैं तो सिर्फ अपनी उमडती, उछाल मारती श्रद्धा की अभिव्यक्ति मात्र करके मन को हल्का करना चाहती हूँ।

लगभग सात वर्ष पूर्व जव प्रवर्तिनीश्रीजी महाराज सयम-साधना के ४० वर्ष पूर्ण कर पाँचवे दशक मे प्रवेश कर रही थी तव से मेरी व मेरी अन्य श्रमणी वहनो की भावना जगी थी, कि हम पूज्य प्रवर्तिनीश्रीजी के दीक्षा के ५० वर्ष की सम्पन्नता (स्वर्ण जयन्ती प्रसग) के अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ का आयोजन करें। हम सव को भावना एक दिन पूज्य मणिप्रभसागरजी महाराज के समक्ष चर्चा का विषय वनी तो उन्होने हमे न केवल उत्साहित किया, वल्कि सम्पूर्ण मार्ग-दर्शन करने तथा हर प्रकार का सहयोग करने का आश्वासन भी प्रदान किया। उनके उत्साहसवर्धन से प्रेरित होकर धीरे-धीरे हमने अभिनन्दन-ग्रन्थ की परिकल्पना को एक आकार दिया, एक योजना का स्वरूप प्रदान किया।

अभिनन्दन ग्रथ सकल्पना की लम्बी कहानी है, किन्तु यहाँ उसकी चर्चा न करके, सिर्फ मुख्य बिन्दु पर ही आती हूँ। इस आयोजन के लिए सर्वप्रथम सहयोगी मिले—भाई पुखराजचन्द जी लूनिया। प्रवर्तिनीश्रीजी के ससार पक्षीय सहोदर श्री केसरीचन्दजी लूणिया के सुपुत्र—पुखराजजी प्रतिभाशाली उत्साही युवक है। देश-विदेश मे व्यापार कार्य का विस्तार होने से उनको समय बहुत कम मिलता है, फिर भी हमारी भावना जानकर के एकदम भाव-विभोर हो उठे, और हर प्रकार के सम्पूर्ण सहयोग के लिए सकल्पबद्ध हुए। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रत्ना लूणिया तो और भी अधिक उत्साहित और भावना-शील थी। दोनो ही पति-पत्नी समान विचार व समान रुचिसम्पन्न होने के कारण उनका सर्वथा प्रकारेण सहयोग सहज ही प्राप्त हो गया और हम योजना को मूर्तरूप देने मे सलग्न हुए। पुखराजजी की भावना को उनकी माता तथा भाइयो ने पुष्ट किया तथा ग्रथ प्रकाशन के कार्य मे सहयोग प्रदान किया, विशेषकर माणक लूणिया तथा सायर लूनिया ने।

मेरी सहयोगिनी साध्वी प्रियदर्शनाश्री जी, साध्वी सम्यग्दर्शनाश्रीजी इस कार्य मे जुट गई, और साथ ही जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान, अनेक अभिनन्दन-ग्रन्थो के अनुभवी सपादक आत्मबन्धु श्री श्रीचन्द जी सुराना "सरस" का भी सहयोग प्राप्त किया। इसी के साथ श्री सुरेन्द्रकुमारजी बोथरा, ज्योतिकुमार कोठारी, मदनलालजी शर्मा, महेन्द्र जैन, श्रीविनयसागर जी व श्रीमती शान्ता भानावत, पवन सुराणा आदि अनेक विद्वान, कार्यकर्ताओ का सहकार प्राप्त होता गया और यह योजना मूर्त्त रूप लेने लगी।

खरतरगच्छ सघ, जयपुर के मत्री श्री उत्तमचन्दजी बडेर तथा सघ के मान्य श्रेष्ठी सौजन्य-मूर्ति श्रीविमलचन्दजी सुराणा आदि सभी कार्यकर्त्ताओ का अनुकूल सहयोग इस "श्रमणी" ग्रन्थ की सफलता का मूलाधार है।

हाँ, अब प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय मे दो शब्द कहना चाहूँगी।

पूज्य प्रवर्तिनी श्रीजी का जीवन धर्म-समन्वय का एक दुर्लभ किन्तु प्रकृति प्रदत्त सयोग ही है, कि आपश्री का जन्म-जयपुर के एक सम्पन्न, प्रतिष्ठित तेरापथी परिवार मे हुआ, आपका पाणिग्रहण स्थानकवासी समाज के प्रमुख गोलेच्छा परिवार मे हुआ, और फिर एक शुभ सयोग मिला, कोटा के भारत प्रसिद्ध बाफना परिवार मे आपश्री का विवाहोपरान्त निकट सम्बन्ध रहा। सेठानी साहिबा गुलाब सुन्दरीजी बाफना की देखरेख मे एक प्रकार से आपके धार्मिक संस्कारो को जल सिंचन व नया सम्पोषण मिला, जो श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय से आपको सम्बद्ध कर सका, इस प्रकार प्रकृति ने ही आपके जीवन मे धार्मिक सद्भाव, समन्वय का ऐसा सगम बनाया है, जो आज भी "त्रिवेणी सगम" की भाँति सपूर्ण जैन समाज मे आदरास्पद है, यही कारण है कि आपश्री के अभिनन्दन उपलक्ष्य मे सम्पूर्ण जैन समाज के श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापथी समाज के श्रद्धेय आचार्यो, विद्वान, मुनियो तथा प्रमुख श्रावको की तरफ से आशीर्वचनात्मक सन्देश व शुभकामनाएँ प्राप्त हुई है, इस प्रकार का समन्वय जैन एकता की दिशा मे "मील का पत्थर" कहला सकता है। हमे इस विषय का गौरव है कि एक आम्नाय विशेष की प्रवर्तिनी श्रमणी के लिए सम्पूर्ण जैन सघ अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता है।

नामकरण—प्रस्तुत ग्रन्थ के नामकरण के विषय मे भी बहुत गभीर चिन्तन के पश्चात् "श्रमणी" नाम का चयन किया गया है। "श्रमणी" शील-साधना-सयम-शुचिता की प्रतीक है। पवित्रता और परम वत्सलता की प्रतिनिधि है, श्रमण सस्कृति की गगोत्री है। मेरे विचार मे पूज्य प्रवर्तिनी श्रीजी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अभिव्यञ्जन यही एक शब्द कर सकता है। "श्रमणी" से अधिक अर्थवान और परम्परा

का प्रतिनिधि अन्य शब्द शायद हो नही सकता था। मुझे विश्वास है यह शब्द ग्रन्थ की सम्पूर्ण गरिमा को स्वय अभिव्यक्ति दे रहा है।

ग्रन्थ के पांच खण्ड—'गुरु' जिस प्रकार रत्नत्रय का मध्यबिन्दु है, उसी प्रकार पाँच-परमेष्ठी का भी—अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पद मे केन्द्रीय शक्ति है। पाँच पदो का प्रतिनिधित्व गुरु मे मूर्तिमन्त है, इस कारण इस ग्रथ को पाच खडो मे विभक्त करने का निश्चय किया गया। पाँचो ही खण्ड अपने-अपने विषय की सुन्दर, सारपूर्ण तथा मौलिक सामग्री से युक्त है। यह सामग्री इतनी गहन भी नही है, कि आम आदमी इसे पढकर समझ न सके और इतनी सामान्य भी नही है कि ग्रथ की गुरुता का अहसास न हो। मेरे विचार मे सपादक मडल ने काफी सन्तुलित दृष्टि से सामग्री का चयन किया है, जिसका सामयिक महत्व तो है ही, स्थायी और सार्वदेशिक मूल्य भी है, और युग-युग तक एक मानदड बनकर रहेगा।

क्षमा याचना एव आभार-दर्शन

ग्रन्थ के लिये निबन्ध आदि सामग्री भी विपुल मात्रा मे आई जिसमे श्रेष्ठता के आधार पर चयन करना पडा। जिन मान्य लेखको ने हमारे आग्रह को स्वीकार कर लेख भेजने का सौजन्य पूर्ण श्रम किया, मैं उनके प्रति भी आभारी हूँ तथा जिनके लेख उत्तमकोटि के होते हुए भी ग्रन्थ की पृष्ठ सख्या, समय सीमा आदि को ध्यान मे रखकर, हम छाप नही सके, उन मान्य लेखको के प्रति भी आभार व्यक्त करते हुए उनसे क्षमा भी चाहती हूँ कि उनके श्रद्धा-सौजन्यपूर्ण श्रम का यथोचित सम्मान नही कर सके। अस्तु, श्रद्धार्चना, सस्मरण भेजने वाले बन्धुओ से तो विशेष रूप मे क्षमा चाहती हूँ कि उनकी भक्तिपूर्ण विस्तृत शब्दावली को बहुत ही सक्षेप देना पडा।

यदि प्राप्त सामग्री को उसी रूप मे प्रकाशित की जाती तो सभव है यह ग्रन्थ एक हजार पृष्ठ का बन जाता। यद्यपि श्रद्धा-सुमन प्रेषित करने वाले सभी श्रद्धालुजनो का नामोल्लेख यथास्थान अवश्य हुआ है, अतिविलम्ब मे प्राप्त होने वाले कुछ अनेक वरिष्ठ नाम सबसे अन्त मे देने पडे, फिर भी सामग्री कम करने या भूल मे कोई नाम रह जाने के कारण किसी के श्रद्धालुमन को आघात लगा हो, तो वे भी सम्पादन-मर्यादा को समझकर क्षमा करेंगे।

इस ग्रन्थ के मुद्रण प्रकाशन के समय हमारे श्रद्धेय गणी श्री मणिप्रभसागरजी म की जयपुर मे उपस्थिति तथा उनका सूझबूझ पूर्ण मार्गदर्शन, कुशल सयोजन हमे प्राप्त हो सका यह भी हमारे लिए श्रेयस्कर सिद्ध हुआ, मैं आपश्री के प्रति किन शब्दो मे कृतज्ञता व्यक्त करूँ।

आज इस ग्रथ की सम्पन्नता पर आत्म-विभोर हू, अपनी उत्कृष्ट हार्दिक इच्छा को साकार होते देखकर पूर्ण सन्तुष्ट भी, पुन सभी सहयोगी सज्जनो का व विशेषकर विद्वद्रत्न बधु श्रीचन्दजी गुगना व भाई पुखराज जी लूणिया का हृदय से आभार मानती हूँ, कि मुझ जैसी सपादन कला मे अनुभव रहित साध्वी के सत्सकल्पो को उन्होने अपने ज्ञान-अनुभव व साधनो का बल देकर इस सुन्दर भव्य रमणीय ग्रन्थ का स्वरूप प्रदान कर दिया।

पुन पूज्य गुरुवर्या के चरणो मे वन्दना के साथ उनके आरोग्यमय दीर्घजीवन की मगलकामना।

—साध्वी शशिप्रभाश्री

आगम-ज्योति प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज
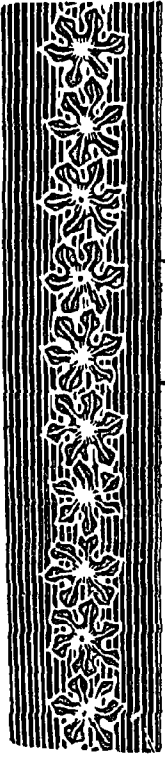
एक धन्य अवसर की प्राप्ति

स्वनामधन्या आगमवेत्ता प्रवर्तिनी महाराज सा० सज्जनश्रीजी का अभिनन्दन करते हुए आज कौन धन्य नही हो रहा है ? फिर मै अकिंचन भी इस पावन गगा मे अवगाहन का लाभ प्राप्त करने मे क्यो पीछे रहूँ ? यह एक ऐसा पुनीत अवसर अनायास ही हमारे हाथ आ गया है कि हमे अपने जीवन की कुछ तो सार्थकता दृष्टिगत होने लगी है। अन्यथा सासारिक जीवन मे ऐसे पुण्य अवसर प्राय दुर्लभ ही होते है।

भुआसा महाराज विदुषीवर्या सज्जनश्रीजी का जीवन प्रारम्भ से ही सयम और सात्विक भावो से ओत-प्रोत रहा है। बाल्यकाल से ही आपश्री ससार से उदासीन तथा अर्न्तमुखी रही। आपने तप- सयम, अध्ययन, एव ज्ञान-दर्शन-चारित्र के क्षेत्र मे जो उपलब्धियाँ अर्जित की है उनका वर्णन करने मे हम अक्षम है। काव्य का क्षेत्र हो या कि दर्शन का, साधना का क्षेत्र हो या कि सामाजिक चेतना का कर्मक्षेत्र, सघ-सचालन का कार्य हो या एकातिक तपस्या का, प्रवर्तिनीश्रीजी ने सभी दिशाओ मे अपने अलौकिक अद्वितीय व्यक्तित्व और कृतित्व की अमिट छाप अकित की है। आज खरतरगच्छ धर्म सघ की प्रतिष्ठा, धर्मचेतना एव प्रभावना की आप प्रकाश स्तम्भ बनी हुयी है। प्रवर्तिनी पद पर आसीन होकर आप अपनी गुरुवर्याश्री ज्ञानश्रीजी के बताये मार्ग को आलोकित एव प्रसारित कर रही है। क्या श्रद्धालु श्रावक-श्राविका, क्या अनुगामिनी साध्वी-साधिकाएँ और क्या जन साधारण, सभी आपके विनम्र सरल व सहज व्यक्तित्व की छाया के नीचे अध्यात्म-अमृत का पानकर कृतार्थ हो रहे है।

मेरे दादाजी सेठ श्री गुलावचन्दजी लूणिया जीवनपर्यन्त जैन शासन के निष्ठावान श्रावक रहे है। वे काव्यमर्मज्ञ, धर्ममर्मज्ञ एव तत्त्वमर्मज्ञ श्रावकरत्न थे। उन्ही की महान आत्मजा श्री सज्जनश्रीजी म सा आज उस गुलाब के सौरभ को अध्यात्मरस से परिपूर्ण मकरन्द की भाँति जन-

जन के मानस को आप्लावित कर रही है। पूज्य दादा-सा एक श्रावक थे, गृहस्थ थे, किन्तु आपश्री तो अनिकेत आर्यारत्न है, वीतराग भगवान के अनुशासन से आबद्ध, आगमज्ञा, शास्त्रमर्मज्ञा, योगसाधिका, विदुषीवर्या आदि अनेकानेक शुभ सम्बोधन आपके लिए अक्षरश उचित प्रतीत होते है।

अस्सी वर्ष से अधिक आयु मे भी प्रवर्तिनी म सा के मुख-मण्डल पर जिस आभा और चैतन्य के दर्शन होते है वह एक सबल प्रेरणास्रोत है। दर्शन से स्वत ही धार्मिक वृत्ति जागृत हो उठती है, आध्यात्मिक भाव विकसित होते है तथा विकार स्वत ही तिरोहित होने लगते है। प्राय हम सोचते है। कि, यह कैसा प्रभाव है ? तो उत्तर मिलता है यह प्रभाव है सतत साधनारत ज्ञानार्थ, सत्यार्थ, मोक्षार्थ समर्पित उस शुचि भावो की दिव्यमूर्ति का। कहते भी तो है, जहाँ धर्ममगल की स्थापना होती है, अहिंसा, सयम, तप की त्रिवेणी बहती है, वहा देव भी आकर नमन करते है। यह भी सच है कि सच्चे साधको का जहाँ वास होता है, वहाँ स्वर्ग स्वत ही निर्मित हो जाता है। वहाँ न रोग रहता है न शोक, न जरा न मृत्यु, न दुख न विषाद। वहाँ तो रहते हैं—सत, चित् और आनन्द।और, ऐसा ही आनन्द मिलता है हमे प्रवर्तिनी श्रीजी के सामिप्य—सान्निध्य मे।

हमारे पिताश्री की महती उत्कठा थी कि पूजनीय बाबा सा सेठ गुलाबचन्द जी लूणिया की कृतियो को सग्रहीत कर प्रकाशित कराया जावे। पिताजी के दिवगत हो जाने के बाद मेरे मन मे महत्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना प्रस्फुटित हुई। हमने भुआ सा महाराज के सान्निध्य मे योजना रखी तथा निवेदन किया—बाबा सा और पिताश्री की भावनाओ के अनुरूप आपने धर्म-दर्शन एव आध्यात्म के क्षेत्र मे अनेक गौरवपूर्ण कीर्तिमान स्थापित किये है। आपकी उज्ज्वलता के प्रकाश मे हमारे जीवन मे परिवर्तन घटित हुए है। हमे स्वत प्रेरणा हुई है कि समस्त जैन समाज द्वारा आपका अभिनन्दन किया जावे तथा एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो। किन्तु अपना ही अभिनन्दन जान हमारे आग्रहपूर्ण निवेदन को आपने सरलता के साथ अस्वीकार कर दिया। और कहा—मेरा अभिनन्दन करने की क्या आवश्यकता है ? मैंने कौन सा ऐसा महान कार्य किया है ? इस प्रकार कई बार कहा और बोले—दादा सा की रचना अवश्य ही प्रकाशित होनी चाहिए। परन्तु हमारा विचार दृढ रहा और मैंने उनकी प्रमुख शिष्या शशिप्रभा श्रीजी म के सन्मुख विचार रखे, उन्होने हमे स्वीकृति दी। जिससे हमे हार्दिक प्रसन्नता हुई।

हमे यह भी प्रसन्नता है कि मेरे प्रस्ताव को खरतरगच्छ सघ के धर्मप्राण श्रावक महानुभावो ने सहमति प्रदान की तथा पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया। हम पू प्रमुखा श्री शशिप्रभा श्रीजी म सा व श्रावकवृन्द के प्रति आभारी है।

हमारी इच्छा है कि प्रवर्तिनी श्रीजी का अभिनन्दन समारोह सम्पूर्ण जैन समाज के लिए एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अवसर बने। आपकी प्रेरणा पाकर जैन समाज एकता की दिशा मे चरणन्यास करे तो यह अवसर सार्थक हो उठेगा।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे सहयोगी एव सम्पादक मण्डल के सदस्य श्री सुरेन्द्र बोथरा, श्री भँवरलालजी नाहटा म श्री विनयसागरजी, डॉ नरेन्द्र भानावत श्री मदनलाल शर्मा, श्री महेन्द्र जैन का मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिन्होने विभिन्न खण्डो के निबन्धो के सग्रह, सशोधन एव कार्य को

वीर शासन सेविका साध्वी शशिप्रभा श्री को धन्यवाद देना उनके परिश्रम और कार्य सम्पादन की महत्ता को घटाना ही होगा क्योकि जितना कुछ इन्होने परिश्रम किया है उसका आभार शब्दो मे व्यक्त नही किया जा सकता ? आप तो इस ग्रन्थ प्रकाशन की प्रारम्भ से ही प्रेरणा स्रोत रही हैं। सम्पूर्ण सम्पादक मण्डल की केन्द्र बनकर आपने ग्रन्थ सम्पादन मे अत्यन्त ही सराहनीय कार्य किया है।

भाई श्रीचन्द जी सुराणा 'सरस' ने ग्रन्थ के सम्पादन एव मुद्रण भार को स्वीकार कर मुझे एक गुरुतर उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया। ऐसे व्यक्ति विरले ही होते है जो मुद्रक भी हो, सम्पादक भी हो कला मर्मज्ञ भी, प्रकाण्ड विद्वान भी हो तथा साथ ही समर्पित धार्मिक श्रावक भी हो। आपके अथक परिश्रम ने ही जीवन दर्शन शुभकामना, चितन, शोध, प्रशस्ति, इतिहास आदि विभिन्न पुष्पो को एक सूत्र मे पिरोकर एक सुन्दर सी माला बनाई है जो अब आपके हाथ मे है। तेरापन्थ सघ प्रमुख आचार्य तुलसी का हम कोटिश वन्दन करते हुए अन्त करण से आभारी हैं जिन्होने हमारे अवचेतन मस्तिष्क की अमूर्त्त कल्पना को मूर्त्त रूप देने के लिए निरन्तर प्रेरित किया और इस कार्य के साफल्यमडित होने का महान् आशीर्वाद प्रदान किया।

जैन धर्म, महावीर वाणी और प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म सा का सन्देश दिग् दिगत मे फैले यही मेरी उत्कट अभिलाषा है।

पुखराज लुनिया एवं समस्त परिवार

卐
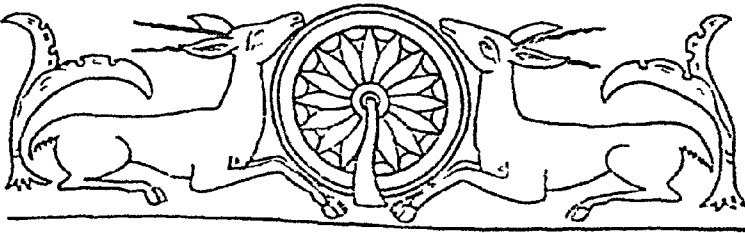
अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड · जीवन ज्योति १-१७८

व्यक्तित्व-परिमल : संस्मरण एवं प्रेरक प्रसंग

कृतित्व दर्शन साहित्य-समीक्षा

द्वितीय खण्ड : आशीर्वचन · शुभकामनाएँ, अभिनन्दन १-३८

६, साध्वी निर्मलाश्रीजी १०, साध्वी मणिप्रभाश्रीजी १०, श्री अविचल श्रीजी म ११, साध्वी श्री ज्योतिष्प्रभाजी ११, विचक्षणज्योति साध्वी चन्द्रप्रभाश्री ११, साध्वी मुक्तिप्रभाश्री ११ साध्वी मधु स्मिताश्री १२, श्री विमलचन्दजी सुराना १३, श्री हरिश्चन्द्रजी बडेर १३, श्री उमराव मलजी चौरडिया १३, श्री जवाहरलालजी मुणोत १३, जी आर भण्डारी १४, श्री हजारीमलजी वाठिया १४ श्री राजेन्द्र कुमारजी श्रीमाल १४ डॉ महेन्द्र सागर प्रचडिया १५, श्री चन्दन मल 'चाँद' १५, डॉ महावीरसरन जैन १५, श्री दौलतसिह जैन १५, श्री इन्द्रचन्दजी मालू १३, अमृत राजमी वागरेचा १६ सेठ आनंदजी कल्याणजी पेढी (अहमदाबाद) १६, जीवाणा खरतर गच्छ सघ १६, श्री सघ, झझनू १६, मीसरीलालजी लोढा १७, जवाहर लालजी राक्यात १७, हस्ती-मलजी मुणोत (सिकन्दराबाद) १७ कालूरामजी बाफना १८, सोहन लालजी पारसान १८, लाल चन्दजी बैराठी १८, शिखर चन्दजी पालावत १६, श्री गुमानमलजी चौरडिया १६, डॉ उम्मेदमल मुनोत १६, सुशील कुमारजी छजलानी २०, श्रीसघ ब्यावर २०, त्रिलोक चन्दजी गोलेच्छा २० श्वे जैन श्रीसघ, टाटोटी २०, सरदार मलजी चौपडा २१, यशपालजी नाहटा २१, विनय कुमार लूनिया २२, निहालचन्दजी सोनी २२, श्री सुरेश लूनिया २२, श्रीमती रेखा लूनिया २२, चिरजी लालजी रेड २३, श्रीमती पन्ना सुकलेचा २३, सुश्री शालिनी लूनिया २३, सुश्री सायर लूनिया २२, श्री मानक चन्दजी लूनिया २४, श्रीमती प्रेमलता गोलेच्छा २५, श्रीमती कमला देवी लूनिया २५, श्रीमती कमल सांड २५, सुशीलकुमारजी वाठिया २६, हेमराजजी ललवानी २६, श्री प्रकाश बाठिया एव परिवार २६ प्रेमचन्दजी धाधिया २६ जोगराज भेरूलाल भसाली २६, श्री भवरलाल पुखराज २७, श्रीमती निर्मला सखवाल २७, श्रीराकेश जैन २७ श्रीमोहन चंदजी गोलेछा २८, भगवान चन्दजी छाजेड २८, श्रीमती इन्दुबाला सखवाल २८, श्री हुकमी चदजी लूनिया २६, श्री राजेन्द्र नाहटा २६, प कन्हैयालालजी दक २६, सुश्री सुरजी २६, श्रीमती मेमबाई सुराणा ३०, विजयकुमारजी ववकड ३०, भीखमचन्दजी कोचर ३०, श्री सिरहमलजी नवलखा ३१, श्रीमती प्रेमलता नवलखा ३१, श्री दुलीचन्दजी टोक ३१, बलवन्तराजजी भसाली ३१, गजेन्द्रकुमारजी भसाली ३१, श्री मान-मलजी सुराणा ३१, श्री कन्हैया लालजी लोढा ३२, डॉ सू प्र वर्मा ३२, श्री मोहनजी सोनी ३२, प० चण्डीप्रसादाचार्य ३३, श्री कुमारपाल वि शाह ३३, मोतीलालजी ललवाणी ३३। जवाहर लालजी लोढा ३४, सौभागमलजी विजयकुमारजी ३४, श्रीमती शकुन्तला सुराणा ३४, श्रीमती निर्मला कडावत ३४, श्रीमती अनिता भडारी ३४, श्रीमती ताराकुमारी झाडचूर ३५, श्रीमती रत्ना ओसवाल ३५, श्रीमती भवरदेवी गोलेच्छा ३५, उत्तमचन्द डागा ३६, राजेश महमवाल ३६, मानमल कोठारी ३६, श्री लहरसिंह बाफना ३६, एस मोहनचन्दजी ढड्ढा ३६, साध्वी रत्नाश्रीजी ३७, श्री ज्ञानचन्दजी लूनावत ३७, महतावचन्दजी वाठिया ३७, श्री हेम चन्दजी चोरडिया ३७, श्रीमती प्रेमदेवी झाडचूर ३७, विमला झाडचूर ३७, कमलेश नखागी ३८।

श्रद्धार्चन : काव्यांजलियाँ

□ स्व० आचार्यश्री जिन कवीन्द्रसागर सूरिजी म.

चतुर्थ खण्ड · धर्म, दर्शन एवं अध्यात्म-चिन्तन १-११८

पंचम खण्ड नारी · त्याग, तपस्या एवं सेवा की सुरसरि ११९-१८०

卐

शुभकामना : संदेश

,राज भवन, जयपुर

दिनाक अप्रैल २२, १६८६

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ, जयपुर की ओर से आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज के अभिनन्दन अवसर पर २० मई, १६८६ को अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

आशा है धर्मावलम्बियो एव श्री सज्जनश्रीजी के अनुयायियो के लिए अभिनन्दन ग्रन्थ प्रेरणास्पद और उपयोगी रहेगा।

मै अभिनन्दन ग्रन्थ के सफल प्रकाशन की तहेदिल मे कामना करता हूँ।

सुखदेव प्रसाद
(राज्यपाल, राजस्थान)

RAJ BHAWAN,

Hyderabad-500041

March 28, 1989

India has been the birth place of many a faith spreading the message of love, tolerance, peace and brotherhood for centuries. Jainism is one such religion reflecting the philosophy of non-violence and peaceful co-existence The Jain Munis are a living symbol of these divine qualities which are so essential for human existence. It is in this context the felicitations organised by the Jain community to honour the Jain Sadhvi Shri Sajjan Shreeji Maharaj at Jaipur on the 20th May, 1989 assume a special significance to the Jain fraternity

I have great pleasure in sending my cordial greetings and good wishes for the Abhinandan Granth being broughtout in this connection and in offering my felicitations to the Jain Sadhvi I wish the function every success

KUMUD JOSHI
Governer Andhra Pradesh

शुभकामना : संदेश

मुख्य मन्त्री
राजस्थान
जयपुर
दिनाक २६ मार्च, १९८९

भारतीय सन्तो ने अपने आध्यात्मिक चिन्तन और ज्ञानामृत से न केवल हमारे देश वरन् विश्व के जन-मन को आलोकित किया है। आज के युग मे जब आदर्श और आचरण के बीच खाई गहरी होती जा रही है, तब हमारे सन्तो के निर्मल उपदेश और अधिक प्रासंगिक होगये है। इसलिए सन्तो और महात्माओ के प्रति हम अपनी श्रद्धा व्यक्त करे, यह एक शुभ लक्षण है।

मुझे प्रसन्नता है कि इस अनुकरणीय परम्परा मे जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ, जयपुर द्वारा प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज का अभिनन्दन किया जा रहा है और इस अवसर पर एक ग्रन्थ का प्रकाशन भी किया जा रहा है। मुझे आशा है, इस ग्रन्थ मे ऐसी सामग्री का समावेश किया जायगा जो उदात्त जीवन मूल्यो के प्रसार मे सहायक होगी।

मैं प्रकाश्य ग्रन्थ एव अभिनन्दन समारोह की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभ-कामनाएँ देता हूँ।

शिवचरण माथुर
(मुख्यमन्त्री राजस्थान)

New Delhi-110 001
March 31, 1989

I am extremely happy to know that Sadhvi Sajjan Shreeji being felicitated and honoured with an Abhinandan Granth Sadhvi Sajjan Shreeji has been undoubtedly a great source of moral and spiritual inspiration and guidance to the Jain community and her literary and spiritual writings and speeches have indeed been monumental I wish the felicitation function all success and pray to Almighty to give Sadhvi Sajjan Shreeji many more purposive years of life, to pursue her chosen path

MAHAVIR PRASAD
(Deputy Minister For Railways)
India

शुभकामना : संदेश

राज्य मन्त्री भारत सरकार

विदेश मन्त्रालय, नई दिल्ली-११००११

१६ मार्च, १६८६

मुझे यह जानकर खुशी हो रही है कि आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति एक अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित कर रही है।

अभिनन्दन-ग्रन्थ के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

कमलाकान्त तिवारी
(विदेश राज्यमन्त्री)

विजयसिंह नाहर ससद सदस्य (भूतपूर्व)
(भूतपूर्व उपमुख्यमन्त्री पश्चिम बगाल
कलकत्ता)

श्रीपत्री १०८ आर्या शशिप्रभाजी महाराज जोग विजयसिह नाहर का सविनय वन्दन वहुत वहुत कर अवधारियेगा। यहाँ कुशल है, आप महाराजो का सदा सुख साता चाहता हूँ। मै अस्वस्थ था इसलिए लेख व पत्रोत्तर नही भेज सका, कृपया क्षमा करे।

आर्यारत्न प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी महाराज का अभिनन्दन एव ग्रन्थ प्रकाशन होरहा है जानकर खुशी हुई। सदा स्वाध्यायरत प्रवर्तिनी महाराज ने धर्म ज्ञान प्रसार मे जो कार्य किया है वह समाज को अहिंसा एव अपरिग्रह के रास्ते मे आगे वढाने मे शक्तिशाली प्रेरणा है। आशा है आज के वैज्ञानिक युग मे महाराजश्री द्वारा जैन विज्ञान का वरावर प्रसार होता रहेगा। जैन विज्ञान ऊपर के मशीनो का विज्ञान नही है, यह तो अन्दर मे मनुष्य देह के अन्तरात्म-विकास का विज्ञान है। जैन सन्त इस प्रगति को नये रूप मे विश्व के सामने प्रसारित करें यही कामना रखता हूँ।

अभिनन्दन समारोह की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

विजयसिंह नाहर

शुभकामना : संदेश

२५-३-१९८९

आर्या साध्वी श्री शशिप्रभाश्रीजी

सेवा मे नतमस्तक वन्दन स्वीकृत हो। यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है और यह समारोह दिनाक २० मई १९८९ को जयपुर मे होगा।

प्रवर्तिनीजी ने अपने दीक्षित जीवन के गत ४७ वर्षो मे जैन समाज की अटूट सेवा की है। आप अपने मे, आज भारत की समस्त जैन समाज की साध्वी समुदाय मे अपना एक अनूठा स्थान रखती है। आपका व्यक्तित्व व कृतित्व बेजोड है। आप जैन साहित्य के सृजन, भगवान महावीर की वाणी के प्रचार व आत्मकल्याण मे सर्वोपरि हैं।

जिनेश्वर देव से प्रार्थना है आप शतायु हो। आपकी वाणी व कार्यो से निरन्तर समाज सेवा व धर्म सेवा होती रहे। अभिनन्दन समारोह की सफलता की कामना करता हूँ।

आपका

—एस० मोहनचन्द ढढ्ढा (मद्रास)

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ की कार्यसमिति (१९८८–९१)

१ श्रीमती जतन कवरजी गोलेच्छा — अध्यक्ष

२.	श्री उमरावचन्दजी डागा	उपाध्यक्ष	१७	श्री त्रिलोकचन्द गोलेछा	सदस्य
३	श्री शेरसिंहजी जिन्दाणी	उपाध्यक्ष	१८	श्री नेमीचन्द भसाली	सदस्य
४.	श्री उत्तमचन्दजी बडेर	सघ मत्री	१९	श्री नथमलजी लोढा	सदस्य
५	तिलकराजजी जैन	सह मत्री	२०	श्री प्रकाशचन्दजी खवाड	सदस्य
६	श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन	कोषाध्याक्ष	२१	श्री प्रकाशचन्दजी वाठीया	सदस्य
७	श्री सुभाषचन्दजी कास्टीया	सास्कृतिक मत्री	२२.	श्री पदमचन्दजी पुगलिया	सदस्य
८	श्री सतोषचन्दजी डागा	भडारक	२३	श्री प्रतापचन्दजी महता	सदस्य
९.	श्री पदमचन्दजी गोलेछा	मत्री मदिर व दादाबाडी	२४.	श्री प्रतापचन्दजी लूनावत	सदस्य
१०	श्रीमती मोनादेवीवैद	मन्त्री—महिला विभाग	२५	श्री प्रेमचन्दजी श्री श्रीमाल	सदस्य
११	श्री जतनमलजी सुराना	मन्त्री—बर्तन वि०	२६	श्री मोहनलालजी डागा	सदस्य
१२	श्री अशोककुमार जी बोहरा	सदस्य	२७.	श्री माणकचन्दजी गोलेच्छा	सदस्य
१३	श्री इन्दुमलजी भडारी	सदस्य	२८	विजयकुमारजी सचेती	सदस्य
१४	गिरधारीलालजी टाक	सदस्य	२९	श्री विमलचन्दजी सुराणा	सदस्य
१५	श्री गुमानमलजी लूनिया	सदस्य	३०.	श्री हेमचन्दजी चौरडीया	सदस्य
१६.	श्री चन्द्रप्रकाशजी बैगानी	सदस्य	३१.	श्री हीरालालजी पारख	सदस्य

□□

खण्ड १
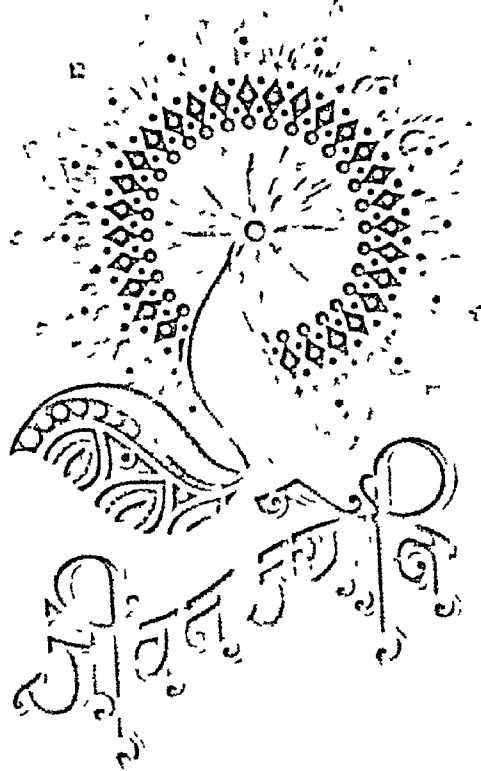
१. जीवन-ज्योति

यह शरीर मानो एक दीपक है, प्राण इसकी ज्योति है, प्राणों की लौ जब ऊर्ध्वमुखी बनती है तो चेतना का आलोक जगमगा उठता है और दीप-परिसर से अज्ञान-अंधकार पलायन कर जाता है।

संत-जगत के चिन्मय दीपक हैं। इस जगत परिपार्श्व में अज्ञान-भय-सन्त्रास-पीड़ा का अंधकार भरा है, जब संत की चेतना-बाती ऊर्ध्वमुखी बनकर आलोक बांटती है तो जगत् जीवों के मन में भरा अज्ञान अंधकार, चेतना के गहरे आवरण में छिपा दुःख, सन्त्रास, कालुष्य का तमस् घुलने लगता है और धीरे-धीरे ज्ञान का मन्द-मनभावन आलोक जग-मगा उठता है। सुख-शान्ति-समता करुणा की प्रकाश रश्मियां जन-मन को आस्वस्त करने लगती हैं और मानवता का मन्दिर जगर-मगर कर उठता है। चेतना नव पुलक से उमग उठती है।

संत की तपस्या, साधना, उसके अन्तःकरण से प्रवाहित करुणा, जीव मात्र को कृतार्थ करती है। सन्त की उपस्थिति से जगत कृतार्थ होता है और जगत को आलोक-दान कर सन्त-जीवन कृतकृत्यता अनुभव करने लगता है।

पूज्य प्रवर्तिनी आर्या सज्जनश्री जी की जीवन-ज्योति, उनके प्रभास्वर व्यक्तित्व-कृतित्व की दीप्ति, विचारों की गरिमान्वित आभा जग-जीवों को आलोक प्रदान करने में किस प्रकार सक्षम हुई यही अंकित है इन पृष्ठों... की दीवट पर.

— 'सरस'

ग्रन्थनायिका परमविदुषी संयम–तपोमूर्ति प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज की

□ साध्वी शशिप्रभाश्री जी
[दर्शनाचार्य प्रस्तुत ग्रंथ की प्रधान सपादिका तथा बहुश्रुत श्रमणी]
□ प्रियदर्शनाश्री जी (साहित्यरत्न)

"बाबुसा ! मै दीक्षा लूँगी।" नववर्षीय पुत्री ने अपने पिता से बाल-सुलभ बोली मे कहा।

पुत्री के शब्द सुनकर पिता चकित रह गये। मानस मे गम्भीर विचारो की तरगे उठने लगी। किन्तु पुत्री को किसी प्रकार समझाना तो था ही। अत विचारो के उद्वेलन को कुछ क्षण के लिए रोककर, सिर पर हाथ फिराते हुए बोले—

"बेटी ! तुम अभी नादान हो। दीक्षा ग्रहण करने और दीक्षित जीवन व्यतीत करने मे कितने कष्ट हैं, तुम क्या जानो ? तुम अभी तक सुख-सुविधाओ मे पली हो। फूल-सी कोमल नाजुक उमर है तुम्हारी। केश-लोच करना, सर्दी-गर्मी मे नगे पैरो चलना, जैसा मिले वैसा खाना, अनेको कष्ट है, बेटी ! इसलिए दीक्षा का विचार कोई हँसी-खेल नही है। साधु-जीवन खाडे की धार है।"

पुत्री चुप हो गयी, लेकिन उसके चेहरे पर आते-जाते भावो से पिता ने अनुभव किया कि पुत्री ने दीक्षा का विचार पक्का कर लिया है। इतनी छोटी उम्र है किन्तु समझ और सकल्प बहुत गहरा है। उसके मन मे दीक्षित होने के सस्कार जग चुके है।

प्रसिद्ध शिक्षा मनोवैज्ञानिक ड्यूई (John Dewey) ने कहा है—'बच्चा कोरी स्लेट नही है, जिस पर हम मनचाही इबारत लिख दे, वह निश्चित सस्कार लेकर आता है और अनुकूल पर्यावरण (परिस्थिति) मिलते ही वे सस्कार प्रबल हो उठते है, तथा उसी के अनुरूप बच्चे का चरित्र-निर्माण होता है, उसका भावी जीवन बनता है।'

इसी को अध्यात्मवादी जैन धर्म-दर्शन मे पूर्व-जन्मो के सस्कार कहा गया है और इन शुभाशुभ सस्कारो के बीज पूर्व-जन्मोपार्जित शुभाशुभ कर्मो मे निहित रहते है।

जिन्होने पूर्वजन्मो मे शुभ कर्मो का उपार्जन किया होता है, ऐसे बच्चे बाल्यावस्था मे ही धर्मानुरागी बनकर सयमी जीवन धारण करने की

इच्छा करते है। और उनके सकल्पो मे फूलो-सी नाजुकता भले ही हो, मगर रेशम-सी दृढता भी होती है।

हमारी चरितनायिका सज्जनकुमारी जी ऐसे ही शुभ-सस्कारो से सम्पन्न महान आत्मा है, तभी तो उन्होने ६ वर्ष की अल्पायु मे ही अपने पिता श्री गुलाबचन्द जी सा लूणिया के सम्मुख दीक्षा लेने की इच्छा प्रगट की थी।

श्रीमान गुलावचन्दजी लूणिया धर्मनिष्ठ और श्रेष्ठ विवेकवान थे। वे जैन तत्त्व ज्ञान के गम्भीर ज्ञाता भी थे और कवि मानस भी थे। इसलिए उनके हृदय मे गम्भीरता के साथ सुकुमारता और कल्पनाशीलता भी थी। वे एक सवेदनशील पिता ही नही भावुक कवि और सगीतकार भी थे। उस कन्या को वे लक्ष्मी सरस्वती का सयुक्त अवतार समझते थे। इसलिए एक खास मानसिक सम्मान था उनका सज्जन के प्रति। साथ ही अपनी इकलौती पुत्री के प्रति उन्हे विशेष मोह था। फिर उस मोह का एक विशेष कारण भी था कि अनेक मनौतियो और कई वर्षों की प्रतीक्षा के बाद उन्हे उस कन्या-रत्न की उपलब्धि हुई थी और इसी के कारण उनके जीवन की सूखी बगिया मे बहार आई थी, खुशी के फूल खिले थे। ऐसी प्रिय कलेजे की कोर पुत्री के मुख से दीक्षा की वात सुनकर उनका मुख-कमल मुरझा गया, मानस उद्वेलित हो गया, उनके स्मृति-पट पर विगत-जीवन धारावाहिक चलचित्र के समान नाचने लगा।

गुलाब-सा सुरभित जीवन श्री गुलावचद जी लूनिया

निवास-नगर—राजस्थान का गुलावी नगर जयपुर जिसका देश के इतिहास मे विशिष्ट स्थान है। मुगल वादशाहो ने भी इस नगर के शासको और व्यापारियो को विशेप सम्मान दिया, प्रामाणिक माना तथा ब्रिटिश शासको के समय भी व्यापारियो ने अपनी प्रामाणिकता को अक्षुण्ण रखा।

इसी नगर को जवाहरात के व्यापार मे विशिष्ट गौरव प्राप्त था। यहाँ के जौहरी प्रामाणिक, रत्नो के सच्चे पारखी और व्यवहारकुशल माने जाते रहे। वोली के मीठे, स्वभाव के मधुर व चतुर कुशल व्यापारी गुलाबी नगरी के गौरव थे।

इन जौहरियो मे जैन धर्मानुयायिको की सख्या अधिक थी। वैसे भी जयपुर नगर मे जैनो का निवास विशेष रूप से रहा है।

इन्ही मे जैन श्रावक गुलावचन्द जी लूनिया[1] भी थे। आप जवाहरात के व्यापारी थे। आप अपने व्यापार मे तो दक्ष थे ही, बहुत धर्मनिष्ठ, सच्चरित्र, सदाचारी भी थे। अपनी गुलाबी मुस्कराहट से आपने जन-जन के हृदय मे अपना स्थान बना लिया था। अपने हसमुख स्वभाव और व्युत्पन्नमति के कारण आप लोकप्रिय हो गये थे, सभी आपको सम्मान देते थे। वैभव के बीच आपका जीवन सदाचारपूर्ण और धर्मनिष्ठ था। आप बारह व्रतधारी श्रावक थे।

स्वाध्यायनिष्ठा—स्वाध्याय आपके जीवन का अग था। अनेक ग्रन्थो के गभीर अध्ययन के परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता की भावना आपके हृदय से निकल गयी थी। यद्यपि आप तेरापथी समाज के प्रमुख श्रावक थे, फिर भी धार्मिक मामलो मे उदार और व्यापक दृष्टि रखते थे।

---

[1] वश परिचय के लिए लूनिया वशावलि देखें।

स्वर-विशेषता—प्रकृति ने आपको भले ही 'लूनिया' गोत्र मे अवतरित किया किंतु आपका हृदय तो मिश्री-सा मीठा, और स्वर तो शहद से भी अधिक मधुर रसवाही था। प्रभुभक्ति के गीतो मे आपको विशेष रस आता था। स्वर भी महीन था। इन गुणो के कारण समाज मे आपका अग्रगण्य स्थान था। धार्मिक उदारता के कारण जयपुर, अजमेर, सागानेर आदि मे जब भी पूजा (भगवद्पूजा) होती आपका बुलाया जाता, आप भी सहर्ष और सोत्साह सम्मिलित होते और पूजा-गायन करते। गायको मे आपका अग्रगण्य स्थान था।

रचनायें—आपकी कवित्वशक्ति अद्‌भुत थी। आपने प्रभुस्तवन, उपदेशी पद, गुरुभक्ति पद-आदि सैकडो की सख्या मे रचे। जो प्राय सभी प्रकाशित हो चुके है। इनमे से जानपने के पच्चीस बोल, तेरहद्वार प्रश्नोत्तर, तत्वा[illegible]ध, श्रावक आराधना (पद्यमय), अर्थसहित प्रतिक्रमण आदि अब भी उपलब्ध है।

धार्मिक शिक्षा-प्रसार—आप भलीभाँति जानते थे कि बाल्यावस्था मे दिये गये सस्कार जीवन भर स्थायी रहते है। वच्चो को धार्मिक सस्कार वचपन मे ही मिले, इस दृष्टिकोण से आपने 'तेरापथ स्कूल' की स्थापना अपने सद्‌प्रयासो से करवाई। राजस्थान मे वच्चो की शिक्षा के लिए इस प्रकार का प्रयास आपके विद्या प्रेम और उर्वर कल्पनाशील मानस का प्रतीक है। उस समय यह 'प्राइमरी स्कूल' था जो प्रगति करता हुआ अव 'हाईस्कूल' वन गया है।

जैसे आप धर्मनिष्ठ और सदाचारी थे वैसी ही धर्मनिष्ठा सुशीला जीवन-सगिनी की आपको प्राप्ति हुई थी। यह भी एक महान पुण्य सयोग की समझना चाहिए। आपकी धर्मपत्नी का नाम मेहताव देवी था। मेहताव कहते है— चन्द्रमा को। चन्द्रमा के समान ही आपका स्वभाव शीतल और सभी जनो के लिए सुखद था।

मेहतावदेवी व्रत-नियम-त्याग-तप आदि का दृढतापूर्वक पालन करती थी। रात्रि-भोजन एव जमीकन्द का सर्वथा त्याग था। यावज्जीवन के लिए सिर्फ २५ प्रकार के फल और सव्जियो का नियम था। शेप का त्याग था। विभिन्न प्रकार के तप करती रहती थी।

आपका धार्मिक ज्ञान भी प्रशसनीय था। जानपने के २५ वोल, चर्चा के १३ द्वार, वावन वोल, गत्यागति, अल्पवहुत्व, पाचज्ञान तेतीरा का स्तोक, छह लेश्या, नियण्ठा खण्डाजोणि (क्षेत्र समास) इत्यादि कई स्तोक (थोकडे) तथा दण्डक सग्रहणी आदि के कई वडे-वडे स्तवन, नव वाड व आराधना की ढाले आपको कण्ठस्थ थी तथा साथ ही इनका विशिष्ट ज्ञान भी था, जिसका चिन्तन-मनन-पारायण आप सामायिक साधना के दौरान किया करती थी।

किन्तु जिस प्रकार चम्पा वेल इतनी सुन्दर, सुगन्धित होते हुए भी फलहीन होती है। यह प्रकृति का एक क्रूर मजाक ही समझना चाहिए। उसी प्रकार मेहताव देवी की जीवन वेल मे भी एक सन्तान-फल का अभाव खटकता था। इस अभाव को पूर्ति के लिए दोनो पति-पत्नी चिन्तित रहते थे, किन्तु वह अभाव, अभाव ही बना रहता।

ऐसा भी नही था कि मेहतावदेवी वाझ हो, उसके सन्तान होती ही न हो। सन्तान तो होती थी किन्तु एक वर्ष की होते-होते काल के गाल मे समा जाती। भरी गोद फिर सूनी हो जाती। निर्मा लता फिर मुर्झा जाती, वसन्त आने से पहले काल का प्रहार हो जाता। माता-पिता के हृदय मे विषाद की गहरी रेखा खिंच जाती। जिस मातृत्व का सपना प्रत्येक स्त्री सजोती है, वह साकार होना और काल के प्रहार से कल्पना-महल के समान बिखर जाता।

बाँझपन ही नारी-जीवन का अभिशाप है। बाँझ स्त्री को लौकिक जन अमंगल मानते हैं। फिर भी बाँझपन को पूर्वकृत कर्मों का दोष मानकर स्त्री सह भी जाये, लेकिन सन्तान होकर चल बसे तो दारुण दुःख होता है। रत्न हाथ मे आकर लुट जाये तो वह कैसे धीरज धारण करे ?

जैसे अच्छा-सा सुन्दर फल कोई किसी को दे और फिर कुछ क्षण बाद ही उसे छीन ले, पाने वाला अतृप्त ही रह जाय, उसका आनन्द न ले सके तो अतृप्तिजन्य दारुण वेदना होती है, हृदय में शूल से चुभते हैं, वैसी ही वेदना मेहताबदेवी को भी होती थी, पर धर्मनिष्ठ और विवेकवती होने के कारण वह यह वेदना भी समता से सह जाती थी।

इतने पर भी उसका मातृत्व तो अतृप्त ही रह जाता था। अपने बच्चे की तुतली भाषा मे 'माँ' शब्द सुनने को उसके कान तरसते रह जाते। मन मे हूक उठती—जब मेरे भाग्य मे पुत्र-सुख है ही नही तो दैव मुझे पुत्र देता ही क्यो है ? इधर दिया और उधर छीन लिया, हे दैव ! एक अबला के साथ तू इतना क्रूर मजाक करता ही क्यो है ?

और फिर अपने मन को समझा लेती—मेरे पूर्वजन्म के कर्म ही ऐसे हैं। अवश्य ही मैंने पूर्वजन्मो मे किसी की इष्ट वस्तु चुरायी होगी। किसी को इसी प्रकार पीडित किया होगा, उन कर्मों का यह दुष्फल मेरे सामने आ रहा है। और वह सन्तोष कर आशावान हो जाती। किन्तु दीर्घायु पुत्र-प्राप्ति के लिए तथा उसके जीवन की रक्षा के लिए किसी भी देवी-देवता की मनौती नहीं करती थी।

लेकिन अन्य सभी पारिवारिकजनो की इच्छा यही थी कि 'मेहताब देवी की सन्तान जीवित रहे।' और इस इच्छा की पूर्ति के लिए मनौतियाँ करते रहते थे।

शुभ-स्वप्न संकेत—एक रात्रि ! मेहताबदेवी अपनी सुख-शैय्या पर निद्राधीन थी। बन्द आँखो मे सपने तैरने लगे—सत्संग हो रहा है। सन्तो का प्रवचन चल रहा है। उसमे मैं बैठी प्रवचन सुन रही हूँ। मेरे समीप ही एक दिव्य देवांगना बैठी है। प्रवचन समाप्त हुआ। देवांगना उसे मेरे शरीर मे समा गई। सन्तो की और धर्म की जय-जयकार होने लगी, श्रोताओ, भक्तजनो का हर्षनाद तुमुल स्वर मे व्याप्त हो गया। अचानक ही आँख खुल गई। देखा तो वही कक्ष।

मेहताबदेवी का चिन्तन उभरा—कितना मधुर और सुहावना स्वप्न था। काश ! आँख न खुलती। प्रवचन चलता ही रहता। यह जागृति तो बैरिन बन गई। सुख की घडियाँ लूट ले गई।

चिन्तन आगे बढा—और सब लोग तो जाते दिखाई दिये लेकिन वह देवांगना कहाँ चली गई ? कितनी सुन्दर थी। कैसी मनोहारी मूरत अरे वह तो मेरे शरीर मे ही समा गई।

पुलक उठा मेहताबदेवी का तन-मन ! हर्ष से हिया छलक उठा। सोचा—अपनी खुशी मे पतिदेव को भी साझीदार बनाऊँ। उठी, पति को जगाया और पूरा स्वप्न सुना दिया।

गुलाबचन्द जी का मन मोद से भर गया, शब्द निकले गुलाबी हँसी के साथ—उत्तम स्वप्न है। तुम माता बनोगी। तुम्हारी कन्या साधारण नही, कन्या-रत्न होगी, जिसके उजास से हमारा हृदय-घट तो प्रकाशित होगा, पूरा समाज उससे उजाला पाकर धन्य अनुभव करेगा अपने आपको।

और मेहताबदेवी अभी से अपने को धन्य अनुभव करने लगी। ज्यो-ज्यो गर्भ मे वृद्धि हुई, माता की धर्म प्रवृत्तियाँ दिनोदिन प्रवर्द्धित होती चली गई। अब उन्हे सुपात्रदान, गुरु-दर्शन-वन्दन, प्रवचन श्रवण आदि मे अधिक आनन्द आता। सभी व्यवहारो मे विनय विशेष रूप से समाहित हो गई।

जन्म एव शैशव

जन्म—गर्भकाल पूरा होने पर श्रीमती मेहताबदेवी ने एक बालिका को इसी प्रकार जन्म दिया, जैसे प्राची दिशा सूर्य को जन्म देती है, जिसके प्रकाश से जन-जन चेतनाशील हो जाता है। वह दिन था विक्रम सवत् १९६५ की वैशाखी पूर्णिमा।

भारत के धार्मिक इतिहास मे इस पूर्णिमा का भी विशेष महत्व है। करुणा के प्रसारक तथागतबुद्ध का जन्म भी वैशाखी पूर्णिमा को हुआ, उन्हे बोधि भी इसी दिन प्राप्त हुई और इसी दिन उनका शरीर भी छूटा। इसी कारण यह पूर्णिमा बुद्ध जयन्ती के नाम से भारत, चीन, जापान आदि एशिया खण्ड के अनेक देशो मे प्रसिद्ध है।

नवजात पुत्री जिसका नाम माता-पिता ने सज्जनकुमारी रखा और आज सज्जनश्री म० के रूप मे है, उनमे भी करुणा, क्षमा, आदि अनेक सद्‌गुण साकार रूप मे परिलक्षित होते है।

पुत्री के जन्म से माता-पिता के हृदय में जो अधकार था, वह मिट गया, उसका स्थान प्रकाश ने ले लिया, उनके मन मे मोद भर गया। सारे परिवार मे खुशियाँ छा गई।

लेकिन मानव-मन शकालु भी तो है। आप से पहले जितनी भी सन्ताने हुई वे सभी एक वर्ष की ही मेहमान रही, अत पारिवारिक जनो, विशेष रूप से परिवार की बुजुर्ग स्त्रियो के मन मे इस नवजात पुत्री के अमगल की आशका भी उठ खडी हुई, उन्हे इसके जीवन की चिन्ता लग गई।

यद्यपि यह अकाट्य सत्य है कि कोई भी अन्य व्यक्ति किसी भी व्यक्ति के आयुष्य को एक क्षण भी नही बढा सकता और न स्वय व्यक्ति यहाँ तक कि तीर्थंकर भी नही।

भगवान महावीर का अन्त समय समीप था। उस समय शक्र देवराज उनके चरणो मे उपस्थित हुआ, करबद्ध होकर प्रार्थना की उसने—भगवन्! आपकी जन्म राशि पर भस्मक ग्रह चल रहा है। यदि इसी समय आपने शरीर त्याग दिया तो आपके शासन की बहुत अवनति होगी। दो हजार वर्ष तक इसका प्रभाव रहेगा। अत आप आयुष्य के कुछ क्षण बढा ले तब तक यह भस्मक ग्रह उतर जायेगा, आप सर्वसमर्थ है, आयु के कुछ क्षण बढा सकते है।

इस पर भगवान महावीर ने फरमाया—हे इन्द्र! ऐसा न कभी हुआ है और न होगा ही, आयुष्य का एक क्षण भी बढाया नही जा सकता।

इस तथ्य को जानते-समझते हुए भी मानव यही सोचता है कि कुछ टोटके करके नवजात बालक-बालिकाओ को दीर्घायुष्य बनाया जा सकता है। विपाक सूत्र मे ऐसे टोटको का उल्लेख मिलता है। यथा—शकट को शकट (गाडी) के नीचे से निकाला गया था।

घर की बुजुर्ग स्त्रियो ने भी ऐसा ही एक टोटका किया। सोचा—इस बार पुत्री को नमक से तोलकर लिया जाय। ऐसा ही किया भी गया। भावना यही रही कि इस प्रकार करने पुत्री दीर्घायु वाली होगी।

शैशव-क्रीडाएँ—बालिका माता-पिता तथा परिवारीजनो को हर्षित करती हुई दिनोदिन बढने लगी। उसकी शिशु-क्रीडाओ को देख-देखकर सभी हर्षित होते।

मिल्टन (Milton) ने अपनी एक रचना मे लिखा है—

Crawling of child shows its future

(शिशु की क्रीडाएँ उसके भावीजीवन की सकेत होती है।)

ऐसी ही एक लोकोक्ति है—पूत के पाँव पालने मे दिखाई देते है।

इसी बात से यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि सामान्य बालकों की शिशु-क्रीडाएँ सामान्य होती हैं और विशिष्टों की विशिष्ट। उस युग मे सामान्य बालिकाओं की सामान्य-क्रीडा थी—गुडियों से खेलना, उनका व्याह रचाना आदि।

किन्तु हमारी चरित नायिका तो विशिष्ट थी, विशिष्ट सस्कार लेकर उन्होंने यह जन्म ग्रहण किया था। अत उनकी शिशु-क्रीडाएँ भी विशिष्ट थी।

जिस आयु मे लडकियाँ गुड्डा-गुडियो के व्याह रचाया करती है, उस बचपन की आयु में आप कभी गणेशजी का चित्र लेकर उसकी पूजा करती तो कभी राम-लक्ष्मण-सीता का अभिनय करती।

आपकी सर्वाधिक प्रिय क्रीडाएँ थी—मुख पर मुहपत्ति बाधकर साध्वी का रूप रखना और छोटी-छोटी कटोरियो के पात्रे बना रुमाल की झोली बनाकर बहरने जाना। कभी आप साधु के समान परदा लगाकर भोजन करने का अभिनय करती तो कभी ऊँचे आसन पर बैठकर अन्य बालिकाओ को धर्मोपदेश देती—वैसा ही जैसे तीर्थंकर भगवान समवसरण मे विराजमान होकर बारह प्रकार की धर्म-परिषदा को धर्म का उपदेश प्रदान करते है।

इन क्रीडाओ मे आपको बहुत रस आता।

बाल-सुलभ क्रीडाओ के साथ ही सत्य को जानने की आपकी जिज्ञासा प्रबल थी। विनय-विवेक और तर्कबुद्धि का भी आप मे निरन्तर विकास हो रहा था।

माता अपनी पुत्री की इन क्रीडाओ को देखकर फूली न समाती, अपने मातृत्व को सफल-सार्थक हुआ समझती।

माता जैसे गौरवपूर्ण शब्द के लिए अँग्रेजी मे 'मम्मी' शब्द है। अँग्रेजियत के रग मे रगे बच्चे अपनी माता को मम्मी कहने लगे है, माताएँ भी इस सम्बोधन से बहुत खुश होती है और बच्चो को ऐसे बोलने के लिए प्रोत्साहित भी करती है। लेकिन वे नही जानती कि 'मम्मी' शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है।

'मम्मी' शब्द का वास्तविक अर्थ है 'शव' (डैड बोडी)। मिस्र के पिरामिडो मे हजारो साल पुराने जो मसाला लगे हुए शव रखे है, उन्हे मम्मी (mummy) कहते है। ऐसी ही एक मम्मी जयपुर के अजायबघर मे भी रखी हुई है।

साथ ही अब पिता को 'डैडी' कहने का भी फैशन चल पडा है। कुछ बच्चे तो डैडी को भी शोर्ट करके डैड कहते हैं। डैड का अर्थ होता है—मरा हुआ व्यक्ति।

भारतीय जनजीवन मे पश्चिम की सस्कृति की मूर्खतापूर्ण नकल की जाती है और ये नकलची अपने को 'मॉडर्न' या आधुनिक भाषा मे 'सभ्य' सुसस्कृत (कल्चर्ड) समझते है। वे नही जानते कि सभ्यता और सस्कृति अपने उच्च आदर्श और उदात्त विचार-सस्कारो की पोषक होनी चाहिए शोषक नही अस्तु—

धार्मिक सस्कार—यद्यपि आधुनिक माता-पिता इस प्रवाह मे बहे जा रहे हैं। लेकिन हमारी चरितनायिका की माता मेहताबदेवी अलग ही प्रकार की थी। असली भारतीय नारी थी, उनके सस्कारो मे उच्च धार्मिकता थी, विचारशीलता भी महक थी। वह बच्चे को—अपनी पुत्री को धार्मिक सस्कार देने मे अपने मातृत्व का गौरव मानती थी। वह पुत्री को अतिशय लाड-प्यार करती थी, वात्सल्य लुटाती थी किन्तु साथ ही अपने कर्तव्य का उन्हे भान भी था। जानती थी—माता हजार शिक्षको के बराबर होती है। और बच्चे की प्राथमिक शिक्षिका माँ ही होती है। जैसे सस्कार माता अपनी सन्तान

(२) स्थानकवासी समाज द्वारा सचालित कन्या पाठशाला। इसका वर्तमान नाम सुबोध हायर सैकेन्डी स्कूल है। इसमे कन्याओ के शिक्षण की व्यवस्था है। यह प्रगति पथ पर है।

(३) वीर बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय व कॉलेज भी वर्तमान मे है। इसका श्रीगणेश ५० वर्ष पहले पूज्या श्री स्वर्णश्री जी म सा की प्रवचन-प्रेरणा से हुआ था।

किन्तु जब चरितनायिका ५ वर्ष की थी, उस समय ये स्कूल नही थे। तेरापथ समाज की ओर से भी कोई स्कूल नही था।

लेकिन तेरापथ समाज मे एक ऐसे स्कूल की आवश्यकता अवश्य अनुभव की जा रही थी जहाँ (पुत्री) कन्याओ को व्यावहारिक शिक्षण के साथ-साथ धार्मिक-सस्कार भी मिले। इस दृष्टिकोण से तेरापथ समाज की ओर से एक पाठशाला स्थापित की गई, जिसकी स्थापना मे श्री गुलाबचन्दजी लूनिया (चरितनायिका के पिता) अग्रणी थे।

इसी पाठशाला मे चरितनायिका जी को प्रवेश कराया गया। इसके अतिरिक्त घर पर भी शिक्षण शुरू किया गया। पडित मीठालालजी सा हिन्दी, गणित तथा अन्य विषयो का ज्ञान प्रदान करते थे तो पडित श्री मदनमोहन जी शास्त्री सस्कृत का शिक्षण देते थे। विद्यालय मे भी ये ही पढाते थे। छोटे-छोटे लडके-लडकी साथ ही पढते थे।

हमारी चरितनायिका धार्मिक क्रिया, सामायिक-प्रतिक्रमण आदि सीखने के लिए तत्रस्थ विराजित साधु-साध्वीजी म तथा समीपस्थ धार्मिक पाठशाला मे जाती थी। यह पाठशाला सेठ श्री फूलचन्द जी सा द्वारा सचालित थी और यहाँ मेहताब जी यतिनी[1] तथा भवरबाई (अध्यापिका) धार्मिक तथा सामान्य ज्ञान देती थी। यहाँ विशेषरूप से उच्चारण की शुद्धता और अर्थ के चिन्तन पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

ये दोनो गुण तो आप मे प्रारम्भ से ही विकसित थे, साथ ही आपकी बुद्धि भी कुशाग्र थी, अत थोडे समय मे आपने काफी ज्ञान उपार्जित कर लिया। आठ वर्ष की आयु तक तो आपने पच्चीस बोल, चर्चा के तेरह द्वार, बावन बोल, दण्डक हुन्डी, अनुकम्पा की ढाले आदि कई छोटे-बडे थोकडे कण्ठस्थ कर लिए थे।

महान् आत्माओ के उद्गार—धार्मिक पाठशाला की सहपाठिनियो चाँदबाई, सरदारबाई, मिश्रीबाई, उमरावबाई आदि (ये सब मन्दिरमार्गी थी) के साथ एक बार आप इमलीवाले उपाश्रय मे (यह वर्तमान मे विचक्षण भवन के नाम से प्रसिद्ध है) जहाँ स्वनामधन्या पुण्यश्री जी म अपने शिष्या समुदाय के साथ विराजते थे, उनके दर्शन-वन्दन हेतु गयी। उनकी तेजस्वी, शात मुखमुद्रा को देखकर आप बहुत प्रभावित हुई। फिर तो आप नित्य ही जाने लगी।

इसी प्रकार एक बार, जब आप ५ वर्ष की ही थी, अपने पिताजी के साथ, जयपुर मे ही विराजित खरतरगच्छीय परम आगमज्ञ योगिराज शिवजीरामजी म के दर्शनार्थ गयी। आपको देखकर योगिराज के मुख से उद्गार निकले—

---

1. पुरुष यति के समान स्त्री यतिनी होती थी। अब तो नामशेष हो चुकी है।

"सेठ सा० आपकी यह कन्या तो बडी भाग्यशालिनी है। इसकी शालीनता और शुभलक्षणो को देखकर ऐसा अनुभव होता है कि आगे चलकर यह कुलदीपिका धुरन्धर विदुषी साध्वी बनेगी और शास्त्रज्ञा बनकर ख्याति प्राप्त करती हुई उच्च पद पर प्रतिष्ठित होगी।"

योगिराज के ये उद्गार आज अक्षरश सत्य सिद्ध हो रहे हैं।

ओत-प्रोत धार्मिकता—यद्यपि चरितनायिका सज्जनकुमारी का बचपन वैभव मे व्यतीत हो रहा था, घर मे सभी प्रकार की सुविधाएँ थी, माता-पिता का अत्यधिक वात्सल्य था, फिर भी सज्जन-कुमारी का जीवन धार्मिकता से ओत-प्रोत था। वह अपने स्वीकृत व्रत-नियमो का दृढ़ता से पालन करती थी। धर्म का जीवन मे प्रमुख स्थान था। इसीलिए ९ वर्ष की आयु मे ही उसने दीक्षा लेने की भावना प्रगट की थी, जिसे सुनकर पिताश्री गुलाबचन्द जी सा० गहरे विचारो मे डूब गये थे।

विवाह—मोह की बडी विचित्र विडम्बना है। यद्यपि गुलाबचन्दजी धार्मिक थे, धर्म के मर्म को जानते थे, बारहव्रती श्रावक थे, फिर भी पुत्री के प्रति अत्यधिक प्रेम था। वे पुत्री को दीक्षित होते देखना नही चाहते थे। पुत्री-प्रेम के प्रवाह मे उनका चिन्तन दूसरी ओर मुड गया। सोचा—इसका विवाह कर देना चाहिए। गृहस्थी मे फँसकर यह साध्वी बनने की बात भूल जायेगी। घर मे रहकर ही जितनी संभव होगी, धार्मिक साधना करती रहेगी।

आज के युग मे ९ वर्ष की कन्या के विवाह के बारे मे कोई सोच भी नही सकता। ऐसी बात कहने वाले को भी आज के युग मे दकियानूसी और पुराणपंथी कहा जायेगा। बहुत से लोग उसका मजाक भी बना सकते है, लेकिन उस युग मे यह आम प्रथा थी। सात, यहाँ तक कि पाँच वर्ष तक की कन्याओ के विवाह कर दिये जाते थे। मनु के ये शब्द जन-मानस मे गहरे पैठ चुके थे—

नव वर्षा भवेद् गौरी दश वर्षा च रोहिणी

सभी उच्चकुलीन व्यक्ति अपनी नववर्षीया पुत्री को विवाह-बंधन मे बाध देना अपना कुल-गौरव समझते थे।

इसके विपरीत आज के युग मे विवाहयोग्य आयु २० वर्ष से ऊपर मानी जाती है। स्त्री-शिक्षा के प्रसार के कारण कन्या की शैक्षिक योग्यता कम-से-कम बी० ए० है। उससे पहले माता-पिता उसके विवाह की बात भी नही सोचते, उसे स्वय विवाहयोग्य ही नही समझते। स्वयं कन्याओं की भी ऐसी ही विचारधारा है।

लेकिन श्री गुलाबचन्दजी जिस युग मे जी रहे थे, उसी युग से प्रभावित थे। अत वे भी अपनी पुत्री सज्जनकुमारी, जो अभी नौ वर्ष की ही थी, उसका विवाह करना अपने कुल-गौरव के अनुरूप ही समझते थे।

इसके अतिरिक्त सज्जनकुमारी की दीक्षा लेने की भावना ने उन्हे और भी उत्प्रेरित कर दिया। उन्होने अपनी पुत्री का विवाह शीघ्र कर देने का निर्णय कर लिया।

निर्णय के अनुसार पडितजी को सज्जनकुमारी की जन्म-पत्रिका दिखाई गई।

एक प्रसिद्ध पडित द्वारा बताया गया जन्म कुण्डली का फलादेश

शुभ स० १९६५ वैक्रमीये वैशाख शुक्ला १४ शुक्रवासरे सूर्य स्पष्ट १-२ इष्ट घटी ५३/२३ समये मीन लग्ने विशाखा नक्षत्रे तृ० चरणे जन्म ।
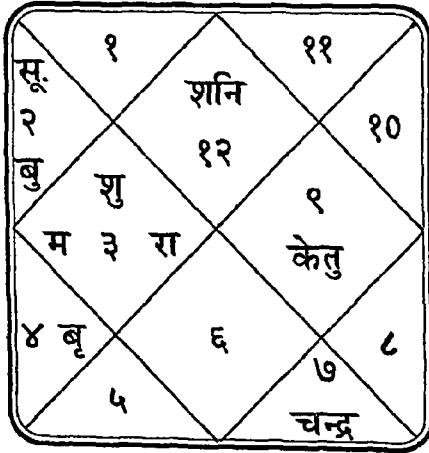
दीक्षा योग—गुरु शनि का त्रिकोण योग—त्याग-वृत्ति वैचारिक शक्ति अर्थात् सोचने-समझने की विशेष शक्ति ।

बुध शुक्र स्थान परिवर्तन योग—तीव्रज्ञान, सौली-सीटर जैसा बुद्धिमान । सूर्य आत्मवल का प्रतिनिधि है उम पर शनि की पूर्ण दृष्टि होने से सर्वत्याग की भावना तथा सोचने समझने की बुद्धि होती है । दशमेश उच्च का है । उस पर शनि की त्रिकोण दृष्टि है तथा दशम भाव पर पूर्ण दृष्टि है यह योग भी वैराग्यकारक है ।

चन्द्रमा से दशम स्थान मे उच्च राशि का गुरु है इससे उच्च श्रेणी का आत्मिक कार्य करने वाला होता है ।

लेखन कला योग—तीसरा स्थान लग्न मे स्थित शनि से दृष्ट है तथा उसमे 'बुध' बैठा है अत वह लेखनकला मे कुशल बनाता है ।

शासन-सत्ता योग—चन्द्रमा लग्नेश को देखता है तथा तृतीयेश पर भी दृष्टि है । तृनीयेश मगल गृह के साथ है तथा तीसरे चौथे स्थान के स्वामियो का परस्पर परिवर्तन योग है अत शासन सत्ता योग बनता है । शनि गुरु की राशि मे व गुरु की ही दृष्टि मे होने से महान् तीव्र अध्यात्मज्ञान और कलाओ पर स्वामित्व प्राप्त कराता है । शासन सत्ता का भी महान् योग करता है ।

शिष्यादि का योग—गुरु शनि का त्रिकोण योग, व्ययेश पर गुरु की दृष्टि होने से शिष्यादि का योग तथा शास्त्रवेत्ता योग करता है । तृतीयेश का केन्द्र मे और चतुर्थेश का पराक्रम मे परिवर्तन योग होने से महान् धैर्य और समाधि योग होता है ।

आगम ज्ञान—लाभेश पर गुरु की दृष्टि और लाभेश शनि तथा लग्नेश गुरु का त्रिकोण योग । सुखेश पर मोक्षेश की दृष्टि महान् उपदेशक व महान् ज्ञानी बनाती हैं तथा ब्रह्मचर्य मन का धैर्य महान् समाधिधारक दृढश्रद्धाशील तथा उद्यमी बनाती है ।

आत्मबल योग—मगल धनेश और भाग्येश होकर केन्द्र मे तृतीयेश के साथ बैठा है यह योग आत्मबली मनोभिष्ट कार्य सिद्ध करने वाला तथा महान् आत्मबली बनाता है ।

उच्चपद तथा दीर्घायु योग—शख योग—लग्नेश और दशमेश त्रिकोण मे दीर्घायु और उच्चपद कारक है ।

साहित्यिक अनुसधान करने वाला, वाक्चातुर्य, न्यायज्ञाता बनाता है।

गुरु की दृष्टि शनि पर होने से आगमो को जानने वाला, न्यायशास्त्रो का ज्ञाता और सौलीसिटर जैसा प्रभावशाली व वाक्चातुर्य से युक्त बनाता है।

इस प्रकार ज्योतिषी द्वारा बताये गये सभी फलादेश गुरूवर्याश्री के जीवन मे फलीभूत होते हुए देखे जा रहे है।

× × × ×

पडितजी ने उक्त जन्म-पत्रिका पढी, ग्रह-गोचर लग्न आदि देखे, जन्म कुण्डली पर गौर किया और गम्भीर चिन्तन मे डूब गये। उनके मस्तक पर गम्भीरता की रेखाएँ उभर आई।

पडितजी की गम्भिर मुखमुद्रा को देखकर श्री गुलाबचन्दजी चिन्तित हो गये, उनका उद्विग्न स्वर निकला—

"क्या बात है पडितजी! आप गम्भीर कैसे हो गये? पुत्री की जन्म-कुण्डली मे कुछ अशुभ है क्या?

पडितजी ने गम्भीर स्वर मे कहा—

"अशुभ तो कुछ भी नही, सब शुभ ही शुभ है। ग्रह तो सभी उत्तम है, ऐसी जन्म-पत्री तो विरलो की ही होती है। आपकी पुत्री अवश्य ही तेजस्वी, यशस्वी बनेगी।"

"फिर आपकी गम्भीरता का क्या कारण है?" गुलाबचन्दजी की उद्विग्नता अब भी कम नही हुई थी।

"गम्भीरता वा कारण है।" पडितजी ने कहा—"आपने जिस इच्छा से मुझे यह जन्म-पत्रिका दिखाई है, उसमे मुझे कुछ बाधा दिखाई दे रही है।"

"तो क्या पुत्री का विवाह नही होगा?" गुलाबचन्दजी के मुख से अनायास ही ये शब्द निकल गये क्योकि उनके मस्तिप्क में सज्जनकुमारी की दीक्षा-भावना तैर गई थी।

"स्पष्ट ही सुनना चाहते हो तो सुनो।" पडितजी ने कहा—"तुम्हारी पुत्री मगलीक है। इसलिए इसका विवाह मगलीक लडके के साथ करना उचित रहेगा। किन्तु फिर भी मगल दाम्पत्य-सुख मे बाधा तो देगा ही। फिर भी घबराने की बात नही है, आप मगलीक लडके की ही खोज करे। सब कुछ मगल होगा।"

पडितजी इतना कहकर चले गये और श्री गुलाबचन्दजी मगलीक लडके की खोज मे जुट गये।

२ वर्ष के अनवरत प्रयास के वाद जयपुर के ही स्व० दीवान श्री नथमलजी सा गोलेच्छा[1] के पौत्र एव श्री सौभागमलजी के सुपुत्र श्रीमान् कल्याणमलजी की जन्म-पत्री सज्जनकुमारी की जन्म-पत्री से अच्छी मिली।

निराशा-हताशा की घडियाँ समाप्त हुईं। प्रसन्नता का वातावरण वन गया। यथेप्ट दान-दहेज, स्वागत-सत्कार के साथ १२ वर्षीय सज्जनकुमारी का विवाह श्री कल्याणमलजी के साथ कर दिया गया। सज्जनकुमारी बहू वनकर ससुराल मे पहुँच गईं गृहलक्ष्मी के रूप मे।

नया घर, नया वातावरण, अपरिचित लोग—यही सव कुछ मिलता है नववधू को ससुराल मे। इन्ही लोगो और वातावरण के साथ उसे घुल-मिल जाना पडता है, जिस व्यक्ति को पहले कभी देखा तक नही उसे सर्वस्व समर्पण करके उसके व्यक्तित्व के साथ एकाकार होने मे ही नववधू की सार्थकता है।

---

१. गोलेच्छा परिवार का परिचय जीवन-वृत्त के परिशिप्ट मे देखें।

इस समामेलन, समायोजन और समर्पण मे ससुराली जनो का सहयोग अपेक्षित होता है। वे यदि प्रेम से, वात्सल्य और प्यार से नववधू को अपनावे, सास वहू को पुत्री से बढकर माने, ननद उसे अपनी बहन जैसा प्यार दे, ससुर अपनी पुत्री माने तभी सुखद वातावरण बनता है। साथ ही नववधू भी अपनी विनय, शालीनता, कर्तव्यपरायणता, शिष्ट-मिष्ट वाणी से ससुरालीजनो के हृदय मे अपना स्थान बनाती है।

ये सब गुण सज्जनकुमारी को माता की जन्म घूटी के साथ ही मिल गये थे और १२ वर्ष तक उनका सिंचन-सवर्धन होता रहा था। अत वह शीघ्र ही ससुराल के परिवारी जनो मे घुल-मिल गयी। सभी उसकी प्रशसा करते थे।

पारिवारिक कर्तव्यो के साथ-साथ सज्जनकुमारी अपने स्वीकृत व्रत-नियमो का दृढता से पालन करती थी, किन्तु उसका व्रत-नियम-पालन उसके पतिदेव को अच्छा नहीं लगता था। वे व्रत-नियम छोडने के लिए कहते, पर सज्जनकुमारी यद्यपि जवाब तो न देती, पर टाल जाती, धर्माचरण न छोडती। इस पर पतिदेव जब उग्र हो जाते तो सज्जनकुमारी का हृदय व्यग्र हो जाता, मन मे वैराग्य-भावना भर जाती, पर अपनी भावना को प्रगट न करती क्योकि इससे परिवार मे सक्लेश का वातावरण बन सकता था, जिसे सज्जनकुमारी नही चाहती थी।

कोटा मे निवास और विचार-परिवर्तन—विवाह के एक वर्ष पश्चात् आप किसी कार्यवश अपने सपूर्ण परिवार के साथ अपनी भूआसासुजी के घर कोटा गये। भूआसासुजी सेठानी श्री उमराव कुँवरबाई सा० थी। ये सेठ श्रीनथमलजी की पुत्री और कोटा के प्रसिद्ध रायबहादुर की पदवी से विभूषित माननीय सेठ केसरीसिह जी बाफना[1] की धर्मपत्नी थी। ये मदिरमार्गी आम्नाय को मानती थी।

भूआसा० ने कल्याणमलजी को काम सीखने के लिए अपने पास रख लिया, फलत सज्जन-कुमारी को भी भूआसा० के पास रहने का अवसर प्राप्त हो गया।

भूआसा० अपने धर्म क्रियाओ मे बहुत ही चुस्त और दृढ थी। उनके घर का खान-पान, रहन-सहन सात्विक था, वातावरण भी धर्ममय था। भूआसा० का व्यक्तित्व काफी प्रभावशाली था। घर मे तो उनका प्रभाव था ही, समाज मे भी काफी प्रभाव था, उनकी इच्छा को ही आज्ञा मानकर शिरो-धार्य किया जाता था।

चरितनायिका को वहाँ का वातावरण और भूआसा० का स्वभाव बहुत पसद आया। इसके अतिरिक्त चरितनायिका सज्जनकुमारी की रुचि जमने का एक और भी कारण था, वह था नदकुँवर बाई सा०।

नदकुँवरबाई सा० श्री सज्जनकुमारीजी की हमउम्र (समवयस्क) थी। उनका विवाह सज्जनकुमारीजी के विवाह के दो महीने बाद हुआ था। ये सेठ केसरीसिहजी की द्वितीय पत्नी थी। यह विवाह स्वय उमरावकुँवरजी ने आग्रह करके कराया था। कारण यह था कि उमरावकुँवरजी के दो पुत्र हुए किन्तु उनमे से जीवित कोई न बचा। तदुपरान्त दीर्घकाल तक कोई सन्तान नही हुई। सतान-प्राप्ति के लिए स्वय उमरावकुँवरजी ने आग्रह करके नदकुँवर का विवाह अपने पति सेठ केसरीसिहजी के साथ कराया।

समवयस्क होने के कारण सज्जनकुमारीजी और नदकुँवरजी मे पारस्परिक प्रेम हो गया।

---

१ बाफना परिवार का परिचय परिशिष्ट मे दिया गया है।

मनमौजी भोला सा बचपन।
कितना सहज मधुर मन भावन ॥

८ वर्षीय बाल्यावस्था मे पिताश्री ने बडे प्यार दुलार से तारा सुलमा जडी टोपी पहनाकर सज्जनकवर को गब्जी नाम से पुकारा था।

अखण्ड सौभाग्यवती श्रीमती सज्जनकुमारी गोलेछा

दीक्षा पूर्व वैराग्य अवस्था का चित्र

जन्म वि स १९६५, वैशाख पूर्णिमा

दीक्षा वि. स १९९६, आषाढ शुक्ला २, बुधवार

अपनी शिक्षागुरु ज्ञान-ध्यान निरत श्री उपयोग श्री जी महाराज के साथ
प्रवर्तिनी सज्जन श्री जी महाराज

उस समय पूज्य सुमतिसागरजी म० सा० और श्री मणिसागरजी म० सा० कोटा मे ही विराजते थे। कारण था—आगम, शास्त्रादि की उचित मुद्रण व्यवस्था हेतु एक जैन प्रेस की स्थापना करवाना।

उमरावकुँवरबाई ने सेठसाहब से नई सेठानी नदकुँवरबाई को धर्म सिखाने का आग्रह किया तो उन्होने जयपुर विराजित पूज्य प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्री जी म० सा० और पूज्य श्री उपयोगश्री जी म० सा० आदि साध्वियो से कोटा पधारने की विनती की।

सेठसाहब की विनती को सम्मान देकर साध्वीवृन्द कोटा पधारी। साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविका—चतुर्विध सघ के एकत्रीकरण से धर्म की गगा बहने लगी। चातुर्मास मे खूब धर्म-ध्यान-तपस्या आदि हुए। साधु-साध्वियो के प्रवचनो से प्रेरित होकर लोगो ने अनेक प्रकार के व्रत-प्रत्याख्यान-नियम आदि ग्रहण किये।

सेठानी उमरावकुँवरबाई अपने साथ नई सेठानी नन्दकुँवरबाई और सज्जनकुमारीजी को लेकर व्याख्यान आदि मे जाती थी। गुरुदेव और गुरुवर्या की अमृतोपम वाणी ने सभी कोटा निवासियो को आकर्पित/प्रभावित किया। सज्जनकुमारीजी और नदकुँवरजी तो विशेष रूप से प्रभावित थी। इन्हे पुण्यलाभ का विशेष अवसर प्राप्त हुआ था।

ज्ञानश्रीजी म० सा० तो ज्ञान की आगार और क्षमता, समता व सरसता की प्रतिमूर्ति ही थी। पूज्य उपयोगश्री जी का अग सौष्ठव अनुपम था, उनकी प्रवचन-कला मे जादू था, वाक्चातुर्य अनूठा था और कठ इतना सुरीला था कि श्रोतागण मत्रमुग्ध हो जाते थे।

गुरुवर्या के इन गुणो से सज्जनकुमारीजी बहुत प्रभावित हुई और उनसे धार्मिक अध्ययन करने की इच्छा करने लगी।

सज्जन व्यक्ति की कोई भी सदिच्छा अपूर्ण नही रहती, स्वय ही ऐसे निमित्त मिल जाते है कि उनकी इच्छा पूरी हो ही जाती है। हमारी चरितनायिका की इच्छा भी पूरी होने मे निमित्त बनी भूआ सा० उमरावकुँवरबाई।

उमरावकुँवरबाई ने पूज्यश्री से निवेदन किया—महाराजसा० नई सेठानी (नन्दकुँवरबाई) और मेरे भतीजे की बहू (सज्जनकुमारी) को धर्म सिखाने की कृपा करे। भतीजे की बहू तेरापथियो की लडकी है, थोकडे बोल आदि तो याद है, किन्तु मदिरमार्गी धर्म से अनभिज्ञ है। उसकी मदिर तथा पूजा आदि के विधि-विधानो मे श्रद्धा जागृत हो जाये ऐसी कृपा करें।

महाराजश्री ने स्वीकृति दी। दूसरे दिन से ही नन्दकुँवरबाई और सज्जनकुमारीजी का धार्मिक अध्ययन शुरू हो गया।

सज्जनकुमारीजी मे जिज्ञासावृत्ति तीव्र थी। वह गुरुवर्याश्री के सामने इस प्रकार की जिज्ञासाएँ रखती—

मदिर शाश्वत है या अशाश्वत ?
धर्म मे इतने मतभेद क्यो है ?
क्रियाओ तथा विधि-विधान मे अन्तर क्यो है ?
यद्यपि शास्त्र (आगम) सबके एक है पर मान्यताओ मे इतना अन्तर क्यो है ?

इसी प्रकार की अन्य जिज्ञासाएँ भी आप रखती और गुरुवर्याश्री शास्त्रीय उदाहरणो द्वारा उनका समाधान करती।

साध्वीजी के बताए अनुसार आपने कई ग्रन्थो का अध्ययन करके नदीश्वर दीप, शाश्वत प्रति-

माओ, मेरु पर्वतो आदि का ज्ञान प्राप्त किया। परिणामत मन्दिर, जिनदर्शन-वन्दन, प्रतिमा-पूजन आदि के प्रति आपकी दृढ श्रद्धा बन गई।

गुरुवर्याश्री से आपने स्वत प्रेरित होकर मदिर-मार्गी सामायिक-प्रतिक्रमण तथा जिन-प्रतिमा-दर्शन-वन्दन-पूजन विधि विस्तार से सीखी और उसी के अनुसार सामायिक आदि करने लगी। जिन-प्रतिमा-दर्शन-वन्दन-पूजन आपके जीवन के नित्य-नियम बन गये।

आपने गुरुवर्याश्री से सप्तस्मरण, गौतमरास, शत्रुजयरास आदि भी सीखे और इन्हे जब आप प्रात सेठानी उमरावकुँवर बाईसा० को सुनाती तो वे हर्ष-विभोर हो जाती।

इस प्रकार धार्मिक क्रियाओ और पारिवारिक सुमेल मे दो-ढाई साल कब बीत गये, पता ही नही चला।

किन्तु अचानक इस व्यवस्था मे परिवर्तन आया। हुआ यह कि उमरावकुँवरबाईजी एकाएक ही अस्वस्थ हो गई, चिकित्सा के लिए जयपुर लाना पडा। आप भी इनके साथ जयपुर आ गई। चिकित्सा प्रारभ हो गई।

उन दिनो (वि० स० १९८० मे) जयपुर पूज्याश्री हुलासश्री जी म० सा० तथा पूज्या श्री चम्पाश्री जी म० सा० (महत्तरा पद पर इनका इसी वर्ष स० २०४५ मे स्वर्गवास हो गया है) इमली वाले उपाश्रय मे विराज रहे थे। सेठानीजी की अस्वस्थता के बारे मे सुनकर दर्शन देने पहुँचे। सेठानी जी की भावना को मान देकर प्रतिदिन दोनो साध्वीश्री दर्शन देने आती और मागलिक सुनाती।

कुछ तो श्रद्धापूर्वक मागलिक श्रवण का प्रभाव और कुछ समुचित चिकित्सा का असर सेठानी जी के स्वास्थ्य मे दिनोदिन सुधार आने लगा। स्वास्थ्य सुधर जाने पर भी चिकित्सको ने कुछ दिन और आराम करने का सुझाव दिया।

भूआसा० की प्रेरणा से आप इमली वाले उपाश्रय मे जाने लगी तथा प्रतिक्रमण आदि सीखने लगी। आठ दिन मे राइ देवसी प्रतिक्रमण सीख लिया, एक दिन मे ही भक्तामर स्तोत्र, २ दिन मे अजित शान्ति, डेढ (१-१/२) दिन मे बडी शान्ति सीख ली। इनके अतिरिक्त जो भी पाठ शेष थे, वे भी अत्यन्त अल्प समय मे सीख लिए।

आपकी तीव्र स्मरण शक्ति, शालीन स्वभाव, शिष्ट व्यवहार आदि से गुरुवर्या पू० श्री हुलासश्री जी म० सा० तथा पूज्य श्री चम्पाश्री जी म० सा० बहुत प्रभावित हुई। वे परस्पर विचार करती-सज्जनकुमारी दीक्षा लेने योग्य है। इस जैसी बुद्धिशालिनी और प्रतिभाशालिनी दीक्षा ले ले तो जैन शासन मे चार चाँद लग जाये।

यदा-कदा ये शब्द सज्जनकुमारीजी के कानो मे भी पड जाते। उनकी सुप्त वैराग्य-भावना पुन अगडाई लेने लगी। मात्र सोलह वर्ष की अवस्था मे ही दीक्षा लेने को आप आतुर हो गई।

किन्तु अभी समय परिपक्व नही हुआ था, काललब्धि नही आई थी, प्रत्याख्यानीकषाय का क्षयोपशम नही हुआ था, अत दीक्षा की बात तो दूर, धार्मिक क्रियाओ मे भी अन्तराय आ गया।

हुआ यह कि भूआसा० तो स्वस्थ होकर कोटा लौट गई और आप जयपुर मे ही रह गई। आपके सास-ससुर और पतिदेव ने मन्दिर आना-जाना तो बन्द किया, धार्मिक क्रियाओ पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। आपका मन्दिर, उपाश्रय जाना बन्द हो गया।

इस स्थिति मे आपश्री को दुख तो हुआ पर मन मे यह सोचकर कि अभी निकाचित चारित्र-मोहनीय का उदय चल रहा है—मन मे समता धारण कर ली। परिवार की शान्ति के लिए आपने मौन का आश्रय लिया।

अत गृहकार्य से निवृत्त होकर आप भी सूत्र स्वाध्याय मे प्रवृत्त हो जाती। आपके पिताजी के यहाँ अमोलकऋषिजी महाराजकृत सूत्रो के हिन्दी अनुवाद की प्रतियाँ थी, वे सव भी आपने पढी। इनसे आपका ज्ञान और गम्भीर हुआ।

तप-अभ्यास—ज्ञानाभ्यास से आप तप की महिमा से भी परिचित हो गई थी। दशवैकालिक मे तो धर्म को अहिंसा, सयम और तप रूप ही बताया है। आप जानती थी कि कर्मों की निर्जरा मे तप वहुत सहायक होता है, इसी से कर्मो की निर्जरा होती है। तप से ही आध्यात्मिक परिपूर्णता की सिद्धि होती है।

आपके मानस मे विचार उभरे—मेरा अन्तराय कर्म चल रहा है, चारित्रमोहनीय प्रवल है, तभी तो मेरी दीक्षा-भावना सफल नही हो रही है, अत तप करना चाहिए जिससे कर्मो के वन्धन शिथिल हो और दीक्षा के भाव सफल हो।

अत आपश्री ने कई प्रकार की तपाराधना की। यथा—उपधान तप, नवपद ओली, विंशति स्थानक तप, पक्खवासा, सोलिया, मासक्षमण, कल्याणक एव वर्षीतप।

आप नवपद ओली की महिमा से तो परिचित थी ही। अत इस तप की आराधना प्रारम्भिक आयु मे ही शुरू कर दी थी। शहर मे साध्वीजी महाराज होते तो उनके पास चली जाती अन्यथा मदिर मे ही अन्य साधर्मी बहनो के साथ नवपद ओली की साधना शुरू कर देती। इस प्रकार १८-१६ ओलियाँ हो चुकी थी।

वि स १६६४ मे पूज्या प्रवर्तिनी श्रीज्ञानश्रीजी म० मा० उपयोगश्रीजी म० सा० का अपनी शिष्या समुदाय के साथ जयपुर चातुर्मास हुआ। उनकी निश्रा मे नवपद की ओलियाँ आपने बडी धूमधाम से सपन्न की।

वि० स० १६६६ मे पुन तपस्याओ की लहर आई। कारण था—पूज्या प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी म० सा०, उपयोगश्रीजी म० सा० अपनी गुरुवहिनो के साथ जयपुर मे विराज रही थी। वे धार्मिक क्रियाओ—तपस्या आदि के लिए प्रेरणा देती रहती थी।

फाल्गुन चौमासी का प्रतिक्रमण चल रहा था। अन्तिम कायोत्सर्ग के पश्चात् साध्वीजी ने वर्षी तप की प्रेरणा दी। भावना ने साकार रूप लिया। वहनो की प्रार्थना पर वहाँ विराजित ८ साध्वीजी (पू श्री समर्थश्री जी म सा, श्री चरणश्री जी म सा, श्री इन्द्रश्री जी म सा, सत्प्रेरिका श्री उपयोगश्री म सा., श्री सुमनश्रीजी म सा, श्री जीवनश्रीजी म सा, श्री विचित्रश्रीजी म सा एव वीरश्रीजी म सा) ने भी वर्षी तप करने का निश्चय किया। सोने मे सुहागा हो गया। साथ ही लगभग ४०-४५ श्राविकाएँ भी तैयार हो गई।

चरितनायिका श्री सज्जनकुमारीजी भी उपाश्रय जाती रहती थी। आपको वर्षी तप की बात ज्ञात हुई तो आपने भी वर्षी तप करने की भावना पतिदेव और सासूजी के समक्ष रखी। सौभाग्य ही था कि आपको अनुमति मिल गई। प्रसन्नतापूर्वक आप भी वर्षी तप की साधना मे सम्मिलित हो गईं। सभी तपस्वी वहनो की तपाराधना निर्विघ्नतापूर्वक चल रही थी। छह महीने व्यतीत हो चुके थे।

एक वार सभी की भावना वरखेडा तीर्थ के दर्शनो की हुई। यह तीर्थ जयपुर से १० कोस दूरी पर है और यहाँ विराजित ऋषभदेव भगवान् की प्रतिमा तालाव से निकली है। इस भावना को मण्डल की प्रमुखा पूज्या श्री उपयोगश्रीजी के अपनी सहमति प्रदान कर दी। परमभक्त श्राविका श्रेष्ठा अखण्ड सौभाग्यवती मखाणी वाई ने अपने उद्गार व्यक्त किये—वरखेडे का तो छ री पालित सघ निकालना चाहिए। इस पर शिखरु वाई सा० तुरन्त वोल उठी—सघ तो आप जैसी भाग्यशाली ही ले जा सकती हैं।

श्री कल्याणमल जी सा की जीवन रूपी ऊसर मनोभूमि भी धर्म की दृष्टि से उर्वर होने लगी।

उपधान तप—वि स १९९८ मे चारित्रनिष्ठ पूज्य गुरुदेव मणिसागरजी म सा एव बालमुनि श्री विनयसागरजी म सा जयपुर सघ की आग्रह भरी विनती को स्वीकार कर चातुर्मास हेतु जयपुर पधारे। धूमधाम से नगर-प्रवेश कराया गया।

आपश्री के अमृतोपम जोशीले प्रथम प्रवचन ने धर्मध्यान की सुरसरि ही प्रवाहित कर दी, जनता वहुत प्रभावित हुई। यहाँ तक कि कभी प्रवचनो मे न आने वाले सेठ सा श्री कल्याणमलजी भी प्रतिदिन प्रवचनो मे आने लगे। इतना आकर्षण था म सा श्री के प्रवचनो मे।

चातुर्मास के प्रारम्भ मे ही धर्मनिष्ठ श्रावको ने महाराज साहब से उपधान तप करवाने की प्रार्थना की। महाराज साहब ने स्वीकृति के देने के साथ ही श्रावको से पूछ लिया—इस तप की आराधना के लिए आप लोगो ने कहाँ और कैसा स्थान चुना है ?

श्रावकगण अभी स्थान के बारे मे सोच ही रहे थे कि सेठ कल्याणमल जी सा ने तुरन्त खडे होकर विनम्रस्वर मे कहा—भगवन! उपधान तप का कार्यक्रम विधि-विधान आदि कटले मे (जहाँ उनकी वहुत लम्बी-चौडी जगह थी और वही वे निवास भी करते थे—वर्तमान मे इस जगह पर अग्रवाल कॉलेज है) हो तो बहुत सुन्दर रहे। मै अपने को बहुत सौभाग्यशाली समझूँगा।

सेठ कल्याणमलजी के इन शब्दो को सुनकर सभी उपस्थित जन चकित रह गये—जो व्यक्ति कुछ दिन पहले तक धर्म के नाम से ही दूर भागता था, वह ऐसी प्रार्थना कर रहा है। खैर, सघ ने सहमति दी और महाराज साहव ने अनुमति दे दी। सेठ कल्याणमलजी हर्षित हो गये और उपधान के लिये तैयार भी।

घर पहुँचे और परिवारीजनो को यह सब बताया तो पहले तो किसी को विश्वास ही नही हुआ और जब विश्वास हुआ तो सभी हर्षित हुए। सज्जनकुमारीजी के तो हर्ष का ठिकाना ही न रहा, अपने पति की इस वदली हुई प्रवृत्ति को देखकर।

मनुष्य की प्रवृत्ति को वदलते देर नही लगती, चाहिए सिर्फ प्रेरक निमित्त। सेठ सुदर्शन का निमित्त पाकर हत्यारा अर्जुनमाली वदल गया और भगवान महावीर की सगति से मुक्त भी हो गया।

वास्तविक स्थिति यह है कि मनुष्य मे विल पावर (इच्छा शक्ति) प्रबल होनी चाहिए। यह शक्ति होती तो सवमे है, पर सुप्त, अर्धसुप्त दशा मे पडी रहती है। जैसे ही कोई प्रबल निमित्त मिला कि यह शक्ति जागृत हो जाती है। पू मणिसागरजी म सा के रूप मे ऐसा ही प्रबल निमित्त सेठ कल्याणमलजी को मिला और उनकी प्रवृत्ति भी धर्माभिमुखी हो गई।

आसोज शुक्ला १० के मगलमय शुभ दिवस मे पू गुरुदेव मणिसागरजी म सा, बालमुनिश्री विनयसागरजी म सा तथा तत्रस्थ विराजित जाप परायण प्र महोदया श्री ज्ञानश्री जी म सा, मधुर गायिका पू श्री उपयोगश्रीजी म सा, जैन कोकिला पू श्री विचक्षणश्रीजी म सा आदि की पावन निश्रा मे उपधान तप शुरू हो गया। सेठ कल्याणमलजी ने भी अपनी धर्मपत्नी श्री सज्जनकुमारीजी के साथ उपधान तप शुरू कर दिया।

उपधान तप एक कठिन तपस्या है। इसमे ५१ दिन तक एक दिन उपवास और दूसरे दिन एकासना किया जाता है।

यद्यपि तप करने और कराने वाले सभी प्रसन्न थे, किन्तु चकित भी थे। चकित होने का कारण थे—सेठ कल्याणमलजी। वे लोग सोचते—जो व्यक्ति कभी नवकारसी भी नही करता, रात्रि भोजन का भी जिसे त्याग नही, ऐसा व्यक्ति कैसे इस कठिन तपस्या को पार लगायेगा ? लेकिन कल्याणमलजी ने सफलतापूर्वक उपधान तप की साधना तो की ही, साथ ही एक दिन का भोजन भी आपकी ओर से हुआ।

इसीलिए कहा गया है कि सन्तसगति काँच को भी हीरा बना देती है। मानव को सदा ही ज्ञानियो की, चारित्रात्माओ की सगति करनी चाहिए।

उपधान तप की पूर्णाहुति के दिन निकट आने लगे। अठाई महोत्सव, महापूजनादि शुरू हुए। स्थानीय भजन-मण्डलियो ने प्रभु-पूजा-भक्तिपूर्ण सहयोग दिया। अन्तिम दिन कटले के विशाल प्रागण मे पू गुरुदेवश्री और पू साध्वीजी म. की निश्रा मे खूब धूमधाम और हर्षोल्लास के साथ उपधानतप सानन्द सम्पन्न हुआ।

आज्ञा-प्राप्ति और भागवती दीक्षा

यद्यपि कल्याणमलजी ने उपधान तप की साधना सफलतापूर्वक कर ली थी, फिर भी वे अभी तक अपनी पत्नी सज्जनकुमारी जी को दीक्षा की अनुमति देने का मन नही बना पाये थे। जब भी सज्जनकुमारी अपनी वैराग्य भावना को व्यक्त करती तो पारिवारिक वातावरण विषम बन जाता।

सज्जनश्री मन ही मन सोचकर रह जाती अभी काल-लब्धि नही आई है, समय परिपक्व नही हुआ है, चारित्रमोह का उदय है, इसीलिए दीक्षा मे अन्तराय है। फिर भी धैर्य उन्होने नही छोडा, यही सोचा धीरे-धीरे वातावरण अनुकूल हो जायेगा। यही सोचकर मन को समझा लेती—

धीरे-धीरे रे मना! धीरे सब कुछ होय।
माली सीचे सौ घडा, ऋतु आये फल होय॥

समय गुजरता रहा, और साथ ही फल आने के आसार दिखाई देने लगे, सम्भावनाएँ नजर आने लगी।

वि स १९९८ के माघ मास मे परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री आनन्दसागरसूरिजी म सा पूज्या प्रवर्तिनी शान्तरसनिमग्ना श्री ज्ञानश्री जी म सा को दर्शन देने जयपुर पधारे। कारण यह था कि श्री ज्ञानश्रीजी म जयपुर मे ठाणापति के रूप मे विराजित थी। परम श्रद्धेय सूरिजी म सा ने श्री सज्जनकुमारीजी की दृढ वैराग्य भावना को जाना तो बहुत प्रसन्न हुए। वे भी सज्जनकुमारीजी की शात, निश्छल, सौम्य स्वभाव, विद्वत्ता, कवित्वशक्ति आदि से पूर्व ही परिचित थे, अत उन्होने भी सेठ कल्याणमलजी को दीक्षा की अनुमति देने के लिए प्रेरणा दी।

जापपरायणा श्री ज्ञानश्री जी म सा, परमोपकारिणी मडलप्रमुखा उपयोगश्रीजी म सा आदि की सद्प्रेरणाओ और सत्प्रयत्नो तथा सेठ केसरीसिहजी बाफना तथा सेठानीजी श्री गुलाबसुन्दरीजी के (भुआ सा) के परिश्रम से सेठ कल्याणमलजी के मानस में परिवर्तन हुआ। उनके मन मे विचार घुमडने लगे—मैने हर सम्भव प्रयत्न करके देख लिया, लेकिन पत्नी की वैरागभावना दृढ है, उसकी सासारिकता मे बिल्कुल भी रुचि नही। कब तक उसे इस तरह रखा जा सकता है ? व्यर्थ है रोकना। मै भी क्यो अन्तराय बांधूँ। अब तक व्यर्थ ही रोकता रहा। ऐसा विचार करके उन्होने दीक्षा की अनुमति दे दी, कहा—

श्री कल्याणमल जी सा की जीवन रूपी ऊसर मनोभूमि भी धर्म की दृष्टि से उर्वर होने लगी।

उपधान तप—वि स १९९८ मे चारित्रनिष्ठ पूज्य गुरुदेव मणिसागरजी म सा एव बालमुनि श्री विनयसागरजी म सा जयपुर सघ की आग्रह भरी विनती को स्वीकार कर चातुर्मास हेतु जयपुर पधारे। धूमधाम से नगर-प्रवेश कराया गया।

आपश्री के अमृतोपम जोशीले प्रथम प्रवचन ने धर्मध्यान की सुरसरि ही प्रवाहित कर दी, जनता बहुत प्रभावित हुई। यहाँ तक कि कभी प्रवचनो मे न आने वाले सेठ सा श्री कल्याणमलजी भी प्रतिदिन प्रवचनो मे आने लगे। इतना आकर्षण था म सा श्री के प्रवचनो मे।

चातुर्मास के प्रारम्भ मे ही धर्मनिष्ठ श्रावको ने महाराज साहब से उपधान तप करवाने की प्रार्थना की। महाराज साहब ने स्वीकृति के देने के साथ ही श्रावको से पूछ लिया—इस तप की आराधना के लिए आप लोगो ने कहाँ और कैसा स्थान चुना है ?

श्रावकगण अभी स्थान के बारे मे सोच ही रहे थे कि सेठ कल्याणमल जी सा ने तुरन्त खडे होकर विनम्रस्वर मे कहा—भगवन ! उपधान तप का कार्यक्रम विधि-विधान आदि कटले मे (जहाँ उनकी बहुत लम्बी-चौडी जगह थी और वही वे निवास भी करते थे—वर्तमान मे इस जगह पर अग्रवाल कॉलेज है) हो तो बहुत सुन्दर रहे। मैं अपने को बहुत सौभाग्यशाली समझूँगा।

सेठ कल्याणमलजी के इन शब्दो को सुनकर सभी उपस्थित जन चकित रह गये—जो व्यक्ति कुछ दिन पहले तक धर्म के नाम से ही दूर भागता था, वह ऐसी प्रार्थना कर रहा है। खैर, सघ ने सहमति दी और महाराज साहब ने अनुमति दे दी। सेठ कल्याणमलजी हर्षित हो गये और उपधान के लिये तैयार भी।

घर पहुँचे और परिवारीजनो को यह सब बताया तो पहले तो किसी को विश्वास ही नही हुआ और जब विश्वास हुआ तो सभी हर्षित हुए। सज्जनकुमारीजी के तो हर्ष का ठिकाना ही न रहा, अपने पति की इस बदली हुई प्रवृत्ति को देखकर।

मनुष्य की प्रवृत्ति को बदलते देर नही लगती, चाहिए सिर्फ प्रेरक निमित्त। सेठ सुदर्शन का निमित्त पाकर हत्यारा अर्जुनमाली बदल गया और भगवान महावीर की सगति से मुक्त भी हो गया।

वास्तविक स्थिति यह है कि मनुष्य मे विल पावर (इच्छा शक्ति) प्रबल होनी चाहिए। यह शक्ति होती तो सबमे है, पर सुप्त, अर्धसुप्त दशा मे पडी रहती है। जैसे ही कोई प्रबल निमित्त मिला कि यह शक्ति जागृत हो जाती है। पू मणिसागरजी म सा के रूप मे ऐसा ही प्रबल निमित्त सेठ कल्याणमलजी को मिला और उनकी प्रवृत्ति भी धर्माभिमुखी हो गई।

आसोज शुक्ला १० के मगलमय शुभ दिवस मे पू गुरुदेव मणिसागरजी म सा, बालमुनिश्री विनयसागरजी म सा तथा तत्रस्थ विराजित जाप परायण प्र महोदया श्री ज्ञानश्री जी म सा, मधुर गायिका पू श्री उपयोगश्रीजी म सा, जैन कोकिला पू श्री विचक्षणश्रीजी म सा आदि की पावन निश्रा मे उपधान तप शुरू हो गया। सेठ कल्याणमलजी ने भी अपनी धर्मपत्नी श्री सज्जनकुमारीजी के साथ उपधान तप शुरू कर दिया।

उपधान तप एक कठिन तपस्या है। इसमे ५१ दिन तक एक दिन उपवास और दूसरे दिन एकासना किया जाता है।

"मेरी ओर से आज्ञा है। ये (पत्नी सज्जनकुमारीजी) अपनी वैराग्य भावना पूर्ण करें, दीक्षा ले और साध्वी बनकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र मे निरन्तर प्रगति करे।"

दीक्षा की अनुमति से सज्जनकुमारी को अत्यधिक हर्ष हुआ, आत्मिक सुखानुभूति हुई। उनकी भावना पूर्ण होने जा रही थी।

मुहूर्त निकलवाया गया दीक्षा का। पडित ने पचाग देखकर आपाढ शुक्ला २ का दिन शुभ वताया। दीक्षा-तिथि का निर्णय हो गया।

तिथि का निर्णय होते ही पूज्यवर्या श्री उपयोगश्रीजी म० सा० ने वैराग्यवती सज्जनकुमारी को साधु प्रतिक्रमण प्रारम्भ करवा दिया, जिसे अपनी कुशाग्रबुद्धि से चरितनायिका ने ५-६ दिन मे ही पूर्ण कर लिया और ३६० गाथाओ का पाक्षिक सूत्र केवल २ ही दिन मे पूर्ण कर लिया।

अब आपके पितगृह तथा ससुराल मे दीक्षा की तैयारियाँ होने लगी। आपके साथ ही वैरागिन चौथीवाई कोचर की भी दीक्षा थी।

आखिर दीक्षा दिवस आ ही पहुँचा। सज्जनकुमारी के लिए आज सोने का सूरज उगा था। उनके हृदय मे ऐसी खुशी थी जैसे अमूल्य मणि मिल गई है। उनकी रोम राजि विकसित थी। रग-रग से वैराग्य का दिव्य रस छलक रहा था।

प्रातकालीन नित्य नैमित्तिक क्रियाएँ, यथा—सामायिक, प्रतिक्रमण, माला, पाठ-सप्तस्मरण, भक्तामर आदि करके तथा सासारिक रीति-रिवाजो से निवृत हो, स्नान आदि से स्वच्छ बन, अपने निवास स्थान पर ही दीक्षोपलक्ष्य मे स्वय अपने द्वारा बनवाये हुए लघु देरासरवत् नूतन जिनमन्दिर मे पूजा हेतु पधारी। आज द्रव्य-पूजा का आखिरी दिन था। अत वहुत ही भक्तिभाव और उल्लास के साथ स्नात्र पूजा सहित अष्ट प्रकारी पूजा की। उसके पश्चात् चैत्यवन्दनादि भाव-पूजा से भी निवृत्त हुई।

वरघोडे की तैयारियाँ हो रही थी। हाथी, घोडे, बैडबाजो व गीतो की मधुर ध्वनियो व मडल आदि से वरघोडे की शोभा मे चार चाँद लग रहे थे। धर्मशाला मे वरघोडा प्रारम्भ हुआ।

वैरागिन सज्जनकुमारी तथा चौथीवाई शिविकाओ मे विराजमान थी। दोनो ओर चमर ढुलाए जा रहे थे। उदार हृदय से वर्षीदान देती हुई आगे बढती जा रही थी। हजारो लोग आकर्षित और चकित थे। जैनेतर लोग तो वहुत ही आश्चर्य कर रहे थे। सभी ओर से अहोधन्य, अहोधन्य की गूँज हर्षित हृदय से निकल रही थी। लोग मुक्तकण्ठ से जैनशासन की अनुमोदना करके पुण्य लाभ ले रहे थे।

जुलूस जौहरी वाजार से होकर नथमलजी (नथमलजी सज्जनकुमारी के दादा ससुर साहब का नाम था) के कटले मे पहुँचा। हजारो लोग इकट्ठे हो गये, क्योकि लोगो के लिए दीक्षा का प्रसग नया ही था। सभी लोग देखने के लिए लालायित थे। कटले का विशाल प्रागण जनमेदिनी से खचाखच भर गया। जयपुर के आस-पास के लोग भी आये थे। शामियाना खचाखच भर जाने से लोग वृक्षो पर बैठे थे, इस आशा के कि सम्पूर्ण दृश्य दिखाई दे।

पूर्व दिशा में लगभग दो फुट ऊँचा, लम्वा-चौडा, स्टेज वना हुआ था। उसके ठीक वीचोवीच भगवान का समोसरण था। ठीक उसके सामने पूज्य गुरुदेव मणिसागरजी म० सा० एक ऊँचे पट्टे पर विराजित थे। उसी ओर एक पडे पट्टे पर प्र० श्री ज्ञानश्रीजी म० सा०, श्री उपयोगश्रीजी म० सा० आदि अपने साध्वीमडल के साथ विराज रही थी। पूज्य गुरुदेव ने भ० महावीर की जयकार से जन कोलाहल

स. १९९९ का प्रथम वर्षावास—जयपुर

यद्यपि शास्त्रीय विधान के अनुसार दीक्षा के बाद ही विहार कर देना चाहिए। किन्तु आप विहार न कर सकी। उसका कारण यह था कि आपाढ शुक्ला २ स० १९९९ को आपकी दीक्षा हुई और वर्षावास से पहले ही बरसात प्रारम्भ हो गई।

इसी कारण आपका प्रथम स० १९९९ का प्रथम वर्षावास जयपुर मे ही गुरुवर्या पू प्र श्री ज्ञानश्रीजी म सा की छत्रछाया मे हुआ।

इसी वर्षावास मे आपका शास्त्रीय अध्ययन प्रारम्भ हुआ। साधु-प्रतिक्रमण आदि तो आप पहले ही सीख चुकी थी। इस वर्षावास मे शेष साधुक्रियाएँ सीखी और दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन किया। प मागीलालजी से अवशिष्ट कौमुदी, अमरकोश तथा रघुवश आदि भी सपूर्ण कर लिए।

दीक्षा ग्रहण करने के ९ दिन उपरान्त ही आपाढ शुक्ला ११ को बडे दादा जिनदत्तसूरिजी म. के जयन्ती समारोह के शुभ अवसर पर आपने सार्वजनिक प्रवचन दिया। यद्यपि सार्वजनिक प्रवचन का आपका पहला ही मौका था, लेकिन प्रवचन इतना प्रभावशाली रहा कि श्रोतागण झूम उठे। साध्वी-वृन्द भी चकित रह गये।

पू प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी म सा का जयपुर मे ठाणापति वास—पू प्र जी म सा की शारीरिक अस्वस्थता पिछले दो-तीन वर्ष से ही चल रही थी, इसी कारण वे जयपुर ही विराज रही थी।

अस्वस्थता इतनी अधिक थी कि वे एक-दो मजिल ही जाती तो ३-४ डिग्री ज्वर हो जाता और उन्हे वापिस लौटना पडता। साधु-साध्वी के लिए भगवान की आज्ञा है—'विहार चरिया मुणीण पसत्था' —मुनियो (साध्वियो) के लिए सतत् विहार करना ही प्रशस्त है। एक दोहा भी इस विषय मे प्रसिद्ध है—

वहता पानी निर्मला, बँधा गँदेला होय।
साधु तो रमता भला, दोष न लागे कोय ॥

इसी भावना से पू प्र जी म सा शरीरबल क्षीण होते हुए भी आत्म-बल के सहारे से विहार करती, लेकिन १-२ मजिल चलते ही शरीर जवाब दे जाता और वापिस लौटना पडता।

इस बार भी उन्होने विहार का प्रयास किया, किन्तु वही स्थिति सामने आ गई। बुखार चार-पाँच डिग्री हो गया। चलने की—आगे बढने की सामर्थ्य न रही।

यद्यपि जयपुरसघ आपश्री से पहले ही कई बार ठाणापति विराजने की प्रार्थना करता रहा लेकिन इस बार तो श्रावकसघ का आग्रह बहुत बढ गया। प्रमुख श्रावक-श्राविकाओ ने यहाँ तक कह दिया कि आपश्रीजी जब तक ठाणापति विराजने की स्वीकृति नही देंगी, तब तक हम लोग मुँह मे पानी भी नही लेंगे। आखिर अपनी शारीरिक अस्वस्थता और श्रावक-सघ की आग्रहभरी विनय को सम्मान देकर उन्हे ठाणापति विराजने की स्वीकृति देनी ही पडी।

इस प्रकार पू प्र जी म सा के लगभग ३० वर्षावास जयपुर मे ही ठाणापति के रूप मे हुए।

ठाणापति रहने पर भी उनका किसी के प्रति कोई लगाव नही था, यहाँ तक कि अपनी शिष्याओ के प्रति भी नही। उनकी इतनी इच्छा अवश्य थी कि जहाँ भी मै रहूँ वहाँ व्यवस्थित रूप से व्याख्यान चौकी आदि होते रहने चाहिए। इस दृष्टि से योग्य साध्वीजी को अपने पास अवश्य रखती थी।

प्रवर्तिनी गुरुवर्या ज्ञानश्री जी महाराज

पू प्र. श्री ज्ञानश्रीजी म सा की चारित्र के प्रति अनुपम निष्ठा थी। नित्य-प्रति आप प्रात दो-ढाई बजे उठकर माला-ध्यान-जप-स्वाध्याय आदि धर्मप्रवृत्तियो मे लग जाती। नवकार-मत्र अथवा अजापजप तो सतत चलता ही रहता था। आपकी अप्रमत्त दशा अनुकरणीय थी।

आपकी सरलता, सौम्यता तो देखते ही बनती थी। प्रवर्तिनी पद (सर्वोच्च पद) पाकर भी कभी आदेश की भाषा का प्रयोग नही करती थी। आपको वचनसिद्धि भी प्राप्त थी। जो उनके मुख से निकल जाता, अवश्य पूरा होता।

आपकी निर्दोष जीवनचर्या को देखकर चौथे आरे की साध्वियो का स्मरण हो आता था।

ऐसी महान् गुरुवर्या की निश्रा मे चरितनायिका सज्जनश्रीजी का प्रथम वर्षावास हुआ।

वर्षावास पूर्ण होते ही पूज्या प्रवर्तिनी ने आपश्री (सज्जनश्रीजी) की बडी दीक्षा कराने हेतु आपको आपकी परमोपकारिणीश्री उपयोगश्रीजी म० सा०, श्री बसन्तश्रीजी म० सा०, तथा सज्जनश्रीजी म० के साथ ही दीक्षिता श्रीविबुधश्रीजी म० आदि ७ साध्वीजी को लोहावट फलोदी की ओर प्रस्थान करवाया।

सभी साध्वीजी म० की हार्दिक इच्छा प्रत्यक्ष प्रभावी दादा श्री जिनकुशल गुरुदेव के दर्शनार्थ मालपुरा जाने की थी। अत मालपुरा की ओर विहार किया। सातवे दिन पूज्य गुरुदेव के चरणो मे पहुँचे, दर्शन किये, चित्त को प्रसन्नता के साथ हार्दिक शाति की अनुभूति हुई।

दादाबाडी से कुछ ही दूरी पर मालपुरा गाँव था, वहाँ के श्रावक भी दर्शन-वन्दन हेतु आ जाते, रात्रि मे कथा-कहानी तथा प्रात प्रवचन होते। इस प्रकार धर्म-जागरणा करते हुए वहाँ एक मास तक रहे। वहाँ से आप सबने टोडा केकडी की ओर प्रस्थान किया।

मार्ग के कई ग्रामो को आपश्री ने फरसा। आपकी मधुरवाणी से जनता प्रभावित होती, व्याख्यान-सज्झाय आदि के सुन्दर माहौल से जनता की धर्म की ओर रुचि होती। कई लोगो ने तो चलते-फिरते (त्रस जीव) जीवो की सकल्पपूर्वक हिंसा और मद्य-मासादि अभक्ष्य वस्तुओ का जीवन भर के लिए त्याग कर दिया, कई बहनो ने जूए मारने तथा गाली-गलौच-अपशब्दो को बोलने का त्याग कर दिया। पौष मास तो टोडा केकडी मे ही पूर्ण हो गया।

माघ मास मे सरवाड सराणा, ठाँठोरी, मसूदा आदि छोटे-छोटे ग्रामो मे विचरण किया।

यद्यपि इन क्षेत्रो मे जैनो की सख्या काफी थी पर बहुत दिनो से साधु-साध्वियो का विचरण न होने से इनके धार्मिक सस्कार लुप्त से हो गये थे। कुछ क्षेत्रो मे साधुमार्गी आम्नाय का प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर हुआ।

परिणाम यह हुआ कि मदिर के प्रति लोगो को अश्रद्धा हो गई। दर्शन, पूजन की बात तो बहुत दूर, लोगो ने मन्दिर जाना ही छोड दिया। मन्दिरो के कपाट ही बन्द हो गये। इतना अवश्य था कि कोई मन्दिरमार्गी साधु-साध्वी आ जाते तो किवाड खोलकर उन्हे दर्शन करा देते थे, लेकिन वे यदा-कदा ही आते अत मन्दिरों के किवाड अधिकाशत बन्द ही रहते। स्थिति यहाँ तक आ गई थी कि मदिर जीर्ण-शीर्ण हो गये, धूल जम गई, अन्दर मकडियो ने जाले बुन दिये, चमगादडो ने निवास बना लिये, बिच्छू आदि उत्पन्न हो गये, सूक्ष्म जीवो की भरमार हो गई।

सज्जनश्री आदि साध्वी मडल का जब इन क्षेत्रो मे विचरण हुआ तो लोग काना-फूसी आपस मे करने लगे—बिना मुँहपत्ति वाले साधु-साध्वीजी महाराज भी होते है क्या ? वन्दन करने का तो प्रश्न ही नही, कई लोग तो खिल्लियाँ भी उड़ाते।

ऐसी विषम परिस्थितियो मे साध्वियो ने उन ग्रामो मे विचरण किया। प्यार से समझाया, ओजस्वी प्रवचन दिये, रुचिकर कहानियाँ और मधुर कण्ठ से राग-रागिनियाँ, स्तवन, सज्झाय, चौपी आदि सुनाये। इन प्रयासो से वहाँ की जनता का भ्रम दूर किया। वे लोग यथार्थता से परिचित हुए।

मन्दिरो के दरवाजे खुले तो वहाँ की दशा देखकर हृदय दु ख से भर गया। सफाई आदि के वाद लोग मदिर आने लगे, मन्दिरो की रौनक पुन लौटी। प्रतिदिन प्रात काल भक्तामर, मागलिक आदि का कार्यक्रम चलने लगा। लोग दर्शन विधि भी भूल गये थ। इन्हे विधिपूर्वक दर्शन की विधि सिखाई और कइयो को तो कण्ठस्थ भी कराई। इनकी रुचि बढी नो वहुत लोग पूजन-सेवा भी करने लगे। वहुत लोगो ने पुन मन्दिरमार्गी आम्नाय को स्वीकार कर लिया और दादा गुरुदेव जिनकुशल सूरि के स्वर्ण जयन्ति वार्षिक महोत्सव पर मालपुरा भी जाने लगे।

जनता यहाँ तक प्रभावित हुई कि चातुर्मास के लिए विनती करने लगी किन्तु आपश्री को बडी दीक्षा के लिए लोहावट फलोदी पहुँचना था, इसलिए धर्म-जागरणा और धर्म की जाहो जलाली करते हुए आगे बढते गये।

मार्गस्थ ग्रामो में शासन प्रभावना करते हुए व्यावर, जैतारण विलाडा, आदि मे सात-सात, आठ-आठ दिन रुककर कापरडा तीर्थ पहुँचे। वहाँ की यात्रा करके फाल्गुन सुदी ११ को जोधपुर (सूर्यनगरी) पहुँचे।

जोधपुर मे साध्वी सज्जनश्रीजी की नानीसुसराल है। मूथाजी, जो इनके नानी ससुर थे, नगर के वाहर इनके द्वारा बनवाया हुआ एक मदिर है जो मूथाजी के मन्दिर नाम से प्रसिद्ध है, साध्वी-मडल उस मदिर मे ही कुछ दिन के लिए ठहरा, प्रवचन आदि का खूब प्रभाव रहा। मूथा परिवार ने भरपूर लाभ लिया।

वहाँ से आप सभी शहर मे केशरियानाथजी की धर्मशाला मे विराजित पूज्यवर्या श्री लालश्री जी म० सा०, श्री धर्मश्री जी म० सा०, आदि जो वहाँ ठाणापति के रूप मे विराज रही थी और श्री फूलश्री जी म० सा० के दर्शन हेतु पधारी। मधुर मिलन हुआ। उन्होने आप लोगो का हर्षपूर्वक स्वागत किया। यद्यपि वहाँ आपका ३-४ दिन रुकने का विचार था किन्तु पूज्या साध्वियो के आग्रह, श्रावको की भावभरी विनती ने नवपद ओली तक रुकने को विवश कर दिया।

आपकी प्रेरणा से कई श्रावको ने नव पद ओली तप की आराधना शुरू की। प्रात श्रीपाल चरित्र श्री सज्जनश्रीजी सुनाती और मध्यान्ह मे ओली की क्रिया आप तथा पूज्या उपयोगश्रीजी विभिन्न राग-रागनियो से करवाती। वातावरण वहुत ही आनन्दमय बन जाता, सभी अध्यात्मरस मे डूब जाते।

धर्म का रग ऐसा जमा कि जोधपुर के श्रावक-श्राविकाओ ने चातुर्मास के लिए पुरजोर विनती की, किन्तु आपश्री पहले ही फलोदी चातुर्मास की स्वीकृति दे चुके थे अत जोधपुर का चातुर्मास स्वीकृत न हो सका।

लगभग सवा महीना जोधपुर रुककर तिवरी-ओसिया तीर्थ की यात्रा करते हुए आपश्री तपस्वी वापजी की पुण्यभूमि लोहावट पधारे। पू० प्रेमश्रीजी म० सा०, पूज्य पवित्रश्रीजी म० सा० आदि वहाँ विराजित थे। मधुर मिलन हुए। कुछ दिन वहाँ रुककर आपश्री ने फलोदी की ओर अपने कदम बढाए। मार्ग मे पलाना स्टेशन, जो फलोदी से मात्र २ मजिल ही दूर था, वहाँ धर्मशाला मे ठहरी।

फलोदी सघ को ज्यो ही मालूम हुआ कि आप लोग पलाना पधार गयी है तो श्री गुलाबराय जी सा० बरडिया (ये पू० श्री उपयोगश्रीजी के सासारिक जीवन मे (पति) जीवन-साथी थे) ने वहाँ स्वामि-वात्सल्य रखा, फलोदी से आपश्री के दर्शनार्थ उमड आई जनता का हार्दिक स्वागत-सत्कार किया, भोजन आदि से तृप्त किया। पलाना स्टेशन पर लगभग ५०० व्यक्तियो का स्वामी-वात्सल्य था।

स० २००० का फलोदी चातुर्मास

सद्ज्ञान गोष्ठी करते हुए साध्वी मडल फलोदी की सीमा मे पधारे। जय-जयनादो से हर्षोल्लासपूर्वस आपश्री का नगर-प्रवेश कराया गया। बैण्ड बाजो की मधुर ध्वनियो के साथ आप सब लोग धर्मशाला मे पहुँची। वहाँ मागलिक प्रवचन हुआ, जो बहुत प्रभावशाली रहा। सघ के आग्रह पर प्रतिदिन व्याख्यान देना स्वीकार किया।

वहाँ से आप सभी शीतलपुरा के उपाश्रय मे पधारी। वहाँ विराजित पू० श्री ताराश्री जी म० सा०, हितश्री जी म० सा० आदि के दर्शन तथा विधिपूर्वक वन्दन करके आशीर्वाद प्राप्त किया।

उन दिनो फलोदी एक प्रकार से धर्मक्षेत्र बना हुआ था। वहाँ लगभग १२०० परिवार थे और सभी धार्मिक थे। ६ अत्यन्त सुन्दर विशाल जिनमन्दिर, ४ विशाल दादावाडियाँ—जिनमे भक्तजनो की भीड रहती, उपाश्रय भी अनेक थे जिनमे साधु-साध्वी विराजते और श्रावक-श्राविकाओ की धर्मक्रियाओ से गूँजते रहते। यहाँ अनेक भव्यात्माओ ने चारित्रधर्म स्वीकार किया और आत्म-कल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण करके जिनशासन को दिपाया है।

उन्ही मे मण्डलाधिनायिका परम श्रद्धेया पुण्यशालिनी पुण्यश्रीजी म सा., जापपरायणा, ज्ञानध्याननिमग्ना पूज्या श्री ज्ञानश्रीजी म सा (चरितनायिका सज्जनश्री जी की गुरुवर्या) पू. श्री उपयोगश्रीजी म सा भी है।

पूज्यवर्याओ की तप पूत पावन जन्मभूमि फलोदी (फलवर्द्धि) नगरी मे आकर हमारी चरितनायिका ने भी स्वय को धन्य माना।

बडी धर्मशाला मे प्रात साढे आठ से साढे नौ बजे तक चरितनायिका जी प्रवचन फरमाती और मध्यान्ह में पू उपयोगश्री जी म सा महाबल-मलया की चौपी मधुर स्वर मे सुनाती। प्रवचन और चौपी सुनकर श्रोतागण बहुत प्रभावित होते। प्रवचन प्रभा की रश्मियाँ विकीर्ण होने लगी। जो एक बार सुन लेता, बार-बार आता, भीड बढने लगी, बडी धर्मशाला का विशाल हॉल भी श्रोताओं से खचाखच भर जाता।

आपकी प्रवचन कला की विशेषता थी कि आपश्री शास्त्रीय तत्व—अपने वर्ण्य विषय को उदाहरणो से—पटकथाओ से पुष्ट करती, भाषा प्राजल और प्रवाहमय थी, वाणी मे ओज-तेज-सप्रेषणीयता तथा भावो को वहन करने की क्षमता थी। इसी कारण लोग आपका व्याख्यान सुनने उमड़े चले आते थे।

फलौदी मे उस समय कई तत्वरसिक, आगमज्ञ श्रावक भी थे, उनमे फूलचन्दजी झावक, मेघराजजी मुणोत, रेखचन्दजी लूँकड, कँवरलालजी गोलेच्छा आदि मुख्य थे। ये लोग प्रवचन तो सुनते ही थे, अतिरिक्त समय मे तत्व चर्चा भी करते और अपने प्रश्नो का शास्त्रीय समाधान पाकर और भी प्रभावित होते तथा आपश्री के उज्ज्वल भविष्य की कामनाएँ करते।

अनेक कन्याएँ आपश्री के पास प्रतिक्रमण सीखने आती और रात्रि शयन भी वही करती।

इन सब धार्मिक प्रवृत्तियो और वातावरण का ऐसा प्रभाव हुआ कि दो बहनो मे वैराग्य का अकुर उदित हुआ।

उनमे से एक थी सुखलालजी गोलेच्छा की सुपुत्री एव श्री''' ललवानी की पुत्रवधू इन्द्रादेवी। थे मद्य परिणीता थी और १५ वर्ष की आयु मे मासारिक भोगो को त्यागकर सयमी जीवन ग्रहण करने के लिए उद्यत हो गई थी।

दूसरी थी—श्रीमान सोहनराजजी सा श्रावक की सुपुत्री पुष्पाकुमारी। ये समुदायाध्यक्ष पू श्री चम्पाश्रीजी की शिष्या घोषित हुई और इनका दीक्षोपरान्त नाम दिया गया—जितेन्द्रश्रीजी। विनय-वैयावृत्य करते हुए आप अपना जीवन सफल बना रही हैं।

इसी चातुर्मास मे अभिवृद्धिरूप पचरगी तप, सामूहिक आयम्बिल, एकासने, अठाई ११-१५, क्षीरसागर गौतम पात्र आदि अनेक प्रकार की तपस्याओ की झडी लग गई।

इस प्रकार फलौदी का चातुर्मास व्याख्यान, तपस्या, प्रत्याख्यानादि की अधिकता से पूर्ण सफल रहा।

इसी समय (वि स २००० मे) आचार्य सम्राट श्रीमज्जिनहरिसागर सूरीश्वर जी म सा का चातुर्मास प्रसिद्ध तीर्थ जसलमेर मे था। चातुर्मास पूर्णकर आपश्री फलौदी पधारे। श्रीसघ ने बहुत ही उत्साहपूर्वक पूज्येश्वर का नगर-प्रवेश कराया। यद्यपि गुरुदेव का लक्ष्य ज्ञान भण्डार को सुव्यवस्थित कराने के लिए लोहावट पधारना था किन्तु भक्तो के अत्याग्रह के कारण कुछ दिन फलौदी ठहरे। व्याख्यान का क्रम चालू किया। प्रवचन का लाभ सज्जनश्रीजी आदि साध्वी मडल ने भी लिया।

सघ ने पू गुरुदेव से होली चातुर्मास वही फलौदी मे करने की भावभरी विनय की किन्तु पू गुरुदेव को लोहावट जाना था और चरितनायिका जी की बडी दीक्षा भी करवानी थी। अत बडी दीक्षा के लिए फाल्गुन शुक्ला ५ का दिन निर्णीत कर लोहावट पधार गये।

पू उपयोगश्रीजी म सा को चरितनायिका जी की बडी दीक्षा करवाने हेतु लोहावट जाना था। किन्तु अभी २ महीने बाकी थे, फिर चरितनायिका जी प श्री ब्रह्मदत्त से तिलकमजरी महाकाव्य का अध्ययन कर रही थी और जनता का भी अत्यधिक आग्रह था, इन्ही सब कारणो से साध्वी मडल फलौदी मे ही विराजता रहा।

इसी बीच एक वय स्थविरा साध्वीजी असाध्य रुग्ण हो गई। और हमारी चरितनायिका सज्जनश्रीजी मे सेवा-वैयावृत्य की भावना अत्यधिक है, ग्लान-रुग्ण की सेवा वे अपना पुनीत कर्तव्य मानती हैं। अत वय स्थविरा रुग्ण साध्वी जी की सेवा मे तन-मन से लग गई।

फाल्गुन मास शुरू हो गया था तथा अध्ययन भी सम्पूर्ण हो गया था। अत तत्र विराजित साध्वियो से आज्ञा लेकर आपश्री ने लोहावट की ओर प्रस्थान किया। आपश्री के साथ ही दीक्षित विबुधश्रीजी की बडी दीक्षा होनी थी, साथ ही अन्य सात साध्वियो की भी बडी दीक्षा का कार्यक्रम था। वीरश्रीजी म सा व हेमश्रीजी को दशवैकालिक के योगोद्वहन करने थे। इस प्रकार १० साध्वीजी म योगोद्वहन करने वाले थे।

शुभ दिन से योगोद्वहन प्रारम्भ हो गये। इस उपलक्ष्य मे दो अष्टान्हिका महोत्सव हुए अर्थात् योगोद्वहन के साथ ही पूजाओ का क्रम भी प्रारम्भ हो गया। प्रभु भक्ति का सुन्दर रसप्रद वातावरण बन गया। सज्जनश्रीजी व उपयोगश्रीजी म सा को पूजाओ का बहुत शौक था। जब आपश्री वीणा-जैसे मधुर स्वर मे पूजा गाती तो जनसमूह भक्ति रस मे निमग्न होकर झूम उठता।

जिस उपलक्ष्य मे यह महोत्सव हो रहा था, प्रतीक्षित बडी दीक्षा का वह शुभ दिन फाल्गुन शुक्ला ५ आ पहुँचा। सभी योगोद्वाहिका साध्वीजी केशर के छपे हुए कपडे पहनकर गुरुवर्या और गुरु-बहनो के बडी दीक्षा के स्थान चम्पावाडी मे पहुँचे। यह स्थान लोहावट गाम के बाहर है तथा यहाँ पूज्य गुरुवरो एव तपस्वीवर पूज्य छगनसागर म सा के चरण पादुकाएँ और मूर्तियाँ है। इस पावन स्थल मे लोगो की भीड पहले से ही मौजूद थी। जयपुर, जोधपुर, फलौदी आदि से बडी दीक्षा वाले साध्वीजी के परिवारीजन व अन्य श्रावक-श्राविका भी बडी सख्या मे आये।

लोहावट श्रीसघ ने मुक्तहस्त ने इस विशाल समारोह मे द्रव्य का सदुपयोग कर पुण्यानुबन्धी पुण्य का उपार्जन किया।

इस प्रकार वि० स० २००० फाल्गुन शुक्ला ५ को परम श्रद्धेय शासन सम्राट श्रीमज्जिनहरि-सागरसूरीश्वरजी के वरद हस्त से बडी दीक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

बडी दीक्षा के उपरान्त साध्वी मडल ने पू गुरुवर्या के चरणो मे पहुँचने के लिए जयपुर की ओर कदम बढाये। मार्ग मे ओसिया तीर्थ के दर्शन किये और सीधे मेडता रोड, पुष्कर होते हुए अजमेर पहुँचे। इधर पू चम्पाश्रीजी म सा, श्री धर्मश्रीजी म सा आदि जयपुर चातुर्मास करके दूदू दाँतरी होते हुए किशनगढ पहुँच चुके थे। पू उत्तमश्रीजी म सा का वार्षिक तप चल रहा था। तप का पारणा वही हो, किशनगढ श्रीसघ का ऐसा आग्रह था अत वही विराज रही थी। सज्जनश्रीजी आदि साध्वियाँ भी किशनगढ श्री सघ के अत्यधिक आग्रह से पारणा तक वही रुकी रही। सानन्द पारणा होने के बाद जयपुर की ओर प्रस्थान किया।

दाँतरी ग्राम मे सुखलालजी गोलेच्छा की पुत्री इन्द्रकुमारीजी की दीक्षा स० २००१ की वैशाख शुक्ला ६ को सानन्द सम्पन्न हुई तथा उन्हे राजेन्द्रश्रीजी नाम देकर पू उपयोगश्रीजी म सा की शिष्या घोषित किया गया।

वहाँ से नूतन दीक्षित साध्वीश्री राजेन्द्रश्रीजी म को साथ लेकर जयपुर पधारी।

वि० स० २००१ का जयपुर चातुर्मास

चरितनायिकाजी का यह चातुर्मास पूज्या गुरुणीजी की निश्रा मे हुआ। इसी चातुर्मास मे कोटा के सेठ श्री केसरीसिहजी ने अगला चातुर्मास कोटा करने की विनती की। सेठ केसरीसिहजी हमारी चरितनायिकाजी के फूफी श्वसुर है और विवाह होने के पश्चात् वही आपको सवेगीधर्म की प्राप्ति तथा आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ था। अत होली चातुर्मास मे कोटा चातुर्मास की स्वीकृति दे दी गई।

वि० स० २००२ का कोटा चातुर्मास

पू प्रवर्तिनीजी म सा की आज्ञा से मण्डल सचालिका उपयोगश्रीजी म सा सज्जनश्रीजी म सा सुमनश्रीजी म सा. राजेन्द्रश्रीजी म सा आदि ८ मार्ग के अनेक स्थानो को फरसते हुए कोटा पहुँचे तो कोटा श्री सघ एव सेठ केसरीसिह जी ने आपश्री का भावभरा स्वागत किया, हर्षोल्लास एव गाजे बाजो के साथ आपका नगर प्रवेश कराया गया। व्याख्यान एव तपस्याओ की झडी लग गई। अठाई महोत्सव, साधर्मीवात्सल्य आदि भी खूब हुए। सेठ साहब ने बहुत पुण्यलाभ लिया। कुल मिलाकर चातुर्मास सफल रहा।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात नूतन दीक्षिता राजेन्द्रश्रीजी की बडी दीक्षा के लिए सैलाना पहुँचना था। अत कोटा से प्रस्थान करके मानपुर-मन्दसोर-जावरा होते हुए नागेश्वर पहुँचे।

नागेश्वर मे तीर्थमण्डन प्रभु पार्श्वनाथ की मूर्ति थी। उसकी पूजा एक सन्यासी सिन्दूर और तेल के विलेपन से करता था। यह जैन पूजा पद्धति नही अपितु तीर्थंकर प्रभु की प्रतिमा की घोर आशातना है। इस आशातना को देखकर गुरुवर्या श्री आदि को घोर दुःख हुआ। दो-तीन दिन वही रुके, श्रावको को बुलाकर जानकारी ली। उन्होने बताया—यह करतूत एक सन्यासी की है, वही ऐसी पूजा करता है, किसी की भी नही सुनता है, मन्दिर की ७०० बीघा जमीन का मालिक भी वही बना हुआ है।

यह सब जानकर चित्त और भी खिन्न हो गया—साध्वीजी का। आस-पास के ग्राम निवासियो को बुलवाकर स्थिति समझाई। आपकी प्रेरणा से उनमे धार्मिक उत्साह जागा और सभी ने शीघ्र ही उद्धार करने का सकल्प किया।

उनके प्रयास सफल हुए। तीर्थ का उद्धार शुरू हो गया। आज तो वहाँ भव्य जिनालय, विशाल दादावाडी और सुन्दर सुव्यवस्थित धर्मशाला है। और मुख्य तीर्थ के रूप मे प्रसिद्ध है।

यह सब चरितनायिकाजी की सद्प्रेरणा का फल है।

यहा से मन्दसौर, जावरा होते हुए रतलाम पधारे। सेठ केशरीसिह जी वाफना द्वारा बनवाई हुई कोठी मे विराजे। दूसरे दिन पौष बदी १० (भ पार्श्वनाथ का जन्म दिवस) थी। समीप स्थित बिबडोद तीर्थ के दर्शनार्थ पधारे। वहाँ पूजा तथा सार्धर्मी वात्सल्य भी था। सध्या को साध्वी-समुदाय पुन रतलाम पधार गया। वहाँ से पूज्येश्वर वीर-पुत्र श्री आनन्दसागरजी म सा की निश्रा मे बडी दीक्षा कराने हेतु सैलाना पधारे।

उस समय सैलाना के राजा 'महाराज दिलीपसिह शासन की रजत जयन्ती' मना रहे थे। महाराज दिलीपसिंह पूज्य गुरुदेव वीरपुत्र म सा के सहपाठी भी रह चुके थे। एक दिन वे गुरुदेव के दर्शनार्थ पधारे। उस समय पू चरितनायिकादि भी वहाँ विराज रही थी। गुरुदेव ने एक भजन सुनाने को कहा। गुरुवर्य्याश्री के मधुर वीणा समान गायन को सुनकर राजा दिलीपसिंह भावविभोर हो गये और जैन साध्वाचार की बहुत-बहुत प्रशसा की।

नूतन दीक्षिता राजेन्द्रश्री म की बडी दीक्षा के योगोद्वहन शुरू हो चुके थे और पू. सज्जनश्रीजी म'सा ने दशवैकालिक के अवशिष्ट योगोद्वहन भी शुरू कर दिये थे। बडी दीक्षा के दिन गुरुदेव की चरण-पादुका स्थापन का भी समारोह था अत अठाई महोत्सव, पूजन, भक्ति, रात्रि जागरणादि प्रारम्भ हो गये। राजेन्द्रश्रीजी म के पारिवारिक सदस्य तथा आस-पास के अन्य लोग भी बडी सख्या मे आ गये थे। इन सबकी उपस्थिति मे पूज्य गुरुदेव के कर-कमलो से श्री राजेन्द्रश्रीजी म की बडी दीक्षा का कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ।

आप लोग (साध्वीजी) वहाँ से विहार करती हुई पू गुरुवर्य्याश्री के पास जयपुर पधारी।

सज्जनश्रीजी म सा. के २००३, २००४ व २००५ के चातुर्मास गुरुणीजी श्री ज्ञानश्रीजी म सा. के सान्निध्य मे जयपुर मे ही हुए। व्याख्यान का कार्य आप स्वय सँभालती थी।

वि स २००५ मे पू आचार्यदेव श्री रत्नसूरीश्वरजी म सा, उपाध्याय श्री लब्धिमुनिजी म सा, प्रेममुनिजी म सा, मेघमुनिजी म सा व मुक्तिमुनिजी म सा का जयपुर मे पदार्पण हुआ। आपके प्रवचनो मे प्रभावित हो जयपुर सघ ने चातुर्मास की विनती की जिसे आपश्री ने स्वीकार कर लिया।

उस चातुर्मास मे व्याख्यान आचार्यदेव फरमाते थे, अत व्याख्यान भार से मुक्त, होकर आपने अपनी गुरुवर्य्याश्री प्रवर्तिनी महोदया एव परमोपकारिणी पू श्री उपयोगश्री जी म सा से तपस्या की

आज्ञा माँगी और इनकी आज्ञा प्राप्त कर आपने व पू. जिनेन्द्रश्रीजी म ने श्रावण वदी ७ से मास-क्षमण की तपस्या प्रारम्भ कर दी। आपके साथ कमलादेवी ने भी तपस्या शुरू कर दी। (कमलादेवी सेठ हजारीमलजी बाँठिया की सुपुत्री थी, युवावस्था आने से पहले ही विधवा हो चुकी थी और चरितनायिकाजी के गृहस्थ जीवन की सखी थी तथा जयपुर की एक मुखिया श्राविका के रूप मे प्रसिद्ध थी।)

तेले के दिन से ही शासनदेवी के गीत प्रारम्भ हो गये और निरतर एक महीने तक चलते रहे। नित्य प्रभावनाएँ होती, कभी-कभी दो-दो, तीन-तीन भी हो जाती। पूर्णाहुति पर राजेन्द्रश्रीजी म सा ने अठाई और बहुत से लोगो ने अट्ठम तप किये। अठाई महोत्सव, महापूजन, वरघोडा, रात्रि जागरण आदि सभी धर्मानुष्ठान अभूतपूर्व कार्यक्रम के साथ सानन्द पूर्ण हुए।

पारणे के पश्चात आपको टाइफाइड हो गया जो उचित औषधोपचार से ठीक हो गया।

अध्ययन का आपको बचपन से शौक था और आज भी है। चातुर्मास के बाद शीतकाल मे आपने पण्डित प्रवर वीरभद्रजी से प्रमाणनयतत्वालोक का तलस्पर्शी अध्ययन किया।

वि स २००६ मे पू गणिवर्यश्री बुद्धिमुनिजी म सा., तथा साम्यानन्दजी म सा सघ की विनती को स्वीकार करके चातुर्मास हेतु जयपुर पधार गये थे।

अत प्रवचन कार्य से आप मुक्त हो गई थी किन्तु मध्याह्न मे चौपी आप ही बाँचती थी जिसमे जैन कवि केशराज रचित रामयश रसायन के साथ तुलसीकृत रामचरितमानस और मैथिलीशरण गुप्त के साकेत के सम्बन्धित अश भी सुनाती। जैन-अजैन सभी श्रोता मुग्ध हो जाते, प्राचीन उपाश्रय (जहाँ अभी विचक्षण भवन बना हुआ है) का हॉल खचाखच भर जाता। श्रोतागण राम के पवित्र चरित्र मे इतने रसमग्न हो जाते, मानो सब कुछ उनके सामने ही घटित हो रहा हो।

ऐसी अनुपम थी आपकी वक्तृत्व कला। आज तो इसमे और भी निखार आ चुका है।

झुझनु चातुर्मास वि स २००६

झुझनु धार्मिक क्षेत्र के साथ-साथ ऐतिहासिक क्षेत्र भी है। यह क्षेत्र बहुत अनूठा है। यहा अनेक सतियाँ हुई है। कुछ महान सतियो के तो मन्दिर भी बने हुए है। इनमे राणीसती का मन्दिर तो विशेष प्रसिद्ध है।

ग्यारहवी शताब्दी मे परमश्रद्धेय गुरुदेव दादा सा श्री जिनदत्तसूरि जी म का भी उस क्षेत्र मे विचरण हुआ था, ऐसा उनके स्वय के लिये हुए 'चर्चरी' ग्रन्थ मे वर्णन आता है। यहाँ की दादावाडी की ऊँचाई अन्य दादावाडियो की तुलना मे काफी अच्छी है।

उस समय यहा पर ६० घर श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के थे, सभी खरतरगच्छीय श्रीमाल गोत्र के और प्राय सभी उच्च शिक्षा प्राप्त—कोई वकील तो कोई जज। श्री पूनमचन्दजी तो झुझनु जिले के प्रसिद्ध वकील थे। धार्मिक क्षेत्र मे भी झुझनु सघ अग्रणी था, विद्वान साधु-साध्वियो के चातुर्मास होते ही रहते थे। लेकिन वर्तमान मे तो २५-२७ घर ही रह गये है। प्राय सभी बम्बई, जयपुर आदि नगरो मे जाकर बस गये है।

इसी झुन्झुनु सघ ने प्रवर्तिनी महोदया के समक्ष चातुर्मास हेतु विनती की। उनकी विनती को सम्मान देकर प्रवर्तिनीजी म सा ने निर्णीत शुभ दिवस मे पू चरितनायिका, [illegible] पू श्री उपयोगश्रीजी म सा पू श्री [illegible] म सा तथा राजेन्द्रश्रीजी म. सा को झुन्झुनु चातुर्मासार्थ विहार करवाया। मार्ग मे ग्रामो मे वीरवाणी सुनाते, धर्म की वर्षा करते, जनता को ज्ञान ध्यान आदि

अभक्ष्यभक्षण का त्याग कराते हुए झुन्झनु सीमा मे पहुँचे। श्रद्धालु सघ ने बडी धूम-धाम से नगर-प्रवेश कराया।

प्रतिदिन के व्याख्यान मे श्रीचन्द केवली चरित्र का प्रारम्भ किया। आपकी रोचक शैली को आज भी लोग याद करते हैं। पूजा, तपस्या आदि का ठाठ लगा रहा। पूजा-प्रभावनाएँ भी खूब हुईं। तब से आज तक वहाँ के निवासी प्रति पूनम को रात्रि-जागरण व प्रभावना आदि करते आ रहे है।

श्री राजेन्द्रश्रीजी म को वाराणसीय सस्कृत विश्वविद्यालय की ज्ञानप्रभा परीक्षा मे सम्मिलित होना था और उनका परीक्षा केन्द्र फतेहपुर था, अत झुन्झनु चातुर्मास सानन्द पूर्णकर आपने फतेहपुर की ओर कदम वढाये। चिडावा, पिलानी होते हुए फतेहपुर पहुँचे।

फतेहपुर मे भी जैन घर काफी है, व्याख्यान आदि का क्रम चलने लगा। लोग प्रभावित हुए। कुछ दिन रुकने का आग्रह किया। लेकिन आपको गुरुणीजी की सेवा मे पहुँचना था अत परीक्षा दिल-वाकर जयपुर की ओर प्रस्थान किया।

श्री राजेन्द्रश्री जी म० सा० का स्वास्थ्य झुन्झनु चातुर्मास मे रुग्ण रहने लगा। कभी सर्दी जुकाम खाँसी वढ जाते तो कभी कम हो जाते, साधारण घरेलू उपचार चलते रहे पर कोई विशेष लाभ न हुआ। जयपुर आने पर तो खाँसी-जुकाम और बढ गये। कई वैद्यो का उपचार कराया गया पर सब व्यर्थ। आखिर स्पेशलिस्ट डाक्टर को दिखाया गया। उसने फुल टेस्ट की सलाह दी। टेस्ट हुए। एक्स रे रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि साध्वीजी को राजयक्ष्मा ने गम्भीर रूप से जकड लिया है।

उस युग मे टी० वी० की कोई अक्सीर दवा भी न थी। इस रोग का नाम ही भयकर था। सुनते ही चरितनायिका जी चिन्तित हो गईं, तन-मन से श्री राजेन्द्रश्री जी म० सा० की सेवा मे जुट गईं। किन्तु उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता ही गया, शारीरिक शक्ति क्षीण होती ही चली गयी। डाक्टर की चिकित्सा और चरितनायिका जी की सेवा कोई काम न आई। आखिर वि० स० २०१२ विजयादशमी के दिन २६ वर्ष की अल्पायु मे ही श्री राजेन्द्रश्रीजी म० सा० की आत्मा स्वर्ग को प्रयाण कर गई।

सर्व साध्वी मडल और श्री सघ को हार्दिक दुख हुआ, पर काल-वली के सामने किसी का वश नही चलता।

श्री राजेन्द्रश्री जी म सा ने १२ वर्ष की अल्प सयम पर्याय मे वैयावच्च, अध्ययन, शासन सेवा के साथ-साथ विभिन्न तप पचमी पखवासा, सोलिया, नवपद ओलीतप, दश पच्चक्खाणा, बेला, तेला, अठाई आदि किये तथा अन्तिम समय मे गुरुमुख से निर्यामिना स्वस्थचित्त से सुनती हुई, सर्व प्रत्याख्यान करती हुई नश्वर देह का त्याग किया, अपना श्रमणी-जीवन सफल बनाया।

श्री राजेन्द्रश्रीजी म० की अस्वस्थता के कारण वि० स० २००७ से २०१३ तक के ७ चातुर्मास चरितनायिकाजी के जयपुर मे ही हुए। ये चातुर्मास आपने गुरुवर्याश्री के दर्शनार्थ आने वाले पूज्य श्रमण-श्रमणी के आदर-सत्कार और ज्ञानार्जन मे व्यतीत किये।

वि० स० २०१२ मे पूज्य प्रवर उपाध्याय महोदय श्री सुखसागरजी स० सा०, पूज्य श्री मगल सागरजी म० तथा उद्भट विद्वान श्री कान्तिसागरजी म सा का चातुर्मास हेतु गुलाबी नगरी जयपुर

मे आगमन हुआ। व्याख्यान के उत्तरदायित्व से आप मुक्त हुईं। इस समय का सदुपयोग करके आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्यरत्न परीक्षा फर्स्ट डिवीजन मे उत्तीर्ण कर ली।

प्रखर व्याख्याता पू० कान्तिसागरजी की सद्प्रेरणा से जयपुर सघ ने जैन श्वेताम्बर दादाबाढी (मोती डूँगरी रोड) मे पू० प्रवर उपाध्याय श्री सुखसागर जी म० सा० के सान्निध्य मे द्वितीय उपधान तप करवाकर अतुल लाभ लिया। श्रावक-श्राविकाओ ने उत्साहपूर्वक तपाराधना की और मालारोपण का कार्यक्रम भी बडे अच्छे से ढग सम्पन्न हुआ।

इसी उत्सव के दौरान पूज्याश्री उपयोगश्रीजी म सा की ससारपक्षीय भतीजी किरण वैराग्य भावना से प्रेरित हो आपके पास आई। वह फलौदी निवासी श्रावक श्रेष्ठ श्रीमान् ताराचन्दजी की सुपुत्री थी और उसकी आयु कुल ११ वर्ष की थी।

वि स० २०१३ मे पूज्य आचार्य श्रीमज्जिनआनन्दसागर सूरीश्वर जी म सा, पू उपाध्याय श्री कवीन्द्रसागर सूरीश्वरजी म सा, उपाध्याय सुखसागरजी म सा, गणिवर्य हेमेन्द्रसागरजी म सा, उदयसागरजी म सा की निश्रा मे युगप्रधान् दादा जिनदत्त सूरीश्वरजी म सा की पुण्यभूमि अजमेर मे अखिल भारतीय खरतरगच्छ की सम्मति से उनकी अष्टम शताब्दी समारोह आयोजित करने का निर्णय ले लिया गया था। इसी अवसर पर साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका सम्मेलन का कार्यक्रम रखा गया गया और सभी पू मुनिवरो तथा पू साध्वियो को आमन्त्रित किया गया।

समीपस्थ क्षेत्रो मे विचरण करने वाले सभी साध्वी जी म सा सम्मलित हुए। यथा—पू श्रीउमगश्रीजी म सा, पू श्री कल्याणश्रीजी म सा, जैन कोकिला श्री विचक्षणश्रीजी म सा अपनी शिष्या मडली सहित व पू श्री अनुभवश्रीजी म सा तथा पू प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी की प्रतितिधि के रूप पू चरितनायिका जी भी पधारी। इस प्रकार कुल ५५ साध्वीजी म सा सम्मेलन मे सम्मिलित हुए थे।

सम्मेलन की शोभा तो अभूतपूर्व थी ही, विशेषता यह थी कि सभी गच्छ वालो ने बिना भेद-भाव से सम्मिलित होकर सम्मेलन को सफल बनाया। बडे ही शानदार ढग से विराट आयोजन के साथ सम्मेलन सम्पूर्ण हुआ। शताब्दी स्मारिका मे इसका सचित्र वर्णन है। इसी अवसर पर जिनदत्तसूरि सघ की स्थापना हुई जो सर्वत्र प्रगति पथ पर है।

सम्मेलन मे आये हुए जयपुर सघ ने पू प्रवर्तिनीवर्या की प्रेरणा से श्रद्धेय आचार्यश्री को जयपुर चातुर्मास की आग्रहभरी विनती की, जिसे आचार्य श्री ने स्वीकार कर लिया। चरितनायिकाजी गुरुवर्या की सेवा मे पधार गयी।

परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्रीमज्जिनआनन्दसागरसूरीश्वरजी अपने शिष्य मडल सहित चातुर्मास हेतु जयपुर पधारे। खूब धूमधाम से जयपुर सघ ने स्वागत किया।

आचार्य प्रवर के साथ चरितनायिकाजी का पहला ही चातुर्मास था। उनके गम्भीर शास्त्रीय ज्ञानयुक्त प्रभावशाली वाणी से आप बहुत प्रभावित हुईं। आपश्री को आचार्यदेव का अनुग्रह प्राप्त हुआ। आचार्यश्री की दीर्घ दृष्टि से आपकी विलक्षण प्रतिभा छिप न सकी। पू प्रवर्तिनी जी को उन्होने कहा—आप बहुत भाग्यशाली है जो आपको ऐसी सुयोग्य, गुणवती शिष्या (सज्जनश्रीजी) प्राप्त हुई है। यह भविष्य मे अपने गच्छ की कीर्ति को खूब दीपायेंगी।

आचार्यश्री के यह उद्गार कुछ ही समय में सत्य में प्रमाणित होने लगे ।

संघ के आग्रह से आचार्यश्री ने चातुर्मास मे भगवती सूत्र का वाचन शुरू किया । अचानक ही वे अस्वस्थ हो गये । उन्होने आपको बुलाया और व्याख्यान देने का आदेश फरमा दिया । आप विचार मे पड गईं—'भगवती सूत्र तो मैंने कभी उठाकर देखा भी नही, कैसे व्याख्यान दे सकूँगी ।' आपको विचारमग्न देखकर आचार्यश्री ने फरमाया—'विचार मे क्यो पड गईं ? तुम तो हमने भी विदुषी और प्रतिभाशालिनी हो ।'

बस, आपश्री ने आचार्यदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और इष्टदेव का स्मरण कर पाट पर बैठ गईं । फिर एक सूत्र को लेकर आपने उसकी जो व्याख्या की, तर्क दिये और दृष्टान्तपूर्वक समझाया तो सभी आश्चर्यचकित हो गये । आचार्यश्री स्वय भी सुन रहे थे वे दग रह गये । मन ही मन मे सोचने लगे—क्या गजव की वुद्धि है, क्या प्रतिभा है ? भगवती जो सबसे गूढ और कठिन अग है, जिसकी व्याख्या करने मे वडे-वडे धुरन्धर चकरा जाते हैं, उसके सूत्र की एक-एक कली खोलकर रख दी है । अनुपम मेधा है इन साध्वीजी की ।

व्याख्यान के वाद जव आचार्यश्री के समक्ष आप पधारीं तो उन्होंने हर्षित होकर आपकी प्रशसा की और साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविका सभी के समक्ष कहा - तुम तो व्याख्यात्री हो । भविष्य मे इससे भी वढकर आगमो का ज्ञान प्राप्त करोगी । ऐसा मेरा विश्वास है ।

आचार्यश्री का यह विश्वास आज साकार हो रहा है ।

आचार्यश्री के इस आशीर्वाद को सुनकर सभी उपस्थित जन प्रसन्न हो गये ।

वि स २०१३ का आचार्यश्री का चातुर्मास सानन्द सम्पूर्ण हुआ ।

इस चातुर्मास के उपरान्त वैराग्याकुर धारिणी किरण (जो अव १२ वर्ष की हो चुकी थी) ने अपनी भूआ (ज्ञानमडल की सचालिका उपयोगश्रीजी म सा) से अपनी दीक्षा शीघ्र करवाने की विनती की, क्योकि उसका वैराग्य पूर्ण पल्लवित हो चुका था । पूज्याश्री ने कुछ समय वाद भावना को साकार रूप देने का सुझाव दिया ।

किरण का अध्ययन सुचारु रूप से चल रहा था । पचप्रतिक्रमण कुछ ही समय मे पूर्ण हो गया । तदुपरान्त सस्कृत चैत्यवन्दन स्तुति, जीवविचार, नव तत्वादि चारो प्रकरण, तीन भाष्य, कर्मग्रन्थ आदि भी कुछ ही समय मे कठस्थ कर लिया । प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ जो सामूहिक होती उनमे वन्दित्तु सूत्रादि वोलने का आदेश प्राय किरण ही लेती और उसकी वोली मधुर, स्पष्ट व वजनी होने के कारण वहने भी उसका ही वोलना पसन्द करती । वैरागिन किरण ने अपनी योग्यता, नम्रता और मधुर वाणी से सभी के मन-मस्तिष्क पर अपना अधिकार कर लिया । पू उपयोगश्रीजी भी वैरागिन किरण से सन्तुष्ट थी और उसे दीक्षा योग्य समझने लगी ।

जयपुर श्रीसघ को वैरागिन किरण की इतनी जल्दी दीक्षा का अनुमान नही था । जव दीक्षा महोत्सव का मुहूर्त निकल गया और तैयारियाँ होने लगी तव कुछ प्रमुख श्रावको ने इसे वाल-दीक्षा कहकर कठोर विरोध किया । यहाँ तक निश्चय कर लिया कि वैरागिन किरण की दीक्षा नही होने देंगे । इस विरोध के कारण पूज्य गुरुदेव और पू प्रवर्तिनी महोदया ने वैराग्यवती किरण की दीक्षा उस वर्ष स्थगित कर दी । इसे अन्तराय कर्म का ही प्रभाव माना जाना चाहिए कि दीक्षा मे अवरोध खड़ा हो गया ।

पू० चरितनायिकाजी का स० २०१८ का चातुर्मास टोक था और परम श्रद्धेय कवि सम्राट श्रीकवीन्द्रसागरजी म० सा० का जयपुर मे था। वैराग्यवती किरण की दीक्षा की बाते चल ही रही थी, जयपुर वालो के विरोध को भी वे जानते थे और विश्वास था ये लोग दीक्षा होने नही देगे, पू० प्रवर्तिनी जी म०सा० की भी यही धारणा थी। फिर भी किसी प्रकार दीक्षा हो जाये, ऐसी इनकी हार्दिक इच्छा थी।

वैराग्यवती किरण की अन्तराय टूटी, पुण्य का उदय हुआ। कुछ लोग विघ्नसतोपी होते हैं तो कुछ विघ्ननिवारक भी। ऐसा ही हुआ। व्यावर के अग्रगण्य श्रावक उदयचन्दजी कास्टिया जयपुर पधारे, म०सा० के दर्शन किये। चर्चा के दौरान सपूर्ण स्थिति से अवगत हुए तो बोले—यह सौभाग्य व्यावर सघ को मिलना चाहिए। महाराज साहब ! आप वैरागिन किरण और इसके परिवारीजनो को इस तरह व्यावर भेज दीजिए कि विघ्नसनोपी जयपुर वालो को मालूम न पडे। वहाँ दीक्षा सानन्द हो जाएगी।

सर्वसम्मति से दीक्षा का निर्णय ले लिया गया। उदयचन्दजी व्यावर चले गये। व्यावर सघ के श्रावक भी दीक्षा की वात सुनकर सहमत हो गये।

पू० प्रवर्तिनी महोदया ने प्रसिद्ध पण्डित श्रीभगवानदासजी से दीक्षा का मुहूर्त निकलवाया तो मिगसिर वदी ६ का मुहूर्त निकला। जयपुर वालो ने फोन से सब समाचार व्यावर दे दिये। दो दिन पहले वैरागिन किरण को व्यावर के लिए रवाना कर दिया गया, उसके परिवार वाले भी पहुँच गये। जयपुर के मुख्य-मुख्य श्रावक श्रीमान हमीरमलजी सा० गोलेच्छा, सिरेहमलजी सा० मचेती, प्रेमचन्दजी सा० वाठिया आदि भी दीक्षा मे सम्मिलित होने व्यावर रवाना हो गये।

वि० स० २०१४ मिगसिर वदी ६ के शुभ दिन शुभ मुहूर्त मे पूज्या विज्ञानश्रीजी म० की निश्रा मे व्यावर स्थित दादावाडी के विशाल प्रागण मे वैराग्यवती किरण की दीक्षा सानन्द सपन्न हुई। उन्हे 'शशिप्रभाजी' नाम दिया गया और सज्जनश्रीजी म०सा० (चरितनायिकाजी) की शिष्या घोषित किया गया।

श्रद्धेय कवि सम्राट नूतन साध्वी शशिप्रभाजी की वडी दीक्षा कराने हेतु अजमेर पधारे। व्यावर से पूज्या विज्ञानश्रीजी म०सा० आदि भी नूतन साध्वीजी को साथ लेकर अजमेर पधारे और टोंक से चरितनायिकाजी भी चातुर्मास सानन्द पूर्णकर जयपुर जाते हुए अजमेर पधारी। इधर मणिप्रभाजी, जो जयपुर की ही लडकी हैं और जिनकी दीक्षा टोक मे हुई तथा पूज्या जैन कोकिला की शिष्या बनी, उनकी भी वडी दीक्षा अजमेर मे करने का विचार हुआ। अत शशिप्रभाजी के साथ ही मणिप्रभाजी की भी वडी दीक्षा अजमेर मे ही कवि सम्राट के कर-कमलो से स० २०१४, मिगसिर सुदी ११ को सानन्द सपन्न हुई।

वडी दीक्षा के पश्चात् पू० चरितनायिकाजी नूतन साध्वी श्रीशशिप्रभाजी आदि के साथ प्र. महोदया के चरणो मे जयपुर पधारी। वही नूतन साध्वीजी के अध्ययन की व्यवस्था हुई और छोटी-मोटी अनेक परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके उन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

अजमेर मे चैत्र मास की ओली आराधना करवाकर पू. विचक्षणश्रीजी म सा भी अपनी शिष्या मडली सहित पू प्रवर्तिनीजी के दर्शनार्थ जयपुर पधारी। यद्यपि आप सिर्फ दर्शनार्थ ही आई थी लेकिन

प्रवर्तिनीजी के वात्सल्य और आत्मीयता भरे आदेश को स्वीकार करके चातुर्मास हेतु वही रह गई। इसमे सघ का आग्रह भरी विनती भी एक कारण रहा।

चरितनायिकाजी व्याख्यान-भार से मुक्त थी। अत पू प्रवर्तिनीजी, श्री उपयोगश्रीजी और जैन कोकिलाजी की सत्प्रेरणा से 'पुण्य जीवन ज्योति' का लेखन कार्य आपने प्रारम्भ किया। आपका यह लेखन कार्य ५०० पृष्ठो के एक अनूठे वृहत् सचित्र ग्रन्थ के रूप मे जनता के समक्ष आया जो अपने आप मे एक इतिहास सजोए हुए है। इस ऐतिहासिक ग्रन्थ मे श्रमणी वृन्द की गौरवपूर्ण गाथा के साथ-साथ नारी जीवन का महत्व भी वर्णित हुआ है।

आपकी परिष्कृत और परिमार्जित लेखनी मे समुद्भूत यह एक ऐसी पुष्प मजूषा है जिसमे विभिन्न आकृतियो के सुरभित स्वर-सुमन अपनी सुगन्धि बिकीर्ण कर रहे है।

वस्तुत यह ग्रन्थरत्न आपके गम्भीर और तलस्पर्शी अध्ययन तथा प्रत्युत्पन्न मेधा का परिचायक है।

सवत् २०१५ का चातुर्मास सानन्द सम्पूर्ण हुआ।

पूज्या विचक्षणश्रीजी म सा का स २०१६ का चातुर्मास जयपुर मे था और टोक सघ के आग्रह के कारण आपश्री का चातुर्मास टोक निश्चित हो चुका था। टोक के लिए चातुर्मासार्थ आपने जयपुर से विहार भी किया, प्रथम मजिल सागानेर तक पधार भी गये लेकिन मन उखड रहा था, पाँव आगे जाने को तैयार न थे, कुछ अनहोनी घटित होने की आशका वार-वार चित्त को उद्विग्न बना रही थी। अत वापिस जयपुर लौट आई, टोक सघ को ना करवादी।

वज्रपात—अप्रत्याशित विरह परमोपकारिणी उपयोगश्रीजी का

जयपुर मे चातुर्मास सुन्दर ढग से चल रहा था। कार्तिक माह में पू प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी म सा के स्वास्थ्य मे कुछ गडबडी हुई। आयुर्वेदिक औषधियाँ चल रही थी पर कोई विशेष लाभ नही हो रहा था, स्वास्थ्य गिरता ही जा रहा था। गुरुवर्या की अस्वस्थ दशा से आप चिन्तित थी।

इधर उपयोगश्रीजी म सा के पाँव के अँगूठे मे ठोकर लग जाने से अँगूठा पक गया, दर्द होने लगा, उपचार से भी कोई लाभ न हुआ, पीव पड गई और रिसने लगी। तब जयपुर की प्रसिद्ध लेडी डाक्टर चन्द्रकाता को बुलाया गया।

कार्तिक कृष्णा ३ का दिन था। सन्ध्या का समय था। सभी का चौविहर का समय था। पू विचक्षणश्रीजी प्रतिदिन की भाँति गोचरी करके दादावाडी पधार गये थे।

डाक्टर आई। पू प्रवर्तिनी महोदया को देखकर लौट रही थी कि उपयोगश्रीजी म सा, ने आवाज देकर बुलाया और कहा—डाक्टर साहब देखिए। मेरा अँगूठा पक गया है। १५-२० दिन हो गये, पीव रिसती रहती है, बन्द होती ही नही।

पूज्यवर्या ने पट्टी खोली तो डाक्टर साहब ने देखकर कहा—केस सीरियस हो गया है, इजैक्शन के बिना ठीक नही होगा। आपको पेनिसिलिन का इजैक्शन लगा दूँ, जल्दी आराम आ जायेगा।

पूज्यावर्या ने चरितनायिका जी से इजैक्शन लगवाने के बारे मे पूछा तो उन्होने सहमति व्यक्ति कर दी, भावना यही थी शीघ्र आराम हो गया। लेकिन कौन जानता था कि ऐसा आराम हो जायेगा कि यह शरीर ही छूट जायेगा, जब हस ही चला जायेगा। तो बीमारी किसे होगी ? और कौन दुख का वेदन करेगा।

डाक्टर ने इजेक्शन लगाया और नीचे उतरने लगी। अभी वह जा भी नही पाई थी कि पूज्यवर्या ने चरितनायिका जी से कहा—सज्जनश्रीजी ! मेरी तो छाती मे जलन हो रही है।

चरितनायिका ने तुरन्त डाक्टर को आवाज दी। डाक्टर लौटी। पू० वर्या की दशा देखकर चकित रह गई। अचानक यह क्या हो गया ? क्षण भर मे समझ गई इजेक्शन रीएक्शन कर गया। अपना बैग टटोला लेकिन पेनिसिलिन के रिएक्शन को समाप्त कर दे, ऐसा कोई इन्जैक्शन, टेबलेट या कैप्सूल नही मिला। तुरन्त एक इन्जैक्शन लेने के लिए दौडाया।

तब तक पू० वर्या बेहोश हो चुकी थी। इजैक्शन आने पर लगाया भी, परन्तु पेनिसिलिन का शॉक अपना काम पूरा कर चुका था, नया इजैक्शन बेअसर साबित हुआ।

पू० श्री की जिह्वा बाहर निकल आई। चरितनायिका जी ने उनका सिर अपनी गोद मे ले लिया। नब्ज टटोली तो गायब ! सारा शरीर ठडा पड चुका था। दूसरा डाक्टर बुलवाया। वह आया तब तक तो खेल खत्म हो चुका था, हस उड चुका था। चरितनायिका की गोद मे गुरुवर्या की आत्मा ने स्वर्ग प्रयाण कर दिया था, नश्वर देह ही वहाँ पडी थी।

सभी को घोर दुख हुआ। पू० प्रवर्तिनी जी भी इस वज्रपात से विह्वल हो गई थी। सन्ध्या समय श्राविकाएँ प्रतिक्रमण के लिए आती थी, वे भी इस अघटित से घोर दुखी हुईं।

तथ्य यह है कि मौत बहाने ढूँढती है। उपयोगश्री जी म० सा० के लिए पेनिसिलिन का इन्जैक्शन ही काल का पैगाम बन गया। प्राणी हारता है और काल जीतता है। यहाँ भी काल विजयी हुआ।

उपयोगश्रीजी म० सा० विशिष्ट व्यक्तित्व वाली आर्यारत्न थी। वे गुरुसेवा मे सदा तत्पर रहती थी। उत्तम सयमी जीवन, मधुर-गम्भीर वाणी, विशाल सहृदयता, उदारता, सुन्दर व्यवहार कुशलता, अनुपम मेधा सभी कुछ था पूज्या उपयोगश्रीजी मे। गुरुवर्या की सेवा मे इतनी तत्पर कि मात्र तीन चातुर्मासो के अतिरिक्त अपनी गुरुवर्या से कभी अलग नही रही। निस्पृहता इतनी कि अपने उपदेशो से प्रभावित होकर जिन्होने दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की उन सबको अपनी शिष्या न बनाकर गुरुवर्या की शिष्या घोषित किया। चरितनायिकाजी की दीक्षा मे भी आपकी ही प्रेरणा और सद्प्रयत्न थे, किन्तु इन्हे भी गुरुवर्या पूज्य प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी म० सा० की शिष्या ही घोषित करवाया।

ऐसी निस्पृह सेवाभावी साध्वीरत्न के स्वर्गवास से पूरा समाज ही शोक सागर मे निमग्न हो गया, शवयात्रा मे हजारो की जनमेदिनी थी। सभी अपनी शोक श्रद्धाजलि समर्पित कर रहे थे।

दुख तो साध्वी मडल को भी बहुत हुआ, किन्तु जैन साधना का प्रथम सोपान ही समता है अत समतापूर्वक इस वज्र प्रहार को साध्वी मडल ने सहन किया।

पूज्याश्री के देवलोक के पश्चात पू० प्रवर्तिनीजी के मडल की सम्पूर्ण जिम्मेदारी चरितनायिका जी पर आ गई। अत चातुर्मास तथा शेप काल मे कही जाने का प्रश्न ही समाप्त हो गया और पू० प्र० वर्या की सेवा शुश्रूषा मे सलग्न हो गई है।

चरितनायिका का विशिष्ट गुण, सेवा

चरितनायिका जी मे सेवा का विशिष्ट गुण है। यद्यपि आपका बचपन लाड-प्यार मे बीता, कभी काम करने का अवसर ही न आया, शादी भी बडे घर मे हुई, फिर भी सेवा के लिए सदा तत्पर

रहती। वडा या छोटा कैसा भी काम हो, लगन से करती। काम का इतने सुचारु रूप से करती कि देखने वाले यह समझते कि आप इस कार्य मे निष्णात हैं।

जयपुर मे पहले आयम्बिल खाता नही था। अत कभी-कभी दो-दो मटकियाँ (घडे) पानी की आप घरो से ले आती। गोचरी आदि कार्यों मे भी आप निष्णात थी। कई बार व्याख्यान मे सीधी उठकर गोचरी हेतु चली जाती। आपके मन मे तनिक भी विचार नही आता कि मै इतने बडे घर की बहू हूँ, गोचरी के लिए कैसे जाऊँ।

आपका तो सीधा सिद्धान्त है कि इस नश्वर शरीर से जितनी भी दूसरो की सेवा की जा सके, करनी चाहिए अन्यथा एक दिन तो यह मिट्टी मे मिलना है। सेवा से ही मानव शरीर की सार्थकता है।

किसी ने कहा है—

तन से सेवा कीजिए, मन से भले विचार।
धन से इस ससार मे, करिए पर उपकार ॥

सज्जनो का तो कार्य ही पर-उपकार करना है और इस रूप मे आपश्री ने अपने सज्जनश्री नाम को सदा सार्थक किया है।

चातुर्मास के पश्चात पू० श्री विलक्षणश्री म सा का विचार मालपुरा की ओर विहार करने का था। किन्तु जयपुर के जौहरी अध्यात्मयोगी श्रीमान् अमरचन्दजी नाहर ने मालपुरा का छरी पालित सघ ले जाने की भावना व्यक्त की। आपश्री ने उनकी भावना को स्वीकृति प्रदान कर दी।

प्रस्थान का समय निकट आ रहा था। चरितनायिका जी ने सोचा, प्रस्थान-विदाई समारोह-पूर्वक होना चाहिए। ऐसा विचार करके आपने जयपुर के अग्रगण्य श्रावको के बुलवाया और उन्हे प्रेरणा दी कि जैन कोकिला पूज्या श्री विचक्षणश्रीजी म सा को 'व्याख्यान भारती' पदवी से विभूषित किया जाय।

प्रस्थान के दिन रामनिवास वाग मे स्थित म्यूजियम के विशाल प्रागण मे जयपुर श्री सघ ने आपका अभिनन्दन करते हुए अभिनन्दन पत्र भेंट किया तथा चरितनायिकाजी द्वारा रचित एक गीतिका को स्थानीय जैन नवयुवक मडल ने गायी। जिसके भावो मे अवगाहन कर सभी के नेत्र सजल हो गये। तदुपरान्त सर्व सघ के समक्ष जयपुर खरतरगच्छ सघ ने पू० जैन कोकिला जी को 'व्याख्यान भारती' की पदवी से विभूषित किया।

इसके उपरान्त सर्व सघ के साथ आपने मालपुरा प्रस्थान किया। नाहर सा० ने सघ भक्ति का अपूर्व लाभ लिया।

आचार्यश्री का अप्रत्याशित वियोग

स २०१७ के चातुर्मास के पश्चात् पालीताना मे विराजित आचार्य सम्राट वीरपुत्र श्री आनन्द सागरजी म सा का पौष सुदी १० को हृदयगति रुक जाने से अचानक ही स्वर्गवास हो गया। आपश्री के पाट पर कविकुलकिरीट श्रद्धेय गुरुदेव कवीन्द्रसागरजी म सा को विराजमान किया गया किन्तु दुर्भाग्य यह रहा कि सिर्फ ११ महीने की अवधि मे ही स० २०१८ की फाल्गुन शुक्ला ५ को आप भी देवलोक प्रयाण कर गये।

श्रद्धेय गुरुदेव बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, आशुकवि थे। सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी मे रचित आप की रचनाएँ बेजोड हैं, गायको व श्रोताओ को मन्त्रमुग्ध बना देती हैं।

आपका देहावसान सघ की अपूरणीय क्षति है।

वि० स २०१६ मे पण्डित प्रवर श्री दयारामजी से श्री शशिप्रभाजी ने सस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया और अल्प समय मे ही अच्छी गति करली फिर पण्डितजी की प्रेरणा से वाराणसी विश्व-विद्यालय की प्रथमा परीक्षा का फार्म भर दिया और पण्डितजी की प्रेरणा से ही चरितनायिकाजी ने मध्यमा का फार्म भर दिया।

लेकिन परीक्षा के समय समस्या यह आई कि परीक्षा केन्द्र ब्यावर मे था, पूज्या प्रवर्तिनीवर्या को छोडकर कैसे जाये ? यद्यपि शीतलश्रीजी म सा, रमणीकश्रीजी म सा, जिनेन्द्रश्रीजी म सा आदि साध्वियाँ सेवा मे थी पर व्याख्यान का भार कौन सँभाले ? यह सबसे बडी समस्या थी। किन्तु गुरुदेव की कृपा और पूज्य प्रवर्तिनीजी के आशीर्वाद से टोक विराजित कल्याणश्रीजी म सा आदि जयपुर पधार गये। समस्या हल हो गई।

पू प्रवर्तिनीजी के आदेश से आप (चरितनायिका) शशिप्रभाजी के साथ ब्यावर पधारे और परीक्षा दी। वापिस जयपुर लौटते समय मार्गस्थ अजमेर मे निर्मलाश्रीजी की बडी दीक्षा हेतु अनुयोगा-चार्य श्रद्धेय कान्तिसागरजी म सा और पूज्य श्री दर्शनसागरजी म सा पधारे हुए थे। बडी दीक्षा का दिन समीप ही था अत पूज्येश्वर के आदेश और विजयेन्द्रश्रीजी म सा के आग्रह के कारण वडी दीक्षा तक आपको अजमेर रुकना पडा।

इसी दौरान पू प्रवर्तिनीजी की प्रेरणा से जयपुरश्री सघ के अग्रणी श्रावक पू अनुयोगाचार्य के पास चातुर्मास की विनती लेकर गये, जिसे उन्होने स्वीकृति प्रदान कर दी।

वडी दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। तदुपरान्त चरितनायिकाजी शशिप्रभाजी को साथ लेकर उसी सध्या को रवाना हुईं और उग्र विहार करके पू प्रवर्तिनीजी के चरणो मे जयपुर पधार गईं।

अनुयोगाचार्य का जयपुर चातुर्मास

कुछ दिन वाद पू अनुयोगाचार्यजी ने भी जयपुर के लिए विहार कर दिया। कुशल गुरुदेव की पुण्यभूमि मालपुरा के दर्शन करते हुए जयपुर पधारे। जयपुर सघ ने वडी धूम-धाम वैंड वाजो के साथ नगर प्रवेश कराया। व्याख्यान क्रम चालू हो गया। आप इतनी ओजस्वी, मधुरवाणी मे प्रवचन फरमाते कि श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते।

मध्याह्न मे चरितनायिकाजी जयानन्द केवलीरास अपनी सुरीली वाणी मे फरमाती।

अनुयोगाचार्य के पधारने से धर्म की लहर सी आ गई। वाल साध्वी शशिप्रभाजी ने अठाई की तपस्याएँ की। फिर तो झडी ही लग गई। पचरगो, मास-क्षमण आदि तप खूब हुए। अठाई महो-त्सव, वरघोडा, पूजा-प्रभावना आदि से चातुर्मास सफल रहा।

आगे भी पू चरितनायिकाजी के स २०, २१, २२, २३, २४ के चातुर्मास गुरुवर्या पू प्रवर्तिनीजी की सेवा मे जयपुर मे ही हुए। आपश्री ने ज्ञान-ध्यान और सेवा का खूब लाभ लिया।

जयपुर मे सामूहिक व्याख्यानो की लहर

जयपुर मे स० २०२२ मे व्याख्यानो की लहर आई। उस समय दिगम्बराचार्य देशभूषणजी म, तपागच्छ के विशालविजयजी म सा, तेरापथी श्री नगराजजी म, खरतरगच्छ की चरितनायिका श्री सज्जनश्रीजी म सा और स्थानकवासी किसी विद्वान आचार्य का चातुर्मास था। प्रति रविवार को एक ही मच से सभी का व्याख्यान होता। पन्द्रह-बीस हजार श्रोताओ की उपस्थिति हो जाती। साम्प्रदायिक सुमेल और सद्भाव की छटा देखते ही बनती।

यद्यपि सभी पूज्यवरों की अपनी-अपनी प्रवचन शैली, भाषा प्रवाह और रसमयता थी किन्तु सज्जनश्री जी म सा की शैली मे कुछ ऐसा अद्भुत आकर्षण था, भाषा मे कुछ ऐसा रग था, शैली-वाणी में कुछ ऐसी मिश्री सी मिठास थी कि तालियों की गड़गड़ाहट से सारा गगन गूँज उठता, श्रोताओं पर आपकी भाषा का रग चढ जाता, आपकी सुरीली शब्दावली उनके कानो मे होकर हृदय तक पहुँच जाती, तन-मन सब सराबोर हो जाता। जयपुर सघ आपश्री को अमूल्य दिव्यमणि के समान मानने लगा था।

चरितनायिका जी के प्रवचनो का मुख्य विषय सेवा होता। आप विभिन्न तर्कों और उदाहरणों से सेवा का महत्व प्रतिपादित करती और सेवाधर्म को जीवन मे उतारने की प्रेरणा देती।

आपकी कथनी-करनी मे एकता है, उनके जीवन मे भी सेवाधर्म साकार है। यद्यपि भर्तृहरि ने सेवाधर्म को अत्यन्त कठिन और योगियो के लिए भी अगम्य कहा है तथापि उसी अति कठिन सेवाधर्म को अपने अपना सहज स्वभाव बना लिया है।

पू० पवर्तिनी श्रीज्ञानश्रीजी म सा का महाप्रयाण

सवत् २०२३—पू प्रवर्तिनीजी म सा की वार्धक्यावस्था पूर्णता पर थी किन्तु उनकी ज्ञान-ध्यान-साधना यथावत् चल रही थी। शरीर सामान्यत स्वस्थ ही था। स्फूर्ति और अप्रमत्तता थी। यद्यपि सेवा मे साध्वियाँ तत्पर रहती थी, पर वे अपना सब काम स्वय ही करती थी। आलस्य का नाम भी नही था। चैत्र कृष्णा ४ को चरितनायिका जी से केश लोच भी करवाया। स्थण्डिल के लिए २ मजिल नीचे पधारती थी।

चैत्र कृष्णा ७ का दिन, प्रात का समय, पूज्या प्रवर्तिनीश्री जी म० सा० स्थडिल के लिए २ मजिल नीचे उतरी। सदा की भाँति चरितनायिका जी साथ ही थी। पूज्या प्रवर्तिनी जी तिरपनी मे पानी भर रही थी कि सहसा ही बोल उठी—सज्जनश्रीजी! मेरा हाथ नही उठता।

चरितनायिकाजी एकदम घबडा गई, अन्य साध्वियो को बुलाया, सभी मिलकर पूज्याश्री को पाट पर ले आई। उस समय तक प्रवर्तिनी जी को कुछ होश था, बोलना चाहा पर न जबान हिली और न ही आवाज निकली, बेसुध हो गयी।

प्रात पूजा आदि के उपरान्त श्रावक-श्राविका प्रवर्तिनी जी से मागलिक सुनने आते थे, वे आये और आपकी यह दशा देखकर चिन्तित हो गये। तुरन्त डाक्टर बुलवाया। उसने दशा का निरीक्षण करके बताया—आपको हेमरेज (दिमाग की नस फट जाना) हो गया है, साथ ही पक्षाघात (पेरेलिसिस) का भी हल्का सा असर है। इसकी मियाद ७२ घण्टे है। बचना तो बहुत ही मुश्किल है। फिर भी हॉस्पीटल ले चलिए। हम अपना पूरा प्रयास करेगे कि जीवन लौट आये।

इतना कहकर डाक्टर चला गया। सभी साध्वी और श्रावक-श्राविकाओ ने मिलकर सलाह की और इस निर्णय पर पहुँचे कि हॉस्पीटल नही ले जाना।

इस निर्णय का एक आधार पू प्रवर्तिनीजी की इच्छा भी थी। उन्होने साध्वियो से कह रखा था—यदि मैं बेहोश हो जाऊँ तो न कभी हॉस्पीटल ले जाना और न डाक्टरो का हाथ मेरे शरीर से लगवाना।

स्थिति यह थी कि पू प्रवर्तिनीजी की ७० वर्ष की लम्बी सयम पर्याय मे न कभी पुरुष का स्पर्श हुआ था और न डोली मे ही बिठाने का प्रसग उपस्थित हुआ। अत सम्पूर्ण साध्वी मडल और प्रमुख श्राविका शिखरबाई सा आदि द्वारा हॉस्पीटल न ले जाने का निर्णय किया गया।

परन्तु फिर भी जैसी कि लोकोक्ति है—जब तक साँस, तब तक आस। जीवन बचाने का मनुष्य हर सम्भव प्रयास करता ही है। पू प्रवर्तिनीजी की साँस भी चल रही थी। अत लेडी डाक्टर को बुला कर इंजैक्शन भी लगवाया गया पर कोई परिणाम न निकला।

पू प्रवर्तिनी जब से बेहोश हुईं तभी से नवकार मन्त्र की धुन, औपदेशिक भजन, सज्झाय, स्तवन आदि होते रहे।

आखिर चैत्र कृष्णा १० का दुर्भाग्यपूर्ण दिन आया। साँस धीमी होते-होते सध्या के ६-५० पर बन्द हो गई। हल्की सी फट् की आवाज हुई, जिसे समीप बैठी चरितनायिकाजी ने सुना और पू प्रवर्तिनी जी का आत्मा सहस्रार केन्द्र से निकलकर, अपने ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गया।

गुरुवर्याजी का जीवन जल मे कमलवत् सर्वथा निर्लेप था। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की ज्योति, सरलता, कोमलता की साक्षात् प्रतिमा, तात्विक ज्ञान की प्रज्वलित प्रभा, अप्रमत्त साधिकार ज्ञानध्यान-जपयोगिनी, सर्वथा निश्छल स्वभाव, दुराव-छिपाव रहित सर्वथा सरल-सहज जीवन था आपश्री का।

उज्ज्वल गेहुआ रग, स्मितमयी तेजस्वी मुखाकृति, तप स्तेज से दीप्त भाल, परमशात अधखुले नयन, सरल किन्तु तीक्ष्ण नासिका, मध्यम कद, सुन्दर देहयष्टि, अत्यन्त कोमल करतल, शखावर्त जाप की अभ्यस्त अँगुलियाँ, तर्जनी आदि पर घूमता अँगूठा—ऐसा आकर्षक और प्रभावशाली बाह्य व्यक्तित्व था आपश्रीजी का। जिन्होने उनके इस रूप को देखा है, आज भी वह उनके नेत्रो मे चलचित्र की तरह घूमता रहता है।

ससारी जीवन मे भी आप सिर्फ बैलगाडी और ऊँट गाडी मे ही बैठी। अन्य किसी वाहन का उपयोग ही नही किया।

किन्तु ससारी जीवन रहा ही कितना! ९ वर्ष की आयु मे माता-पिता ने विवाह के बधन मे बाँध दिया। लेकिन भावी को तो उनका उत्तम सयमी जीवन मजूर था। विवाह के छह महीने बाद ही पतिदेव का स्वर्गवास हो गया। ससुर गृह जाने का प्रश्न ही उपस्थित नही हुआ। १३ वर्ष की किशोर वय मे ही स्वनाम धन्या पू पुण्यश्रीजी म सा के सान्निध्य मे भागवती दीक्षा स्वीकार करके सयम के कटकीय मार्ग पर चल पडी। ७० वर्ष तक निर्दोष सयम का पालन किया और ८३ वर्ष की आयु मे इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया।

आपश्री की अन्तिम यात्रा मे हजारो व्यक्ति सम्मिलित हुए और सश्रद्धा अश्रु श्रद्धाजलि समर्पित करके अपने-अपने गन्तव्य स्थानो की ओर चले गये।

एक चमत्कार आँखो देखा

पूज्या प्रवर्तिनीजी के प्रति अनन्य श्रद्धा थी मद्रास निवासी श्रीमान मिश्रीमलजी और उनकी पत्नी की। वे परिवार सहित पूज्याश्री के अन्तिम दर्शनो के लिए जयपुर आये, लेकिन गाडी के लेट होने से अन्तिम दर्शन न हो सके। सध्या हो चुकी थी। सीधे मोहनवाडी पहुँचे। देखा तो सिर की ओर दिव्य आभा विकीर्ण ज्योति अभी भी प्रज्वलित है जो चारो ओर सुगन्धमय प्रकाश विकीर्ण कर रही है।

इस चमत्कार को देखकर वे अभिभूत हो गये। साध्वियो को जब सुनाया तो सभी श्रद्धावलत हो गई।

पू प्रवर्तिनीजी के वियोग से सपूर्ण साध्वीमण्डल स्वय को अनाथ सा अनुभव कर रहा था, सभी को गहरा शोक था। ऐसे समय मे पू श्रीविजयश्रीजी म सा पू श्री कल्याणश्रीजी म सा, आदि ने सबको धैर्य बँधाया, समवेदना प्रकट की।

की विशेषता यह थी कि यह चातुर्मास अपनी जिम्मेदारी पर किया। क्योकि अब तक के सभी चातुर्मास पू प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी महाराज के आदेश से हुए अथवा उनकी निश्रा मे हुए।

वीरबालिका विद्यालय की ओर से

चरितनायिका जी की दीक्षा रजत जयन्ती एव विदाई समारोह—चरितनायिकाजी को भागवती दीक्षा ग्रहण किये हुए २५ वर्ष हो रहे थे। इस उपलक्ष्य मे वीर बालिका विद्यालय ने कार्तिक सुदी ५ (स्कूल का स्थापना दिवस) को आपश्री की दीक्षा रजत जयन्ती मनाई। आपके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए भावाभिसिंचित अभिनन्दन पत्र भेंट दिया गया।

जयपुर से विदाई

चातुर्मास की समाप्ति पर जयपुर श्रीसघ ने 'शिवजीराम भवन' मे विदाई समारोह का आयोजन किया। जिसमे सैकडो व्यक्ति उपस्थित थे। प्रमुख व्यक्तियो ने चरितनायिकाजी के २५ वर्षीय निर्दोप सयमी जीवन पर प्रकाश डाला, आपके विशिष्ट गुणो का वर्णन किया और सद्कामना की कि जयपुर का यह कोहिनूर हीरा दशो दिशाओ मे अपनी भव्य आभा विकीर्ण करता रहे।

मन्त्रिवरश्री कोठारीजी ने सघ की ओर से कमली ओढाकर आपका बहुमान किया, सेठश्री कल्याणमलजी गोलेच्छा ने भी आपको कमली ओढाई। कमला देवी बाठिया ने अपनी सुरीली बुलन्द आवाज में विदाई गीतिका गाई जिसके भाव इतने मार्मिक थे कि उपस्थित जन समूह के नयन सजल हो उठे।

अन्त मे सभी के श्रद्धा सुमन स्वीकृत करते हुए आपश्री ने भावोद्‌गार व्यक्त किये—"इतने समय मै जयपुर मे रही हूँ, किसी प्रकार का अविनय हुआ हो, कटुवचन निकल गया हो, किसी का दिल दुखाया हो तो हृदय से क्षमा प्रार्थिनी हूँ।"

तदुपरान्त विदाई समारोह सम्पन्न हो गया।

वहाँ से आप अपनी गुरु-बहनो (शीतलश्रीजी, जिनेन्द्रश्रीजी) तथा शिष्याओ (शशिप्रभाजी, प्रियदर्शनाजी) के साथ रामलीला मैदान की ओर पधारी। सैकडो व्यक्ति साथ थे। जयघोपो से धरागमन गूँज रहे थे। रामलीला मैदान मे आपने सबको मागलिक सुनाया। सभी भरे हृदय लिये हुए अपने-अपने गन्तव्य स्थान की ओर चले गये और आपने अपने कदम अजमेर होते हुए नाकोडाजी की ओर बढा दिये। नाकोडा जाने का कारण यह था कि पू० अनुयोगाचार्य श्री कान्तिसागरजी म सा व पू० श्री दर्शनसागरजी म सा की निश्रा मे बाडमेर सघ की ओर से उपधान हो रहा था तथा उनकी आज्ञानुसार नूतन साध्वी प्रियदर्शनाजी की बडी दीक्षा भी वही करवानी थी।

मार्गस्थ अजमेर, ब्यावर, पाली, जोधपुर आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए तीर्थ शिरोमणि नाकोडा के दर्शनार्थ पहुँचे। वही वि स २०२४ की माघ कृष्णा एकादशी को उपधान की माला के दिन बडे ठाठ-बाट से बडी दीक्षा सपन्न हुई नूतन साध्वीश्री प्रियदर्शनाजी म सा की।

इस अवसर पर अनेक क्षेत्रो के लोग आये हुए थे। अन्य लोगो से आपकी (चरितनायिकाजी की) प्रशसा सुनकर और प्रत्यक्ष आपके व्याख्यान आदि से प्रभावित होकर अपने-अपने क्षेत्र मे चातुर्मास की आग्रह भरी विनती करने लगे। किन्तु आपश्री ने बीकानेर चातुर्मास की विनती स्वीकारी। उसका एक कारण यह भी था कि श्री शशिप्रभाजी को 'शास्त्री' की परीक्षा दिलवानी थी और परीक्षा केन्द्र बीकानेर ही था।

नाकोडा से माघ शुक्ला ३ के दिन विहार करके जोधपुर पधार गई, अपनी शिष्य-मण्डली के साथ। अनुयोगाचार्यजी भी जोधपुर पधार गये।

की वात्सल्यपूर्ण स्रोतस्विनी प्रवाहित रही। प्रत्येक समारोह में वे चरितनायिकाजी को सादर आमन्त्रित करते और अपने व्याख्यान में अपने ही मुख से चरितनायिकाजी की विद्वत्ता और सद्गुणो की मुक्त-कण्ठ से प्रशसा करते।

सुनकर लोग चकित रह जाते, सोचते—पूज्यश्री की कितनी उदारता। तपागच्छ मे जहाँ श्रावक लोग साध्वी का व्याख्यान भी सुनना पसन्द नही करते, वहाँ ये आचार्य होकर भी अन्य गच्छ की साध्वी की प्रशसा अपने मुख से करते है।

वस्तुत यह प्रशसा चरितनायिकाजी के विशिष्ट निर्दोष-श्रमणाचार की थी और थी उदारता, सहृदयता, सरलता, प्रकाड विद्वत्ता आदि अलभ्य गुणो की जो इनमे साकार है।

इसी कारण आपका श्रमणी मडल अत्यधिक समादृत हुआ। प्रत्येक सक्रान्ति समारोह पर चरित-नायिकाजी की उपस्थिति अनिवार्य थी।

एक बार कोचरो के चौक में विराट् रूप मे सक्रान्ति महोत्सव का आयोजन था और उसी के साथ था योगोद्वाहक मुनिजनो का पदवी महोत्सव तथा उपधान तप के आराधको का माल महोत्सव। तीन आयोजन एक साथ होने से विशाल जनसमूह तो एकत्र होना ही था। २०-२५ बसे बाहर से आयी, इतने ही खुले टिकट आये थे। जयपुर से एक बस पजाबी समुदाय की आई थी और जयपुर से चरित-नायिकाजी की मातुश्री तथा सेठ कल्याणमलजी गोलेच्छा (चरितनायिका के ससारपक्षीय पति) का भी आगमन हुआ था। बीकानेर के लोग तो थे ही। चालीस हजार श्रोता सख्या हो गई थी।

इस विशाल जन-मेदिनी मे चरितनायिकाजी ने जो जोशीला, प्रभावपूर्ण, धारा प्रवाह भाषण दिया तो सभी श्रोता दाँतो तले अँगुली दबा गये। समझ ही नही पाये कि यह साध्वी है अथवा सदेह सरस्वती। कैसी सुरीली आवाज है मानो सरस्वती की वीणा ही झकृत हो रही हो, एक-एक शब्द सरस है, गजब का आकर्षण और प्रेषणीयता है। भाषण क्या है? चमत्कार है, जादू है।

इस भाषण को सुनकर कल्याणमलजी के नेत्र भी हर्षातिरेक से भर आये और बीकानेर ही नही आस-पास के सभी क्षेत्रो मे चरितनायिकाजी ख्याति प्रसरित हो गई।

तेरापथ के विद्वानमुनि शतावधानी श्रीराजकरणजी व पार्श्वचन्द्र गच्छ के विद्वान मुनि श्रीसुरेश चन्द्रजी म० के साथ भी आपके कई भाषण हुए। सर्वत्र आपकी वक्तृत्व कला की भूरि-भूरि प्रशसा हुई।

चरितनायिकाजी की विशाल हृदयता

चातुर्मास के पश्चात एक बार अपनी शिष्या समुदाय के साथ भीनासर पधारी। वहाँ पूजा महोत्सव था। उसमे सम्मिलित होने के लिए पू० समुद्रसूरिजी भी अपने शिष्य-शिष्या-मडल के साथ पधारे थे। पूजा के साथ तपगच्छ सघ की ओर से स्वाधर्मिवात्सल्य का भी आयोजन था। पूजा समाप्ति पर आप जैसे उठकर जाने लगे कि श्रावको ने बहरने का अत्यधिक आग्रह किया। आप विचार मे पड़ गयी कि पात्रे तो लाये ही नही, बहरे कैसे?

आपकी त्वरित बुद्धि ने तुरन्त उपाय सोच लिया। तपागच्छीय प्रवीणश्री जी म० सा० आदि से पात्रे लिए और उनके साथ बहरने गई। आपश्री के हाथ मे लाल पात्रे देखे तो पहले तो लोग चकित हुए और फिर आपकी विशालहृदयता का अनुभव करके आनन्दित हो उठे।

बहरा हुआ आहार तपागच्छीय साध्वीजी के साथ आपने खाया। आपके व्यवहार से सभी अभिभूत/आह्लादित हो गये।

बीकानेर का वह ऐतिहासिक चातुर्मास आज भी लोगो की स्मृति मे ताजा है और वहाँ के लोग अब भी दर्शनार्थ आते रहते है।

कापरडा सघ

जोधपुर निवासी चादजीवाई सा० की भावना पू० श्री कातिसागरसूरिजी म० की निश्रा मे कापरडा सघ निकालने की थी और पूज्यश्री भी स्वीकृति दे चुके थे। सूरिजी की आज्ञा और चांदजोवाई सा० के अत्याग्रह से कापरडा तक आप सभी साथ रही। जोधपुर से आई हुई मुख्य श्राविका भी बीकानेर तक साथ चलने को तैयार हो गयी।

कापरडा से पूज्य गुरुदेव री आज्ञा लेकर आप सभी पीपाड, साथीन होते हुए नागौर पधारी। वहाँ पूज्याश्री चचलजी म० सा०, कमलाश्रीजी म सा आदि विराजमान थे। उनकी निश्रा मे फागुन शुक्ला ५ को पूज्य कवि सम्राट का स्वर्गारोहण समारोह मनाया और मध्याह्न मे दादा गुरुदेव की पूजा भणाई।

वहा से विहार कर आप सभी गोगोलाव होते हुए फाल्गुन शुक्ला ११ के दिन गगाशहर पधारे।

बीकानेर चातुर्मास स० २०२५ का

आपके बीकानेर आगमन के समाचार त्वरितगति से नगर भर मे फैल गये। वडे धूमधाम से नगर-प्रवेश कराया गया। हजारो लोग साथ थे। जुलूस वाजारो मे होता हुआ निकला। चितामणिजी व आदेश्वर जी के मन्दिरो के दर्शन किये और शिष्यामडली सहित रागडी चौक स्थित सुगनजी के उपाश्रय मे पहुँचे।

वहाँ आपने जोशीला प्रवचन दिया जिसे सुनकर सभी लोग गद्गद हो गये। प्रतिदिन व्याख्यान का क्रम चालू हो गया।

शवाश्वत ओली पर्व आने वाला था, अत आपने श्रीपालचरित्र शुरू कर दिया। समीक्षात्मक विवेचन और सुन्दर वाचन की सभी ने मुक्त कठ से प्रशसा की।

रामनबमी और महावीर जयन्ती का समारोह हर्पोल्लासपूर्वक मनाया गया तथा चैत्री पूर्णिमा के दिन भी अच्छी तरह पर्वाराधन किया गया।

तत्वज्ञ श्रावको के आग्रह पर आपने राजप्रश्नीय सूत्र का वाचन किया। आपकी विवेचना शैली से प्रभावित होकर जनता खिची चली आती, उपाश्रय का हॉल भर जाता, कितनी ही श्राविकाएँ तो वरावर के उपाश्रय की खिडकियो मे वैठकर आपका व्याख्यान सुनती।

पूज्या शशिप्रभाजी ने वैशाख के महीने मे शास्त्री के प्रथम खण्ड की निर्विघ्न परीक्षा दी।

चातुर्मास प्रारम्भ हो गया। आपने आचाराग के वाचन का निर्णय लिया क्योकि इसमें आचार धर्म का विशद विवेचन हे। ज्ञानपूजा के साथ सूत्र का प्रारम्भ हुआ। आपकी व्याख्यान शैली से श्रोता झूम उठते थे। वास्तव मे वस्तु का विश्लेपण करने की आप मे अद्भुत क्षमता हे। इसीलिए गच्छ मे आप सर्वोपरि आगमज्ञा कही जाती है।

इसी चातुर्मास म आचार्य विजयवल्लभसूरिजी के पट्टधर शिष्य पू० श्री विजयसमुद्रसूरिजी म० सा० अपनी शिष्यमडली के साथ वर्षावास हेतु बीकानेर पधारे हुए थे। उनके साथ १८ मुनिराज और अनेक साध्वियाँ थी।

स्व० आचार्य विजयवल्लभसूरिजी म० सा० बडे ही समयज्ञ, निश्छल और उदार विचारो वाले थे और थे गच्छ भेद भाव से सर्वथा परे। उनकी इस विशाल हृदयता का असर इनके साधु समुदाय पर पडा अत आज भी वे किसी से मिलते है तो वडा स्नेह व आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करते है।

खरतरगच्छ के साधु-साध्वी तो वैसे भी प्राय सरल हृदयी और व्यवहार कुशल होते हैं। दोनो ओर के परस्पर सद्व्यवहार के कारण आचार्य श्री विजयसमुद्रसूरिजी व उनके समुदाय का चरितनायिका जी और उनको शिष्यामडलो के साथ वडा ह। सो[illegible] व्यवहार था। स[illegible] चातुर्मास मे आचार्यश्री

की वात्सल्यपूर्ण स्रोतस्विनी प्रवाहित रही। प्रत्येक समारोह में वे चरितनायिकाजी को सादर आमन्त्रित करते और अपने व्याख्यान मे अपने ही मुख से चरितनायिकाजी की विद्वत्ता और सद्गुणो की मुक्त-कण्ठ से प्रशसा करते।

सुनकर लोग चकित रह जाते, सोचते—पूज्यश्री की कितनी उदारता। तपागच्छ मे जहाँ श्रावक लोग साध्वी का व्याख्यान भी सुनना पसन्द नही करते, वहाँ ये आचार्य होकर भी अन्य गच्छ की साध्वी की प्रशसा अपने मुख से करते हैं।

वस्तुत यह प्रशसा चरितनायिकाजी के विशिष्ट निर्दोष-श्रमणाचार की थी और थी उदारता, सहृदयता, सरलता, प्रकाड विद्वत्ता आदि अलभ्य गुणो की जो इनमे साकार है।

इसी कारण आपका श्रमणी मडल अत्यधिक समादृत हुआ। प्रत्येक सक्रान्ति समारोह पर चरित-नायिकाजी की उपस्थिति अनिवार्य थी।

एक बार कोचरो के चौक में विराट् रूप में सक्रान्ति महोत्सव का आयोजन था और उसी के साथ था योगोद्वाहक मुनिजनो का पदवी महोत्सव तथा उपधान तप के आराधको का माल महोत्सव। तीन आयोजन एक साथ होने से विशाल जनसमूह तो एकत्र होना ही था। २०-२५ बसे बाहर से आयी, इतने ही खुले टिकट आये थे। जयपुर से एक बस पजाबी समुदाय की आई थी और जयपुर से चरित-नायिकाजी की मातुश्री तथा सेठ कल्याणमलजी गोलेच्छा (चरितनायिका के ससारपक्षीय पति) का भी आगमन हुआ था। बीकानेर के लोग तो थे ही। चालीस हजार श्रोता सख्या हो गई थी।

इस विशाल जन-मेदिनी मे चरितनायिकाजी ने जो जोशीला, प्रभावपूर्ण, धारा प्रवाह भाषण दिया तो सभी श्रोता दाँतो तले अँगुली दबा गये। समझ ही नही पाये कि यह साध्वी है अथवा सदेह सरस्वती। कैसी सुरीली आवाज है मानो सरस्वती की वीणा ही झकृत हो रही हो, एक-एक शब्द सरस है, गजब का आकर्षण और प्रेषणीयता है। भाषण क्या है? चमत्कार है, जादू है।

इस भाषण को सुनकर कल्याणमलजी के नेत्र भी हर्षातिरेक से भर आये और बीकानेर ही नही आस-पास के सभी क्षेत्रो मे चरितनायिकाजी ख्याति प्रसरित हो गई।

तेरापथ के विद्वानमुनि शतावधानी श्रीराजकरणजी व पार्श्वचन्द्र गच्छ के विद्वान मुनि श्रीसुरेश चन्द्रजी म० के साथ भी आपके कई भाषण हुए। सर्वत्र आपकी वक्तृत्व कला की भूरि-भूरि प्रशसा हुई।

चरितनायिकाजी की विशाल हृदयता

चातुर्मास के पश्चात एक बार अपनी शिष्या समुदाय के साथ भीनासर पधारी। वहाँ पूजा महोत्सव था। उसमे सम्मिलित होने के लिए पू० समुद्रसूरिजी भी अपने शिष्य-शिष्या-मडल के साथ पधारे थे। पूजा के साथ तपगच्छ सघ की ओर से स्वाधर्मिवात्सल्य का भी आयोजन था। पूजा समाप्ति पर आप जैसे उठकर जाने लगे कि श्रावको ने बहरने का अत्यधिक आग्रह किया। आप विचार मे पड़ गयी कि पात्रे तो लाये ही नही, बहरें कैसे?

आपकी त्वरित बुद्धि ने तुरन्त उपाय सोच लिया। तपागच्छीय प्रवीणश्री जी म सा आदि से पात्रे लिए और उसके साथ वहरने गईं। आपश्री के हाथ मे लाल पात्रे देखे तो पहले तो लोग चकित हुए और फिर आपकी विशालहृदयता का अनुभव करके आनन्दित हो उठे।

वहरा हुआ आहार तपागच्छीय साध्वीजी के साथ आपने खाया। आपके स्नेह से सभी अभिभूत/आल्हादित हो गये।

वीकानेर का यह ऐतिहासिक चातुर्मास आज भी लोगो की स्मृति मे ताजा है और वहाँ के लोग अब भी दर्शनार्थ आते रहते है।

वैशाख मास मे पू शशिप्रभाजी म सा को शास्त्री द्वितीय खण्ड की परीक्षा देनी थी, अत चातुर्मास के बाद भी तब तक वहाँ ठहरना पडा।

इस बीच बीकानेरवासियो ने दूसरे चातुर्मास की आग्रह भरी विनती शुरू कर दी किन्तु फलोदी (फलवर्द्धि) नगरी मे विराजित वात्सल्यमयी त्यागमूर्ति श्री चम्पाजी म सा का आग्रहपूर्ण आदेश था चातुर्मास हेतु फलोदी आने का।

और चरितनायिकाजी का यह विरल गुण है कि वे बडो की आज्ञा अनुल्लघनीय मानती हैं। इसलिए बीकानेर चातुर्मास की स्वीकृति न दे सकी। अस्वीकृति से बीकानेर सघ को दुख तो बहुत हुआ पर करते क्या ? आखिर बडे ही समारोहपूर्वक विदाई दी और साथ ही पुन पधारने की भावभीनी विनती भी की।

सैकडो नर-नारियो के साथ चरितनायिकाजी ने अपनी शिष्या मडली सहित फलोदी की ओर कदम बढाये। पहली मजिल 'नाल' पहुँचे। यह कुशल गुरुदेव का बडा ही चमत्कारिक स्थान है। बीकानेर सघ ने यहाँ पूजा और साधर्मिवात्सल्य का आयोजन किया था। सर्व कार्य व्यवस्थित सम्पन्न होते ही उस शुष्क मरुधर प्रदेश मे ज्येष्ठ मास की भयकर गर्मी मे इतनी तेज वर्षा हुई कि लोग चकित रह गये। कहने लगे—पूज्याश्री ने क्रोध-मान आदि कषायो की आग मे तप्त हमारी मानस-भू को शीतल बनाया है, उसी प्रकार प्रकृति ने भी भूमि को ठण्डक प्रदान की है। यह सब पूज्याश्री की साधना का ही चमत्कार है।

उनकी हार्दिक प्रसन्नता इन शब्दो मे प्रगट हो रही थी।

दूसरे दिन शीतल सुखद वातावरण मे विहार करके आपश्री झज्झू पधारी। वहाँ भी बीकानेर सघ की ओर से स्वामी वात्सल्य था। मध्यान्ह मे प्रवचन पीयूष का पान कराकर सबको सन्तुष्ट किया। कइयो ने विभिन्न प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किये।

यद्यपि मरुधरा की ज्येष्ठ मास की गर्मी अति भयकर होती है, उसमे विहार करना अति कष्ट-प्रद है किन्तु बीकानेर सघ की भक्ति के कारण मार्ग सुखपूर्वक पूर्ण हो गया। सानन्द फलोदी की सीमा मे पहुँच गये।

फलोदी चातुर्मास वि० स० २०२६

दो-तीन मजिल पहले ही फलोदी के लोगो का आगमन शुरू हो गया था। साध्वी श्री जितेन्द्र श्री जी म तथा जिनेन्द्रश्री जी म एव सूर्यप्रभाजी म आदि एक मजिल तक लेने आईं। बडे हर्षोत्साह के साथ नगरप्रवेश हुआ। जिन-दर्शन-वन्दन करती हुई बडे उपाश्रय पधारी। वहाँ से वात्सल्यसरिता पू. श्री चम्पाश्री जी म सा, श्री धर्मश्री जी म सा, श्री रतिश्रीजी म सा आदि के दर्शन कर आपने स्वय को कृतार्थ माना, हृदय आनन्द सागर मे निमग्न हो गया। स्वय पूज्येश्वरी को भी अमित हर्ष हो रहा था। चातुर्मास प्रारम्भ हुआ।

यहाँ के श्रावक तत्वरुचि वाले थे। अत आचाराग द्वितीय श्रुतस्कन्ध और 'आराम शोभा चरित्र' प्रारम्भ किया। श्रोताओ की सख्या दिनो-दिन बढने लगी।

यहाँ आपके अध्ययन-अध्यापन का कार्य भी सुचारु रूप से चल रहा था। मध्यान्ह मे सर्व साध्वियो को अनुयोगद्वार सूत्र की वाचना देते और प्रद्युम्न चरित्र पढाते थे।

साध्वी श्री शशिप्रभाजी म सा ने पूज्यवर्याओ की निश्रा मे मासक्षमण तप प्रारम्भ किया। ५ उपवास के दिन मे ही शासनदेवी के गीत प्रारम्भ हो गये। बहनो मे बहुत उत्साह था। सेवामूर्ति

एकता : समन्वय : सद्भाव की मधुर स्मृति

वि स २०२५ बीकानेर (कोचरों का चौक) चातुर्मास मे पूज्य आचार्य श्री समुद्रसूरिजी म सा के सान्निध्य मे आयोजित सक्रान्ति समारोह मे विराजी हुई प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म सा तपागच्छीय साध्वी मण्डल के साथ ।

जितेन्द्रश्री जी म सा. तपस्विनीजी की सेवा मे सलग्न हो गईं। वे दिन मे तपस्विनी जी की सेवा करती और रात्रि मे अपनी पूज्याश्री व चरितनायिकाजी की सेवा करती। उनकी सेवा भावना से सभी साध्वियाँ अभिभूत थी।

दुखद प्रसग यह बना कि शशिप्रभाजी की तपस्या के दौरान ही फलोदी के अग्रगण्य श्रावक श्रीमान गुलाबचन्दजी गोलेच्छा का अकस्मात ही हार्ट फेल हो गया।

इस घटना से तप की पूर्णाहुति पर हर्ष तो कम हो गया पर कार्य सभी किये गये। पचरगी तप १५-१६ अठाइयाँ, शखेश्वर के अट्ठम आदि तथा अठाई महोत्सव, वरघोडा, रात्रि जागरण, स्वामि-वात्सल्य के साथ मासक्षमण तप सानन्द सम्पन्न हुआ। पारणा एव स्वामिवात्सल्य का सम्पूर्ण लाभ पू शशिप्रभाजी म सा के ससारपक्षीय भ्राता श्रीमान मूलचन्दजी सा गोलेच्छा ने लिया।

इसी समय बीकानेर मे श्री शशिप्रभाजी द्वारा शास्त्री परीक्षा के दो खण्डो के परिणाम निकले, उनमे आप सैकण्ड डिवीजन मे उत्तीर्ण हुईं।

वात्सल्यनिधि पूज्या श्री चम्पाश्री जी म सा अपने जीवन के ८० वर्ष और सयमी पर्याय के ६० वर्ष पूर्ण कर चुकी थी। उनका सयमी जीवन कोरी चादर के समान निर्दोष था। अत सर्व ज्येष्ठ होने के कारण चरितनायिकाजी ने उन्हे 'समुदायाध्यक्षा' के पद पर प्रतिष्ठित किया तथा चरितनायिकाजी के द्वारा रचित गीतिका चरितनायिका और उनकी शिष्याओ ने गाया। सुनकर जनता भाव विभोर हो गई।

इस प्रकार नित्य नये कार्यक्रमो के साथ फलोदी चातुर्मास पूर्ण सफल हुआ।

यद्यपि चातुर्मास के पश्चात् फलोदी सघ ने मौन एकादशी तक रुकने का आग्रह किया किन्तु आपको जैसलमेर लौद्रवपुर आदि की यात्रा करनी थी, आपकी भावना से पूज्येश्वरी परिचित थी अत वे तटस्थ रही। आपने फलोदी रुकना स्वीकार नही किया और पूज्येश्वरी की आज्ञा तथा सघ की सहमति से विहार कर दिया।

विदाई वेला भावविह्वल कर देने वाली थी। पूज्याओ को छोडते हुए आपका मन विकल था, जनता के नेत्र तो अश्रुपूरित थे ही। विदा लेकर व देकर आप आगे बढ रहे थे, कुछ लोग अब भी साथ चल रहे थे। जितेन्द्रश्री जी म आदि दो-तीन साध्वियाँ एक मजिल तक एक साथ आई थी। वहाँ से जनता तथा साध्वीजी म वापिस लौट गये। मात्र शशिप्रभाजी म सा की बहन तेजाबाई आदि २-३ व्यक्ति मार्ग-सेवा के लिए साथ रहे।

विहार करते हुए आपश्री जैसलमेर की पावन भूमि मे पहुँचे और महावीर भवन मे विश्राम लिया।

दूसरे दिन आप किले पर पधारी। वहाँ शिखरबद्ध जिन-मन्दिरो के दर्शन मे ही हृदय आनन्द विभोर हो गया। शिल्पियो ने अद्‌भुत कला दिखाई है। अन्दर विराजमान प्रतिमाएँ तो इतनी विशाल और आकर्षक है कि उनकी छवि निरखते हुए न मन थकता है, न नेत्र तृप्त होते है, वाणी मूक हो जाती है, बस देखते ही रहो, देखते ही रहो—ऐसी दशा हो जाती है तन-मन-नयन की, सम्पूर्णत व्यक्ति भक्ति रस मे सराबोर हो जाता है।

ये प्रतिमाएँ भी एक-दो नही साढे छह हजार है। दर्शन-वन्दन से तन-मन-नयन तृप्त हो गये। भक्ति रस उमड चला।

भडार देखा तो पूर्णत व्यवस्थित। पू श्री पुण्यविजयजी महाराज ने उसे पूर्ण व्यवस्थित करके अमित पुण्योपार्जन किया है।

एक और भी वस्तु दृष्टि पथ मे आई। बडी चमत्कारी। वह है—बडे दादा जिनदत्त सूरीश्वर जी की चादर। अग्नि सस्कार के समय यह चादर जली नही, अग्नि से अप्रभावित रही और आज ९०० वर्ष बाद भी जैसी की तैसी है, न तो मौसम का ही कोई प्रभाव है इस चादर पर और न काल का ही। यह सब पूज्य दादा जिनदत्त सूरीश्वर के निर्मल तप-त्याग-साधना का प्रभाव है, जो उनकी चादर के रूप मे स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

इन सब वस्तुओ को देखते हुए आप आठ दिवस तक रुके।

आठ दिन बाद आप सब समीपस्थ महान तीर्थ लोद्रवपुर पधारे। वहाँ सहस्रफणा पार्श्वनाथ प्रभु के बिम्ब के दर्शन कर हृदय आह्लाद से भर गया। दर्शन-वन्दन कर नीचे उतर रहे थे तो एक और चमत्कार से साक्षात्कार हो गया।

हुआ यह कि मन्दिर के तोरणद्वार पर लटकते हुए अधिष्ठायक देव की पूँछ पू श्री शशिप्रभाजी म सा की कमली पर आ गयी। भारीपन-सा लगा तो सबने मुडकर देखा तो पूँछ लटकती दिखाई दी। भय मिश्रित आश्चर्य के भाव उमडने लगे।

इतने में पुजारीजी आ गये। सभी ने एक-डेढ मिनट तक अच्छी तरह दर्शन किये। पुजारी चकित स्वर मे कहने लगे—महाराज साहब ! आप बहुत भाग्यशालिनी है कि अनायास ही इतनी देर तक दर्शन दिये अन्यथा अनेको प्रयत्न करने पर भी दर्शन नही देते।

इस घटना से प्रगट हो जाता है कि सच्चे त्यागी-तपस्वी श्रमण-श्रमणियो को अनायास ही देव-दर्शन हो जाता है।

वहाँ से विहार करके अमरसर के मन्दिर के दर्शन किये। पुन जैसलमेर पधारी। वहाँ से बाडमेर की ओर प्रस्थान किया। पू चरितनायिकाजी की कमर मे वायु का दर्द हो गया था, वहाँ आयुर्वेदिक इलाज कराया। १५ दिन मे आरोग्य लाभ करके नाकोडा तीर्थ की यात्रा करते हुए जोधपुर आये।

आपके आगमन से जोधपुर की जनता अति प्रसन्न हुई, व्याख्यान का आग्रह किया। चरित-नायिकाजी ने जोशीला व्याख्यान दिया। व्याख्यान से प्रभावित होकर जनता ने चातुर्मास का आग्रह किया। लेकिन उससे पहले ही पू श्री गणाधीश म सा, अनुयोगाचार्य गुरुदेव व पू श्री जैन कोकिला का आदेश आ चुका था कि इधर-उधर कही चातुर्मास न करके जयपुर होते हुए दिल्ली पधारो।

अत जयपुर की ओर कदम बढाये। कापरडा, बिलाडा, जैतारण होते हुए ब्यावर पहुँचे। एक दिन ब्यावर रुके। वही पर श्रीमान् लालचन्दजी सा बैराठी जो मालपुरा के व्यवस्थापक थे, मालपुरा मेले मे पधारने के लिये विनती करने आये, चूँकि मेला निकट ही था। मालपुरा तो आपश्री को भी जाना ही था, सहज सयोग मिल रहा था, स्वीकृति दे दी। ब्यावर से मागलियावास पधारे क्योकि वही से मालपुरा के लिये मार्ग जाता था। सयोग से वही तेजबाई मेहता जो चरितनायिकाजी की शिष्या बनने की इच्छुक थी, आ गईं और मालपुरा तक साथ रही। गुरुदेव के दर्शनो की तीव्र उत्कण्ठा से सभी लोग शीघ्र ही मालपुरा पहुँच गये।

मालपुरा गुरुदेव जिनकुशलसूरीश्वर का न जन्म-स्थान है और न स्वर्गगमन स्थान, अपितु एक चमत्कारिक स्थान है। यहाँ दादा गुरुदेव ने एक भक्त को दर्शन दिये, उसके बाद कई भक्तो को दर्शन दिये। जिस शिला पर खडे होकर दादा गुरुदेव ने साक्षात् दर्शन दिये, वह आज चरण के रूप मे है।

वहाँ विशाल दादाबाडी निर्मित हो गई है और एक ऐतिहासिक स्थान बन गया है। यह स्थान जयपुर से सिर्फ १०० किलोमीटर दूर है। जयपुर वाले प्रति पूनम बस लेकर आते हैं व पूजा, सेवा, रात्रि जागरण, जीमन आदि करते है। प्रतिवर्ष फाल्गुन की अमावस के दिन मेले का आयोजन बडे धूमधाम से जयपुर सघ की ओर से किया जाता है, स्वामि-वात्सल्य भी होता है।

इस सब का प्रमुख हेतु है—श्रद्धेय दादागुरु जिनकुशलसूरीश्वरजी का कलिकाल मे कल्पवृक्ष के समान होना।

ऐसे चमत्कारिक स्थान मे पधारने का सौभाग्य चरितनायिकाजी और उनकी शिष्य मडली को भी प्राप्त हुआ। ५ दिन रुके, पूजा-भक्ति की और श्रद्धा-सुमन अर्पित किये।

जयपुर सघ की आग्रह भरी विनती को स्वीकार करके चरितनायिकाजी जयपुर पधारी। वैराग्यवती तेजबाई साथ थी। उनकी दीक्षा का मुहूर्त्त निकलवाया पडित प्रवर भगवानदासजी के पास तो वि स २०२६ वैशाख कृष्णा दशमी का निकला। दीक्षा की तैयारियाँ होने लगी। इसी बीच शासन प्रभावक पूज्य अनुयोगाचार्य कान्तिसागरजी म सा एव साहित्य शास्त्री श्री दर्शनसागरजी म सा कलकत्ते का ऐतिहासिक भव्य चातुर्मास और कलकत्ता सघ की ओर से सम्मेतशिखर तीर्थ पर कराये गये उपधान तप की आराधना खूब धूमधाम के साथ सम्पूर्ण करवाकर मार्गस्थ तीर्थों की यात्रा करते हुए जयपुर पधारे।

चरितनायिकाजी के अत्याग्रह से दीक्षा तक रुकने की स्वीकृति दी। आपश्री की निश्रा मे धूमधाम से तेजबाई की दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षोपरान्त नाम दिया गया 'जयश्री' और चरितनायिका पू. सज्जनश्री जी की शिष्या घोषित की गई।

पू गुरुदेव को पालीताणा पहुँचना था अत उसी सन्ध्या को जयपुर से विहार कर दिया।

चरितनायिकाजी पन्द्रह दिन जयपुर मे और रुके। ज्येष्ठ मास शुरू होने वाला था, गर्मी अपना प्रकोप दिखा रही थी किन्तु चातुर्मासार्थ पहुँचना ही था। अत वैशाख शुक्ल १० को ही विहार कर दिया। मार्गस्थ वैराट (प्राचीन मत्स्यदेश की राजधानी—विराटनगर) मे अति प्राचीन मन्दिर के दर्शन किये। मन हर्षित हो गया। वहाँ से अलवर पहुँचे। वहाँ भी रावण पार्श्वनाथ (अति प्राचीन) मन्दिर मे अवस्थित विशाल प्रतिमा के दर्शन करके मन झूम उठा। वहाँ से प्रस्थान कर दिल्ली के समीप महरौली मे पहुँचे।

महरौली मणिधारी दादा श्री जिनचन्द्रसूरि का अग्नि सस्कार स्थान है। उस युग मे दिल्ली यही बसी हुई थी। उस समय यहाँ माणक चौक था, जिस स्थान पर आज गुरुदेव का स्थान बना हुआ है। पूज्य दादा गुरुदेव ने अपने ज्ञान बल से अपना अन्तिम समय जानकर भक्तो से कहा कि मेरी बैकुण्ठी (रथी) को बीचवामा मत देना। लेकिन शोकाकुल भक्त गुरुदेव के वचनो को भूल गये बीचवासा दे दिया। बस, फिर क्या था ? सैंकडो व्यक्ति लग गये फिर भी रथी टस से मस न हुई। हाथी लगाया, उसका बल भी विफल हो गया। तब तत्कालीन दिल्ली नरेश अनगपाल ने वही अग्नि सस्कार की आज्ञा दे दी। अग्नि सस्कार हुआ और भक्तो ने वही स्तूप बनवा दिया। वही स्थान आज दादाबाडी के रूप मे है। यहाँ प्रतिवर्ष भादवा सुदी ८ को मेला लगता है।

अपनी शिष्या मडली के साथ चरितनायिकाजी यहाँ दो दिन रुकी, दिल्ली के गण्यमान्य श्रावक भी आ गये थे। पूजा का खूब ठाठ रहा, आने-जाने वालो का मेला-सा लगा रहा।

यहा से चार माईल दूर छोटी दादावाडी पधारे। यहाँ जैन श्रावको के अनेक घर है। अत तो वहाँ सन्त-सतियो के चातुर्मास भी होते है। आप भी वहाँ १५ दिन रुके। यहाँ आपकी ससार पक्षीय भुवासासु (कोटा वाली सेठानी गुलाबसुन्दरी) का 'केसर पोट्रो' के नाम से विशाल स्थान है और निवास स्थान भी। उनके आग्रह से दो दिन वहाँ ठहरे।

स० २०२६ का दिल्ली चातुर्मास

दिल्ली सघ ने बडे धर्मोत्साह और धूमधाम से नगरप्रवेश कराया। लाल किले के पास दिल्ली श्रीसघ स्वागतार्थ उपस्थित था। चाँदनी चौक से नई सडक होते हुए नौघरा के मदिर पहुँचे, दर्शन-वन्दन किये, फिर भोपुजरा धर्मशाला पधारे। वही आपका मगल प्रवचन हुआ तथा प्रभावनादि का वितरण भी हुआ। फिर तो नित्य प्रवचन का क्रम शुरू हो गया। आपकी साहित्यिक, परिमार्जित भाषा शैली से जनता मन्त्र मुग्ध-सी बन जाती।

इसी चातुर्मास मे आपने श्रीमद् देवचन्द्रजी म० द्वारा रचित 'अध्यात्म प्रबोध' (इसका अपर-नाम देशनासार है) का अति सुन्दर अनुवाद हिन्दी भाषा मे किया जिसकी प्रथमावृत्ति तो छप चुकी है और द्वितीया वृत्ति प्रेस में है।

राष्ट्रीय स्तर पर मणिधारी दादा की अष्टम शताब्दी समारोह की तैयारियाँ जोर-शोर से चल रही थी। प्रचार-प्रसार भी उत्साह से हो रहा था। भारत के प्रमुख समाचार-पत्रो और जैन समाज की सभी पत्र-पत्रिकाओ मे समाचार प्रसारित किये गये, विदेशो को भी भेजे गये। दिल्ली सेन्टर होने के कारण एक लाख व्यक्तियो के आने की आशा थी। दिल्ली सघ मे जैसा उत्साह था, कार्य शैली उतनी ही उत्तम थी, सभी कार्य सुचारु रूप से हो रहा था।

शताब्दी समारोह मे सम्मिलित होने के लिए खरतरगच्छ के सभी साधु-साध्वियो को आमन्त्रित किया जा चुका था।

चरितनायिका जी दादा गुरुदेव का जीवन चरित्र लिख रही थी साथ ही गुरु स्तवन भी। दोनो ही पुस्तके समय मे छप गयी थी।

आप प्रथम बार ही दिल्ली पधारे थे अत चातुर्मास के पश्चात हस्तिनापुर प्रस्थान किया, इसका एक कारण यह भी था कि शताब्दी समारोह चैत्र मास मे होना था। हस्तिनापुर की यात्रा करके आप दिल्ली पुन पधार गये।

पालीताना से उग्र विहार करते हुए सर्वप्रथम पू० अनुयोगाचार्य श्री कान्तिसागर जी म सा एव श्री दर्शनसागरजी म सा फागुन शुरू होते ही पधार गये और लाल धर्मशाला मे ही विराजे। उनकी निश्रा मे नूतन साध्वी जी की बडी दीक्षा फागुन सुदी ११ को धूमधाम से सानन्द सम्पन्न हुई।

मणिधारी अष्टम शताब्दी समारोह

चैत्र प्रारम्भ होते-होते पूज्य प्रवर श्री उदयसागरजी म सा, श्री प्रभाकरसागरजी म सा, श्री महोदयसागरजी म सा, श्री तीर्थसागरजी म० सा०, श्री कैलाशसागरजी म सा आदि भी पधार गये और जैन कोकिला श्री विचक्षणश्री जी म सा भी अपनी शिष्या मडली सहित यथासमय पधार गयी। अन्य साधु-साध्वीजी महाराज आदि भी उचित समय पर पधार गये।

महरौली मे ही विशाल मणिधारी नगर बसा था। दिल्ली सघ ने आवास-निवास की समुचित व्यवस्था की थी। आगन्तुको का जैसा प्रेमपूर्ण स्वागत किया था, वह आज भी स्मरणीय है। (विशेष विवरण अष्टम शताब्दी समारोह पत्रिका मे दिया गया है—जिज्ञासु वहाँ देखें।)

यद्यपि हम लोगो का विचार बनारस जाने का था पर निमित्त ऐसा बना कि पुन हस्तिनापुर जाना पडा। कारण था—वर्षीतप का पारणा। यहाँ पर श्री चन्द्रप्रभाजी, मुक्तिप्रभाजी, विजयप्रभाजी, ज्योतिप्रभाजी एव निरजनाश्रीजी आदि ५ के वर्षीतप चल रहा था। हस्तिनापुर दिल्ली से सिर्फ ६० माइल दूरी पर है और यही प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का प्रथम पारणा हुआ था अत सभी की भावना हस्तिनापुर पारणा करने की थी। वैशाख सुदी ३ (अक्षय तृतीया) का दिन भी समीप था और जैन कोकिला पू० श्री विचक्षणश्री का आमन्त्रण भी। अत पुन हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया।

पूज्य उदयसागर जी म सा पू० अनुयोगाचार्य श्री कान्तिसागर जी म सा आदि तथा सर्व साध्वीमडल एव कई श्रावक-श्राविकाएँ दिल्ली से प्रस्थान करके गाजियाबाद पधारे। यहाँ भी मदिर की प्रतिष्ठा करवानी थी। अत गाजियाबाद सघ के आग्रह से पू० अनुयोगाचार्य जी म० सा० वही रुके।

आपश्री सर्व सघ के साथ हस्तिनापुर पहुँचे। अक्षय तृतीया के दिन सभी तपस्विनी बहनो का पारणा हुआ। बडी पूजाएँ आदि रखी गईं। पूज्या श्री मनोहरश्रीजी व मुक्तिप्रभाजी के भाई ने पारणे क अवसर पर भजन गाकर भक्ति रस साकार ही कर दिया।

वैशाख शुक्ला ४ के दिन चन्द्रप्रभाजी की मातुश्री धापूबाई की दीक्षा पू० गुरुदेव की निश्रा मे सम्पन्न हुई। उन्हे वर्द्धमानश्रीजी नाम दिया गया।

वैशाख शुक्ला ५ को यहाँ से विहार किया। प्रमोदश्रीजी की शिष्या श्री चन्द्रोदयश्री जी एव स्वयप्रभाश्री जी भी सम्मेत शिखर जी तीर्थों की यात्रा हेतु साथ हो गईं। बुलन्दशहर, एटा, अलीगढ होते हुए काम्पिलपुर तीर्थ गये। यहाँ विमलनाथ तीर्थंकर के तीन कल्याणक हुए है। दर्शन किये। चित्त प्रसन्न हुआ। आगे बढकर कानपुर पहुँचे। वहाँ पू० श्री भुवनभानुविजयजी म सा के आनन्दपूर्वक दर्शन किये। पूज्यश्री सयम-तप की साक्षात प्रतिमा हैं। सब मन्दिरो के दर्शन किये। ८ दिन ठहरे। यद्यपि जाना तो बनारस था पर समय कम था वर्षा भी शुरू हो चुकी थी अत लखनऊ की ओर प्रस्थान किया। लखनऊ से एक-डेढ किलोमीटर दूर एक धर्मशाला मे विराजे।

लखनऊ मे जयपुरनिवासी सेठ श्री हमीरमलजी साहब गोलेच्छा की पौत्री और श्री मनोहर लाल जी की सुपुत्री माणकबाई का ससुराल था। वे जब भी जयपुर आती चरितनायिका जी से लखनऊ फरसने की भावभरी विनती करती और चरितनायिका जी वर्तमान योग अथवा यथायोग छोटा सा उत्तर दे देती।

इस वार सहज ही सयोग बन गया लखनऊ आने का। साथ वाले भाई को माणकवाई के नाम पत्र दिया। पत्र मिलते ही माणकबाई हर्षाश्चर्य मिश्रित भाव हृदय मे लिये आईं। चरितनायिका जी के दर्शन-वन्दन किये। हर्ष से नेत्र सजल हो गये। सभी साध्वियो के दर्शन-वन्दन किये, सुख-साता पूछी और लौटकर लखनऊवालो को आपश्री के आगमन के समाचार दिये। उनके तो मन-मयूर ही नाच उठे। बडे उत्साह और धूमधाम से नगर-प्रवेश कराया।

लखनऊ चातुर्मास सं० २०२८

मार्ग मे जिनमन्दिर के दर्शन करते हुए शातिनाथ जी की धर्मशाला मे पधारी, वहाँ आपश्री ने ओजस्वी वाणी मे मागलिक प्रवचन दिये। लोग आश्चर्याभिभूत हो गए।

लखनऊ मे कुल ३५ घर है लेकिन प्राय सभी सम्पत्ति और सन्मति से युक्त। धर्मोत्साह के साथ चातुर्मास प्रारम्भ हुआ। व्याख्यान शृखला शुरू हुई। प्रभु पूजाएँ, दादागुरु पूजाएँ आदि कार्यक्रमो से चातुर्मास सफलता के सोपान चढने लगा। मेघधाराओ के समान त्याग-तपस्याओ की झडियाँ लग गईं। लखनऊवालो मे अत्यधिक उत्साह था। ८, ९, ११, २१ आदि की तपस्याओ का ठाठ लग गया। कोई घर ऐसा न बचा जहाँ एक-दो अठाइयाँ न हुई हो। पूजाएँ व स्वधर्मी-वात्सल्य की तो धूम ही मची रही, सम्पूर्ण चातुर्मास मे।

इगलिश मे निष्णात श्री जोगेश्वर मास्टर सा० शशिप्रभाजी व प्रियदर्शना को इगलिश पढाने आते थे। वे भी अत्यन्त प्रभावित हुए, कहते थे—महाराजश्री की दृष्टि मे अद्‌भुत शक्ति है जिसकी ओर भी शात-स्नेहसिक्त दृष्टि से देख ले, वही निहाल हो जाय।

पूज्याश्री मध्यान्ह मे अपनी शिष्याओ को आचाराग सूत्र की वाचना देती थी, अन्य भी सुनने आते थे। सुश्रावक अमोलकचन्द जी सा के आग्रह से 'पुण्यप्रकाश' स्तवन का हिन्दी अनुवाद भी आपने किया।

लखनऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी है और अयोध्या तीर्थ के समीप है, अत साधु-साध्वियो का आगमन होता रहता है, धर्मभावना अच्छी है फिर भी चातुर्मास बहुत कम होते है। लेकिन आपका यह चातुर्मास सभी दृष्टियो मे सफल रहा।

चातुर्मास के उपरान्त शिष्या मडली सहित अयोध्या तीर्थ की ओर गमन किया। विहार का सारा लाभ माणकबाई सा की मासु ने लिया। रत्नपुरी पहुंचे। यह भ० धर्मनाथ की कल्याणक भूमि है। लखनऊ के लोग यहाँ आते रहते हैं। इस बार स्वधर्मी-वात्सल्य का आयोजन किया गया। कार्य की समाप्ति पर हमने अयोध्या की ओर प्रयाण किया। मार्ग मे फैजाबाद मदिर के दर्शन करते हुए अयोध्या पहुँचे।

विभिन्न प्रदेशो की तीर्थ-यात्राएँ

अयोध्या—यह नगरी अत्यन्त प्राचीन है। आज श्रीराम जन्मभूमि के रूप मे प्रसिद्ध है, किन्तु असख्य वर्ष पहले भगवान ऋषभदेव ने जन्म लेकर इस नगरी को धन्य बनाया था। ऋषभदेव पहले राजा, पहले योगी और पहले तीर्थंकर थे। उनसे पहले युगलिक युग था। उन्होने ही मानव को सर्वप्रथम असि, मसि, ललित कलाओ तथा अन्य सभी प्रकार का ज्ञान कराया, गणित-विद्या और लिपिविद्या के पुरस्कर्ता भी वे ही थे। एक शब्द मे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता-सस्कृति के जनक थे ऋषभदेव।

ऐसी महान नगरी मे पहुँचे, मन्दिरो की दशा देखकर दु ख हुआ। मुस्लिम काल मे मन्दिर और मूर्तियो को तोडकर मस्जिदें बना ली गईं। धार्मिक मतान्धता थी यह।

इस स्थिति को देखकर मन खिन्न हो गया। यहाँ से विहारकर कन्नौज आदि होते हुए वाराणसी पहुँचे।

तीर्थभूमि वाराणसी—यह नगरी तेईसवे तीर्थंकर पार्श्व प्रभु की जन्मस्थली है। गगा-किनारे बसी हुई है। यहाँ कई जिनमन्दिर और दादावाडियाँ है। भेलूपुर (भगवान पार्श्वनाथ की जन्मस्थली) मे प्रतिवर्ष पौष वदी १० (पार्श्व प्रभु का जन्म दिन) के दिन मेला भरता है, साथ ही प्रभुपूजा और स्वधर्मी-वात्सल्य भी होता है।

हम लोगो ने भी पोष बदी दशमी का मेला यही किया।

वाराणसी मे हिन्दुओ का भी तीर्थ है। यहाँ हिन्दुओ के भी मन्दिर है। विश्वनाथ का मन्दिर अति प्रसिद्ध है।

वाराणसी प्राचीनकाल से विद्या का केन्द्र रहा है। सस्कृत भाषा के अनेक श्रेष्ठ विद्यालय है। यथा—सस्कृत विश्वविद्यालय, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, पार्श्वनाथ विद्याश्रम आदि। भारत के दूरस्थ प्रान्तो के निवासी सस्कृत अध्ययन के लिए आते है। एक जैन यूनिवर्सिटी है, जहाँ से कई लोग पी-एच. डी करते है।

हम लोग जैन भवन मे रुके। उन दिनो बगला देश का युद्ध चल रहा था। अत श्रावको के आग्रह से १५ दिन वही रुके। इस बीच सिंहपुरी, चन्द्रपुरी आदि कल्याणक भूमियो की यात्रा की। वहाँ के तपागच्छ मुनिराज की निश्रा मे सघ निकल रहा था। अतः हमे भी आमन्त्रित किया गया। हमे भी यात्रा करनी थी, हो लिए उनके साथ। 'सगच्छत्व' का सूत्र सामने था।

चन्द्रपुरी के पहले सिंहपुरी आता है, यह शहर से लगभग ९-१० किलोमीटर दूर है। बनारस मे गाँधी परिवार की कोठी है, फार्म भी है। उनकी ओर से चाय-नाश्ता आदि की व्यवस्था थी। सिंहपुरी मे भ० श्रेयासनाथ के च्यवन, जन्म, दीक्षा तीन कल्याणक हुए है। विशाल मन्दिर व धर्मशाला है।

पास ही सारनाथ है, यह ऐतिहासिक बौद्धस्थल है, अनेक बुद्ध मन्दिर है। सिंहपुरी के निकट के मृगदाव वन मे ध्वसावशेष है। इनमे सम्राट अशोक द्वारा बनवाया हुआ धर्मचक्र है, जो आधुनिक भारत का राजचिन्ह है। कई बौद्ध मन्दिर, मठ, विद्यापीठ भी दर्शनीय है।

दूसरे दिन चन्द्रपुरी पहुचे। यहाँ भ चन्द्रप्रभु के तीन कल्याणक हुए है।

पुन बनारस लौटे। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद सपरिवार यही रहते थे। ये पूज्याश्री के ससारपक्षीय सम्बन्धी भी हैं। उनके अत्यधिक आग्रह को स्वीकार करके एक दिन उनकी सेवाभक्ति भी स्वीकार की।

बनारस से बिहार कर हम लोग पटना पहुँचे।

पटना—यह एक ऐतिहासिक नगरी है। पाटलिपुत्र, कुसुमपुर आदि नामो से प्राचीनकाल मे प्रसिद्ध रहा है। महाराज श्रेणिक के पौत्र उदयन ने इसे बसाया और नन्द सम्राटो, चन्द्रगुप्त मौर्य, प्रियदर्शी सम्राट अशोक, जैन सम्राट सम्प्रति आदि की राजधानी रही है। पाटलिपुत्र भारत के इतिहास, सस्कृति के निर्माण और विध्वस मे भी प्रमुख भूमिका बना है।

यही भावी तीर्थंकर पद्मनाभ का विशाल मन्दिर है और समीप ही धर्मशाला है। वही हम लोग ठहरे। वहाँ पर स्थानीय व बाहर से आये हुए लोगो के घर है। स्थूलिभद्र और सुदर्शन सेठ भी वही के थे। शहर के बाहर उनका स्थान बना हुआ है, जहाँ उनके चरण स्थापित है।

हम लोग लगभग ८ दिन रहे। गुरुवर्याश्री के मार्गदर्शन मे प्राय सभी दर्शनीय ऐतिहासिक स्थल देखे, जिनसे हमारे धर्म की प्राचीनता और जैनसस्कृति के अवशेप परिलक्षित होते थे। गुरुवर्या के

मुख से उन स्थानो की ऐतिहासिकता सुनकर ज्ञानवृद्धि हुई। सांस्कृतिक गौरव का एक चित्र सामने आया।

वहाँ से नालन्दा कुण्डलपुर की ओर कदम बढाए।

नालन्दा—भगवान महावीर के समय यह राजगृही नगरी का उपनगर था। बाद मे यहाँ विश्व-विख्यात नालन्दा विश्वविद्यालय स्थापित हुआ जहा अनेक विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आते थे, अब तो ध्वसावशेष मात्र ही है बौद्धविहार भी खण्डहर हो चुके है। 'नवा पाली विश्वविद्यालय भी देखा। एक बौद्धमठ ऐसा देखा जिसमे १२५ वर्ष के बौद्ध साधु थे, वे बडे सरल हृदयी व प्रज्ञानवत थे।

कुण्डलपुर—यहा आदिनाथ भगवान की केशो वाली विशाल मूर्ति है। उस प्राचीन मूर्ति के दर्शन करके मन प्रफुल्लित हो गया। बगीची मे छोटी-सी दादावाडी भी है।

राजगृह—यह महाराज श्रेणिक की राजधानी रही है। इसके उपनगर नालन्दा मे भ० महावीर ने १४ चातुर्मास किये थे तथा यही बीसवे तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ की च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवल ज्ञान कल्याणक की पावन भूमि है। यहाँ विशाल जिनमन्दिर, धर्मशाला व भोजनशाला है।

शिखरबद्ध विशाल मन्दिर मे श्यामवर्णी भ० मुनिसुव्रत नाथ की विशाल प्रतिमा के दर्शन पाकर मन आनन्दसागर मे निमज्जित हो गया। पूज्या गुरुवर्या तो प्राय ध्यानस्थ हो जाती। उनकी ऐतिहासिकता बताकर हमारे ज्ञान मे भी वृद्धि करती। वास्तव मे प्राचीन तीर्थस्थानो का सही आनन्द वही अनुभव कर सकता है, जो उनकी ऐतिहासिकता का जानकार हो तथा जिनकी नजर कला-पारखी और हृदय सौन्दर्य मे रस लेने वाला हो।

ये तीन भूमियाँ आज भी हमे मन की पवित्रता और भक्ति-लीनता की प्रेरणा दे रही है।

पूज्या गुरुवर्या के साथ हमने उदयगिरि विपुलगिरि आदि पांचो पहाड़ो की यात्रा की।

स्थानकवासी प्रसिद्ध मुनि जयन्तीलालजी अपनी शिष्य मडली सहित अपने गुरुदेव श्रीजीवनलाल जी म० का स्वर्गारोहण दिवस मनाने आये हुए थे। हम लोगो को भी जयन्ती दिवस तक रुकने का आग्रह किया गया। तीसरे पहाड के नीचे स्वर्गस्थान पर समाधि बनी हुई है, वही आयोजन था। बौद्ध फ्यूजी गुरु भी आये हुए थे। हम लोग इस आयोजन मे सम्मिलित हुए। सभी के भाषणो के बाद गुरुवर्याश्री का भाषण हुआ। भाषण इतना जोशीला, सरस और आकर्षक था कि सभी श्रोताओ ने मुक्त कठ से प्रशसा की।

नजदीक ही शान्तिस्तूप पर्वत है, वहाँ इलैक्ट्रिक रोप लगी हुई है, तथागत बुद्ध का चतुर्मुखी स्टेच्यू है, चारो ही ओर अलग-अलग पोज मे बुद्ध-मूर्तियाँ हैं। सैकडो व्यक्ति देखने के लिए देश-विदेश से आते है।

यहाँ से विहार करके पावापुरी आये।

पावापुरी—यह भगवान महावीर के प्रथम समवसरण, तीर्थस्थापन और निर्वाणभूमि है। पावापुरी मे प्रवेश करते-करते मन-मस्तिक २५०० वर्ष पीछे पहुँच गया। भगवान महावीर की स्मृति मानस पटल पर तैरने लगी।

जलमन्दिर को देखकर भगवान की पार्थिव देह का अग्नि सस्कार स्थल दृष्टि मे नाच उठा। किंवदन्ती है कि भगवान के अग्नि सस्कार के उपरान्त देवी-देवताओ, मानवो द्वारा अत्यधिक भस्मी ले

जाने से यहाँ गड्ढा हो गया, उसी ने पानी भरने से तालाव का रूप ले लिया। तालाव के बीच मन्दिर मे भगवान के चरण प्रतिष्ठित है। निर्वाण के समय जब भगवान के लड्डू-चढता है तो चरणो के ऊपर जो छत्र लगा है, वह एक मिनट तक हिलता रहता है, ऐसा लोग कहते है।।

जलमन्दिर बडे सुन्दर ढग से बना हुआ है, चारो ओर गुरुदेव के चरण—बीच मे भगवान की छतरी। आने-जाने के लिये चारो ओर से मार्ग। भावपूर्वक दर्शन करके हम सभी ने स्वय को धन्य माना।

गुरुवर्याश्री के हार्दिक उद्गार निकले—भगवान जिस समय जीवित थे, उस समय तो हम जाने कहाँ होगे ? यदि मन से भगवान की वाणी सुनी होती तो इस पचम काल मे क्यो आते ? वे लोग धन्य है जिन्होने प्रभु के मुखारविंद से निकली अमृतोपम वाणी का साक्षात् पान किया, हृदयगम किया और तदनुरूप आचरण मे सलग्न हो गये। फिर भी हम लोग भाग्यशाली हैं कि हमे जैनधर्म और सयमी जीवन प्राप्त हुआ तथा इन तीर्थो की यात्रा करने का सुयोग मिला।

वहाँ से हम लोग गाँव मन्दिर गये, दर्शन किये और तदुपरान्त मुनीमजी की आज्ञा लेकर विश्राम हेतु ठहर गये। वहाँ समवसरण मन्दिर गये। पहले तो वहाँ चरण कमल ही थे, अब तो विशाल समवसरण की अनुकृति हो गई है। चतुर्मुख भगवान द्वादश परिषद को प्रवचन फरमा रहे है, ऐसा तीन गढ वाला मन्दिर निर्मित हो गया।

गुरु गौतम का कैवल्य स्थान गुणायाजी—गुरु गौतम (इन्द्रभूति गौतम) भ महावीर के प्रथम पट्टधर शिष्य, १४००० श्रमणो के नायक, अक्षीण महानस आदि अनेक लब्धियो के धारक और भगवान के प्रति प्रशस्त अनुराग वाले थे। यह अनुराग उनके कैवल्य मे बाधक बना हुआ था, क्योकि कैवल्य की प्राप्ति राग-द्वेष—दोनो के क्षय होने पर ही होती है। इसीलिए भगवान ने उन्हे देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिये गुणायाजी भेजा था। भगवान को निर्वाण हो गया। देव-दुन्दुभी के स्वर सुनकर गौतम स्वामी को भगवान के निर्वाण के विषय मे ज्ञात हुआ, बहुत दुःख हुआ उन्हे, किन्तु दूसरे ही क्षण सुप्त ज्ञान-विवेक जाग उठा, राग-पलायन कर गया, प्रशस्त मोह की जजीरे टूटी, कैवल्य भानु जगमगा उठा। ऐसे गुरु गौतम स्वामी के दर्शन कर हम कृतकृत्य हो गये।

वहाँ से विहार करके क्षत्रियकुण्ड ग्राम पहुँचे।

क्षत्रियकुण्ड ग्राम—भगवान महावीर की जन्मस्थली है। यहाँ सात पहाडो के मध्य अत्यन्त सुन्दर जिनालय है। इसमे श्याम वर्णी भ महावीर की प्रतिमा इतनी मनोहर है कि दृष्टि हटाये नही हटती, साथ ही इतनी सचिक्कण भी है कि सैकडो घड़े पानी डालने पर एक बूँद भी न ठहरे। इस मूर्ति के विषय मे प्रसिद्ध है कि इस प्रतिमा का निर्माण भगवान के बडे भाई नन्दीवर्धन के द्वारा भगवान के (जीवन-काल) मे ही कराया गया था।

इस प्रतिमा के दर्शन-वन्दन करके तन-मन विभोर हो गये।

वहा से समीपस्थ ही काकन्दी पहुँचे।

काकन्दी—यह भगवान सुविधिनाथ के च्यवन, जन्म और दीक्षा स्थान की पावन भूमि है। धन्ना अनगार, जिनके विशिष्ट तप की प्रशंसा स्वय भ. महावीर ने की, वे भी इसी नगरी के थे। वहा से विहार करके जमुई पहुँचे।

विहार यात्रा में पूज्याश्री का उत्साह गजब का रहा। ६५ वर्ष की आयु फिर भी युवाओ जैसी स्फूर्ति। तीर्थो के दर्शन-वन्दन करते-करते आत्मविभोर बन जाती। उत्साह इतना कि लम्बी-लम्बी यात्राएँ करने पर भी नाममात्र को थकान नही, मुख पर सदा प्रसन्नता के दर्शन होते।

यहाँ से चम्पापुरी की ओर विहार किया। मार्ग मे शैवो की तीर्थ नगरी वैद्यनाथ पडा। यहाँ कामना-पूर्ति के वाद भक्तजन दण्डवत् यात्रा करते है। हमने भी देखा।

चम्पापुरी—यह बारहवे तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य की पचकल्याणक स्थली है। सम्राट श्रेणिक की मृत्यु के वाद अजातशत्रु ने चम्पा को अपनी राजधानी बनाया। भ० महावीर की ३६००० श्रमणियो की नायिका सती चन्दनबाला भी यही की राजकुमारी थी। कच्चे सूत और चलनी से जल निकालकर शीलधर्म की जयपताका फहराने वाली सती सुभद्रा भी यही की है। इस प्रकार इस नगरी से कई ऐतिहासिक, पौराणिक प्रेरक घटनाएँ जुडी है।

अत्यन्त सुन्दर जिनालय और समीपस्थ सुव्यवस्थित धर्मशाला है। जिनालय मे भगवान वासुपूज्य की मनोरम मूर्ति के भावपूर्वक दर्शन किये।

निकट स्थित नाथनगर पहुँचे। वहाँ वावू रायकुमारसिह जी की हवेली मे रुके। ऊपर ही जिनमन्दिर था।

श्री रायकुमारसिह जी की धर्मपत्नी सज्जनवाई सा जयपुर के भाडिया परिवार की लडकी हैं और बाल-सहेली हैं पूज्या गुरुवर्या श्री की, जो बारह व्रतधारी श्राविका है। हमारे अप्रत्याशित आगमन को जानकर हर्ष से भर गईं। उनके आग्रह से दो-तीन दिन रुके। हमे फाल्गुन चौमासा—होली पर्व—पर शिखरजी पहुँचना था अत शिखरजी की ओर प्रस्थान कर दिया।

बिहार—अतीत युग मे बहुत उन्नत प्रदेश था। तीर्थंकरो के अधिकाश कल्याणक इसी प्रदेश मे हुए है। तीर्थंकरो, श्रमण-श्रमणियो के सतत विचरण से—उनके धर्मोपदेश से पावन बना हुआ। बौद्ध विहारो, मठो की अधिकता से इसे विहार नाम प्राप्त हुआ था।

लेकिन आज स्थिति विल्कुल ही विपरीत है। हिसा का साम्राज्य छाया हुआ है, चोर-पल्लियाँ है, जन-जीवन असुरक्षित है, सवर्ण और असवर्णो के सघर्ष होते रहते है। काम-धन्धे, व्यापार आदि का अभाव सा हो गया है। खेती वाडी भी स्त्रियाँ करती है, पुरुष तो ताडी पीकर पड़े रहते हैं। मद्य माँस आदि का प्रयोग खूब होता है। मछली पकडने का धन्धा आम हो गया है। छोटे-छोटे बच्चे भी मछली पकडने में चतुर हैं। कुल मिलाकर यह प्रदेश अवनत स्थिति मे है। बिहार अपने प्राचीन सस्कृति एव गौरव को खो चुका है।

विहार करते-करते हम लोग ऐसे स्थान पर पहुँच गये जहाँ तीर्थराज सम्मेतशिखरजी स्पष्ट दिखाई पडता है। सबसे ऊँची टोक भ० पार्श्वनाथ की है। जैसे ही उसके दर्शन हुए सिर श्रद्धा से झुक गये और हाथ मुक्तशुक्ति मुद्रावत् बन गये।

गुरुवर्याजी ने 'वीस कोस से शिखर देख्यो' इस मधुर, सरस स्तवन कडी से हम लोगो का ध्यान आकर्षित किया। कितना सत्य कहा है स्तवनकार ने, अभी सम्मेत शिखर वीस कोस दूर था कि फिर भी वही से हम लोगो को शिखर के दर्शन हो रहे थे। दर्शन करते ही हृदय मे जैसे नव स्फूर्ति और उल्लास भर आया।

गिरिडीह होते हुए भ. महावीर के कैवल्यप्राप्ति स्थल ऋजुबालुका तट पर स्थित बराकड तीर्थ पहुँचे। केवलज्ञान भूमि के दर्शन किये। फिर सम्मेन शिखर की उपत्यका (तलहटी) मे स्थित मधुवन में प्रवेश किया।

प्रथम बार गिरिराज के दर्शन करके पूज्या गुरुवर्या जी (और हम सब भी) बहुत आनन्दित हो रही थी। हर्ष ऐसा जैसे जन्म-जन्म की साध पूरी हो गई हो।

तीर्थ के मुख्य द्वार के पास ही तीर्थाधिष्ठायक भौमियाजी की बडी, भव्य, विशाल और तेजस्वी मूर्ति है। मन्दिर भी बडा कलात्मक और मनोहारी है। आगे बडी विशाल धर्मशाला है। वहाँ योग्य, व्यवस्थित स्थान देखकर हम लोगो ने विश्राम किया।

तीर्थाधिनायक भ० पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा के दर्शनकर हृदय आनन्दित हो गया। पश्चात दादावाडी मे गुरुदेव को वन्दन नमस्कार किया। समीप ही श्रद्धेय कवि सम्राट के शिष्य कल्याणसागरजी म सा विराजमान थे, उनके दर्शन किये। आप शिखरजी की नव्वाणु यात्रा कर रहे थे।

शिखरजी जैनधर्म मे तीर्थराज कहलाता है। इस पावन भूमि से २० तीर्थंकर मोक्ष पधारे है। अन्य कितने साधक-मुनिराजो ने मुक्ति प्राप्त की है, इसकी तो गणना ही नही, असख्य जीव मुक्त हुए है, इस पर्वत से। इसीलिए इस पर्वत के ककड-ककड के प्रति भक्ति भावना उमडती है। हमने यात्रा शुरू की।

शिखर तक की ६ माईल की चढाई है। यात्रा के प्रथम चरण मे ही 'सीतानाला' आता है। यहाँ यात्रा करके लौटने वाले यात्रियो को नाश्ता दिया जाता है। इसके पश्चात् कुछ आगे बढने पर गधर्व नाला आता है। यहाँ से और चढाई शुरू हो जाती है। यह तीन माइल की एकदम खडी चढाई है। इसे पूर्ण कर सर्वप्रथम गणधर गौतम स्वामी की टुक (टोक) है। अनेक लब्धियो के धारी, चतुर्दश पूर्वधर, भगवान महावीर के पट्ट शिष्य—गौतम स्वामी, उनकी टुक के दर्शन करके चित्त उनके गुणो मे रमण करने लगा।

अन्य तीर्थंकरो के टुको के दर्शन करते हुए जलमन्दिर पहुँचे। बीच मे मन्दिर और चारो ओर जल बडा सुहावना, अद्भुत दृश्य है। पर्वतमाला मे चारो ओर टुक ही टुक दृष्टिगोचर होती है। एक पर चढे, उससे उतरे, फिर दूसरी पर चढे बडा आनन्द आया। अन्तिम टुक भ० पार्श्वनाथ की टुक पर पहुचे। यह सबसे ऊँची है। भावपूर्वक दर्शन किये। चित्त मे उल्लास समा नही रहा था। पीछे से उतरे। बडी विषम उतराई है। कई स्थानो पर तो सिर्फ दो ही आदमी चल सकते इतना ही रास्ता है। एक ओर ऊँचा पहाड, दूसरी ओर गहरी खाई। जरा-सी असावधानी हुई कि हजारो फीट नीचे, हड्डी पसली भी न बचे। पर तीर्थराज का कैसा प्रभाव! आज तक कोई दुर्घटना कभी हुई हो, ऐसा हमने नही सुना। हजारो भक्त यात्रा करते है और सभी सकुशल, उल्लसित मन लौटते है। हम लोग भी लौटे, मन उल्लास से भरा हुआ था। धर्मशाला पहुँचे। होली पर्व बहुत ही आनन्द, उल्लास और आध्यात्मिक रूप मे मनाया।

पूज्य कल्याणसागरजी म सा. की नव्वाणु यात्रा चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को पूर्ण हो रही थी। उन्होने हम लोगो को रुकने का आग्रह किया। हम रुक गये। शाश्वती ओली की आराधना और महावीर जयन्ती पर्व गिरिराज की छत्रछाया मे बडे आनन्द से मनाया।

जिस तरह सुमन की सौरभ स्वयं ही पवन के झकोरो के साथ चारो ओर फैल जाती है, इसी प्रकार गुरुवर्याश्री का सम्मेतशिखर आगमन भी कलकत्ता संघ को मालूम हो गया। वहाँ के मुख्य-

मुख्य श्रावक मारवाडी साथ वाले श्रीमान ताजमलजी सा० बोथरा, भवरलालजी सा० नाहटा, हीरालालजी सा० लूनिया, पानमलजी सा० कोठारी, ज्ञानचदजी सा० लूणावत आदि तथा मुर्शिदाबादी व जौहरी साथ वाले कई श्रावकगण कलकत्ता चातुर्मास हेतु एक बडा विनती पत्र, कलकत्ता श्रीसघ के हस्ताक्षर युक्त लेकर पधारे, पूज्याश्री के सम्मुख रखा और भावभरी विनती की। उन्हे शीघ्र ही स्वीकृति मिल गयी। जहाँ भाव हो वहाँ मनुहार कैसी ?

पूज्याश्री रभाश्रीजी म० सा० आदि भी इधर के क्षेत्रो मे धर्म-जागरण करती हुई पधार गईं। उत्साह और वढ गया। पू० कल्याणसागरजी म० सा० के नवाणु यात्रा के निमित्त अठाई महोत्सव-पूजाओ आदि का ठाठ रहा।

लगभग सवा महीने हम लोग शिखरजी रहे। वडे उत्साह मे मन भरकर यात्राए-वन्दनाए की। वडा आनन्द का वातावरण रहा। चित्त मे उल्लास छाया रहा। तन-मन स्फूर्ति से उमग रहा था।

वहाँ से प्रस्थान करके कतरास, झरिया, धनवाद, वर्द्धमान आदि नगरो मे विचरण करते हुए तथा मन्दिरो के दर्शन करते हुए, जन-साधारण को प्रवचन लाभ देते हुए सैथिया गाम (श्वेताम्बिका नगरी) मे आये। मार्ग मे कलकत्ता से ४-५ श्रावक आ गये। वे भी यहाँ तक साथ रहे।

सैथिया—यहाँ के लगभग सभी लोग स्थानकवासी थे, लेकिन गुरुवर्याश्री के प्रवचनो से प्रभावित हो, ठाठ से नगर-प्रवेश कराया। मदिरो के दर्शन करते हुए महावीर भवन पहुँचे। वहाँ आपश्री का ओजस्वी प्रवचन हुआ। लोग चकित रह गये—क्या साध्वीजी भी इतनी विद्वान और प्रवचनकुशल हो सकती हैं ? वहुत प्रभावित हुए, उन्होने कुछ दिन रुकने की विनम्र श्रद्धायुक्त विनती की। हमारे भी उस क्षेत्र के लगभग सभी तीर्थ हो चुके थे, चातुर्मास मे भी अभी समय था, अत स्वीकृति दे दी।

प्रतिदिन के व्याख्यानो से काफी धर्म प्रभावना हुई। उन लोगो ने चातुर्मास का आग्रह किया पर कलकत्ता चातुर्मास स्वीकृत हो चुका था, अत उन्हे स्वीकृति न मिल सकी।

यहाँ से निकट ही वह स्थान है जहाँ प्रभु महावीर ने चण्डकौशिक नाग को प्रतिवोध दिया था। अव वह स्थान जोगी पहाडी के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय वहाँ स्मारक वनाने की योजना चल रही थी जो अब पूर्ण हो गई है, चरण स्थापित हो गये है।

वगाल प्रवेश—यहाँ से मुर्शिदावाद की ओर कदम वढाए। मार्ग मे वगाली लोगो से परिचय हुआ। अपनी भाषा मे वडी स्त्री को वे मा और छोटी स्त्री को वे दीदी कहते है। भाषा प्राय मधुर थी। हमारे वेश के प्रति उन लोगो के हृदय मे सम्मान भी था। हमारे आचार-विचार-निवास के बारे मे जिज्ञासा भी कर लेते थे। जैसे—आपका घर कहाँ है (आपनार वाडी को थाय) ? आप वाल क्यो नही रखते ? पैदल (विना चप्पल जूते के) क्यो चलते है, आदि-आदि। हम लोग भी टूटी-फूटी वगला मे सक्षिप्त उत्तर दे देते।

जैन श्रमणी की कठोर चर्या को सुनकर वे लोग चकित रह जाते। अधिकाश वगाली लोगो मे भारतीय सस्कृति के दर्शन होते हैं। धोती कुर्ते का पहनावा, अतिथि सत्कार की भावना, त्यागियो के प्रति पूज्यभाव, नारीजीवन मे सतीत्व व पातिव्रत्य को प्रथम स्थान। लोगो की दृष्टि मे अश्लीलता का अभाव। यद्यपि पहनावे आदि मे आधुनिक प्रभाव वढ रहा है, फिर भी अपनी सास्कृतिक मर्यादाओ के प्रति प्रेम और आदर का भाव है उनमे।

महिमापुर मे पहुँचे। वहाँ जगत्सेठ का कसौटी पत्थर का पूरा मदिर वना हुआ है। अतः

पुलिस का पहरा रहता है। वहाँ कठगोला राय लक्ष्मीपतिसिहजी द्वारा निर्मित उद्यान स्थित मदिर के दर्शन करते हुए जीयागज पहुँचे।

जीयागज—यहाँ वडे सुन्दर आलीशान मदिर है। पहले यहाँ का वैभव बहुत था, लेकिन अब वह बात नही रही, साधु-साध्वियो का आगमन भी कम होता है, फिर भी यहाँ के निवासियो मे धर्मानुराग और शुद्ध धर्मनिष्ठा काफी है। पहले यहाँ जैन घर काफी थे पर अब व्यापार धन्धे के कारण कलकत्ता जाकर बस गये है। समय का प्रभाव है यह।

दो दिन रुककर गगा पार अजीमगज गये। वहाँ शहर के बाहर शिखरवद्ध जिन मन्दिर मे भ० सम्भवनाथ की प्रतिमा अति विशाल और बहुत मनोरम है। भ० नेमिनाथ का मन्दिर और प्रतिमा भी भव्य और चित्ताकर्षक है। भव्य मदिरो और प्रतिमाओ के दर्शन करके हृदय प्रफुल्लित हो गया। उसी सध्या को पुन जीयागज लौट आये। २-३ दिन रुके। पूजाएँ आदि हुई। लोगो ने रुकने का आग्रह किया किन्तु चातुर्मास का समय निकट आ रहा था और कलकत्ता के लोगो का आना-जाना शुरू हो गया था, अत रुके नही। कलकत्ता की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग मे पडने वाले क्षेत्रो मे धर्म-जागरणा करते हुए आषाढ कृष्णा १३ के दिन माणकतल्ला मे सुप्रसिद्ध राय बद्रीदास टेम्पल पहुँचे।

कलकत्ता वालो ने हमारे ठहरने के लिए सामने ही दादाबाडी मे समुचित व्यवस्था कर रखी थी। कुछ दिन वही ठहरे, क्योकि कलकत्ता मे तो आषाढ शुक्ला मे ही प्रवेश करना था। एक कारण और भी था। पूज्याश्री समताश्री जी म० सा०, कुसुमश्री जी म सा आदि ६ ठाणा भी चातुर्मासार्थ आने वाले थे और प्रवेश सभी का साथ ही होना था। यथासमय वे पधार गये। शुभ मुहूर्त मे बैडबाजो और हर्षोल्लासपूर्वक कलकत्ता वालो ने नगर प्रवेश कराया।

सघ के साथ वडे मदिर के दर्शन किये। कलाकार स्ट्रीट मे स्थित जैन भवन मे पहुँचे। वहाँ मगल प्रवचन हुआ और प्रभावना के साथ कार्यक्रम सपन्न हुआ। यहाँ से तुल्लापट्टी स्थित ११ न० (बडे मदिर के ऊपर) उपाश्रय मे आये। यहाँ हम लोगो के रुकने की उचित व्यवस्था थी।

कलकत्ता चातुर्मास · स० २०२८

चातुर्मास का शुभारम्भ हुआ। गुरुवर्या वडतल्ला मे स्थित वजाज धर्मशाला में थे। प्रतिदिन के व्याख्यान जैन भवन मे होते थे। व्याख्यान मे श्रोताओ की रुचि और आचार-विचार से परिचित कराने वाले, द्वादशागी के प्रथम अग, आचाराग सूत्र का प्रारम्भ किया गया। ओजपूर्ण वाणी और युक्तियुक्त सामयिक विवेचन से श्रोता विभोर हो जाते। उपस्थिति दिनोदिन बढने लगी। मध्यान्ह मे गुरुवर्या श्री रत्नचूड चौपी अपनी मधुर वाणी मे फरमाती थी।

गुरुवर्याश्री ने लक्ष्मीवल्लभ टीका, व श्री समयसुन्दरगणी की कल्पलता व्याख्या एव बुद्ध मुनिजी म० की कल्पबोधिनी टीका के आधार पर कल्पसूत्र का परिष्कृत एव परिमार्जित भाषा मे हिन्दी अनुवाद का श्रीगणेश तो जयपुर मे ही कर दिया किन्तु इस लेखन कार्य की परिसमाप्ति कलकत्ता चातुर्मास मे हुई।

कलकत्ता मे साधु-साध्वियो के चातुर्मास हेतु स्थान का अभाव-सा था। हम लोग जहाँ रुके थे वहाँ भी काफी असुविधाएँ थी। गुरुवर्या ने उचित स्थान लेने का प्रस्ताव सघ के सामने रखा। तुरन्त

चन्दा भी शुरू हो गये। ५-७ लाख की राशि एकत्र हो गई। कई स्थान देखे गये किन्तु कलकत्ता जैसी घनी बस्ती वाले नगर मे स्थान का मिलना असभव-सा ही है। एक बात और भी थी वह यह कि जैन भवन या बडे मन्दिर के पास ही कोई सेपरेट (Seperate) जगह मिल जाय, वह न मिल सकी। योजना सफल न हो सकी।

श्रावण की बरसात की झडियो के साथ ही तपस्याओ की झडी भी लग गई। पूर्णाहुति पर पूजा और स्वधर्मी वात्सल्य का भी खूब ठाट रहा। अक्षय निधि तप (इसमे निरतर १५ दिन तक एकासने व अन्तिम सवत्सरी के दिन उपवास किया जाता है, मे भी लडकियो (अब तरुणियां) बहुओ, स्त्रियो की सख्या अधिक रही। क्रिया स्थापना आदि सामूहिक रूप से ही जैन भवन मे तथा प्रवचन का कार्यक्रम श्री मोतीचन्दजी नखत की धर्मशाला (जो जैन भवन के बाजू मे ही थी) होते थे।

व्याख्यान मे श्रोताओ की सख्या लगातार बढ रही थी। सवत्सरी के दिन तो तीसरी मजिल तक श्रोता बैठे थे। ५-७ हजार व्यक्तियो की उपस्थिति थी, अत माईक की व्यवस्था भी थी।

गुरुवर्याश्री के अगाध ज्ञान और तत्त्व विवेचन शैली से कलकत्तावासी बहुत प्रभावित हुए। तत्त्वज्ञ विद्वान श्रीमान भँवरलालजी नाहटा, श्री जिनप्रभसूरिरचित विविध तीर्थ कल्प (यह ग्रन्थ प्राकृत तथा सस्कृत दोनो भाषाओं में है) का हिन्दी अनुवाद कर रहे थे। जहाँ उन्हे कठिनता आती या विषय स्पष्ट नही होता वहाँ गुरुवर्याश्री से पूछते और स्पष्ट व समुचित समाधान पाकर हर्षित तुष्टित होते।

इस प्रकार कलकत्ता चातुर्मास पूर्ण सफल रहा।

कार्तिक पूर्णिमा की शोभायात्रा

कलकत्ता की कार्तिकी पूर्णिमा की शोभायात्रा विश्वप्रसिद्ध है। यह चातुर्मास पूर्ण होने पर निकाली जाती है। लगभग साढे तीन माईल लम्बी शोभा यात्रा को मारवाडी, बगाली तथा अन्य सभी बडे चाव से देखते है। जैन समाज तो भाव विभोर होते ही हैं, अन्य सम्प्रदाय वाले भी प्रभावित होते हैं, मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते है।

शोभायात्रा मे सबसे आगे इन्द्र ध्वज चलता है, जिसकी ऊँचाई इतनी होती है कि ट्राम्म के तारो के ज्वाइन्ट्स भी खोलने पड जाते है। सुविधा, सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिए पुलिस साथ रहती है। यह शोभा यात्रा बडे मन्दिर से शुरू होकर राय साहब के बगीचे (बद्रीदास टेम्पल) तक आती है और पूजा स्वधर्मी वात्सल्य के कार्यक्रम के साथ परिसमाप्त हो जाती है।

हमारे चातुर्मास के साथ ही तपागच्छ मे आचार्य त्रिपुटी-श्री जयन्तसूरि, विक्रम सूरि और नवीनसूरि तीनो आचार्यो का तथा सर्वोदयाश्री जी म० सा० वाचयमाश्री जी म०सा० आदि साध्वीजी का चातुर्मास भवानीपुर, जो कलकत्ते का ही एक उपनगर है, उसमे था। यहाँ जैनो के अनेक घर है व बडा शिखरबद्ध विशाल मदिर है और साथ ही attached धर्मशाला भी है, जो ४-५ मजिल की है और साधु-साध्वियो के ठहरने के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

चातुर्मास पूर्ण कर हम लोगो ने भी भवानीपुर, बालीगज, लेकरोड आदि मे स्थित मदिरो के दर्शन किये और फिर खडगपुर की ओर कदम बढाने का निर्णय किया। उसका कारण था कि भूतपूर्व प्र० स्व० पूज्या श्री ज्ञानश्री जी म० सा० के ससार पक्षीय भतीजे फलोदी निवासी श्रीमान चाँदमलजी सा० गोलेच्छा व्यापार धन्धे के कारण खडगपुर ही रहते थे। वे जब भी पूज्याश्री के दर्शनार्थ जयपुर आते तभी खडगपुर पधारने की विनती करते थे।

कलकत्तावासियो से समारोहपूर्वक पुन' चातुर्मास के आग्रह के साथ भावभीनी विदाई लेकर हम लोगो ने खड्गपुर की ओर कदम बढाये। सैकडो व्यक्तियो के साथ हावडा पहुँचे। बीकानेर के प्रसिद्ध श्रावक श्री रामपुरियाजी के यहाँ रुके, आपकी भावना प्रशसनीय है, साथ आये सभी लोगो का स्वागत सत्कार किया। हम लोगो से भी दो दिन रुककर बडी पूजा और व्याख्यान आदि का आग्रह किया। दूसरे दिन उनके घर पर ही प्रात ९ बजे से व्याख्यान हुआ जिसमे हावडा निवासियो के अतिरिक्त शहर के भी बहुत लोग उपस्थित हुए। रामपुरियाजी के यहाँ ही सभी का भोजन था। दोपहर की पूजा के बाद सभी लोग चले गये। हमने भी आगे प्रस्थान कर दिया।

मार्ग मे कोयलाघाट आये। यहाँ दिगम्बर-श्वेताम्बर का एक ही मन्दिर है। एक श्वेताम्बर प्रतिमा वही की नदी मे निकली थी, वही मन्दिर मे विराजमान है। बडी भव्य मनोहर प्रतिमा है। इधर साधु-साध्वियो का आगमन बहुत कम होता है। मारवाडी जैनो के काफी घर है। हम लोगो से व्याख्यान का आग्रह किया। दोपहर मे व्याख्यान हुआ। व्याख्यान सुनकर उन लोगो का धर्मोत्साह जाग उठा। तप-त्याग-प्रत्याख्यानो की बाढ-सी आ गई। किसी ने रात्रि भोजन का त्याग किया तो किसी ने कन्दमूल का, किसी ने नवकार मन्त्र की माला फेरने का नियम लिया, तो किसी ने नवकारसी का।

इस प्रकार कोयलाघाट मे धर्म व्यापार अच्छा रहा।

यहाँ से विहार कर ५वें दिन खड्गपुर पहुँचे। नगर से लगभग १ किलोमीटर दूर गोल बाजार स्थित धर्मशाला मे रुके। यहाँ गुजराती जैनो के १०-१२ घर है। खड्गपुर से दर्शनार्थियो का ताता लग गया।

खड्गपुर प्रवेश

बडे धूमधाम से खड्गपुर मे प्रवेश किया। धर्मशाला मे पहुँचे। वहाँ एक कमरे में बिना प्रतिष्ठा के ही भगवान विराजमान थे, उनके दर्शन किये, वही पूज्याश्री चन्द्रप्रभाश्री जी म सा, श्री धरणीन्द्र श्री जी म व दिव्यप्रभाजी म पहले से ही ठाणापति विराजमान थे। हम भी वही रुके। सबको मागलिक सुनाई। सबने विदा ली।

सम्पूर्ण सघ मे हर्ष व्याप्त हो गया लेकिन वर्षो की भावना पूरी हो जाने से सर्वाधिक हर्षोल्लास श्री चादमलजी साहब को था।

व्याख्यान शुरू हुए। यद्यपि हम लोग १०-१५ दिन ही रुकना चाहते थे लेकिन लोगो के आग्रह से चार महीने तक रुके। आचाराग सूत्र की एक मात्र सूक्ति **'खण जाणाहि पडिए'** पर ही गुरुवर्याश्री की तत्वमेधिनी प्रज्ञा अमृत वर्षा करती रही। सभी लोग उनकी अगाध विद्वत्ता से प्रभावित हुए।

धर्मनिष्ठ चाँदमलजी सा प्रतिदिन पूजा के उपरान्त मागलिक सुनने आते थे। गुरुवर्याश्री ने उन्हे नूतन मन्दिर बनवाने की प्रेरणा दी। बात उनके दिल मे उतर गई। सर्वसम्मति से जैन भवन के ऊपर ही मन्दिर बनवाने का निर्णय कर लिया। फाल्गुन शुक्ला ५ के शुभ दिन गुरुवर्याश्री के कर कमलो से मदिर का शिलान्यास हो गया।

मूल मन्दिर चाँदमलजी बनवा रहे थे, पर सभामण्डप के लिए चन्दा होने लगा। उसी समय श्रीमती सुन्दरबाई कोचर (श्री भीखमचन्दजी कोचर की धर्मपत्नी) अपनी द्वादश वर्षीया पुत्री कमल को सामने कर हर्षातिरेक मे बोल उठी—

"आप लोग तो सिर्फ रुपये पैसे का ही चन्दा कर रहे है लेकिन मैं महाराज साहब के चरणो मे अपना चाँद का टुकडा समर्पित करती हूँ। यदि वर्तमान के समान भविष्य मे भी इसकी भावना बनी रही तो अवश्य ही दीक्षा दिलवाऊँगी।"

इन उद्‌गारो को सुनकर सभी धन्य-धन्य कह उठे। हम लोग भी चकित रह गये, क्योकि इस सम्बन्ध मे कभी कोई बात ही हमारे सामने नही आई। न कमल ने ही ऐसी कोई भावना हमारे सामने व्यक्त की और न उसकी माता ने ही।

हमने इस सम्बन्ध मे कमल की माँ से कहा—आपने इतना वडा निर्णय अचानक ही कैसे ले लिया और सघ के समक्ष प्रकट (declare) भी कर दिया ?

तब उन्होने कहा—आपको पहले ही बता देते तो ठीक रहता। बिना बताये ही डिक्लेयर कर दिया, यह हमारी भूल हुई। हम क्षमाप्रार्थी है। लेकिन जब से आप पधारे हैं और आपके ओजस्वी प्रवचन इसने सुने है तभी से दीक्षा की जिद कर रही है। बहुत समझाया, प्रलोभन भी दिये, पर मानती ही नही दीक्षा की जिद पर अडी हुई है। अब आप इसे अध्ययन करवाइये। जब दीक्षा के योग्य हो जायगी तब इसे आपकी निश्रा मे दीक्षा दिलवायेंगे।

यह कहकर कमल उन्होने हम लोगो के सुपर्द कर दी।

यद्यपि पुन कलकत्ता जाने का हमारा विचार नही था किन्तु वहाँ से बार-बार विनतियाँ आ रही थी और खड्‌गपुर मे नूतन मन्दिर मे प्रतिष्ठा हेतु मूर्तियो के मगल प्रवेश के शुभावसर पर तो कलकत्ता के श्रावक खड्‌गपुर मे आ ही गये। उनमे से मुख्य थे—श्री ताजमलजी सा बोथरा, भँवरलालजी सा नाहटा, हीरालालजी सा लूनिया, जतनमलजी सा नाहटा और ज्ञानचन्दजी सा लूणावत। सभी ने पुरजोर विनती की। यहाँ तक कह दिया कि जब तक आप कलकत्ता चातुर्मास की स्वीकृति नही देंगी तब तक न हम लोग मुँह मे पानी डालेंगे और न ही यहाँ से उठेंगे।

इस श्रद्धा भक्ति भरे आग्रह और भविष्य मे लाभ देखकर कलकत्ता चातुर्मास की स्वीकृति गुरुवर्याश्री ने दे दी।

शाश्वती ओली निकट थी। आपश्री ने चैत्री पूनम के लिए प्रेरणा दी तो कितनो ने ही सामूहिक आयम्बिल मे नाम लिखाये। गुरुवर्याश्री ने श्रीपाल चरित्र का मधुर भावपूर्ण शैली मे वाचन किया। नवपद ओली की सबने आराधना की।

धार्मिक ज्ञान सीखने हेतु यहाँ की कई लडकियाँ हमारे पास आती थी। उनमे कमल की दोनो बडी बहने निर्मला और हीरामणि भी थीं। निर्मला की तो सगाई की बाते चल रही थी, पर इसने भी दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की, हीरामणि ने भी की, अन्य कई लडकियो ने भी की परन्तु उस समय योग नही नही था, इसलिए उनकी भावना सफल न हो सकी।

पुन कलकत्ता की ओर प्रस्थान और सं. २०३० का कलकत्ता चातुर्मास

सभवत कलकत्ता के श्रावको के मन मे सन्देह या अत कलकत्ता की ओर हमे प्रस्थान करवा के ही लौटे।

कोयलाघाट मे खड्‌गपुर के कई लोग आये थे।

हावडा से पहले लिलुआ ग्राम में नया मन्दिर बना था, उसके दर्शन किये। वहाँ के जैनो के आग्रह पर एक दिन रुके। हावडा ब्रिज पहुँचे। वहाँ स्वागतार्थ कलकत्ता के श्रावक उपस्थित थे। सघ के साथ बड़े बाजार स्थित मन्दिर के दर्शन-वन्दनकर ११ न० उपाश्रय पहुँचे। मागलिक सुनाया और प्रभावनादि का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

प्रतिदिन जैन भवन मे व्याख्यान होता था। त्याग-तपस्या-प्रत्याख्यान आदि का माहौल पूर्ववत् [मा]स) जैसा ही था। वैरागिन बहनें हमारे पास रहकर ही धार्मिक अध्ययन कर रही [श्रीमद् देवचन्द्रजी म रचित द्रव्य प्रकाश का अनुवाद कर रही थी।

[मा]स सानन्द सपूर्ण हुआ। चैत्री पूनम की शोभा-यात्रा देखते हुए हम लोग बद्रीदास

[ ]याश्री शशिप्रभाजी म सा और मुझको (प्रियदर्शनाजी) साहित्यरत्न की परीक्षा देनी थी। बदी मे थी। अत एक महीने तक भवानीपुर रुके। परीक्षा हेतु पुन शहर मे आ गये।

खड्गपुर मे भगिनी त्रय का दीक्षा समारोह

खड्गपुर के लोगो ने आकर बताया कि दीक्षा का शुभ मुहूर्त बसन्त पचमी का है और उस दिन धारने की हम लोगो से विनती की। शिष्या-लाभ जानकर हम लोगो ने विहार किया और मार्ग के [ ]को फरसते हुए यथासमय खड्गपुर पहुँचे।

श्री रम्भाश्री जी म सा भी खड्गपुर सघ के अत्याग्रह से टाटानगर चातुर्मास पूर्णकर खड्गपुर पहुचे गये।

श्रीमान भीखमचन्दजी सा व भाई प्रकाशचन्दजी कोचर ने हर्षोत्साहपूर्वक शान्ति स्नात्र, महा-पूजन सहित अठाई महोत्सव कराये। दीक्षा के प्रथम दिन वर्षीदान का भव्य बरघोडा जिसमे पालखी में भगवान भी साथ थे और हम लोग भी थे, मध्य बाजार से गुजर रहा था तो सभी लोगो के भावोद्गार निकले—इतनी छोटी सी उम्र में सयमी जीवन का स्वीकार ! धन्य है ये लोग ! इस प्रकार त्यागमार्ग की अनुमोदना कर रहे थे।

दूसरे दिन—माघ सुदी ५ को शुभ मुहूर्त मे पूज्याश्री चन्दश्रीजी म सा, पू श्री रम्भाश्री जी म सा. आदि की निश्रा मे तीनो बहनो की दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। निर्मला का नाम 'दिव्यदर्शनाजी' हीरामणि का नाम 'तत्वदर्शनाजी' और कमल का नाम 'सम्यग्दर्शनाजी' रखा गया तथा तीनो को पूज्या गुरुवर्या श्री सज्जनश्री जी म. सा. की शिष्याएँ घोषित की गयी।

खड्गपुर मे ही नही अपितु सपूर्ण बगाल मे ही सभवत साध्वी दीक्षा का यह प्रथम अवसर था। अत १५ दिन तक आस-पास के बगाली सज्जन आते रहे तथा नूतन साध्वीजी के दर्शन एव उनके परिवारीजनो के भाग्य की सराहना करते रहे।

वी. नि. की २५वी शताब्दी के उपलक्ष्य मे पावापुरी चातुर्मास : वि. सं. २०३१

तीर्थंकर भगवान की २५वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य मे भगवान की निर्वाण भूमि पावापुरी मे विराट आयोजन हो रहा था। यद्यपि हमारा विचार नूतन साध्वियो की बडी दीक्षा कराने हेतु मध्य-प्रदेश जाने का था किन्तु श्रद्धेय पूज्य अनुयोगाचार्य श्री कान्तिसागरजी म. सा का आदेश पावापुरी रुकने

का आ गया। आदेश था—आगामी चातुर्मास पावापुरी मे करना है और भगवान का २५वी निर्वाण शताब्दी समारोह धूमधाम से मनाना है। राष्ट्रसंत कवि अमरमुनिजी म० एव तेरापथी मुनिश्री रूपचंद जी म तथा साध्वी श्री सुमतिकुंवरजी म, दर्शनाचार्या श्री चन्दनाजी म आदि भी इस शुभावसर पर पधार रहे है और हम लोग भी शीघ्र ही वहाँ पहुँचेंगे।

श्रद्धेय गुरुदेव के इस आदेश को हमने शिरोधार्य किया।

पुन पावापुरी की ओर प्रस्थान

हमारे कदम नूतन दीक्षिता साध्वियो के साथ खड्गपुर से पावापुरी की ओर बढे। मार्ग मे पुरुलिया, जमशेदपुर, चिप्टिपुर आदि स्थानो मे जहाँ जिन मन्दिर है और श्रद्धालु श्रावको के घर हैं, वहाँ दो-दो, तीन-तीन दिन रुकते-ठहरते हुए, महोदा, झरिया, कतरासगढ होते हुए चैत्र सुदी ५ को निमिया-घाट से शिखरजी पहुँचे।

हम लोगो को आशातीत प्रसन्नता हुई क्योकि शिखरजी की यात्रा के पुन सयोग की आशा ही नही थी हमे। शिखरजी मे ही शाश्वती नवपद ओली का आराधन किया। वैशाख बदी २ को शिखर जी मे विहार कर कोडरमा होते पावापुरी पहुँचे। लगभग ८ दिन वहाँ रहे। विचार किया अभी तो चातुर्मास मे बहुत समय है। एक बार पुन राजगृह हो आये। विचार के साथ ही पग बढे और दूसरे ही दिन शोर्टकट से राजगृह जा पहुँचे।

महासती श्री सुमतिकुंवरजी एव श्री चन्दनाजी म वीरायतन के लिए यही विराजी थी। पचम पहाड वैभारगिरि की तलहटी मे वीरायतन के लिए स्थान (जगह) लिया जा चुका था, दोनो साध्वीजी म की निश्रा मे शिलान्यास हो चुका था, निर्माण कार्य चल रहा था, राष्ट्रसन्त कवि अमरमुनिजी म भी पधारने वाले थे।

वीरायतन का निर्माण कवि अमरमुनिजी म और साध्वी चन्दनाश्री जी म की अनोखी और सामयिक सूझ-बूझ का परिणाम है। वीर शासन के प्रति उन्होने इस निर्माण कार्य से अपनी श्रद्धाभक्ति का परिचय दिया है। यहाँ ऐसा निर्माण ऐतिहासिकता को सुरक्षित रखने के लिये आवश्यक भी था।

हम लोग वीरायतन (प्राचीन ओफिस—जहाँ साध्वीजी म स्वय विराजती थी और भोजन-शाला भी थी) जाते रहते थे और साध्वी चन्दनाजी भी आती रहती थी। साध्वीजी बहुत ही मिलनसार हैं। हमारी भेंट पहले अजमेर और दूसरी बार कलकत्ता दादावाडी में हो चुकी थी। तभी से हम उनकी सहृदयता और मिलनसारिता से परिचित थी।

राष्ट्रसन्त कवि अमरमुनिजी म० के राजगृह प्रवेश पर निमन्त्रित होकर हम भी गये थे, नालन्दा बौद्ध सस्थान के कई विद्वान, जापान के फ्यूजी गुरुजी तथा प्रसिद्ध जैन विद्वान नथमलजी टाटिया (जो उस समय नालन्दा के प्रोफेसर और वर्तमान मे जैन विश्वभारती के अध्यक्ष है) पधारे थे।

कविजी म० के स्वागत मे सभा का आयोजन किया गया। सभी विद्वानो के भाषण हुए। गुरु-वर्याश्री ने भारत के ऐतिहासिक तीर्थस्थलो का इतने सुन्दर ढग से विवरण—विवेचन प्रस्तुत किया कि सभी ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशसा की।

कुछ दिन पश्चात पालीताना से विहार कर श्रद्धेय अनुयोगाचार्य श्री कातिसागरजी म०सा० पू० दर्शनसागरजी म०सा० व बालमुनि मणिप्रभसागरजी भी राजगृही की सीमा मे तीसरे पहाड की तलहटी

में स्थित छोटी-सी धर्मशाला में पधार गये। वहाँ पूज्य गुरुदेव ने अट्ठम तप के साथ तीन दिन तक मौन आराधना, जप-ध्यान किये।

कलकत्ते से कई अग्रगण्य श्रावक एव राजगृह के व्यवस्थापक श्रीमान जयन्तीलालजी सा० आदि आपके स्वागतार्थ राजगृह के तीसरे पहाड मे आ गये। खूब ठाठ से राजगृह मे प्रवेश हुआ। बडी धर्मशाला के सामने एक प्राइवेट बगले मे गुरुदेव रुके। तेरापथी मुनि रूपचन्दजी भी बगल (बाजू) मे एक सुव्यवस्थित स्थान मे रुके। हम लोग उनसे मिलने और विहार-सम्बन्धी सुख-पृच्छा करने गये। सौहार्दपूर्ण वातावरण रहा।

अनुयोगाचार्यजी भी दोनो मुनिराजो से मिले तथा पच्चीसवी शताब्दी निर्वाणोत्सव मे पधारने का आग्रह किया। ऐसा ही आग्रह साध्वी सुमतिकुवरजी एव चन्दनाजी से भी किया। जिसे सभी ने स्वीकार कर लिया।

पूज्य गुरुदेव कान्तिसागरजी ने और हम लोगो ने कच्चे शार्टकट से पावापुरी की ओर विहार किया। पावापुरी से १-२ किलोमीटर पहले स्वागतार्थ आये श्रावको ने धूमधाम से प्रवेश कराया।

यद्यपि पावापुरी मे जैन घर नही है, किन्तु इस विशाल आयोजन और साधु-साध्वियो के चातुर्मास के समाचार प्रसारित होते ही अनेक जैन बन्धु कलकत्ता, विहार शरीफ, पटना, भागलपुर, बीकानेर आदि स्थानो से चातुर्मासकाल के लिए आ गये पावापुरी मे। यो ३०-४० चौके हो गये।

जैन चौका

जैन चौका मात्र वह स्थान ही नही, जहाँ भोजन बनता है। चौका का रहस्य है—चार प्रकार की शुद्धियाँ। द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि और भावशुद्धि।

द्रव्यशुद्धि का अर्थ भोजन तैयार करने वाली और जो द्रव्य, अन्न आदि है, वे सब शुद्ध हो। क्षेत्रशुद्धि मे भोजन बनाये जाने वाले स्थान की स्वच्छता निहित है। कालशुद्धि का अभिप्राय भोजन की वेला का विचार रखना है और भावशुद्धि मे भोजन बनाने वाले के भाव—चित्तवृत्तियाँ शुभ हो, शुद्ध हो, उदार हो, मन मे यह भावना हो कि कोई त्यागी तपस्वी साध्वी-सन्त मेरे बनाये भोजन मे से कुछ आहार ग्रहण कर ले तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ, मेरा जीवन धन्य हो जाय, मेरा यह चौका पवित्र हो जाय।

इन चारो प्रकार की शुद्धियो से शुद्ध चौका ही जैन चौका कहलाने योग्य है।

ऐसे चौके पावापुरी मे उस समय लगभग ३०-४० थे।

नूतन दीक्षिताओ भगिनियो की बडी दीक्षा श्रद्धेय गुरुदेव की निश्रा मे आषाढ शुक्ला १२ के दिन सानन्द सम्पन्न हुई। इस दीक्षा मे दीक्षिताओ के माता-पिता भी सम्मिलित हुए।

श्रद्धेय गुरुदेव के आदेश से पूज्य गुरुवर्याश्री ने भ० महावीर की प्रथम देशना के स्थान पर प्रथम प्रहर मे श्री आचाराग सूत्र और मध्यान्ह मे भगवान की अन्तिम देशना उत्तराध्ययन सूत्र का वाचन शुरू किया जिसे श्रावक-श्राविका तथा बाहर से आये हुए सभी व्यक्ति सुनते थे।

इस भूमि का कण-कण भगवान महावीर से स्पर्शित है। अत इसका विशेष महत्व है। हम सभी का तन-मन श्रद्धा मे अभिसिंचित हो रहा था।

श्रद्धेय अनुयोगाचार्यजी के आदेश से गुरुवर्याश्री ने बालमुनि मणिप्रभसागरजी म० को चातु-

मास काल मे ही साधनिका सहित सपूर्ण कौमुदी कण्ठस्थ करवा दी। श्री मणिप्रभसागरजी म० की ग्रहण-शक्ति भी प्रबल है, कि इन्होने इतनी जल्दी कौमुदी को कण्ठस्थ कर लिया।

निर्वाण शताब्दी समारोह चातुर्मास के प्रारम्भ से ही शुरू हो गया था। हम लोग सब व पूज्य श्री चन्दनाजी म०, यशाजी, साधनाजी आदि निर्वाण मन्दिर मे गाते हुए, धुन लगाते हुए प्रभात फेरी के रूप मे जल मन्दिर जाते थे।

आशा यह थी कि भगवान के २५००वे निर्वाण शताब्दी समारोह के अवसर पर बाहर से लग-भग एक लाख स्त्री-पुरुष आयेगे। उसी के अनुसार सुव्यवस्थित महावीर नगर बसाया गया। कार्यक्रम सपादन हेतु जलमन्दिर के एक ओर विशाल मडल भी बनाया गया।

किन्तु उन्ही दिनो बिहार मे श्री जयप्रकाशनारायण का आन्दोलन चल रहा था, वातावरण अशात बना हुआ था। यद्यपि श्रद्धेय अनुयोगाचार्यजी बिहार शरीफ की इतनी लम्बी यात्रा करके जे० पी० से स्वय मिले और उनसे सपूर्ण कातिक मास मे आन्दोलन बन्द रखने का वचन ले लिया था, तथा इस प्रकार के समाचार रेडियो द्वारा प्रसारित भी करवा दिये। पर जितनी आशा थी बाहर से उतने लोग नही आये।

कार्यक्रम १० दिन पहले ही शुरू हो चुका था। विद्वान लोग आ गये थे। विद्वद् गोष्ठियाँ और व्याख्यान होने लगे। वक्ता अपने व्याख्यानो मे अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकात, आत्मवाद आदि का विवे-चन करते। आस्तिक्य आदि की व्याख्या करते और प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभाव रखने की प्रेरणा देते।

भक्ति आस्था और श्रद्धा का वातावरण था। इसी अवसर पर निर्वाण मन्दिर का जीर्णोद्धार भी हुआ। जैसलमेरी पीत पाषाण की दो अत्यन्त प्राचीन प्रतिमाएँ, जो जैसलमेर से ही लाई गई थी, उनको भी शाति स्नात्र महापूजन सह अष्टान्हिका महोत्सव पूर्वक बडे धूम-धाम से मिगसिर कृष्णा मे शुभ दिन और शुभ मुहुर्त मन्दिर के मूल गभारे मे दोनो साइड मे विराजमान की गई।

स्थानकवासी राष्ट्रसत कवि अमरचन्दजी म० आर्या महासती सुमतिकुवरजी, चन्दनाजी तथा तेरापथी मुनि रूपचन्दजी भी पूजादि मे पधारते और अपनी मधुर वाणी मे पूजा-भजन आदि गाते थे। इससे हमने वह अनुमान लगाया कि शास्त्रसम्मत प्रभु प्रतिमा को मानने मे उन्हे कोई ऐतराज न था और न है।

अनेकान्तवादी जैन धर्म मे अपार सहिष्णुता और सद्भावना का स्थान है।

सभी समारोह बडे धर्मोत्साह के साथ सम्पन्न हुए।

हमारा यह चातुर्मास अविस्मरणीय रहा।

चातुर्मास के उपरान्त अनुयोगाचार्यजी को शिखरजी की ओर पधारना था।

हमने राजस्थान की ओर कदम बढाए। मार्ग मे गया, बौद्ध गया आदि तीर्थ आये। गया मे दिगम्बर जैनियो के घर काफी हैं, श्वेताम्बर जैनियो का एक भी घर नही है। ग्राम मे दिगम्बर मन्दिर भी हैं। बौद्ध गया मे भी जिस पिप्पल के वृक्ष के नीचे तथागत को बोध प्राप्त हुआ था, वह बोधिवृक्ष के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ विशाल बौद्ध मन्दिर है। चीन, जापान, वर्मा, लका, थाइलैण्ड आदि देशो द्वारा बनवाये हुए बौद्ध मन्दिर भी है। बौद्ध विहार भी है। इनमे भिक्षु-भिक्षुणियाँ रहते हैं। हमने इन सब को देखा तो भारत के प्रति गौरव का भाव मन मे भर उठा। भारत के एक महापुरुष को विदेशो मे कितना सम्मान मिला।

साथ ही इस बात का दु ख भी हुआ कि भारत के ही अन्य धर्मावलम्बी धर्मान्ध नरेशो ने जैनो पर इतने अत्याचार किये जिस प्रदेश में हमारे तीर्थंकर जन्मे, विचरे, ज्ञान का प्रकाश दिया, इसी भारत मे हमारे धर्म का इतना पतन हो गया। अत्याचार तो बौद्धो पर भी हुए पर वे अन्य देशों मे निकल गये, वहाँ अपना वर्चस्व स्थापित किया, लाखो-करोडो अनुयायी बनाए, किन्तु जैन तो पिछड़े ही रह गये और इसके अनेक ऐतिहासिक कारणो पर गुरुवर्याजी ने कई बार प्रकाश डाला।

बौद्ध गया से प्रस्थान करके नेशनल हाईवे पर चलते हुए बनारस, इलाहाबाद (पुरिमताल—जहाँ भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ था), कानपुर (जहाँ काँच का दर्शनीय मन्दिर है) शौरीपुर (भगवान नेमिनाथ की जन्मभूमि) होते हुए आगरा आये। ८-१० दिन रुके। व्याख्यान पूजाओ आदि का ठाठ रहा। सभी मन्दिरो के दर्शन किये।

'श्वेताम्बर जैन' पत्र के सस्थापक-सपादक श्री जवाहरलालजी लोढा के अति आग्रह से जयपुर हाउस स्थित नवीन बगले पर गये। यहाँ उन्होने दादा गुरुदेव पूजा व व्याख्यान का कार्यक्रम रखा था। समीपस्थ दादावाडी व सेठ के बाग के मन्दिर के दर्शन करके पुन बगले मे आ गये।

दूसरे दिन विहार कर दिया। चैत्र बदी २ को जयपुर पहुँचे। वहाँ पूज्य प्रवर श्री साम्यानन्द जी म० एव व्याख्यान वाचस्पति श्री जयानन्दजी म० की निश्रा मे लगभग १५० श्रावक-श्राविका उपधान तप कर रहे थे। चैत्र शुक्ला ५ को मालारोपण का शुभ मुहूर्त्त था। अत पूज्य प्रवर के आदेश से १५ दिन वही रुके।

पूज्य गुरुवर्याश्री से तत्वरसिक श्रावक-श्राविका एक-डेढ घण्टे तक नित्य तत्वचर्चा करते थे। हम भी वही बैठते थे।

यद्यपि आज का युग भोगवाद का है। शिक्षा भी अर्थार्जन लक्ष्यी है। शिक्षितवर्ग भारतीय वेश-भूषा, खान-पान, आचार-विचार के प्रति हेय दृष्टि रखता है। धर्मक्रियाएँ भी आडम्बर और दिखावा मात्र रह गई है। इन्हे धर्मक्रिया न कहकर धार्मिक परेड कहना अधिक उपयुक्त जान पडता है। फिर भी इस भौतिकताप्रधान युग मे भी कुछ तत्त्वरसिक श्रावक-श्राविका हैं, वे ही गुरुवर्याश्री से तत्वचर्चा करते थे।

इस प्रकार १५ दिन बीत गये। अष्टान्हिका महोत्सवपूर्वक मालारोपण का कार्यक्रम हुआ। उसी दिन गुरुदेव के बाहरी कक्ष मे योगीराज श्री शातिविजयजी म० की मूर्ति स्थापना का कार्यक्रम भी समारोहपूर्वक संपन्न हुआ।

हम शहर मे आ गये। शाश्वत नवपद ओली, महावीर जयन्ती तथा चैत्री पूर्णिमा पर्वो की आराधना की।

वैशाख महीने मे जैन कोकिला पू० श्री विचक्षणश्रीजी म०सा० आदि सर्व दिल्ली से पधार गये थे।

चातुर्मास समीप होने से अनेक क्षेत्रो की चातुर्मास हेतु विनतियाँ आ रही थी। अजमेर सघ का आग्रह अत्यधिक था। किन्तु इस बार पू० प्रवर्तिनीजी की इच्छा पू० गुरुवर्या का चातुर्मास अपने साथ ही कराने की थी। अत जैन कोकिलाजी ने सबको मधुर स्वर से इन्कार कर दिया। किन्तु अजमेर सघ का आग्रह अन्त तक रहा। उस वक्त तक तपागच्छ और खरतरगच्छ मे कोई भेदभाव नही था। अत सघ

जौहर स्थान भी यही है। हमने इन सबको देखा। ऐतिहासिक स्थानो को प्रत्यक्ष देखकर हृदय गौरव से भर गया। दो-तीन दिन रुके।

करेडा पार्श्वतीर्थ—चौथे दिन विहार किया। करेडा पार्श्वतीर्थ पहुँचे। भ० पार्श्वनाथ के विशाल शिखरबद्ध मन्दिर के दर्शन किये। धर्मशाला, भोजनशाला आदि सभी सुव्यवस्थित है।

यहाँ से उदयपुर पहुँचे। राजस्थान का यह दर्शनीय स्थल है । देश-विदेश के टूरिस्ट आते है। यहाँ कई विशाल मन्दिर हैं। सूर्य पोल के बाहर ही भावी तीर्थंकर पद्मनाभ का विशाल मन्दिर है, जिसमे प्रतिमा भी विशाल है। दो-तीन दिन रुके। सभी मन्दिरो के दर्शन किये। दूर-दूर के कुछ मन्दिर रह भी गये। सोचा था—केशरियानाथजी से लौटकर पुन. उन मन्दिरो के दर्शन कर लेगे। क्योकि इधर आकर हमे पुन आबू, माडोली आदि तीर्थो की यात्रा करनी थी। अत केशरियानाथजी की ओर विहार किया।

केशरियानाथ—इसका मार्ग पर्वतीय क्षेत्रो मे होकर है। काफी उतार-चढाव है। उदयपुर से सावलाजी तक तीखे मोडोयुक्त घाटी है, भूमि ढालू है। इस घाटी को खजूरी घाटी भी कहा जाता है।

केशरियानाथ का नाम ऋषभदेव भी है। किलोमीटर के स्टोन पर भी यही नाम लिखा है।

चौथे दिन केशरियानाथ पहुँचे, गुरुवर्याश्री की भावना आज सफल होने से वे बहुत प्रसन्न थी। तीर्थ की प्राचीनता प्रतिमाजी और मन्दिर से स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी।

जैन और वैष्णवो के विवाद के कारण तीर्थ सरकार के हाथ मे है। लेकिन देखने वाला कोई नही है। भ० ऋषभदेव को हिन्दू अपना आठवाँ अवतार मानते हैं। रोज गीता-रामायण का पारायण होता है। पर मन्दिर की दशा की ओर ध्यान नही। गभारा एकदम काला हो रहा है।

भगवान की ऐसी आशातना देखकर दु ख हुआ। व्यवस्थापको व पुजारियो से इस विषय मे बातचीत भी की लेकिन सुपरिणाम निकलने की कोई आशा नही दिखाई दी।

यहाँ से यद्यपि पुन उदयपुर लौटने का विचार था लेकिन जैसे ही मालूम हुआ कि अहमदाबाद बहुत समीप है तो पालीताना, गिरनार आदि पचतीर्थी करने की भावना जाग उठी। गुरुवर्याश्री की इच्छा थी गिरिराज शत्रुजय की नवाणु यात्रा और वहो चातुर्मास करने की। अत कदम उसी ओर बढ गये।

मुहरीपार्श्वतीर्थ—मार्ग मे मुहरीपार्श्वतीर्थ आया। इसके लिए मेन रोड छोडकर कुछ अन्दर जाना पडता है। तीर्थ मे पहुँचे। विशाल मन्दिर और भव्य प्रतिमा के दर्शनो से चित्त आनन्द से भर गया। 'जयउसामिय' चैत्यवदन सूत्र के पाठ 'मुहरिपास दुहदुरिय खडण' से इसकी प्राचीनता स्पष्ट होती है। वर्तमान मे यह तीर्थ टिटोइ ग्राम के नाम से प्रसिद्ध है।

मार्गस्थ तीर्थो की यात्रा करते हुए अहमदाबाद पहुँचे।

अहमदाबाद—यह जैनो की धर्म नगरी है। ३००-३५० जिनमन्दिर है। कई भव्य वडे विशाल शिखरबद्ध तो कई छोटे। लेकिन छोटो मे भव्य और चित्ताकर्षक प्रतिमाएँ है। दर्शन करके मन तृप्त हो गया। नये मन्दिरो-धर्मशालाओ आदि का निर्माण भी हो रहा है।

इतने मन्दिर होने पर भी सभी सुव्यवस्थित है। जिस मन्दिर मे जाओ ५-५० भक्त पूजा करते हुए मिल ही जायेंगे।

अहमदावाद मे ८ दिन रहकर हमने सभी मन्दिरो के दर्शन किये। और फिर पालीताणा की ओर विहार कर दिया।

पालीताणा—यह शाश्वत तीर्थराज शत्रुजय जी की तलहटी मे बसा है। यहा के तीर्थनायक प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव है। वे नवाणु बार इस तीर्थराज पर पधारे थे। नेमिनाथ के अतिरिक्त २३ तीर्थंकरो के चरण-कमल इस पर पडे थे और भ० अजितनाथ तथा श्री शान्तिनाथ ने यहा चातुर्मास भी किया था। पाँचो पाडवो की मोक्षस्थली भी यही है। यहा का कण-कण पवित्र है। ऐसी पावन स्थली का श्रद्धा मे किया गया स्पर्श भी कोटि जन्मो के पापो का नाश करने वाला है। यहा पर किये गये पुण्यो का दस गुना फल होता है। पापी और अभव्य तो उसके दर्शन तक ही नही सकता। कहा है—

पापी अभव्य न नजरे देखे

फाल्गुन कृष्णा २ को हमने इस तीर्थ मे पदार्पण किया, रोम-रोम पुलकित हो उठा, 'शत्रुजय रास' की कडियाँ (पक्तिया) मन-मानस मे उमडने लगी। नरशीनाथ, नरशीकेशव के दर्शन करते हुए हरि विहार धर्मशाला पहुँचे। पू अनुयोगाचार्य श्रद्धेय गुरुदेव वही विराज रहे थे। विधिपूर्वक दर्शन-वन्दनादि किये। गुरुदेव ने वही रुकने का आग्रह किया परन्तु हमे तो नवाणु यात्रा करनी थी। अत तलहटी के अत्यन्त निकट हैदराबाद निवासी श्रीमान कपूरचन्दजी श्रीमाल के कपूर निवास की ओर चल दिये। मध्य मे माधवलाल धर्मशाला मे विराजित सम्पतश्रीजी म सा, गुणवानश्रीजी म सा आदि साध्वियो के दर्शन करते हुए कपूर निवास पहुँच गये।

गुरुवर्याश्री के नवाणु यात्रा के निश्चय को सुनकर हम लोग चकित रह गई। ६७ वर्ष की आयु और साढे तीन माईल की चढाई। कैसे सम्भव हो सकेगा यह सकल्प पूर्ण! पर सभी के मन मे भक्ति भरा भावोल्लास था और गुरुवर्याश्री के मन मे तो सबसे अधिक।

प्रात ५ बजे चढना, शातिपूर्वक दर्शन, चैत्यवन्दन, देव वन्दन करना और ग्यारह-साढे ग्यारह बजे तक उतरना। यही क्रम चलता था। कभी-कभी घेटी पाग भी पधारी, पर अधिक बार नही, क्योकि इधर चढाई खडी थी।

इसी अन्तराल मे श्री अनुयोगाचार्य जी के पास ८ वर्षीय वैरागी मुकेश कुमार जो पाँच-सात महीने से गुरुदेव के पास हो रह रहे थे, उनकी दीक्षा फाल्गुन शुक्ला ३ को समारोहपूर्वक हुई और उन्हे पू श्री मुक्तिप्रभसागरजी नाम दिया।

पूज्याश्री ज्ञानश्रीजी महाराज साहब के स्वर्गदिवस चैत्र कृष्णा १० को सूरत निवासी श्री फतेचन्द पानाचन्द भाई की ओर से मोती सुखिया मन्दिर मे बडी पूजा पढाई। प्रभावना, रात्रि जागरण आदि सभी उन्ही की ओर से था।

फतेचन्द भाई ने चातुर्मास कल्याण भवन मे ही करने का अत्याग्रह हम से किया।

नव्वाणु यात्रा के विधान के अनुसार पूज्या शशिप्रभाजी तथा अन्य छोटे साध्वी जी के तो लगभग नवाणु यात्रा हो चुकी थी। दूसरी भी करीब पूरी पूरी होने जा रही थी। पूज्या गुरुवर्या श्री की १०८ यात्रा पूरी होने जा रही थी। हमे अत्यधिक प्रसन्नता थी कि पूज्याश्री का सकल्प पूर्ण हो रहा है। वे प्रतिदिन बहुत ही भक्तिभाव तथा उत्साहपूर्वक दर्शन करती थी।

चातुर्मास बिल्कुल ही निकट था। पू श्री शशिप्रभाजी म सा यद्यपि एक मासक्षमण अपनी जन्मभूमि फलौदी मे कर चुकी थी परन्तु पुन गिरिराज की छाया मे मासक्षमण की तीव्र भावना हुई। मैंने भी मासक्षमण की भावना व्यक्त की।

चातुर्मासिक चतुर्दशी के दिन भी प्रतिदिन के समान गिरिराज पर चढे। आज अन्तिम दिन था। अन्य दिनो मे तो कल पुन चढेगे ऐसी ललक रहती थी। किन्तु आज की बात दूसरी थी। चार

✲

मास क्षमण तपाराधना के अवसर पर वि स २०२५ भा. शु ८ को मास क्षमण तक की पूर्णाहुति पर वरघोड़े मे श्रद्धेया गुरुवर्य्या प्रर्वातिनी श्री ज्ञानश्रीजी म. (एकदम ऊपर) के साथ कुर्सी पर विराजमान हैं तपस्विनी प्र श्री सज्जन श्रीजी महाराज ।

✲
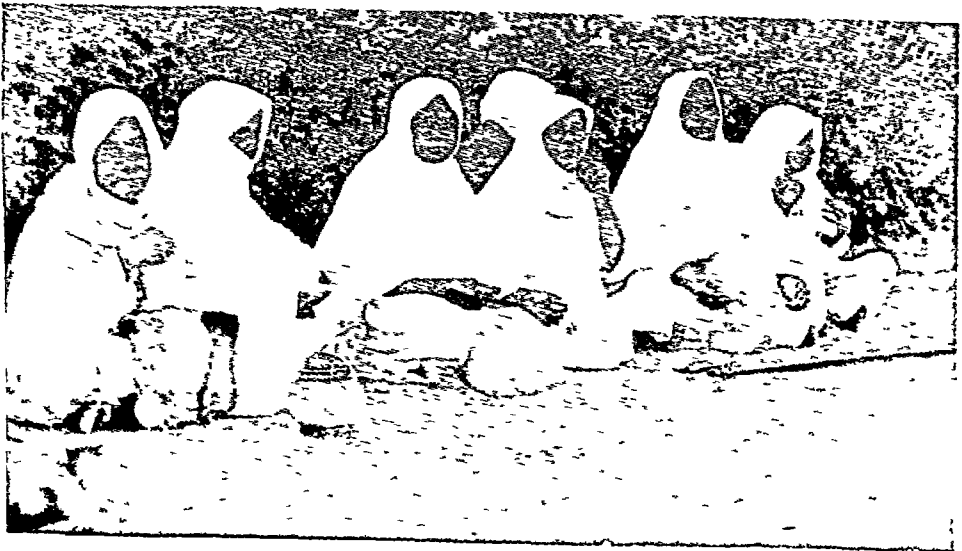
शिक्षा गुरु एव अभिभावक श्रद्धेया श्री उपयोग श्रीजी म के सान्निध्य मे वि स. २००८ सेठानी सा श्री मदन कुवर बाईसा गोलेच्छा के उद्यापन के उपलक्ष मे आयोजित अष्टान्हिका महोत्सव के समय जलयात्रा के वरघोड़े मे रामनिवास बाग मे विराजी हुई दायें से दूसरे क्रम पर शिक्षा गुरुणी श्री उपयोग श्रीजी म. के साथ चतुर्थ क्रम पर पूज्यवर्या प्र सज्जन श्रीजी म ।
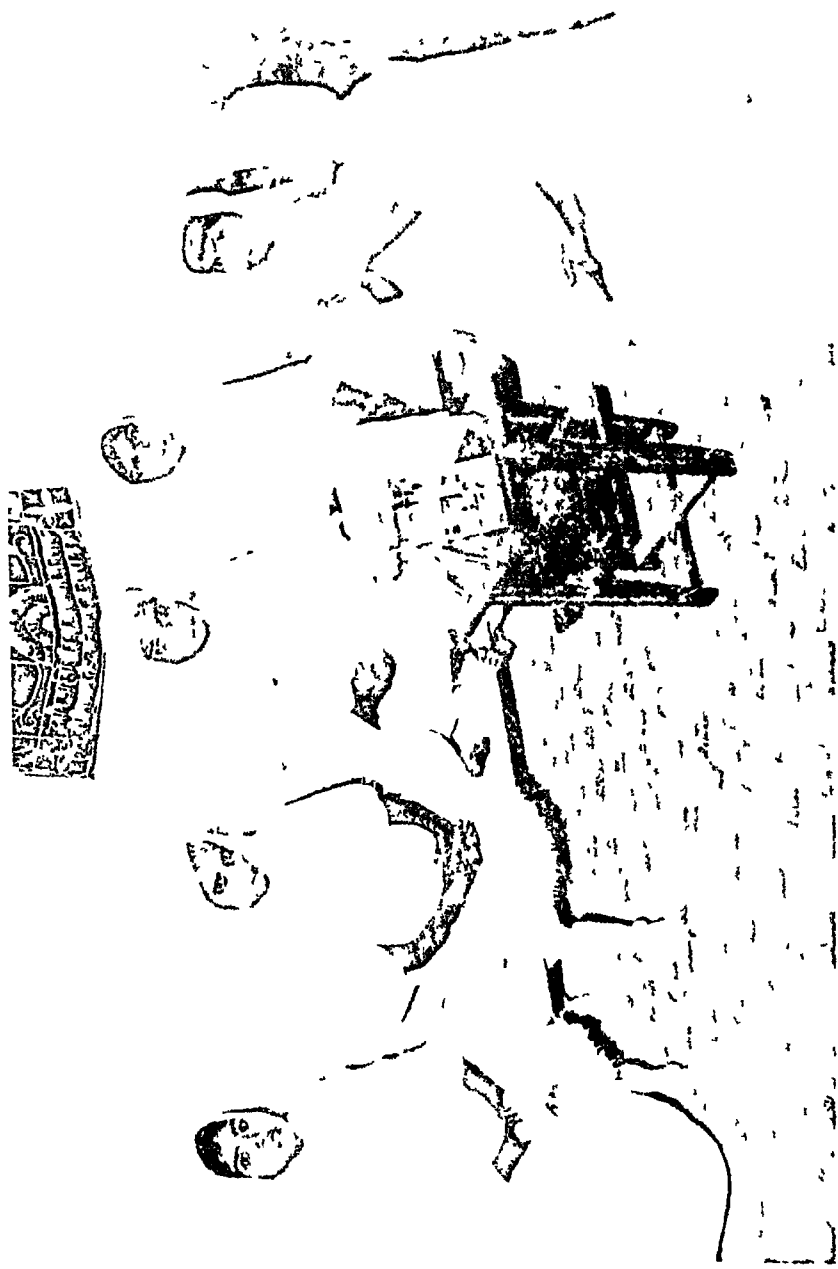
वि० सं० २०३३ श्रावण शुक्ला पूनम तीर्थराज पालीताना की पावन भूमि पर मासक्षपण तपाराधिका विदुषी शिष्या श्री शशिप्रभा श्री जी, श्री प्रियदर्शना श्री जी एव तत्त्वदर्शना श्री जी आदि शिष्या मडली के साथ पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी म०

मास के लिए दर्शनो का वियोग हो रहा था। अत भक्ति एव दर्शन के सुख के साथ वियोग का दु ख भी मिश्रित हो रहा था। सभी ने बडी भक्ति से दर्शन किये। गुरुवर्याश्री के साथ दादा के दरबार मे आये। पुन चैत्यवन्दनादि कर पू श्री शशिप्रभाजी म सा, मैंने (प्रियदर्शनाजी) और तत्वदर्शनाश्रीजी ने मासक्षमण की भावना से अट्ठम (तेले) के प्रत्याख्यान कर लिये और दादा से चार महीने के लिए विदाई ली। हमारे नेत्र अश्रुपूर्ण थे। वर्षा ने भी हमारे दुख को समझा और चौधारा आँसू (जलधारा) बरसा कर सहयोग/समवेदना प्रगट की।

कपूर निवास से कल्याणभवन पहुँचे क्योकि चातुर्मास वही करना था।

पालीताणा चातुर्मास : स० २०३३

अनुयोगाचार्यजी के आदेश से गुरुवर्याश्री ही व्याख्यान फरमाती थी। मध्याह्न मे अजना चरित्र सुनाती थी। हम तीनो का मासक्षमण के साथ मौन-जप-ध्यान चल रहा था।

पूर्णाहुति पर बालमुनि मणिप्रभसागरजी ने भी अठाई तप की आराधना की। चातुर्मासार्थ आये हुए श्रावक-श्राविकाओ ने पचरगी तप भी किया। अष्टाह्निका महोत्सव, पूजा-वरघोडा, रात्रिभक्ति आदि सभी कार्यक्रम हरिविहार मे थे, इसलिये हम सब लोग भी वही आ गये थे। प्रसिद्ध गुडावालोतान की मडली बुलाई गई थी, जिससे पूजा, वरघोडे आदि मे चार चाँद लग गये थे। वरघोडे की शोभा दर्शनीय और स्वामीवात्सल्य प्रशसनीय रहा। सभी कार्य सुव्यवस्थित ढग से सम्पन्न हुए।

चातुर्मास सभी प्रकार से सफल रहा। पठन-पाठन का कार्य भी सुन्दर रहा और फतेचन्दभाई की सेवा प्रशसनीय रही।

हमे गुजरात की पचतीर्थी की यात्रा करनी थी अत चातुर्मास बाद विहार किया। मौन एकादशी की आराधना गिरनार तीर्थ पर की।

वहाँ से विहार कर मार्गस्थ मागरोल, वेरावल, आदि तीर्थो की यात्रा करते हुए चन्द्रप्रभास-पाटन (सोमनाथ पाटन) पहुँचे। यहाँ चन्द्रप्रभ भगवान के विशाल मन्दिर के दर्शन करके मन प्रसन्न हो गया। यही इतिहास विख्यात सोमनाथ का मन्दिर समुद्र किनारे बना हुआ है, जिसको महमूद गजनवी ने बार-बार लूटा और ध्वस्त किया तथा इसका बार-बार निर्माण होता रहा। इसे सरकार ने ऐसा भव्य रूप प्रदान किया कि टूरिस्ट लोग भी देखने आते हैं। यहाँ से सन सेट पाइन्ट भी बडा सुन्दर दिखाई देता है।

यहाँ से विहार करके अजारा पार्श्वनाथ आये। लाल पत्थर की भगवान पार्श्वनाथ की बडी विशाल प्रतिमा है। भोजनशाला आदि भी व्यवस्थित है।

वहाँ से महुआ दाठा तलाजा आदि पचतीर्थी की यात्रा करके शत्रुञ्जयी डेम के पास नूतन मन्दिर के दर्शन करते हुए पालीताना आये।

चूँकि तीर्थराज का प्रभाव ही ऐसा है कि बार-बार यात्रा करने को मन करता है। एक बार पुनः तीर्थाधिराज के दर्शन किये।

इसी बीच सूरत से श्री सघ का विनती पत्र एव तत्रस्थ विराजित पू श्री गणाधीश महोदय का आदेश पू श्री अनुयोगाचार्यजी के पास आया कि 'मेरा स्वास्थ्य अनुकूल नही रहता, अत चातुर्मास हेतु किसी साध्वीजी को भेजें। पूज्य गुरुदेव ने पूज्या गुरुवर्याश्री से कहा और उन्होने मुझे (प्रियदर्शनाजी), तत्वदर्शनाजी तथा सम्यग्दर्शनाजी को सूरत विहार करवाया।

सूरत से प्रियदर्शनाजी आदि साध्वीजी भी आ गये। उल्लासपूर्वक प्रभु की स्तवना, भक्ति आदि करते हुए ३-४ दिन तक वही रहे।

वहाँ से सिद्धपुर, पालनपुर आदि तीर्थो की यात्रा करते हुए माउन्ट आबू पहुँचे।

माउण्ट आबू के शिखरबद्ध मन्दिर विश्वविख्यात है। बडी अनुपम कोरनी (कारीगरी) की गयी है। दौरानी-जिठानी के आले अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु सुन्दर कोरनी से युक्त है। हमने सभी मन्दिरो के दर्शन किये। सनसेट पाइन्ट, नक्की झील आदि कई दर्शनीय स्थान है, जिन्हे देखने टूरिस्ट आते है।

वहाँ से और आगे अचलगढ गये। वहाँ बडी विशाल भव्य स्वर्णप्रतिमाएँ चौमुखजी के रूप मे है। वही योगिराज श्री शान्तिगुरुदेव का स्थान है। वहाँ से पुन माउण्ट आबू आकर हम लोग अणादरा (जो योगिराज की जन्मभूमि है) की घाटी से, जो बडा ही पथरीला मार्ग है, नीचे उतरे।

वहाँ से सिरोही जावाल आदि होते हुए बसन्त पचमी (योगिराज का जन्म दिवस) के दिन माडोली आये। इस दिन वहाँ वडा भारी मेला लगता है, स्वामीवात्सल्य होता है, पूजा पढाई जाती है।

यही पर ४-५ व्यक्ति सिवाणा पधारने की विनती लेकर आये। समाचार दिया—पूज्या श्री चम्पाश्रीजी म सा यही ठाणापति विराजित है। उन्ही की निश्रा मे और पूज्यश्री तीर्थसागरजी म सा व कैलाशसागरजी म सा के हाथो ८ साध्वीजी की बडी दीक्षा का आयोजन है, सूर्यप्रभाजी ने भी मास-क्षमण करने का निश्चय किया है, समुदायाध्यक्षा का भी यही आदेश है, अत शीघ्र पधारे।

हमको भी उधर जाना था, अत आश्वस्त करके विदा कर दिया।

माडोली से विहार कर जालौर तीर्थ पहुँचे। वहाँ स्वर्णगिरि पर्वत पर ५ विशाल मन्दिर है। हम नदीश्वर द्वीप की धर्मशाला मे ठहरे। दूसरे दिन ऊपर चढे, सभी मन्दिरो के दर्शन किये, नीचे आये। दो दिन रुके। सिवाणा की ओर प्रस्थान किया। विशनगढ, बालवाडा, रमणिया, मोकलसर होते हुए ५-६ दिन मे सिवाणा पहुँच गये।

सिवाणा मे निर्णीत दिन बडी धूमधाम से बडी दीक्षाएँ हुई। दीक्षार्थिनियो के पारिवारीजन तथा अन्य भी बहुत से लोग आये। अभी १५ दिन के दशवैकालिक योग अवशिष्ट थे। अन्य कई साध्वीजी के १५ दिन के योग बाकी थे। अत पूज्या श्री शशिप्रभाजी, मैंने (प्रियदर्शनाजी ने), जयश्रीजी व सम्यग्दर्शनाजी ने दशवैकालिक योग इन लोगो के साथ ही प्रारम्भ कर दिये। बडी शान्ति से योगोद्वहन पूर्ण हुए। लगभग सवा महीने हम लोग यहाँ रुके।

वहाँ से पूज्याश्री आदि सर्व गौडवाड की पचतीर्थी—नाडोल, नाडलाइ, राणकपुर, वरकाणा, मूछाला महावीरजी आदि की यात्रा करते हुए पाली पहुँचे।

पाली विराजित पूज्याश्री अनुभवश्रीजी म सा के दर्शन-वन्दन कर एक दिन विश्राम किया। तदुपरान्त सोजत की ओर विहार किया। मार्ग मे बागावास के स्कूल मे रात्रि विश्राम किया। यह स्थान सोजत से १३ किमी दूर है।

प्रात कुछ अधेरा था। गुरुवर्याश्री स्थडिल के लिए जैसे ही गेट से बाहर पधारे कि लकडी आदि बीच मे आ जाने से गिर गये। घुटनो मे काफी चोट आई। साथ वाले साध्वीजी ने दवाई आदि लगाने का आग्रह किया पर आप स्थण्डिल चली ही गई। लौट आने पर देखा तो गौडे (जाँघे) छिल गये थे। दवा आदि लगाई, कुछ राहत मिली तो चलने को प्रस्तुत हो गई। पू शशिप्रभाजी ने बहुत मना किया पर

आप तो हिम्मत की धनी है, पू शशिप्रभाजी विवश होकर चुप हो गई। सभी ने विहार किया। केवल दो साध्वीजी—पू श्री शशिप्रभाजी म सा व अन्य एक साध्वी को अपने साथ रखा, बाकी सभी को सोजत विहार करा दिया। आप धीरे-धीरे चलती हुई ४-५ घण्टे मे ४-५ किलोमीटर चलकर एक प्याऊ पर रुकी। किन्ही कारवालो ने अपको देखकर कार रोकी। आपकी पीडा को समझकर एक ट्यूब दी व पहिए का ग्रीस लगाने को दिया।

इधर जैसे ही साध्वीजी सोजत पहुँची तो वहा के श्रावको को जानकारी हुई। वे लोग तुरन्त ही एक लेडी डॉक्टर को मरहम पट्टी के साथ लेकर उसी प्याऊ पर पहुँचे। पट्टी वगैरह तथा आहार-पानी की व्यवस्था की। फिर भी सूजन तथा दर्द मे कोई राहत न मिली। बहुत धीरे-धीरे चलकर तीन दिन मे सोजत पहुचे। वहाँ लगभग पन्द्रह दिन रुके। पाँव बिल्कुल ठीक हो जाने पर वहा से विहार करके ब्यावर अममेर पधारे। वही पर हम लोगो ने (प्रियदर्शनाजी, तत्वदर्शनाजी) गुरुवर्याश्री के दर्शन किये।

वहाँ से पूज्याश्री व हम सबने पूज्या जैन कोकिला जी के दर्शनार्थ जयपुर की ओर प्रस्थान किया।

जयपुर मे प्रवर्तिनीश्रीजी के दर्शन करके हम लोगो ने स्वय को कृतकृत्य माना। पूज्या गुरुवर्याश्री ने जैन कोकिला से उस गाँठ के विषय मे चर्चा की और देखा भी। बडे बेर जितनी मोटी गाँठ थी। गुरुवर्याश्री ने जैन कोकिलाजी को करबद्ध होकर ऑपरेशन करवाने की प्रार्थना की तो प्रवर्तिनीश्री ने स्नेहसिक्त किन्तु दृढ शब्दो मे कहा—

'सज्जनश्री सा ! मैं आपकी बात जरूर मानूँ। पर मुझे उसमे सार तो नजर आये। मैंने देखा भी है और सुना भी है जिसने भी आपरेशन करवाया है और सेक लिया है। उसकी बीमारी बढी है, कम नही हुई है। फिर यह तो कर्मो का कर्जा है, चुकाना ही पडेगा। इसे अभी चुकाना ही अच्छा है। इसलिए आप ऑपरेशन का आग्रह न करे। मैं किसी भी प्रकार उपचार नही करवाऊँगी। मेरा यही सकल्प है।'

इस सकल्प के आगे कुछ भी कहने को न रहा। सभी विवश हो गये।

चातुर्मास निकट आ रहा था। कई क्षेत्रो मे विनतियाँ आईं। अत टोंक क्षेत्र मे पू० श्री मणिप्रभाजी म० सा०, पू० श्री शशिप्रभाजी म० सा०, सम्यग्दर्शनाजी व विश्वा प्रज्ञाश्रीजी—इन चारो को प्रस्थान करवाया।

मालपुरा मे—श्री मुक्तिप्रभाजी म० सा०, पू० कमलाश्रीजी म० सा० व दिव्यदर्शनाजी आदि तीन, पू० मनोहरश्रीजी म० सा० के साथ जयश्रीजी आदि तथा दिल्ली मे श्री निरजनाश्रीजी काव्यप्रभाजी आदि चार। इस प्रकार निकट के क्षेत्रो मे साध्वीजी को चातुर्मासार्थ प्रस्थान करवाया।

प्र० महोदया जैन कोकिला विचक्षणश्रीजी म. की निश्रा मे

जयपुर चातुर्मास · स० २०३५

पू० प्र० जैन कोकिलाजी ने पू० गुरुवर्याश्री को अपने ही पास रखा। साथ ही मुझे (प्रियदर्शनाजी) व तत्त्वदर्शनाजी को भी आपश्री की निश्रा मे चातुर्मास करने का सौभाग्य मिला। पू० प्रवर्तिनीजी के साथ यह मेरा पहला चातुर्मास था।

इस वर्ष पू० श्री जयानन्दजी म० सा० का चातुर्मास भी जयपुर ही था। आपश्री ने पू० गुरुवर्याश्री से आचाराग सूत्र का वाचन किया था। मध्यान्ह मे श्रीमद् देवचन्द के 'आगमसार' पर स्वाध्याय,

प्रश्नोत्तर आदि चलते थे जिसमे सर्व साध्वीजी के अतिरिक्त तत्वरसिक श्रावक-श्राविका भी भाग लेते थे। श्रीमद् देवचन्द्र चौबीसी के स्तवनो का अर्थ पू० प्रवर्तिनी महोदया बडे सुन्दर रूप मे समझाती थी।

स्वाध्याय और तत्वचर्चा करते हुए जयपुर का चातुर्मास सम्पन्न हुआ।

चातुर्मास के उपरान्त पू० प्रवर्तिनीजी दादाबाड़ी पधार गये। टोक चातुर्मास करके पू० मणिप्रभाजी म० सा० आदि और मालपुरा चातुर्मास करके कमलाश्रीजी म० सा० आदि गुरुवर्या के चरणो में आ पहुँचे। पू० मनोहर श्रीजी म० सा० आदि अलवर चातुर्मास करके जयपुर आ पहुँचे। सुरजनाश्रीजी म० सा० के साथ प्रियदर्शनाजी व सम्यग्दर्शनाजी म० को प्रयाग सम्मेलन की परीक्षा हेतु अजमेर प्रस्थान करवाया।

पू० जयानन्दजी म० सा० दादावाडी की प्रतिष्ठा हेतु अलवर पधार गये।

चैत्रमास मे पू० श्री शशिप्रभाजी म० सा०, दिव्यदर्शनाजी व तत्वदर्शनाजी ने वर्षीतप प्रारम्भ किया, साथ ही कई गृहस्थ बहनो ने भी चालू किया।

पूज्या श्री शीलवतीजी म० सा० का स्वास्थ्य उपचार के बाद भी गिरता ही जा रहा था।

पू० प्रवर्तिनीजी तो दादाबाडी विराजित थी, किन्तु शहर मे विराजित पू० शीतलश्रीजी म० सा० के अस्वस्थ होने के कारण पू० गुरुवर्याश्री कभी दादाबाडी तो कभी शहर में आती जाती रहती थी। हम लोग लगभग ५० साध्वीजी थे। उनमे से १०-१२ दादाबाडी मे और बाकी शहर मे रहती थी।

पू० प्रवर्तिनीजी ने अपने गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर पू० गुरुवर्या से पुण्यमडल का कार्यभार सभालने को कहा। उत्तराधिकार सौपा। (पूज्या विचक्षणश्रीजी म० के हस्तलिखित उत्तराधिकार पत्र की प्रतिलिपि पृष्ठ ७४ पर देखिए।) जिस पर गुरुवर्या ने यथायोग्य शासनसेवा का वचन दिया।

आषाढ महीने मे पू० अनुयोगाचार्यजी पू० प्रवर्तिनी महोदया को दर्शन देने पधारे, सुख साता की पृच्छा की, दो दिन दादाबाडी मे रुके और फिर प्रस्थान करके उग्र विहार करते हुए बाडमेर पहुँचे।

पू० श्री शीतलश्रीजी म० सा० का स्वास्थ्य गम्भीर हो गया। उन्हे त्याग-प्रत्याख्यान आदि सभी करवा दिये। पाठ-सज्झाय-नवकार मत्र की धुन सुनते हुए आषाढ बदी १० को २ बजे उनका नश्वर शरीर छूट गया।

यद्यपि पूज्या प्रवर्तिनी का स्वास्थ्य गम्भीर होता जा रहा था किन्तु अजमेर वाले चातुर्मास के लिए अडे हुए थे। अत इच्छा न होते हुए भी प्रवर्तिनीजी ने गुरुवर्याजी को अजमेर चातुर्मास की आज्ञा दे दी। गुरुआज्ञा को शिरोधार्य कर पू० गुरुवर्याजी ने अपने साध्वीमडल के साथ अजमेर की ओर विहार किया।

अजमेर चातुर्मास · स० २०३६

अजमेर पहुचे। बडे उल्लासपूर्वक दादा मेला मनाया गया। गुरुवर्या ने श्रद्धाजलि रूप एक गीतिका बनाई जिसे हम सभी ने पूजा मे गाई।

दूसरे दिन धूमधाम से नगर प्रवेश हुआ। प्रतिदिन बडे उपाश्रय मे व्याख्यान होता था। उपस्थिति अच्छी होती थी।

मध्यान्ह मे चौपो प्रियदर्शनाजी बाचती थी।

श्राविकाओ ने उत्साहपूर्वक पचरगी प्रारम्भ की। सम्यग्दर्शनाश्रीजी ने भी पचरगी मे शरीक

होने के लिए उपवास प्रारम्भ किये। प्रारम्भ मे भाव तो पचोले का ही था, किन्तु शासनदेव की कृपा से मासक्षमण ही हो गया। पर्वाधिराज पर्युषण की पूर्णाहुति पर ही मासक्षमण की पूर्णाहुति थी।

पूर्णाहुति पर अठाई महोत्सव हुआ। पूजा पढाने के लिए यतिवर्य श्री रूपचन्दजी एव जयपुर से नागौरीजी पधारे। शखेश्वर के अट्ठम (तेले) काफी हुए। पूजा-भक्ति, आगी प्रभावना, स्वामीवात्सल्य का भरपूर लाभ अजमेर के खरतरगच्छ ने दिल खोलकर लिया। तप-दान-पूजा का रग बरसने लगा।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के पू० श्री नानालालजी म० सा० का चातुर्मास भी अजमेर ही था। वे स्वय ही एक बार सुख-साता पूछने पधारे। इससे दोनो सम्प्रदायो मे स्नेह की वृद्धि हुई।

इधर जयपुर से समाचार मिले कि पू प्रवर्तिनी विचक्षणश्रीजी के कैंसर गाँठ मे दर्द बहुत बढ गया है और खून आने लगा है। विचित्रता यह थी कि इस बीमारी मे अन्य लोगो के तो दुर्गन्धयुक्त रक्त-पीव रिसता है किन्तु पूज्या प्रवर्तिनीजी के तो एकदम शुद्ध रक्त रिसता था। उधर अनुयोगाचार्यजी की निश्रा में बाडमेर से पालीताना का छ री पालित सघ निकल रहा था जिसमे गुरुवर्याश्री को सम्मिलित होने का अनुयोगाचार्यजी का आदेश था।

दुविधापूर्ण स्थिति हो गयी। इधर पूज्य प्रवर्तिनीजी के स्वास्थ्य की चिन्ता, उधर अनुयोगाचार्य जी का आदेश। क्या किया जाय ? गुरुवर्या की इच्छा थी कि पहले जयपुर जाकर पू. प्रवर्तिनीजी की दशा स्वय आँखो से देखूँ, इसके बाद अनुयोगाचार्यजी के आदेश का पालन करूँ। लेकिन शारीरिक स्थिति ऐसा उग्रविहार करने की नही थी।

आखिर शशिप्रभाश्रीजी ने कहा—आप मुझे आदेश फरमाये ताकि मै स्वय जयपुर जाकर पू० प्रवर्तिनीजी की सारी स्थिति देख आऊँ। पूज्याश्री ने आदेश फरमाया और शशिप्रभाश्रीजी व दिव्यदर्शनाश्री जी ने जयपुर के लिये विहार किया।

उस समय जयपुर मे विचक्षण भवन का उदघाटन व हेमलता का दीक्षा समारोह था। दोनो में ही साध्वीजी सम्मिलित हुईं, ५-६ दिन रुककर पुन अजमेर लौट आईं। वहाँ से सघ मे सम्मिलित होने के लिए ६ साध्वीजी ने विहार किया।

हम लोग ब्यावर से सोजत होकर पाली प्रस्थान कर रहे थे कि बीच मे ही गुरुवर्याश्री के पाँवो मे दर्द होने लगा, मुश्किल से पाली पहुँच सके। तीन-चार दिन रुककर मालिश करवाई, दर्द कुछ कम हुआ। विहार कर दिया। एक ही मजिल पहुचे कि दर्द फिर शुरू हो गया, जैसे-तैसे गुन्दोज पहुँचे। दर्द बहुत बढ गया, घुटनो मे सूजन आ गई, उठना-बैठना भी मुश्किल हो गया। गुन्दोज मे ही स्थिरता करनी पडी। सघ के लिये शशिप्रभाजी म सा और सम्यग्दर्शनाजी को विहार करवा दिया, वे लोग गाधव ग्राम मे जाकर सघ मे सम्मिलित हो गये।

पूज्यवर्याश्री आदि कुछ दिन गुन्दोज मे रहे। यहाँ जिनमन्दिर भी हैं और श्रावको के १५-२० घर भी। सभी अच्छे श्रद्धावान हैं। यहाँ रहकर आयुर्वेदिक उपचार कराया, मेथी आदि अधिक मात्रा मे ली, दर्द बिल्कुल समाप्तप्राय हो गया तब विहार करके वादनवाडी, अदूपुरा होते हुए जाहोर आये। कष्ट और पीडा के क्षणो मे भी गुरुवर्या मे अपार सहनशीलता और तीर्थवन्दना की उमग देखकर लगता है असातावेदनीय भी उनके सत्सकल्पो के समक्ष हार सा गया।

होली के दिन निकट थे अत सघ के आग्रह से ८-९ दिन रुके। व्याख्यानो से प्रभावित होकर सघ ने चातुर्मास की विनती की। सिवाणा से भी ५-७ व्यक्ति चातुर्मास की विनती लेकर आ गये बहुत

आग्रह किया। दिव्यदर्शनाजी व तत्वदर्शनाजी ने वर्षीतप का पारणा भी सिवाणा मे हो, ऐसी भावना व्यक्त की। आखिर उनकी चातुर्मास की विनती स्वीकार हुई।

आहोर से सिवाना की ओर चैत्र कृष्ण पक्ष मे हम लोगो ने विहार कर दिया।

तखतगढ, माडेराव आदि छोटे-छोटे नगरो मे विशाल जिन-मन्दिरो के दर्शन करते हुए मोकलसर आये। सघ के आग्रह से ८-१० दिन रुके। फिर विहार करके सिवाणा पहुचे।

दोनो साध्वीजी के वर्षीतप का पारणा सानन्द सम्पन्न हुआ।

जैन कोकिला पू प्रवर्तिनीजी का देवलोक गमन

प्रतिदिन के समान वैशाख शुक्ला ५ को भी व्याख्यान चल रहा था। इसी बीच जयपुर से तार आया पू प्रवर्तिनीजी श्री विचक्षणश्रीजी के स्वर्गवास का समाचार लेकर। जानकर बहुत दुख हुआ, व्याख्यान-सभा, शोक-सभा बन गयी। जैनजगत की एक दिव्य तारिका का अवसान! सर्वत्र ही शोक छा गया।

शोक आखिर मोह का ही एक रूप है। मोह निवृत्ति वीतराग दर्शन से ही सभव है। अत हमने सभी लोगो के साथ देव-वन्दन किये, मन्दिर गये। वीतराग चरणो मे दिवगत आत्मा के प्रति श्रद्धा व शोक निवृत्ति की प्रार्थना की।

दो दिन पश्चात गुणानुवाद सभा का आयोजन किया गया। पू० प्रवर्तिनीजी के आदर्श जीवन और दिव्यगुणो पर प्रकाश डाला गया।

सिवाणा चातुर्मास स० २०३७

कुछ दिन के लिए हम लोग मिठोडावास-उम्मेदपुरा (सिवाणा का एक उपनगर) चले गये। वहाँ खरतरगच्छ के २४० घर है। ३०-४० लडकियाँ धार्मिक अध्ययन करने हमारे पास आती थी। पू० शशिप्रभाजी म० सा० आदि जो सघ मे गये थे वे भी पालीताना से उग्रविहार करके ज्येष्ठ सुदी मे ही सिवाणा वापस पधार गये।

मिठोडावास वालो का भी चातुर्मास के लिए अत्यधिक आग्रह हुआ। अतः शशिप्रभाजी म०सा० और सम्यग्दर्शनाजी म० को मिठोडावास का चातुर्मास करवाया गया तथा पूज्या गुरुवर्याश्री एव प्रियदर्शनाश्रीजी व दिव्यदर्शनाजी ने गाँव मे चातुर्मास किया।

व्याख्यान दोनो ही जगह होते थे। मिठोडवास मे पू० शशिप्रभाजी व्याख्यान फरमाती और गाँव मे गुरुवर्याश्री।

गुरुवर्याश्री के व्याख्यानो से कुमारी नीता (नारगी) ललवाणी के मानस मे वैराग्य भावना उद्-बुद्ध हो गई।

पू० शशिप्रभाजी म०सा० के व्याख्यानो मे मानसपरिवर्तन करने की अद्भुत शक्ति थी। उन्होने मिठोडावास के लोगो के मन मे पडी हुई तडो (भेदरेखाओ) को दूर कर दिया। मनोमालिन्य समाप्त हो गया। जो काम बडे-बडे दिग्गज विद्वान मुनि भी नही कर पाये, वह आपने कर दिखाया।

पूज्या गुरुवर्या के आशीर्वाद से आपकी वाणी मे भी एक चमत्कार पैदा हो गया।

आपश्री के व्याख्यानो से १० वर्षीय कुमारी नारगी उर्फ निशा तथा लक्ष्मी भसाली—दो लड-कियो के मानस मे सस्कारो के बीज प्रेरणा और प्रवचन के अमृत सिंचन से अकुरित हुए। उन पर वैराग्य, समत्व व निवृत्ति के सुमन भी खिलने लगे। वैराग्य के बीज अकुरित हो गये।

दोनो जगह (गाँव और मिठोडावास) त्याग-तप-प्रत्याख्यान आदि खूब हुए। कई बहिनो ने १५-१६-११ के तप किये। तपस्वी बहिनो का बहुमान किया गया। पूजा-प्रभावना-स्वामिवात्सल्य का ठाठ रहा।

अष्टम शताब्दी मनाने का निर्णय भी इसी चातुर्मास में हुआ। मन्दिर बनवाने का निर्णय व गुरुदेव की मूर्ति बनाने का आदेश दे दिया गया।

अजमेर निवासी श्रीमानमलजी सुराणा की पुत्री मजु सुराणा के मानस मे वैराग्य बीज ४ वर्ष पहले अंकुरित हो चुका था, पर घरवालो ने स्वीकृति नही दी थी। किन्तु सिवाणा चातुर्मास मे श्रीमानमलजी सा० अपनी सुपुत्री को लेकर सिवाणा आये और शिक्षा हेतु पास रखने की भावना तथा दीक्षा दिलाने के लिए अजमेर पधारने की विनती की। जिसे गुरुवर्या ने स्वीकार कर ली।

साथ ही जीवाणा निवासी स्व० हस्तीमलजी बागरेचा की सुपुत्री लीलाकुमारी जो वैरागिन के रूप में दो वर्ष से हमारे साथ ही रह रही थी, उसके भी परिवार वालो ने दीक्षा देने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

इस प्रकार सिवाणा चातुर्मास सभी प्रकार से सफल रहा।

पालीताना चातुर्मास पूर्णकर पू० गुरुदेव कातिसागरजी म०सा० धोलका में नूतन दादाबाडी की प्रतिष्ठा कराने हेतु पधारे थे। वही वैराग्यवती लीला बागरेचा अपने परिवारीजनो के साथ दीक्षा के अवसर पर पधारने की विनती करने गई। गुरुदेव ने नाकोडा मे दीक्षा कराने का सुझाव दिया, जिसे परिवार वालो ने स्वीकार कर लिया। पौष शुक्ला १० का दिन दीक्षा दिवस निर्णीत किया गया। तदनुसार गुरुदेव नाकोडा पधारे।

हम लोग सिवाणा से विहार करके पू० श्री चम्पाश्रीजी म० सा० की सेवा मे बालोतरा पहुँचे। १५ दिन रुके। पार्श्वनाथ जन्म कल्याणक (पौष बदी १०) को नाकोडा पहुँचे गये।

इसी अवसर पर छत्तीसगढ रत्नशिरोमणि पू मनोहर श्रीजी म सा १७ ठाणा व जोधपुर चातुर्मास पूर्ण करके पू मणिप्रभाश्रीजी आदि ३ ठाणा नाकोडा पौष बदी १० के मेले पर पधार गये। उत्साह से मेला मनाया।

जीवाणा श्रीसघ के आग्रह से गुरुवर्याश्री ने पू शशिप्रभाश्रीजी म सा आदि को जीवाणा विहार कराया व पू मणिप्रभाजी म सा आदि कुछ दिन के लिए सिवाणा, मोकलसर आदि पधार गये। क्योकि अभी दीक्षा मे १५ दिन बाकी थे।

लीला बागरेचा की दीक्षा · सं. २०३७

कुमारी लीला की दीक्षा पर पू श्री शशिप्रभाजी म. सा., पू श्री मणिप्रभाजी म. सा. आदि पुन नाकोडा पधार गये। पू मनोहरश्रीजी म सा और हम सब इस तरह लगभग ३०-३५ ठाणा थे। पू० गुरुदेव की निश्रा मे पौष शुक्ला १० को दीक्षा सम्पन्न हुई। कुमारी लीला को दीक्षोपरान्त नाम दिया गया—शुभदर्शनाजी और पूज्या गुरुवर्या की शिष्या घोषित की गई।

पू गुरुदेव ब्यावर की ओर विहार कर गये, क्योकि उनका दिल्ली चातुर्मास निश्चित हो चुका था और उन्हे अजमेर-जयपुर होते हुए दिल्ली जाना था।

अजमेर मे मजु सुराणा की दीक्षा स. २०३८

मजु सुराणा की दीक्षा हेतु हम लोगो ने अजमेर की ओर विहार किया तथा पू मणिप्रभाजी
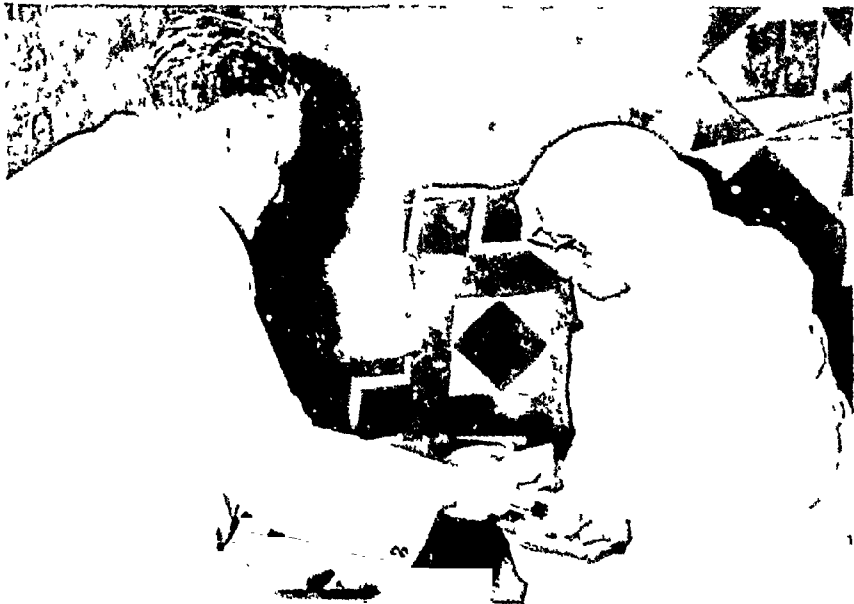
२० मई को सप्तम शताब्दी समारोह भी सम्पन्न हो गया। (सम्बन्धित विस्तृत जानकारी शताब्दी स्मारिका मे आलेखित है)।

सिवाणा सघ की समुचित व्यवस्था सराहनीय तथा प्रशसनीय रही। शासन की बहुत प्रभावना हुई।

कु नीता लालवानी और निशा छाजेड के दीक्षोपारात नाम क्रमश शीलगुणाजी और सौम्य-गुणाजी दिये गये तथा ये दोनो पू० गुरुवर्या की शिष्याएँ घोषित हुई।

महोत्सव के अवसर पर शेरगढ से भी एक बस आई थी। इनके अत्यधिक आग्रह पर चातुर्मास की स्वीकृति देकर प्रियदर्शनाजी आदि ठाणा ४ को शेरगढ की ओर चातुर्मासार्थ प्रस्थान करवाया गया और पू० प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म सा नूतन दीक्षिताओ सहित ६ ठाणा मिठोडावास की विनती को स्वीकार करके भसाली भवन मे चातुर्मासार्थ विराजी।

मिठोडावास—सिवाणा चातुर्मास . स. २०४०

इस चातुर्मास मे तप-त्याग-प्रत्याख्यान खूब हुए। चातुर्मास सफल रहा।

जयपुर सघ का जयपुर चातुर्मास के लिए आग्रह शताब्दी समारोह से पहले से ही चल रहा था लेकिन चातुर्मास के बाद तो वे लोग आकर जम ही गये। इच्छा न होते हुए भी स्वीकृति देनी ही पडी।

बागरेचा परिवार द्वारा मेन रोड नवनिर्मित भव्य, विशाल चौमुख मन्दिर की प्रतिष्ठा करवा कर वहाँ से विहार करके नाकोडा के दर्शन करते हुए जोधपुर पहुँचे। जोधपुरवालो ने भी चातुर्मास का आग्रह किया। सत्य स्थिति बतानी पडी। उन्होने जयपुर वालो को पत्र डाला तो वे लोग आ गये। उन्होने जोधपुर चातुर्मास के लिए हाँ भरवानी चाही पर उनके सभी प्रयास विफल हुए। आखिर जोधपुर से हम लोगो को जयपुर की ओर विहार करवा के ही गये।

हम लोग कापरडा, विलाडा की यात्रा करते हुए ब्यावर पहुँचने ही वाले थे कि पू शशिप्रभाजी को पागल कुत्ते ने काट लिया। ब्यावर पहुँचकर श्रावको की सहमति से पेट मे १४ इन्जैक्शन लगवाने पडे। शाश्वत ओली की आराधना ब्यावर में ही की।

वैशाख मे विहार करते हुए अजमेर गुरुदेव के दर्शन करके शहर मे पहुँचे। पूज्याश्री का रक्त-चाप बढ जाने से यहाँ २-३ दिन रुकना पडा। वहाँ से विहार कर वैशाख शुक्ला १० के दिन जयपुर की सीमा मे प्रवेश किया।

जयपुर सघ के लोगो को खूब उत्साह था अत अपनी गुरुवर्याश्री की आगवानी के लिए सागानेरी गेट पर इकट्ठे हो गये। जयपुर के प्रसिद्ध जियाबैण्ड और वीर बालिका स्कूल के बालिका बैण्ड के साथ शान से जयपुर मे प्रवेश किया। प्रसिद्ध गायक लक्ष्मीचन्द जी भसाली के गायन की मधुर स्वर लहरी की सबने प्रशसा की। सैकडो व्यक्तियो के जुलूस के साथ पचायती मन्दिर के दर्शन करते हुए विचक्षण भवन पहुँचे। वहाँ नववधुओ ने विभिन्न प्रकार की गहुँलियो से आपका स्वागत किया। जयपुर के कई प्रसिद्ध श्रावको—हीराचन्दजी सा बैद, महताबचन्दजी सा गोलेच्छा, उत्तमचन्दजी सा. बडेर आदि ने आपके तेजस्वी व्यक्तित्व के गुणग्राम किये पश्चात् आपश्री ने ओजस्वी प्रवचन दिया, अन्त मे मागलिक फरमाई।

जयपुर चातुर्मास सं. २०४१

चातुर्मास मे गुरुवर्याश्री ने 'आचाराग सूत्र' की व्याख्या फरमाई। चार महीने तक प्रवचन

इस अप्रत्याशित घटना से भँवरी बागरेचा की दीक्षा सन्देहास्पद बन गई। सभी सशयसागर मे गोते खाने लगे। लेकिन पू० प्रवर मणिप्रभसागरजी म० सा० ने सिर्फ दो शब्द कहे—'दीक्षा होगी' और जीवाणा सघ का सन्देह दूर कर दिया।

श्रद्धेय गुरुदेव मणिप्रभसागर की निश्रा में भँवरी बागरेचा की दीक्षा सम्पन्न हुई, इन्हे कनक-प्रभाजी नाम दिया गया और पू० गुरुवर्याश्री की शिष्या घोषित की गईं।

सम्यग्दर्शनाश्री जी आदि ३ तो दीक्षा के पश्चात जयपुर की ओर विहार कर गये और प्रियदर्शनाश्री जी, तत्वदर्शनाश्री जी, शुभदर्शनाजी नूतन दीक्षिता कनकप्रभाजी की बडी दीक्षा कराने हेतु पू० श्री कैलाशसागरजी म० सा० के पास गये। बडी दीक्षा के बाद वे भी जयपुर पहुँचे।

स० २०४२ के गुरुवर्याश्री के चातुर्मास मे ही पूज्याश्री जैन कोकिला श्री विचक्षण म० सा० के अग्नि सस्कार स्थल (गलता रोड मोहनबाडी) विशाल समाधि स्थल पर मूर्ति स्थापित करने के निमित्त विराट समारोह का निर्णय खरतरगच्छ सघ ले चुका था। मूर्ति स्थापना समारोह की तिथि फाल्गुन शुक्ला ३ निर्णीत हुई थी।

प्रधान सा० पू० अविचलश्री जी म० सा० आदि पू० श्री चन्द्रप्रभाश्री जी म० सा० आदि तथा पू० श्री मणिप्रभाश्री जी म० सा० आदि सभी पधार गये थे। पू० प्रवर्तिनीजी वहाँ विराजमान थी ही। बडी धूमधाम से फाल्गुन शुक्ला ३ के दिन सभी की निश्रा मे विचक्षण मूर्ति स्थापना समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ।

समारोह के बाद ही चातुर्मास की विनतियाँ आने लगी। जोधपुर सघ का अत्याग्रह था किन्तु पू० श्री मणिप्रभाश्री जी की इच्छा पूज्या प्रवर्तिनीजी के साथ जयपुर चातुर्मास करने की थी। अतः पू० श्री सुरञ्जनाश्री जी म० सा०, मुदितप्रज्ञाश्री जी व सिद्धाजनाश्री जी का जोधपुर चातुर्मास निश्चित किया गया और सम्यग्दर्शनाश्री जी, विद्युतप्रभाश्री जी आदि ठाणा ५ का दिल्ली।

वैशाख मे पू० श्री मणिप्रभाश्री जी म० सा० एव पू० श्री शशिप्रभाश्री जी म० सा० आदि ठाणा ११ श्री जिनकुशल गुरुदेव के चमत्कारी स्थान मालपुरा के दर्शनार्थ गये।

प्रियदर्शनाजी ने व विद्युतप्रभाश्री जी ने अक्षय तृतीया से वर्षीतप प्रारम्भ किया।

पू० मणिप्रभाश्रीजी म० सा०, सौम्यगुणाश्रीजी एव मृदुलाजी तीन ठाणा ने ज्येष्ठ मास मे देवलिया की ओर विहार किया, क्योंकि वहाँ प्रतिष्ठा करवानी थी।

पू० श्री शशिप्रभाश्री जी म० सा० आदि तीन माडोली यात्रा हेतु प्रस्थान कर गये। सम्यग्दर्शना जी आदि ठाणा ५ पुन जयपुर आ गये।

आषाढ बदी ४ को सम्यग्दर्शनाजी आदि ठाणा ५ को दिल्ली चातुर्मास हेतु प्रस्थान करवाया। आषाढ शुक्ला ३ को पू० प्रवर्तिनीजी, पू० श्री अविचलश्री जी म० सा० और प्रियदर्शनाश्री जी तीनो दादाबाडी आये। दूसरे दिन देवलिया प्रतिष्ठा कर पू० मणिप्रभाश्री जी म० सा० आदि पधार रहे थे तो गुरुवर्याश्री उन्हे लिवाने के लिए नीचे उतर कर पधारी। मणिप्रभाश्री जी ने कहा—महाराज साहिबा ! मैं तो आपसे बहुत छोटी हूँ और आप मुझे लेने नीचे तक पधारी है। तब आपने फरमाया—यह आप लोगो का नही श्रामण्य का विनय है।

कितनी विनम्रता है पूज्या प्रवर्तिनी जी म० सा० मे !

उसी दिन स्वस्थ चित्त से आप स्थण्डिल पधारी। प्रियदर्शनाश्री जी साथ ही थी। लौटी तो

तथा स्टूल, यूरीन आदि के टेस्ट लिखे। दस्त को देखा तो खून। उसे भी टेस्ट के लिए भिजवा दिया। उसी वक्त नर्स आई। उसने ब्लड लिया। यूरीन के लिए जैसे ही आप उठी कि इतनी जोर से चक्कर आये कि आँखे ही ढेर दी। हम पास खडे थे, सभाल लिया। उसी क्षण बडे जोर की खून की उल्टी हुई। दो-तीन मिनट बाद चेतना लौटी। हम लोग खडे ही थे। कुछ शान्ति हुई। किन्तु कुछ समय बाद ही खून की ३-४ दस्ते। कुछ देर बाद खून की उल्टी और वही स्थिति। हम लोग घबडा गये। पुन सौगानी साहब को बुलवाया।

इस बीच जयपुर के २००-२५० व्यक्ति इकट्ठे हो गये। गुरुवर्या की इस दशा से सभी चिन्तित थे।

सौगानी सा० ने गुरुवर्या की स्थिति देखकर श्री शशिप्रभाजी से कहा—दशा बहुत चिन्ता-जनक है। ब्लड की बहुत कमी हो गई है। ७५ प्रतिशत ब्लड जा चुका है। तुरन्त हॉस्पीटल ले चलिए। ब्लड चढाना बहुत जरूरी है।

शशिप्रभाश्रीजी ने डॉक्टर साहब से कहा—इस विषय मे मै निर्णय नही ले सकती। क्योकि गुरुवर्याश्री सदा हॉस्पीटल ले जाने के बारे मे हमे सावधान करती रही है कि 'मुझे हॉस्पिटल न ले जाया जाय' फिर भी मै उनसे पूछकर आपको बताये देती हूँ।

श्री शशिप्रभाजी ने और श्रावको ने भी गुरुवर्या को बहुत कहा पर उन्होने एक ही जवाब दे दिया—मैं ठीक हूँ, आप लोग घबडाओ मत। मेरा कुछ नही बिगडने वाला है। मेरी स्थिति बहुत गम्भीर नही है।

निराश होकर डॉक्टर ने कहा—जब महाराज साहब मान ही नही रही है तो मै क्या कर सकता हूँ? अब तो बस, आपका भाग्य ही है। रात निकल जाय तो बहुत समझो। और डॉक्टर साहब चले गये।

रात निकली। सुबह हुई। डॉक्टर सौगानी पुन आये। रिपोर्ट देखी तो बोले—आपके ब्लड में हिमोग्लोबिन सिर्फ ४ रह गया अत ब्लड चढवाना ही होगा।

गुरुवर्याश्री ने शान्त भाव से फरमाया—डॉक्टर साहब! मै केवल ४-५ दिन का अवकाश चाहती हूँ। थाइराइड गन्थि की प्रेक्षा करूँगी। मुझे विश्वास है ब्लड की क्षतिपूर्ति हो जायेगी।

डॉक्टर साहब क्या कहते, चले गये। ४-५ दिन बाद पुन ब्लड टेस्ट हुआ। रिपोर्ट पढकर चकित रह गये। हिमोग्लोबिन पूरा ७ था।

डॉ० साहब श्रद्धा से विनत होकर बोले—मेरे लिये यह चमत्कार ही है—डॉक्टरी इतिहास मे इतनी जल्दी ब्लड कवर हो जाना।

और हम सब भी श्रद्धा से भर उठे—धन्य साधना, धन्य योग साधना, धन्य क्षमता, तितिक्षा परीषह विजय और समता। इस उम्र मे और इतनी कमजोरी मे भी ऐसी उच्चकोटि की साधना है गुरुवर्याश्री की।

आपकी स्वय की साधना और डॉ सौगानी के औषधोपचार से पुन पहले जैसी स्थिति हो गयी।

इधर पू मणिप्रभसागरजी म सा. आदि पू गुरुवर्याश्री को दर्शन देने हेतु जयपुर पधार रहे थे। २ दिन बाद ही वे पधार गये। ५-७ दिन जयपुर रहे। पूज्या प्रवर्तिनीवर्या के प्रति आपश्री का सदा से मातृवत् भाव है।
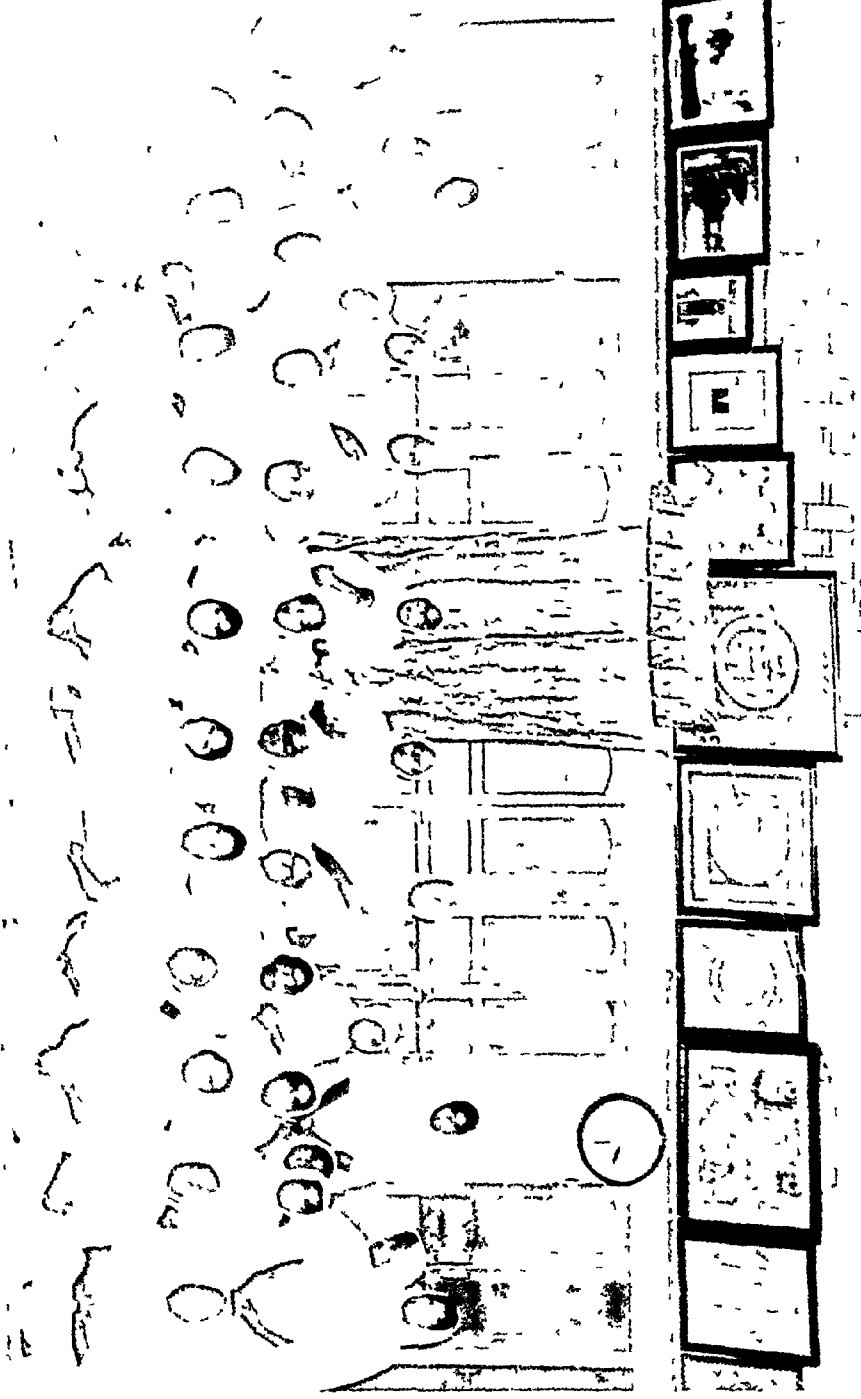
परम श्रद्धेया प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज शिक्षण मंडल एवं रत्न-शिष्याओं के साथ

स्व. श्रीमान [illegible]जी लूनिया की पावन स्मृति मे पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य मे लूनिया परिवार की ओर से सादर भेंट

इस (लगभग ८१ वर्ष की आयु) उम्र मे भी इतना उत्साह और ऐसी अप्रमत्तता, अन्यत्र दुर्लभ है। समताभाव इतना कि इतने उच्चपद पर प्रतिष्ठित है, फिर भी गर्व का नामोनिशान भी नही, साध्वी-वृन्द को कभी आदेश की भाषा नही। अपने कार्य को स्वय ही कर लेती है, किसी को कहती तक नही।

वस्तुत आपका जीवन खरा कचन है। स्वाध्याय-तप-ध्यान-सयम आदि की कसौटी पर कसा हुआ खरा सोलहवानी सुवर्ण है। सयम की महक बावना चन्दन की सुवास से भी अधिक सुरभित है। आपका जीवन, सयमचर्या ससारसमुद्र मे डूबते प्राणियो के लिए दीपस्तम्भ के समान पथ प्रदर्शित करने वाला है।

ऐसी पूज्या, निर्मलचरित्रा सद्‌गुरुवर्याश्री सज्जनश्रीजी म सा के अभिनन्दन का निर्णय जयपुर खरतरगच्छ सघ ने २० मई ८६ (वैशाखी पूर्णिमा) के दिन करना स्वीकार किया है। इस अवसर पर श्रीपुखराजजी लूनिया की इच्छा को साकार रूप देते हुए अभिनन्दन ग्रन्थ भी आपश्री को समर्पित किया जायेगा। जिसका नाम होगा 'श्रमणी श्री सज्जनश्री म सा अभिनन्दन ग्रन्थ'। यह खरतरगच्छ सघ का प्रथम अभिनन्दन ग्रन्थ होगा।

पूज्य प्रवर मणिप्रभसागरजी म सा ने भी इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु हमे प्रेरणा दी, साथ ही सहयोग भी दिया। श्रीचन्दजी सुराना सरस का भी हार्दिक सहयोग, मुद्रण-व्यवस्था आदि मे सराहनीय एव प्रशसनीय योगदान रहा। आप जैन समाज के प्रसिद्ध विद्वान है, ग्रन्थ के सपादन मे भी उन्होने सहयोग किया है, जिसके लिए हम इनके आभारी है।

पू प्रवर्तिनी महोदया का अभिनन्दन इसी अवसर पर अखिल भारतीय खरतरगच्छ सघ की ओर से गलता रोड स्थित मोहनबाडी, विचक्षण भवन मे होगा। साथ ही विविध तपोपलक्ष्य मे सामूहिक उद्यापन (उजमणा) प्रतिष्ठा आदि के कार्यक्रम आदि भी हो रहे है।

वस्तुत जयपुर धर्मनगरी है। खरतरगच्छ के १०० वर्ष के इतिहास मे कभी उपाश्रय खाली नही रहे, सध्वीजी म० आते ही रहे, विराजित भी रहे। चातुर्मास भी होते रहे।

श्रावको मे भी धर्म का उत्साह अत्यधिक है। अठाई आदि तपस्याएँ होती ही रहती हैं। दान की सुरसरि भी सदानीरा पयस्विनी की भाँति प्रवाहित रहती है।

इन्ही सब बातो से जयपुर नगरी भाग्यशाली है।

पूज्याश्री भी वही विराजित है। आपका जीवन मणि की भाँति धर्म का प्रकाश विकीर्ण करता रहे। युग-युग तक आलोक देता रहे।

इन्ही शुभभावनाओ के साथ ··· ।

○ ○

सज्जन वाणी

१ उपासना से भावना का, साधना से व्यक्तित्व का, आराधना से क्रिया-शीलता का परिष्कार और विकास होना है।

२ सच्ची सेवा समाज को पतन से बचाकर उत्थान की ओर ले जाना ही है अर्थात् दुराचरण, व्यसन आदि से रोककर उनके जीवन मे सदाचरण की भावना दृढ कर देना ही वास्तविक उत्थान है।

३ जीवन मे सादगी, सात्विकता और विनम्रता जिनके होती है वे ही मानव धन्य और पूज्य बनते है।

उनमे दो जयपुर और कलकत्ता तो बड़े शहर और राज्यो की राजधानियाँ है और दो पुराने मारवाड की मरुभूमि के प्राचीन नगर। राजस्थान मे उनके चातुर्मास उदयपुर सभाग को छोडकर बाकी सब सभागो मे हो चुके है।

उनके अब तक के ४७ चातुर्मासो की तालिका प्रस्तुत है —

	स्थान	वि स.	सन्
१	जयपुर	१९९९	१९४२
२	फलोदी	२०००	१९४३
३	जयपुर	२००१	१९४४
४.	कोटा	२००२	१९४५
५ से ८	जयपुर	२००३ से २००६	१९४६ से १९४९
९.	झुझुनू	२००७	१९५०
१०. से १५	जयपुर	२००८ से २०१३	१९५१ से १९५६
१६.	टोक	२०१४	१९५७
१७ से २६	जयपुर	२०१५ से २०२४	१९५८ से १९६७
२७.	बीकानेर	२०२५	१९६८
२८.	फलोदी	२०२६	१९६९
२९	दिल्ली	२०२७	१९७०
३०	लखनऊ	२०२८	१९७१
३१	कलकत्ता	२०२९	१९७२
३२	कलकत्ता	२०३०	१९७३
३३	पावापुरी	२०३१	१९७४
३४	जयपुर	२०३२	१९७५
३५	पालीताणा	२०३३	१९७६
३६	जामनगर	२०३४	१९७७
३७	जयपुर	२०३५	१९७८
३८	अजमेर	२०३६	१९७९
३९	सिवाना	२०३७	१९८०
४०	ब्यावर	२०३८	१९८१
४१	जोधपुर	२०३९	१९८२
४२.	सिवाना	२०४०	१९८३
४३ से ४७	जयपुर	२०४१ से २०४५	१९८४ से १९८८

अभी आप अस्वस्थता के कारण जयपुर मे ही विराजमान है।

प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी म. सा. के यशस्वी चातुर्मास

प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी ने अपने अब तक के ४८ वर्षीय साधना काल में कुल ४७ चातुर्मास किये है जिनमे से २६ तो जयपुर शहर मे ही सम्पन्न हुए है। उनमे से दस तो लगातार १६५८ से १६६७ तक ही हुए है। इसका मुख्य कारण गुरुसेवा की भावना रही है। इतना होने पर भी उनका किसी स्थान विशेष से कोई लगाव नही है। निरपेक्ष भाव से जहा भी चातुर्मास हो जाना है, वे कर लेती है। जयपुर मे उनके इतने चातुर्मास हो जाना सयोग मात्र ही है, यद्यपि यह उनकी जन्मभूमि होने के साथ दीक्षा भूमि भी है।

उन्होने सात चातुर्मास राजस्थान के वाहर किये है जो पूर्व मे कलकत्ता से लेकर पश्चिम मे जामनगर तक हुए है। राजस्थान से वाहर उनका प्रथम चातुर्मास भारत की राजधानी दिल्ली मे सन् १६७० मे हुआ था। उससे अगला चातुर्मास उत्तरप्रदेश की राजधानी लखनऊ मे और तीसरा पश्चिमी बगाल की राजधानी कलकत्ता मे सम्पन्न हुआ। यू कलकत्ता मे उनके दो चातुर्मास हो चुके है।

उन्हे कलकत्ता के तुरन्त वाद ही तीर्थंकर महावीर के निर्वाण से पावन और धन्य वनी पावापुरी मे १६७४ मे चातुर्मास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पावापुरी चातुर्मास के दो वर्ष वाद उन्हे मन्दिरो की नगरी के नाम से विश्वविख्यात तीर्थराज शत्रुजय की तलहटी मे वसे पालीताणा नगर मे चातुर्मास करने का सुयोग प्राप्त हुआ। यह सन् १६७६ की वात है। पदयात्रा करते हुए एक साध्वी का देश के पूर्वी छोर से दो वर्ष के भीतर पश्चिमी छोर तक पहुँच जाना कम महत्त्व की वात नही है। उनका अगला चातुर्मास सौराष्ट्र के प्रसिद्ध नगर जामनगर मे हुआ। इस तरह राजस्थान के अतिरिक्त उनके चातुर्मास दिल्ली सहित पाँच राज्यो मे सम्पन्न हो चुके है। ये राज्य है उत्तरप्रदेश, विहार, पश्चिमी बंगाल और गुजरात।

दिल्ली जाने से पूर्व उन्होने अपनी गुरुवर्या ज्ञानश्रीजी की जन्मभूमि फलोदी (जिला जोधपुर) मे १६६९ मे चातुर्मास किया था। फलोदी इस मामले मे सौभाग्यशाली रही। इस महान् साध्वी ने दीक्षित होने के वाद दूसरा चातुर्मास भी फलोदी मे ही किया था। वह सन् १६४३ की वात है। उस समय ज्ञानश्रीजी विद्यमान थी। दोनो चातुर्मासो मे पूरे २६ वर्ष का अन्तर रहा। यह एक सयोग ही है कि उनकी प्रथम और प्रधान शिष्या शशिप्रभाश्रीजी की जन्मभूमि मे भी यही फलोदी है। फलोदी और कलकत्ता के अतिरिक्त मरुधरा का सिवाना ही एकमात्र ऐसा नगर है जहाँ सज्जनश्रीजी ने दो चातुर्मास किये। यह कैसा विचित्र सयोग है कि जिन चार स्थानो पर उनके एक से अधिक चातुर्मास हुए

उनमे दो जयपुर और कलकत्ता तो वडे शहर और राज्यो की राजधानियाँ है और दो पुराने मारवाड की मरुभूमि के प्राचीन नगर। राजस्थान मे उनके चातुर्मास उदयपुर सभाग को छोडकर वाकी सव सभागो में हो चुके है।

उनके अब तक के ४७ चातुर्मासो की तालिका प्रस्तुत है —

	स्थान	वि॰ स॰	सन्
१	जयपुर	१९९९	१९४२
२.	फलोदी	२०००	१९४३
३	जयपुर	२००१	१९४४
४.	कोटा	२००२	१९४५
५ से ८	जयपुर	२००३ से २००६	१९४६ से १९४९
९.	झुझनू	२००७	१९५०
१०. से १५	जयपुर	२००८ से २०१३	१९५१ से १९५६
१६.	टोक	२०१४	१९५७
१७ से २६	जयपुर	२०१५ से २०२४	१९५८ से १९६७
२७.	वीकानेर	२०२५	१९६८
२८.	फलोदी	२०२६	१९६९
२९	दिल्ली	२०२७	१९७०
३०	लखनऊ	२०२८	१९७१
३१	कलकत्ता	२०२९	१९७२
३२	कलकत्ता	२०३०	१९७३
३३	पावापुरी	२०३१	१९७४
३४	जयपुर	२०३२	१९७५
३५	पालीताणा	२०३३	१९७६
३६	जामनगर	२०३४	१९७७
३७	जयपुर	२०३५	१९७८
३८	अजमेर	२०३६	१९७९
३९	सिवाना	२०३७	१९८०
४०	व्यावर	२०३८	१९८१
४१	जोधपुर	२०३९	१९८२
४२.	सिवाना	२०४०	१९८३
४३ से ४७	जयपुर	२०४१ से २०४५	१९८४ से १९८८

अभी आप अस्वस्थता के कारण जयपुर में ही विराजमान है।

□□

प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी म० का शिष्या परिवार

प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी के शिष्या परिवार मे कुल १२ सदस्याएँ है जिनमे शशिप्रभाश्री जी ज्येष्ठ और श्रुतदर्शनाश्री जी कनिष्ठ हैं।

स्वय के दीक्षित होने के पन्द्रह वर्ष बाद उनकी प्रथम शिष्या शशिप्रभाश्रीजी की ब्यावर मे सवत् २०१८ मे दीक्षा हुई थी। यह कैसा सयोग है कि उनकी गुरुवर्याजी फलोदी में ही जन्मी थी और फलोदी ने ही उन्हे प्रथम शिष्या प्रदान की।

शशिप्रभाश्रीजी के दीक्षित होने के एक दशक बाद जयपुर मे प्रियदर्शनाश्रीजी की दीक्षा हुई। उनके तीन वर्ष बाद जयश्रीजी ने भी जयपुर मे ही साध्वी दीक्षा ग्रहण की। यह सवत् २०२६ की बात है। पश्चिम बगाल के रेलवे केन्द्र खड्गपुर ने उन्हे तीन शिष्याएँ प्रदान की। ये तीनों बहने हैं। इनकी दीक्षा सवत् २०३० मे हुई। ये शिष्याएँ—दिव्यदर्शनाश्रीजी, तत्वदर्शनाश्रीजी और सम्यग्दर्शनाश्रीजी हैं। प्रसिद्ध तीर्थ नाकोड़ाजी मे दीक्षित होने वाली शिष्या ने शुभदर्शनाश्रीजी का नाम पाया। एक वर्ष बाद संवत् २०३८ मे अजमेर मे मुदितप्रज्ञाश्रीजी के दीक्षा लेने से शिष्या परिवार मे एक और की अभिवृद्धि हुई। जयपुर की तरह सिवाणा ने भी उन्हे दो शिष्याएँ—शीलगुणाश्रीजी व सौम्याश्रीजी दी हैं। जीवाणा मे भी दो दीक्षाएँ हुईं—तीन वर्ष के अन्तराल से। ये शिष्याएँ है—कनकप्रभाश्रीजी और श्रुतदर्शनाश्रीजी।

जन्म के हिसाब से जीवाणा (जालोर) से तीन, फलोदी, गढ सिवाना तथा खड्गपुर से दो-दो, जयपुर अरई व अजमेर से एक-एक शिष्याएँ प्रदान की हैं।

क्रम	सवत्	दीक्षा स्थल	नाम
१	वि स २०१८	ब्यावर	शशिप्रभाश्रीजी
२	,, २०२३	जयपुर	प्रियदर्शनाश्रीजी
३	,, २०२६	जयपुर	जयश्रीजी
४	,, २०३०	खडगपुर	दिव्यदर्शनाश्रीजी
५	,, २०३०	खडगपुर	तत्वदर्शनाश्रीजी
६	,, २०३०	खडगपुर	सम्यग्दर्शनाश्रीजी
७	,, २०३७	नाकोड़ाजी	शुभदर्शनाश्रीजी
८	,, २०३८	अजमेर	मुदितप्रज्ञाश्रीजी
९	,, २०४०	गढ सिवाना	शीलगुणाश्रीजी
१०	,, २०४०	गढ सिवाना	सौम्यगुणाश्रीजी
११	,, २०४[illegible]	जीवाणा	कनकप्रभाश्रीजी
१२		जीवाणा	श्रुतदर्शनाश्रीजी
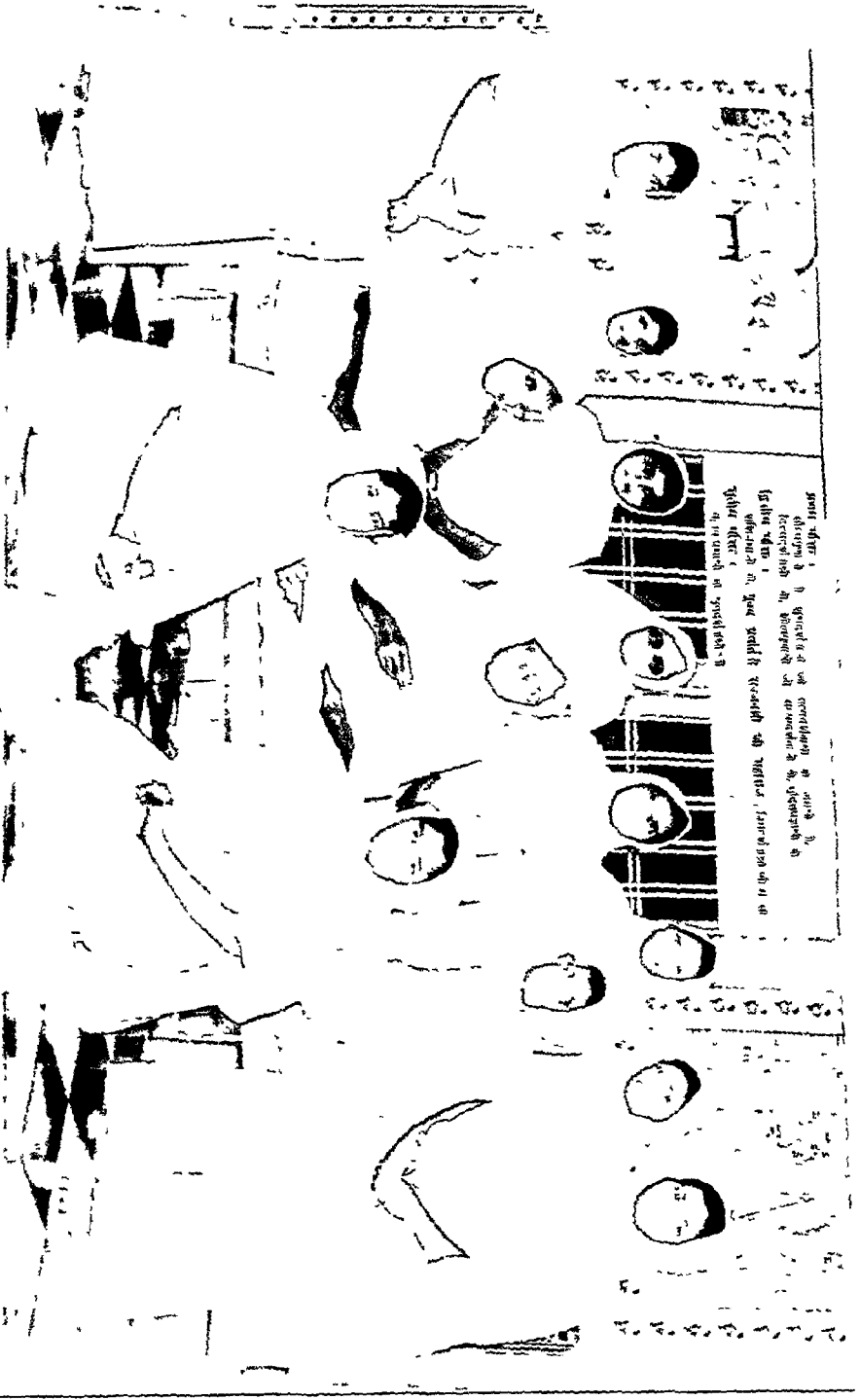
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी महाराज शिष्या मण्डली के साथ

सक्षिप्त जीवन-वृत्त

१ **शशिप्रभाश्रीजी**—जन्म फलोदी मे सवत् २००१ मे, पिता—ताराचन्दजी, माता—बालादेवीजी, गोत्र—गोलेच्छा, नाम—किरण, १० वर्ष की अल्पायु मे दीक्षा, इनकी बुआ पुण्यश्रीजी के पास दीक्षित थी, नाम था उपयोगश्रीजी, दीक्षा—सवत् २०१४ में मिगसर सुदी दूज ब्यावर मे पू विज्ञानश्रीजी के सान्निध्य मे, हिन्दी, सस्कृत का अच्छा अभ्यास, राजस्थान विश्वविद्यालय से जैन दर्शन मे आचार्य, तप-त्याग मे विशेष रुचि, अनुशासनप्रिय व प्रभावी प्रवचनकार।

२ **प्रियदर्शनाश्रीजी**—जन्म—जयपुर मे सवत् २००६, पिता—कमलचन्दजी, माता—चद्रावतीजी, गोत्र—बाठिया, नाम—किरण, दीक्षा—सवत् २०२३ मे अषाढ सुदी ६ को जयपुर मे, सस्कृत, हिन्दी तथा अग्रेजी का अच्छा ज्ञान, साहित्यरत्न परीक्षा उत्तीर्ण, प्रवचनकार।

३ **जयश्रीजी**—जन्म—अरई (जिला अजमेर) मे वि स १९९० मे, पिता—सगतसिंहजी, माता—धापूबाईजी, गोत्र—मेहता, नाम—तेजकंवर, दीक्षा—सवत् २०२६ वैशाख बदी १० को आचार्य जिनकाति-सागरजी की निश्रा मे, जयपुर मे, स्वाध्यायशील, तप मे विशेष रुचि।

४ **दिव्यदर्शनाश्रीजी**—जन्म—फलोदी मे वि सवत् २००८, पिता—भीखमचन्दजी, माता—सुन्दरदेवीजी, गोत्र—कोचर, नाम—निर्मला, दीक्षा—खडगपुर मे वि स २०३० मिति माघ सुदी ५ को, अनेक प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो का अर्थ सहित अध्ययन, तप-त्याग मे रुचि, अध्ययनशील व सेवा भावना अच्छी।

५ **तत्वदर्शनाश्रीजी**—जन्म—खडगपुर मे वि स २०१२ मे, पिता—भीखमचदजी, माता—सुन्दर-देवीजी, गोत्र—कोचर, नाम—हीरामणि दीक्षा—वि० स० २०३० मे माघ सुदी ५ (२८ जनवरी १९७३) को खडगपुर मे, तप-त्याग मे रुचि के साथ सेवा भावना।

६ **सम्यग्दर्शनाश्रीजी**—जन्म—खडगपुर मे वि० स० २०१६ (२१ फरवरी १९६०), पिता—भीखम-चदजी, माता—सुन्दरदेवीजी, गोत्र—कोचर, नाम—कमलेश, दीक्षा—खडगपुर मे वि० स० २०३० मे मे माघ सुदी ५ (२८ जनवरी १९७३) मे, अध्ययनरत व प्रवचनकार।

७ **शुभदर्शनाश्रीजी**—जन्म—जीवाणा (जालोर) मे वि० स० २०१६ पिता—हस्तीमलजी, माता—मोहरादेवीजी, गोत्र—बागरेचा, नाम—लीला, दीक्षा—वि० स० २०३७ पौष सुदी १० को नाकोडाजी तीर्थ मे आचार्य जिनकातिसागरजी की निश्रा मे, अध्ययनरत।

८ **मुदितप्रज्ञाश्रीजी**—जन्म—अजमेर मे वि० स० २०१४ मे, पिता—मानमलजी, माता—चाँद-देवीजी, गोत्र—सुराणा, नाम—मजु, दीक्षा—अजमेर मे कैलाससागरजी की निश्रा मे वि० स० २०३८ वैशाख बदी ६ को, शिक्षा—बी ए, आगे अध्ययन जारी।

९ **शीलगुणाश्रीजी**—जन्म—गढ सिवाणा (जिला बाडमेर) मे वि० स० २०२०, पिता—हेमराजजी माता—सीतादेवीजी, गोत्र—ललवाणी, नाम—नीता, दीक्षा—वि० स० २०४० वैशाख वदी ६ आचार्य जिन उदयसागरजी की निश्रा मे, गढ सिवाणा मे, अध्ययरत।

१० **सौम्यगुणाश्रीजी**—जन्म—गढ सिवाना मे वि० स २०२७, पिता—केशरीचदजी, माता—विमलादेवीजी, गोत्र—छाजेड, नाम—निशा, दीक्षा—२०४० वैशाख वदी ६ को गढ सिवाणा मे आचार्य उदयसागरजी की निश्रा मे, नाम के अनुरूप सौम्य स्वभाव—अध्ययनरत।

परिवार-परिचय

[जीव मात्र को धारण (पोषण-सरक्षण) करने वाली इस पृथ्वी का एक सार्थक नाम है धरा। किंतु यह धरा, धरा मात्र नही, वसुन्धरा भी है। जव-जव इसने किसी आत्मशक्ति सपन्न तेजस्वी यशस्वी परोपकारपरायण पुण्यआत्मा को जन्म दिया, धारण किया तव-तव यह अपने वसुन्धरा (महामूल्यवान मणिरत्नो को धारण करने वाली) नाम मे सार्थक हुई है और रत्नगर्भा अभिधान से गौरव मडित हुई हैं।

महान आत्मा स्वय स्वार्जित गौरव की स्वाभिषिक्त मूर्ति हैं। उसे किसी अन्य के गौरव से अभिषिक्त करने की आवश्यकता नही रहती। किंतु श्रद्धाभिसिक्त होने के वाद लोक उस मूर्ति के मूल आधार का भी सन्मान करने लगते है। जिस खान मे रत्न पैदा होता है उस खान का भी गौरव वढता है। महान आत्मा जिस कुल वश मे जन्म लेते है उस कुल वश की भी गरिमा युग-युग तक गाई जाती है और उन माता-पिता को भी लोक श्रद्धा से पूजते हैं, नमन करते हैं। स्वय देवेन्द्र तीर्थंकर देव की माता-पिता की वन्दना करते हैं।

आज ऋषभदेव के नाम के साथ ही नाभिराय और माता मरुदेवी की वन्दना की जाती है। इक्ष्वाकुवश का गौरव गाया जाता है। राम और कृष्ण के नाम के साथ ही दशरथ, कौशल्या, वसुदेव-देवकी यशोदा का नाम स्मरण किया जाता है। सूर्यवश और चन्द्रवश (हरिवश) की यशोगाथाएँ गाई जाती हैं। भगवान महावीर की वन्दना से साथ ही माता त्रिशला और राजा सिद्धार्थ को भी नमन किया जाता है। ज्ञात वश का गौरव गाया जाता है। यह सव प्रत्यक्ष सत्य है— महापुरुष अपने जन्म से अपने कुल, वश, परिवार और प्रदेश व देश को भी गौरवान्वित करते है।

इसी परम्परा के अनुरूप यहाँ पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज के धर्मनिष्ठ पिता-माता तथा अन्य सम्वन्धित परिवार का परिचय अत्यावश्यक है और पाठक की जिज्ञासा का स्वय ही समाधान है।

—सपादक]

धर्मपरायणा आदर्श माता : श्रीमती महतावबाई

—विनय कुमार लूणिया

दृढधर्मी गौरवपुरुष सेठ श्री गुलावचन्दजी लूणिया की धर्मपत्नी का नाम महताव वाई था। पति के विचारो की अनुगामिनी, आदर्श पत्नी एव सत्-सस्कारो की शिक्षा देने वाली आदर्श माता और वात्सल्य की खान वे हमारी पूजनीया दादीजी थी। आपके पिताश्री का नाम श्री चुन्नीलालजी कोठारी

(माताश्री) रत्नकुक्षि श्री मेहताब बाई लूनिया

जोर से डॉटती तक नही थी । सासारिक व्यक्ति के सामने परस्पर व्यवहार निभाने की अनेक उलझने होती है, किन्तु वे अत्यन्त व्यावहारिक थी तथा सयम और न्यायपूर्ण ढग से चला करती थी । वे हमारे दादाजी सेठ श्री गुलावचन्दजी की केवल धर्मपत्नी ही नही थी, अपितु धर्मयुक्त परामर्शदात्री भी थी । अनेक अवसरो पर उन्होने अपने पति को न्यायसगत एव नीतिसम्मत परामर्श देकर अपनी योग्यता का परिचय दिया था । प्रतिकूल परिस्थिति मे भी उनका सम्यक् भाव अडिग रहता था ।

अपने सवसे छोटे पुत्र श्री पूनमचन्द जी के आकस्मिक एव असामयिक निधन पर भी उन्होने अपना धैर्य नही खोया था । उनका चिन्तन था कि ससार नाशवान है, जिसने जन्म लिया है वह देर-सवेर अवश्य जायेगा । और इसी चिन्तन के सहारे उन्होने पुत्र के वियोग को मन पर हावी नही होने दिया । निर्लिप्त वनकर यथावत् अपने नियम-सयम का पालन करती रही । लगभग इसी प्रकार की अनित्य भावना का परिचय आपने उस समय दिया जव आपके पतिदेव सेठ श्री गुलाबचन्दजी का अन्तिम समय निकट था । उनको मरणासन्न जानकर भी दादी सा ने धैर्य खोकर रोना-धोना आदि नही किया । अपितु आपने पतिदेव को धर्म-चर्चा का श्रवण करवाया और नमस्कार महामन्त्र तथा चार शरणो का धार्मिक सवल प्रदान करती रही ।

अनुकरणीय सस्मरण

यो तो दादी सा का सम्पूर्ण जीवन ही अनुकरणीय है, किन्तु अपने पति को निरन्तर धर्माचरण मे प्रेरित करते रहना तथा निरन्तर उनके साथ रहकर धार्मिक क्रियाओ मे प्रवृत्त रहना सद्गृहिणी के अनुपम उदाहरण है । उन्हे अपने आप पर और अपने सयमित एव नियमित जीवन पर पूर्ण विश्वास था । जिस प्रकार गाधीजी दृढता के साथ कहा करते थे कि मै १२५ वर्ष तक जीऊँगा, क्योकि उनको भी अपने नियमित, सयमित और धार्मिक जीवन की लम्बी आयु का पूर्ण विश्वास था, उसी प्रकार दादीजी भी अपनी लम्वी उम्र के विपय मे पूर्ण आश्वस्त थी ।

एक वार वृद्धावस्था मे उनको मियादी ज्वर (टाईफाइड) ने घेर लिया । वे कृशकाय हो गयी । किसी ने उनकी अवस्था और रुग्णता देखकर परामर्श दिया कि अब उनको सथारा (आमरण अनशन) पचख लेना चाहिए । किन्तु उन्होने दृढता के साथ उत्तर दिया—'मेरा आयुष्य अभी वहुत शेष है । अनशन करके क्या विराधक वनना है ? मै सथारा नही करूँगी ।' ऐसा उत्तर वे ही दे सकते है जिनको अपने सयम-नियम और धर्माचरण पर पूर्ण निष्ठा हो । इस बीमारी के बाद वे २५ वर्ष से भी अधिक जीवित रही तथा ९७ वर्ष की दीर्घायु मे दिवगत हुई । अपने अन्तिम समय तक वे धर्म-चर्चा मे लीन रही और धर्माराधनापूर्वक त्याग-प्रत्याख्यान के साथ उन्होने अपने इहलोक और परलोक को सार्थक बनाया ।

दादी सा स्वर्गीया महताव कँवरजी की माताजी का नाम जतनकँवरजी एव छोटी वहिन का नाम फूलकँवरजी था । ये दोनो ही तेरापथ धर्मसघ के साध्वी वर्ग की आदर्श साध्वियाँ हुई है । उनकी गणना धर्मसघ की अत्यन्त विनयशीला एव सहनशीला सतियो मे की जाती है ।

गुरुवर्या प्रवर्तिनी आर्यारत्न सज्जनश्रीजी म सा की पूजनीया माताजी का स्मरण करना इस अवसर पर अत्यन्त आवश्यक है, धर्म लाभ का कार्य है, क्योकि आज हमे जिस महान् विभूति के दर्शन सुलभ है वे उस महान् नारीरत्न की सुपुत्री है, जिसने अपने जीवन के ९७ वर्ष पवित्रता एव धार्मिक भावना से ओतप्रोत रहकर लूणिया परिवार को शाश्वत गौरव प्रदान किया है । गुरुवर्या के पावन अभिनन्दन के शुभ अवसर पर मेरा उस महान् आतमा को कोटिश वन्दन ।

□□
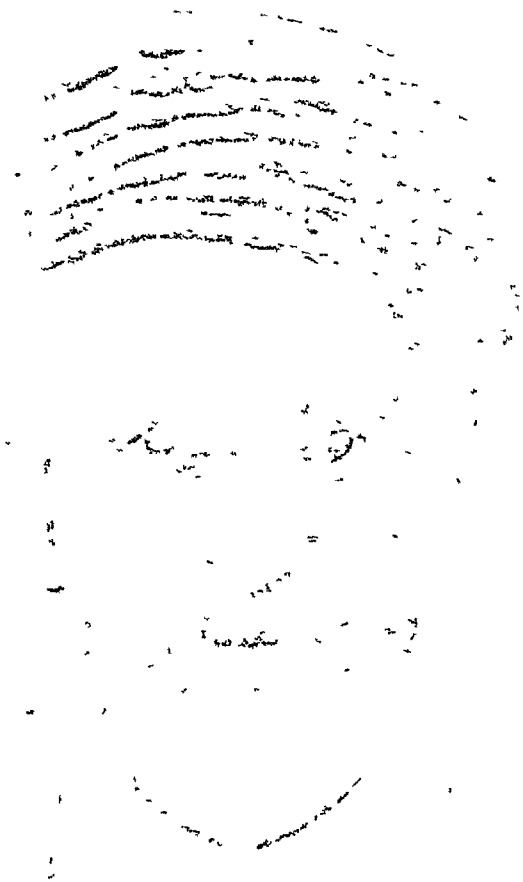
(पिताजी) स्वनामधन्य श्रेष्ठी श्री गुलाबचन्द जी लूनिया

धर्मनिष्ठ तत्वज्ञ श्रावक

सेठ श्रीगुलाबचन्दजी लूणिया

धन का बिरवा परिश्रम का जल चढ़ाने मे सहज ही बढने लगता है। यश एवं कीर्ति का क्षेत्र भी पारस्परिक सम्पर्क, दानशीलता, सेवा-सहयोग मृदु व्यवहार एवं मित्रभाव का पुट देकर जिस गति से चाहे बढाया जा सकता है। किन्तु धर्म की बेल यूं सहज ही फलीभूत नहीं होती। पूर्व सस्कारो का पवित्र जल इसमे सीचना होता है। पीढी दर पीढी धर्मनिष्ठ पूर्वजो की आस्था का पोषण इस बेल को देना पड़ता है। दैनन्दिन क्रिया कर्म, नियमित उपासना, तप और साधना के साथ-साथ लोक-व्यवहार, वृत्ति-व्यवहार, घर-परिवार सभी क्षेत्रो मे धर्मपरायणता का निर्वाह करना होता है। अनेकानेक भौतिक एव मनोकायिक भूचालो से धर्म-बेल की रक्षा करनी होती है, तभी यह अमृत तुल्य फल प्रदान करती है, तभी परिवार मे धार्मिक सस्कारो से युक्त सतानो का प्रादुर्भाव होता है।

ऐसा ही सुयोग मिला था धर्मनिष्ठ तत्वज्ञ श्रावक सेठ श्रीगुलाबचन्दजी लूणिया को। उनके पूर्वज ११वी शताब्दी मे मुलतान राज्य मे व्यापार करते थे। उनमे सबसे ख्यातनामा थे श्री धींगरमल शाह (मूँदडा) जो कि मुलतान राज्य मे प्रधानमन्त्री के सम्मानित पद पर आसीन थे। उनके एक पुत्र लूणाशाह थे, जिनको एक बार सर्प ने डस लिया। दैवयोग से उस समय वहां जैन मुनि श्रीगुरुजिनदत्तसूरि जी का आगमन हुआ। आप बडे दादा गुरु के नाम से विख्यात थे। उन्होंने अपने मन्त्रबल से लूणाजी शाह का सर्प विष उतार कर उन्हे स्वस्थ कर दिया। श्री धींगरमलजी इस चमत्कार से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। सन् ११२७ मे आचार्य महाराज ने उनके पुत्र लूणाशाह के नाम पर ओसवाल जाति मे "लूणिया" गोत्र प्रदान किया। गोत्र का शुभारभ उनसे ही हुआ।

श्री धींगरमल जी शाह का परिवार मुलतान मे यवनो का शासन हो जाने तथा अकाल की स्थिति बन जाने के कारण मुलतान छोडकर जैसलमेर मे आ बसे। जहाँ यह परिवार १७ वी शताब्दी तक रहा। जैसलमेर मे व्यापार की अधिक प्रगति होती नही देखकर शाह जी दिल्ली मे आकर बसे।

दिल्ली से से लूणिया परिवार जयपुर आ गया तथा व्यापार दिल्ली व जयपुर दोनो स्थानो पर करते रहे। श्रीछबीलचन्दजी के सुपुत्र का नाम था गोरूमल जी, उनके दो पुत्र थे—एक श्रीचौथमलजी तथा दूसरे श्रीगणेशमलजी।

यह वह समय था जब महाराज जयसिंह ने जयपुर नगर बसाया था और अन्य प्रान्तो के विद्वानों, व्यापारियों, धार्मिक महापुरुषो और कलामर्मज्ञो को जयपुर मे आकर बसने का आह्वान किया था। श्रीगोरूमलजी को भी महाराजा जयसिंह द्वारा आमत्रण मिला और वो भी जयपुर आकर व्यापार करने लगे। उन्होंने जवाहरात के व्यवसाय मे अच्छी ख्याति अर्जित की, तथा "गोरूमल चौथमल" नाम से एक फर्म की स्थापना की व कुन्दीगर के भैरूंजी के रास्ते मे एक हवेली बनवाई। जहाँ आज भी लूनिया परिवार रहता है।

धर्मनिष्ठ तत्वज्ञ श्रावक

सेठ श्रीगुलाबचन्दजी लूणिया

धन का बिरवा परिश्रम का जल चढाने से सहज ही बढने लगता है। यश एवं कीर्ति का क्षेत्र भी पारस्परिक सम्पर्क, दानशीलता, सेवा-सहयोग, मृदु व्यवहार एवं मित्रभाव का पुट देकर जिस गति से चाहे बढाया जा सकता है। किन्तु धर्म की बेल यूँ सहज ही फलीभूत नही होती। पूर्व संस्कारो का पवित्र जल इसमें सींचना होता है। पीढी दर पीढी धर्मनिष्ठ पूर्वजो की आस्था का पोषण इस बेल को देना पडता है। दैनन्दिन क्रिया कर्म, नियमित उपासना, तप और साधना के साथ-साथ लोक-व्यवहार, वृत्ति-व्यवहार, घर-परिवार सभी क्षेत्रो में धर्मपरायणता का निर्वाह करना होता है। अनेकानेक भौतिक एवं मनोकायिक भूचालो से धर्म-बेल की रक्षा करनी होती है, तभी यह अमृत तुल्य फल प्रदान करती है, तभी परिवार में धार्मिक संस्कारो से युक्त संतानो का प्रादुर्भाव होता है।

ऐसा ही सुयोग मिला था धर्मनिष्ठ तत्वज्ञ श्रावक सेठ श्रीगुलाबचन्दजी लूणिया को। उनके पूर्वज ११वी शताब्दी में मुलतान राज्य में व्यापार करते थे। उनमे सबसे ख्यातनामा थे श्री धींगरमल शाह (मूँदडा) जो कि मुलतान राज्य में प्रधानमन्त्री के सम्मानित पद पर आसीन थे। उनके एक पुत्र लूणाशाह थे, जिनको एक बार सर्प ने डस लिया। दैवयोग से उस समय वहाँ जैन मुनि श्रीगुरुजिनदत्तसूरि जी का आगमन हुआ। आप बडे दादा गुरु के नाम से विख्यात थे। उन्होंने अपने मंत्रबल से लूणाजी शाह का सर्प विष उतार कर उन्हें स्वस्थ कर दिया। श्री धींगरमलजी इस चमत्कार से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। सन् ११६२ मे आचार्य महाराज ने उनके पुत्र लूणाशाह के नाम पर ओसवाल जाति मे "लूणिया" गोत्र प्रदान किया। गोत्र का शुभारंभ उनसे ही हुआ।

श्री धींगरमल जी शाह का परिवार मुलतान मे यवनो का शासन हो जाने तथा अकाल की स्थिति बन जाने के कारण मुलतान छोडकर जैसलमेर मे आ बसे। जहाँ यह परिवार १७ वी शताब्दी तक रहा। जैसलमेर मे व्यापार की अधिक प्रगति होती नही देखकर शाह जी दिल्ली मे आकर बसे।

दिल्ली से से लूणिया परिवार जयपुर आ गया तथा व्यापार दिल्ली व जयपुर दोनो स्थानो पर करते रहे। श्रीछवीलचन्दजी के सुपुत्र का नाम था गोरूमल जी, उनके दो पुत्र थे—एक श्रीचौथमलजी तथा दूसरे श्रीगणेशमलजी।

यह वह समय था जब महाराज जयसिंह ने जयपुर नगर बसाया था और अन्य प्रान्तो के विद्वानो, व्यापारियो, धार्मिक महापुरुषो और कलामर्मज्ञो को जयपुर मे आकर बसने का आह्वान किया था। श्रीगोरूमलजी को भी महाराजा जयसिंह द्वारा आमंत्रण मिला और वो भी जयपुर आकर व्यापार करने लगे। उन्होने जवाहरात के व्यवसाय मे अच्छी ख्याति अर्जित की, तथा "गोरूमल चौथमल" नाम से एक फर्म की स्थापना की व कुन्दीगर के भैरूँजी के रास्ते मे एक हवेली बनवाई। जहाँ आज भी लूनिया परिवार रहता है।
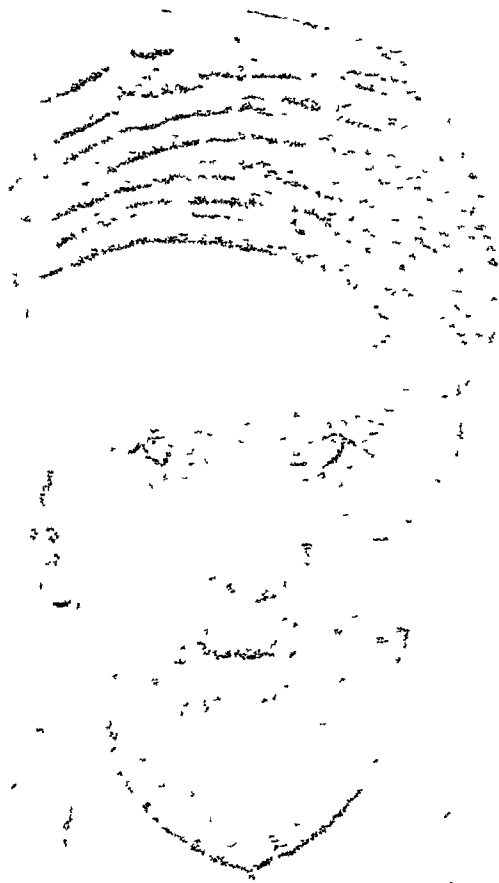
(पिताजी) स्वनामधन्य श्रेष्ठी श्री गुलाबचन्द जी लूनिया

श्रीगोरूमलजी ने अपने बडे पुत्र चौथमलजी का विवाह चौधाणी (नाहटा) परिवार मे किया तथा छोटे पुत्र गणेशमलजी का विवाह बोथरा परिवार में किया। गणेशमलजी की प्रथम पत्नी का देहान्त हो जाने पर उनका दूसरा विवाह भूरामलजी चोरडिया की बहिन से हुआ। गणेशमलजी का तीसरा विवाह राजगढ (सादुलपुर) मे बेगवानी परिवार मे हुआ। बडे भाई चौथमलजी के कोई सन्तान नही हुई। गणेशमलजी की तृतीय पत्नी से तीन सन्तानें हुईं—एक कन्या और दो पुत्र। कन्या का नाम हुलासा-बाई रखा गया। दोनो पुत्रो का नाम क्रमश तेजकरण और गुलाबचन्द रखा गया। हुलासाबाई का विवाह उस समय के ख्यातिनामा ढड्ढा परिवार मे श्रीबहादुरमलजी ढड्ढा से हुआ। बहादुरमलजी अधिक आयु नही पा सके। वे २५ वर्ष की अवस्था ही मे अपनी पत्नी श्रीमती हुलासाबाई तथा पुत्ररत्न श्रीउमरावमल को छोडकर स्वर्गवासी हो गये। उमरावमलजी को लूनिया परिवार मे दीपचन्द कहते थे।

श्रीगणेशमलजी के प्रथम पुत्र तेजकरणजी तथा उनकी पत्नी का देहान्त भी युवावस्था ही मे हो गया। तेजकरणजी की पत्नी लूनवाल परिवार से थी।

इसी पीढी मे श्रीगणेशमलजी के द्वितीय पुत्र गुलाबचन्दजी थे। श्रीगणेशजी की वश बेल श्रीगुलाबचन्दजी से ही फली फूली। उनके द्वारा लगायी गयी वश-पौध आज वट वृक्ष बनकर लहलहा रही है। इस वश ने धन, सम्पन्नता, धर्मनिष्ठा, सामाजिक प्रतिष्ठा, लोक व्यवहार, विदेशो में व्यापारिक सफलता एव ख्याति के अनेक कीर्तिमान स्थापित किये है। इसी वश वृक्ष की एक उज्ज्वल मणि है—आगमज्ञा, विदुषीवर्या आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी महाराज साहब। स्वनामधन्या श्रीसज्जनश्रीजी म सा अपनी ज्ञानसुधा से अध्यात्म पिपासु भक्तजनो के हृदयो को निरन्तर आप्लावित करने वाले श्रीगुलाबचन्द जी की पुत्री है जो अपने त्याग, तप, धर्मनिष्ठा तथा सयम-साधना से पीहर और ससुराल दोनो ही पक्षो का नाम उज्ज्वल कर रही है।

श्री गुलाबचन्दजी की बाल्यावस्था

आपका जन्म सवत् १९३४ मे जयपुर मे हुआ। नीतिनिष्ठा और धर्माचरण आपको विरासत मे प्राप्त हुए थे। पिताश्री गणेशमलजी की ईमानदारी और धर्मनिष्ठा का प्रभाव गुलाबचन्दजी के सस्कारो मे भी आया। धार्मिक आचरण एव साधु-सन्तो की सेवा दादाजी श्री गोरूमलजी के समय मे भी परिवार के मुख्य कर्तव्य माने जाते थे। स० १८८५ मे तेरापथ धर्मसघ के चतुर्थ आचार्य श्रीमद् जयाचार्य ने अपना चातुर्मास जयपुर मे किया था। उस समय ५२ व्यक्तियो ने तेरापथ की गुरु धारणा ग्रहण की। गोरूमल जी उन्ही मे से एक प्रमुख व्यक्ति थे। धर्म की इस अजस्र धारा मे ही पल्लवित-पुष्पित हुई थी श्री गुलाबचन्द जी की मानस बल्लरी। कल्पना-शक्ति और भावनामय उडान आपको ईश्वर प्रदत्त थी। बाल्यकाल ही से आप साधु-साध्वियो की सेवा मे अधिक से अधिक समय दिया करते थे। धर्मचर्चा मे आपका मन खूब रमता था। सुन्दर-सरस और तात्त्विक ढाले तो आप १७ वर्ष की आयु मे ही लिखने लगे थे।

आप बचपन से ही मृदुभाषी थे। भावुक होने के कारण आपने कभी किसी को कटुवाणी से कष्ट नही पहुचाया। सबके सहयोगी एव सेवाभावी आप बाल्यकाल ही से थे। आपका सासारिक कार्यो मे कम ही मन लगता था।

दीक्षा ग्रहण की तैयारी

अनेक आध्यात्मिक गुणो से युक्त वालक गुलावचन्द जी का मन प्राय दीक्षा के लिए लालायित रहने लगा। उनकी इस महती आकाक्षा को परिजनो ने भॉप लिया और हर सम्भव उपाय से वे उनका मानस बदलने का प्रयत्न करने लगे। अत १४ वर्ष की आयु मे ही उनका विवाह यह विचारकर कर दिया गया कि गृहस्थी का भार वहन करने से दीक्षा लेने का भाव स्वत ही निरोहित हो जायेगा। श्री गुलाबचन्द दीक्षा तो नही ले पाये, किन्तु गृहस्थी मे रहकर भी उन्होने अग्रणी और पूर्ण धर्माचरणयुक्त श्रेष्ठ श्रावक के रूप मे ख्याति अर्जित की। सन्त-मुनिराज भी अपने प्रवचनो मे श्री गुलावचन्द जी के हूँ-कारे (तहत्ति) का ध्यान रखते थे, क्योकि वे स्वाध्यायी थे, चिंतक थे और धर्म-आख्यानो का उन्हे विशुद्ध ज्ञान था, अत उनका 'हूँ-कारा' आना प्रवचनकर्ताओ की सफलता का कारण वन जाता था।

विवाह एव गृहस्थ जीवन

श्रावक सेठ श्री गुलाबचन्दजी का विवाह भोपाल रियासत के खजाची श्री चुन्नीलालजी कोठ्यारी एव श्रीमती जतनकुमारीजी को सुपुत्री महतावकुमारी के साथ हुआ था। श्रीमती महताव-कुमारी गृहकार्य मे दक्ष, सुशील, व्रत-नियमो मे आस्थाशील सदाचारिणी महिला थी। वे अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की थी। ऐसी सहधर्मिणी मिलने से सोने मे सुहागा वाली कहावत चरितार्थ हो गई। युवावस्था मे ही पति-पत्नी ने तेरापथ के अष्टम आचार्य श्री कालूगणी से वारह व्रत धारण कर लिये थे। धर्माचरण सामायिक और व्रत-पचखाण के साथ दोनो ने गार्हस्थ्य जीवन की यात्रा आरम्भ की।

कुछ काल उपरान्त श्री गुलाबचन्दजी के पिताश्री और श्री चौथमलजी का स्वर्गवास हो गया। गृहस्थी का सम्पूर्ण भार श्री गुलाबचन्दजी तथा भाई तेजकरण जी पर आ पडा। किन्तु विधि के विधान मे श्री गुलावचन्दजी को ही सारे उत्तरदायित्वो को वहन करवाने की योजना थी, अत कुछ कालोपरात भाई तेजकरण जी भी नि सन्तान ही इस ससार से विदा हो गये। अव सारे परिवार का भार श्री गुलाव चन्दजी पर ही आ पडा। आपने पूरी ईमानदारी तथा कठिन परिश्रम से इस उत्तरदायित्व को निभाया। ससारी रहे, किन्तु मन को ससार मे नही रमाया, धर्म से अलग नही होने दिया। उन्होने व्यापार और धर्मनिष्ठा मे समान रूप से प्रगति की और दोनो ही क्षेत्रो मे अच्छा नाम कमाया। सासारिक उत्तरदायित्वो को निभाते हुए भी वे उससे मोहग्रस्त नही हुए, धन-वैभव अर्जित किया। और ससार मे रहकर भी कमल की भॉति निर्लिप्त रहे।

पारिवारिक वैभव

सेठ श्री गुलाबचन्दजी के दो पुत्र एव दो पुत्रियाँ हुईं।

वर्तमान मे जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ की प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी का जन्म १६ मई १९०८ को हुआ। वाल्यकाल मे आपको सभी स्नेहवश 'गपजी' कहकर पुकारते थे। पिताश्री का आप पर अत्यन्त स्नेह था। वे इन्हे अपना पुत्र ही मानते थे। और धार्मिक क्रियाकलाप हो या सामाजिक समा-रोह, सव मे आपको अपने साथ ही रखते थे। यह वात निर्विवाद सत्य है कि प्रवर्तिनी जी मे धार्मिक सस्कारो का प्रस्फुटन अपने पिताश्री की प्रेरणा से ही हुआ, फिर भी आप मे पूर्वजन्मो के धार्मिक सस्कारो का बीज भी अवश्य रहा है, अन्यथा यह धर्मपौध इतनी कम आयु ही मे थोडी सी प्रेरणा पाकर ही कैसे प्रस्फूटित कैसे होता? सज्जनश्रीजी का विवाह वाल्यकाल मे ही १२ वर्ष आयु मे जयपुर के प्रसिद्ध दीवान श्री नथमलजी गोलेछा के सुपुत्र श्री कल्याणमल जी से हुआ। विवाह वहुत धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

विवाहोपरात भी प्रवर्तिनीश्रीजी सासारिक बन्धनो, धन-वैभव की सुविधाओ, गार्हस्थ्य जीवन के मोहो मे नही रम सकी। जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है ? प्राणी पृथ्वी पर क्यो जन्म लेता है ? उसका वास्तविक लक्ष्य क्या है ? आदि-आदि प्रश्न आपके अन्तर् को निरन्तर सासारिक जीवन से उदासीन तथा आध्यात्मिक जीवन की ओर उन्मुख करते रहे। अतत आपने सासारिक मोहबन्धन से छुटकारा पाने का दृढ निश्चय कर अपने भुवासास श्रीमती बाफना के सहयोग से सन् १६४० मे जैन श्वे खरतरगच्छ सघ में दीक्षा ग्रहण करली। निर्बन्ध-निर्लिप्त जीवन का शुभारम्भ हो गया। उस समय आपकी आयु मात्र ३२ वर्ष थी। तब से आज ८१ वर्ष की अवस्था तक आप कर्मठ तपस्विनी, साधिका, शास्त्रज्ञा, आगमवेत्ता सघ प्रवर्तिनी, गुरु सेविका और गुरुवर्या के रूप मे ख्याति प्राप्त है।

सन् १६१५ मे श्री केशरीचन्द्र जी का जन्म हुआ, जिनके चार पुत्र और तीन पुत्रियां है। सन् १६१७ में दूमरी पुत्री कस्तूरीबाई का जन्म हुआ तथा १६२२ मे दूसरे पुत्र पूनम चन्द जी जन्म हुआ। जिनके चार पुत्रियाँ और एक पुत्र हुए।

व्यापारिक प्रगति

सेठ श्री गुलाबचन्द जी ने जयपुर के जौहरियो मे अपनी सत्यनिष्ठा एव ईमानदारी से शीघ्र ही विशिष्ट स्थान बना लिया था। भारत के अनेक जौहरीगण आपके आढतिये थे। वे समय-समय पर जयपुर आते और श्री गुलाबचन्द के घर पर ही ठहरते थे। श्री गुलाबचन्द जी के द्वारा किये हुए सौदो मे आढतियो को भी अच्छी आय होती थी।

विदेशियो से सम्पर्क

आपने जवाहरात का एक शो रूम जौहरी बाजार मे खोला। थोडे समय पश्चात् आपकी ख्याति सुनकर रियासत के दीवान सर मिर्जा इस्माईल ने अपने नाम पर नव निर्माणाधीन मिर्जा इस्माइल रोड पर एक वृहत भूमिखड बहुत कम कीमत पर प्रदान किया। जिस पर आपने जवाहरात का एक भव्य शो रूम व सुरम्य उद्यान लगाया जो "लूनियो के बाग" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अग्रेजी जानने वाले गुमाश्ते रखे। व्यवसाय के क्षेत्र मे जयपुर नगर मे यह एक विशेष कार्य था। दो घोडो की बग्घी पर सेठ श्री गुलाबचन्दजी आया जाया करते थे। अपने ही घर पर आपने जडिया सोने मीने का काम करने वाले कारीगर, बिंदाई व पुवाई का काम करने वाले पटवा, बेगडी, मोती पिराने वाले आदि रखे। उन सबका कार्य सेठसाहब की देख-रेख मे ही होता था।

आपके व्यापार मे अच्छी वृद्धि हुई। धर्म का प्रभाव धनवृद्धि पर भी पडा। चतुर्दिक प्रतिष्ठा बढने लगी। रियासत के बडे-बडे प्रतिष्ठित अधिकारियो, जैसे—नवाब-साहब, हाथीबाबू जी मोतीलाल जी अटल, अमरनाथ जी अटल, गीजगढ ठाकुर कुशल सिह जी, रूपसिह जी राठौड, अमर सिह जी राठौड, महाराजा माधोसिह जी के साले साहब, खवास बालावक्ष जी, अग्रेज रेजीडेन्ट, आदि से अच्छा सम्पर्क था।

जयपुर के प्रतिष्ठित जौहरियो से आपके पारिवारिक सबध थे तथा उनके यहा सपरिवार आना-जाना होता था।

सेठ श्री गुलाबचन्द जी ने एडवर्ड सप्तम के पुत्र पचम चार्ज प्रिंस आफ वेल्स के दिल्ली आगमन पर हुए समारोह मे जौहरी के रूप मे सक्रिय भाग लिया। आपको प्रिंस ऑफ वेल्स और जार्ज पचम तक से प्रशसा पत्र प्राप्त हुए। महाराजा माधोसिह जी के दरबार मे आपकी भी कुर्सी लगती थी। दरबार

के कई प्रतिष्ठित ठिकानेदारों से आपका व्यक्तिगत सम्पर्क था। महाराजा जामनगर ने आपसे जवाहरात का बहुत माल खरीदा और वे समय-समय पर आपको जामनगर आमन्त्रित करते थे।

इन सभी महत्वपूर्ण सम्पर्कों, सम्बन्धों और व्यापारिक उपलब्धियों का एकमात्र कारण आपकी सत्यनिष्ठा ही थी। लाभांश से कई गुना अधिक आपका ध्यान संबंधों और सम्पर्कों की शुद्धता व निरंतरता बनाये रखने पर रहता था। यही कारण था कि अच्छे-अच्छे व्यापारी, ओहदेदार, ठिकानेदार, अंग्रेज अफसर, राजदरबारी आदि आपके आजीवन मित्र बने रहे।

व्यापारिक सहिष्णुता

इतने वृहद् पैमाने पर व्यापार होते हुए भी आपने कभी कचहरी का द्वार नहीं खटखटाया। कोर्ट-कचहरी, मुकदमेबाजी आदि झंझटों से आप आजीवन दूर रहे। गवाही (साक्षी) देने जाने की आपने सौगन्ध ले रखी थी। इस व्रत को आपने आजीवन निभाया।

बहुआयामी किन्तु धर्मनिष्ठ जीवन

व्यापारिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन सभी क्षेत्रों में कर्तव्यनिष्ठ रहते हुए भी सेठ साहब ने अपने हृदय को धर्म की धुरी पर ही केन्द्रित रखा। कहते हैं, धर्मनिष्ठ गृहस्थी तपोनिष्ठ साधु से भी श्रेष्ठतर होता है। इसलिए श्री गुलाबचन्दजी का मान चारों ही सम्प्रदायों के आचार्य करते थे। सेठजी को सम्प्रदायवाद ने छुआ तक नहीं था। आपकी दृष्टि व्यापक थी।

नगर में किसी भी सम्प्रदाय के आचार्य पधारे हों, सेठसाहब उनकी सेवा में नियमित रूप से जाते थे। आप केवल औपचारिक श्रावक नहीं थे अपितु एक महान् तत्त्वज्ञानी थे। उपवास बेला तेला आदि की तपस्या भी करते रहते थे। जयपुर के एक प्रसिद्ध पत जी महाराज के स्वर्गवास होने पर उनकी सम्पूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों का भंडार आपने खरीद लिया तथा उनका अनुशीलन किया। आगम शास्त्रों का आपको गहरा ज्ञान था। ज्योतिषविद्या के भी आप अच्छे जानकार थे। आचार्यों से आपकी तत्त्व-चर्चा निरन्तर चलती रहती थी। इसलिए व्याख्यानों व प्रवचनों से आचार्यवर्य भी आपकी "तहत्ति" की निरन्तर अपेक्षा रखते थे। सामायिक, प्रतिक्रमण, आपकी दिनचर्या के नियमित क्रिया-कलाप थे। युवावस्था ही में आपने अपनी धर्मपत्नी के साथ १२ व्रतों की पालना प्रारम्भ कर दी थी। आपने विदेशयात्रा, एलोपैथी औषधी, अखाद्य खाद्य, मुकदमेबाजी आदि नहीं करने की शपथ ले रखी थी। इन सभी नियमों का पालन आपने आजीवन किया था।

तेरापंथ धर्मसंघ की पाट-परम्परा के पाँचवें आचार्य श्री मघवागणी, छठे आचार्य श्री माणकगणी, सातवें आचार्य श्री डालगणी, आठवें आचार्य श्री कालूगणी एवं वर्तमान आचार्य श्री तुलसीगणी की आपने दत्तचित होकर सेवा की। इन पाँचों आचार्यों की निकट सेवा का अवसर सेठसाहब को अनेक बार मिला। उन्होंने गण और गणी की सेवा में सदैव तत्परता दिखलाई। आपका सम्पूर्ण जीवन ही संघ की सेवा से ओत-प्रोत रहा। यह उल्लेखनीय है कि जर्मन दार्शनिक हर्मन जेकोबी सर्वप्रथम आपके सम्पर्क में आए और आपने उनको जैनदर्शन, जैन आचार, आचार्य भिक्षु के तत्वदर्शन आदि के विषय में विस्तार से बताया। जर्मनी में जैनधर्म के प्रचार एवं प्रसार में आपका पूर्ण सहयोग रहा।

भावमर्मज्ञ, भक्ति-रसज्ञ, संगीतज्ञ, कविहृदय

रात्रि जागरण के आयोजनों में यदि सेठ श्री गुलाबचन्दजी का भक्ति संगीत हो तो मंदिरों से आपकी ढालें और चौमासे की विनतियाँ सुनने के लिए हजारों की भीड़ लग जाती थी। आप एक सुमधुर गायक थे तो गीतिकाओं और ढालों के सिद्धहस्त रचयिता भी थे। तीन सौ से अधिक भजन ढालें आपने स्वयं लिखी, जिनमें भक्तिरस, तत्वज्ञान और धार्मिक भावनाओं का त्रिवेणी संगम देखने को

मिलता है। आपको कई देशी राग-रागनियो का अच्छा ज्ञान था । आपने लोकप्रिय राग-रागनियो के आधार पर कई भजनो की रचना की। आज भी सेठ साहब के समय के लोग, मित्रजन, श्रावक उनके भजनो को गाते है और इस भक्त हृदय की सगति का स्मरण कर आत्मविभोर हो उठते है। आपके भजनो का सचय (केसेट) भी तैयार किया गया है, जिसे सुनकर हर व्यक्ति स्वय अनुभव कर लेता है कि सेठ श्री गुलाबचन्दजी वस्तुत ऐसे महकते हुए गुलाब थे जिनमे भक्ति-सगीत और काव्य-मर्मज्ञता की सुरभि पूर्णत व्याप्त थी। नि सदेह, इस सौरभ ने लूणिया परिवार, सम्पूर्ण जैन समाज और उनके स्वय के जीवन को एक समुज्ज्वल धर्मभावना से आवेष्टित बनाये रखा था और आज भी वह सौरभ श्री सज्जनश्रीजी म सा के माध्यम से उसी गरिमा के साथ दिग्-दिगन्त मे व्याप्त है।

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ ने श्री गुलाबचन्दजी लूणिया के विषय मे कहा है कि श्री गुलाबचन्द जी प्रथम श्रावक थे जिन्होने भक्ति-भाव पूर्ण ढाले, गीतिकाएँ, स्तवन आदि की रचनाएँ की और भक्ति-भाव से विभोर हो उनको स्वय गाया भी। श्री गुलाबचन्द जी लूणिया व श्री सुजानमल जी खाटेड की गायन युगल जोडी पूर्ण जैन समाज मे प्रसिद्ध थी।

ग्रन्थ प्रकाशन एव धर्मभावना

धार्मिक समारोह, आध्यात्मिक जागरण एव तत्वचर्चाओ मे भाग लेने के साथ-साथ श्री गुलाबचन्द जी लूणिया ने अनेक स्वरचित व अन्य ग्रन्थो का प्रकाशन करवाया। उनके द्वारा रचित/प्रकाशित अनेक पुस्तकें उस समय जैन-तत्व दर्शन के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण मानी जाती थी। अनेक श्रावक-श्राविकाओ और साधु-साध्वियो ने इन ग्रन्थो से जैन तत्वो की जानकारी प्राप्त की। आज भी इन ग्रन्थो को जैन-तत्व दर्शन के प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। श्री गुलाबचन्दजी साहब के धर्मग्रन्थ जिनकी रचना आपने ही की थी, निम्नलिखित है—

१ भिक्षुयश रसायन २ नव पदार्थ निर्णय ३ श्रावक धर्म विचार ४ शिशुहित शिक्षा ५ श्रावक आराधना ६ सुगणावली ७ प्रश्नोत्तर तत्वलोक।

श्री लूणियाजी के ग्रन्थ प्रकाशन कार्य मे सबसे अधिक सहयोग मिला था उनके अनन्य मित्र सहयोगी एव सहधर्मी श्री हीरालालजी आचलिया का। श्री आचलियाजी भी लूणियाजी की तरह जैन शासन के भक्त-श्रावक रहे है। वे प्रथम श्रावक हुए है जिन्होने धार्मिक ग्रन्थो का शुद्धिकरण करवाया, उन्हे छपवाया और धर्मचेतना जाग्रत करने हेतु नि शुल्क वितरण करवाया।

श्री आचलियाजी गगाशहर (बीकानेर) रहते थे। किन्तु ग्रन्थ प्रकाशन के कार्य हेतु प्राय जयपुर आया करते थे और श्री गुलाबचन्दजी लूणिया के यहाँ ही ठहरा करते थे। दोनो ही दृढ श्रद्धायुक्त भक्त थे जिन्होने जैनग्रन्थो के प्रकाशन, वितरण एव प्रभावना की दृष्टि से ऐतिहासिक योगदान किया था।

श्री गुलाबचन्दजी का स्वच्छ-रुचि सादे परिधानयुक्त सरल आध्यात्मिक हृदय वाला आकर्षक व्यक्तित्व था। वह भावपूर्ण, कला-मर्मज्ञ हृदय, उदार किन्तु उत्तरदायित्वपूर्ण गृहस्थ श्रावक, कुशल किन्तु स्वार्थरहित व्यवसायी थे। अपने पीछे दो पुत्र, दो पुत्रियो तथा यश-मान, कीर्ति, धर्म-प्रभावना, वैभव, प्रतिष्ठा और अनेक स्मरणीय एव अनुकरणीय कृतियाँ छोडकर उनकी दिव्यआत्मा अकस्मात् ही हृदय गति रुक जाने से वि० स० १९९६ के माघ शुक्ला २ की रात्रि को ८ बजे स्वर्गलोक मे प्रयाण कर गई। आज भी उनके भजन-गीत, ढाले-स्तवन और अनेक ग्रन्थ उनकी स्मृति को अमर बनाये हुए है। आज भी वे अपनी सम्पूर्ण जीवतता के साथ जीवित है। उन्ही की एक सुपुत्री है स्वनामधन्या महान साध्वीरत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म सा जिनका अभिनन्दन करते हुए हम उन अमर आत्मा के प्रति श्रद्धा-वन्त है।

□

पूज्य प्रवर्तिनी श्रीजी के ससारपक्षीय महोदर बन्धु

श्री केशरीचन्दजी लूनिया

पिताजी श्री केशरीचन्दजी लूनिया का जन्म सन् १९१५ मे हुआ। आपके पिताश्री श्रेष्ठ श्रावक प्रसिद्ध जौहरी सेठ गुलाबचन्दजी लूणिया थे, तथा माता का नाम महताब कुवर था। १८ वर्ष की अल्पायु मे ही जवाहरात के व्यवसाय मे रुचि लेना शुरू कर दिया था। वे कलकत्ता मे १९४०-१९५६ तक रहे और कलकत्ता के ग्राड होटल और ग्रेट ईस्टर्न होटल मे सफलता पूर्वक जवाहरात का शोरूम चलाया।

१९५७ मे जयपुर के रामबाग पैलेस होटल मे "गम गुलाबचद लूनिया एण्ड क०" के नाम से शोरूम खोला जो कि आज भी सफलता पूर्वक चल रहा है। द्वितीय महायुद्ध के बाद पिताजी व्यापारार्थ सघाई [चीन] गये थे। जमनालालजी वजाज की अध्यक्षता मे प्रजामण्डल का जयपुर मे अधिवेशन हुआ उसमे आप एक नवयुवक नेता के रूप मे सम्मिलित हुये और कार्य किया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जयपुर मे १९४८ मे पहली बार काग्रेस का अधिवेशन हुआ उसमे भी सक्रिय कार्यकर्ता के रूप मे भाग लिया।

अन्त समय तक नमस्कार मन्त्र का जाप—मेरे पिताश्री अत्यन्त ही विनोदी, मिलनसार और व्यवसायी बुद्धि के व्यक्ति होते हुए भी विज्ञान, दर्शन, कला आदि गभीर विषयो के भी ज्ञाता थे। अतिम दिनो मे बीमारी के दौरान भी जरा सी भी तबियत ठीक होती तो कहते "चलो पन्ना हम रामबाग चलकर आते है।" जब भी कभी मेरी कोई भाभी आती तो कहते ढाले और भजन सुनते। हमेशा टेप रिकार्ड पर आचार्यश्री तुलसी व अन्य विद्वान साधु-साध्वियो के भजन आदि सुना करते थे।

बीमारी के दौरान हमेशा ही "अरिहता को शरणो सिद्धाको सरणो" आदि शब्दो का उच्चारण किया करते थे। जब डॉक्टरो ने उन्हे इलाज हेतु विदेश जाने की सलाह दी तब उस जून की भीषण गर्मी एव इतनी अस्वस्थता के बावजूद भी उन्होने कहा—पहले मै गुरुदेव (आचार्यश्री तुलसी) के दर्शन करू गा फिर उनसे निर्देश प्राप्त करके ही कही जाऊगा। वे लेटे-लेटे ही गाडी मे दिल्ली चले गये और उनके दर्शन किये।

पिताश्री कष्ट और अपार शारीरिक वेदना मे हमेशा ही प्रसन्नचित रहते और नमस्कार महा-मत्र बोलते रहते थे। मृत्यु के करीब डेढ महीने पहले ही उन्हे पूर्वाभास हो गया था और कहते थे अब मेरा समय निकट आ गया है "खमत खामणा है सभी लोगो से"।

एक बार साध्वी जी दर्शन देने पधारी तो मगल पाठ सुनाने के बाद फरमाने लगी "सेठा अब काय की इच्छा है" तो आप कहने लगे "महाराज अब तो मेरी किसी चीज की भी इच्छा नही है सिर्फ चाहता हूँ कि पडित मरण आवे।"

पिताजी का जीवन हमेशा कीचड मे कमल की भाँति निर्लिप्त रहा, राग द्वेष किसी से भी नही था। किसी से भी कहा-सुनी होने पर भी कभी गाँठ नही बाँधते। दस मिनट बाद ही वह पहले जैसे हो जाते जैसे कुछ हुआ ही न हो। उनका पूरा जीवन ऋजुता, क्षमा और सहनशीलता, दृढ निश्चय और आत्म विश्वास से पूर्ण था।

आचार्य तुलसी, युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ तथा अन्य साधु-साध्वियो का आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु पिताश्री सेवार्थ तत्पर रहते थे। परिवार मे निरन्तर कहा करते थे "मन का तप करो—तन का तप तो सोरा (सहज) है असली तप तो मन का है।"

ऐसे मेरे बहु आयामी पिताश्री का आशीर्वाद हमारे साथ है।

केशरीचन्दजी का विवाह जयपुर के प्रसिद्ध बैंकर्स के परिवार मे श्री बीजराजजी बाठिया के यहाँ हुआ। आपकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती रेखादेवी लूनिया है। ये स्वय भी अत्यन्त सरल हृदया एव धर्मपरायण महिला है।

श्री केशरीचन्द जी साहब लूनिया को चार पुत्र रत्नो और तीन पुत्रियो की प्राप्ति हुई जिनके नाम क्रमश इस प्रकार है—(१) श्रीविजयकुमार लूणिया, (२) श्री पुखराज लूणिया, (३) श्रीमाणकजी लूणिया एव (४) श्रीसुरेशकुमार लूणिया तथा पुत्रियाँ (१) श्रीमती कमल साड, (२) श्रीमती पन्ना सकलेचा, एव (३) श्रीमती मन्जु पाटी दिया है।

श्री विजयकुमार लूणिया—श्रीकेशरीचन्दजी साहब के ज्येष्ठ पुत्र है। आप एक सफल व्यापारी है। आप हवामहल के सामने स्थित शोरूम "ओरिएन्टल जेम पैलेस" का सफल सचालन कर रहे है। आप मिलनसार, हसमुख और कर्मनिष्ठ व्यक्ति है। आपकी स्व० धर्मपत्नी निर्मला लूणिया कर्तव्यपरायण धर्मनिष्ठ एव सेवाभावी रही है, आपका पुत्र स्व मनोज एक होनहार बालक था। आपकी अजु और मनीषा नाम की दो पुत्रियाँ है।

श्री पुखराज लूणिया—श्रीकेशरीचन्दजी के द्वितीय पुत्र है। आपने जवाहरात के कार्य मे देश-विदेश में अच्छी ख्याति अर्जित की है। आप उत्साही युवक है। और जवाहरात के कार्य मे कई नवयुवको का दिशानिर्देश निरन्तर करते रहते हैं, आप एक शिक्षित, समाजसेवी, धर्मनिष्ठ और मिलनसार व्यक्तित्व के धनी है। आपकी सुशीला, सुशिक्षित, कला मर्मज्ञ धर्मपत्नी श्रीमती रत्ना लूणिया है। श्रीमती रत्नाजी गगाशहर के प्रसिद्ध आचलिया परिवार की पुत्री है जिनके साथ लूणिया परिवार का पुराना घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध रहा है और धार्मिक कार्यक्रमो मे दोनो परिवार समान रूप मे सम्माननीय रहे है। अत· आचलिया परिवार की सुसस्कारी सुशिक्षिता कन्या का इस परिवार मे पुत्रवधु के रूप में आना सचमुच मणि-काचन सयोग माना जायेगा। आपकी पुत्री का नाम अनुपमा है।

श्री माणकचन्द लूणिया—आप भी जवाहरात के व्यापारी है। आप केशरीचन्दजी के तृतीय पुत्र हैं। किसी भी कार्य को योजनाबद्ध कर उसे पूरी लगन और परिश्रम से पूर्ण करने के आप अभ्यासी हैं। सायर लूणिया आपकी सुन्दर सुशील पत्नी है। आपके दो पुत्र सुदीप और गौरव तथा एक पुत्री है जिसका नाम शालिनी है।

श्री सुरेश लूणिया—केशरीचन्दजी साहब के चतुर्थ पुत्र है। आप भी जयपुर ही मे जवाहरात के कार्य मे सलग्न है तथा रामबाग का शोरूम सफलतापूर्वक सचालित कर रहे है। आपकी धर्मपत्नी इन्दुमति सुमुखी, सुशिक्षित एव सुसस्कृत महिला है। आपकी दो सुन्दर कन्याये है जिनका नाम स्वाती एव सुरभी है।

श्री केशरीचन्दजी की ज्येष्ठ पुत्री कमल का विवाह श्रीविजयमलजी साड के साथ हुआ जो कि वर्तमान मे बिडला सस्थान मे चीफ, इक्सजीक्यूटिव है।

द्वितीय पुत्री पन्नाबाई का विवाह जयपुर के प्रसिद्ध राजजौहरी काशीनाथजी के घराने मे श्रीविजयसिंहजी सकलेचा से सम्पन्न हुआ। आप जवाहरात का ही व्यापार करते है।

तृतीय पुत्री मजु का विवाह कलकत्ता के उद्योगपति परिवार के श्री अरविन्दबाबू पाटोदिया से सम्पन्न हुआ है।

☐

गोलेच्छा परिवार का परिचय

□ विजयकुमार गोलेच्छा

[ससुराल पक्ष परिचय]

गोलेच्छा वश की उत्पत्ति

चन्देरी नगरी मे खरहत्थसिह राठौड राज्य करते थे। खरहत्थसिंह के चार पुत्र थे—अम्बेदेव, मिम्बदेव, भैसासिंह और आसफल।

एक वार यवन सेना ने इनके प्रदेश को लूटा। खरहत्थसिह को ज्ञात होते ही उसने पुत्रो सहित सेना लेकर यवन सेना का पीछा किया। घमासान युद्ध हुआ। यवन सेना सब कुछ छोडकर पलायन कर गई।

इस युद्ध मे विजय तो हुई, पर चारो पुत्र गम्भीर रूप से घायल हो गये। दैवयोग से महान प्रभावक युगप्रधान श्री जिनदत्त सूरि का उस प्रदेश अर्थात् चन्देरी मे पधारना हुआ। राजा ने उनके महाप्रभाव की बात सुनी और उनकी शरण मे पहुँचे, अपनी विपत्ति—पुत्रो की घायल मरणासन्न अवस्था कही। गुरुदेव ने वासक्षेप व जल अभिमन्त्रित कर दिया जिसके प्रयोग से वे शीघ्र स्वस्थ हो गये। राजा की श्रद्धा दादा गुरु मे दृढ हो गई। प्रतिबोध पाकर राजा सपरिवार जैन बन गया। उनके साथ अनेक अन्य क्षत्रिय आदि भी जैन बने वि० स० ११९५ में।

राजा के तृतीय पुत्र भैसासिह के द्वितीय पुत्र का नाम गेलोजी था। उनके पुत्र का नाम था वच्छराज। जनता इनको गेलवच्छा के नाम से मम्बोधित करती थी। तब ये गेलवच्छा कहलाये और वही शब्द अपभ्र श होते-होते गुलेच्छा या गोलेच्छा कहलाता है।

आदरास्पद श्रीयुत रत्नचन्दजी गोलेच्छा—आपने खीचन फलौदी से गुलाबी नगरी जयपुर की ओर प्रस्थान किया। परिवार सहित आप जयपुर में ही बस गये। आपके दो पुत्र थे। बड़े पुत्र का नाम श्री नथमलजी था और छोटे पुत्र का नाम श्री जवाहरमल जी।

मानव बन कर आये हो मानव ही बनकर चलना, तप पूत हो तप के आँगन मे है दिन रात तुम्हे पिघलना।
जीवन वही कि जिसकी लौ धरती को नभ से बाँधे, बैठो मेरे पास सुनो तुम मगल दीपक सा जलना॥

विश्वविख्यात गुलाबी नगरी जयपुर के गुलाबी रत्न
दीवान सेठ श्री नथमलजी गोलेछा का परिचय

आप बचपन से ही बडे भाग्यशाली तथा प्रखर एव तेजस्वी थे। आपकी कार्यकुशलता को देखकर जयपुर के महाराजा भी आपसे प्रभावित हुए बिना नही रह सके। अपको अपनी रियासत का दीवान बना दिया। आपके छोटे भाई को खजाची बनाया।

आपको दीवान साहब के नाम से प्रसिद्धि मिली। बच्चे-बच्चे के मुख पर श्री नथमलजी दीवान का नाम था। शौहरत तो कदम चूम रही थी। सेठ नथमलजी का कटला व सेठ नथमलजी का चौक आज भी आपके नाम से जाने जाते है।

दीवान पद पर रहते हुए भी आपकी धर्म के प्रति गहरी आस्था थी। आप साधु-सन्तो के नियमित रूप से दर्शन का लाभ लेते थे तथा धर्म की दलाली करते थे। ठाकुर, राजपूत एव अन्य जाति के लोगो को मास-मदिरा का त्याग करवाते थे। और उन लोगो को जैन सन्तो के दर्शन करवाते थे।

इस विशाल धरती पर तमाम लोगो के चरित्र ऐसे मिल जायेंगे जिन्होने दूसरो के भले के लिये अपने आपको समर्पित कर रखा है। इस तरह के व्यक्तियो का जीवन चन्दन के वृक्ष की तरह होता है

चरितनायिका के जीवन को नया मोड़ देने वाला बाफना परिवार

[कोटा के बाफना परिवार का सक्षिप्त परिचय]

पूज्येश्वर बडे दादा गुरुदेव ने प्रसिद्ध राजा भोज के वंशजो पवार क्षत्रियो को जैन धर्म मे दीक्षित कर उन्हे सम्यक्त्वधारी बनाया एव ओसवाल जाति मे गौरवशाली बाफना वश की स्थापना की।

इस वश का इतिहास बडा समुज्ज्वल है। सबसे प्राचीन इतिहास जैसलमेर के अमर सागर नामक सरोवर एव उद्यान मे लगे हुए एक शिलालेख से मिलता है जो सेठ हिम्मतरायजी बाफना ने लगाया था।

उनके वश मे देवराज जी बाफना, उनके पुत्र गुमानन्दजी बाफना थे। इनके पाँच पुत्र थे—बहादुरमलजी, सवाईराम जी, मगनीरामजी, जोरावरमलजी और प्रतापचन्द्र जी। सर्वप्रथम सेठ बहादुरमलजी जैसलमेर से कोटा आये और चम्बल तट पर कुनाडी ग्राम मे दुकान करके व्यापार करना आरम्भ किया। थोडे ही दिनो मे व्यापार उन्नति के शिखर पर चढ गया। आपने करोड़ो की सम्पत्ति उपार्जित की। जैसलमेर से अपने लघु भ्राताओ को भी बुला लिया। सब भाइयो ने मिलकर ३५० दुकाने भारतवर्ष के विभिन्न नगरो मे स्थापित की और विदेशो—चीन, जापान आदि मे भी दुकाने खोलकर वहाँ भी व्यापार करने लगे।

पाँचो भाई अलग-अलग होकर व्यापार करने लगे। सुविधा के लिए सेठ बहादुरमलजी ने कोटे मे स्थायी निवास करके वहाँ अपना हैड क्वाटर्स बनाया।

सेठ बहादुरमल जी तत्कालीन गवर्नमेंट की देवली एजेसी के व कई रियासतो के खजाची (ट्रेजरर) थे। आपको कोटा राज्य की ओर से चाँदी की छडी, अडानी, छत्र, म्याना, पालकी, तामझाम, हाथी-घोडा मय सोने के साज के, और कई पट्टे परवाने मिले थे। बूदी से रायमल और टोक राज्य से खुर्री गाँव जागीर मे प्राप्त हुए थे।

आपकी धार्मिक प्रवृत्ति का और देवगुरु के प्रति महान् श्रद्धा का तो इसी से अनुमान लगाया जा सकता है, कि जहाँ-जहाँ दूकानें थी वहाँ-वहाँ मन्दिर देरासर वनाये थे और सारा प्रवन्ध दूकान की ओर से होता था, जो आज भी कई स्थानो पर दृष्टिगोचर हो रहा है। सेठ बहादुरमल जी साहब की भावना श्री शत्रुञ्जय का सघ निकालने की थी जो पूर्ण न हो सकी और उनके स्वर्गवास के बाद सुयोग्य दत्तक पुत्र श्री दानमल जी साहब ने सघ निकालकर अपने स्वर्गीय पिता की अभिलाषा पूर्ण की। श्री बहादुरमल जी का स्वर्गवास वि० स० १८९० मे हो गया।

श्री दानमल जी साहब ने वि० स० १८९१ मे श्री शत्रुजय का विशाल सघ निकाला। इस सघ में वृहत् खरतरगच्छीय श्री मज्जिनमहेन्द्रसूरिजी महाराज आदि १००० साधु-साध्वी एव यति आदि

अनुभव-संस्मरण

एक संस्कृत कवि ने कहा है
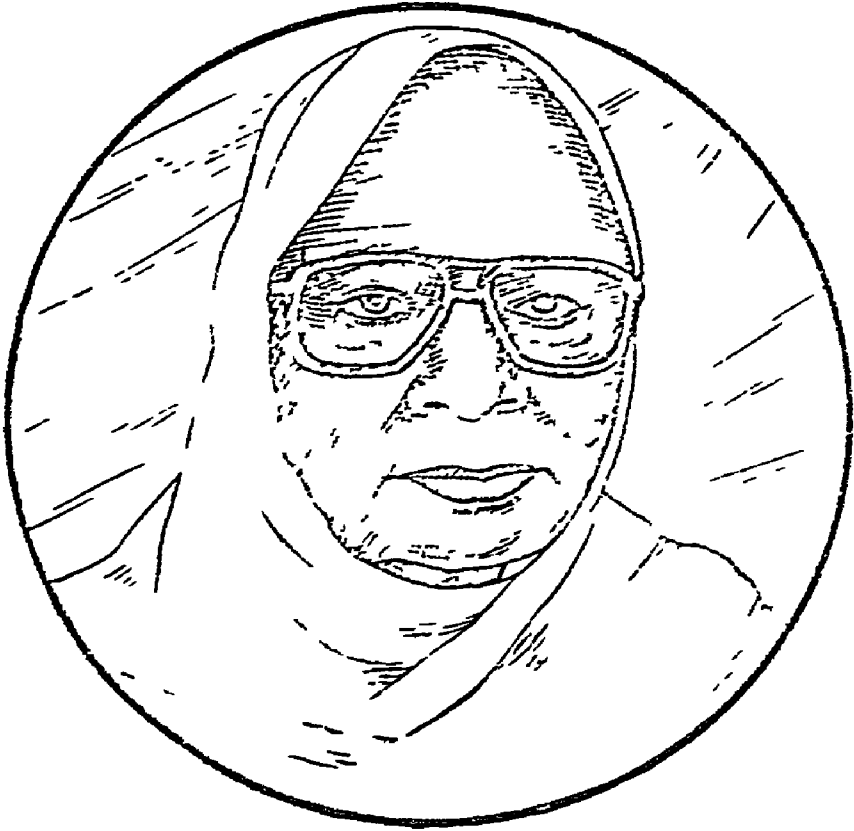
हे पथिक ! कुसुम वन की सुषमा और सौरभ का वर्णन तुम क्यों करते हो ? उसका वर्णन तो वहां फूलों पर सतत मंडराते, रसपान करते हुए भ्रमर स्वयं ही मस्त गुंजारव के मिष निरन्तर करते ही रहते हैं। हां, तुम तो सिर्फ उनकी गुंजन की भाषा सुनो, समझो....

"किसी व्यक्तित्व के विषय मे जानना/समझना हो तो उसके मित्र, परिचित, सम्बन्धी और सेवा मे रहने वाले निकट व्यक्तियों की बात सुनो, वे ही उसके व्यक्तित्व का यथार्थ स्वरूप बतायेंगे और वही उसका विश्वसनीय/यथार्थ परिचय होगा।

पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज के अन्तरंग जीवन का अनुभव की आंखों से देखा यथार्थ और स्मृतियों की स्याही से लिखा सच्चा चित्र यहां प्रस्तुत है। उनके अत्यन्त निकट/आत्मीय भाव से सतत सामीप्य साधने वाले मुनिजन, शिष्याएं तथा श्रावक वर्ग की अपनी शब्दावली मे'

प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज के निकटस्थ

आत्मीय जनो के अनुभव/सस्मरण एव प्रेरक प्रसग

□ साध्वीश्री हेमप्रज्ञाश्रीजी म.

(सुशिष्या स्व० साध्वी विचक्षणश्रीजी म०)

प्रभावशाली व्यक्तित्व अनेक होते है, किन्तु कुछ व्यक्ति अहकार की प्रेरणा से जगत मे अपना प्रभाव स्थापित करते है। और कुछ व्यक्तियो का जीवन ही इतना सरल और सहज होता है कि दुनियाँ उनसे स्वय प्रभावित होती है। सरलता और सहजता जिनके जीवन मे विशेष रूप से प्रतिविम्बित होती है—वे हैं प्रर्वातनी श्री सज्जनश्रीजी म सा ।

जब अन्तरग मे सरलता होती है तब व्यवहार मे सहजता होती है, जब अन्तरग मे अहकार होता है तब व्यवहार मे कृत्रिमता होती है। बहुत सी बार नम्रता का बाना धारण कर अहकार उपस्थित हो जाता है। किन्तु जिनके अन्त करण मे सरलता होती है उनके व्यवहार मे नम्रता और सहजता स्वयमेव होती है।

प्रर्वातनीश्रीजी की विशेषता है कि सर्वोच्च पदासीन होने पर भी उनके प्रत्येक व्यवहार मे सरलता और निरभिमानता झलकती है।

एक बार मध्याह्न का समय था। प्रर्वातनीश्रीजी पाट पर विराजमान थी। मैं एक ग्रन्थ लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुई और निवेदन किया—पूज्याश्री ! यह विषय समझ मे नही आ रहा। उन्होने तुरन्त अपने हाथ की पुस्तक रखकर ग्रन्थ ले लिया और समझाना प्रारम्भ कर दिया। मेरी दृष्टि कभी ग्रन्थ में केन्द्रित हो जाती थी तो कभी उनकी मुखाकृति पर। पाँच मिनिट ही व्यतीत हुए थे कि उन्होने अपनी दृष्टि ग्रन्थ से हटाई और क्षण भर चुप रहकर कहा—अरे ! तुम खडी रहोगी ? बैठ जाओ ! मुझे असमजस मे देखकर उन्होने पुन सहजता से कहा—अच्छा ! नीचे बैठने पर ग्रन्थ नही देख पाओगी तो कोई बात नही इसी पाट पर बैठ जाओ।

मै सकुचित हो उठी। सर्वोच्च पदासीन, साध्वी वर्ग की सचालिका, प्रर्वातनो पदविभूपिता साध्वी श्रीजी एक छोटी सी सामान्य सी साध्वी को अपने पाट पर बैठने के लिए कहे। मैं आश्चर्यमुग्ध थी। उन्होने विषय समझा दिया। मैं ग्रन्थ लेकर अपने स्थान पर जा बैठी। आँखे ग्रन्थ पर टिकी थी—

पूजक समाज को एक महान प्रबुद्ध व्यक्तित्व के रूप में, प्रवर्तिनी पूज्या सज्जन श्री जी म० सा० की है। जिस किसी ने आपका पावन सान्निध्य दर्शन, वदन कर प्राप्त किया वह मृदुस्मित मुस्कान के साथ आत्म कल्याणी उपदेश एव मागलिक से धन्य हो गया।

प्रतिपल जापपरायणा सयमनिष्ठ अप्रमत्ता प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी महाराज की आप परम प्रिय शिष्या रही है। आपके अनुशासन मे शिक्षित-दीक्षित, एव सेवारत विदुषी शिष्यावर्ग भी खरतरगच्छ सघ की अनुपम धरोहर के रूप में जिनशासन प्रभावना मे विशाल योगदान दे रही है, यह सर्व विदित ही है।

भारत कोकिला समन्वय-साधिका समताधारी स्व० प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्री जी म० सा० ने आपकी विशाल प्रतिभा को आँकते हुए आपको "अध्यात्म रस निमग्ना" पद से तो अलकृत किया ही था। किन्तु आपको प्रवर्तिनी पद देने की भी अपने पत्रो मे भावना व्यक्त की थी। दिल्ली मे मैने सन् १९८० में अनुयोगाचार्य पूज्य श्री कान्तिसागर जी म० सा० को स्व० प्रवर्तिनी जी महाराज की पत्रावली वताई तथा आपको प्रवर्तिनी पद देकर उक्त भावना को मूर्त्तरूप देने की विनती की, आपने उसी समय मुझे आश्वस्त किया कि ठीक है, यह होना श्रेष्ठ रहेगा। अखिल भारतीय श्वेताम्बर जैन खरतरगच्छ महासघ के प्रयत्नो से सन् १९८२ मे पूज्यवर के आचार्य पद विभूषित होने के पश्चात् जयपुर में पुन: महासघ द्वारा चर्चा की गई तथा पूज्या सज्जन श्रीजी म सा को प्रवर्तिनी पद देने का मुहूर्त्त शीघ्र निकालने का निर्णय लिया गया। श्री खरतरगच्छ श्रीसघ जोधपुर की इस महान् कार्य मे अत्यधिक रुचि थी, अत मिति मिगसर वदी ६ सम्वत् २०३९ को पूज्य आचार्य श्री १००१ श्री कान्तिसागर सूरीश्वर जी म सा की पावन निश्रा मे आपको प्रवर्तिनी पद से जोधपुर में समारोहपूर्वक अलकृत किया गया।

आप जैन दर्शन की मर्मज्ञ होने के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र मे भी अपना वर्चस्व बनाये हुए है। सन् १९८२ मे चातुर्मास मे जब पर्युषण पर्वाराधना को लेकर खरतरगच्छ सघ विषम परिस्थिति मे पड गया था उस समय महासघ के अध्यक्ष श्री जवाहरलाल जी सा० राक्यान, महामत्री श्री दौलतसिंह जी सा० जैन एव राजस्थान क्षेत्र उपाध्यक्ष (लेखक) के साथ आचार्य भगवन्त श्री कान्तिसागर सूरीश्वर जी म० सा० के पास जोधपुर विनती करने गये कि इस प्रकरण को सुलझाने का प्रयत्न किया जावे। आचार्यश्री ने उसी समय श्री केशरियानाथ जी के मदिर के पास उपाश्रय से पूज्या श्री सज्जन श्री जी म० सा० को बुलाया तथा आपसे गूढ विचार विमर्श करके समस्या का समाधानसूचक हल निकाला। आपके आदेशानुसार अध्यक्ष महोदय आचार्य श्री उदयसागर सूरीश्वर जी म० सा० के पास स्वीकृति हेतु पधारे, इस सर्वमान्य निर्णय ने समस्त खरतरगच्छ को सुसगठित होकर एव एकता बनाये रखकर पर्युषण पर्व मनाने का सुयोग प्रदान किया। अत अखिल भारतीय खरतरगच्छ महासघ ऐसी महान् विदुषी साध्वीजी का सदैव ऋणी रहेगा।

अजमेर सघ को १९८० मे आपश्री का चातुर्मास कराने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अजमेर चातुर्मास के सुअवसर पर ही परम पूज्य बालब्रह्मचारी आर्या श्री सम्यग्दर्शना श्री जी म सा ने मासखमण की दीर्घ तपस्या छोटी उम्र मे सम्पूर्ण की। इस महान् तपस्या के उपलक्ष मे अठाई महोत्सव कराने का लाभ श्री जैन श्वेताम्बर श्री सघ (पजीकृत) अजमेर ने लिया। तथा पूज्या महाराज श्री सज्जन श्रीजी म० सा० की पावन निश्रा मे समारोह व शान्ति स्नात्र पूजन आदि सुसम्पन्न हुए।

अजमेर खरतरगच्छ श्री सघ भी आपका महान उपकार कभी नही भूल सकता है। अप्रेल १९८१ में यहाँ के इतिहास मे सर्वप्रथम भागवती दीक्षा हुई। आपके ही स्नेहपूर्ण शिक्षण, प्रशिक्षण एव मातृवत् स्नेह ने श्री सघवी मानमलजी सुराणा की आत्मजा कुमारी मन्जु सुराणा बी ए को वैराग्य भावना से अभिभूत कर दिया तथा परम पूज्य शासन प्रभावक मुनिराज १०८ श्री कैलाशसागर जी म सा की पावन निश्रा मे पूज्य विजयेन्द्र श्री जी म० सा० आदि की उपस्थित मे विशाल समारोह (दौलत-बाग) मे आयोजित कराके कुमारी मन्जु सुराणा को भागवती दीक्षा आपके द्वारा प्रदान की गई, तथा आर्या मुदितप्रज्ञा श्रीजी नामकरण किया गया। उपरोक्त आयोजन श्री जैन श्वेताम्बर श्री सघ (पजीकृत) अजमेर के तत्वाधान मे श्री मानमलजी सुराणा के सहयोग से सुसम्पन्न हुआ।

अजमेर सघ का परम सौभाग्य रहा कि इस वर्ष दूरदर्शी घोर तपस्विनी पूज्य श्री शशिप्रभा श्री म सा के दो वर्ष के वर्षीतप के पारणे का सुअवसर प्राप्त हुआ।

इसी वर्ष आप उच्च रक्तचाप से ग्रस्त हो गई तथा व्याख्यान मे ही आपकी वाणी पर हल्का पक्षाघात भी हुआ जिससे एकदम चिन्ता व्याप्त हो गयी और भागदौड मच गई, जयपुर से वैद्यराज सुशीलकुमार जी को लेकर श्रद्धेय श्री राजरूप जी सा टाँक पधारे और आपका निदान करके उचित पथ्य एव औषधोपचार निर्देश दिया। परम पूज्य प्रत्यक्ष प्रभाविक दादा गुरुदेव की असीम अनुकम्पा से आपने शनै शनै स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया तथा जोधपुर की ओर प्रस्थान किया।

इस प्रथम आघात के समय व सन् १९८८ के जयपुर मे हुए दीर्घ रक्तस्राव की भयकर त्रपसदी से जब सारा जयपुर श्री सघ व अजमेर श्री सघ चिन्ता मे डूब गया था तब आपने असीम धैर्य व साहस से जब पीडा को झेलते हुए डाक्टरो के खून चढाने के तीव्र आग्रह को अपने स्पष्ट रूप से मना कर दिया और दैव के भरोसे निमग्न रही। शासन देव की कृपा से आपने यह भीषण रोगावस्था भी सकुशल पार की और अभी भी इस वृद्ध अवस्था मे भी आप सतत् लेखन-पाठन-धर्मक्रिया आदि से शिष्य परिवार को अनुशासित करती रहती हैं। आप अभी "देवचन्द्र बालावबोध" ग्रन्थ का विशद लेखन कार्य सम्पन्न कर चुकी हैं।

अपने दर्शनो को आये भक्त परिवारो को आप मागलिक व धर्म-देशना से दिनभर विराजे रहकर, बिना आराम किए, लाभान्वित करती रहती है तथा अपनी गुरुवर्या पूज्य प्रवर्तिनी म० सा० स्व श्री ज्ञान श्री जी म० सा० के बताये समन्वय प्रेम, समता के उपदेशो की जन-जन पर निरन्तर वर्षा करती रहती हैं।

अजमेर खरतरगच्छ श्री सघ आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए शासन देव से प्रार्थना करता है कि ऐसे पूज्य भव्यात्मा को स्वस्थ एव दीर्घायु करे ताकि वे अपनी प्रतिभा से जैनधर्म का ध्वज उच्च शिखर पर पहुँचावें।

☐ श्री अरुणकुमार जैन शास्त्री, व्याकरणाचार्य

जहाँ साधु-महात्माओ का सग है, वह स्थान ही साक्षात तीर्थ होता है। जयपुर मे दादाबाडी भी एक ऐसा ही जीवन्त तीर्थ है। इस सत्सग की सूत्रधात्री, आधारस्तम्भ प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज हैं। उनकी सौम्यमूर्ति दर्शनीय है, उनका आचरण ग्रहणीय है, उनके हाथ मे प्रतिसमय पुस्तक दिखती है, व्यर्थ के विकल्पनाओ मे स्वय को उलझाती नही, निरन्तर पठन-पाठन ही उनका कार्य रहा है।

पू प्रवर्तिनीजी म का दादागुरुदेव के प्रति समपर्ण

पू गुरुदेव आचार्य श्री जिनकान्तिसागरसूरीश्वर जी म सा से निर्देश ग्रहण कर रहे
पू प्रवर्तिनी जी एव शिष्या मण्डल (जोधपुर चातुर्मास वि सं 2039)

पू मुनिश्री मणिप्रभसागर जी म सा से द्रव्यानुयोग पर चर्चा कर रही पूज्य प्रवर्त्तिनी जी म

लूनिया परिवार के साथ प्रवर्तिनी श्रीजी

अजमेर खरतरगच्छ श्री सघ भी आपका महान उपकार कभी नही भूल सकता है। अप्रेल १९८१ मे यहाँ के इतिहास मे सर्वप्रथम भागवती दीक्षा हुई। आपके ही स्नेहपूर्ण शिक्षण, प्रशिक्षण एव मातृवत् स्नेह ने श्री सघवी मानमलजी सुराणा की आत्मजा कुमारी मन्जु सुराणा बी ए. को वैराग्य भावना से अभिभूत कर दिया तथा परम पूज्य शासन प्रभावक मुनिराज १०८ श्री कैलाशसागर जी म सा की पावन निश्रा मे पूज्य विजयेन्द्र श्री जी म० सा० आदि की उपस्थित मे विशाल समारोह (दौलत-बाग) मे आयोजित कराके कुमारी मन्जु सुराणा को भागवती दीक्षा आपके द्वारा प्रदान की गई, तथा आर्या मुदितप्रज्ञा श्रीजी नामकरण किया गया। उपरोक्त आयोजन श्री जैन श्वेताम्बर श्री सघ (पजीकृत) अजमेर के तत्वाधान मे श्री मानमलजी सुराणा के सहयोग से सुसम्पन्न हुआ।

अजमेर सघ का परम सौभाग्य रहा कि इस वर्ष दूरदर्शी घोर तपस्विनी पूज्य श्री शशिप्रभा श्री म सा के दो वर्ष के वर्षीतप के पारणे का सुअवसर प्राप्त हुआ।

इसी वर्ष आप उच्च रक्तचाप से ग्रस्त हो गई तथा व्याख्यान मे ही आपकी वाणी पर हल्का पक्षाघात भी हुआ जिससे एकदम चिन्ता व्याप्त हो गयी और भागदौड मच गई, जयपुर से वैद्यराज सुशीलकुमार जी को लेकर श्रद्धेय श्री राजरूप जी सा टाँक पधारे और आपका निदान कराके उचित पथ्य एव औषधोपचार निर्देश दिया। परम पूज्य प्रत्यक्ष प्रभाविक दादा गुरुदेव की असीम अनुकम्पा से आपने शनै शनै स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया तथा जोधपुर की ओर प्रस्थान किया।

इस प्रथम आघात के समय व सन् १९८८ के जयपुर मे हुए दीर्घ रक्तस्राव की भयकर त्रासदी से जब सारा जयपुर श्री सघ व अजमेर श्री सघ चिन्ता मे डूब गया था तब आपने असीम धैर्य व साहस से जब पीड़ा को झेलते हुए डाक्टरो के खून चढाने के तीव्र आग्रह को अपने स्पष्ट रूप से मना कर दिया और दैव के भरोसे निमग्न रही। शासन देव की कृपा से आपने यह भीषण रोगावस्था भी सकुशल पार की और अभी भी इस वृद्ध अवस्था मे भी आप सतत् लेखन-पाठन-धर्मक्रिया आदि से शिष्य परिवार को अनुशासित करती रहती है। आप अभी "देवचन्द्र बालावबोध" ग्रन्थ का विशद लेखन कार्य सम्पन्न कर चुकी हैं।

अपने दर्शनो को आये भक्त परिवारो को आप मागलिक व धर्म-देशना से दिनभर विराजे रहकर, बिना आराम किए, लाभान्वित करती रहती है तथा अपनी गुरुवर्या पूज्य प्रवर्तिनी म० सा० स्व श्री ज्ञान श्री जी म० सा० के बताये समन्वय प्रेम, समता के उपदेशो की जन-जन पर निरन्तर वर्षा करती रहती हैं।

अजमेर खरतरगच्छ श्री सघ आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए शासन देव से प्रार्थना करता है कि ऐसे पूज्य भव्यात्मा को स्वस्थ एव दीर्घायु करें ताकि वे अपनी प्रतिभा से जैनधर्म का ध्वज उच्च शिखर पर पहुँचावें।

☐ श्री अरुणकुमार जैन शास्त्री, व्याकरणाचार्य

जहाँ साधु-महात्माओ का सग है, वह स्थान ही साक्षात तीर्थ होता है। जयपुर मे दादाबाडी भी एक ऐसा ही जीवन्त तीर्थ है। इस सत्सग की सूत्रधात्री, आधारस्तम्भ प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज हैं। उनकी सौम्यमूर्ति दर्शनीय है, उनका आचरण ग्रहणीय है, उनके हाथ मे प्रतिसमय पुस्तक दिखती है, व्यर्थ के विकल्पनाओ मे स्वय को उलझाती नही, निरन्तर पठन-पाठन ही उनका कार्य रहा है।

पू गुरुदेव आचार्य श्री जिनकान्तिसागरसूरीश्वर जी म सा से निर्देश ग्रहण कर रहे पू प्रवर्तिनी जी एव शिष्या मण्डल (जोधपुर चातुर्मास वि स 2039)
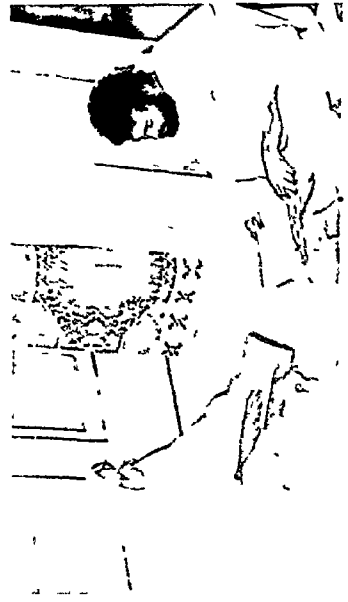
पू प्रवर्तिनीजी म का दादागुरुदेव के प्रति समपर्ण

पू मुनिश्री मणिप्रभसागर जी म सा से द्रव्यानुयोग पर चर्चा कर रही पूज्य प्रवर्त्तिनी जी म
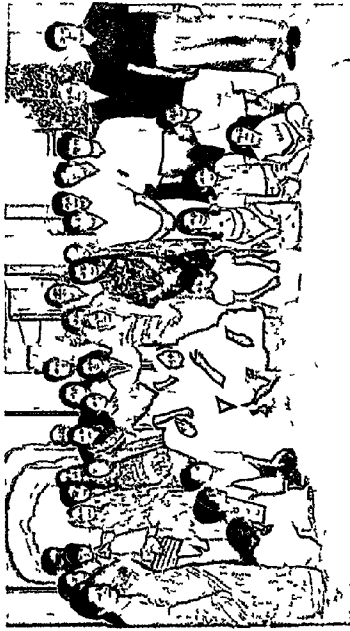
लूनिया परिवार के साथ प्रवर्तिनी श्रीजी
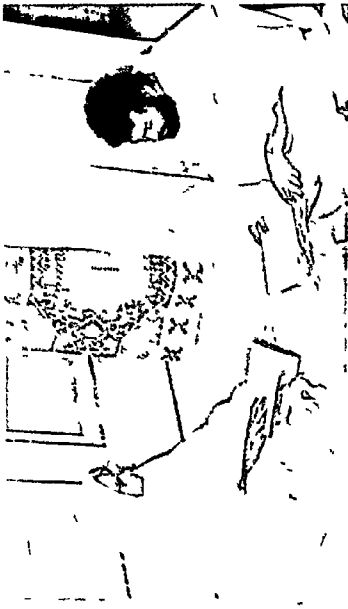
जीवन के क्षणिक राग द्वेषो से बहुत दूर उनका सरल, सौम्य जीवन है। उनका दर्शन ही सुखद है, तो उन जैसा जीवन सुखद क्यो न होगा ?

एक दिन की बात है मै वहाँ सौम्यगुणाश्री महाराज तथा शुभदर्शनाश्री महाराज को न्याय का विषय समझा रहा था। जहाँ मै बैठा था, वहाँ धूप आ रही थी, वह धूप साधारणतया तापदायक थी ही, पर विषय समझाते समय उस ओर ध्यान जाता नही था।

उसी समय महाराज सा० किसी कारणवश बाहर आयी, उन्होने मुझे देखा, तो तुरन्त आकर कहा "मास्टरजी को धूप मे क्यो बैठने दिया ? धूप तेज है, छाया मे आसन बिछाओ।"

जीवन मे कई घटनाये छोटी-छोटी होती हैं, पर उनसे हृदय का अवबोध होता है।

मुझे महाराज सा० के हृदय की विशालता व करुणा का ज्ञान उस छोटी सी घटना से हुआ।

उस घटना से हृदय आज भी उनके समक्ष झुकता है।

हमारे हृदय का खुद-ब-खुद उनके सामने नम्र होना ही उनके माहात्म्य की महिमा है।

"महात्माओ का हृदय विशाल होता है" इस नीतिवाक्य का साक्षात् जीवन्त उदाहरण महाराज सा० स्वय है।

ऐसे महात्मा सभी को लाभान्वित करे इस भावना के साथ उनके दीर्घायुषी जीवन की कामना करता हू। □

□ व्यक्तित्व के विविध उज्ज्वल पक्ष

□ *कुमारी बेला भण्डारी*

भारतीय धरा पर ऐसी अनेक महान् विभूतियाँ हुई है, जिन्होने अपने ज्ञान, त्याग एव तपोमय जीवन से देश के नाम को सदैव आलोकित किया है। ऐसी ही चन्द महान विभूतियो की पंक्ति मे आगम निष्णात, अज्ञान-तिमिर तरणि, आशु कवयित्री, शान्तिप्रिय, त्यागी-तपस्वी, तत्व-दृष्टा, महाप्रतिभा सम्पन्न सज्जनश्रीजी महाराज साहब का नाम नि सन्देह अकित किया जायेगा। इन्होने अपने त्याग, तप, ज्ञान एव चारित्र बल से जैन-जैनेतर समाज का अवर्णनीय उपकार किया है। इन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन बौद्धिक एव आध्यात्मिक उत्थान के प्रयत्न को अर्पित कर दिया।

बौद्धिक पक्ष—

इनमे बौद्धिक सूझबूझ के साथ मस्तिष्क का सार्थकतापूर्ण उपयोग करने की अनुपम विशेपता है। यही असाधारण विशेषता इन्हे अन्य-अन्य विभूतियो से भिन्न श्रेणी मे रखती है। इनमे किसी भी विषय की दार्शनिक व्याख्या करने के तौर तरीके अन्य पद्धतियो से भिन्न है।

आध्यात्मिक पक्ष—

इनके व्यक्तित्व की आध्यात्मिक गहनता का सही ढग से अन्दाज लगाना अत्यन्त कठिन है। यह निर्विवाद सत्य है कि इन्होने आध्यात्मिक क्षेत्र मे एक विशिष्ट स्थान बनाया है। इनकी आध्यात्मिक शक्ति अन्य चमत्कारिक शक्तियो मे भिन्न है। ये सदैव चमत्कारो से दूर रही हैं। वास्तव मे लोग आध्यात्मिक चमत्कार से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। वे गुरुतर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होने मे असमर्थ है। किन्तु उनका आध्यात्मिक जीवन बहुजन हिताय एव बहुजन सुखाय है।

प्रवचन पक्ष —

इनके विचार गूढ एव गहरे अवश्य है परन्तु वे सग्न एव सुग्राह्य भी है। इनके प्रवचन सार्वभौमिक शास्त्रीय सत्यो पर आधारित, मधुर एव सारगर्भित है जो श्रोताओं के मन, मस्तिष्क एव हृदय पर अमिट छाप छोड जाते हैं। इनकी वाणी, उनके बोल एव उनके कथन मे आध्यात्मिक गहराइयो व अनुभूतियो का अद्भुत सगम है। इन्होने अनेक कृतियो का सृजन किया है जिनमे विशेष रूप से उल्लेखनीय है पूज्य जीवन ज्योति, श्रमण सर्वस्व, श्री कल्पसूत्र की आधुनिक हिन्दी व्याख्या, द्वादश पर्व व्याख्या हिन्दी व्याख्या, अध्यात्मबोध अपर नाम देशनासार सस्कृत का हिन्दी अनुवाद, चैत्यवन्दन कुलिक आदि। इसके अतिरिक्त इन्होने अनेक भजनावलियाँ भी बनाई हैं जो लोगो के भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को शान्तिमय एव सुखदायी बना रही हैं। विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य हैं—कुसमाजली, पुष्पाञ्जली, गीताञ्जली तथा सज्जन विनोद।

एकाग्र भाव पक्ष —

एकाग्र भाव पक्ष इनके जीवन का एक अनूठा एव अद्वितीय पक्ष है। इनके अध्ययन पठन, पाठन, मनन एव ध्यान मे एकाग्रता की पराकाष्ठा है। इनकी पढाने की शक्ति असीम है। इनके पढाने के तरीके मे नवीनता के साथ तारतम्यता भी जबरदस्त है। यही नही आप ज्ञानपिपासु के मन और मस्तिष्क पर एक विशिष्ट छाप छोड जाती है। मूल मे तो इनका जीवन ही एक निश्चल प्रवाहमान धारा के अनुरूप है। ये प्रत्येक जिज्ञासु की प्यास बुझाने का समान अवसर देती हैं। जिज्ञासु अपनी क्षमता के अनुसार अपना पात्र भरकर ले जाते हैं।

सेवाभाव पक्ष —

इनके व्यक्तित्व का सेवा भाव पक्ष भी अति प्रबल है। ये दलित एव गिरे हुए लोगो को उठाने का प्रयास करती है। ये साधु-सन्तो की सेवा मे भी सदैव तत्पर रहती है। प्रवर्तिनी महोदया ज्ञानश्रीजी महाराज साहब की सेवा मे २२ वर्षावास जयपुर मे करना यह इनके सेवा भाव पक्ष का एक ज्वलन्त उदाहरण है। ये किसी भी जीव के दु ख से द्रवित ही नही होती अपितु हर सम्भव उसके दु ख को दूर करने का प्रयास करती है।

तप रुचि —

इन्होने अपने जीवन मे "तपस्या" को भी एक विशिष्ट स्थान दिया है। इनका यह अटूट विश्वास है कि तपस्या हमारे स्वस्थ शरीर, मन एव आध्यात्मिक शक्ति की सजीवनी बूटी है और तपस्या के द्वारा ही बँधे हुए कर्मो को आन्दोलित और प्रक्षालित किया जा सकता है। इन्होने अब तक के जीवन मे उपधान, नवपद ओली, विंशतिस्थानक तप, अट्ठाई, मासक्षमण तप तथा कई तेले चोले किये हैं और अब भी आप कोई न कोई तप करती रहती है।

इनके उपर्युक्त वर्णित विलक्षण गुणो और असाधारण विशेषताओ से प्रभावित होकर कई बहिनो ने ससार के दावानल से मुख मोडकर इनके पावन चरणो मे स्थान पा लिया है, और अनेक बहिनो मे इनके पावन चरणो मे स्थान पाने के लिये आध्यात्मिक रूप से चाह है। जिस प्रकार एक मूर्तिकार अपनी कल्पना, बुद्धि, शक्ति से पत्थर को मानो सजीव मूर्ति का एक रूप दे देता है, उसी प्रकार इन्होने भी शिष्याओ के जीवन को बदल दिया जिसके परिणामस्वरूप वे इनकी आध्यात्मिक ज्योति को देश के कोने-कोने मे फैला रही है।

आज के आणविक युग मे सम्पूर्ण मानव जाति सहार के कगार पर खडी है। एक ओर विश्व-शक्तियाँ आपसी टकराव के कारण मानव जाति के अस्तित्व को समाप्त करने मे लगी हुई है तो दूसरी ओर साम्प्रदायिकता की भावना, जातिवाद की भावना मानव जाति को जकड रही है।

यदि हमे ससार के ऐसे सन्ताप और नैराश्य के वातावरण से अपने आपको बचाना है तो "गुरुवर्या सज्जनश्रीजी महाराज साहब" के बहुमुखी व्यक्तित्व से अनुकरणीय बाते ग्रहण कर उन पर चलना होगा ताकि हम सभी अपने जीवन को मगलमय, आनन्दमय एव शातिमय बना सके।

अनुकरणीय बातें —

१ धैर्य, सहनशीलता, सयम एव अहिंसात्मक भाव पर मनन एव आचरण करना।
२ साम्प्रदायिकता की भावना का त्याग कर विशाल दृष्टिकोण अपनाना, जिससे समाज एव राष्ट्र को बिखराव की स्थिति मे बचाया जा सके।
३ असहाय, दु खी और कमजोर वर्ग के लोगो के उत्थान मे सहायक बनना।
४ स्वाध्याय, चिन्तन एव मनन के लिए कुछ समय का प्रावधान करना।
५ प्रसन्न चित्त रहने का नियमित प्रयास करना।
६ अपशब्दो के प्रयोग पर नियन्त्रण करने का प्रयास करना।
७ क्रोध, ईर्ष्या, एव अहभाव का त्याग करने की आदत डालने का प्रयास करना।
८ पर-निंदा के वाद-विवाद से दूर रहने का प्रयास करना।
९ जीवन को प्रत्येक क्रिया सयम से करने का प्रयास करना।
१० विनय, विवेक एव क्षमा को जीवन की आधारशिला बनाने का प्रयास करना।

हम "गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब" के द्वारा बताये गये नियमो एव आदर्शों पर किंचित् मात्र भी आचरण करें तो निश्चित रूप से अपना इहलोक और परलोक उज्ज्वल बना सकते है। □

□ श्रीमती गुलाबसुन्दरी जी बाफना

परमादरणीया पूज्या प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब के ८१वें वर्ष प्रवेश के प्रसग पर मैं पूज्य गुरुवर्याश्री का हृदय से अभिनन्दन करती हूँ।

मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे इनका सम्पर्क मिला, क्योंकि गृहस्थ जीवन के सम्बन्ध मे मुझे उनकी भुआसास बनने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रथम सम्पर्क से आज तक का अनुभव है कि उनकी प्रकृति मे कभी विकृति नहीं देखी। जो गुण मैंने देखे वे गुण उनके जीवन के सहज स्वाभाविक है। जीवन मे कभी कृत्रिमता नहीं देखी। कई लोगो को देखती हूँ तो लगता है कि उनके जीवन मे दोहरापन है, कथनी-करनी मे अन्तर है, अन्दर-बाहर भेद है, जीवन और जिह्वा मे फर्क है। किन्तु मैंने पू. सज्जनश्रीजी म सा. को गृहस्थ जीवन भी देखा व साधक जीवन मे भी देख रही हूँ किन्तु उनके जीवन मे कभी दुराव, छुपाव नहीं देखा।

जितनी बार सान्निध्य प्राप्त हुआ, [illegible] भी दर्शन किये तब ही पू. गुरुवर्या श्री के जीवन मे आत्मा के सहज स्वाभाविक गुणों के दर्शन किये। पूज्या श्री के दर्शन से [illegible]

है कि जीवन हो तो ऐसा हो, जो कि सबके बीच रहते भी सबसे न्यारे, सबसे परे, अनासक्त योगिनी बन सदा स्वय मे मग्न, लक्ष्य साधना के लिए कटिबद्ध, अध्ययन अध्यापन मे तल्लीन रहती है।

इनके प्रति मेरी श्रद्धा समान बनी रही। कभी भी श्रद्धा मे रुकावट नहीं आयी। जिसका मुख्य कारण यही है कि इनके जीवन मे बनावट नही है, सजावट नहीं है, किसी के प्रति खेद नही व भेद नही है, रोष नही है, आक्रोश नही है, छलरहित हैं, मलरहित है, कभी भी उनमे माया कपट, मान उत्तेजना नही देखी।

गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित भाव था, हृदय के अगाध आस्था थी, गुरुआज्ञा मे गुरुसेवा मे सदा तत्पर रहती थी। गुरु शिष्य के व्यवहार को देखकर कई साध्वीजी महाराज व पू उपयोगश्रीजी महाराज साहब कहा करती थी कि शिष्या बने तो सज्जनश्रीजी जैसी। जिससे ऐसी शिष्या को पाकर गुरु परम शान्ति का अनुभव करें अन्यथा शिष्या न बने व पू प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्रीजी म सा तो अपनी शिष्याओ को कई बार सम्बोधन करती थी कि बडो के प्रति सदा आदर का भाव रखती हैं तो छोटो के प्रति भी कम आदर नही है। सभी के साथ आत्मीयता का व्यवहार करती है। सभी के प्रति वात्सल्य उमडता है। करुणा की साक्षात् देवी है। दीन-दुखी के प्रति कभी हीनता के भाव नहीं देखे, उन्हें सहानुभूति के साथ गले लगाती है। पठित से अधिक अपठित को महत्त्व देती है। अमीर से अधिक गरीब को स्थान देती है।

सागर की गहराई का थाह पाना मुश्किल है उसी तरह पू गुरुवर्या श्री के गुणो के अथाह सागर को शब्दो मे बाँधना मेरे लिए दुष्कर है। गुरुदेव से हार्दिक प्रार्थना करती हूँ कि पू गुरुवर्या श्री दीर्घायु बन शासनोन्नति करती हुई हम जैसे ससार मे भ्रमित, दोषो से ग्रसित प्राणियो को पथ प्रदर्शन कर शाश्वत सुख को प्राप्त करे। □

□ श्रीबुद्धिसिंह, श्रीपवित्रकुमार, श्रीअशोककुमार, बाफना

पूज्या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज साहब से मेरा परिचय मेरे शैशवकाल से ही है। मेरे मामा श्रीसोभागमलजी साहब गोलेच्छा के ज्येष्ठ पुत्र श्रीकल्याणमल साहब गोलेच्छा से आपका विवाह हुआ था और आप सदैव अपनी बुआ के यानि मेरे घर आती रही और मेरे बाल्यकाल मे इनका मुझे भरपूर स्नेह मिला जो मेरी स्नेहमयी भाभज रही जिसकी स्मृतियाँ आज भी मेरे हृदय मे अकित है।

गृहस्थ जीवन मे भी आप सदैव गम्भीर और सौम्य थी। मैंने एक क्षण भी आपको उच्छृखल होते नही देखा और सदैव वाणी पर सयम बनाये रखा। मेरी आयु ज्यो-ज्यो बढती गई और जब भी आपसे मिलता आपकी शालीनता से उत्तरोत्तर प्रभावित होता रहा। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि आपके गृहस्थ जीवन मे ही आप मे साधुत्व के लक्षण प्रकट होते रहे है।

आपका जीवन सदैव निस्पृह और मर्यादित रहा है। दीक्षा तो ऐसे मर्यादित जीवन की अनिवार्यता है। दीक्षा के पश्चात् भी आप सर्वथा प्रचार और प्रसार मे दूर रही और मान और प्रतिष्ठा के अह को आपने कभी भी अपने व्यक्तित्व को स्पर्श नही करने दिया।

एक बात विशेष रूप से अभिव्यक्त करना चाहूगा कि आप तेरापथ परिवार मे जन्मी, स्थानकवासी परिवार मे आपका विवाह हुआ और मूर्तिपूजक सम्प्रदाय मे आपने दीक्षा ग्रहण की। अत आपमे सम्पूर्ण श्वेताम्बर जैन समाज का त्रिवेणी सगम है और ऐसी उदारता है जिसमे वैचारिक भेद कभी उत्पन्न ही नही होते।

यश और कीर्ति की भावना से परे साधना मे लीन महाराज साहब सज्जनश्रीजी का जीवन दीर्घायु हो और सम्पूर्ण जैन समाज को निरन्तर अपने आदर्श से प्रभावित करती रहे, ऐसी मेरी मंगल कामना है। ☐

☐ श्री थानमल आंचलिया, गंगाशहर (बीकानेर)

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि परम विदुषी गुरुवर्या सज्जनश्रीजी महाराज की ८१वी वर्षगाँठ के पावन अवसर पर उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किया जा रहा है। महाराज सा० का जन्म लूनिया परिवार मे हुआ और हमारे परिवार को यह परम सौभाग्य मिला है कि—लूनिया परिवार के साथ पिछली तीन पीढियो से प्रगाढ सम्बन्ध रहे हैं। मेरे पिताजी श्रीहीरालालजी आंचलिया थली प्रदेश के जाने-माने तत्वज्ञ विद्वान थे। उनका सम्बन्ध जयपुर नगर के श्रीमान गुलाबचन्दजी लूनिया के साथ इसी आधार पर वना था कि श्रीमान लूनियाजी भी जैन दर्शन के जाने-माने तत्वज्ञ श्रावक रहे हैं। इन दोनो ही भक्त श्रावको ने जैन तत्वो की अनेक पुस्तके प्रकाशित करायी और अधिक से अधिक लोगो के हाथो मे बिना कोई मूल्य लिए पहुँचाईं।

तीन पीढी पहले का ये सम्बन्ध निरन्तर चलता गया और मेरी पुत्री सौ० रत्ना का विवाह श्रीमान केसरीचन्दजी लूनिया के सुपुत्र श्रीपुखराजजी लूनिया के साथ जव हुआ तो दोनो परिवारो मे अटूट सम्बन्ध स्थापित हो गये। इस प्रकार दोनो परिवारो ने तेरापंथ सघ के पाँचवे आचार्य पूजनीय मघवागणी से लेकर वर्तमान आचार्य श्री तुलसी गणी तक निरन्तर सेवा का लाभ उठाया है तथा निरन्तर लाभ ले रहे है।

पूजनीया सज्जनश्रीजी महाराज सा अत्यन्त सरल हृदया एव दयालु प्रकृति की है। आपके दर्शन मात्र से मन मे सात्विक प्रेरणा जाग उठती है। यह एक शुभ सयोग है कि आपश्री ने जैन शासन के तेरापथ सम्प्रदाय मे जन्म लिया। और आपका विवाह स्थानकवासी सम्प्रदाय के गोलेछा परिवार में हुआ किन्तु तत्वो की खोज करते-करते आपने अपना वैराग्य जीवन खरतरगच्छ संघ की आर्यारत्न बनकर प्रारम्भ किया। जीवन के महत्वपूर्ण वर्षो मे आपने मात्र अध्यात्म की ओर ही ध्यान बनाए रखा। किसी साम्प्रदायिक सकीर्णता को कभी प्रोत्साहन नही दिया। इस प्रकार जैन शासन की तीन पवित्र धाराओ का संगम आपश्री के पास हुआ है। जैन समाज का सौभाग्य है कि वह आपका अभिनन्दन कर रहा है वस्तुत आपका अभिनन्दन त्रिवेणी सगम की उपासना है, जैन एकता का अभिनन्दन है और जैन सस्कृति के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अवसर है। आपश्री के चरणो मे मेरा कोटि-कोटि अभिनन्दन। ☐

☐ श्रीमती रत्ना लूणिया

हम अभिनन्दन कर रहे है—पुण्यशीला, करुणामूर्ति, आगम ज्योति, सयम, साधना और दर्शन की प्रतिमा, गुरुवर्या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज का। जिस प्रकार आने वाली घटनाओ का सकेत बहुत पहले ही समय हमें दे देता है, उसी प्रकार महाराज साहव के दिव्य जीवन का आलोक उनके जन्म के साथ ही फैलने लगा था। समय के उन सकेतो को उस समय सम्भवत कोई पकड़ नही पाया हो, किन्तु जव होनहार प्रतिभा के कोमल पत्रो की स्निग्धता का स्पर्श माता-पिता की दृष्टि ने किया तो वे समझ गये कि उनकी लाडली वेटी कोई असाधारण प्रतिभा है।

वात अस्सी वरस पहले की है। जयपुर नगर के स्वनामधन्य सेठ श्री गुलावचन्दजी लूणिया

एव मातुश्री महताब बाई के आँगन मे पुनीत आत्मा का जन्म हुआ। पिता अत्यन्त ज्ञानवान, धर्मनिष्ठ, तत्वज्ञ, दार्शनिक एव समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे तो माता भी अत्यन्त सरल-सहज, पति की अनुगामिनी थी। दोनो ही बारह व्रतधारी श्रावक-श्राविका थे। माता-पिता की छाया मे पुत्री को लाड-प्यार के साथ-साथ धार्मिक सस्कार भी स्वत ही मिलने लगे। जीवन-निर्माण मे नियमित शिक्षा पिताश्री से मिलती थी। पिताश्री आपको पुत्री न मानकर पुत्र ही मानते थे और अपनी धार्मिक गतिविधियो मे सदा साथ रखते थे। इस प्रकार धर्म के प्रति निष्ठा का बीजारोपण महाराजश्री के हृदय मे बाल्यकाल से ही हो गया था। साध्वियो के व्याख्यान सुनने तथा उपाश्रय मे जाकर नियमित रूप से सामायिक आदि करने की ललक उनमे निरन्तर बनी रहती थी। यहाँ तक कि शाला मे पढते-पढते ज्यो ही थोडा अवकाश मिलता, वे दौडकर पास वाले धर्मस्थान मे चली जाती और साधु-साध्वियो का दर्शन लाभ कर लौट आती।

इधर धार्मिक सस्कार और तत्वो की जानकारी बढती गयी तो उधर सहज ही आपका मन विराग की ओर झुकने लगा। माता-पिता के लिए यह एक चिन्ता का विषय था। एक प्रतिष्ठित एव सम्पन्न परिवार की बेटी ऐश्वर्य को ठुकराने की बात सोचे, यह उन्हे उचित नही लगा, अत उन्होंने छोटी उम्र (१२ वर्ष) मे ही आपका विवाह श्रीमान कल्याणमलजी गोलेछा के साथ कर दिया। किन्तु, उस पारिवारिक जीवन मे आपका मन कहाँ रमने वाला था? जिसे आत्मलक्षी बनना हो उसे सासारिक सुखो के प्रति क्या आकर्षण हो सकता है? वैराग्य हा जिसकी नियति हो उसे ऐश्वर्य के बन्धन कब तक बाँध कर रख सकते हैं? विदुषीवर्या ने तो छोटी सी अवस्था मे ही अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया था, अत घर, परिवार, ससार के सारे वैभव को छोडकर आपने जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ मे जैन भगवती दीक्षा ग्रहण कर ली और गुरुवर्या ज्ञानश्री जी के सान्निध्य मे अपनी सयमसाधना प्रारम्भ कर दी।

महाराज साहब ने अपने ४८ वर्षो के सयमी जीवन मे कठोर साधना, उत्कृष्ट तपश्चर्या, ज्ञान और दर्शन की आराधना, सूत्रो और आगम का पठन-पाठन एव ग्रन्थ-प्रणयन आदि अनेक महान् कार्य सम्पन्न किये हैं। आपकी विलक्षण प्रतिभा एव अद्भुत स्मरण-शक्ति ऐसी थी कि प्रारम्भ के दिनो मे भक्तामर स्तोत्र को थोडे ही समय मे पूर्ण कण्ठस्थ कर आपने अपनी गुरुवर्या को सुना दिया था और उनके हृदय मे परम शिष्या के रूप मे स्थान पा लिया था। सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अँग्रेजी, राजस्थानी, गुजराती आदि अनेक भाषाओ पर महाराज साहब का समान अधिकार है। आगम, द्रव्यानुयोग आदि गहन तात्विक विषयो की आप पूर्ण ज्ञाता हैं। तप, साधना एव दर्शन के गूढ गम्भीर विषयो मे रमण करती हुई आप मधुर सरस एव काव्यमय व्यक्तित्व की धनी हैं। भावमयी, ममतामयी महाराज साहब का करुणास्रोत और भक्ति-स्रोत सरस कविताओ के रूप मे प्रवाहित होता रहता है।

आपने अनेक भावपूर्ण गीतिकाओ का सृजन किया है। जब स्वय गाती हैं तो भक्ति की अजस्र धारा स्वत ही फूट पडती है। श्रोताओ का मन आत्मविभोर हो भक्ति और सगीत के एक अनोखे ससार मे रमण करने लगता है।

परम विदुषी, आगमज्ञा तथा धर्मसघ के शीर्षस्थ पद पर आसीन गुरुवर्या की सरलता और सहजता देखते ही बनती है। मैंने आपके हृदय की निर्मलता, वाणी की स्पष्टता और व्यवहार की मृदुता के निकट से दर्शन किये हैं। अपनी अनुवर्तिनी शिष्याओ, श्रावक-श्राविकाओ तथा अन्य लोगो के प्रति आपका वात्सल्यपूर्ण एव आत्मीय व्यवहार स्वत ही एक आकर्षण उत्पन्न करता है। अनुशासन मे आप

कठोर है, किन्तु ममत्व और स्नेह की मृदुता भी इतनी है कि आपका अनुशासन सबको सहज ही स्वीकार्य हो जाता है ।

महाराज श्री के सान्निध्य का लाभ मुझे प्राय. मिलता रहता है । ज्ञान-विज्ञान स्वस्थ मनोरजन रोचक वार्ता, आधुनिक प्रगति, राजनैतिक और आर्थिक परिदृश्य आदि सभी विषयो पर आप निर्बाध चर्चा कर सकती है । पुरानी बातें हो, दर्शन की गन्थियाँ हो या फिर अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल-गणना की उलझी पहेलियाँ हो, आप इतने सरल एव रोचक ढग से समझाती है कि बालको तक की समझ मे आ जाता है । उनसे किसी भी विषय का कोई भी प्रश्न किया जाये तत्काल समाधान मिल जाता है ।

प्रवर्तिनी श्रीजी ने मुझे बताया कि वे लगभग ५००० पुस्तके विभिन्न विषयो की पढ चुकी है । पुस्तके पढने, गीतिकाये गाने तथा धार्मिक कार्यों मे पूरी लगन के साथ भाग लेने के गुण आपको अपने पिताश्री से विरासत मे मिले है ।

आपकी सास-मा भी सुदृढ धार्मिक विचारो की थी, उनको भी आप पुस्तके पढ कर सुनाया करती थी ।

अपनी दिनचर्या के विषय मे आपने बताया कि आप एक ही नीद सोती है । तथा प्रात जल्दी उठ जाती है । गहरी नीद नही लेती । अहर्निश ज्ञान-ध्यान की अराधना करती रहती है ।

लूणिया परिवार धन्य है जिसमे आप जैसी पुनीत आत्मा ने जन्म लिया । मेरे लिए भी अत्यन्त गौरव की बात है कि मुझे उसी भाग्यशाली परिवार की बहू होने का सौभाग्य मिला । आर्यारत्न हमारी ससार पक्ष मे भुआ-सा है । मैं बाबा-सा श्रीगुलाबचन्दजी-सा० के दर्शन नही कर पायी किन्तु आपके व्यक्तित्व मे उनकी छवि के दर्शन कर स्वत. ही आत्मगौरव होने लगता है । मैं सोचती हूँ लूणिया परिवार मे मेरे प्रवेश की भूमिका सम्भवतः समय ने बहुत पहले ही बाध दी थी । महाराज साहब सज्जनश्रीजी के लूणिया परिवार का परिचय मुझे अपनी किशोरावस्था मे ही हो गया था । मेरे दादाजी श्रीहीरालालजी आँचलिया और मेरे दादा-श्वसुरजी श्रीगुलाबचन्दजी सा० की बाते मेरे पिताश्री प्राय परिवार मे किया करते थे और मैं दत्तचित्त हो उन्हे सुना करती थी ।

दोनो परिवारो के बीच यह मैत्री मेरे बाबा-सा० हीरालाल जी आचलिया और सेठ श्रीगुलाब चन्दजी लूणिया के बीच बहुत पहले ही हो गयी थी । श्रीमान लूणिया जी जैन तत्वो के जानकार, लेखक कवि और गन्थकार थे तो श्रीमान आचलियाजी तत्वो मे गहरी रुचि रखने वाले, गन्थो को प्रकाशित कर उनको घर-घर मे पहुँचाने वाले धर्मानुरागी श्रावक थे । दोनो भक्त श्रावको की वह मैत्री अनेक दशको तक चलती रही । वे ही धार्मिक स्नेह-सम्बन्ध प्रगाढ मैत्री मे बदल गये और क्रमश तीसरी पीढी मे आकर पारिवारिक सम्बन्ध बन गये ।

इस मैत्री सम्बन्ध के बारे मे तेरापथ धर्म संघ के युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी ने अपने विचार यो प्रगट किये है —

'हीरालालजी प्रथम श्रावक हुए है जिन्होने धार्मिक गन्थो का शुद्धिकरण करवाया, उन्हे छपवाया और धर्म चेतना हेतु निःशुल्क वितरण करवाया । इसी प्रकार तेरापथ सम्प्रदाय मे सेठ श्री गुलाबचन्दजी लूणिया प्रथम श्रावक थे जिन्होने अनेक स्तवन, गीतिकाएँ, भजन, स्तुति एव तात्विक ढाले स्वय लिखी और उन्हे स्वरबद्ध तालबद्ध कर स्वय ही अपने सुमधुर कठ मे गायी तथा अनेक पुस्तके प्रकाशित

की और वितरित की । वे भक्त श्रावक गायक थे । दोनो ही भक्त श्रावको का मैत्री सम्बन्ध अनुकरणीय है । यह एक शुभ सयोग है कि श्रीगुलाबचन्दजी लूणिया के पौत्र पुखराज और श्रीहीरालालजी आचलिया की पौत्री रत्ना का वैवाहिक सम्बन्ध हुआ । मित्रता की अविरल धारा तीसरी पीढी मे आकर भी अबाध-गति से प्रवहमान है ।"

उन दिनो धार्मिक शिक्षा प्राय मौखिक ही हुआ करती थी । धर्मज्ञान की जो पुस्तकें थी उनमे भी अशुद्धियाँ बहुत होती थी । बाबासा को यह कमी बहुत अखरती थी, वे शुद्ध भाषा की पुस्तके प्रकाशित कर उनका प्रचार करने को लालायित रहते थे । क्रमश उन्होंने प्रकाशन कार्य प्रारम्भ कर दिया और इसी सिलसिले मे उनका परिचय जयपुर निवासी सेठ श्रीगुलाबचन्दजी लूणिया से हुआ । जैन धर्म, जैन तत्वज्ञान, जैन सिद्धान्त, आचार-व्यवहार, सूत्र-आगम आदि का आपको विशद ज्ञान था । कभी आचलिया जी जयपुर आते तो कभी आप गगाशहर चले जाते । दोनो मित्रों मे धर्म-चर्चा होती तो पुस्तकों का प्रकाशन भी होता रहता । सेठ श्रीगुलाबचन्दजी लूणिया की निम्नाकित पुस्तको के प्रकाशक सेठ श्रीहीरालाल जी आचलिया थे —

१ नव पदार्थ निर्णय — शिशु हित शिक्षा
२ श्रावक धर्म विचार — श्रावक आराधना
३ प्रश्नोत्तर तत्व बोध — सुगुणावली
४. भिक्षु यश रसायन

दोनो मित्र अलग-अलग शहरो के निवासी थे, दोनो परिवार भिन्न थे किन्तु दोनो की वृत्ति एक ही थी, अत उनका सम्बन्ध मित्रता के रूप में आजीवन बना रहा और उन धार्मिक सस्कारो की छाप परिवार के सदस्यो पर पडती चली गयी । लूणिया परिवार मे महाराज साहब श्रीसज्जनश्रीजी ने ज्ञान और वैराग्य की ज्योति जगायी तो आचलिया परिवार मे श्री हीरालालजी के सुपुत्र श्रीसुमतिचन्दजी तथा पुत्रवधु श्रीमती सुदर्शनाजी ने एक साथ (सजोडे) तेरापथ धर्मसघ मे जैन भागवती दीक्षा ग्रहण कर सयम और तप के कीर्तिमान स्थापित किये । दूसरे पुत्र मोहनलालजी (उन्होने) ने भी अपने भरे-पूरे परिवार को छोडकर अभी हाल ही मे दीक्षा ग्रहण कर ली है । इस प्रकार ज्ञान का आलोक दोनो ही परिवारो मे पूरी प्रखरता से फैला है ।

प्रवर्तिनीश्रीजी का अभिनन्दन मानव मूल्यो का अभिनन्दन है, उस ज्ञान-ज्योति और सयम-साधना का अभिनन्दन है । इस मगलमय अवसर पर मै हृदय की समस्त शुभभावनाओ के साथ आपश्री के चरणो मे शतश अभिवन्दन करती हूँ तथा कामना करती हूं कि आपका वात्सल्यपूर्ण वरद्हस्त सदैव हमारे सिर पर बना रहे । आप चिरायु हो, सयम और तप की साधना करती हुई जैन-जगत एव प्राणि-मात्र को सही दिशा प्रदान करती रहे ।

००

□ साध्वी सुयशाश्रीजी म.

(सुशिष्या श्री विचक्षणश्रीजी म. सा)

'सद्गुरु की कृपा पाकर नर बनता महान्।
दिल मे भक्ति मानस मे, दीपित हो सद्ज्ञान।
शिष्य बीज सम जगत मे, है गुरु माली समान।
प्रज्ञा जल के योग से, बनता है इन्सान।

मनुष्य के जीवन मे सद्गुरु की प्राप्ति होना एक महान् उपलब्धि है। 'गुरु' एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति है जो मनुष्य को नर से नारायण और आत्मा को परमात्मा बना देती है। गुरु ऐसे श्रेष्ठ कलाकार होते है जो एक अनगढ ठोकरे खाते हुए जीवन रूपी प्रस्तर को अपने सत् प्रयासो द्वारा जनता मे पूजनीय और वन्दनीय बना जाते हैं।

अध्यात्मरस निमग्ना, शासन प्रभाविका, आशु कवयित्री प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जनश्रीजी म सा का जीवन एक सच्चे गुरु का कलाकारमय जीवन है।

आप सदैव आध्यात्मिक साधना मे तल्लीन रहती है। आप अपनी शिष्याओ सहित स्वाध्याय करती रहती हैं। मुझे आपके सान्निध्य मे रहने का जब-जब भी अवसर मिला प्राय आपको मौन या स्वाध्याय मे लीन देखा। पढने पढाने मे आप इतने अधिक दत्तचित्त हो जाते है कि आपको पता ही नही चलता कौन आया और कौन गया। आप अपनी छोटी-छोटी शिष्याओं से व्याख्यान भी दिलवाते रहते है। और उन्हे अलग-अलग चौमासा करने के लिए भेजते रहते है। जिससे वे जिनशासन की सेवा करती हुई आगे बढती रहे।

वस्तुत आपका जीवन शान्त, सौम्य, मधुर-मुस्कान, ज्ञान की गम्भीरता, विचारो की गरिमा, मृदुलवाणी, स्वभाव मे सरलता, विनम्रता, कोमलता से भरपूर (सम्पूर्ण) हैं। आपके प्रवचनो मे समन्वय सरलता, और हृदय को स्पर्श करने की क्षमता है, ओज है, समधुर मिठास है जो भी श्रोतागण आपका प्रवचन सुन लेता है वह आत्म विभोर हो उठता है।

पूज्य चन्द्रकलाश्रीजी म सा मुझे बता रहे थे कि आपने प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी म सा की रुग्णावस्था मे काफी लम्बे समय तक तन-मन से लग्नपूर्वक गुरुभक्ति व सेवा की। यह दूसरो के लिए अनुकरणीय व आदर्श रूप है। आप गुरुवर्या प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्रीजी म सा जैसी महान् साध्वी के सानिध्य मे काफी समय तक रहे। जैसे सग मे रहो वैसा रग लग जाता है। क्योकि जो गुण गुरुवर्या श्री के जीवन मे विद्यमान थे वही सम्पूर्ण गुण आपके जीवन मे भी है। मुझ जैसी अल्पमति पर सदैव कृपा बनाये रखे इसी शुभकामना के साथ। □

☐ साध्वीश्री जयश्री जी म०

प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज साहब के अलौकिक गौरवपूर्ण, गरिमामय, विराट् व्यक्तित्व का यथातथ्य रूप मे चित्रण करने का प्रयास, अनन्त आकाश को अपने बाहुपाश मे आबद्ध कर लेने और सागर को गागर मे भर लेने के सदृश हास्यास्पद प्रयास है। फिर भी गुरुभक्ति भाव से भावित होकर इस परिप्रेक्ष्य मे मद बुद्धि का यह प्रयास है।

सादगी, सरलता, सहिष्णुता, सज्जनता, स्नेहशीलता, सहृदयता, ममता की प्रतिमूर्ति प्रवर्तिनी सज्जन श्रीजी महाराज साहब का व्यक्तित्व असाधारण, प्रेरक, गुणग्राही व्यक्तित्व है। इन्होंने समस्त दर्शनो का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया है। यद्यपि इनमे अनेक उत्तमोत्तम गुण है लेकिन इन गुणो मे वादित्व (शास्त्रार्थ करने मे प्रवीण), गमकत्व (दूसरे विद्वानो की रचनाओं को समझने समझाने मे समर्थ), वाग्मीत्व (अपने वचन चातुर्य से दूसरो को वश मे करना), कवित्व (काव्य एव साहित्य की रचना करने वाले) ये चार प्रमुख गुण है।

इनका सम्पूर्ण जीवन जप-तप-स्वाध्याय से परिपूर्ण है। इन्होंने अपने जप-तप-ज्ञान-ध्यान द्वारा जैन जैनेतर समाज को आलोकित किया है। एकाग्रता, समय की नियमितता, और अनुशासन की दृढता के पक्के है। यद्यपि कोई भी व्यक्ति किसी एक क्षेत्र मे वर्चस्व प्राप्त कर लेता है, तो उसे महान् की सज्ञा दे दी जाती है। लेकिन जो जीवन के सभी क्षेत्रो मे धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रो मे वर्चस्व प्राप्त करता है, उसे यदि हम "महामानव" की उपाधि भी दे तो अतिशयोक्ति नही होगी। इसी 'महामानव' उपाधि का ज्वलन्त उदाहरण प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज साहब का अनोखा, अनूठा व्यक्तित्व है। आपके सद्गुणो का एक सरल रेखाकन इस प्रकार है।

सरलता और सहिष्णुता का भाव—सरलता और सहिष्णुता ही इनका कवच है। जो मन मे सो वाणी मे और जो वाचा मे सो कर्म मे। गुरुवर्या श्री जीवन मे सहजरूप मे है।

वात्सल्यपूर्ण भाव—इनकी दृष्टि मे कोई छोटा वडा नही, ये सभी ज्ञान-पिपासुओं को विना किसी भेदभाव के ज्ञान प्रदान करती है तथा अपने स्नेह को वात्सल्यपूर्ण भाव से सभी जिज्ञासुओ पर समान रूप से उडेलती हैं।

वैयावच्चभाव—सेवाभाव पक्ष इनके जीवन का अभिन्न अग है। ये अपने सभी कार्यो को छोड कर पहले सेवा के कार्य को महत्त्व देती है। इनका हृदय किसी भी दुखी व्यक्ति को देखकर द्रवित हो जाता है और उसका दुख दूर करने का हर सभव प्रयास करती है। इनके वैयावच्चगुण की कीर्ति चारो ओर फैली है। इन्होने अपनी गुरुआणी की तन मन से प्रसन्न मुद्रा से, अप्रमत्त भाव से दीर्घकाल तक सेवा की।

भाषण शैली—आपकी भाषण शैली चमत्कारपूर्ण है। भाषा हमेशा हित, मित और प्रिय रही है।

इनकी सरल, मार्मिक अन्तस्तलस्पर्शी अमृतमयी वाणी और ससार की असारता के उपदेश से प्रभावित होकर कई बहिनो ने ससार के दावानल से मुख मोडकर इनके पावन चरणो मे स्थान पाया है। मुझे भी इनकी चरण रज बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ अर्थात् इनका सान्निध्य मुझे एक वसीयत के रूप मे मिला है। मैं यह ऋण सभवतया इस जीवन मे तो किसी भी रूप मे चुकाने मे अक्षम हूँ। इनके सान्निध्य मे मैंने जो ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया है, उसे मैं जीवन की महान् उपलब्धि समझती हू। ☐

□ आर्याश्री प्रज्ञाश्रीजी० म०

(सुशिष्या प्रवर्तिनीश्री जिनश्री म० सा०)

प्रथम दर्शन के क्षणो मे ही परमपूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के अपूर्व व्यक्तित्व से मन इतना प्रभावित व प्रफुल्लित हो गया था कि जिसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति से परे है।

सम्मेतशिखर तीर्थ मे जव आपश्री का नाम सुना, तव से मन मे तीव्र उत्कठा थी कि कव आप श्री के दर्शन का अपूर्व लाभ प्राप्त हो। वह स्वर्ण अवसर आ ही गया और कलकत्ता-चातुर्मास आपश्री के साथ होना तय हुआ। आपके ज्ञान ध्यान की बाते सुनी ही थी। जव सभी १५ ठाणो का चातुर्मास साथ मे होगा यह निर्णय हुआ तो मन बाँसो उछलने लगा और आनन्द से भरा मन उन सुनहरी घडियो की तीव्रता से प्रतीक्षा करने लगा। समय अपनी गति से वीतता गया और शीघ्र ही वह शुभ क्षण आ गया। कलकत्ता दादावाडी में आपश्री के प्रथम वार दर्शन करके कृत्य-कृत्य हुई।

आप श्री के सान्निध्य का मेरा निजी अनुभव सिर्फ ६ माह का है। प्रारम्भ मे तो लगता था कि मैं अल्प बुद्धि के कारण इस अल्प समय मे कुछ भी नही पा सकूँगी। परन्तु वाद मे प्रतीत हुआ कि अल्प समय मे मेरी अल्पमति ने जितना भी अनुभव प्राप्त किया है वह गहन गम्भीर है, मौलिक है, अलौकिक है। स्वाध्याय व आत्म चिन्तन ही आपश्री के प्राण है। आपश्री अपनी शिष्याओ व प्रशिष्याओ तथा आत्मीयजनो को भी स्वाध्याय, ध्यान और आत्मचितन की ओर प्रेरित करती रहती है।

आपश्री के अनेक गुणो मे से मेरे जीवन पर जिसकी अमिट छाप पडी है वह है आपश्री की तीव्र ज्ञान पिपासा। तव मेरी उम्र १८ वर्ष की थी। किन्तु मैंने जव आपश्री की करीव ५५-६० वर्ष की उम्र मे भी इतनी तीव्र ज्ञान पिपासा देखी, मेरा मन मुझे ही कोसने लगा। सोचने लगी कि देखो आपश्री की कैसी ज्ञान पिपासा है ? इधर मैं ऐसी हू कि समय प्रमाद मे ही वीत रहा है। वस उन्ही दिनो से मेरे मन मे आपका वही गुण आदर्श रूप वन गया और मे भी यत्किचित् ही क्यो न हो अध्ययन मे तन्मय होने का प्रयत्न करने लगी। आपश्री अध्ययन मे इतनी तल्लीन रहती थी कि भूख प्यास भी भूल जाती।

वात्सल्य भावना आपके रोम-रोम मे भरी है। आप इतनी मधुरता से पुकारती कि वह मधुर आवाज आज तक भी विस्मृत नही हुई।

आपश्री के अल्प सपर्क से मेरे हृदय मे यह भावना दृढ हो गई कि आपश्री कितनी महान् है। ज्ञान ध्यान मे रमा कैसा मस्त जीवन है। जीवन में सयम की खप, मुख मे नवकार का जप और आभ्यन्तर तप आपश्री का मुख्य ध्येय है।

आपश्री का आत्मवल, ज्ञानवल, चारित्रवल, तपोवल व मनोवल अपूर्व है।

परमपूज्या प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी म०सा० से मेरी नम्र प्रार्थना यही है कि आपश्री मुझे सदा शुभाशीष प्रदान करती रहे। जिससे मेरा मन सयम, तप व कर्तव्य के मार्ग से कभी विमुख न हो और मैं मोक्षमार्ग की ओर उन्मुख होकर शुद्ध सयम जीवन का पालन करती रहूँ। □

□ प शातिचन्द जी जैन, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, जैन सिद्धान्त शास्त्री, अजमेर (राज०)

भगवान महावीर स्वामी ने उत्तम मानव जीवन को दुर्लभ वताते हुए उत्तराध्ययन सूत्र मे फरमाया है—

"चत्तारि परमगाणी, दुल्लहाणिय जन्तुणो।
माणुसत्त, सुई सद्धा सजमम्मिय वीरिय" ॥

प्रभु महावीर के इस उपदेश को चरित्रनायिका प पूज्या प्रवर्तिनीजी श्री सज्जनश्री जी म सा ने अपने आदर्श जीवन मे चरितार्थ किया है। कहते हुए गर्व होता है कि आपने उपरोक्त चारो ही दुर्लभ वस्तुएँ प्राप्त कर ली हैं। इनमे आदर्श मानवता के गुण हैं। आप मे सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र एव सम्यक् तप चारो ही महान गुण विद्यमान है।

प्रवर्तिनी जी जहाँ जैन आगमो के ज्ञाता है और इन आगमो का तल स्पर्शीज्ञान है वही आगमो के अनुसार धार्मिक क्रियाओ की आराधना मे भी पूर्ण सलग्न रहने वाली महान विदुषी आर्या हैं। आपका आदर्श जीवन सभी आर्याओ के लिये और सभी श्रावक-श्राविका आदि साधको के लिये अनुकरणीय है।

आपने अपने जीवन मे उपधान, नवपद ओली, विशनिस्थानक तप ओली, कल्याणक तप, पखवासा तप, पचमी सोलिया तप, दश पच्चक्खाण तप तेले, चौले, अठाई, मासखमण तप किये हैं। इस प्रकार आपका जीवन अहिंसा, सयम, तप मय रहा है। इसलिये शास्त्र के कथनानुसार मानवो के साथ-साथ देवताओ के भी आप वदनीय है। आपके ऐसे धर्ममय व्यक्तित्व की हम जितनी प्रशसा करें उतनी कम है।

आपकी रचनायें—

वचपन मे ही आपने धार्मिक सस्कारो के कारण प्रभु के स्तवन आदि की रचना आरम्भ कर दी थी। सयम धारण करने के बाद आपने ज्ञानार्जन किया और अनेक काव्य पुस्तके लिखी यथा— सज्जन विनोद, कुसुमाजलि, पुष्पाजलि, गीताजली, वीरगुण गुच्छक, आदि। इसी प्रकार आपने अनेक धार्मिक ग्रन्थो का अनुवाद भी किया जैसे कल्पसूत्र का आधुनिक हिन्दी मे अनुवाद, व श्री देवचन्द्र गणि-वर्य के रचित "अध्यात्म प्रबोध अपर नाम देशनासार" सस्कृत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद, दादा गुरुदेव श्री जिनदत्त सूरि जी रचित चैत्य वदन कुलक का हिन्दी अनुवाद, आदि ग्रन्थो का हिन्दी मे सरल अनुवाद करके हिन्दी जानने वाले लोगो के ज्ञान प्राप्ति के लिए अनुवाद ग्रन्थ प्रकाशित कर धर्म की महान प्रभावना की है और सम्यक् ज्ञान का प्रचार किया है।

अभिनन्दन के शुभ अवसर पर हम आपके दीर्घ जीवन की और पूर्ण स्वस्थता और अधिकाधिक धर्म प्रभावना की शुभ कामनाये करते है। □

□ साध्वी तत्त्वदर्शना श्रीजी म

पू गुरुवर्या श्रीजी के जीवन के विषय मे क्या लिखूँ और क्या नही लिखूँ? इनके जीवन मे दूसरो को बढती हुई प्रगति देख ईर्ष्या नही देखी। प्रतिकूल प्रसगो मे इन्हे क्रोधित होते नही देखा। हजारो भक्तो की भीड होते हुए भी भक्त बनाने का लोभ नही देखा, आगम ज्ञान होते हुए भी अभिमान नही देखा सबके बीच रहते हुए कभी माया करते नही देखा, शिष्या परिवार होते हुए भी शिष्याओ मे आसक्ति नही देखी। यदि इनके जीवन को एक शब्द मे ही कह दूँ जलकमलवत् जीवन जीती हैं तो कोई अतिशोयक्ति नही होगी।

बडो के साथ नम्रता का व्यवहार छोटो के साथ भी आदर सत्कार का व्यवहार करती हैं। विद्वानो का सम्मान करती हैं। तो कम पढ लिखे को कम महत्व नही देती। दु खी व्यक्ति को अधिक हृदय लगाती है। आने जाने वालो से या निकट रहने वालो से कम ही बाते करती है किन्तु दु खी व्यक्ति से पहले बोलती है। सामान्य लोगो से ध्यान मग्न हो बातचीत करती है। पुस्तक पढने मे इतनी एकाग्रता कि चार व्यक्ति ढोल भी बजा दे तो पता नही चलता तो कोई आकर वन्दना करे या उन्हे धीरे से कुछ

कहे तो उनका ध्यान उस ओर होना बहुत ही मुश्किल है। अस्वस्थ अवस्था मे भी पढने-पढाने का क्रम नही टूटा। इस अवस्था मे भी स्वय का कार्य स्वयं करती है। कभी किसी से उपालम्भ की भाषा मे नही बोलती है। इन सब गुणो से युक्त गुरुवर्या श्री को देखते हुए १-२ वर्ष नही १० वर्ष हो गये निकटता से देखते हुए, किन्तु कही भी जीवन के गुणो मे बनावटीपन नही देखा। सहज स्वाभाविक गुणो को ही देखा है व देख रही हूँ। गुरुदेव से प्रार्थना करती हूँ कि चिरायु बन शासन-सेवा मे रहती हुई गुरुवर्याश्री अपने गुणो की सौरभ दिग-दिगन्तो मे फैलाती रहे व इनके जीवन के गुणो का मेरे जीवन मे भी विकास हो। इसी शुभेच्छा के सथ।"

☐ साध्वी सुदर्शनाश्रीजी म

(सुशिष्या स्व० साध्वी श्री विचक्षणश्रीजी म० सा०)

धर्म-साधना के क्षेत्र मे पुरुषो की तरह नारी वर्ग ने अपनी धीरता, वीरता, तितिक्षा, कष्ट-सहिष्णुता और पुरुषार्थ-पराक्रम का विशिष्ट परिचय दिया है। जैनशासन-परम्परा में अनेक तप पूता साधिकाओ का जीवन हमारे लिए आदर्श और प्रेरणास्रोत है।

आगमज्ञा, आशुकवयित्री, प्रखरवक्त्री प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी म सा का जीवन त्याग वृत्ति, सरलता आदि अनुकरणीय है। उच्च कोटि की विद्वत्ता एव निर्मल चारित्र ही आपकी योग्यता का परिचायक है। महान विभूति का जीवन अद्भुत है । आपकी भव्य तेजस्विता और शान्तिमयी मुद्रा देखकर मस्तक झुक जाता है।

मैने आपको अति निकटता से देखा है—जब आप परमपूज्या समतामूर्ति प्रवर्तिनी गुरुवर्याश्री विचक्षणश्रीजी महाराज साहब से कुछ समाधान या विचार-विमर्श करना होता तो आप एक विनीत शिष्या की तरह उनके चरण-कमलो के समीप ही बैठती थी। ऐसा विनय गुण का महान् आदर्श और कहाँ देखने को मिलेगा ?

आपकी अति पवित्र ८२वी जन्मतिथि पर मै अपनी मगल-भावना व्यक्त करती हूँ कि आपश्री स्वास्थ्य लाभ कर एव दीर्घजीवी होकर समाज को और हम सबको अपने चिन्तन, मनन, लेखन, प्रवचन से अहर्निश लाभान्वित करती रहे।

☐ साध्वी विनीताश्रीजी स० सा०

(सुशिष्या स्व० साध्वी विचक्षणश्रीजी म० सा०)

सज्जन सज्जनता धरी, करे सज्जन काम।
सौरभ चिहुँ दिशि विस्तरी, जिनका सज्जन नाम ॥

अनादिकालीन ससार मे जीवात्माएँ कर्मावरित हो नानाविध दु खानुभव करती है पर प्रबल पुरुषार्थी आत्माएँ सम्यग्ज्ञान-दर्शन व चारित्र की आराधना—साधना से अष्टकर्म विजेता वन मोक्षगामी वनती हैं।

कई आत्माएँ अष्टकर्मो मे से कुछेक कर्मो का क्षयोपशम कर कुछ विशेष योग्यता प्राप्त कर लेती है। सातावेदनीय कर्म के उदय से साता प्राप्त कर नैरोग्ययुक्त होती है तो कोई ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्रतिभासम्पन्न होती है इस प्रकार कई पुण्यात्माएँ कर्मो के दलोपशम से कुछ विशिष्टता युक्त होती है।

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म भी ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से जीवन मे कुछ विशिप्टता प्राप्त हैं अर्थात वुद्धिवैभव-सपन्न है।

मै स १९९६ मे प० पू० प्र० जैन कोकिला विचक्षणश्रीजी म० सा० के कर कमलों मे दीक्षित हो स० १९९८ मे इन्ही गुरुवर्या के साथ जयपुर आई उस समय मैंने देखा कि आप प्रतिदिन गुरुवर्या के साथ भी धार्मिक चर्चा किया करते थे। यो उनका पूर्व परिचय था ही। स० १९९२ मे पू प्र. अध्यात्मनिष्ठा सुवर्णश्रीजी म सा के साथ गुरुवर्याश्री ने चातुर्मास किया था, आप दोनो विशिष्ट रूप से पठन-पाठन लेखन-अध्ययन व धर्म-चर्चा करते थे। एक दिन का प्रसग है कि प्रेरणास्पद बातें करते अनायास ही प्र विचक्षणश्रीजी म सा के मुख कमल मे सज्जन बाई की जगह सज्जनश्रीजी संबोधित हो गया, कहा कि सज्जनश्रीजी ! देखो यह सूत्र कितना बढिया है, यह स्तवन सुन्दर भावार्थ युक्त है इसे भी लिखकर याद कर लेना। आपके हस्ताक्षर मोती के दाने से सुन्दर होने मे प्राय लेखन कार्य गुरुवर्याश्री आपसे ही करवाते थे। तब सज्जनबाई ने कहा कि महाराजश्री ! अभी मेरे अन्तराय कर्मों का अन्त कहाँ, जो मैं सज्जनश्री बन पर हाँ आपश्री की इस अमृतमय भविष्यवाणी की मै शुकन गाठ बाँधती हूँ कि मैं शीघ्र ही आपश्री की भविष्यवाणी को सफल कर सयमित जीवन स्वीकार कर सज्जनश्री बनू।

यह किसे विदित था कि गुरुवर्याश्री के मुख कमल मे निसृत वाणी निकट भविष्य मे ही सिद्ध हो जायेगी। किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी महापुरुष की वाचा किसी-किसी के लिए वरदान रूप सिद्ध होती है वैसे ही यह बात विदुषी सज्जनबाई के लिए चरितार्थ हुई।

पू० विद्वद्वर्य मणिसागर जी म सा के निश्रा मे स० १९९८ के आसोज माह मे जयपुर मे उपधान तप हुआ तो उस समय आपने भी सजोडे उपधान तप किया, ससार कारागार से मुक्त होने हेतु आपकी वैराग्य भावना उत्तेजित हो उठी, अब एक क्षण भी इस कारागार मे रहना असह्य हो गया, अथक परिश्रम किया। "श्रम सफलता की कुजी है" आपके श्रम सफल होने के आसार नजर आने लगे। पू साधुजी म सा व साध्वीजी म सा ने कल्याणमलजी को उद्बोधित किया कि सज्जनबाई की इतनी तीव्रतम भावना पर रोक लगाकर आप अतराय के भागी क्यो बन रहे है ? इन्हे आज्ञा प्रदान कर अनन्त पुण्योपार्जन करिये। त्यागी वर्ग के प्रेरणाप्रद उपदेश ने श्री कल्याणमलजी का हृदय परिवर्तन कर दिया। उन्होने गद्गद् हो शीघ्र ही १९९९ के वैसाख मास मे आज्ञा पत्र लिख दिया—आज्ञा प्राप्ति के साथ सज्जनबाई का मन मयूर नाच उठा, शुभस्य शीघ्रम्, इस उक्ति को अपनाकर शीघ्र ही मुहूर्त निकलवाया। वैरागन सज्जनबाई की उत्कृष्ट चारित्र भावना के प्रभाव से आषाढ शुक्ला दूज का मुहूर्त आया। दीक्षोत्सव की तैयारियाँ धूम-धाम से होने लगी मानो गुलाबी नगरी मे चारो ओर चारित्र की धूम मच रही है। आपकी दीक्षा की तैयारियाँ देख चौथीबाई कोचर भी भावावेग मे आ गईं और परिवार की आज्ञा प्राप्त कर आपके साथ ही सयम लेने को उद्यत हुईं। प पू मणिसागरजी म सा एव त्यागमूर्ति ज्ञानश्रीजी म सा व उपयोगश्रीजी म सा के कर-कमलो से आप दोनो की दीक्षा सानद सपन्न हुई। आपका नाम सज्जनश्रीजी व चौथीबाई का विबुधश्रीजी घोषित किया।

आप प्रव्रजित हो ज्ञान-साधना मे सततोद्यमी रही, पू प्र ज्ञानश्रीजी म सा से आगमो का (जैनागमो का) वाचन किया, अपनी अनवरत ज्ञानोपासना से ससार के चोटी के विद्वानो की कोटि मे आपने विशिष्ट स्थान पा लिया, अद्यावधिपर्यंत सयम आराधना सह गुरुजनो की सेवा मे सतर्क प्रहरीवत सदैव सावधान रहने के साथ-साथ सरस्वत्युपासना मे अनवरत सलग्न रहे मानो आप साक्षात् सरस्वती-सुता हैं।

आपकी बौद्धिक सूक्ष्मता ने किसी भी विषय को अछूता नही रखा है। आप गहन से गहन विषय का प्रतिपादन-स्पष्टीकरण इतनी सरलता से करते हैं कि श्रोता उसे हृदयगम कर हर्ष-विभोर बन जाते हैं एव प्रश्नकर्ता अपना सही समाधान पा प्रसन्नचित हो लौटते हैं।

वृद्धावस्था होते हुए भी आप आठो याम साधना सलग्न व ज्ञानमग्न रहते हैं। जब देखो तब कभी कुछ चिंतन, कभी कुछ लेखन, कभी कुछ रचनाएँ तो कभी उपदेश, प्रेरणा व मार्गदर्शन देते हुए अप्रमत्त भावो मे विचरण कर रहे है। आपका विचरण क्षेत्र भी विस्तृत रहा। गुजरात, सौराष्ट्र, राजस्थान, बगाल, कलकत्ता, लखनऊ आदि क्षेत्रो में विचरण कर जैन जैनेतर जनता को अपनी ज्ञान गगा मे स्नान कराके पावन कर दिया, जैनशासन की अनुपम प्रभावना के साथ-साथ कई भव्यात्माओ को प्रतिबोध दे दीक्षित किया जो आपके पावन सान्निध्य मे ज्ञानाराधना, सयम साधना, व चारित्रोपासना मे सतत संलग्न है एव भिन्न स्थानो मे चातुर्मास कर जिनशासन की महती प्रभावना कर रही है।

आपकी पूर्ण योग्यता के कारण प पू. प्र जैन कोकिला विचक्षणश्रीजी म सा ने अपना उत्तराधिकारी (प्रवर्तिनी पद के लिए) आपको उपयुक्त घोपित किया। स० २०४२ के मिगसर कृष्णा ६ को जोधपुर मे प्रवर्तिनी पद से विभूपित कर प पू. प्र पुण्यश्रीजी म सा की पदपरम्परा मे प पू. आचार्यप्रवर जिनकातिसागर सूरीश्वर जी म सा ने चतुर्विध सघ के समक्ष प पू स्व प्र विचक्षणश्रीजी म सा की पद धारिणी बनाया।

गुरुदेव से प्रार्थना है कि आपको वैराग्य दान प्रदान के साथ दीर्घायु करें, यावच्चन्द्र दिवाकरो जिन शासन सेवा मे तत्पर रह साहित्य समृद्धि को वृद्धिगत करते हुए सरस्वतीसुता नाम सार्थक करें इसी शुभ कामना के साथ नमित हू। ○

□ साध्वी कनकप्रभाजी म. सा.

(सुशिष्या पू० श्री सज्जनश्री जी म सा)

स्वभाव मे सरलता, व्यवहार मे नम्रता, वाणी मे मधुरता, मुख पर सौम्यता, नयनो मे तेजस्विता, हृदय मे पवित्रता, स्वभाव मे सहजता पू० गुरुवर्याश्री का जीवन उक्त उपमाओ से परिपूर्ण है। गुरुवर्याश्री के जीवन को कहीं से भी झाककर देखो उसी तरह दिखाई देगा जिस तरह गगा नदी का पानी किसी भी छोर से पिओ मीठा ही होगा। मिश्री को किसी भी कोने से चखो मीठी ही होगी। गुलाब के फूल को कही से भी किसी भी पत्ती को सूघो एक सी खुशबू होगी। इनके जीवन के गुणो को शब्दो मे बाँधना उतना ही दुष्कर है जितना पानी मे पडते प्रतिबिम्ब चन्द्रमा को पकडने का, फिर भी अपनी अल्पबुद्धि से उनके सभी गुणो को सीमित शब्दो मे अभिव्यक्त करने का प्रयास कर रही हूँ।

स्वभाव मे सरलता—आपका स्वभाव अत्यन्त सरल है। कपट, माया, छल का नामोनिशान नही है जैसे अन्दर है वैसे ही बाहर है। आपके स्वभाव की सबसे बडी विशेषता है अन्तर और बाह्य की एकरूपता।

वाणी मे मधुरता—जैसे अमृत देवताओ की सम्पत्ति है उसी प्रकार मधुर वाणी मानव की निज सम्पत्ति है। मृदुवाणी आकर्पण कला का मुख्य केन्द्र है। यद्यपि सौन्दर्य भी सभी के लिये आकर्षण का केन्द्र है किन्तु चेहरे पर चाहे जितना सौन्दर्य हो यदि वाणी मे मधुरता नही है, वाणी मे सौन्दर्यता नही है तो चेहरे का सौन्दर्य फीका है। प्रकृति ने मयूर को असीम सौन्दर्य दिया ऐसा लगता है कि चित्रकार ने अपनी सारी कला को वही लगा दिया किन्तु वाणी का सौन्दर्य नही दे पाया। शरीर का सौन्दर्य होते हुये भी वाणी के सौन्दर्य के अभाव मे मयूर किसी भी कवियो की काव्य भूमि मे स्थान नही ले पाया। जबकि कोयल आकृति के सौन्दर्य के अभाव मे भी वाणी की सौन्दर्यता के कारण कवियो की काव्यभूमि मे अमर हो गयी, चेहरे के सौन्दर्य का महत्व नही है।

मधुरता का महत्व—पू गुरुवर्याश्री की वाणी मे कोयल की तरह मिठास है। जब कभी भी किसी

आपश्री ने अपने अद्‌भुत ज्ञान एव सरलता, सहजता, सहिष्णुता, सौम्यता, नम्रता, विनय इत्यादि गुणो से अल्प समय मे ही सभी को प्रभावित कर दिया। सेवा एव समर्पण भाव तो आपके जीवन में कूट-कूट कर भरे हुए हैं, अत्यधिक विद्वत्ता होने के पश्चात् भी अह तो आपसे हमेशा कोसो दूर भागता है। विद्वत्ता अहता को जन्म देती है, इस कहावत को आपने असत्य सिद्ध कर दिया। जो भी आपके सम्पर्क मे एक बार आ गया वह आपश्री की विद्वत्ता एव सरलता से प्रभावित हुए बिना नही रह सका, प्रथम दर्शन ही सबकी श्रद्धा का केन्द्र बन जाता है।

जब आपश्री का गढ सिवाणा मे पदार्पण हुआ, प्रथम दर्शन से ही मन प्रभावित हुए बिना नही रह सका। अनिमेष दृष्टि से सौम्य आकृति को देखती ही रह गयी। आप जैसी दिव्य विभूति एव समतामूर्ति के दर्शन पाकर हृदय गद्‌गद् हो उठा। आपश्री के चरणो मे प्रव्रजित होने का सकल्प कर लिया। दृढ सकल्प को साकार रूप देकर आपश्री ने मुझे अनुग्रहीत किया। मैं आपश्री के उपकार से कभी उऋण नही हो सकती हूँ।

वस्तुत- आपश्री मे एक ऐसी सजीवनी शक्ति है, प्रण व स्वत्व का बल है। वास्तव मे ऐसे ही व्यक्ति समाज, सघ एव राष्ट्र के प्राण हो सकते है उनमे एक प्राणवान सज्जनश्रीजी साधिका भी है।

आप भौतिक कीर्ति से तो क्या यश कीर्ति के व्यामोह से भी कोसो दूर रही है। और वस्तुत जैसा कि मैंने उन्हे पाया है, आप समुद्र से जल ग्रहण कर पृथ्वी पर बरसने वाले बादल के अदृश्य नही है। आपको लेना तो किसी से नही है केवल देना ही देना आता है। देना भी कैसा ? ओढर दानी अर्थात् जो चाहे, जितना चाहे, जब चाहे, ले ले। लेने वाले योग्य हो उसका पात्र सीधा हो उनका ज्ञान रूपी महामेघ तो प्रति पल अनवरत् बरसता ही रहता है। उनके ज्ञान की महिमा का तो मैं क्या वर्णन करू ?

आपश्री का सम्पूर्ण समय पठन-पाठन-अध्ययन अध्यापन मे ही व्यतीत होता है, प्रतिपल, प्रतिक्षण, प्रतिघडी ध्यान स्वाध्याय एवं आत्म-चिन्तन मे ही तल्लीन रहती है।

जिन्दगी के हर क्षण को आपने खेल की तरह खेला। सुख-दु ख मे सदैव मुस्कराते रहे, ऐसी है महान अनन्त गुण भण्डार मेरी गुरुवर्या। आपश्री के चरणो मे पुन -पुन शत-शत अनन्तश भावेन कर बद्ध नतमस्तकेन वन्दन।

नाम सज्जनश्री काम सज्जनता है कलिमल दूर विवर्जित है।
सज्जन गुरु चरणो मे नमन जिनका जीवन गुणो से पूरित है ॥

□

□ आर्या शीलगुणाश्री जी० म०

(सुशिष्या पू० श्री सज्जनश्रीजी म० सा०)

महापुरुषो के जीवन के क्रिया-कलापो का महत्व उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। समाज तथा धर्म की व्यवस्थाओ की सीमाओ से रहकर व्यक्तित्व का सर्वतोन्मुखी विकास जो कि सर्वजनमान्य हो कोई ही कर पाता है। जिन्होने अपनी महानता, दिव्यता और भव्यता से जन-जन के अन्तर्मानस को अभिनव आलोक से आलोकित किया है। जो समाज की विकृति को नष्ट कर उसे सस्कृति की ओर बढने के लिए उत्प्रेरित करते रहे है। उनके विचार आचार मे अभिनव क्रान्ति का प्राण सचार करते रहे हैं। उनका अध्यवसाय अत्यन्त तीव्र होता है। जिससे दुर्गम पथ भी सुगम बन जाता है। पथ के शूल भी

भाव रहता है। आपश्री की निश्रा मे १२ दीक्षाएँ हुई है। सभी शिष्याएँ परम विदुषी है। साथ ही अन्य वैराग्यवती बहिनें भी आपश्री की सान्निध्यता मे है।

पू० गुरुवर्याश्री की कृपादृष्टि मुझ पर सदा रही है। आपका वात्सल्य मुझे अनन्त मिला है और मिल रहा है। मैं तो हर क्षण सोचती हूँ कि मेरे जीवन का हर पल, हर क्षण आपश्री की शुभ निश्रा मे ही व्यतीत हो। आपश्री चिरायु होकर समाज सेवा व अपनी पार्श्ववर्तिनी शिष्याओ को प्रतिक्षण शुभा-शीर्वाद प्रदान करती रहे। ○

☐ आर्या दिव्यदर्शनाश्री

(सुशिष्या परम पूज्या श्रीसज्जनश्रीजी म० सा०)

गुरुवर्याश्री हो तो ऐसी हो जिनके देखने मात्र से वैराग्य की भावना जागृत हो गयी। आप श्री की आकृति मे हमेशा सरलता, सहजता, सौम्यता, सहिष्णुता टपकती रहती है। आप विनम्रता की साक्षात् मूर्ति है। अहकार उनके आसपास नही रहता। वे ज्ञानी है पर ज्ञान का अहकार नही। वे त्यागी है पर त्याग का घमड नही। उनके कण-कण मे वात्सल्य है। आपके प्रवचनो मे सबसे बडी विशेषता है, कि वे आगम के गूढ गम्भीर रहस्यो को सरल और सुगम रीति से प्रस्तुत करती है जिससे श्रोतागण ऊबते नही है। आप हमेशा हम सभी को अध्ययन की प्रेरणा देती रहती है कि "कुछ आगम का ज्ञान सीखो, इसके बिना जीवन मे शून्यता है।" शून्य की कीमत सख्या के बिना कुछ नही है। जहाँ सख्या लगी शून्य की कीमत बढी। जितनी गहराई मे जाओगे उतने ही रत्न मिलेगे। जितना चिन्तन के द्वारा मथन करोगे उतना ही मक्खन मिलेगा। आप हमेशा त्याग-तप व सयम के ऊपर जोर देती हैं। आपकी बनाई हुई कविता की पक्ति याद आ रही है।

"तप सयम रमणता
ये ही तो श्रमणता"

आपका कहना है। सयम मे निष्ठ बनो। आप हमेशा शिक्षा की पावन प्रेरणा देती रहती है। आपके पद चिन्हो पर हमेशा चले। इसी आशीर्वाद की आकाक्षा के साथ पू० गुरुवर्या श्री के स्वास्थ्य की कामना करती हुई श्री चरणो मे कोटि-कोटि अभिनन्दन। ○

☐ साध्वीश्री सुलोचनाश्रीजी म

भयकर भीष्म दारुण ससार मे से भव्यात्माओ के जीवन पाषाण मे कुशल कारीगरी कर सयम प्रतिमा का सर्जन करने वाले अजोड महापुरुषो एव सतो की पक्ति मे महामनीषी वात्सल्य मूर्ति परम पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज सा भी सहज ही आते है।

आपश्री विरल व्यक्तित्व के धनी और उदग्र चारित्रिक गुणो से विभूषित अपूर्व आध्यात्मिक मूर्ति ह। आपश्री के व्यक्तित्व मे जटिल सयोगो का चमत्कारिक सामजस्य सही मे विस्मयजनक हे।

वृद्धावस्था होने के बावजूद भी जरा प्रमाद नही। आपका हृदय बच्चो का सा सुकोमल, युवकों सा दृढ-प्रतिज्ञ है। आपश्री विनय, नम्रता, शान्ति एव वात्सल्य की साक्षात् मूर्ति है। आपश्री के प्रथम दर्शन से ही व्यक्ति चुम्बक-आकर्षित होकर खिचे चले आते हैं।

आपश्री के सम्पर्क से मैंने यह अनुभव किया है कि आप अविच्छिन्न रूप दीपमालिका का एक प्रकाश पुञ्ज हैं। जगम, दीप ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की ज्योति मे स्वय को जगमगा रहे है। अतएव आपकी वाणी और लेखनी मे धर्म नीति, तप, त्याग, उदारता तितिक्षा आदि सद्गुणो को प्रबुद्ध करने

आपके सद् सहस्र-सहस्र, सद्गुण—पुष्पो को यदि धागे मे गूँथना प्रारम्भ करूँ तो एक विस्तृत हार का निर्माण हो जावे। इस पुष्पवाटिका मे से मै भी आत्महिताय दो चार पुष्प पा जाऊँ तो स्वय के जीवन को धन्य मानूँगी।

☐ श्रीसौम्यगुणाश्री म०

(बालशिष्या पूज्याश्री सज्जनश्री म०)

भ० महावीर ने "समय गोयम मा पमायए" का उपदेश दिया, गौतम ने इसका पालन कर स्वकल्याण किया, गुण गरिमायुक्त इस सूत्र को भ के शासन मे जुडने वाली पूज्या प्रवर्तिनी महोदया ने धारण कर विश्व मे आदर्श उपस्थित किया। क्या कभी इस उक्ति की ओर हमारी दृष्टि गई ? क्या हमने कभी नजर दौडाई ? यदि चिन्तन, मनन करते हुए हम अपना स्वय निरीक्षण करें तो ज्ञात होता है कि भगवान् के शब्दो से सर्वथा प्रतिकूल है हमारा जीवन। भाव से प्रमादी तो अनन्तकाल से बने हुए हैं चूँकि आज तक आत्मा की ओर तो हमारा कोई लक्ष्य ही नही रहा, और कभी लक्ष्य बना भी तो वह अत्यल्प समय के लिए। किन्तु आज मानव द्रव्य से भी प्रमादी बन गया। इस वैज्ञानिक, मशीनरी युग मे प्रत्येक कार्य मशीनो, यन्त्रो एव भृत्यो द्वारा होने लगा है। तथापि इस उक्ति को चरितार्थ करने वाली खरतरगच्छ की एक सयमधारिणी, शासन सघ की शोभावर्धिनी, जन-जन की कल्याणकारिणी, साध्वीवृन्द की प्रवर्तिनी है पू गुरुवर्या श्रीसज्जनश्रीजी म सा।

पू गुरुवर्याश्री का जीवन प्रतिक्षण, प्रतिपल अप्रमत्तता मे ही व्यतीत होता है। शरीर की आवश्यक क्रियाओ के अतिरिक्त शायद ही उनके जीवन मे कभी ऐसा समय आया हो, जब प्रमाद मे ही अधिक समय व्यतीत हुआ हो। सहिष्णुता, निर्मलता, सहजता, सहृदयता, भावुकता, नम्रता आदि गुण तो फिर भी यत्किंचित् किसी मे दृष्टिगोचर हो सकते है किन्तु अप्रमत्तता का गुण तो विरल व्यक्ति मे ही अवलोकन करने को मिलता है।

निम्नाकित कतिपय बिन्दुओ द्वारा उनके अप्रमत्त जीवन की थोडी सी झलक अपनी लेखनी द्वारा आलेखित करती हूँ।

१—"जिन क्षणो मे गुरुवर्या श्री शास्त्रवाचन अथवा पुस्तक पढने मे दत्तचित्त होती है, उन क्षणो मे समीपस्थ व्यक्ति क्या वार्तालाप कर रहे है ? उस ओर गुरुवर्याश्री का यत्किंचित् भी ध्यान नही जाता।"

२—"वे अपना कार्य कभी भी जहाँ तक है करवाना नही चाहती, स्वय ही उस कार्य को करने के लिए अभ्युत्थित हो जाती है। इससे इनका स्वावलम्बी जीवन स्पष्ट परिलक्षित होता है।"

३—"आप कभी भी गुरुवर्याश्री को देखिये, परखिये, जानिये, किसी न किसी कार्य मे लीन ही मिलेगी।"

उपर्युक्त सभी कथ्य अनुभवसिद्ध है। ऐसी एक नही, अनेक विशेषताएँ पूज्याश्री मे स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है, जिन्हे मैने न तो किसी अन्य मे देखी है और न सुनी है।

उनके अप्रमत्तजीवन का एक संस्मरण मेरे मानस मे उभर कर आ रहा है, जिसे लेखनी लिखने

विहार काफी लम्बा हो चुका था और गुरुवर्याश्री की उम्र भी लगभग ७६ वर्ष की थी। कुण्डी ग्राम में एक विद्यालय के अन्दर रुके। जिस कक्ष में हम रुके थे उनके अत्यन्त समीप में ही पुस्तकालय था। गुरुवर्याश्री जैसे ही विद्यालय में पधारीं, वैसे ही उस पुस्तकालय में चली गईं और प्रोफेसर की अनुमति से पुस्तक ली, और वहीं खड़ी-खड़ी पढ़ने में लीन हो गईं। इधर दर्शनाचार्य पू शशिप्रभाजी म सा ने यत्र तत्र देखा। कहीं भी गुरुवर्याश्री नहीं। चिन्ता हो गई, किन्तु किंचित् समयानन्तर जब साध्वी शशिप्रभाश्री म सा ने पुस्तकालय में गुरुवर्याश्री को पुस्तक पढ़ते देखा, तब बोलीं 'आप विहार कर पधारी हैं अत कुछ आराम कर लीजिए, बाद में पुस्तक पढ़ियेगा।" तब "पुस्तक पढ़ना ही हमारा आराम है" गुरुवर्याश्री ने कहा। मैं भी समीप ही खड़ी थी।

यह वाक्य सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि मेरी उम्र तो अभी इतनी अल्प है फिर भी आते ही आसन बिछाकर सीधे सोती हैं किन्तु गुरुवर्याश्री को देखो।

वास्तव में इस वाक्य ने "कि पुस्तक पढ़ना ही हमारा आराम है" मेरा जीवन भी आशिक रूप में परिवर्तित कर दिया।

इससे अनुभव कर सकते हैं कि गुरुवर्याश्री का जीवन कितना अप्रमत्त है। वास्तव में गुरुवर्याश्री ने "समय गोयम ! मा पमायए" की गुण गरिमायुक्त उक्ति को चरितार्थ किया है।

कृपा से परिपूर्ण आपश्री का वरदहस्त सदा सर्वदा मेरे सिर पर रहे, जिससे मेरे कदम उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर होते रहें और मैं अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त कर सकूं। इन्हीं शुभ अभ्यर्थनाओं के साथ—

युग-युग तक करती रहो धरा पर
जिनवाणी का विमल उद्योत
और बहा दो मम मानस में
आध्यात्मिकता का नूतन स्रोत।

☐

☐ श्री आर एम. कोठारी, आर ए एस

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी की शिष्या पू श्रीसम्यग्दर्शनाजी के दर्शन मुझे उनके जोधपुर प्रवास में पू श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी के संग भैरूबाग मन्दिर में हुए। साध्वीजी श्री सम्यग्दर्शनाजी को देखा तो पाया कि निरन्तर पठन-पाठन उनका मुख्य व्यसन है तथा उनकी विद्वत्ता, विनम्रता, जनकल्याण की भावना व सदाशयता ने मुझ पर गहरी छाप छोड़ी। उनसे ही जानकारी मिली कि उनकी दो बहिनें भी साध्वी-जीवन बिता रही हैं। जिनकी शिष्या गुणों की खान हो—उनकी गुरुवर्या कैसी होगी ? जानने की जिज्ञासा बढ़ी।

मुझे शीघ्र ही उनकी गुरुवर्या पूज्या प्रवर्तिनीजी का जयपुर चातुर्मास में एवं तत्पश्चात् सन् १९८२ में जोधपुर प्रवास में सान्निध्य प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। उनके सान्निध्य का लाभ मेरे लिए मंगल विधायक सिद्ध हुआ।

पूज्या प्रवर्तिनीजी की छवि में प्रशस्त ललाट, अलौकिक तेज पुंज, शान्त स्वरूप, दीर्घ नयन, शरीर में देवभाव का प्रभाव, मुखमण्डल में सर्वजीवों को अभय करने वाली अपूर्व शोभा है।

आशीर्वाद देने के लिए उठे आपके दाहिने हाथ में गुरु पर्वत के बायीं ओर से अन्दर की ओर आने वाली रेखा (साइड रिंग), गुरु पर्वत पर क्रास का चिन्ह, पर्वतों पर चार वृत, बुध एवं सूर्य पर्वत को

घेरती हुई रेखा जो हृदय रेखा से समागम करने जैसी है (मिली नही है—कान्जाइन्ड) तथा शनि पर्वत पर शाखाओ के रूप मे बँटती है, जीवन रेखा एव मस्तिष्क रेखा का एक दूसरे से मिलने की ओर अग्रसरता अन्तर्ज्ञान (इन्ट्यूशन) रेखा की विद्यमानता आपको जनसमूह को विपत्तियो से उद्धार करने वाला उद्धारक, सामाजिक चेतना जगाने एव उसका सफल नेतृत्व करने के लिए ही पृथ्वी पर जन्म लेने का प्रयोजन साबित करता है। (Saviour to protect masses from disaster)

आपकी शिष्याओ पू शशिप्रभाश्रीजी, प्रियदर्शनाश्रीजी, दिव्यदर्शनाश्रीजी, सम्यग्दर्शनाश्रीजी आदि को देखकर स्पष्ट भान होता है कि पारस पत्थर तो लोहे को सोने मे परिवर्तन कर देता है मगर पूज्या प्रवर्तिनीजी ने तो उनके सान्निध्य मे रहने वाली समस्त साध्वियो को ही 'पारस' मे परिवर्तित कर दिया है।

आपकी सरलता, विनम्रता और मौन साधना को निहार कर श्रीसूत्रकृताग की यह सूक्ति स्मरण हो जाती है—

सारद सलिल व सुद्ध हियया,
विहग इव विप्पमुक्का,
वसुन्धरा इव सव्व फासविसहा ॥—२-२-३८

साध्वीजी का जीवन शरदकालीन नदी के समान निर्मल है। वे पक्षी की तरह बन्धनो से विप्रमुक्त और पृथ्वी की तरह समस्त सुख-दुखो को समभाव से सहन करने वाले है।

पूज्या प्रवर्तिनीजी के जीवन की निर्मलता के विषय मे श्री बनारसीदास की यह पक्तियाँ भी स्मरण हो जाती है—

जैसे निसि बासर कमल रहे पक ही मे,
पकज कहावे पै न फँसे दिग पक है,

भवपक मे, कमलवत इनका जीवन है।

पूज्या प्रवर्तिनीजी का जैन आगम साहित्य (मूल, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य) का सतत् अध्ययन एव साहित्य सृजन, विश्वशान्ति, प्राणीकल्याण एवं मानवोत्थान के लिए है।

अस्सी वर्ष की वृद्धावस्था एव शरीर रुग्ण होते हुए भी आप श्रीसघ को श्रीवीतराग देव के पथ पर ले जाने, धार्मिक एव मानव के नैतिक उत्थान के लिए सतत् प्रयत्नशील है।

जयपुर श्रीसघ का अहोभाग्य है कि उन्हे पूज्या प्रवर्तिनीजी के अभिनन्दन का अवसर मिला है। पूज्या प्रवर्तिनीजी का गुणानुवाद—धार्मिक एव सास्कृतिक धरोहरो से विभूषित इस महान मनीषी का ही गुणानुवाद नही है यह जैनधर्म, जैन सास्कृतिक जागरण, धार्मिक प्रवृतियो, सम्यक्त्व, साहित्यिक विकासोन्नयन एव जैन ऐक्य के गुणानुवाद का प्रसंग है।

जिनशासन देव ऐसे शान्तमूर्ति, गम्भीरता के प्रतीक आत्मीयता की खान, पीयूषवाणीदाता को चिरायु बनावें। पूज्या प्रवर्तिनीश्री को कोटि-कोटि वन्दन, शत-शत अभिनन्दन।

☐ श्रीमती स्नेहलता चौरडिया

आगममर्मज्ञा परमपूज्य गुरुवर्या आशुकवयित्री प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्रीजी म सा. जिनकी कीर्ति का डका सम्पूर्ण भारत देश मे बज रहा है। आपश्री के उत्तम श्रेष्ठ गुणो की महत्ता का बखाण प्रत्येक व्यक्ति अपने मुखारविन्द से किये बिना नही रह सकता है।

मेरा परिचय पू गुरुवर्या श्री से आज का नही है। जब मैं आठ-नौ वर्ष की थी तब से ही आपश्री की सान्निध्यता का सुअवसर प्राप्त हुआ था, आपश्री के साथ रहने से मुझे भी कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। पद-यात्रा मे आपश्री के साथ खूब रही। वे दिन मुझे याद आ रहे हैं। मुझमे इतनी समझ नही थी, नादान बालिका थी। मुझसे कोई गलती भी हो जाती लेकिन गुरुवर्याश्री वात्सल्यपूर्वक मुझे समझाते और उस गलती को कभी गलती नही समझते थे।

आपश्री का उज्ज्वल, सयमी जीवन जन-जन को आकर्षित करता है। सरलता, सहजता और विद्वता से प्रभावित होकर अनेक मुमुक्षु व बालिकाओ ने अपने आपको धन्य माना है।

पू गुरुवर्याश्री दीर्घायु होकर समाज की एव स्वय की उन्नति करती रहे और हमे सदा सन्मार्ग बताती रहे इन्ही शुभकामना एव भावनाओ के साथ हार्दिक अभिनन्दन। O

☐ डा० विजयचन्द जैन, लखनऊ

ये बात सन् १९७२-७३ की है जब मेरे आठ वर्षीय पुत्र संजय उर्फ गुड्डू को कुत्ते ने काट लिया था। उन दिनो महाराज जी लखनऊ चौमासा करने आई हुई थी। उन्हे मैंने अपने पुत्र को कुत्ते काटने वाली बात बताई जिस पर उन्होने मेरे पुत्र को धर्म आदि सुनाया और असीम स्नेह व आशीर्वाद दिया। तदुपरान्त वो कलकला चली गयी। तभी मैंने बच्चे को कुत्ते काटने का असर खत्म करने वाली चौदह सुइयाँ लगवाई तथा उसकी बूस्टर भी दी। इसके दो साल बाद मैं कलकत्ते गया वहाँ जाकर मैंने महाराज जी का पता लगाया। इसी बीच मेरे पुत्र गुड्डू की हालत अचानक खराब हो गई। उसमे कुत्ता काटने के उपरान्त हुए लक्षण दिखाई देने लगे। मैं फौरन महाराजजी के पास गया और बच्चे का हाल बताया। वो तुरन्त ही दस किलोमीटर चलकर मेरे बच्चे के पास आईं और उसे धर्म सुनाया। उसके बाद दूसरे दिन पुन. आने को कहकर चली गयी। इस बीच उसी रात बच्चे की हालत ज्यादा खराब हो गई और दूसरे दिन सवेरे पाँच बजे मेरे पुत्र का देहान्त हो गया। उधर उसका देहान्त हुआ और उसी समय महाराज जी का फोन आया। इससे पहले कि मैं उन्हे गुड्डू के देहान्त की बात बताता उन्होने स्वय ही पूछा कि अब हमारी वहाँ आने की आवश्यकता है क्या ? ये सुनकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि उन्हे स्वत ही कैसे आभास हो गया कि अब उनके आने की आवश्यकता नही रही। इस घटना से मुझे महसूस हुआ कि उनका दिव्यज्ञान कितना प्रबल है और यह घटना महाराज जी के प्रबल आत्मज्ञान को प्रमाणित करतो है जिसे मैं आज तक नही भूल सका। O

☐ श्रीमती लक्ष्मी भन्साली

ससार मे ऐसे कम ही महाव्यक्तित्व होते हैं, जिनके दर्शन से स्व-दर्शन की प्रेरणा मिलती है।

मुझे याद है कि आगमज्योति, आशुकवयित्री परम श्रद्धेया गुरुवर्याश्री अपनी शिष्या मण्डली के साथ वि० स० २०३७ मे मिवाना चातुर्मास हेतु पधारी। तब मुझे प्रथम बार आपके दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त हुआ, साथ ही उनके वैराग्य से परिपूर्ण मृदु, ओजस्वी प्रवचनामृत का पान करने का भी अद्वितीय सयोग सम्प्राप्त हुआ, फलस्वरूप ससार से उद्विग्नता जागृत हो गई और मानस-भू मे वैराग्य अकुर का उद्भव हो गया। और तत्क्षण मैंने मन मे सकल्प कर लिया कि मुझे यावज्जीवन के लिए इन समता-मूर्ति गुरुवर्याश्री के चरणो मे आश्रय लेना है, क्योकि सच्ची आत्मिक शान्ति इनके चरणो मे प्राप्त होगी। शान्ति वही दे सकता है जिसने शान्ति प्राप्त कर ली हो।

पू० गुरुवर्याश्री को जब भी मैने देखा, जिस समय मे देखा, जहाँ भी देखा, उन्हे समता की भावनाओ से ओतप्रोत ही देखा।

क्रोध के प्रसग मे भी समतामूर्ति गुरुवर्याश्री को कभी उत्तेजित होते नही देखा, इतनी समता, शान्ति शायद ही कही देखने को मिलती है, जैसे गुरुवर्याश्री मे। हर समय शान्त, सरल, सौम्य गुरुवर्या श्री के निश्रा की शरण भव-भव मे प्राप्त हो।

उनके बहुआयामी व्यक्तित्व एव कृतित्व से ग्रथित यह अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशित हो रहा है। अत्यधिक प्रसन्नता है, किन्तु मैं अकिंचन, अल्पज्ञ, तुच्छ बालिका किन शब्द के द्वारा आपके महान गुणो को अभिव्यक्त करू। क्योकि महान व्यक्ति के जीवन चरित्र को पूर्ण रूप मे तो केवल "श्रद्धा, सभक्ति, सविनय आपके सद्गुणो का अभिनन्दन एव दीर्घायु की शुभकामना करती हुई चरणो मे शत-शत-कोटि-कोटि वन्दन। ○

☐ श्रीमती शान्ता गोलेच्छा

इस धरातल पर कुछेक विभूतियाँ ऐसी है, जो स्वय का उद्धार करने के साथ-साथ अन्यो का उद्धार करने मे भी समर्थ है। कुछेक ऐसी विभूतियाँ होती है जो अपने पुरुषार्थ से सयमी जीवन के सम्पर्क मे आने वाले प्राणियो का उद्धार करने मे सशक्त होती हैं। ऐसी त्याग, तप, चारित्रमय आत्माओ का जीवन विराट, व्यापक और विशाल होता है। उनके हृदय मे प्रत्येक व्यक्ति के प्रति करुणा की भावना भरी होती है। ऐसी ही एक विभूति है "यथानाम तथागुण" धारिका प्रवर्तिनी गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब।

आपश्री से मेरा परिचय ३० वर्ष से है। जब मैं छोटी थी, जब से माता-पिता के धर्मनिष्ठ सस्कारो से सस्कारित होने के कारण मुझे भी धर्म सीखने की प्रेरणा मिलती रही। अत एक दिन मैं उनकी प्रेरणा से प्रेरित होकर जयपुर मे विराजित प्रवर्तिनी महोदयाश्री प ज्ञानश्रीजी म. सा की विदुषी शिष्या पूज्यवर्या श्री सज्जनश्रीजी म सा के पास धर्म सीखने गई। जैसे ही महाराज की सरल सौम्याकृति देखी कि मै उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सकी।

वैसे मुझे महाराज के पास आना-जाना कम ही पसन्द था, किन्तु महाराजश्री के वात्सल्यमय मृदु-मधुर व्यवहार से मन सहज उनकी ओर आकर्षित हो गया। और आने-जाने का क्रम प्रतिदिन प्रारम्भ हो गया।

जब मैं गुरुवर्याश्री को धार्मिक पाठ सुनाती तो कई बार उच्चारण की अशुद्धता करने पर भी बडे प्रेम से समझाती थी। पुन फिर उसे बडे प्रेम से शुद्ध करवाती थी। इस अर्से मे मैंने कभी उनको क्रोध करते हुए नही देखा। और न कभी उन्होने ऐसा ही कहा कि "कितनी बार तुमको शुद्ध बताया फिर भी अशुद्ध बोलती हो।"

ऐसी समतामूर्ति के सयोग से मेरी भी धर्म मे रुचि जागृत हो गई। उनके इस वात्सल्यमय व्यवहार के कारण मेरा आकर्षण गुरुवर्याश्री की ओर दिनानुदिन बढता गया और अल्प समय मे ही मैंने पचप्रतिक्रमण आदि अनेक चीजे सीख ली।

इस प्रकार मुझ जैसी अज्ञानबाला को धर्म मे जोडने का श्रेय-श्रद्धेया गुरुवर्याश्री को ही है। अत उनका मुझ पर अनन्त-अनन्त उपकार है। उस उपकार से मैं कभी उऋण नही हो सकती। गुरुवर्या श्री की कृपा मुझ पर सदा से है और सदा रहेगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। तथा मैं अपने इष्ट देव से

मेरा परिचय पू गुरुवर्या श्री से आज का नही है। जब मैं आठ-नौ वर्ष की थी तब से ही आपश्री की सान्निध्यता का सुअवसर प्राप्त हुआ था, आपश्री के साथ रहने से मुझे भी कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। पद-यात्रा मे आपश्री के साथ खूब रही। वे दिन मुझे याद आ रहे है। मुझमे इतनी समझ नही थी, नादान वालिका थी। मुझसे कोई गलती भी हो जाती लेकिन गुरुवर्याश्री वात्सल्यपूर्वक मुझे समझाते और उस गलती को कभी गलती नही समझते थे।

आपश्री का उज्ज्वल, सयमी जीवन जन-जन को आकर्षित करता है। सरलता, सहजता और विद्वत्ता से प्रभावित होकर अनेक मुमुक्षु व वालिकाओ ने अपने आपको धन्य माना है।

पू गुरुवर्याश्री दीर्घायु होकर समाज की एव स्वय की उन्नति करती रहे और हमे सदा सन्मार्ग वताती रहे इन्ही शुभकामना एव भावनाओ के साथ हार्दिक अभिनन्दन। ○

☐ डा० विजयचन्द जैन, लखनऊ

ये वात सन् १९७२-७३ की है जब मेरे आठ वर्षीय पुत्र संजय उर्फ गुड्डू को कुत्ते ने काट लिया था। उन दिनो महाराज जी लखनऊ चौमासा करने आई हुई थी। उन्हे मैंने अपने पुत्र को कुत्ते काटने वाली वात वताई जिस पर उन्होने मेरे पुत्र को धर्म आदि सुनाया और असीम स्नेह व आशीर्वाद दिया। तदुपरान्त वो कलकत्ता चली गयी। तभी मैंने वच्चे को कुत्ते काटने का असर खत्म करने वाली चौदह सुइयाँ लगवाई तथा उसकी वूस्टर भी दी। इसके दो साल वाद मैं कलकत्ते गया वहाँ जाकर मैंने महाराज जी का पता लगाया। इसी वीच मेरे पुत्र गुड्डू की हालत अचानक खराव हो गई। उसमे कुत्ता काटने के उपरान्त हुए लक्षण दिखाई देने लगे। मैं फौरन महाराजजी के पास गया और वच्चे का हाल वताया। वो तुरन्त ही दस किलोमीटर चलकर मेरे वच्चे के पास आई और उसे धर्म सुनाया। उसके वाद दूसरे दिन पुन. आने को कहकर चली गयी। इस वीच उसी रात वच्चे की हालत ज्यादा खराब हो गई और दूसरे दिन सवेरे पाँच वजे मेरे पुत्र का देहान्त हो गया। उधर उसका देहान्त हुआ और उसी समय महाराज जी का फोन आया। इससे पहले कि मैं उन्हे गुड्डू के देहान्त की वात वताता उन्होने स्वय ही पूछा कि अव हमारी वहाँ आने की आवश्यकता है क्या? ये सुनकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि उन्हे स्वत ही कैसे आभास हो गया कि अव उनके आने की [आवश्यकता नही रही। इस घटना से मुझे महसूस हुआ कि उनका दिव्यज्ञान कितना प्रवल है और यह घटना महाराज जी के प्रवल आत्मज्ञान को प्रमाणित करती है जिसे मैं आज तक नही भूल सका। ○

☐ श्रीमती लक्ष्मी भन्साली

ससार मे ऐसे कम ही महाव्यक्तित्व होते हैं, जिनके दर्शन से स्व-दर्शन की प्रेरणा मिलती है।

मुझे याद है कि आगमज्योति, आशुकवयित्री परम श्रद्धेया गुरुवर्याश्री अपनी शिष्या मण्डली के साथ वि० स० २०३७ मे सिवाना चातुर्मास हेतु पधारी। तव मुझे प्रथम वार आपके दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त हुआ, साथ ही उनके वैराग्य से परिपूर्ण मृदु, ओजस्वी प्रवचनामृत का पान करने का भी अद्वितीय सयोग सम्प्राप्त हुआ, फलस्वरूप ससार से उद्विग्नता जागृत हो गई और मानस-भू मे वैराग्य अकुर का उद्भव हो गया। और तत्क्षण मैंने मन मे सकल्प कर लिया कि मुझे यावज्जीवन के लिए इन समता-मूर्ति गुरुवर्याश्री के चरणो मे आश्रय लेना है, क्योकि सच्ची आत्मिक शान्ति इनके चरणो मे प्राप्त होगी। शान्ति वही दे सकता है जिसने शान्ति प्राप्त कर ली हो।

पू० गुरुवर्याश्री को जब भी मैंने देखा, जिस समय मे देखा, जहाँ भी देखा, उन्हे समता की भावनाओ से ओतप्रोत ही देखा।

क्रोध के प्रसग में भी समतामूर्ति गुरुवर्याश्री को कभी उत्तेजित होते नही देखा, इतनी समता, शान्ति शायद ही कही देखने को मिलती है, जैसे गुरुवर्याश्री मे। हर समय शान्त, सरल, सौम्य गुरुवर्या श्री के निश्रा की शरण भव-भव मे प्राप्त हो।

उनके बहुआयामी व्यक्तित्व एव कृतित्व से ग्रथित यह अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशित हो रहा है। अत्यधिक प्रसन्नता है, किन्तु मैं अकिंचन, अल्पज्ञ, तुच्छ बालिका किन शब्द के द्वारा आपके महान गुणो को अभिव्यक्त करूँ। क्योकि महान व्यक्ति के जीवन चरित्र को पूर्ण रूप मे तो केवल "श्रद्धा, सभक्ति, सविनय आपके सद्‌गुणो का अभिनन्दन एव दीर्घायु की शुभकामना करती हुई चरणो मे शत-शत. कोटि-कोटि वन्दन। ○

☐ श्रीमती शान्ता गोलेच्छा

इस धरातल पर कुछेक विभूतियाँ ऐसी है, जो स्वय का उद्धार करने के साथ-साथ अन्यो का उद्धार करने मे भी समर्थ है। कुछेक ऐसी विभूतियाँ होती है जो अपने पुरुषार्थ से सयमी जीवन के सम्पर्क मे आने वाले प्राणियो का उद्धार करने मे सशक्त होती है। ऐसी त्याग, तप, चारित्रमय आत्माओ का जीवन विराट, व्यापक और विशाल होता है। उनके हृदय मे प्रत्येक व्यक्ति के प्रति करुणा की भावना भरी होती है। ऐसी ही एक विभूति है "यथानाम तथागुण" धारिका प्रवर्तिनी गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब।

आपश्री से मेरा परिचय ३० वर्ष से है। जब मैं छोटी थी, जब से माता-पिता के धर्मनिष्ठ सस्कारो से सस्कारित होने के कारण मुझे भी धर्म सीखने की प्रेरणा मिलती रही। अत एक दिन मैं उनकी प्रेरणा से प्रेरित होकर जयपुर मे विराजित प्रवर्तिनी महोदयाश्री प ज्ञानश्रीजी म. सा की विदुषी शिष्या पूज्यवर्या श्री सज्जनश्रीजी म सा के पास धर्म सीखने गई। जैसे ही महाराज की सरल सौम्याकृति देखी कि मैं उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सकी।

वैसे मुझे महाराज के पास आना-जाना कम ही पसन्द था, किन्तु महाराजश्री के वात्सल्यमय मृदु-मधुर व्यवहार से मन सहज उनकी ओर आकर्षित हो गया। और आने-जाने का क्रम प्रतिदिन प्रारम्भ हो गया।

जब मैं गुरुवर्याश्री को धार्मिक पाठ सुनाती तो कई बार उच्चारण की अशुद्धता करने पर भी बडे प्रेम से समझाती थी। पुन फिर उसे बडे प्रेम से शुद्ध करवाती थी। इस अर्से मे मैने कभी उनको क्रोध करते हुए नही देखा। और न कभी उन्होने ऐसा ही कहा कि "कितनी बार तुमको शुद्ध बताया फिर भी अशुद्ध बोलती हो।"

ऐसी समतामूर्ति के सयोग से मेरी भी धर्म मे रुचि जागृत हो गई। उनके इस वात्सल्यमय व्यवहार के कारण मेरा आकर्षण गुरुवर्याश्री की ओर दिनानुदिन बढता गया और अल्प समय मे ही मैने पचप्रतिक्रमण आदि अनेक चीजे सीख ली।

इस प्रकार मुझ जैसी अज्ञानबाला को धर्म मे जोडने का श्रेय-श्रद्धेया गुरुवर्याश्री को ही है। अत उनका मुझ पर अनन्त-अनन्त उपकार है। उस उपकार से मैं कभी उऋण नही हो सकती। गुरुवर्या श्री की कृपा मुझ पर सदा से है और सदा रहेगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। तथा मैं अपने इष्ट देव से

गुजरात, सौराष्ट्र, बगाल, विहार, मध्यप्रदेश तक फैला दिखाई देता है । जाहिर है उनमे एक अनुपम वाग्मिता है, भाषण देने की मधुर कला है । वह खरतरगच्छ सघ की ज्योति है जिनसे कितनी ही साध्वियाँ प्रकाश ग्रहण कर रही है और अपने मन की तामसता दूर कर रही है। 'भक्तामर स्तोत्र' मे ऐसी ही श्रेष्ठ माताओ, स्त्रियो, नारियो की प्रशसा की गई है । नारी की महिमा मे सूर्य का तेज, चाँद की शीतलता, धरती की सहनशीलता तथा उर्वरता सभी का समीकरण है । मानतुगाचार्य ने ठीक ही कहा है—

स्त्रीणा शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुत त्वदुपम जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मि,
प्राच्येव दिग जनयति स्फुरदशुजालम् ।

—भक्तामरस्तोत्र, २२

आगमज्योति परम तपस्वी साध्वी श्रीमज्जनश्रीजी म को शतश नमन, उनका शतशः अभिनन्दन ।

□ श्रीमती ज्ञानदेवी बेगानी

सरलता, सादगी, सहिष्णुता, समता की प्रतिमूर्ति श्रद्धेय प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज साहब का व्यक्तित्व एक विलक्षण व्यक्तित्व है । मेरा परिचय गुरुवर्याश्री से लगभग २५-३० वर्ष पुराना है । मेरा प्रथम सम्पर्क तब हुआ जब मैं पाकिस्तान से जयपुर आयी । उस समय मेरे जीवन मे चहुँ ओर निराशा ही निराशा थी, क्योकि पाकिस्तान के झगडे में मेरे कई निकटवर्ती सबधियो का निधन हो गया था । जब मुझे ऐसे पावन निर्मल गुरु से मिलने का सयोग प्राप्त हुआ तो मेरे शोकसतप्त, अधकारमय जीवन में प्रकाश की लहर आयी । इन्होने मुझे धर्म की ओर प्रेरित किया अर्थात् मुझ मे धर्म के सुसंस्कार डाले फिर इन सस्कारो से मेरी भावना उत्तरोत्तर बढती गयी । मैं जब भी इनके दर्शनार्थ आती हूँ तो इनके मुस्कराते हुए चेहरे को देखकर, इनकी सरलता और समता भाव को देखकर हर क्षण यही विचार करती हूँ कि हे प्रभु मुझे भी ऐसी सरलता और समता प्राप्त हो । इनका एक विशेष गुण यह है कि जब भी कोई व्यक्ति किसी समस्या के समाधान के लिए या कोई सुझाव लेकर आता है तो ये उसकी बात को बडे ही ध्यान से आदरभाव से सुनती ही नहीं अपितु उसकी समस्या का समाधान करती है और उसे उचित सुझाव भी देती है ।

इनका समग्र जीवन समाजोत्थान तथा शिक्षा के विस्तार और विकास के लिए समर्पित है । इनकी उदारता और प्रेम छोटे बच्चे से लेकर बडे व्यक्ति के दिल को भी स्पर्श कर जाता है । इनका व्यक्तित्व महान फल और छाया से युक्त वृक्ष के समतुल्य है, जिसकी शीतल छाया मे हर व्यक्ति अपने जीवन का उचित ढग से निर्माण कर सकता है ।

□ श्री कपूरचन्दजी श्रीमाल, हैदराबाद

चार पाँच वर्ष पू गुरुवर्याश्री का विचरण बगाल, बिहार, यू पी क्षेत्र मे रहा और दो वर्ष का विचरण गुजरात मे भी रहा । ६७ वर्ष की उम्र मे आपश्री ने पालीताणा की नव्वाणु यात्रा की जहाँ मुझे, यदा-कदा आपश्री के सेवा मे रहने का अवसर प्राप्त हुआ ।

आपके जीवन की एक विशेषता है कि एक सम्प्रदाय मे दीक्षित होकर भी सम्प्रदाय से बँधी नहीं उसका मुख्य कारण है कि सन्त वृत्ति जीवन मे साकार हो गयी ।

केवल इतना ही नही इस सस्था से महाराज साहब का सम्बन्ध अनेक कडियो से जुडा है। हमारी भूतपूर्व प्रधानाध्यापिका श्रीमती प्रकाशवती सिन्हा आपकी सहयोगी एव शैक्षिक निर्देशिका रही। इनके साथ आपका अत्यन्त आत्मीय भाव हम सबने अनुभव किया। अनेक बार आप दोनो के बीच हास-परिहास की वार्ता भी हमारे लिये प्रेरणासूत्र बन जाती थी। एक बार की घटना है नेहरू जयन्ती का आयोजन विद्यालय मे किया गया था। प्रधानाध्यापिकाजी ने नेहरूजी के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश डाला। इस पर महाराज साहब ने परिहास करते हुए उनसे पूछा कि आप नेहरूजी पर इतनी आस्था रखती है, किन्तु आज तक कितने नेहरू बनाये है ?

यद्यपि यह एक परिहास था। किन्तु शिक्षक वर्ग के लिये यह एक दायित्व है कि वह बालक-बालिकाओ को केवल पुस्तकीय ज्ञान ही न प्रदान करे वरन् उनमे राष्ट्र व समाज के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण व सेवा की भावना भी पैदा करे। आध्यात्मिक क्षेत्र की साधिका एव वैराग्य पथ की अनुगामिनी की ऐसी विराट चेतना निश्चय ही अभिनन्दनीय है। एक ऐसा व्यक्तित्व जिसने ससार का परित्याग किया, इसकी माया-ममता-छल-कपट व ईर्ष्या-द्वेष को तिलाञ्जली दी किन्तु विश्व-कल्याण व मानव सेवा से मुख नही मोडा। आज ऐसे अलौकिक व्यक्तित्व का अभिनन्दन करते हुए हम अपने आपको कृतार्थ व अनुग्रहीत कर रहे हैं।

□ श्री विमलकुमार चौरडिया, भानपुरा (म प्र.)

पूज्याश्री का नाम तो उनके द्रव्यानुयोग के विशेष ज्ञान के कारण वर्षो से सुन रखा है किन्तु उनके सान्निध्य का अवसर सन् १९७५ मे पूज्यश्री सम्यानन्दजी एव पूज्यश्री जयानन्दजी म सा. की निश्रा मे जयपुर मे हुए उपधान तप के समय हुआ। मेरे पुण्य का उदय था कि मुझे पूज्यश्री जयानन्दजी म सा की निश्रा मे उपधान करने का अवसर मिला।

उपधान की क्रियाओ को करने के बाद बचने वाले समय का सदुपयोग करने के लिए जैन धर्म मूल, द्रव्यानुयोग का ज्ञान प्राप्त करने हेतु हमने पूज्याश्री सज्जनश्रीजी म सा से आग्रह किया। पूज्याश्री ने बडे प्रेम व सरलता से हमे स्वीकृति दी एव नियमित रूप से हमे—नवतत्व, नय, निक्षेप, स्याद्वाद आदि का ज्ञान दिया।

व्याख्याता कई प्रकार के होते हैं जिनकी अपनी-अपनी शैली होती है। साधारणत उन्हे तीन प्रकारो मे विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम प्रकार के व्याख्याता ऐसे होते है जो घण्टो तक धाराप्रवाह बोलते है किन्तु व्याख्यान के पश्चात् श्रोताओ से पूछा जाय कि उनने व्याख्यान से क्या समझा तो वे कह देते हैं कि सुना तो बहुत पल्ले कुछ नही पडा।

दूसरे प्रकार के व्याख्याता वक्तृत्व कला के नियमो को ध्यान मे रखकर चलने वाले, वाणी के साथ विचारो का सामजस्य रखते है, कवित्व से भरपूर आकर्षक एव मन मोहक शैली के व्याख्यान देते है किन्तु उनकी कथनी करनी मे भेद के कारण, उनके तप-तेज के अभाव के कारण उनका व्याख्यान प्रभावशाली नही हो पाता है।

तीसरे प्रकार के व्याख्याता की भाषा—सस्कारित अलकारो से युक्त स्वर—उदात्त व स्पष्ट ध्वनि युक्त शब्द—शिष्ट एव उदार, वाक्य महान अर्थ वाले, विसगति रहित, असदिग्ध बोध देने वाला, हृदय को छूने वाला, शब्दो, पदो एव वाक्यो मे सगति, प्रत्येक शब्द, प्रकरण, प्रस्ताव—देश, काल, श्रोता

☐ श्री सोहनलालजी बुरड, व्यावर

जिनागम वेत्ती परमविदुषी आर्यारत्न स्वपरोपकारक विविध विषयो पर साहित्य की सर्जना करने वाली, तप और सयम मे निरन्तर निरत रहने वाली प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म का जिसने नामकरण किया, मालूम होता है कि वह अवश्य भविष्यवेत्ता रहा होगा। अन्यथा क्या कारण है कि उनके जीवन व्यवहार मे यथानाम तथागुण की लोकोक्ति पूर्णरूप मे चरितार्थ होती है। वास्तव मे श्रद्धेय साध्वीजी का सम्पर्क मे आने वाले प्रत्येक नर-नारी के प्रति अत्यन्त सौजन्यपूर्ण, मधुर एव वात्सल्यमय व्यवहार होता है। यद्यपि आप अल्पभाषिणी है, निरर्थक बातें करना आपकी प्रकृति के विरुद्ध है, फिर भी जीवनोपयोगी धार्मिक आध्यात्मिक चर्चा मे रस लेती है। आपके साथ ऐसी चर्चा करने वाला प्रभावित हुए बिना नही रहता।

साहित्य पठन की ओर आपकी कितनी तीव्र रुचि है, यह प्रदर्शित करने के लिये एक उदाहरण जो मुझ से सम्बन्धित है, उपस्थित कर देना पर्याप्त होगा।

साध्वीजी महाराज व्यावर नगर मे पधारे। नगर मे जब कोई आत्म-साधक सन्त या सती पधारते है तो उनके सत्समागम का लाभ उठाने को मेरा मन उत्सुक हो उठता है। मै आपकी सेवा मे भी उपस्थित हुआ। उन दिनो अहमदाबाद से मेरे पास "आत्मज्ञान अने साधनापथ" नामक गुजराती पुस्तक आई हुई थी। आपको दिखाई। आपने लेकर सरसरी तौर पर उसे देखा। पन्ने उलट-पलट कर कुछ पृष्ठ पढे और फर्माया कि यह पुस्तक तो मुझे भी पढनी है। मेरी भावना थी कि पहले मै पढ लू फिर आपको दू। मगर आप इतनी उत्सुक थी कि आपने सुझाव दिया दिन-दिन मे मै पढूगी, शाम को आप ले जाकर अध्ययन करते रहना। ऐसा ही किया गया। शाम को जाता, पुस्तक पाट पर रखी तैयार मिलती।

ऐसी है आपकी स्वाध्यायवृत्ति, गुणग्राहकता। वास्तव मे आपका समग्र जीवन सरलता, सज्जनता, नम्रता और समाधि से परिमण्डित है।

देह छता जेनी दशा, वर्ते देहातीत।
ते ज्ञानीना चरणमा हो वदन अगणीत॥
मेरा शत-शत वन्दन!

☐ श्री केशरीचन्दजी पारख

लगभग १५-२० वर्ष पूर्व की यह स्मृति है। मै परम तारक, चरम तीर्थंकर श्री सम्मेत शिखर अधिष्ठाता श्री पार्श्वनाथ प्रभु एव अधिष्ठायक देव श्री भोमीयाजी महाराज के दर्शन, वन्दन, पूजन हेतु सम्मेत शिखर की यात्रा पर गया हुआ था। उन दिनो शात स्वभावी, मृदुभाषी प पू साध्वीजीश्री सज्जनश्री म सा भी अपने शिष्या समुदाय के साथ वही विराजित थी। मै तलहटी मे जिन मन्दिर मे पूजा कर रहा था। पूजा, चैत्यवन्दन आदि करके निवृत्त हुआ था, उसी समय प पू साध्वीजी का भी जिन मन्दिर के प्रागण मे आगमन हुआ।

मेरा यह उनके दर्शन करने का पहला अवसर था। मने विनीत भाव से उन्हे वही मन्दिर के प्रागण मे खमासमणा सहित वदन किया।

उन्होने मुझे एक ओर ले जाकर नम्र वचनो मे समझाया—जिन मन्दिर के प्रागण मे, वीतराग प्रभु के सम्मुख, साधु-साध्वी को वन्दन नही करना चाहिए। इसमे तीर्थंकर देव की आशातना होती है।

आपश्री के जीवन का सहज स्वाभाविक गुण है अध्ययन व अध्यापन। साधक जीवन की क्रियाओ के पश्चात् जीवन का प्रतिक्षण अध्ययन व अध्यापन मे व्यतीत होता है। खरतरगच्छ साध्वी समाज मे आगमज्ञान मे आपका गौरवपूर्ण स्थान है।

मैं गुरुदेव से प्रार्थना करता हूँ कि आप दीर्घायु बन प्राणिमात्र को मार्गदर्शन देती हुई अपने शुद्धत्व सिद्धत्व को प्राप्त करे। इन्ही शुभकामनाओ के साथ चरणो मे कोटि-कोटि वन्दन अभिनन्दन-अभिनन्दन।

☐ श्री भँवरलाल नाहटा, कलकत्ता

प पू प्रवर्तिनीश्री जी सज्जनश्रीजी महाराज खरतरगच्छ की एक महान् विदुषी और प्रभावशाली आर्या रत्न है। यो तो आपके दर्शन अनेकश. हुए किन्तु आपके कलकत्ता चातुर्मास मे सत्सग का मुझे अच्छा लाभ मिला। आपके प्रभावशाली प्रवचन आत्मलक्षी, तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण और ओजस्वी होते थे। आचारागसूत्र जैसे प्राचीनतम आगम की अध्यात्म रस भरी व्याख्या बडे-बडे वक्ताओ के चट-पटे व्याख्यानो से मुमुक्षुओ को अधिक प्रिय लगती, भले श्रोताओ की भीड कम हो। काकाजी (श्री अगर चदजी नाहटा) के आदेश से मैंने विविध तीर्थ कल्प का अनुवाद पर्यूषण के बाद आरभ किया, यह ग्र थ सस्कृत प्राकृत गद्य-पद्य मिश्रित था। प्रतिदिन अनुवाद करता और पूज्य महाराज सा० को दिखा देता। भाषाज्ञान के अभाव मे अटकी हुई गाडी को वे अपने विशाल ज्ञान से आगे चला देते। इस तरह से दीपावली से पूर्व सपूर्ण अनुवाद हो गया। आपके बिना साहाय्य के मेरे जैसा अल्पज्ञ स्वल्प समय मे कभी अनुवाद नही कर पाता। मेरे स्वर्गीय मित्र शिवशकर शास्त्री आपसे मिलते ही रहते थे। उन्होने एक निबध लिखा जो पूरा तो उनका स्वर्गवास हो जाने से न हो सका पर उस पर मेरे नाम से नोट लिखा मिला कि पूज्य सज्जनश्रीजी म० सा० को दिखा दें। वे कहा करते थे कि सज्जनश्रीजी महाराज मे गजब का पौरुष और वाणी मे अमोघता है।

साधुओ की कमी से खरतरगच्छ मे विदुषी साध्वियो से ही गच्छ रूपी रथ का सचालन होता है। जैन कोकिला शासन स्तभ श्री विचक्षणश्री जी महाराज द्वारा दीर्घ दृष्टि पूर्वक प्रवर्तिनी पद का चयन आपकी योग्य प्रतिभा का एक सशक्त प्रमाण पत्र है। आप शतायु हो और सुदीर्घ शासन प्रभावन करते रहे, स्वस्थ रहे ऐसी गुरुदेव से प्रार्थना करता हूँ।

☐ धनरूपमल नागोरी (एम ए, बी एड साहित्यरत्न, न्याय-मध्यमा)

कभी स्वप्न मे भी कल्पना नही थी कि एक परम विदुषी साध्वीजी से ऐसा घनिष्टतम सम्पर्क होगा कि जिसकी सुवास जीवन भर बनी रहेगी। लेकिन ऐसा हुआ। जन्म जन्मान्तर के सस्कारो से अथवा तो सयोगो या पुण्योदय से वे क्षण आये कि सम्पर्क हुआ और आज भी बना हुआ है। तीस [illegible] वर्ष पूर्व जो सुवास दी, वह आज तो द्विगुणित हो गई।

आप सहज भाव से पूछेंगे कि वह सुवास कहाँ है ? तो उत्तर है—वह सुवास है [illegible] श्री सज्जनश्रीजी म० साहब। आज उनके गुणो रूपी [illegible] से सारा जैन समाज सुवासित हो रहा है।

आपके ज्ञान गगा का नीर सदैव बहा और बह रहा है। इतना ही नही वह ज्ञान गगा कई ग्रन्थो के रूप मे प्रवाहित हुई है। श्री कल्पसूत्र जी, श्री भगवतीसूत्रजी, प्रतिष्ठा [illegible] आदि कई [illegible]

साहित्य-समीक्षा

☐ श्री मदनलाल शर्मा जयपुर

(ग्रन्थ के सम्पादक सदस्य)

झाँकता हूँ पल्लवावृत शाख के लघु द्वार से।
ब्रह्माण्ड दिखता है मुझे इस धरा के द्वार से।।
पृथ्वी पर बैठा हुआ मै स्वर्ग को अवलोकता हूँ।
मिलता क्या स्वर्ग और भूलोक मे यह सोचता हूँ।।
लोकमत जिनका हृदय से कर रहा है आज वन्दन।
मानवी हो या कि मानव स्वर्ग का वह दूत पावन।।
मृत्तिका घट मे भरे जो आत्मा के शील गुण।
है वही निर्गुण प्रभु का अश प्राणी मे सगुण।।

जहाँ सात्त्विक वृत्तियो का प्रसार प्रभाव हो। स्नेह, प्रेम, अप्रमाद, अहिसा एव ज्ञानार्जन का प्रवाह जहाँ निरन्तर प्रवाहित हो। जहाँ चिन्तन ही चिन्तन हो तथा चिता से मुक्ति का वातावरण हो स्वर्ग वही है, वही है, वही है। और,

ऐसा व्यक्तित्व जो आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत हो। विनय एव करुणा से जिसका हृदय परिपूर्ण हो। जो निर्लिप्त भाव से प्रकृतिस्थ हो कमलवत् ससार में रहकर ससार को ज्ञान सौरभ प्रदान कर रहा हो वही पुरुष या प्राणी अलौकिक है, स्तुत्य है, वन्दनीय है? निर्गुणवादी कबीर ने भी ऐसे ही व्यक्तित्व को ईश्वर से अधिक महत्वपूर्ण मानकर कहा है—

गुरु गोविन्द दोनो खडे काके लागू पाय।
बलिहारी गुरुदेव की गोविन्द दियो बताय।।

ऐसे ही वातावरण और ऐसे ही व्यक्तित्व का सौभाग्य से साहचर्य प्राप्त हुआ। प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी म सा और उनकी शिष्या साध्वीवृन्द का वातावरण और व्यक्तित्व दोनो ही ने मेरे हृदय को अत्यन्त प्रभावित किया। प्रेरणा और क्रियाशीलता का ऐसा सामजस्य यदा कदा ही देखने को मिलता है। उपाश्रय मे जाते ही लगा कि "पवित्रता" शुभ्रवस्त्रावृता हो इन सौम्यगुणा साध्वी शरीरो मे साकार रूप मे उतर आई है। सरलता और ज्ञानपिपासा तथा धर्मलाभ हेतु निरन्तर साधना यहाँ चहुँ ओर दृष्टिगत होती है। साध्वी एव श्रावक मडल अपने केन्द्र प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी के चारो ओर चितनार्थ, साधनार्थ एव विचार विमर्शार्थ छाया रहता है?

प्रवर्तिनी आगमज्ञा सज्जनश्री का ज्ञान असीम है। अस्तु उनके द्वारा किया गया समाधान हृदयस्पर्शी होता है। जैनदर्शन हो या कि सनातन मान्यताये सभी पर आपका समान अधिकार है। अनेक आगम ग्रथो का कई बार पारायण कर आप "आगमज्ञा" कहलाई हैं। देववाणी (सस्कृत) पर तो आपका पूर्ण अधिकार है। हिन्दी, गुजराती, प्राकृत, अँग्रेजी, राजस्थानी भाषा पर भी आपका अधिकार है। भावनामय जीवन है अत जीवन मे काव्यमयता का प्राधान्य है। आपने कई सरल गीतकाओ की रचना की है एव अनेक दुरूह ग्रन्थो का सरल हिन्दी भाषा मे अनुवाद किया है।

आपश्री की पट्ट शिष्या साध्वी श्री शशिप्रभाजी की धर्मशीलता, धर्म-सलग्नता एव ज्ञान-सम्बोध, किसी भी कार्य के करने मे जीवन्त क्रियाशीलता को देखकर ही पूजनीया गुरुवर्या सज्जनश्रीजी के

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज का अद्भुत-अनुवाद-कौशल

—गणी मणिप्रभसागरजी

विद्वानो ने शब्द को 'ब्रह्म' की उपमा दी है। 'शब्द' ब्रह्म है, इसका मतलब है, 'शब्द' अनन्त शक्तिसम्पन्न, अनन्त अर्थ और पर्याय वाला एक महत्तत्व है। जिस प्रकार एक छोटे से बीज मे विराट् वृक्ष की अनेक, अगणित पत्तियाँ व असख्य बीजो की सत्ता छिपी रहती है, उसी प्रकार इस छोटे से 'शब्द' अक्षर मे अगणित अर्थो का रहस्य छुपा रहता है।

जैनाचार्यो ने सूत्र को 'सुत्त' अर्थात् सुप्त कहा है, जिसके भीतर अगणित अर्थ और रहस्य छुपे हो, ज्ञान की अनेकानेक किरणे जिसके भीतर सुप्त-गुप्त हो, और जिसे वाचक, व्याख्याता अपनी सम्यक् प्रज्ञा से जागृत करता है, उस रहस्यपुञ्ज शब्द को सूत्र या 'सुत्त' कहा गया है।[1]

सूत्र का अर्थ समझना कठिन है, इसके लिए शास्त्र का तलस्पर्शीज्ञान तो चाहिए ही, व्याकरण और भाषा-शास्त्र पर अधिकार भी होना चाहिए और साथ ही आगम, परम्परा, इतिहास और दर्शन का भी गम्भीर ज्ञान होना चाहिए।

'शब्द' देश-काल-परिस्थिति के परिवेश मे अपना अर्थ बदलता रहता है, अपना रूप—स्वरूप परिवर्तित करता रहता है। यदि हमे उसके इस परिवर्तन की परम्परा और परिवेश का ज्ञान नही है तो हम शब्द का सम्यग्अर्थबोध नही कर सकते। ब्रह्म की भाँति शब्द अनेक रूप, अनेक अर्थ वाला है, अत व्याख्याता को शब्द समग्र रूप का ज्ञान/परिज्ञान होना आवश्यक है, तभी वह शब्द के रूप मे सुप्त अर्थ रूप ज्ञान ज्योति को प्रकाशित कर सकता है।

भोजन करते समय किसी ने अपने सेवक से कहा—'सैन्धवमानय ! सैन्ध वलाओ !' मूर्ख सेवक ने सिन्धु देश मे जन्मा घोडा लाकर खडा कर दिया, क्योकि 'सैन्धव' नाम घोडे का भी है। स्वामी ने कहा—मूर्ख ! अभी तो मै भोजन करने वैठा हूँ, भोजन मे नमक नही है, इसलिए सैन्धव नमक लाने को कहा और तूने घोडा लाकर खडा कर दिया।

तो शब्द का अर्थ-वोध करने के लिए देश-काल-परम्परा-दर्शन और मनोभावो का परिज्ञान होना भी आवश्यक है। 'शब्द' ब्रह्म को वही पहचान मकता है, वही व्याख्यात कर सकता है, जिसका अध्ययन और निरीक्षण चतुर्मुखी हो, जो वहुश्रुत वहुअधीत हो। अन्यथा शब्द के अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है।

---

१ पासुत्तममं सुत्त अत्थेणावोहिय न त जाणे —वृह० भा ३१.

नई रचना/सर्जना करना एक स्वतन्त्र कला है, इसमें जन्मजात प्रतिभा की प्रधानता है, किन्तु अनुवाद करना एक कठिन कला है। इसमें शब्द शास्त्र का गम्भीर ज्ञान, आगम-इतिहास आदि विषयों का परिपूर्ण परिशीलन होना बहुत ही आवश्यक है। नवसर्जना में भी अनुवाद करना कठिन है। वास्तव में कुशल और सफल अनुवादक वही हो सकता है, जिसके ज्ञान की चतु सीमा विस्तृत हो और अनुभव परिपक्व हो।

अनुवादक सिर्फ ट्रांसलेटर मात्र नहीं होता, वह शब्दों का व्याख्याकार भी होता है। शब्दों अर्थ और व्यंजन का गम्भीर ज्ञाता और उद्घाटक होता है, तभी वह अनुवाद्य ग्रन्थ के साथ के साथ सम्पूर्ण न्याय कर सकता है। साथ ही अनुवादक अनाग्रहवादी, तटस्थ विचारक और सम्यग्बोधि होना चाहिए। वह शब्दों में सुप्त अर्थ को अपनी मान्यता व धारणा का रंग नहीं देता, किन्तु शब्दों के सन्दर्भ को समझकर उसके पूर्वापर की परम्परा को ग्रहण कर उसका वास्तविक रूप निखारता है/उघाड़ता है। अनुवादक की बुद्धि और भाषा रंगीन बोतल नहीं होना चाहिए, जिसमें रखी प्रत्येक वस्तु बोतल के रंग में ही दीखने लगे, किन्तु उसकी बुद्धि और वाणी तो शुभ्र श्वेत शीशी होती है, जो वस्तु के असली रूप को दर्शाती है। यही अनुवादक की कुशलता-नीति निष्ठता और सम्यग्सम्बुद्धता है।

प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज के बौद्धिक व्यक्तित्व में यह विरल विशेषता है कि वे एक सृजनधर्मी कवयित्री हैं। काव्यकला उनको जन्मजात गुण के रूप में प्राप्त है। उनकी भक्ति-उपदेश-वैराग्य प्रधान रचनाएँ बहुत ही ललित और जीवन्त प्रेरणा भरी हैं। उनका स्वर भी मधुर है, जो सोने में सुगन्ध कहा जा सकता है। वे संस्कृत-प्राकृत आदि भाषा की मर्मज्ञा हैं और न्याय-दर्शन आदि शास्त्रों की विदुषी हैं। किन्तु इसके साथ ही उनकी एक अन्य दुर्लभ विशेषता है, और वह है, अनुवाद-कुशलता।

प्रवर्तिनीश्रीजी की प्रज्ञा इतनी जागरूक है कि विषय को एक ही बार में गहराई से पकड़ लेती हैं और पदानुसारी बुद्धि की तरह एक ही शब्द को आधार बनाकर उसके पूर्वापर सन्दर्भ को सम्यग्रूप से ग्रहण कर लेती है। उन्होंने नई रचनाओं के साथ ही कई सुन्दर व उत्कृष्ट अनुवाद भी किये हैं, जो सम्पूर्ण जैन समाज में अध्यात्म-पिपासु पाठक वर्ग में समादृत हुए हैं, उनके अनुवाद चाव से पढे जाते हैं और पाठक उनमें मूल ग्रन्थ का सा रसास्वाद पाकर बार-बार पढता है। उसमें रस-विभोर हो जाता है।

(१) अध्यात्म प्रबोध : देशनासार

प्रवर्तिनीश्रीजी द्वारा अनूदित रचनाओं में से कुछ रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं, जैसे अध्यात्म प्रबोध-देशनासार तथा द्रव्य-प्रकाश। ये दोनों ही ग्रन्थ खरतरगच्छ के विश्रुत विद्वान प्रसिद्ध अध्यात्मवादी श्रीमद् देवचन्द्रजी की रचनाएँ हैं। श्रीमद् देवचन्द्रजी का जन्म बीकानेर के निकटवर्ती ग्राम में लूणिया गोत्र में ही हुआ। उन पर पं० बनारसीदासजी आदि की अध्यात्मवादी रचनाओं का विशेष प्रभाव पड़ा। और उस युग में अध्यात्मप्रधान रचनाओं की विशेष आवश्यकता अनुभव कर उन्होंने अपनी लेखिनी उठाई और अनेक गम्भीर अध्यात्म प्रधान ग्रन्थों की सर्जना की। उनकी भाषा में सहजता और अध्यात्म रसिकता की स्पष्ट झलक है। देशनासार, एक प्राकृत गाथा बद्ध ग्रन्थ है, इसमें मुख्यत आत्मा, सम्यग्दर्शन, कर्म आदि गभीर आध्यात्मिक विषयों की चर्चा है। लेखक ने स्वानुभव के आधार पर इन विषयों की बड़ी सुगम और हृदयस्पर्शी विवेचना की है। अध्यात्मविषयक यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण कृति है और अब तक अप्रकाशित ही थी। प्रसिद्ध विद्वान श्री अगरचन्द जी नाहटा ने इस कृति का अनुसन्धान किया और विदुषी

आर्यारत्न श्री सज्जनश्रीजी महाराज ने इसकी स्वोपज्ञवृत्ति के आधार पर वि स. २०२५-२७ के मध्य इसका सुन्दर भावपूर्ण अनुवाद किया है। यह अनुवाद, अनुवाद ही नही, बहुत ही सुन्दर भावोद्घाटिनी व्याख्यायुक्त है। विदुषी आर्या श्रीजी ने अपने ज्ञानरस को शब्दो की कटोरियो मे इस प्रकार परोसा है कि अध्यात्म रस का भूखा पाठक आनन्दपूर्वक पीता रहे, पीता रहे, तृप्ति का अनुभव करता रहे। अध्यात्मप्रधान विषय होकर भी विवेचन बहुत ही सरल और सर्वांग है। बीच-बीच मे अन्य ग्रन्थो के सन्दर्भ देकर आपने विवेचन को अधिक प्रामाणिक और परिपूर्ण बना दिया, यह आपकी बहुश्रुतता का स्पष्ट प्रमाण है। देशनासार—वास्तव मे देशना (जिनप्रवचन) का सार है, नवनीत है।

(२) **द्रव्य प्रकाश**—अध्यात्मवेत्ता श्रीमद् देवचन्द्र जी गणि की यह रचना द्रव्यानुयोग पर आधारित है। ब्रजभाषा में दोहा, सवैया, चौपाई, कुन्डलिया, चन्द्रायणा, कवित्त आदि छन्दो मे निबद्ध है। यह ग्रन्थ तीन अधिकारो मे विभक्त है, प्रथम अधिकार मे षट्द्रव्य का विवेचन है, द्वितीय अधिकार मे कर्म प्रकृतियो का तथा तृतीय अधिकार नय, निक्षेप, स्याद्वाद तथा षड्दर्शन की समीक्षा करते हुए जैन-दर्शन की तर्क-युक्तिसगत विवेचना है।

मूल काव्य ब्रजभाषा मे होने से शब्दो को समझ पाना तो सरल है, किन्तु विषय बहुत गभीर है। बिना जैनदर्शन व अन्य दर्शनो के अध्ययन के इस ग्रन्थ का विवेचन तो क्या, हार्द समझना भी कठिन है। इस विवेचन की स्पष्टता और सरलता से यह पता चलता है कि पूज्य प्रवर्तिनी श्री जी का ज्ञान सिर्फ शास्त्रीय ज्ञान नही है, वह ज्ञान आत्मसात् हो चुका है, उनके हृदय के कण-कण मे रम चुका है। इसलिए विवेचन करते हुए बडी सहज शब्दावली मे बहुत ही सरलतापूर्वक वे उसके हार्द को अभिव्यक्ति देने मे समर्थ हुई है।

इस छोटे से विवेचन मे जैनदर्शन का सम्पूर्ण सार समा गया है। जो विषय हजारो पृष्ठों मे लिखा जाता है, वह विषय विवेचन के सिर्फ ७०-७५ पृष्ठो मे समा गया है। इसे ही हम 'सिंधु बिन्दु समाये' की कुशलता कह सकते है।

इन दोनो अनुवादो पर से पूज्य आर्या श्री जी की अध्यात्म एव दर्शन विषय मे गहरी पैठ और उसकी हृदयगमता की स्पष्ट प्रतीति होती है।

शब्दो की सरलता और यथार्थ उपयोग उनके भाषाज्ञान का भी प्रमाण है। एक जैन साध्वी द्वारा किया गया यह विवेचन वास्तव मे गौरव का विषय है और साध्वी समुदाय के वैदुष्य का ज्वलन्त प्रमाण है।

(३) **कल्पसूत्र—भाषानुवाद**—"कल्पसूत्र" श्वेताम्बर जैन समाज की "रामायण" मानी जाती है। सम्पूर्ण जैन समाज मे साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका चतुर्विध तीर्थ मे इस शास्त्र का सबसे अधिक पठन, पाठन, वाचन, श्रवण होता है। इस शास्त्र की सबसे अधिक व्याख्याएँ/अनुवाद छपे है। विविध प्रकार की साज-सज्जा से स्वर्ण-रौप्य चित्रमय, बडे अक्षरो मे सुनहले अक्षरो मे छपे हुए इस शास्त्र की विविध प्रकार की प्रतियाँ देखकर सहज ही अनुमान होता है कि युग-युग से इस शास्त्र का सर्वाधिक महत्व रहा है। जिन प्रतिमा की भाँति ही यह शास्त्रराज भी जनता की श्रद्धाअर्चा का विषय बना हुआ है।

पर्युषण पर्व के दिनो मे तो जैन मन्दिर-उपाश्रय-स्थानक आदि धर्म सभाओ मे कल्पसूत्र का वाचन करना, एक प्राचीन परम्परा रही है, और आज भी इसका सजगता व उत्साहपूर्वक पालन होता है।

"कल्प" शब्द का एक अर्थ है, "आचार"। नियम व समाचारी सम्बन्धी मर्यादाएँ, जैसे स्थविर कल्प, जिनकल्प आदि। तथा "कल्प" शब्द का एक अर्थ है—इच्छित वस्तु प्रदान करने वाली दिव्य शक्ति, जैसे कल्पवृक्ष, कल्पद्रुम।

कल्पसूत्र—अपने दोनो ही अर्थों मे सार्थक है। यह कल्पवृक्ष की भांति दिव्य है। इच्छित फल—मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करने मे समर्थ है, तो श्रमण जीवन की आचार-मर्यादा का दिग्दर्शन भी कराता है तथा साथ ही महापुरुषो, तीर्थंकर भगवन्तो के पवित्र चरित्र का वर्णन कर सभी वांछित फल प्रदान करने वाला शास्त्र है। सस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-गुजराती-हिन्दी-अंग्रेजी आदि भाषाओं मे शताधिक सस्करण छप चुके हैं, फिर भी बराबर उसकी माग रहती है। जनता की मांग व युग की आवश्यकता को देखकर कलकत्ता के श्री जिनदत्त सूरि सेवा सघ, तथा स्थानीय धर्मप्रेमियो की प्रार्थना पर पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म ने वि० स० २००६ मे उसका सरल हिन्दी अनुवाद विवेचन तैयार किया था। यह विवेचन-अनुवाद खरतरगच्छीय उपाध्याय श्री लक्ष्मीवल्लभ गणि कृत कल्पद्रुमकलिका के आधार पर किया गया हे। उसकी कृति का यह एक स्वतन्त्र अनुवाद है।

जैसा कि प्रारम्भ मे मैंने कहा है—अनुवाद करना, मौलिक रचना से भी कठिन है, इसमे मूल ग्रन्थकार (शास्त्रकार) की भावना, उनका उद्देश्य और तत्कालीन समाज मे प्रचलित शब्दो के अर्थ को समझना बहुत ही महत्व का है।

दो हजार वर्ष पुराने शास्त्र का अनुवाद करते समय दो हजार वर्ष पुरानी सभ्यता, सस्कृति, परम्परा, इतिहास, लोकाचार और दार्शनिक मान्यताओ का यदि ज्ञान नही है तो अनुवादक मूल शास्त्र के साथ न्याय नही कर सकता। अनुवादक विशेषज्ञ और कुशलप्रज्ञ होना चाहिए। यह सब विशेषता प्रवर्तिनीश्रीजी कृत अनुवाद पढते समय स्वय सजीव देखी जाती है। अनुवाद पढते समय मूल शास्त्र पढने का आनन्द अनुभव होता है। कही ऊब, ऊलझन नही, दुर्गमता नही और दुर्बोधता भी नहीं। ऐसा लगता है, नदनवन की सीधी सपाट स्निग्ध धरती पर विचरण कर रहे हैं।

कल्पसूत्र जैसे विशाल शास्त्र का अनुवाद अनुवादक की दृढ इच्छा शक्ति, निष्ठा, तन्मयता और एक कार्य मे जुटकर उसे पूर्ण कर देने की प्रबल आत्मशक्ति का द्योतक हे।

इसकी भाषा प्राञ्जल है। मूल पाठ का भावग्राही अनुवाद इतना सरल है कि फिर उसकी परिभाषा बताने की, व्याख्या करने की आवश्यकता नही लगती। चूकि यह शास्त्र प्रवचन का विषय है। इसलिए इसकी भाषा को सहज जनबोध्य रखना अनुवादक की समयज्ञता और जनरुचि का आदर करना ही माना जायेगा।

भारत की एक प्राचीन परम्परा जहाँ स्त्री को वेद पढने के अधिकार से ही वचित रखती है और आज भी कुछ परम्पराएँ स्त्री को शास्त्र-पढने के अधिकार देना नही चाहती। ऐसी स्थिति मे एक विदुषी साध्वी (नारी) इतने महत्वपूर्ण शास्त्र की इतनी सुन्दर विवेचना, और व्याख्या करती है, यह भारतीय सस्कृति के गौरव मे चार चाद लगाने वाला विषय है। जैन परम्परा की समत्व भावना का यह स्पष्ट उद्घोष है, और इस परम्परा की उदारता, गरिमा का अखण्ड मण्डन है, जो युग-युग तक शोभास्पद बना रहेगा।

—卐—

आर्या सज्जनश्रीजी की काव्य-साधना

—डॉ० नरेन्द्र भानावत
(जयपुर)

काव्य और अध्यात्म का गहरा सम्बन्ध रहा है। दोनो का उद्देश्य रस-दशा की प्राप्ति है। रस-दशा वह दशा है, जहाँ तमस और रजस गुण तिरोहित हो जाते है और सात्त्विक गुणो का उद्रेक होता है। यह दशा हृदय की मुक्त अवस्था है, जहाँ सुख-दु ख से परे दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है। काव्यशास्त्रियो ने रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा है और अध्यात्म साधक तो ब्रह्मलीन अवस्था मे रहता ही है। जब अध्यात्म साधक अपनी अनुभूति को शब्द का रूप देता है तब जो काव्य का सृजन होता है, उसका आनन्द हृदय की मुक्त दशा का आनन्द ही है। यहाँ न राग रहता है, न द्वेष। आर्यारत्न सज्जनश्रीजी इस काव्य-पथ की अध्यात्म साधिका है।

हिन्दी साहित्य मे भक्ति काव्य का विशेष महत्व है। अपने आराध्य के प्रति निश्छल समर्पण और विनम्र आत्म-निवेदन भक्ति-चेतना का मूल तत्त्व है। भक्ति-काव्य को समृद्ध करने मे पुरुष-भक्त के साथ-साथ स्त्री भक्त कवयित्रियो की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। निर्गुणधारा की कवयित्रियो मे दयाबाई, सहजोबाई, रूपादे, उमाबाई, सरूपाबाई, गबरीबाई आदि प्रसिद्ध है तो सगुणधारा की कवयित्रियो मे कृष्ण भक्ति शाखा के अन्तर्गत मीराबाई, सोढानाथी, छत्रकवरीबाई, सम्मानबाई, सौभाग्य-कुवरी आदि के नाम हमारे सामने आते है तो राम-भक्ति शाखा के अन्तर्गत प्रतापकुवरी, रत्नकवरी और चन्द्रकलाबाई के नाम विशेष उल्लेखनीय है। डिंगल परम्परा की कवयित्रियो मे झीमा चारणी, पद्मा चारिणी, चम्पादे रानी आदि प्रसिद्ध हैं।

कृष्ण और राम को आराध्य बनाकर अपने भाव-पुष्प समर्पित करने वाली कवयित्रियो के समानान्तर ही वीतराग प्रभु ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, श्रमण भगवान् महावीर आदि तीर्थंकरो एव सामान्य रूप से जिनेन्द्र भगवान् के चरणो मे अपनी भक्ति-वन्दना निवेदित करने वाली साध्वी परम्परा की कई कवयित्रियाँ हुई हैं। उनमे गुण-समृद्धि, महत्तरा, विनयचूला, पद्मश्री, हेमश्री, हेमसिद्धि, विवेकसिद्धि, विद्यासिद्धि, हरकुबाई, हुलासाजी, सरूपाबाई, जडावजी, आर्या पार्वतीजी, भूरसुन्दरीजी, रत्नकुवरी आदि विशेष उल्लेखनीय है। इसी परम्परा मे आर्यारत्न सज्जनश्रीजी का विशेष स्थान है।

आर्या सज्जनश्रीजी बहुआयामी प्रतिभा की धनी है। प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओ पर आपका अच्छा अधिकार है। आगम एव सैद्धान्तिक ग्रन्थो का आपने गहरा अध्ययन किया है और उनकी व्याख्या-विवेचना मे भी अच्छी सफलता प्राप्त की है। आप हृदय से कोमल, स्वभाव

से मधुर है। आपकी कोमल और माधुर्य भावना कविता के स्वरो मे फूट पडी है। 'ज्ञान पुष्पाजलि', 'श्री जैन गीताजलि', 'सज्जन-विनोद' आदि नाम से आपकी कविताओ के लघु सकलन प्रकाशित हैं। आपकी समस्त रचनाओ का एक प्रतिनिधि सगह प्रकाशनाधीन है।

आपकी कविताएँ प्रधानतया मुक्तक रूप मे हैं। इन्हे पद या गीत कहना अधिक उपयुक्त होगा। इन मुक्तको के दो प्रधान भेद किये जा सकते है। स्तुतिपरक मुक्तक तथा वैराग्यप्रधान उपदेशात्मक मुक्तक। स्तुतिपरक मुक्तक के दो प्रकार हैं—एक जिनस्तुति या तीर्थंकर-भक्ति और दूसरा गुरु-स्तुति या गुरु भक्ति। जिन-स्तुति मे सामान्य रूप से उन जिनेन्द्र भगवान के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति व्यक्त की गयी है, जिन्होने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर अखण्ड आनन्द स्वरूप मुक्ति प्राप्त कर ली है। जो अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त बल—पराक्रम के धारक हैं, जो क्षमासागर, करुणासागर और परम दयालु है। जिनका सत्सग और सान्निध्य अपार शान्ति, असीम सुख और दिव्य आनन्द प्रदान करता है। वे जिनेन्द्र भगवान् जिन्होने लोक-कल्याण के लिए तीर्थ की स्थापना कर धर्म-चक्र प्रवर्तन किया है, वे "तीर्थंकर" कहलाते हैं। ऐसे तीर्थंकर २४ माने गये है। इनकी स्तुति और महिमा मे लिखे गये स्तवन "चौवीसी" नाम से प्रसिद्ध है। देवचन्द्रसूरि, यशोविजय, आनन्दघन जैसे अध्यात्म-महापुरुषो की 'चौबीसी सज्ञक' रचनाएँ अत्यन्त लोकप्रिय हैं। साध्वी सज्जनश्रीजी ने भी २४ तीर्थंकरो की स्तुति मे 'चौवीसी' लिखी है। इसमे आपके हृदय की विनय और समर्पण भावना अभिव्यक्त हुई है। कवयित्री इनके दर्शन, पूजन और मिलन के लिये उत्कठित है —

"वीर प्रभु दर्शन दो विन दर्शन दुःख पाऊँ　　(स्थायी)
मुझ को दर्शन लगता प्यारा, जिससे दुःख जाता है मारा,
　　　　नित उठ मन्दिर जाऊँ · · ·॥१॥
मोहन मुख के दर्शन जिस दिन, भगवन् होते नही है उस दिन,
　　　　दिन भर मै पछताऊँ　　॥२॥
जिस दिन दर्शन करती तेरा, जीवन धन्य मानती मेरा,
　　　　अनुपम सुख को पाऊँ　· ॥३॥
प्रतिदिन दर्शन होवे मुझको, सदा करूँ मैं वन्दन तुझको,
　　　　"सज्जन" तव यश गाऊँ　　॥४॥

तीर्थंकर स्तुति मे कवयित्री ने भगवान् महावीर, पार्श्वनाथ एव नेमिनाथ के प्रति विशेष पद लिखे है। महावीर जयन्ती एव महावीर निर्वाण दिवस (दीपावली) के प्रसग पर भी कई गीत लिखे हैं, जिनमे महावीर की जीवन-साधना से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सफल और सार्थक बनाने का आह्वान है। नाम-स्मरण पर बल देते हुए कवयित्री कहती है—

"वीर-वीर मन रट ले, प्रभु वीर हरे सब पीर,
जिनका नाम है महावीर, उनका आभारी जग सारा ॥१॥

उनके तेजस्वी प्रभामण्डल को देखकर कवयित्री उस पर मुग्ध है —

जब से देखी है अदा, उस प्यारे की,
सूरत आँखो मे बसी, दुनिया के उजारे की ॥१॥
है दिल मे तमन्ना फखत, 'सज्जन' को इतनी,
सूरत दिखला दे कोई, जीवन के सहारे की ॥२॥

कवयित्री वीर प्रभु के चरणो मे सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत है :—

एक बार जो नाथ निहालूँ, प्रेमाश्रु नीर से चरण पखालू,
तन-मन-धन सब अर्पण कर दूँ, प्रभु तब पद-पूजन मे ॥१॥

कवयित्री पार्श्वनाथ से अनुनय-विनय करती है कि वे उसकी नैया को पार उतार दें। वह उनके दर्शन के लिए उत्कठित है। उनका दर्शन चन्द्रमा की तरह शीतल और सूर्य की तरह अन्धकार को हटाने वाला है—

तुम दर्शन है शरद् चन्द्रिका, शीतलता का झरना,
रोग, शोक सताप मिटावे, जरा, जन्म और मरना।
तुम दर्शन है ज्ञान दिवाकर, तिमिर हटावे मन का,
हो उद्योत ज्योति इक झलके, मिले सुफल जीवन का ॥१॥

कवयित्री पार्श्वनाथ के सौन्दर्य पर मुग्ध है —

मन मोहनगारा, पार्श्व जिनन्द लागे प्यारा,
सावरी सूरत लागे प्यारी, निरख मन मोद अपारा,
मन " ' ॥१॥
मस्तक मुकुट कर्ण कुण्डल द्वय, गल बिच मौक्तिक हारा,
मन"" ॥२॥
चिन्ताचूरन वाछापूरण, चिन्तामणि विरुद तुम्हारा,
मन " " ॥३॥

नेमिनाथ के प्रति राजुल के माध्यम से कवयित्री ने अपने जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध जोडा है। पशुओ के क्रन्दन से पसीज कर नेमिनाथ तोरण मे लौट पडते है और सन्यस्त हो आत्म-साधना मे लग जाते है। राजुल विरह-व्यथित हो उठती है—

सखी! सुन तू बात हमारी, विरहा जियरा जलाय,
जाऊँ मै भी सग पिया के, उन विन कुछ न सुहाय।

वर्षा ऋतु मे यह वियोग असह्य बन जाता है। जलधारा तीर-सी चुभती है। पपैया का पीऊ-पीऊ का स्वर हृदय को विदीर्ण करता है। कोयल की कुहू-कुहू हृदय मे हूक उठाती है। वह सखी से अनुनय-विनय करती है —

मुझे नेमि पिया से मिला दो सखी · · · ।
नयन युगल यह प्यासे दरश के, इन्हे दर्शन नीर पिलादे सखी ॥१॥
मैं दुखियारी पिया के विरह मे, मरती हूँ मुझको जिला दे सखी ॥२॥
हाथ जोड तेरे पैया पडत हूँ, मेरे प्रियतम को दिखला दे सखी ॥३॥
कैसे मनाऊँ मै रूठे पिया को, कोई ऐसी रीति सिखादे सखी ॥४॥

कवयित्री के लिये नेमिनाथ ही मन-मन्दिर के देव है। वह उन्हे उपालम्भ भी देती है। राजुल के माध्यम से विरहानुभूति का जो वर्णन है, वह कवयित्री की आध्यात्मिक भावलीनता का प्रतीक है।

कवयित्री अपनी लघुता, कर्म-मलिनता और अपने आराध्य की महानता एव वीतरागता का वर्णन कर अपनी शरण मे लेने के लिये उनसे आत्म-निवेदन करती है —

तू शिववासी, मैं जगवासी अन्तर बहुतेरा रे,
तेरे और मेरे बीच में, अन्तर बहुतेरा रे।
कैसे ॥१॥

वीतराग तू मैं हूँ सरागी कर्मों ने घेरा रे,
मुझको तो प्रभु अशुभ कर्मों ने घेरा रे।
कैसे ॥२॥

सुख सिन्धु भगवान तुम्ही हो, मिटा दो फेरा रे,
भव-भव का प्रभु जल्दी मिटा दो फेरा रे।
कैसे ॥३॥

स्तुतिपरक मुक्तकों में कवयित्री ने तीर्थंकरों के अतिरिक्त अपने दादा गुरुओं श्री जिनदत्तसूरि, श्री जिनकुशलसूरि, श्री जिनचन्द्रसूरि आदि के प्रति अपनी गुरु-भक्ति व्यक्त करते हुए उनके तपस्वी संयमी जीवन और धर्म प्रभावक व्यक्तित्व की अभिवन्दना की है। उनकी पूजा-अर्चना में कवयित्री भक्ति की केसर, शुभ भाव का चन्दन, निर्मल मति का कपूर, स्नेह के फूल चढ़ाती है। श्रद्धा के अक्षत, शुद्ध मनोवल के श्रीफल और सद्ज्ञान रूपी दीपक की जोत से उनकी पूजा करती है। यह भाव-पूजा कितनी भव्य और दिव्य बन पडी है।

गुरुदेव तुम्हारे पूजन को, एक तेरा पुजारी आया है,
पद कमलो के प्रक्षालन को, नयनो मे वारी लाया है (स्थायी)

तव अचल भक्तिमय केशर है, शुभ भाव का चन्दन शीतल यह,
निर्मल मति का कपूर मिला तेरे चरणो पै चढाया है ॥ १ ॥

ये स्नेह भरे वर सुमन प्रभो, अजलि मे ले आया ले लो,
और अशुभ विचार की धूप जला, सुविचार सुगन्ध फैलाया है ॥ २ ॥

सद्ज्ञान ज्योतिमय दीपक है, जिससे निज पर का भेद दिखा,
श्रद्धा के उज्ज्वल अक्षत ले, सुन्दर स्वस्तिक यह रचाया है ॥ ३ ॥

तप सयम शील क्षमा मृदुता के नैवेद्य बने है रुचि कर ये,
विशुद्ध मनोवल श्रीफल ले, वाछित फल पाने आया है ॥ ४ ॥

दादा गुरुओ के अतिरिक्त अपने गुरु श्री हरिसागरजी म० सा०, पूज्य आचार्यश्री आनन्दसागरजी म०सा०, श्रीकवीन्द्रसागर जी म०सा०, श्रीसुखसागरजी म० सा०, श्रीकातिसागरजी म०सा०, श्रीउदयसागर जी म०सा०, श्री मणिप्रभसागरजी म०सा० आदि के प्रति भी अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये हैं। इन मुक्तको मे कवयित्री की गुरुभक्ति और विनय-भावना प्रकट हुई है। आर्या सज्जनश्रीजी ने अपनी गुरुणी ज्ञानश्रीजी, उपयोगश्रीजी, स्वर्णश्रीजी, पुण्यश्रीजी एव जैन कोकिला विचक्षणश्रीजी का गुणानुवाद भी किया है।

स्तुतिपरक मुक्तको के अतिरिक्त जो उपदेशात्मक मुक्तक लिखे गये हैं, उनमे शरीर की नश्वरता, जग की अनित्यता का चित्रण करते हुए चचल मन पर नियत्रण करने मोह रूपी निद्रा से जागने, क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी कपायो पर विजय प्राप्त कर क्षमा, विनय, सरलता और सतोप धारण करने की प्रेरणा दी गयी है। इन मुक्तको मे सुमति-कुमति का मानवीकरण कर चिदानन्द को सचेत किया गया है कि वह कुमति का साथ छोड़कर सुमति को अपनाये। सुमति के वरण से ही नये समाज की और ससार की

रचना सभव है। कवयित्री के मन मे जो नये ससार को रचने की भावना है, वह ससार ऐसा है, जिसमे अपने-पराये का भेद नही, जहाँ दुःख, ईर्ष्या और तृष्णा नही, सभी से मैत्री और प्रेम है—

एक नया ससार बसाऊँ, एक नया ससार ...... (स्थायी)

भेद न हो जहाँ अपने पर का, कौन पराया कौन है घर का,
हो समान व्यवहार, बसाऊँ...... ॥ १ ॥

दुःख का जहाँ लेश न हो, ईर्ष्या तृष्णा क्लेश न हो,
हो सुखी सभी नरनार, बसाऊँ ॥ २ ॥

सभी जनो से मित्रता हो, नही किसी से शत्रुता हो,
हो सबमें प्रेम प्रचार, बसाऊँ ...... ॥ ३ ॥

आनन्दमय जीवन हो सारा, ज्ञानोपयोग का हो उजियारा,
"सज्जन" मन के विचार, बसाऊँ ॥ ४ ॥

यह सही है कि कवयित्री का मन प्रभुभक्ति और गुरुभक्ति मे ही अधिक रमा है। तथापि भक्ति के मूल मे निहित सामाजिक चेतना से वह बेखबर नही है। भक्ति और पूजा के नाम पर व्याप्त आडम्बर, नामवरी, पद, प्रतिष्ठा उसे स्वीकार्य नही। पूजा के नाम पर क्रियाकाड होता रहे औरप्रभु-भक्ति के माध्यम से यदि गरीबो के प्रति प्रेम नही उमडता, अपने-पराये का भेद नही मिटता, मन का राग-द्वेष कम नही होता, देहासक्ति मिटती नही तो वह भक्ति और पूजा किस काम की ?

दर्शन करे पूजन करे बारह व्रतधारी बने।
पर गरीब जन का खून चूसना, नही गया पर नही गया ......॥ १ ॥
लाखो रुपये दान करते, दानी बने है कर्ण से।
पर अपने नाम का मोह हृदय से, नही गया पर नही गया ......॥ २ ॥
धन-माल व परिवार सब सुख भोग तज साधु बने।
पर अपने-पर का भेद भाव तो, नही गया पर नही गया ...... ॥ ३ ॥
पौसह सामायिक नित करे, तपस्या भी करती खूब है।
पर विकथा करना धर्मस्थान मे, नही गया पर नही गया ॥ ४ ॥
विद्वान बन वक्ता बने, धर्मोपदेशक बन गये,
अपने मन से रागद्वेष का भाव जरा भी, नही गया पर नही गया ॥ ५ ।
स्वाध्याय जप और ध्यान करते, अध्यात्म योगी बन गये,
पर "सज्जन" कहे निज देहाध्यास तो, नही गया पर नही गया ॥ ६ ॥

इन भक्तिपरक रचनाओ मे कवयित्री ने ज्ञानोपयोग एवं दर्शनोपयोग को विशेष महत्व दिया है :—

१ शुभ उपयोग महा प्रतिक्षण बरतूँ, जीवन सफल बनाओ रे।
"सज्जन" मननी ऐ अभिलाषा, शिवसुख भोगी बन जाओ रे।

२ शुभ उपयोग मे रमण करूँ नित, "सज्जन" मागे जिनन्द।

३ दर्शन ज्ञान चरणनी साधना रे, "सज्जन" करसे भव पार!

मुक्तको के अतिरिक्त कवयित्री ने 'कथा गीतिकाएँ' नाम से जो रचनाएँ लिखी हैं, उनमे गीतो के रूप मे कथा कही गयी है। उन कथाओ मे राजकुमारी प्रभजना, महारानी सीता, सती शिरोमणि अजना, सती मृगावती, सती मदनरेखा, सती ऋषिदत्ता आदि का आख्यान गाया गया है। इनमें नारी के सतीत्व, शौर्य, शील, तप, सयम, कष्ट-सहिष्णुता, पतिव्रत धर्म, त्याग, समर्पण जैसे उदात्त जीवन मूल्यो को उजागर किया गया है। यहाँ नारी अवला बनकर नही, सवला वनकर, शक्ति बनकर प्रकट हुई है। नारी दैहिक शृगार की आलम्बन नही, आत्मिक शृगार की माधुर्यमयी मूर्ति और उत्सर्गमयी स्फूर्ति है।

यथाप्रसग कवयित्री ने नव पद आराधना, तपस्या, अक्षय तृतीया, नन्दीश्वरद्वीप, पर्युषण आदि के सम्बन्ध मे भी गीत लिखे है। इन गीतो मे सवद्ध विषय के महत्व और आराधना-विधि को स्पष्ट किया गया है।

कवयित्री के भाव पक्ष और कला पक्ष दोनो मे सहजता, सरलता और सहृदयता की रक्षा हुई है। कवयित्री की भाषा सरल और बोधगम्य है। उसमे राजस्थानी और गुजराती का मिश्रित स्वाद है। भावो को अनुभूति के स्तर पर व्यक्त किया गया है। कारीगरी और कलावाजी से कवियत्री दूर रही है। अपने भावो को स्पष्ट करने के लिए यथाप्रसग सादृश्यमूलक अलकारो का विशेप प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है —

रूपक

प्रभु दर्शनरवि जब उदय हुआ, महामोह-तिमिर का विलय हुआ।

होली रूपक

ज्ञान की गुलाल उडाकर, प्रभुजी की पूजा रचाओ।
भक्ति भावना के जल से भरकर, सुमन पिचकारी चलाओ।
ध्यान-वह्नि प्रज्वलित कर मन मे, षोडश कषाय जलाओ।
नोकषाय और मोहनीत्रिकसह, मोह को मार भगाओ।
शुद्ध समकित प्रकटावो।
ऐसी होरी मनाओ, सखी नित प्रभ गुण गावो॥

उपमा

जो एक रूप और एक रस वनकर,
प्राणेश्वर ! तव पद-पकज मे।
मधुकर सा मोहित सदा रहा,
उस मन को नाथ सताया क्यो ?

O O O

तन मन से थे एक रूप ही, जैसे दूध और पानी,
क्षण भर भी नही दूर थे रहते, समझी आज विरानी।

उत्प्रेक्षा

मरकट ज्यो रहता है उछलता, कूदत डाली-डाली,
पकड़-पकड़ कर रखने पर, भग जाता दे ताली रे।

आर्या सज्जनश्री की काव्य-साधना का महत्वपूर्ण पक्ष है उसका संगीत तत्व । काव्य सर्जना का उद्देश्य पाडित्य प्रदर्शन न होकर अपने कथ्य को सहज, बोधगम्य और लोकभोग्य बनाना है । इसी उद्देश्य से कवयित्री ने पारम्परिक मात्रिक, और वार्णिक छन्दों का उपयोग न कर लोक जिह्वा पर तैरने वाली राग-रागिनियो का प्रयोग किया है । कतिपय राग शास्त्रीय राग हैं—यथा—भैरवी, माड, सोरठ, आसावरी आदि । कतिपय राग लोक गीतात्मक राग है, जिनकी तर्ज है —

पथडो निहालू रे, तावडो धीमी पड जा ।
नखराली ऐ मूमल, हालोनी झट,
केसरिया कामणगारो आदि ।

अधिकाश रागे और तर्जे फिल्मी है यथा —"आजा मेरी बरबाद, नगरी-नगरी द्वारे द्वारे, राजा की आयेगी बारात, मन डोले मेरा तन डोले, जादूगर सैया छोड मेरी बहिया, जब तुम ही चले परदेस, बिगड़ी बनाने वाले, सारी-सारी रात तेरी याद, जिया बेकरार आदि ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवयित्री सज्जनश्री की काव्यसाधना मे उनका आध्यात्मिक अनुभव समाया हुआ है । भावुक भक्त और लोक सगीतकार के रूप मे आप अपनी काव्य-स्थली मे प्रतिष्ठित प्रतीत होती है । नारी की कोमलता, मधुरता, भावुकता और विह्वलता का करुण सौन्दर्य और मन को दिव्य आलोक से मडित करने वाला माधुर्य पाठक को और श्रोता को एक साथ अभिभूत करता चलता है । कवयित्री अपनी भक्ति-सुरभि जन-जन को सदा बाटती रहे यही मगल कामना है ।

—सी, २३५-ए, दयानन्द मार्ग,
तिलकनगर, जयपुर—४

● ● ●

—सज्जन वाणी—

१ ईर्ष्यादि दुर्गुण अनेक शारीरिक और मानसिक रोगो के मूल कारण है । जब तक ये दुर्गुण नही निकलते है तब तक औषधियाँ कुछ नही कर सकती ।

२ बडे-बडे डाक्टरो का अभिमत है कि मानसिक असन्तुलन समस्त व्याधियो का प्रमुख कारण है ।

३. मनुष्य जैसा सोचता है, चिन्तन करता है, उसी के अनुरूप वह बनता है अत सोच और चिन्तन विशुद्ध, आदर्शमय होने आवश्यक है । इसके लिए उत्तम महापुरुषों, सन्त महर्षियो द्वारा रचित ग्रन्थो का स्वाध्याय करना चाहिए ।

४ कहा जाता है कि ज्ञान सीखने पर ही आता है किन्तु यह बात एकान्त नही । क्योकि अन्तर् स्फुरण भी एक वास्तविक कारण है । यह नही हो तो मनुष्य कुछ भी नही कर सकता ।

———

एक सफल अनुवाद—करयित्री : आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री म०

—साहित्यश्री डॉ. आदित्य प्रचण्डिया 'दीति'
एम० ए० (स्वर्णपदक प्राप्त) पी-एच० डी०, डी० लिट्०

एक भाषा में उपलब्ध पाठ सामग्री को दूसरी भाषा की समतुल्य पाठ सामग्री में रूपान्तरित करने की प्रक्रिया और परिणति-विशेष अनुवाद है। रूपान्तरण की इस प्रकृष्ट प्रक्रिया में अनुवाद-कर्त्ता को उस अनुभव के दौर से गुजरना होता है जिन अनुभवों के पड़ावों से होकर स्रष्टा-लेखक की लेखन-यात्रा सम्पन्न हुई होती है। अपने इस महनीय प्रयत्न में अनुवादक को लेखक की मानसिक पर्तों को चीरते-विश्लेषित करते हुए गहरे और गहरे पैठना होता है। साथ ही उसे सम्पूर्ण मनो प्रक्रिया को पुनः सृजित करना होता है। अनुवाद दो प्रकार से किया जाता है—एक तो जो है, उसे ज्यूँ का त्यूँ रूप देना, दूसरा वह, जो मूल पाठ है उसमें समाहित 'साहित्य रस' को धूमिल-मलिन न करते हुए उसकी अर्थवत्ता-प्राणवत्ता को रूपान्तरित-शब्दायित करना होता है। अनुवाद समतुल्यता की साधना है। इस समतुल्यता की सिद्धि जितनी अधिक होगी अनुवाद उतना ही सुष्ठु और सफल होगा। यह अपने में तथ्यपूर्ण है कि शब्दों की अर्थच्छायाओं, अर्थच्छवियों तथा अभिव्यक्ति की वक्रताओं/श्लिष्टताओं के एवं वाक्य-रचना-वैभिन्न्य के अनेक बाधा-बन्धनों के कारण हम जिसकी उपलब्धि अनुवाद में कर पाते हैं वह अन्ततोगत्वा सन्निकटन (Approximation) ही होता है। यह सन्निकटन आदर्श तो हो सकता है, यथार्थ कदापि नहीं।

आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री महाराज एक विदुषी साध्विका हैं। आपका व्यक्तित्व-वक्तृत्व कला से अभिमण्डित है। आप गीतार्थ, आगमज्ञ और परमशान्त उज्ज्वल चरित्रवान हैं। आप लेखिका हैं और हैं एक कवयित्री। आपश्री हिन्दी, गुजराती, संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, राजस्थानी आदि भाषाओं की प्रखर पण्डिता हैं। आपने पुण्य-जीवन-ज्योति, सज्जन विनोद, कुसुमांजली, गीताञ्जली, पुष्पाञ्जली आदि का प्रणयन किया है। श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत देशनासार एवं कल्पसूत्र-लक्ष्मीवल्लभी टीका का अनुवाद किया है। श्री जिनकुशलसूरि विरचित 'श्री चैत्यवन्दन कुलक-वृत्ति' का हिन्दी अनुवाद भी आपश्री की सशक्त लेखनी से हुआ है। प्राकृत भाषा में लिखित 'श्री चैत्यवन्दन कुलक-वृत्ति' नामक कृति ने जैन श्रावक-श्राविकाओं के कर्त्तव्य, आचार-विचार पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अनुवादिका साध्वीश्री इस कृति की अनूठी पाठ-सामग्री से, उसके स्वरूप से जुड़ी हुई हैं। उनकी भाषा में तरलता, मधुरता, स्निग्धता और मार्दव भाव समाहित है। मूल कृति शास्त्र है, बौद्धिक और विचारात्मक है

लेकिन साध्वीजी ने चौबीस कथाओ का समायोजन कर अनुवाद रचना को जीवन्त-रुचिवन्त बना दिया है। महान कवियों की रचनाओ की हर युग में नये-नये अर्थ और नई-नई व्याख्याएँ होती है। अनुवादिका इस कृति के मूल लेखक के मन्तव्य को भली-भाँति आत्मसात् करके उसमे साधारण से साधारण शब्दो को भी अपने अभिनव प्रयोग-कौशल से एक असाधारण अर्थ और चमक देने मे सफल सिद्ध हुई है। काव्य, कथा और शास्त्र का अद्भुत सगम लिए यह कृति अनुवाद की समतुल्यता के गुण से अभिमण्डित है। मूलकृति के नियतार्थ और निश्चयार्थ सीमा को अनुवादिका ने अपने अनुवाद-कौशल से उसकी काव्य भाषा की अर्थक्षमता को विस्तीर्ण और असीम बना दिया है। साध्वीश्री के इस कौशल का एक नमूना-निदर्शन द्रष्टव्य है—

'खीर दहि नवणीय घय तहा तिल्लमेव गुडमज्ज,
महु मस चेव तहा उग्गहिमगच विगइओ।

क्षीर-दूध, दही, नवनीत-मक्खन, घृत, तेल, गुड, शक्कर, मद्य, मधु, माँस, हिमग—पक्वान्न ये दस उग्र विकृति मानी जाती है। इनमे से चार—मद्य, माँस, मधु और नवनीत तो सर्वथा ही अभक्ष्य है। शेप छह—दूध, दही, घृत, तेल, मिठाई, पक्वान्न अर्थात् तली हुई खाद्य सामग्री—मोदक, बर्फी आदि मिष्ठान्न, मालपूये, पूरी, कचौरी, बडे–पूवे, बडे पकौडी, समोसे, कोपते तथा तले हुए पापड, पपडी, सलेवडे-पीले खीचे, दालमोठ, चिउडा, चने की दाल, मूँग, उडद तले हुए छोले चने, मूँगफली, बादाम, पिश्ते, काजू इत्यादि भी पक्वान्न माने जाते है। उत्कृष्ट से तो तनी हुई रोटी, परॉवठे, चिलडे-घारडे-उल्टे आदि भी पक्वान्न ही की गिनती मे है।" (पृष्ठ १२१)

उक्त नमूने से स्पष्ट है कि उपरि-विवेचित अनुवाद के दूसरे प्रकार का व्यवहार साध्वीश्री ने इस अनुवाद कृति मे सफलता के साथ किया है जिससे मूल कृति मे निहित 'साहित्य रस' भी नष्ट-विनष्ट नही हुआ है अपितु सन्त अनुवादिका ने अपने अनुभव और अभिज्ञान का भी भरपूर उपयोग और लाभ उठाते हुए उसमे अभिव्यञ्जित अर्थच्छायाओ-अर्थच्छवियो को मूर्त्त रूप दिया है। इस प्रकार भाषा की सप्रेषणीयता, अर्थमत्तता और रोचकता का समाहार विवेच्य अनुवाद कृति मे हुआ है। अनुवाद की उक्त प्रवृत्तियो से अनुप्राणित विवेच्य कृति के परिप्रेक्ष्य मे आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री महाराज एक सफल अनुवादिका प्रमाणित होती है। शुभम्!

मगल कलश
३९४, सर्वोदयनगर,
आगरा रोड, अलीगढ
२०२००१ (उ० प्र०)

—सज्जन वाणी—

१ आवेश, आवेग, उत्तेजना, आक्रोश मनुष्य की चिन्तन प्रणाली को नष्ट कर देते है।

२ छिपा हुआ आक्रोश, दुर्भावना, डाह, निन्दा, चुगली, आदि के रूप मे प्रकट होकर स्वय को जलाते ही है, साथ रहने वाले व्यक्ति भी सुखी नही रहते।

३ ईर्ष्या, द्वेप, आदि दुर्गुणो से ग्रसित मनुष्य स्वय को तो दुःखी करते ही हैं, दूसरो के लिए भी सिरदर्द बन जाते हैं।

एक श्रेष्ठ जीवन चरित

"पुण्य जीवन ज्योति"—अवगाहन

—महावीर प्रसाद अग्रवाल
(व्याख्याता हिन्दी
एम. एस जैन वरिष्ठ उ० मा० विद्यालय, जयपुर)

जिनकी कीर्ति का कल गान हम निरन्तर अपने पूज्य गुरुजनो, श्रद्धेय परिजनो, सहमार्गी साथियो और सुविख्यात सामाजिको से सुना करते है तथा जिनके दर्शन, स्पर्शन एव सेवा का सौभाग्य हमे नही मिला है, उनके विषय मे साधिकार कुछ लिखना कठिन कार्य है, एक ऐसी चुनौती है जिसे स्वीकार करने का साहस विरले ही नर-रत्न कर पाते है। खरतरगच्छ सम्प्रदाय की महत्तरा साध्वीरत्न स्व श्रीमती पुण्यश्री जी महाराज साहब की जीवन कथा का आलेखन भी एक ऐसा ही दुसाध्य कार्य था, जिसे सम्पन्न करने का सुयोग मिला उनकी प्रशिष्या साध्वी श्रेष्ठ श्रीमती सज्जनश्रीजी महाराज साहब को।

पूज्य पुण्यश्रीजी महाराज साहब परम त्यागी, चारित्रनिष्ठ, निरभिमानी, करुणासिक्त, धीर-प्रशान्त, प्रभावशालिनी, विदुषी साध्वीरत्न थी। वे आत्मविकास की उस श्रेणी पर पहुँची हुई साध्वी श्रेष्ठा थी जहाँ आत्मज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुण विशद बनने की भूमिका पर होते हैं। उनमे शास्त्रोक्त वे सभी गुण विद्यमान थे, जो साधक जीवन के लिए अनिवार्य माने जाते हैं। परोपकार की पुनीत सौरभ से सुवासित उनका जीवन चरित्र प्रत्येक के लिए आदरणीय, अनुकरणीय और आचरणीय है। लेखिका ने अपने लेखन कौशल से अमर प्रेरणा की स्रोत, पुण्य जीवन ज्योति साध्वी पुण्यश्रीजी म सा के व्यक्तित्व की न केवल प्रभावी प्रस्तुति की है वरन् खरतरगच्छ सम्प्रदाय के १५० वर्षो के इतिहास का भी उल्लेख किया है। इसमे सम्प्रदाय की २०० से भी अधिक साध्वीरत्नो तथा ५० से भी अधिक साधको के उज्ज्वल जीवन चरित्रो को मणिकाचन सम जड दिया है। इससे इस पुस्तक की उपयोगिता एक ऐतिहासिक ग्रन्थ के सदृश बढ गई है। इससे वैराग्य-पथ के पथिको को त्याग, समर्पण, सेवा और अपूर्व आत्मबल मिल सकेगा।

ग्रन्थ लेखन की प्रेरणा लेखिका को अपने सस्कारो और वातावरण से मिली। लेखिका के पिता प्रसिद्ध तेरहपथी साहित्यसेवी श्री गुलाब चन्द जी लूनिया अपनी सुयोग्य पुत्री से चरित्रनायिका की खुले दिल से प्रशसा किया करते थे। उनका कहना था कि "हमने उनके जैसी प्रभावशालिनी शास्त्रज्ञा एव मधुर भाषिणी अन्य साध्वी नही देखी।" उनकी सवा सौ से भी अधिक साध्वी शिष्याएँ थी। उनके समय मे खरतरगच्छ सम्प्रदाय की जो श्रीवृद्धि हुई, वह चरित्रनायिका के दिव्य गुणो की ओर ही सकेत करती है। यश सौरभ ही सबल बना, पूज्य गुरुवर्याओ से निरन्तर उनके विषय मे सुनने को मिलता ही था, जिज्ञासा बढने लगी। ज्ञात हुआ कि चरित्रनायिका की प्रमुख शिष्या तथा लेखिका की गुरुवर्या

सुवर्णश्रीजी महाराज साहिबा की प्रेरणा से जोधपुर के कवि प० नित्यानन्द शास्त्री ने इस चरित्र को महाकाव्य के रूप मे सस्कृत भाषा मे लिखा था, पर यह काव्य अपूर्ण था। सुयोग से इसके अनुवाद की प्रति भी उपलब्ध हो गयी, पर उसकी भाषा ठीक नही थी। अत लेखिका ने दो वर्ष के अथक परिश्रम से असम्बद्धता तथा अपूर्णता को दूर कर आधुनिक शैली मे राष्ट्रभाषा हिन्दी मे इसका आलेखन किया।

ग्रन्थ का आरम्भ "दिव्य विभूतियो की महत्ता" से होता है जिसमे चरित्रनायिका के महत्व का उल्लेख है। "जैन धर्म मे महिलाओ का स्थान" एक विचारात्मक लेख है, जिसमे जैनधर्म की समानता के आदर्श का वर्णन है। चरित्रनायिका का पावन चरित्र ३६ शीर्षको मे विभाजित है, जिनमे उनके जन्म और बाल्यकाल, विवाह, वज्रपात, सत्सगति का प्रभाव, वैराग्य का उद्भव, दीक्षा महोत्सव, पवित्र जीवन के पथ पर, विविध स्थानो पर चातुर्मास, दीक्षाओ की धूम, महाप्रस्थान और चरित्रनायिका के कुछ विशिष्ट गुणो का उल्लेख है। लेखिका ने चरित्रनायिका के जीवन का अकन केवल सुने या पढे हुए तथ्यो के आधार पर ही नही किया है, वरन् उसे अपने साधु जीवन की अनुभव सौरभ से भी सुवासित कर दिया है। लेखिका के व्यक्तिगत अनुभवो के कारण वर्णन मौलिक, सम्प्रेषणीय और प्रभावोत्पादक बन गये है।

लेखिका का विश्वास हे कि विश्वशान्ति आध्यात्मिक जागृति के बिना असभव है। केवल भौतिक उन्नति से ही सुख शान्ति की आशा रखना मृगमरीचिका है। आध्यात्मिक विश्वासो के बिना मानव की पशुता विकसित होकर अनर्थ की परम्पराओ को बढाती है।

उत्तम साहित्य सरिता मे अवगाहन करने से पाठक के हृदय मे आशा, विश्वास और उल्लास की उर्मियाँ उछलने लगती है, निराशा, सन्देह और विषाद दूर भाग जाते हैं। उत्साह का समुद्र उमड जाता है, आलस्य नष्ट होकर स्फूर्ति आ जाती है। अध्ययनशील व्यक्ति गौरवपूर्ण विचारशक्ति युक्त हो जाता है। उसमे सत्सकल्प जाग्रत रहता है। वह सदैव आत्मसम्मान को प्रधानता देता है। कभी ऐसा आचरण नही करता जिसे उसे अपमानित होना पडे।" उसका चरित्र पूर्ण उत्कर्ष को पहुँच जाता है। वह मानव से ऊँचा उठकर देव (महामानव) बन जाता हे। मातृभूमि के प्रति कर्तव्यबोध का वर्णन करती हुई लेखिका कहती है—"जन्म भूमि या स्वदेश के प्रति जीव मात्र को सहज आकर्षण होता है। जहाँ मनुष्य जन्म लेता है, जहाँ की मृत्तिका में खेल-कूद कर बडा होता है, जहाँ के अन्न-जल से उसके चरित्र का पोषण होता है, उस स्थान के प्रति एक प्रकार का ममत्व भाव होता ही है। मातृभूमि का ऋण चुकाना प्रत्येक का कर्तव्य है। इसमे किसी को सन्देह करने का कोई कारण नही। यह विषय निर्विवाद है।"

एकता के महत्व का उपदेश करते हुए लेखिका ने कहा है—"एक ही धर्म के अनुयायियो मे मनोमालिन्य होना, धर्म को कलकित करना है। भगवान तीर्थंकर देवो का धर्म कषाय रहते आराधन नही किया जा सकता। धर्म रूपी हर्म्य मे प्रवेश करने का प्रथम द्वार सम्यक्त्व है। आपने सुना होगा कि जब तक आत्मा मे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, रूप कषाय का भूत रहता है और गलत मान्यताएँ रहती है, तब तक सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति नही हो सकती। श्रावक का पद तो सम्यक्त्वी से भी ऊँचा होता है। समयक्त्वी भी एक वर्ष से अधिक कषाय को रखे तो सम्यक्त्व भ्रष्ट हो जाता है। श्रावक तो कषाय रख ही नही सकता। यदि रखता है तो श्रावक धर्म से पतित होता है।"

सगीत कला के प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा है—"सचमुच, सगीत मे कुछ ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी सुध-बुध बिसरा कर तन्मय हो जाते हैं।"

मृत्यु की भयानकता तथा उसकी शाश्वतता का उल्लेख अग्राकित शब्दो मे बहुत ही हृदय-स्पर्शी बन गया है —

"मृत्यु ! ओह ! कितना भीषण शब्द है। शब्द की भीषणता से ही अर्थ की भीषणता का विचार अत्यन्त भयावह है।"

ग्रन्थ मे मार्मिक स्थलो के विवरणो का भी प्रसगानुसार समावेश हुआ है। लेखिका ने अपने अनुभव तथा चिन्तन से ऐसे स्थलो की प्रेषणीयता को और भी बढा दिया है। लेखिका ने सस्कृत, प्राकृत तथा अन्य भाषाओ के उद्धरणो द्वारा अपने विवरण को अधिक प्रभावशाली तथा प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया है।

"पुण्य जीवन ज्योति" जैन-धर्म और दर्शन का सागर है जिसे लेखिका ने इस ग्रन्थ-सागर मे उँडेल दिया है। प्रसगानुसार जैन धर्म के अनेक पवित्र स्थलो तथा पूजा, अर्चना विधियो, पर्वो व उत्सवो का विस्तार से वर्णन किया गया है। अनेक रगीन-चित्रो के सकलन से ग्रन्थ की उपादेयता और भी बढ गई है।

सक्षेप मे "पुण्य जीवन ज्योति" जैन साधिका साध्वी का एक पावन इतिहास, जैन सिद्धान्तो, आदर्शो, मान्यताओ, पर्वो और त्यौहारो का परिचय ग्रन्थ और परम साध्वी पुण्यशालिनी स्व पुण्यश्री जी महाराज का पावन चरित्र है।

महावीर जय ...

[तर्ज— वीणावादिनी वर दे]

वीर महावीर की जय हो—जय हो ऽऽऽ—जय हो ऽऽऽ।
सुर नर वन्दिन जग अभिनन्दित, विश्व ज्योति जय हो ॥स्थायी॥

मातृ कुक्षि मे अचल हुये जब मातृ दु ख वश नियम लिया तब,
पितरो जीवित व्रत न धरूँ अब, मातृभक्त ! जय हो ॥ १ ॥

सुरपति मन मे सशय आया, सिंहासन अगुष्ठ दबाया,
जन्मोत्सव मे मेरु कपाया, अतुलबली ! जय हो... ॥ २ ॥

शैशव मे आमलकी क्रीडा, हारा सुर पाया अति व्रीडा,
मेटी सब की मानस पीडा, अपराजित ! जय हो— ॥ ३ ॥

भ्रातृ प्रेम वश वर्ष द्वय तुम, रहे धाम पर सयम मय तुम,
उच्चादर्श प्रदर्शित कर तुम, धन्य बने ! जय हो— ॥ ४ ॥

—प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म० रचित

एक बहु आयामी समग्र व्यक्तित्व
प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज

—*आर्या शशिप्रभाश्रीजी* (दर्शनाचार्य)

विश्व वाटिका अनेक सुविकसित पुष्पो से आकीर्ण है। भिन्नाकृति के वे सुन्दर पुष्प अपनी मधुर सौरभ विकीर्ण कर कण-कण को सुरभित बना रहे है। जिसका पान कर मानव-मन रूपी मधुकर पूर्णत आप्यायित हो रहा है।

ऐसी ही मृदु मधुर सौरभ से परिव्याप्त एक अवर्णनीय वाटिका है परम श्रद्धेया गुरुवर्य्या प्र श्री सज्जनश्रीजी म सा का जीवन। जिसमे अनेकानेक सुगन्धित गुणपुष्प पूर्णत सुविकसित है, जिसकी मादक गन्ध मानवरूपी भ्रमरगण को आकर्षित करने में सर्वथा सक्षम है। चूँकि उन पुष्पो मे सहज सुगन्ध का वर्षण है, सुन्दरता का उन्मुक्त दर्शन है व चुम्बकीय शक्ति का आकर्षण है। इसीलिए मानव मधुकर सहज, सरल, नि शक व नि सकोच रूप से उन पुष्पो के प्रति आकर्षित हो जाते हैं।

यद्यपि पूज्या प्रवर्तिनी महोदया की जीवन वाटिका के उन सम्पूर्ण गुण पुष्पो का आलेखन करना मुझ जैसी सामान्य मन्द बुद्धि के बाहर है तथापि लेखनी आकर्षित कर रही है निम्नाकित कतिपय गुण पुष्पो का वर्णन करने हेतु।

(१) विनय—सयमी जीवन मे जिन सद्गुणो की अनिवार्य आवश्यकता है उनमे विनय एक प्रमुख गुण है। प्रभु महावीर ने भी "विणय-मूलो धम्मो" की उक्ति से विनय को धर्म का मूल कहा है। साधना पथ के पथिक के लिए विनय का प्रतिपक्षी अभिमान काले सर्पवत् महान् भयकर है जिस साधक को इस सर्प ने डस लिया वह साधना की मधुर सुधा का पान नही कर सकता। अहकार और साधना एक ही स्थान पर वैसे ही नही रह सकते जैसे अन्धकार और प्रकाश। वैनयिक गुण प्राप्त करने से पूर्व अभिमान के विष वृक्ष को जडमूल से उखाड कर फैंकना होगा।

> ☐ जिसमे नारी सुलभ मृदुता, वत्सलता, सेवा, समर्पण और सरलता के दर्शन होते हैं तो नर-स्वभावी साहस, सकल्पशीलता, दूरदर्शिता और विवेकप्रवणता भी परिलक्षित है" · ·

श्रद्धेया गुरुवर्य्याश्री नम्र ही नही अति विनम्र है। आपश्री 'पुण्य श्रमणी मडल' की प्रवर्तिनी हैं, अनेक उपाधियो से विभूषित है तथा आगमज्ञान की सतत् प्रवहमान स्रोतस्विनी है। तथापि विनय की प्रतिमूर्ति है। उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार "इगियागार सम्पन्ना" महान् प्रज्ञावती है। गुरुजनो एव

पूज्यजनो के मात्र इगित आकार को समझकर तत्क्षण कार्य करने की क्षमता सम्पन्न है। आपश्री के जीवन मे विनय का सर्वोपरि स्थान है चूँकि विनीत साधक ही सिद्धि के सोपान पर चढ सकता है। एक विनय गुण के आ जाने पर अन्य गुण तो उसके अनुगामी बनकर स्वत आ जाते है।

आपश्री मे यह गुण बाल्यकाल से ही विद्यमान है। इसीलिए न चाहते हुये भी माता-पिता की इच्छा को प्रधानता देकर गृहस्थ जीवन मे प्रवेश किया व समय की परिपक्वता व अन्तरायोदय नष्ट होने पर बाल्यकालीन आपकी उस आन्तरिक सयम भावना को साकार रूप देने का सौभाग्य भी मिला।

आपश्री के सयमी जीवन को लगभग अर्द्ध शतक पूर्ण होने जा रहा है। इस दीर्घकालीन सयमी जीवन मे आपने अपने गुरुजनो की आज्ञा की कभी यत्किंचित् भी उपेक्षा नही की। पूज्यजनो की आज्ञा के प्रति आप त्रियोग मे पूर्णत समर्पित थी व आज भी है। मुझे याद है कि पालीताना चातुर्मास के पश्चात् गुजरात की प्राय यात्रा सम्पूर्ण कर एक बार तीर्थाधिराज के दर्शन हेतु पुन पालीताना आये थे तथा शारीरिक अस्वस्थता के कारण कुछ दिन वहाँ स्थिरता की पश्चात् अत्यधिक गर्मी के कारण द्वितीय चातुर्मास भी वही करने की मन स्थिति बना चुके थे, किन्तु जैसे ही भूतपूर्व प्र महोदया स्व श्री विचक्षणश्रीजी म सा को जब ज्ञात हुआ तो उन्होने बडी आत्मीयता से लिखा कि आप पालीताना तो चातुर्मास कर ही चुकी है जामनगर वालो की कई वर्षो से विनती है अत इस बार आप वही चातुर्मास करे। शासन प्रभावना का अच्छा लाभ मिलेगा। भयकर गर्मी थी फिर भी बिना किसी ननुनच के आपश्री ने आदेश स्वीकार कर जामनगर की ओर प्रस्थान कर दिया। मैं देखती ही रह गई। पूज्याश्री जेठ मास की इतनी भयकर गर्मी मे कैसे विहार करेगी ? साथ ही यह भी देखा कि पूज्या प्र श्री के आदेश को मानकर आप कितनी अधिक प्रसन्न थी। चूँकि आपने अपने जीवन मे सदा बडो का विनय किया है व उनकी प्रत्येक आज्ञा को हर परिस्थिति मे हर सम्भव मानने को प्रतिक्षण प्रतिपल तैयार रही है। ऐसे एक नही अनेक सस्मरण है आपश्री के जीवन के जिन्हे मैंने प्रत्यक्ष देखे है।

पूज्यजनो के विनय मे तो आपश्री ने कभी उपेक्षा की ही नही पर छोटो के प्रति या गृहस्थ श्रावक-श्राविकाओ के प्रति भी कभी किसी प्रकार का असद् व्यवहार नही किया व अन्य किसी को करते देखती तो बडे ही स्नेहयुक्त शब्दो मे आगम की स्मृति दिलाती हुई समझाती हैं—'न साहूण आसायणाए न साहूणीण आसायणाए न सावयाण आसायणाए न सावियाण आसायणाए। यही कारण है कि सयमी जीवन का अधिकाश समय गुरुवर्य्याश्री की सेवा मे आपश्री ने जयपुर मे ही व्यतीत किया व वर्तमान मे भी जयपुर सघ के अत्याग्रह से ५ वर्ष से तो 'स्थिरवास' रूप मे विराज रही है। तथापि आपश्री जयपुर श्री सघ की अटूट श्रद्धा का केन्द्र बनी हुई है।

(२) सरलता की प्रतिमूर्ति—प्रभु महावीर ने सरलता को साधना का प्राण कहा है। चाहे वह गृहस्थ साधक हो या ससार-त्यागी। दोनो के लिए सरलता, निर्दम्भता, निष्कपटता आवश्यक ही नही अनिवार्य है। कहा भी है—"सोही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई। जो ऋजुभूत है, सरल है वही धर्म साधना कर सकता है और सिद्धि के अन्तिम सोपान को भी वही साधक प्राप्त कर सकता है।

पूज्यवर्या श्री का नख से शिख तक सम्पूर्ण जीवन सरल निर्दम्भ व निष्कपट है। आपश्री का आन्तरिक व बाह्य जीवन सर्वथा सरल है—वाणी मे सरलता, विचारो मे सरलता, यहाँ तक कि जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे प्रत्यक्ष रूप से सरलता परिलक्षित होती है। न कही दुराव है, न कही छिपाव। आपश्री सदा यही कहती है कि सरल बने बिना सिद्धि प्राप्त नही हो सकती। यथा—भयकर विषधर को भी बिल मे जाने के लिए सरल बनना पडता है। वैसे ही साधकको भी मुक्ति मे जाने के लिए निष्कपट, पर निर्दम्भ, सीधा,

सरल बनना पड़ता है। मुमुक्षु साधक के लिए आवश्यकता है चरित्र की, चातुर्य की नही, सम्यक्आचार की जरूरत है समलकृत वाणी की नही, कार्य करने वाले की आवश्यकता है न कि विवरण देने वाले की किन्तु कही-कही साधक के जीवन मे भी बहुरूपियापन देखने को मिलता है जो उसकी साधना मे विक्षेप उत्पन्न करने वाला है। जिससे सिद्धि तो अतिदूर है ही पर मानवता की सोपान भी कोसो दूर रह जाती है। पर पूज्याश्री इनसे सर्वथा अछूती है, बहुत दूर है। आपश्री का जीवन तो "जहाँ अन्तो तहा बाहि" अर्थात् जैसा अन्दर है वैसा ही बाहर है कथनी करणी के अनुरूप है। उपर्युक्त बात छोटो की भी सहज ही स्वीकार कर लेती है। अपनी बात मानने व मनवाने मे यत्किंचित् भी हठाग्रह नही है। आज आप इतने बडे पद पर आसीन है फिर भी वही सरलता, वही सौम्यता है। उसमे किंचित् मात्र भी अल्पता नही आई वृद्धिगत ही है अहम्रहित सरल जीवन ही अर्हम् पद को प्राप्त कर सकता है।

(३) सहिष्णुता की सरिता—साधकजीवन स्वर्ण व चन्दन के समान होता है। यथा सोने को ज्यो-ज्यो आग मे तपाया जाता है त्यो-त्यो अधिक शुद्ध व चमकदार बनता है। चन्दन को जितना अधिक घिसा जाय उतनी ही अधिक महक आती है। वैसे ही साधक के जीवन मे जितने अधिक कष्ट आते हैं उतना ही उसमे और अधिक निखार आता है। और अधिक उज्ज्वल व प्रशस्त बनता है उसका जीवन।

प्रत्येक मानव के जीवन मे अनुकूल-प्रतिकूल प्रसग सदा आते ही रहते है। पूज्याश्री ने भी अपने जीवन मे अनेक बार ऐसे कटु मधुर अनुभव किये पर उनमे सदा तटस्थ रही है।

मैंने अपने दीर्घकालीन सयमी जीवन के सयोग मे आपश्री को कभी प्रतिकूल प्रसगो मे कभी भी अप्रसन्न होते नही देखा और न ही कभी यशकीर्ति, प्रशसा आदि अनुकूल परिस्थिति मे प्रसन्नता या गर्व करते देखा ऐसे समय मे आप सदा मध्यस्थ रहती है। मै कभी पूछ लेती "पूज्या श्री आपको प्रतिकूलता मे भी कभी नाराज होते या गुस्सा होते नही देखा, और न कभी अनुकूलता मे चेहरे पर मुस्कराहट।" मेरे प्रश्न का आप बडा ही गभीर उत्तर देना—"यह जीवन तो सुख-दुखमय है और ससार फिल्म हॉल के समान है, जहाँ प्राय ऐसे प्रसग आते ही रहते है उन प्रसगो मे क्या हँसना, क्या रोना, क्या प्रसन्न होना क्या अप्रसन्न होना। इन प्रसगो मे साधक को बहना नही है अपितु ज्ञाता द्रष्टा बनकर हर स्थिति को निरपेक्ष भाव से देखना है। जीवन व्यवहार मे कभी किसी से मन-मुटाव कहा सुनी हो जाये तो इस उक्ति से "कहना नही सहना सीखो" से मन को समझाना है—इस सर्वोत्कृष्ट सूत्र को जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे उतारना है।' वास्तव मे पूज्याश्री की न केवल जिह्वा ही अपितु जीवन भी बोलता है। अनुकूल-प्रतिकूल प्रसगो मे तो आपश्री पूर्णत तटस्थ हैं ही किन्तु भयकर शारीरिक वेदना मे भी पूर्णत समता के दर्शन होते हैं आपश्री के जीवन मे। २ वर्ष पूर्व-ब्लड की उल्टियाँ व दस्त लगने पर आपश्री की उस अपूर्व समता के हम लोगो ने व जयपुरवालो ने प्रत्यक्ष दर्शन किये। जड़-चेतन के भेद को आपश्री ने न केवल जिह्वा से समझा है अपितु प्रसग आने पर जीवन मे पूर्णत उतारा भी है।

इस प्रकार सहिष्णुता की पराकाष्ठा है आपश्री का यशस्वी तेजस्वी जीवन।

(४) दयार्द्र हृदया— दया धर्मस्य जननी' अर्थात् दया धर्म की जननी है मा है। जिस प्रकार माँ के बिना जीवन शून्यवत्-सा महसूस होता है, उसी प्रकार दया के बिना मानव-मात्र आकृति से मानव है प्रकृति से नही। जीवन मे मानवता लाने के लिए दया देवी की पूजा करना रोम-रोम मे उसको स्थान देना आवश्यक ही नही परमावश्यक है फिर साधक का तो यह अनिवार्य आवश्यक गुण है। दनि-

क्षण प्रतिपल उसके हृदय मे करुणा का स्रोत छलकता रहे, रोम-रोम से अनुकम्पा के भाव निरन्तर प्रवाहित होते रहे। चूँकि दया साधना का नवनीत है, मन का माधुर्य है, उसकी सरस जलधारा से साधक का हृदय उर्वर बनता है और सद्‌गुणो के कल्पवृक्ष फलते-फूलते है। किसी ने कहा भी है—

'सन्त हृदय नवनीत समाना , पर मैंने देखा सन्तजीवन नवनीत अर्थात् मक्खन से भी विलक्षण होता है। नवनीत-स्वताप से द्रवित होता है जबकि सन्त जीवन पर-दु ख से—परताप से द्रवित होता है।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि सन्त स्वकष्टो को सहन करने मे वज्र से भी कठोन वन जाता है, भयकर विपत्तियो मे भी मुस्कराता रहता है किन्तु दूसरो के दु खो को देखकर पुष्प से भी कोमल बन जाता है, मोम के समान उसका हृदय अत्यधिक द्रवित हो जाता है।

हमारी करुणामयी गुरुवर्य्याश्री का हृदय भी करुणारस से छलकता हुआ सरोवर है जिसमे प्राणिमात्र के प्रति दया, करुणा, अनुकम्पा के भाव भरे हुए हैं। उनके कष्टो को देखकर आपका हृदय अत्यन्त द्रवित हो उठता है। तथा तत्क्षण उनके दु ख को दूर करने के लिए तत्पर हो जाती है। अपने-पराये के भेद से रहित आपके हृदय मे मानव मात्र के प्रति वात्सल्य का स्रोत निरन्तर प्रवाहित रहता है – जिसमे निमज्जित हो गानव मन अत्यन्त आह्लादित हो जाता है। असमर्थ दीन-प्राणियो को सहायता दिलवा-कर उनके दु खो को दूर करने का निरन्तर सफल प्रयास करती रहती है।

(५) **मधुर व्याख्यान**—आपश्री की प्रवचन शैली अनूठी, अजोड व अनुपम है। पार्वत्य कदरा से निर्गत कल-कल निनाद करती जलधारा की तरह आपके मुख से निसृत अमृत वाणी का प्रवाह श्रोताओ को पूर्णतया अपने मे बहा ले जाने मे सक्षम है। आपश्री की वाणी मे अनूठा जादू व विचित्र चमत्कार है। आपश्री गभीर से गभीर विपय का जिस समय प्रतिपादन करने लगती है तो श्रोता मत्रमुग्ध से भाव-विभोर हो आपाद मस्तक उस भाव गगा मे डूब जाते हैं तथा एक मन एक रस होकर तादात्म्य की अनुभूति करने लगते हैं।

आपश्री के प्रवचन आगमिक विषयो पर होते है। जिनमे नैतिकता, बौद्धिकता, विद्वत्ता, प्रभावोत्पादकता व हृदयस्पर्शिता के सहज दर्शन होते हैं।

वस्तुत आपश्री के प्रकाण्ड पाण्डित्य व विद्वत्ता की सौरभ जो चारो ओर प्रसृत हो चुकी है वह जन-जन के मानस को अनुप्राणित व अनुप्रेरित कर रही है।

(६) **कार्यक्षमता**—आपश्री की कार्य क्षमता प्रत्येक क्षेत्र मे दर्शनीय व अनुकरणीय है। आम लोग सभी क्षेत्रो मे सम्पूर्ण कार्यो मे निपुण नही होते। कई पढने मे आगे हैं तो कई तपस्या मे, कई घरेलू कार्यों मे तो कई अन्य-अन्य कार्यो मे।

पर आपश्री की कार्यक्षमता अजोड है, अद्वितीय है। कोई कार्य ऐसा नही है कि जिसमे आप विशेपज्ञ नही। यद्यपि आप रईस माता-पिता की सुपुत्री व जयपुर के दीवान खानदान की बहू हैं। अत उस समय अर्थात् आपके गृहस्थ जीवन मे शायद ही कभी पैदल चलने का अवसर आया होगा। और न ही कभी दीक्षा लेने से पूर्व किसी प्रकार के विचार आये कि कैसे पैदल चलूँगी इतने बडे घराने की बहू हूँ तो कैसे घर-घर जाकर आहार-पानी आदि लाऊँगी। किन्तु फिर भी दीक्षा लेते हो सर्वकार्य आपश्री इतनी दक्षता से व इतनी रुचिपूर्वक करती थी कि देखने वालों को आश्चर्यमिश्रित आभास होता कि वस्तुत आप सभी कार्यों मे कितनी माहिर है। न कोई सकोच है न कही शर्म—प्रत्येक कार्य

को सहजतया पूर्ण कर लेती है। इसीलिए आपश्री की गुरु बहिनें व गुरुवर्य्या श्री फरमाया करती थी— कि शिष्या हो तो सज्जनश्रीजी जैसी हो जो अकेली ही अनेको कार्य सँभाल लेती हैं। कोई कार्य इनसे अछूता नही, सभी मे पूर्णरूपेण पारगत है।

(७) सेवापरायणता – सेवा-शुश्रूषा का गुण हर कोई मे सहज सम्भव नही है और न ही हर प्राणी इसके मूल्य को आक सकता है। मानव स्वय के हृदय मे उद्भूत चचल मनोवृत्तियो का बलिदान करके ही इस अद्भुत गुण को सम्प्राप्त कर सकता है। सामान्य मदबुद्धि मानव-सेवा के अप्रमेय मूल्य का मूल्याकन नही कर सकता और सहज प्राप्त गुण से कोसो दूर रह जाता है। चूँकि वह समझता है,सेवा करना छोटो का कार्य है, पढे-लिखे व्याख्यान वाचस्पति व रईसो का कार्य नही है।

किन्तु आप जैसी प्रज्ञावती इसके अनुपम गुण से सर्वथा परिचित है, इसीलिए सैकडो अन्य कार्यों को गौण समझकर सेवा को प्रथम स्थान देती हैं। मैने स्वय ने प्रत्यक्ष देखा है कि पूज्येश्वरी ने अपने पूज्यजनो की व गुरुवर्य्याश्री की सेवा कितनी दत्तचित्त से की है। अपने गुरु की सेवा तो प्राय प्रत्येक शिष्य करता ही है किन्तु आप अन्य पूज्यजनो की सेवा भी निरपेक्ष भाव से बडी रुचिपूर्वक करती है। चूँकि आपने कभी किसी को अन्य समझा ही नही। मै सबकी हूँ व सब मेरे है अर्थात् वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से ओतप्रोत है आपश्री का विशाल हृदय। पूज्यजनो के प्रति पूज्यभाव तो रोम-रोम मे भरा है पर छोटो के प्रति वात्सल्य का निर्झर भी सदा ही झरता रहता है।

आपश्री के महान् पुण्योदय से व परम सौभाग्य से प्राय सदा आपको बडो की निश्रा सम्प्राप्त होती रही जिससे आपको दोहरे लाभ का सहज ही सौभाग्य प्राप्त हो जाता। प्रथम तो उन पूज्यवर्य्याओ की आत्मीयतापूर्ण कृपा दृष्टि की अविरल वृष्टि व उनकी सेवा का अप्रतिम अद्भुत लाभ। आपश्री को आपकी बौद्धिक व शारीरिक क्षमता से सहज ही सुलभ हो जाता है व अब भी यथाक्षमता सदा तैयार रहती है।

(८) प्रभावशालिता—आपश्री का यशस्वी, तेजस्वी व्यक्तित्व अद्भुत प्रभावशाली है जो गहराई मे सागर से भी अधिक गम्भीर व ऊँचाई मे हिमगिरि से भी अधिक उत्तुग है। ऐसे व्यक्तित्व के विषय मे कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। अपने विचरण काल मे आपश्री जहाँ भी पधारी, जिनके भी मध्य रही या जिस किसी से भी सम्पर्क रहा अथवा किसी से भी सम्बन्ध बना वह आपके प्रकाण्ड पाण्डित्य व विद्वत्ता के साथ-साथ सहज सरलता, सौजन्यता, सौम्यता, उदारता, विशालता आदि गुणो की सौरभ से सुरभित हुए बिना नही रहे। आपश्री से किसी ने कभी कोई अशान्ति या परेशानी का अनुभव नही किया अपितु उसे सदा शान्ति, प्रसन्नता व आनन्दातिरेक की अनुभूति होती रही है। आपश्री के अधिकाश चातुर्मास जयपुर मे ही हुए हैं व वर्तमान मे भी शारीरिक अस्वस्थता के कारण ५ वर्ष से जयपुर मे ही विराज रही हैं फिर भी किसी को आपश्री से कोई शिकायत नही है अपितु हर व्यक्ति हर समाज पर आपके दिव्य अद्भुत, सरल, सुन्दर व्यक्तित्व की अमिट छाप सदा के लिए विद्यमान है। ऐसा अद्भुत प्रभावशाली जीवन है आपश्रीजी का जिससे भी प्रभावित होकर अनेक बालिकाओ ने युवावस्था मे पाँव रखने से पूर्व ही आपश्री का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया जो आज त्याग, तप, सयम की आराधना के साथ-साथ अपने अध्ययन मे सलग्न है।

(९) अध्ययन—मानव जीवन के उत्थान व निर्माण मे अध्ययन अर्थात् शिक्षा का अनन्य महत्त्वपूर्ण स्थान है। किन्तु वह अध्ययन शास्त्रानुकूल सम्यग् अध्ययन होना चाहिए। जिससे बुद्धि परिष्कृत व परिमार्जित होती है।

खान से निकले हुए रत्न के समान मनुष्य की वृत्तियाँ जन्म से तो असस्कृत व अपरिमार्जित ही होती हैं किन्तु जब उस रत्न को तराशा जाता है अर्थात् काट-छाट सफाई की जाती है तो उसकी सुन्दरता मे चार चाँद लग जाते हैं उसकी चमक मानव-मन को सहज ही आकर्षित कर लेती है तथा मूल्य मे कई गुना वृद्धि हो जाती है।

तथैव—रत्न के समान ही मानव वृत्तियो का सस्कार, सुधार व परिष्कार भी अति आवश्यक है। वह हो सकता है मात्र सम्यग् अध्ययन से। उसी से उसके अन्त करण की शुद्धि होती है, विचार निर्मल और उच्च बनते हैं तथा योग्यायोग्य कार्य का निर्णय करने की विवेक शक्ति उत्पन्न होती है।

अध्ययनशील व्यक्ति की दुर्भावनाएँ सहज ही नष्ट हो जाती है तथा उसके हृदय मे स्नेह, सद्विवेक सहानुभूति, विनम्रता, शिष्टता, उदारता आदि अनेक सद्गुणो का आविर्भाव हो जाता है। अध्ययनरत सभी की दृष्टि मे ऊँचा उठ जाता है और उसका सर्वत्र सम्मान होने लगता है।

श्रद्धेया गुरुवर्या श्री की वचपन से ही अध्ययन की ओर अत्यधिक रुचि थी। स्कूल की पढाई भी वहुत ही दत्तचित्त होकर करती थी। पुस्तक तो सदा से आपकी जीवन साथी वनकर रही है। कोई पुस्तक हाथ मे आ जाये उसे बडी ही एकाग्रता से आप पढती है। फिर तो आपका ध्यान बँटता नही है। आपकी माँ साहव भी कहा करती थी कि 'सज्जनबाई' को पुस्तक मिल गई तो मानो सब कुछ मिल गया।

आज हम भी यही अनुभव करते है। आपश्री का अधिकाधिक समय अध्ययन-अध्यापन मे ही व्यतीत होता है। आपके जीवन का यह एक विशिष्ट गुण है या यो कहूँ पिताश्री से विरासत मे मिले हुए दृढ सस्कार है। पिताश्री के माध्यम से ही शास्त्राध्ययन की रुचि भी अल्पावस्था मे ही जागृत हो चुकी थी। चूँकि शास्त्रो मे विविध विपयो का ज्ञानकोश सचित रहता है। उसमे गहन शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त नैतिक शिक्षायें, धार्मिक उपदेश और आदर्श कथाएँ भी प्रचुर परिमाण मे प्राप्त होती हैं जिनका अमिट प्रभाव पाठक के हृदय पट पर टकोत्कीर्णवत् हो जाता है। आप्त महापुरुषो के वाक्य धीरे-धीरे उसके जीवन मे व्यावहारिक रूप धारण करके उसकी उत्कर्षता मे असाधारण वृद्धि करते है। इतना सब जानती हुई आप सदा आगम शास्त्रो का अध्ययन-स्वाध्याय करती रहती हैं जिससे आपश्री का जीवन उत्कर्षता की चरम सीमा पर पहुचने का मार्ग प्राप्त कर चुका है। शास्त्रावलोकन तो आपश्री के जीवन की अनिवार्य खुराक है ही किन्तु सद्साहित्य व इतर साहित्य भी आपसे खूब पढा व खूब मथा है। फलत भूगोल, खगोल, इतिहास आदि की प्राय सम्पूर्ण जानकारी आपश्री को है जिसकी चर्चा समय-समय पर हम लोगो व अन्यो के बीच भी होती रहती है। इतना ही नही आप देश-विदेश की सस्कृति से व वहाँ के आचार-विचार से भी पूर्णत परिचित हैं। इस विषय की बातें जब हम व अन्य लोग सुनते है तो दग रह जाते है कि आपश्री इतना सब कैसे जानती हैं? क्योकि प्रतिपादन शैली से ऐसा आभास होता है मानो आपने विदेश की यात्रा की है अथवा लगता है सब कुछ प्रत्यक्ष देखा हो। यह सब आपके सतत अध्ययन व तीव्र प्रज्ञा का ही सुफल है।

लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि महाराजश्री का दिमाग तो अजायबघर की भाँति है। अथवा कोई कहता है ये तो चलती-फिरती सुन्दर व्यवस्थित लाइब्रेरी हैं। वस्तुत इसमे कोई अतिशयोक्ति नही पूर्णत वास्तविकता है।

वर्तमान मे यद्यपि शरीर से आपश्री अस्वस्थ है, इन्द्रियो की क्षमता भी अल्प हो गई है पर पढने के व्यसन मे कोई कमी नही आई है, भले लेटे लेटे पढे पर पढती अवश्य है।

अध्ययन के विषय मे कहाँ तक लिखूँ ? जैसा प्रत्यक्ष देख रही हूँ वैसा वर्णन करती चलूँ तो एक ग्रन्थ निर्मित हो जाये।

(१०) **अध्यापन**--अध्ययन करना जितना सहज है, अध्यापन करना उतना ही कठिन। क्योकि व्यक्ति अपनी बुद्धि से किसी भी तरह अर्थात् येन-केन-प्रकारेण विषय को स्पष्ट कर लेता है और समझकर दिमाग मे बैठा लेता है पर उसी विषय को जब अन्य को समझाना होता है तो उसके लिए अत्यन्त दुष्कर हो जाता है। अध्ययन करने वाला स्वय के लिए स्वय की इच्छाओ का त्याग करता है जबकि अध्यापन कराने वाले को पर के लिए अर्थात् दूसरो के लिए अपनी स्वय की इच्छाओ का त्याग करना पडता है। दूसरो को पढाते समय स्वय के सन्तुलन को बनाये रखना व अध्ययनार्थी पर प्रेमपूर्वक अनुशासन करते हुए शिक्षा देना कोई सामान्य बात नही है। प्रकाण्ड विद्वान भी समय पर उपयुक्त भाव भाषा के अभाव मे योग्य धैर्य न रख पाने से अपना सन्तुलन खो बैठते है।

पर श्रद्धेया गुरुवर्या श्री अपने तीव्र एव योग्य अध्ययन के साथ-साथ अध्यापन कार्य मे भी पूर्णत. निपुण हैं। आपश्री की वाणी मे कही कोई दर्प नही। अनुशासन की सत्ता नही, व्यवहार मे बडप्पन की झलक नही। सामान्य बोलचाल की भाषा मे अनेको उदाहरणो से विषय को स्पष्ट कर विद्यार्थी को सन्तुष्ट करने की आपश्री मे अद्भुत शक्ति है।

अध्ययनार्थी को सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, व्यावहारिक व क्लासीकल शिक्षा से लेकर आगमिक ज्ञान पर्यन्त सम्पूर्ण अध्ययन कराने के लिए सदा तैयार रहती है। यद्यपि आपश्री ने किसी प्रकार की कोई परीक्षा देकर डिग्रियाँ प्राप्त नही की है तथापि योग्यता इतनी अधिक है कि प्रथमा से लेकर शास्त्री, आचार्य, एम ए, एम फिल. आदि परीक्षाओ के छात्र-छात्राओ व साधु-साध्वियो को आपने पढाया है व वर्तमान मे भी पढा रही है तथा उनकी शकाओ का बहुत ही सुन्दर ढग से समाधान करती है। अन्य गच्छ की श्रमणीवृन्द भी शास्त्र वाचन हेतु नि सकोच आपश्री के पास आती रहती है और आपश्री भी उदार हृदय से उन्हे वाचना प्रदान करती है। आप श्रुत स्थविरा व पर्याय-स्थविरा तो थी ही पर अब वय स्थविरा की श्रेणी मे भी पूर्णत प्रवेश कर चुकी हैं, और शरीर पर रुग्णता ने आधिपत्य स्थापित कर लिया है अत. शारीरिक क्षमता अल्प हो गई है। फिर भी अध्यापन रुचि ज्यो की त्यो बनी हुई है। यह हमारा परम सौभाग्य है।

(११) **तप के प्रति अनन्य श्रद्धा**—तप श्रमण-जीवन का अनन्य आभूषण है। शास्त्रो मे अहिंसा सयम तप को उत्कृष्ट धर्म मगल कहते हुए तप के महात्म्य को निर्विकल्प स्वीकार किया है। साधना मे रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यग्चारित्र की आराधना के साथ ही सम्यक्तप का समावेश साधक की साधना मे चार चांद लगा देता है। इन चारो की सम्यग् भावना से ही साधक अविलम्ब आत्मदर्शन अर्थात् स्वरूप की प्राप्ति कर सकता है।

श्रद्धेया पूज्याश्री इस तथ्य को पूर्णत हृदयगम कर चुकी है। इसीलिए आपश्री के उद्गार आपकी कृति के माध्यम से स्पष्ट व्यक्त हो रहे हैं—'तप सयम रमणता ये ही तो है श्रमणता'

आपश्री के जीवन मे त्याग तप, सयम की त्रिवेणी निरन्तर प्रवाहमान है जो आपकी दैनिक क्रियाओ मे व उपदेशो मे स्पष्टत दृष्टिगोचर होती है। आपश्री ने अपने ४७ वर्ष के दीर्घकालीन सद्धर्मी जीवन मे व उससे पूर्व गार्हस्थ्य जीवन मे अनेक प्रकार की तपस्यायें की। यथा—वर्षी तप उपधान, मासक्षमण, नवपद, बीसस्थानक आदि। प्राय देखा जाता है—तपस्वियो की प्रकृति अक्सर उग्र हो

जाती है पर आपश्री इसकी अपवाद है। आपके शान्त स्वभाव का तो क्या वर्णन करू वह तो अवर्णनीय है। आपश्री की गुरु बहिने फरमाया करती थी कि 'सज्जन श्रीजी वास्तव मे सज्जन ही है।'

तप, त्याग व सयम निष्ठता के लिए आपश्री हमे सदा प्रेरित करती रहती है। चूँकि तप, सयम की रमणता मे ही श्रमणत्व निहित है। मुझे तो जन्मदातृ माँ से भी अधिक आपश्री का असीम वात्सल्य सम्प्राप्त हुआ है। चूँकि मात्र १० वर्ष की अल्पायु मे ही मुझे आपश्री के चरणो के सन्निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हो गया था। तब मैं सर्वथा मिट्टी के लौदे के समान थी। कुम्भकारसम पूज्याश्री ने वर्तमान मे मुझे कुम्भ का रूप प्रदान कर महान् उपकार किया है जिससे न केवल इस भव मे अपितु भव-भव मे भी मै उस उपकार से उऋण नही हो सकती।

उपसहार—वस्तुत पूज्या प्रवर्तिनी महोदया, श्रद्धेया, गुरुवर्याश्री का जीवन त्याग, तप, शील, सयम, उदारता, सरलता, नम्रता, शिष्टता आदि अनेक गुणो से ओतप्रोत है। आपश्री मे शास्त्रोक्त, वे सभी गुण विद्यमान है जो साधक-जीवन के लिए अनिवार्य माने जाते हैं। अत आत्मविकास की सर्वोच्च श्रेणी पर जहाँ आपकी निर्मल साधना से रत्नत्रय की आराधना पूर्णत शुद्ध बने इसी शुभ भावना से आरूढ होने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील है।

ऐसे महान् व्यक्तित्व की धनी श्रद्धेया पूज्याश्री के लिए जितना लिखा जाये, अल्प है। किन्तु मन्दमति मुझ अल्पज्ञा मे इतनी शक्ति कहाँ है जो आपके उन सर्वोच्च सम्पूर्ण गुणो को इस जड लेखनी से आवद्ध कर सकूँ। ये तो श्रेष्ठ पुष्प नही, मात्र उनकी अल्प पखुडियो को सग्रहीत करने का असफल प्रयास किया है जिसे पढकर पाठक उपर्युक्त आपश्री के उदात्त गुणो को स्व मे लाने का यथा साध्य प्रयास करेगे।

इन्ही शुभभावनाओ के साथ—

'अद्भुत तुम्हारी साधना, अनुपम तुम्हारा ज्ञान।
नामानुरूप गुणधारिका, हो कोटि-कोटि प्रणाम।
खरतरगच्छ की शान हो, खरतरगच्छ की प्राण।
सज्जन गुरुवर्या विश्व मे, अमर आपका नाम।'

●●

खण्ड २

आशीर्वचन
शुभकामनाएं
अभिनन्दन

सन्देश-शुभकामनाएं

चेतना के हिमालय का केन्द्र है-हृदय । हृदय के उत्स से जब श्रद्धा-भक्ति-भावना का निर्झर प्रवाहित होता है तो उसमें एक अद्भुत सम्प्रेषण शीलता होती है, और होती है समग्र को आत्मसात् करने की जलीय तरलता, मिलन सारिता । भावनाओं के इस निर्झर का पात्रानुसार नाम कुछ भी दे दे, जैसे बड़ों के हृदय से जब लघु के प्रति भाव लहरें तरंगित होती है तो वे स्नेह, वत्सलता और आशीर्वचन का रूप धारण करती है तो सद्भाव-श्रद्धा रखने वालों की तरफ से उच्चारित कोमल भावनाएं, शुभकामना या वन्दना का परिवेष पहन लेती है । श्रद्धेय के प्रति विनम्र कृतज्ञ भाव से व्यक्त शब्दावलिया-अभिनन्दन का रूप ले लेती हैं ।

पूज्य प्रवर्तिनी सज्जन श्री जी का सौजन्य सुरभित स्नेह-शीतल व्यक्तित्व सभी के लिए वरेण्य रहा है । गुरुजनों का आशीर्वचन, सद्भावी सज्जनों की शुभ-कामनाएं और श्रद्धाशील भक्त-मानस की वन्दनाजलियाँ अभिनन्दनात्मक भावाभिव्यक्ति हमें जो प्राप्त हुई है उसी से यह अनुमित है कि यह मधुर-मिलनशील निर्मल व्यक्तित्व सबके लिए कितना आदरास्पद और भावना-भावित रहा है ।

—'सरस'
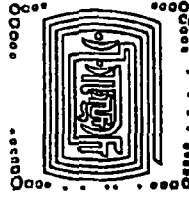
शुभकामनाएँ

[पूज्य आचार्यो, मुनिवरो एव श्रमणी मण्डल द्वारा]

आचार्य श्री जिनउदयसागर सूरि जी महाराज

खरतरगच्छीय आगममनीपी वयोवृद्ध पर्याय स्थविर प्रवर्तिनी जी श्री सज्जनश्री म० सा० का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर आपने शासन के रत्न को सही समय पर यथास्थान पर प्रतिष्ठित कर जो सेवा का लाभ उठाया, हमे भारी प्रसन्नता हुई और "क्या कर नही सकती महिला" इस उदाहरण से मार्गदर्शन प्राप्त कर, नारी समाज आत्मकल्याण के लिये अग्रसर वने यही शुभभावना।

प्रवर्तिनीश्री जी का जीवन ज्ञान-दर्शन-चारित्र रत्नत्रय की आराधना मे सलग्न है और आप सतत इस पथ पर शुभ भावपूर्वक वढती रहे, यही शुभेच्छा है। □

आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्न सूरि जी म.
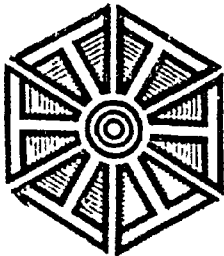
प्रवर्तिनी महोदया साध्वी श्री जी म० से मेरा सम्पर्क साधनाकाल के प्रथम वर्ष से ही हो चुका है। जव मैं शान्त तपोमूर्ति आचार्य श्री विजयसमुद्र सूरीश्वर जी म के साथ वीकानेर मे था। आपका पत्र पाते ही वह सारी पुरानी स्मृतियाँ पुन ताजा हो गईं। इनकी प्रवचन शैली मे वाणी की माधुर्यता के साथ-साथ ज्ञान की गहनता एव जीवन का अनुभव झलकता है। यह महाराज श्री जी की अप्रमत्त ज्ञान-साधना का ही परिचायक कहा जा सकता है। जहाँ जीवन मे एक ओर ज्ञान-तप-सेवा एव साधना का तेज परिलक्षित होता है तो दूसरी ओर विनय-विनम्रता तथा स्वल्प सीमित अर्थ गर्भित शब्दो वाली वाणी भी जीवन की पूर्णता को अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार अनेक सद्गुणो से अलकृत प्रेरणादायी जीवन को शब्दवद्ध करना असम्भव है क्योंकि कुछ न कुछ छूट जाने की सम्भावना रहती है। फिर भी छपने वाला अभिनन्दन ग्रन्थ, ग्रन्थ ही नहीं अपितु उनके जीवन की जीवन्त स्मृतियो को अजर-अमर वनाने वाला होगा। ऐसी मेरी हार्दिक शुभकामना है। □

आचार्यश्री आनन्दऋषिजी म. सा.

न+अरि=नारी, अर्थात् जिसका कोई शत्रु नही। यह नारी शब्द का शाब्दिक अर्थ है परन्तु इसका भावार्थ बहुत व्यापक है। समय-समय पर नारी ने पुरुषो को उभारा है। अपरिहार्य समय पर उसे जगाया है, चेताया है। कर्तव्य से पराङ्मुख को मार्ग पर लायी है। इसीलिये भगवान् महावीर ने नारी को समानाधिकार अपने चतुर्विध सघ मे देकर उस समय की विषमता समाप्त की जिस समय नारी को हीन दृष्टि से देखा जा रहा था।

हमारे समाज मे भी चन्दनबाला की परम्परा को चलाने वाली याकिनी महत्तरा सरीखी साध्वियाँ हुई है। जिन्होने आचार्य हरिभद्रसूरि सरीखे व्यक्तियो को जैनधर्म मे दीक्षित कर अद्‌भुत कार्य किया था। उसी परम्परा की श्रृखला की एक कडी परम विदुषी प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० है। उनका सक्षिप्त परिचय देखने मे ज्ञात हुआ कि उन्होने एक सम्पन्न एव सस्कारी कुल मे जन्म लिया, छ्ती-रिद्धि को त्यागकर मोक्षप्रदायिनी दीक्षा-ग्रहण की और ज्ञान-ध्यान मे अपनी शक्ति लगा दी एव अनेक प्रान्तो मे विचरण कर स्व-पर का कल्याण किया। ये समन्वयवादी है। कवित्व शक्ति उनकी जन्मजात प्रतिभा है। उनके द्वारा विरचित काव्य आज भी उनकी यश कीर्ति को बढा रहा है। ऐसी गुणग्राही साध्वी जी का अभिनन्दन ग्रन्थ जन-जन का प्रेरणादायक बने। यही मेरी शुभकामना है। □
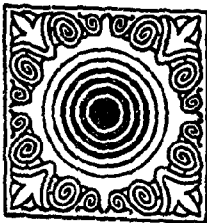
आचार्यश्री तुलसी जी म०

साधु जीवन की सफलता के चार दरवाजे हैं—क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव और मार्दव। इन दरवाजो मे प्रवेश होने के बाद ही साधना के आनन्द का अनुभव होता है। जैनशासन मे दीक्षित होने वाले साधु-साध्वियाँ भगवान् महावीर के इस प्रेरणा वाक्य को आधार बनाकर ही अपने जीवन की यात्रा प्रारम्भ करते है।

मूर्तिपूजक परम्परा मे दीक्षित वयोवृद्धा साध्वी सज्जनश्री जी से हमारा पुराना परिचय है। जयपुर के तेरापथी श्रावक गुलाबचन्द जा लूणिया की पुत्री होने के कारण भी उनका तेरापथ धर्मसघ के साथ निकटता का सम्बन्ध है। साध्वीजी की सहज और निश्छल मनोवृत्ति उनकी साधना की गहराई को उजागर करने वाली है। उनके सम्मान मे 'अभिनन्दन ग्रन्थ' की समायोजना साध्वी समाज की गुणवत्ता के मूल्याकन की योजना है। जैनशासन की प्रभावना मे साध्वियो का उल्लेखनीय योगदान रहा है। अभिनन्दन ग्रथ मे ऐसी घटनाओ, सस्मरणो का आकलन भी हो, जो साध्वी समाज की अर्हताओ को अभिव्यक्ति देने वाला हो।
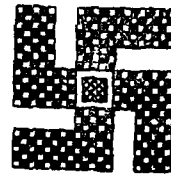
उपाध्याय श्री अमरमुनिजी म० सा०

महत्तरा प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी मात्र शब्दो में ही सज्जनश्री नही है अपितु निर्मल पुण्य भावो में भी सज्जनश्री है। उनके अन्तर् और बाह्य दोनो जीवन धाराओ का कुछ ऐसा दिव्य सगम है कि गगाय-मुना के सगम के रूप मे तीर्थराज प्रयाग की लोक जीवन मे जो पुण्य स्थिति है, वह मन-मस्तिष्क की भाव-स्मृति मे सहसा उद्भासित हो उठती है।

सौम्य, औदार्य आदि सद्गुणो की पावन गगा है साध्वीरत्नश्री सज्जनश्री जी। इधर-उधर के द्वन्द्वो से मुक्त रहकर स्वच्छ शुच्छ पवित्र भावधारा म प्रवाहित रहता है उनका आदर्श सयमी जीवन। वे कथ्य मे नही तथ्य मे विश्वास रखती है। जो कहना सो करना, और जो करना सो कहना, इस केन्द्रबिन्दु पर समवस्थित है, उनके जीवन का ज्योतिबिन्दु।

प्रवर्तिनी श्री जी के द्वारा आत्मकल्याण के साथ जन-कल्याण के जो महत्त्वपूर्ण कार्य यथाप्रसग होते रहे है, उनका एक चिरजीवो आदर्श इतिहास है। यह एक ऐसा इतिहास है, जो वर्तमान और भविष्य के साधक एव साधिकाओ के लिए मार्गदर्शन का पुनीत कार्य करता रहेगा।

मै हृदय मे प्रवर्तिनी श्री जी के अभिनन्दन का स्वागत करता हूँ। वे स्वत ही अभिनन्दनीय है फिर भी भक्तजनो का कर्तव्य है कि वे जन-जन के प्रतिबोध के लिए प्रवर्तिनी श्री जी के दिव्य जीवन की प्रभा अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप मे भी प्रकाशमान करके, पुण्यार्जन करे। □

आचार्य श्री विजय यशोदेव सूरिजी म०

आर्यारत्न प्रवर्तिनी साध्वी जी श्री सज्जन श्री जी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने वाला है तदर्थ आपको धन्यवाद है।

भगवान् महावीर का शासन २१००० वर्ष तक अविच्छिन्न चलने वाला है। उसमे साध्वीजी महाराज का स्व-पर-कल्याण करने मे बडा भारी योगदान रहा हे। फिर भी साध्वीजी की साधना-शक्ति और प्रभाव के वारे मे विशिष्ट प्रकार का इतिहास लिखा नही गया है। यह वात वर्तमान के सभी सुधी विद्वानो को अखरती हे, इसीलिये यद्यपि आजकल थोडे-थोडे प्रयत्न विविध व्यक्तियो द्वारा हो रहे हें लेकिन जोरदार और व्यापक प्रयत्न हुआ नहीं हे। जो करने की अनिवार्य आवश्यकता समझता हूं। ऐसी परिस्थिति मे आप लोगो ने साध्वी जी का जीवन प्रकाशित करने के लिये जो प्रयत्न उठाया, इसकी सराहना करता हूँ। आपका कार्य सफलता को प्राप्त करे। □

आचार्य श्री पद्मसागर सूरीश्वर जी म०

विदुपी प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जनश्री जी म० सा० के अभिनन्दन समारोह के साथ ही अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित किया जा रहा है, जानकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई।

जैन-शासन की उनके द्वारा की गई प्रभावना एव सेवा अनुमोदनीय है। अभिनन्दन समारोह की सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभकामना है। □
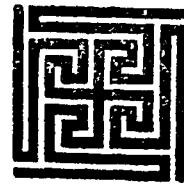
'संत का सत्कार होना चाहिए'

□ संघ प्रमुख चन्दन मुनि

परम विदुषी प्रवर्तिनी साध्वीमतल्लिका सज्जनश्री जी को मै बाल्यकाल से जानता हूँ। उनके पिता स्वनामधन्य श्री गुलाबचन्द जी लूनिया जयपुर के तत्त्वज्ञ श्रावको मे अग्रगण्य थे। वे कवि एव सुमधुर गायक भी थे। उनकी प्रिय पुत्री, श्री केसरी चन्द जी की सहोदरा साध्वी सज्जन श्री से मेरा चिर-परिचय रहा है। इस वैशाखी पूर्णिमा पर उनका अभिनन्दन समारोह मनाया जा रहा है, यह जानकर प्रसन्नता हुई। क्योकि गुणीजनो का अभिनन्दन होना चाहिए। वास्तव मे वह अभिनन्दन उनका नही, उनके उज्ज्वल व्यक्तित्व का होता है। गौतम कुलक मे कहा गया है 'रिमी य देवाय सम विमत्ता।' ऋषि देव तुल्य माने गये गये है। इसी विषय पर लिखा मेरा एक गीत सप्रेम स्वीकार करे—

सन्त का सत्कार होना चाहिए।
देव सा व्यवहार होना चाहिए।
सन्त को पूजो, न पूजो पथ को।
सत्य ही आधार होना चाहिए ।।१।।
सन्त वो ही सन्त, जो निर्ग्रन्थ हो,
शान्तमन निर्भार होना चाहिए ।।२।।
नही नफरत स्थान पाती है वहाँ,
प्रेममय ससार होना चाहिए ।।३।।
है सभी अपने न कोई गैर है,
विश्व ही परिवार होना चाहिए ।।४।।
ज्योति 'चन्दन' जले पावन प्रेम की,
खुला दिल दरवार होना चाहिए ।।५।।

महोदया सज्जनश्री के जीवन उपवन मे अनेक सुगुण पुष्प महक रहे है पर एक अनुकरणीय असाधारण गुण से मै वहुत प्रभावित रहा हूँ वह है उनकी उपशान्त वृत्ति। जिसे अकृत्रिमता, सहजता, सरलता आदि अनेक रूपो मे देखा जा सकता है। नाना नामो से पुकारा जा सकता है। वाचकमुख्य उमास्वाति प्रशमरति प्रकरण मे मार्मिक उल्लेख करते है—

सम्यग्दृष्टिर्ज्ञानी ध्यान तपोवल युतोऽप्यनुपशान्तः।
त लभते न गुण य प्रशमगुणमुपासितो लभते ।।२७।।

जो साधक सम्यग्दृष्टि है, ध्यान तपोबल युक्त है फिर भी यदि अनुपशान्त है तो वह उस गुण को—उस अध्यात्म की ऊँचाई को नही छू सकता जिसे उपशान्त वृत्ति की उपासना करने वाला छू सकता है।

अत इस अभिनन्दन समारोह के सभी सयोजक वन्धु, विशेपत शशिप्रभाजी आदि विनीत आर्यावृन्द भी नवतेरापथ धर्म सघ की ओर से इस मागलिक प्रसग पर शत-शत बधाइयाँ स्वीकार करे। □

○ गणी मणिप्रभसागर जी

प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज जैन श्रमणी के सच्चे श्रेष्ठ स्वरूप की प्रतीक है। उनका व्यक्तित्व इतना वहुआयामी है कि जिस आयाम पर भी विचार करता हूँ, मन उनके प्रति श्रद्धा और आदर से विनत हो जाता है। ज्ञानार्जन और धर्म-प्रचार, काव्य रचना और साहित्य सर्जना जिन भक्ति-धर्माराधना और समाज-सघटना सभी क्षेत्रो मे उनका देय महिमायुक्त है। मैने तो उनके सान्निध्य मे वैठकर कई वार ज्ञानार्जन किया है, तत्त्वचर्चा की हे। उनकी मधुर और विनम्र वोली से, वत्सलतामयी ज्ञान ज्योति से ऐसा लगता है यह प्राचीन भारत की गुरुणी माता है। जिसमे एक साथ गुरुत्व और मातृत्व साकार हुआ है।

खरतरगच्छ की श्रमणी परम्परा को आपने र
श्रमणी वर्ग का, श्रेष्ठ साधिका और ज्ञान उपासिका का
दे नही सकता, क्योकि वे मेरी विद्यागुरुणी रही है। उनके
एव दीर्घायुष्य की कामना करते हुए उनका हार्दि

○ मुनिश्री नगराज जी, डी. लिट्

यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ, जयपुर विरल विदुषी प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी महाराज साहब का अभिनन्दन करने जा रहा है और इस प्रसग पर एक अभिनदन ग्रन्थ का प्रकाशन करने जा रहा है, जिसके प्रकाशन का भार धर्मप्रेमी श्री केसरीचन्दजी लूणिया व श्रीमती झमकूदेवी लूणिया आदि समस्त लूणिया परिवार ने उठाया है। अस्तु, यह एक शुभ कार्य है, और इसमे सहभागी होने वाले सभी बन्धु पुण्यपात्र है।

प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जनश्री जी ने भारतीय इतिहास की धारा मे एक नया अध्याय जोडा है। वेद, उपनिषद, आगम, त्रिपिटक, मनुस्मृति, महाभारत, रामायण आदि सस्कृत के सभी आधार ग्रन्थ पुरुष प्रणीत है। नारी-उपेक्षा की इस चिरन्तन शृखला को अपने वैदुष्य से तोडने वाली नारियो में ये अग्रणी मानी जा सकती है। उनकी ग्रन्थ रचनाएँ परम मौलिक एव पुरुष विद्वानो को भी चुनौती देने वाली है।

प्रवर्तिनी श्री के विषय मे क्या लिखूँ, उनकी गौरव-गाथा को शब्दो मे बाँध पाना भी किसी के द्वारा शक्य नही है। ऐसी विरल प्रतिभा साध्वीश्री के अभिनन्दन मे मै भी अपना तुच्छ अर्घ्य चढाता हूँ। ○

□ प्रवर्तक श्री महेन्द्रमुनिजी 'कमल'

भारतवर्ष ऋषि, मुनि और सन्तो का देश है। जैन, बौद्ध और वैदिक धर्मधाराओ को अखण्ड बनाये रखने में भारत के ऋषि हमेशा एक रहे है। ससार से आँखे मूँदकर गिरि-कन्दराओ मे साधना कर उन्होने जो पाया उसे जनहित मे लुटाया। ससार से उपरत हो जाने के बाद भी उन्होने अपने स्व-पर-कल्याण व्रत को, साँस के पिछवाडे छिपी मृत्यु की तरह स्मृति का अमृतबिन्दु माना है जन-जन की मगल कामना को। स्व-कल्याण कामना मे तो हर किसी को आकर्षण हो सकता है मगर जो सच्चा सन्त-मन लेकर सयम/प्रवज्या ग्रहण करते है वे पर-पीडा को स्वपीडा मानते है। पर-कल्याण, पर-मगल और पर-अभ्युदय होता देखते है तभी उनका निर्मल सन्त-मन मुस्कराता है।

श्वेताम्बर जैनधर्म धारा की महाप्रज्ञा महासती प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री महाराज श्वेताम्बर जैन खरतरगच्छ की महिला सन्तो मे दया, प्रेम, करुणा और परोपकार की जीवत महिला सन्तरत्न है। ये अपने लिए वज्र के समान होने के साथ अतर् मे खोई, भीगी डूबी आत्मरमणता है। अपनी पीडा, अपनी असाता को कर्मोदय क्रीडागण मानती है। पिछले अनेक वर्षो से रोग आक्रामी हो आया है, उसे परम समता से झेलती/जीती है। कई वर्ष से रोगाक्रमण इन पर प्रभावी है। पर उसे भुलाकर साहित्य सृजन इत्यादि लोक-मगल के कार्यो का यज्ञ अक्षुण्ण चलाया हुआ है।

जो साधक-साधिका अपने मन को सन्त बना लेते है वे ही साधक परपीडा, पर-मगल मे रत रह पाते है। उनके लिए स्व-उपसर्ग कर्म क्रीडा से अधिक कुछ नही होते।

महाप्रज्ञा साध्वीमना प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी के अभिनदन ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य के लिए सम्बन्धित श्रद्धानिष्ठ गृहस्थो को शताधिक साधुवाद देता हूँ—जिन्होने महामती जी के जीवन व्यक्तित्व को

उजागर करने का शुभ सकल्प किया है। इसके साथ ही पत्राचार के माध्यम से उत्साही एव श्रमनिष्ठ आर्या शशिप्रभाश्री जी एव विदुषी आर्या सम्यग्-दर्शनाश्री जी की सराहना किये बगैर नही रह सकता—जिन्होने श्वेताम्बर जैन खरतरगच्छ की तप पूत साध्वीरत्न के जीवन कार्यो से समग्र जैन समाज को सुपरिचित कराने के लिए अभिनदन ग्रन्थ प्रकाशित करवाकर एक समारोह मे उसका लोकार्पण कराने का महान् सकल्प किया है।

उक्त अभिनदन ग्रन्थ का प्रकाशन निश्चय ही एक सच्चा सन्त सम्मान साबित होगा। साध्वी रत्न की निर्मल असाप्रदायिक व्यापक दृष्टि का यह ग्रन्थ परिचायक भी सिद्ध होगा। जैनदर्शन से सम्बन्धित निवन्धो का सयोजन भी इसमे किया गया है। उसमे विविध विद्वानो के लेखो का एक जगह उपलब्ध होना भी विशिष्ट महत्वपूर्ण कार्य है। इससे अभिनदन ग्रन्थ व्यक्तिपरक न रहकर समष्टिपरक होगा।

एक बार पुन साध्वी शशिप्रभाश्री के इस महनीय कार्य की मैं मनत अभिवृद्धि और प्रभावी होने की शुभकामना करता हूँ।

☐

☒ मुनिश्री कैलाशसागर जी म०

विदुषी साध्वीरत्न श्री सज्जनश्री जी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, जानकर प्रसन्नता हुई।

साध्वीश्री का स्वास्थ्य स्वस्थ रहे। दीर्घायु बन शासन सेवा करें, गुरुदेव से प्रार्थना व शुभाशीर्वाद है।

☐

○ मुनिश्री रूपचन्द जी महाराज

(दिल्ली)

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० के अभिनन्दन का समाचार जानकर अतीव प्रसन्नता हुई। साध्वीश्री जी से मेरा निकट परिचय राजगिरी पावापुरी चातुर्मास मे हुआ।

हम मुनिगण श्वेताम्बर कोठी, राजगिरी मे ठहरे हुए थे। चातुर्मास का प्रारम्भ हुआ नही था। साध्वीश्री का राजगिरी आगमन हुआ। वे हमारे स्थान पर पधारी। वरिष्ठ साध्वी को सामने देखकर वार्तालाप के लिए मैंने अपना आसन जमीन पर बिछाने के लिए कहा। तभी साध्वीश्री ने कहा—यह कैसे हो सकता है ? आपको पट्ट पर ही विराजना होगा। मैंने बहुत कहा—आप वरिष्ठ है, आगमज्ञा है, आपका सम्मान चारित्र और श्रुत का सम्मान है। किन्तु साध्वीश्री ने मेरी एक भी नही सुनी। तुरन्त अपना आसन बिछाकर वे सामने विराज गई। आपकी अकृत्रिम नम्रता के प्रति मैं मन ही मन नत-मस्तक था।

भगवान् महावीर के पच्चीसवें निर्वाण समारोह मे आपको सदा प्रचारलिप्सा मे दूर मौन भाव से शासन की सेवा मे रत पाया। एक विनय-शील-सम्पन्न, सहज-शान्त तथा मौन सेवारत साध्वीश्री का सम्मान पूरे साध्वी समाज का सम्मान है। श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ इसके लिए बधाई का पात्र है।

○

○ श्री कुशलमुनिजी महाराज

रत्नो की गुलाबी नगरी जयपुर मे जन्म प्राप्त कर भौतिक रत्नो मे न लुभाते हुए, आपने आध्यात्मिक पच रत्न अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एव परिग्रह को अपनी पारखी नजरो से परखकर अपने जीवन को धर्ममय बनाया।

दीक्षा ग्रहण करके, इस अमूल्य मानव-जीवन के महत्व को समझकर, साधना के मार्ग पर चलकर

साधक के गुणो को विकसित किया। उन्ही के उपदेश, उन्ही का आचरण जन-मन को प्रभावित ही नही करता अपितु अन्तर् विकास की भावना भी उत्पन्न करता है। ये सभी गुण सज्जनश्री जी मे विद्यमान हे।

इनका जीवन इनके नाम के अनुरूप ही है। आगम, द्रव्यानुयोग, सस्कृत जैसे कठिन विपयो की पूर्णतया ज्ञाता होने के साथ ही गम्भीरता, सरलता, स्पष्ट वक्ता आदि अनेक गुणो से मडित उनका जीवन पुप्प की सौरभ के समान आज भी जन-मानस मे छाया हुआ है।

कहा भी है जो साधु-साध्वी निर्दोप मार्ग पर चलते है तथा निप्काम होकर दूसरे मनुप्यो को भी उस सत्य मार्ग पर चलाते है वे खुद तो भव-सागर से तरते है साथ ही दूसरे प्राणियो को भी भवसागर मे तारने मे समर्थ होते है। ऐसे सन्तो को समाज भुला नही सकता है।

ऐसी ही प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी का जो "अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रकाशित हो रहा है, वह सघ के लिए वडे ही हर्प का विपय है।

○

☐ श्रीजयानन्दजी मुनि

(सुशिप्य गणिश्री बुद्धिमुनि जी)

जिन्होने राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर मे जन्म लेकर इस धर्मभूमि से धर्मसस्कार ग्रहण करके युवावय मे ससार के भौतिक सुखो को तिलाजलि देकर प्रभु महावीर स्वामीजी के मार्ग को अगीकार किया।

जो साधनसम्पन्न परिवार के थे फिर भी जिन्होने ज्ञानगर्भित वैराग्य द्वारा चारित्रमार्ग अगीकार करके अपने परिवार, जैन-समाज एव खरतरगच्छ को गौरवशील किया।

जो आगमप्रज्ञ है, द्रव्यानुयोग जिनका प्रिय विपय है। अपनी असाधारण ज्ञान-प्रतिभा द्वारा द्रव्यानुयोग जैसे कठिन ग्रन्थो का भी बाल जीवो के लिये सुलभ भापा मे अनुवाद किया।

ऐसी महान विदुपी प्रवर्तिनी पद से विभूपित स्वनामधन्या साध्वीजी सज्जनश्री जी का अभिनन्दन विशेषाक प्रगट करके जयपुर जैन सघ बहुमान कर रहा है, इस की हमे परम खुशी है।

जिनेश्वर प्रभु से प्रार्थना है कि साध्वीजी चिरायु हो और जैन सघ एव खरतरगच्छ की सेवा करते-करते अपनी आत्मा का भाव-मगल करे।

○

☐ प्रवर्तिनी श्री जिनश्रीजी म० सा०

वयोवृद्धा, साध्वी श्रेष्ठा, ज्ञानध्यानमग्ना, प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म सा ! मै साशीर्वादपूर्वक लिखना चाहती हूँ कि आपका जो गौरवग्रन्थ निकल रहा है, वह अत्यन्त समुचित आयोजन इसलिए है कि यह गौरव केवल आपका नही समग्र जैन साध्वी समाज का है। जैन-शासन का हे। आपने जिस ढग से जप-तप युक्त ऊँचे आध्यात्मिक जीवन को अपनाया है, जिस एकाग्रवृति से ज्ञान साधना की है और विशाल श्रावक समाज मे विशाल धर्मप्रेरणा जगायी है वह अनूठी है। भूरि-भूरि प्रशसायोग्य है। अत मैं आपको अत करणपूर्वक शावासी देती हुई आपका अभिनन्दन करती हूँ तथा ऐसी हार्दिक शुभभावना व्यक्त करती हूँ कि आप प्रगति पथ पर दीर्घकाल तक अक्षुण्णरूप से आगे वढती रहो। ○

□ साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी

जैन श्रमणी का जीवन त्याग-तपस्या-सयम-सेवा की चतुर्मुखी ज्योति है, वह पवित्रता और प्रशम रस की स्रोतस्विनी है। युग-युग से मानव को जीवन की ऊर्ध्वगामिता का सन्देश सुनाती आई है श्रमणी।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा मे खरतरगच्छ परम्परा की प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज का जीवन भी सयम की दीर्घ साधना का जीवन्त इतिहास है। तेरापथ परम्परा के साथ उनका बहुत ही नजदीकी पारिवारिक सम्बन्ध रहा है। आपके सौजन्य और सरलता से हम सभी सुपरिचित है। ऐसी समत्व साधिका विदुषी श्रमणी का अभिनन्दन जैनत्व की गरिमा को अवश्य मडित करेगा।

○

□ आचार्य श्री चन्दनाजी

(वीरायतन)

साध्वीरत्न सौम्यमूर्ति प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी की मधुर-स्मृति मन-मस्तिष्क पर सहसा ज्योतिर्मय हो उठी है। उनके मिलन का काल काफी लम्बी यात्रा कर चुका है फिर भी ऐसा लगता है कि वे अभी-अभी मिली है और उनके मिलन की सुगध आस-पास के वातावरण मे आज भी महक रही है।

प्रवर्तिनी श्री जी का जीवन एक ऐसे मगलदीप का जीवन है, जो दीप से दीप प्रज्वलित होते रहने की सदुक्ति को फलितार्थ करता है। उनके द्वारा अनेक भव्य आत्माओ का जीवन निम्न धरातल से ऊपर उठकर सदाचार एव सयम के एक-से-एक ऊँचे शिखरो पर पहुँचता रहा है।

महासती जी ज्ञान एव कर्म की मिलनमूर्ति है। ज्ञान और तदनुरूप कर्म के क्षेत्र मे जो इन्होने अनेकानेक स्थानो मे बीजारोपण किये है, वे अकुरित ही नही अपितु सुचारु रूप से पल्लवित, पुष्पित होते हुए अन्तत फलित स्थिति मे भी पहुँचे हैं।

प्रवर्तिनी श्री जी के सम्बन्ध में एक महान दार्शनिक आचार्य का दिव्य उद्गार स्मृति-पटल पर अवतरित हो रहा है "वसन्तवल्ले कहित चरन्त। अर्थात् महान सयमी सन्त-जीवन वह है जो ऋतुराज वसन्त के समान लोकहित का निर्माण करते है। सत्कर्म के दिव्यपुष्प उनके द्वारा आरोपित किए हुए ऐसे खिलते है, महकते है कि सृष्टि का रूप कुछ और का और हो जाता है। मानव के मन का कण-कण खिल उठता है, इस प्रकार के वसन्त के आविर्भाव मे। सज्जनश्री जी साधना के क्षेत्र की ऐसी ही वसन्त है।

साधुजीवन सहज रूप से स्वय ही एक अभिनन्दन है। फिर प्रवर्तिनी श्री जी जैसे निर्मल, निश्छल एव सहज उदात्त साधु-जीवन का तो कहना ही क्या ? मुझे प्रसन्नता है प्रवर्तिनीश्री जी के सम्बन्ध मे एक विराट् समादरणीय अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। मैं उक्त प्रकाशन रूप सत्कार्य मे सलग्न सुयोग्य साध्वीजनो का, साथ ही भावनाशील भक्त उपासको का भी हृदय से अभिनन्दन करती हूँ। सत्कर्म किसी के भी द्वारा हो वह सर्वतोभावेन सदैव अभिनन्दनीय है।

○

□ आर्या धर्मश्री रतिश्री म० सा०

परम विदुषी आगमज्योति प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० खरतरगच्छ की ही नही अपितु जैन समाज की विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न साध्वी हैं। वे आगममर्मज्ञा हैं, समता-सरलता की साक्षात देवी हैं। आपका अनुपम व्यक्तित्व जैन अजैन सभी के लिए श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। आपकी जन-कल्याणमय वाणी सभी के दिलो मे गुजित है। आपकी व्याख्यान शैली सरलतम है, कठिन से कठिन आगम वाणी को सुगमता से समझाकर श्रोता को सन्तुष्ट कर देती हैं। आपके व्याख्यान मनोरंजन के लिए

□ श्री निर्मलाश्री जी म० सा०

हार्दिक प्रसन्नता का विषय है पूज्यवर्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म०सा० के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती उपलक्ष मे अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

मेरा परम सौभाग्य रहा कि मुझे बचपन से ही पूज्य गुरुवर्याश्री के दर्शनो का लाभ मिलता रहा और अब तो चरणो मे रहने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आपका स्वभाव अत्यन्त सरल विनम्र है। हम जब कभी भी जाते तो सरलता-वात्सल्यता के साथ बातचीत करती। मैंने अपने जीवनकाल मे कभी उत्तेजित नही होते देखा। आरम्भ से अभी तक उनके जीवन मे कभी कृत्रिमता नही देखी। किसी मे भेदभाव करते नही देखा। माया, कपट, छल करते नही देखा। सदा स्वाध्याय करना व कराना इसी मे तल्लीनता देखी। तप, त्याग, सयमनिष्ठ बनने की सभी को प्रेरणा देती रहती हैं कि सयम, तप, त्याग के बिना जीवन का कोई महत्व नही है। कितने भी पढ लो, दुनिया से कितनी भी प्रसिद्धि पा लो लोगो को कितना भी रिझालो परन्तु जब तक आत्मा को नही रिझाओगे तब तक कुछ नही है।

गुरुदेव से मैं पूज्य गुरुवर्याश्री की शतायु दीर्घायु की कामना करती हुई पुन गुरुवर्याश्री से यही आशीर्वाद चाहती हूँ कि आपकी तरह सरल, सहिष्णु बन जीवन को समुज्ज्वल बना मोक्ष लक्ष्य को प्राप्त करूँ। इसी शुभेच्छा के साथ चरणो मे कोटि-कोटि अभिनन्दन-अभिवन्दन।

□

□ साध्वी श्री मणिप्रभाश्री जी म०सा०

(सुशिष्या स्व० साध्वी विचक्षणश्री म०सा०)

नाम के साथ गुण का अद्‌भुत सयोग, ज्ञान के साथ सरलता का सुयोग, पद के साथ वात्सल्य का योग, अप्रमत्तता से समय का उपयोग, विद्वत्ता के साथ कवित्व का प्रयोग, ज्ञानदान मे पूर्ण मनोयोग आदि अनेक विशिष्टताओ से युक्त है जीवन जिनका वे है प्रवर्तिनी पू० श्री सज्जनश्री जी म०सा०।

पूज्या प्रवर्तिनी सा० का जीवनवृक्ष अनेकानेक गुणो रूपी फलो से आपूरित है। यह बात निश्चित है कि साधक की साधना जितनी बलवती होती जाती है—उसमे उतनी ही सरलता बढती चली जाती है। उसके व्यवहार मे निश्छलता सहज होती है। सासारिक क्षेत्र मे ज्ञान के साथ अभिमान, पद के साथ मद उभरता है लेकिन साधना क्षेत्र मे ज्ञान के साथ सरलता बढती है।

हृदय मे आल्हाद भर जाता है, अनुमोदना भाव उभरने लगता है—पूज्या प्रवर्तिनी जी के जीवन वैभव को देखकर। प्रवर्तिनी पद और कितनी सहजता, आत्मज्ञान मे सर्वोपरि स्थान पर कितनी सरलता, जीवन का वृद्धत्व पर कितनी अप्रमत्तता।

अभिनन्दन है उनका, अभिवन्दन है उनका—जो जीवन के एक-एक पल को सतर्कता से जी रहे है। प्रार्थना है प्रभु से—वे शतायु हो और हमारी पथप्रदर्शिका बनी रहे।

□

□ श्री अविचलश्री जी म०

(सुशिष्या प० पू० प्र० विचक्षणश्री जी म० सा०)

केवल खरतरगच्छ सघ के लिए ही नही परन्तु समस्त जैन सघ-समाज के लिए गौरव की बात है कि प० पू० जैन कोकिला प्र० स्व० विचक्षणश्री जी म० सा० की पट्ट धारिणी, आशु कवयित्री, आगम मर्मज्ञा प्र० सज्जनश्री सा० का अभिनन्दन होने जा रहा है। यह उनके व्यक्तित्व का परिचायक है अत विशेष कुछ न लिखकर शासनदेव व गुरुदेव से प्रार्थना है कि इन्हे दीर्घायु करे जिससे चिरकाल तक जिनशासन की प्रभावना करते रहे एव अनेकानेक भक्तात्माओ को वीतराग वाणी का अमृत पान कराकर सयममार्गी व मोक्षगामी बनावें। इसी शुभकामना के साथ।

□

☐ अचलगच्छीय साध्वीश्री ज्योतिष्प्रभाजी म०

विश्वनी अन्दर गुरुभगवन्तो विश्वना जीवोना हितने माटे जीवन जीवनारा होय छे। मानवना काडे बाधेलु घडियाल मानवने काम आवे छे। घरमा रहेलु घडियाल घरना माणसोने काम आवे छे, शेरीमा रहेलु घडियाल शेरीना माणसोने काम आवे छे। परन्तु टावर बधाने काम आवे छे। तेम गुरु भगवन्तो विश्वना तमाम जीवोना हितने माटे टावरनी जेम पोताना जीवन ने जीवीने दुनियाना तमाम जीवोनु भलु करनारा होय छे, महान प्रतापशाली, प्रतिभासपन्ना, अजोड वक्ता, नाम तेवा गुणोने प्राप्त करणारा प० पू आगमप्रज्ञ सज्जनश्री जी म सा ना गुणोनु हुँ शु वर्णन करू। जेमना जीवनमा सज्जनता रगेरगमा भरेली छे, प्रेमालता, अमीदृष्टि, वाल्सल्यता, परार्थरसिकता, मैत्रीभाव, निस्पृहता आदी अनेक गुणो ऐमने जे वरेला छे, ज्ञान पिपासु तो एवा छे के जेमना सान्निध्यमा जे आवे तो व्यक्ति ज जाणी शके।

हु, जामनगरमा चातुर्मास हती. त्यारे मने अनुभव थयो। ए जणावता आनन्द थाय छे के आवा गुणियल गुरुना गुणो लखवानो अवसर मल्यो। पुज्य श्रीजीनो स्व-पर-दर्शननो बोध अपूर्व कोटीनो छे अमेणो घणा आगमगन्थोनु वाचन मनन परिशीलन चिन्तन अने अनुप्रेक्षा करेली छे। अमे बन्ने ठाणा ऐमनी पासे सुयगडाग सुत्रनी टीका वाचवा जता। त्यारे अमेनी समजाववानी कला अनुभवी अजब कोटीनी के आपणने हृदय मा बसी ज जाय, बीजी पर पुस्तक हाथमा लेवानी जरूर ज न पडे। ज्यारे जईय त्यारे अप्रमत्त दशा ऐवी के पुस्तक हाथमा ज होए, गमे ते समये गया होईए पण क्यारे अमेना मुखमाथी नकारनो नाम ज नथी।

वात्सल्यथी भरपूर अमेनु हृदय ने जोईने गुरु-समर्पण भाव उमेराया विना रहे ज नही। पोताना विशाल शिष्या वृन्दमा पण अमेने अधिक व्हालथी अभ्यास करावता, आ नानकडी जीभथी आवा गुणगिल महापुरुषना गुणो गाइ शकाय, सागरना विन्दु, अकाशना तारा, रेतीना कणीया, गणवा जेम अशक्य छे तेम मारी बुद्धया अेमना गुणेनु मूल्य करबु अशक्य छे। अेवा आगमप्रज्ञ गुरुभगवन्त श्री जी ने कोटी.... कोटी वदन वदन वदन।

☐

☐ विचक्षण ज्योति,
साध्वी श्री चन्द्रप्रभाश्री

वर्तमान युग की जाज्वल्यमान व्यक्तित्व एव दैदीप्यमान कृतित्व की देवी, वात्सल्यवारिधि, अप्रतिम प्रतिभा की धनी, अनुपम साधिका, परम श्रद्धेया प्र० म० श्री सज्जनश्रीजी म० को वन्दन।

भगवान् महावीर के पद जिनके अणु-अणु मे व्याप्त है, ज्ञानदायिनी माँ सरस्वती के प्रति एकाग्र साधना, गुरुदेव एव गुरुवर्या श्री के प्रति समर्पित भावना, महनशीलता की महाकाव्य, स्नेह सहानुभूति की सारस्वत गगा, सहज स्फूर्त अध्यात्म धारा प्रवाहिका, अनन्त दैविक गुणो की खान पूज्य प्रवर्तिनी साध्वीजी श्री सज्जनश्रीजी म०सा० के जीवन से मै अन्तस्तल तक प्रभावित हूँ।

युग की इस महान् मनीषी का अभिनन्दन यथार्थत इस अनुपम गरिमामय गुणो का ही अभिनन्दन है।

इस पुनीत अवसर पर मै श्रद्धेया गुरुवर्याश्री के सद्चरणो मे अभिनन्दन-अभिवन्दन के समकित पुष्प समर्पित करती हू। ☐

☐ साध्वी श्री मुदितप्रज्ञाश्री

ससार के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखा गया है कि "सन्त भारत की आत्मा है, भारतीय इतिहास के निर्माण मे वे नीव की ईंट के रूप मे रहे है।" जिस प्रकार प्रत्येक पर्वत पर मणियाँ नही होती, हर हाथी के मस्तक मे मुक्ता नही होती, हर जंगल मे चन्दन के वृक्ष नही होते उसी प्रकार प्रत्येक स्थान पर सज्जन पुरुष नही होते। महापुरुष अपने व्यक्तित्व के कारण महान् बनते है। व्यक्तित्व

आचार-विचार की दो धातुओ से बनता है। जिसमे आचार की ऊँचाई व विचार की गहराई होती है वही जीवन महान होता है।

विवेक-विलासी, ससार से उदासी, शिव रमणी की प्यासी, तत्त्व ज्ञान की उल्लासी पूज्य-वर्या श्री का जीवन भी लाखो मे एक है। मानो वैराग्य उन्हे पूर्व जन्म की विरासत के रूप मे मिला है।

गुणो की गुरुता के कारण व्यक्ति की महत्ता बढती है। धीरे-धीरे आपश्री विनय-विवेक-स्वाध्याय-ज्ञान-ध्यान-तप जप से अभ्युदय के शिखर पर पहुँचने लगी।

आपश्री अप्रमत्तता के साथ अध्ययन मे सदा सलग्न रहती है। वर्तमान मे ८० की उम्र है, स्वास्थ्य भी अनुकूल नही है फिर भी स्वाध्याय पक्ष कमजोर नही है। अध्ययन-अध्यापन मे सदा आगे ही रहती हैं। आपश्री का चिन्तन गहरा है, विश्लेषण शक्ति अद्भुत है। ज्ञानी है, पर ज्ञान का अहकार नही है। विनय-विवेक से समन्वित उनका जीवन दर्शन प्रेरक है।

आपश्री के जीवन मे सरलता अजब गजब की है। कैसा भी प्रश्न उपस्थित हो जाय बिना किसी तनाव व आक्रोश के उलझन को सुलझन का रूप दे देती है।

आपश्री की विशेषताओ को देखकर सभी पूज्य-वर्याओ के मुँह से यही उद्‌गार निकलते "शिष्या बने तो ऐसी जो स्वय भी सुखी उनसे दूसरे भी सुखी।" अरे, कोई तो सज्जन बनो। नीति मे भी कहा है कि

> "भक्त चित्त मे रहे प्रभु वह नर धन्य है।
> प्रभुचित्त मे रहे भक्त वह नर धन्योत्तम धन्य है।"

इस पावन वेला मे मेरे अन्तर् हृदय मे जो भाव उमड रहे है उन्हे आपश्री "सुदामा के तन्दुल" की तरह अवश्य स्वीकार करे।

☐

☐ साध्वी मधुस्मिताश्री

(प पू शासनज्योति मनोहर श्री जी म. सा. की शिष्या)

मै अपने आपको भाग्यशालिनी मानती हूँ कि मुझे आगमज्ञाता, परम विदुषी, आशु कवयित्री, परमपूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म सा की गुण-गरिमा का वर्णन करने का अवसर प्राप्त हुआ है। जैसे पानी की नन्ही सी बूँद मे कोई चमत्कार नही होता है, परन्तु वही नन्ही बूँद जब कमलिनी के पत्तो का ससर्ग पा लेती है तो वह अनमोल मोती की आभा को प्राप्त कर लेती है। उसी प्रकार मैं अपने आपको धन्य मानती हूँ।

परमपूज्य सज्जनश्री जी म सा स्वनामधन्या तो है ही साथ मे आपका जीवन तप, त्याग, सयम तथा परोपकारमय है। आपने अपने ज्योतिर्मय जीवन की खुशबू चारो तरफ फैला दी है। जो भी आपके सम्पर्क मे आता है, आकर्षित हुए बिना नही रहता।

आपकी बुद्धि-पटुता भी गजब की है। एक सामायिक के अन्दर भक्तामर स्तोत्र को कठस्थ कर लिया।

मैं अपने आपको बहुत ही भाग्यशालिनी मानती हूँ कि मुझे आपश्री का सान्निध्य प्राप्त हुआ। दीक्षा से पूर्व गृहस्थ-जीवन मे चार वर्ष तक मुझे आपका सान्निध्य, ओजस्वपूर्ण वाणी, वात्सल्यता तथा आपका निर्देश बराबर मिलता रहा। सयम ग्रहण करने के पश्चात् अभी मैंने प्रथम बार जयपुर मे आपश्री के दर्शन कर अपना अहोभाग्य समझा। थोडे समय के सयोग ने तथा आपकी स्नेहमयी वाणी ने मेरे जीवन को मोह लिया। समयाभाव तथा आगे की परिस्थितियो को देखते हुए हमे इच्छा न होते हुए भी जयपुर से प्रस्थान करना पडा। विहार करते समय आपके मुखं रूपी कमल से यही शब्द स्फुटित हुए कि ऋजु परिणामी बनो, शासन की सेवा करो, जीवन को उन्नत बनाओ।

आपकी जीवन गत गुण गरिमा के लिए कितना क्या लिखूं। आपकी सर्वोन्नत प्रतिभा का आलेखन करने मे यह कलम सक्षम नही है। अन्त मे शासन-देवी तथा गुरुदेव से यही मगल कामना करती हूँ कि आप दीर्घायु बनें। ☐

विभिन्न आम्नाय-प्रतिनिधि प्रमुख सद्गृहस्थों जैनसंघों, संस्थाओ एवं श्रद्धालु श्रावकों की

शुभकामना—वन्दना

☐ श्री विमलचन्दजी सुराना (जयपुर)

श्रमणत्व का सार है कषायो की निवृत्ति। इस अर्थ मे पूज्याश्री का जीवन वास्तव मे श्रमणी जीवन है। ज्ञान के भडार होने पर भी अह का लेशमात्र भी नही। आप सरलता की प्रतिमूर्ति है। उनके गुणानुमोदन के लिए लिखा गया यह 'ग्रन्थ' हमारी राग-द्वेष की सारी ग्रन्थियो को तोडने वाला बने, यही आपश्री के प्रति वास्तविक श्रद्धाजलि होगी। ☐

☐ श्री हरिश्चन्द्र जी बड़ेर (जयपुर)

महासती परम पूज्या श्रद्धेय सज्जनश्रीजी म. सा उत्कृष्ट कोटि की साधिका है। श्रद्धेय महासती जी का जीवन महान् है। मै इन महान् साधनाशील महासती जी के लिये जिनेश्वर भगवान् से यही प्रार्थना करता हूँ कि आप स्वस्थ एव दीर्घ जीवन जीये, प्रकाश से महाप्रकाश की ओर इतने अग्रसर हो जाये कि इसी भव मे मुक्ति के महान अधिकारी बने और जिनशासन की अधिकाधिक सेवा करे और आपके अनमोल मार्ग-दर्शन के माध्यम से अनेक आत्माएँ भवी बनें।

'जीवन चरित महापुरुषो के,
हमे नसीहत करते है।
हम भी अपना अपना जीवन,
स्वच्छ-रम्य कर सकते हैं।'

☐

☐ श्री उमरावमलजी चौरडिया (जयपुर)

जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ के आर्यारत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी महाराज साहब का अभिनन्दन करने का निश्चय किया है, यह परम सौभाग्य की बात है।

अभिनन्दनीय का अभिनन्दन करने का तो हमारा सामर्थ्य कहाँ है ? निश्चय ही उनके उदात्त तत्वज्ञानमय विचार, हृदयगम कराने की अप्रतिम प्रतिभा, शान्त, सेवाभावी एव निरभिमानी व्यक्तित्व जन-जन का प्रेरणास्रोत बन समाज को एक नया दिशा-दर्शन देता रहेगा। इसी भावना के साथ श्रीचरणो मे भावाजलि एव ग्रन्थ के लिए शुभ-कामनाये। ☐

☐ श्री जवाहरलालजी मुणोत (बम्बई)

(भू० पू० अध्यक्ष—अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस, दिल्ली)

जैन समाज की एक परम दैदीप्यमान महासती श्रमणी आर्यारत्न प्रवर्तिनीजी श्री सज्जनश्री जी महाराज साहब का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है, यह प्रसन्नता का विषय है।

रूढ और स्थूल रूप से जैनधर्म ने, समस्त धार्मिक सगठन को चार बहुत स्पष्ट भागो में विभाजित कर डाला—श्रमण और श्रमणी तथा श्रावक और श्राविका। भगवान् महावीर के क्रान्ति-कारी और अत्यन्त दूरदर्शी नियोजन का आधार देखिए, सुस्पष्ट है। इस प्राचीन और अर्वाचीन धर्म मे ही पुरुष और स्त्री को केवल आलकारिक रूप मे नही बल्कि समस्त अधिकारो के साथ बराबर-बराबर स्थान निर्धारित किया गया है।

जैन धर्म परम्परा अतीव भाग्यशाली है कि इस समाज मे, ममय-समय पर अत्यन्त तेजस्वी, तप पूत और कठोर आध्यात्मिक साधना से सफलीभूत आर्यारत्न प्रर्वातिनीजी जैसी महान श्रमणी का आविर्भाव हुआ है। परन्तु इनका अभिनन्दन तो ऐसा अवसर है जब हमे बिना झिझक, फिर से चतुर्विध सघ को पुनर्स्थापिन करने का सही और श्रमसाध्य प्रयास करना चाहिए। जहाँ दूसरे चर्चो मे अथवा धार्मिक सघो मे, स्त्री को आध्यात्मिक समाज की समानता स्थिति देने के लिये नये आन्दोलन करने पडते है—वहीं यह कैसी विडम्बना है कि जो अपने सघीय प्रारम्भ से ही स्त्री स्वरूप को सम्पूर्ण समान अधिकार देता है, उस जैनधर्मीय सघ को आज श्रमणी और श्राविका को उसके असली अधिकार पर पुनर्स्थापित करने के लिए नये प्रयत्न करने पड रहे है।

मेरे जैसे अकिंचन श्रावक की यही अभिलाषा है कि अभिनन्दन का यह अनुपम अवसर इस महान कार्य के शुभारम्भ का सही श्रीगणेश करने मे सफल हो।

□

□ श्री जी० आर० भण्डारी

यह कहते हुए मुझे गर्व है कि साध्वीजी का सम्पूर्ण जीवन प्राणी मात्र के आत्म-कल्लाण के लिए समर्पित है। जैन समाज को ऐसी विदुपी साध्वी पर गर्व तो है ही साथ ही जैन समाज सदैव साध्वीजी का ऋणी रहेगा।

मेरा विश्वास है कि प० पू० साध्वी जी श्री शशिप्रभाश्री जी म० मा० "जैन दर्शनाचार्य" के सान्निध्य मे प्रकाशित इस अभिनन्दन ग्रन्थ मे निश्चित ही साध्वीजी के सस्मरणो की अमूल्य निधि का समावेश रहेगा। मै आपके प्रयासो एव अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता चाहना हू।

□

□ श्री हजारीमलजी बाठिया (कानपुर)

परम पूज्या साध्वी जी श्री सज्जनश्री जी म० सा० की वाणी तो ऐसी ज्ञानमयी जादू की वाणी है जी चाहता है प्रतिदिन वह कान मे गूँजती रहे और मैं श्रवण करता रहूँ। ऐसी महान विदुपी का अभिनन्दन कर आपने सचमुच ही जैनधर्म की गौरवमयी परम्परा को आगे बढाया हैं। वे खरतरगच्छ परम्परा की अवश्य है किन्तु सभी समाज के लिए पूजनीय एव अभिनन्दनीय है। सत किसी वाडे मे नही बँधते है। वे तो समस्त जगत् का उद्धार करने के लिए इस धरा पर अवतरित होते है, ऐसी आगमज्ञा गुरूवर्या के चरणो मे शतश नमन—अभिनन्दन।

□

□ श्री राजेन्द्रकुमारजी श्रीमाल

(श्री कुशलसस्थान, जयपुर)

वैराग्यमूर्ति, जनकल्याणकारी, मृदुभाषी, सरल स्वभावी, अज्ञानतिमिरनाशक, गुणनिधि प० पू० प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने के समाचार जानकर हृदय आनन्द से पुलकित हो उठा व प्रसन्नता का पारावार न रहा।

प० पू० प्रवर्तिनी के जीवन का मुख्य लक्ष्य विद्योपासना एव सरस्वती साधना है। हम सान्निध्य एव सम्पर्क मे रहकर अपने आपको बडा गौरवशाली एव भाग्यशाली समझते है। आपश्री शतायु हो, जनकल्याण हेतु ज्ञान बाटती रहे, तथा आपका लिखा हुआ साहित्य प्रकाशित हो जिससे हमे नवीन जागृति, चेतना व मार्गदर्शन मिले—इन्ही मगल भावनाओ से प्रेरित मेरा अभिनन्दन स्वीकार करे।

□

☐ विद्यावारिधि डॉ महेन्द्रसागर प्रचडिया

डी० लिट्०

(निदेशक जैन शोध अकादमी
आगरा रोड, अलीगढ)

यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि सुधी समाज परम वद्य आगमप्रज्ञा प्रवर्तिनी सज्जनश्री महाराज की वदना मे एक अभिनव अभिनन्दन-ग्रन्थराज प्रकट किया जा रहा है । अभिनन्दन-ग्रथ मे विदुपी साधिका का जिनमार्ग और जिनवाणी विपयक समूचा अवदान मूल्याकित किया जाएगा, फलस्वरूप ज्ञान-गौमती के पवित्र प्रवाह मे अवगाहन करने का सुयोग प्राप्त होगा ।

सुधी साधिका परम पूजनीया सज्जनश्रीजी महाराज के सुख-साता की मगल - कामना करता हुआ, यह आत्म-भाव उनके शत-सहस्र वर्षीय जीवन की भव्य भावना भाता है ।

शत-शत वदना सहित ।।

☐

☐ श्री चन्दनमल चाँद

(सम्पादक जैनजगत बम्बई
प्रधानमत्री भारत जैन महामडल)

व्यक्तिश प्रवर्तिनी श्री जी से मेरा सम्पर्क मुझे याद नही है किन्तु कुछ ऐसे व्यक्तित्व भी होते हे जो दूर बैठे भी अपनी सुगन्ध से आकृष्ट करते है । आप ऐसी ही विदुपी, कवयित्री, लेखिका, अनेक भापाओ की ज्ञाता और ज्ञान के अहकार से रहित है । लगभग ४६ वर्षों के दीक्षा पर्याय मे आपने अपनी सयम-साधना के साथ लेखनी एव वाणी से जैन धर्म के प्रचार-प्रसार मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है । स्वभाव से आप शान्त सेवाभावी, मधुरभाषी एवम् अध्ययनशील है । आपके अभिनन्दन समारोह के अवसर पर मेरी भावभरी हार्दिक शुभकामनाएँ ।

☐

☐ डॉ० महावीरसरनजी जैन (जबलपुर)

आपने पूज्य साध्वी समुदाय के प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित साध्वीरत्ना सज्जनश्रीजी म० सा० के अभिनन्दन ग्रन्थ की जो योजना वनाई है वह सुविचारित है । मै अभिनन्दन ग्रन्थ की पूर्णता एव उसके शीघ्र प्रकाशन की तथा अभिनन्दन समारोह की सफलता की हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ । प्रतिभाशाली, तपस्वी, साधक एव धर्मपरायण व्यक्तित्वो का अभिनन्दन करना कृतज्ञ समाज का धर्म है । मै उनकी सयम-यात्रा की प्रगति की भी मगलकामना करता हूँ ।

☐

☐ श्री दौलतसिह जी जैन

(मत्री—श्री अखिल भारतीय जैन खरतरगच्छ
महासघ, दिल्ली)

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ, जयपुर आगमज्ञा विदुपीवर्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा है । प्रवर्तिनीश्रीजी जैन आगम व साहित्य की प्रखर ज्ञाता व प्रवचनकार ह । आपने अनेक ग्रन्थो की रचना कर साहित्य का भण्डार भरा ह । तप द्वारा कर्मो का क्षय करते हुए आप आत्म-कल्याण व लोक-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हैं । भारत के अनेक भागो मे विचरण व चातुर्मास करके, आपने जिनेन्द्रदेव के सन्देश को जनसाधारण तक पहुँचाया ह ।

आपको प्रवर्तिनी पद प्रदान कर समाज ने अपने को गौरवान्वित महसूस किया है, शरीर के अस्वस्थ होते हुए भी आप धर्म-प्रचार प्रसार का अनुकरणीय कार्य कर रही है । जिनेश्वरदेव से प्रार्थना है कि आपको दीर्घायु प्रदान कर शासन की सेवा का अवसर प्रदान करें ।

☐

☐ श्री इन्द्रचन्द्रजी मालू
पूर्व अध्यक्ष
एव
श्री अमृतराज बागरेचा
पूर्व उपाध्यक्ष
(श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ जोधपुर)

जयपुर के अति प्रतिष्ठित कुटुम्ब की पुत्रवधु जिसे वैभवता एव सम्पन्नता का तनिक भी अभाव नही । ऐसे सुखद वातावरण से सयम के कठोर पथ पर अग्रसर होने की तीव्र लालसा एव दृढ सकल्प से प्रेरित होकर तरुण अवस्था मे ही आपने दीक्षा ग्रहण कर महान कल्याणकारी कार्य किया ।

आपने अपने आत्म कल्याण हेतु कठिन तपस्याये भी की है परन्तु इसके साथ ही आपकी लोक-कल्याण एव पर-सेवा करने की प्रवृत्ति भी अथक रूप से सक्रिय है । अत दूसरो की आत्मा को आनन्द देना ही आपके जीवन की सरस धारा रही है ।

आपका त्यागपूर्ण जीवन आपकी सर्वोपरि उपलब्धि है और इसी कारण धार्मिक सहिष्णुता-समन्वय, अनुशासन, उदारता, नम्रता से आप सर्वोच्च पद प्रवर्तिनी का गौरवान्वित कर रही है तथा साध्वी समुदाय के लिए अनुकरणीय उदाहरण भी उपस्थित कर रही है ।

आपके इन्ही महान गुणो से ओत-प्रोत व्यक्ति को निखारने हेतु सूर्य नगरी-जोधपुर को, वि० स० २०३६ मे आपके भव्य चातुर्मास मे, आपको प्रवर्तिनी पद पर ससम्मान प्रतिष्ठित करने के आयोजन करने का मगलमय अवसर प्राप्त हुआ । अत जोधपुर समुदाय के लिए यह ऐतिहासिक आयोजन आपके गौरव के साथ चिरस्मरणीय रहेगा । इसी प्रसग मे यह भी उल्लेखित करना उचित रहेगा कि स्व० प्रवर्तिनी पूज्या श्री विलक्षणश्रीजी महाराज साहिबा की वृहद दीक्षा का आयोजन करने का भी पूर्व मे जोधपुर समाज को स्वर्णिम अवसर प्राप्त हो चुका है जिन्होने सम्पूर्ण भारत मे अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था और जैन कोकिला विरुद से सम्मानित हुई थी ।

पूज्य प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहिबा के अभिनन्दन समारोह के उपलक्ष मे हम भी अपने श्रद्धा सुमन मे उनके सज्जनतापूर्ण शालीन व्यक्तित्व के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हुए उनके अच्छे स्वास्थ एव दीर्घायु की श्री दादा-गुरु से प्रार्थना करते है । ☐

अनुमोदना
☐ जनरल मैनेजर सेठ आणदजी कल्याणजी पेढी अहमदाबाद

उपरोक्त अभिनन्दन ग्रन्थ आपनी सस्था तरफ थी प्रकाशित करवानी योजना परत्वे खूब-खूब धन्यवाद ।

सेठ आणदजी पेढीना प्रमुखश्री तथा ट्रस्टी-मडल आ प्रकाशननी अनुमोदना करीये छीये । ☐

☐ जीवाणा खरतरगच्छ सघ

प्रवर्तिनीश्रीजी सर्वथा अभिनन्दन के योग्य है । सज्जनश्री म० सा० विदुषी होते हुए भी अहम अहकार से घिरी हुई नही है । सयम साधना के क्षेत्र मे साध्वी जी की अप्रमत्तता अनुकरणीय व अनुमोदनीय है ।

अपनी प्रभावपूर्ण वाणी द्वारा जन-जन को जाग्रत किया । जीवाणा श्री सघ पर उनका अनन्य उपकार है । गुरुदेव से हार्दिक प्रार्थना है कि साध्वी जी को सुदीर्घ आरोग्यमय बनाये । ☐

☐ श्रीसघ झुंझनू

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब ने झुझनु नगर मे अपनी गुरुवर्या श्री उपयोगश्री जी महाराज साहब के सान्निध्य मे स० २००६ मे विराजित रहकर चातुर्मास सम्पन्न किया । चातुर्मास

अवधि मे आपश्री की प्रेरणा से अनेक प्रकार की तपस्या, वरघोडा पूजा, जागरण, स्वामिवात्सल्य आदि हुए। स्थानीय जैन एव अजैन समाज आपकी प्रतिभाशाली प्रखर वक्तृत्व कला से लाभान्वित हुआ।

आपश्री का झुझनु समाज से अत्यन्त स्नेह रहा है।

२० मई १९८९ को सम्पन्न होने वाले आपके अभिनन्दन समारोह अवसर पर झुझनु श्री सघ शुभ कामनाये प्रेपित करता है तथा आपके दीर्घ जीवन की श्री गुरुदेव जी महाराज से प्रार्थना करता है।

☐

☐ मीसरीलालजी लोढा

(अध्यक्ष—श्री महाकौशल जैन श्वे० मूर्तिपूजक सघ)

जयपुर श्री सघ परम सौभाग्यशाली है जिसे "आगम ज्योति" उपाधिधारिणी, विदुपीवर्या शान्त, सरल, स्वभावा प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० का अभिनन्दन करने का सुअवसर प्राप्न हुआ है साथ ही इस विराट अवसर पर जैन शासन की दिव्य ज्योतिर्मय तारिका, क्षमाशील, विनय और नम्रता की साकार जगम मूर्ति, सौम्य सरलता की प्रतीक गुरुवर्या प्रवर्तिनी पू० श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन का भी सुखद प्रसग उपलब्ध हुआ हे। हम इस शुभ अवसर के लिए आपको हार्दिक वधाई देते हे।

साथ ही पूज्यवर्या साध्वीरत्न प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के स्वास्थ्य लाभ की आकाक्षा करते हुए उनके दीर्घायु होने की मगल कामना करते है।

☐

☐ जवाहरलालजी रावयान

(भू० पू० अध्यक्ष खरतरगच्छ महासघ)

आप "आगम ज्योति" उपाधि धारिणी पूज्यवर्या प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनजी महाराज साहिवा जैन शासन नभ की एक ज्योतिर्मय तारिका है।

आपके विद्वत्तापूर्ण वक्तव्य, विनयपूर्ण शात सेवाभाव, निरभिमान स्वल्प मधुर भापण नियमित चर्या अनुकरणीय है।

जैनशासन की आपने वहुत सेवा की है तथा जैन आगमो की ज्ञाता है। आपने वहुत से आगम तथा शास्त्रो का गहन अध्ययन करके, जन-साधारण के समझने योग्य भापा मे जो अनुवाद किये है उनसे समाज को इस सम्वन्ध मे वहुत ज्ञान प्राप्त हुआ है तथा समाज को वहुत वल मिला हे।

ऐसी श्रेष्ठ विदुपी पूजनीय आर्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज का जितना भी गुणगान किया जाये उतना ही कम हे। इस सम्वन्ध मे जो अभिनन्दन समारोह प्रवर्तिनी श्री जी महाराज के सम्मान मे जयपुर मे आयोजित किया जा रहा हे, वह अत्यन्त प्रसन्नता का विपय है।

इस पुनीत अवसर पर अपनी शुभ-कामनाओ को प्रेपित करते हुए मुझे वहुत प्रसन्नता हो रही है। आशा है श्री गुरुदेव की कृपा से यह उत्सव सानन्द सफल होगा।

☐

☐ श्री हस्तीमलजी मुणोत, सिकन्दरावाद

(कार्याध्यक्ष अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस, दिल्ली)

प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज का अभिनन्दन एक सच्ची श्रमणी का अभिनन्दन है। जिनकी साधना मे—ज्ञान, साधना, वैयावृत्य और धर्मप्रचार के चार स्तभ लगे है। आपका हृदय वहुत ही उदार, विनम्र और पाप-भीरु हे। आपका अभिनन्दन कर हमे सनमुच प्रमोदभाव का आनन्द अनुभव होता है।

☐

☐ श्री कालूरामजी बाफना

(उपाध्यक्ष—श्री अखिल भारतीय खरतरगच्छ महासघ, बालाघाट)

तीर्थंकर महावीर के दर्शन के प्रचार/प्रसार के साथ-साथ आत्मकल्याण मे सलग्न साध्वियो मे प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म सा का नाम अग्रगण्य है।

आपश्री का विनयी, शात, निरभिमानी एव मधुरभाषी स्वभाव आपके द्वारा आगम-ज्ञान का गहन अध्ययन एव उसे दिनचर्या मे उतारना दर्शाता है।

वात्सल्य, करुणा, क्षमा की मूर्ति प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहिबा का अभिनन्दन वस्तुत आपश्री के तप, त्याग एव सयम का गुणानुवाद है। स २०४६ की वैशाख पूर्णिमा को जैन श्वे० खरतरगच्छ सघ जयपुर द्वारा आयोजित अभिनन्दन समारोह भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित दर्शन के प्रति आस्था प्रकट करने का सशक्त माध्यम है। अत श्री जैन श्वे० खरतर गच्छ सघ जयपुर साधुवाद का पात्र है।

शासन देव से प्रार्थना है कि महान परोपकारी प्र श्री सज्जनश्रीजी म सा को उत्तम स्वास्थ्य एव दीर्घायु प्रदान करे जिससे जिन-शासन की अधिक-से-अधिक सेवा हो सके। प पू महाराज साहिबा एव साध्वी समुदाय के चरणो मे शत्-शत् वन्दन। ☐

☐ सोहनलाल जी पारसान

(भूतपूर्व जोइन्ट सेक्रेटरी श्री जैन श्वेताम्बर मण्डल तीर्थ पावापुरी)

प्रात स्मरणीया पूजनीया साध्वी श्री सज्जन श्री जी महाराज का अभिनन्दन समारोह जयपुर शहर मे होने जा रहा है। यह सुनकर हृदय प्रफुल्लित हो उठा है। आज अनायास ही स्मरण हो आए वे दिन जब साध्वीश्री का चातुर्मास शासन नायक तीर्थंकर भगवान महावीर के २५००वें निर्वाणोत्सव पर उनकी निर्वाण स्थली पावापुरी मे सम्पन्न हुआ था। धन्य हो गया था वह दिन। क्योकि करीबन १०० वर्षो से उधर किसी भी साध्वी जी का चातुर्मास हुआ ही नही था। आप पावन चरित्रा है, शास्त्र मर्मज्ञा हे। आपका वहाँ आगमन न केवल वहाँ उपस्थित विशाल जनसमूह के लिए बल्कि जैनेतर समाज के लिए भी बडे ही आनन्द एव उल्लास का कारण बना था। आपके सद्चरित्र के प्रभाव से प्रकृति भी मानो फूली नही समा रही थी। यह मात्र कथन नही, हकीकत है। उस वर्ष फसल बहुत अच्छी हुई। बेचारे गरीब कृषक आज भी सज्जनश्री जी महाराज को स्मरण कर यह आकाक्षा करते है कि उनके पावन-चरण पुन पावापुरी मे पडे और वह धरती हरी-भरी बने।

ऐसी शासन प्रभाविका महिमामयी श्री सज्जन श्रीजी महाराज के पुनीत चरणो मे मेरा शत-शत वन्दन। ☐

☐ श्री लालचन्द जी बैराठी

(अध्यक्ष, श्रीमाल सभा, जयपुर)

"आगम ज्योति' उपाधिधारिणी पूज्यवर्या प्रवर्तिनी महोदय श्रीमती सज्जनश्रीजी महाराज साहिबा जैन शासन नभ की एक दिव्य ज्योतिर्मय तारिका है। आप यथानाम तथागुण से ओत प्रोत है। आपका व्यक्तित्व एव कृतित्व सर्वथा अनुपम और अद्वितीय है। आप न केवल (जयपुर) राजस्थान की अपितु सम्पूर्ण जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ जैन समाज की शान है। भारत के सभी क्षेत्रो मे आपके सरल स्वभाव व कठिन साधना की छाप है। आप जैन साहित्य की लेखिका के रूप मे विशेष रूप से कलम की धनी है साधना व अध्ययन ही आपका मुख्य आधार है।

हम अपनी ओर से एव श्रीमाल सभा जयपुर की ओर से पूज्या गुरुवर्याश्री की सुदीर्घ जीवन की मगल-कामना के साथ आपका हार्दिक अभिनन्दन करते है। ☐

शिखरचन्द्रजी पालावत

(अध्यक्ष, श्री जैन श्वे तपागच्छ सघ)

आज भी हम बडे गर्व के साथ यह कह सकते है कि जैनसमाज मे भारत की पावनभूमि मे श्वेताम्बर समाज की चाहे वो तप गच्छ की हो चाहे खरतरगच्छ की अथवा किसी अन्य गच्छ की, साध्वियाँ अपनी कीर्ति सारे भारतवर्ष मे फैला रही है—

परम पूज्या, आर्यरत्ना-प्रवर्तिनी "श्री सज्जन श्री जी महाराज" सम्पूर्ण जैन समाज की एक शान है, निधि है।

आपने राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, बगाल मध्य प्रदेश, गुजरात, सौराष्ट्र आदि प्रदेशो मे विचरण कर भगवान महावीर की वाणी को अपने प्रतिभाशाली प्रवचनो से जन-जन तक पहुँचाने का महान कार्य किया है। आपके द्वारा शासनोन्नति के अनेक स्मरणीय ऐतिहासिक कार्य हुए है।

आपश्री युग-युगान्तर तक जैन समाज को दिशाबोध प्रदान करती रहे।

साध्वीश्री के चरणो मे शत-शत नमन !

श्री गुमानमल जी चोरडिया

(अध्यक्ष श्री वर्धमान स्मारक सेवा समिति जयपुर एव पशुक्रूरता निवारण समिति, जयपुर)

महासती श्री सज्जनश्रीजी महाराज सा० को अपने पितृपक्ष से ही उच्च सस्कार प्राप्त हुए एव वही सस्कार सत-सतियो के सान्निध्य में विकसित होते रहे। आपका जन्म विक्रम स० १६६५ वैशाख पूर्णिमा का है। जिस प्रकार पूर्णिमा का चन्द्रमा पूर्ण विकसित होकर अपनी प्रभा फैलाता है, उसी प्रकार प्रवर्तिनीश्रीजी ने अपने सयम की, तप की चारित्र की प्रभा चतुर्विध सघ मे फैलाई है। जिस प्रकार पूर्णिमा का चन्द्रमा अपनी पूर्ण शीतलता फैलाता है, उसी प्रकार महाराज सा० प्रवर्तिनी श्रीजी ने अपनी शीतलता का सबको अनुभव कराया है। आपके सान्निध्य मे आज चतुर्विध सघ पूर्ण प्रमुदित है। आपने १६६६ आषाढ सुदी २ को दीवान नथमल जी के कटले मे दीक्षा ग्रहण की। आपकी दीक्षा मे मै भी उपस्थित था, वह दृश्य बडा ही प्रमोदकारी था। आपने दीक्षोपरान्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे अभीष्ट प्रगति की। आप मे तप की भी विशेष अभिरुचि रही एव तप के साथ-साथ सेवा परायणता का गुण आपके व्यक्तित्व को चार चाँद लगा रहा है। आत्म-कल्याण के साथ-साथ लोक कल्याण मे भी आप अग्रसर रही, इसी कारण आपने राजस्थान के साथ-साथ उत्तरप्रदेश, बिहार, बगाल, मध्यप्रदेश, गुजरात, सौराष्ट्र आदि प्रदेशो मे विचरण करके भगवान महावीर की वाणी का नगर-नगर एव ग्राम-ग्राम मे सदेश गुजाया। वर्तमान मे अस्वस्थता के कारण आपका यहाँ विराजना हो रहा है, यह जयपुर सघ के लिए अत्यन्त सौभाग्य की बात है।

वीर प्रभु से यही प्रार्थना है कि आपकी साधना निरन्तर बढती रहे, चतुर्विध सघ पर आपका वरद-हस्त रहे एव "तिन्नाण तारयाण" की तरह आप स्वय तिरे एव साधको को भी तारे।

इन्ही शुभ कामनाओ सहित आप श्रीजी के चरणारविन्दो मे शत-शत वदन।

स्व० डॉ० उम्मेदमल मुनोत

(मुख्य सरक्षक · श्री वर्धमान श्वेताम्बर जैन सभा लखनऊ
ज्ञान प्रसारिणी सभा, लखनऊ
श्री जौहरी बाग दादाबाड़ी सघ लखनऊ)

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि विदुषीवर्या श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रन्थ मे जैन

दर्शन से सम्बन्धित विशिष्ट निवन्धो का भी सग्रह होगा जो प्रशसनीय पहल है।

मेरी दृष्टि मे यह ग्रन्थ उन परम्पराओ को आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे आगे बढाते हुए पूरे समाज के लिए ही नही, समूचे मानव-समाज के लिए भी उपयोगी बने, यही कामना है।

श्री सम्पादक जी को इस दुर्गम पथ पर सफलतापूर्वक चलते रहने की हार्दिक शुभकामनाएँ। □

□ श्री सुशीलकुमारजी छजलानी

(सघ मन्त्री,
श्री जैन श्वे० तपागच्छ सघ, जयपुर।)

परम विदुषी परमादरणीया, प्रवर्तिनी जी, श्री सज्जनश्रीजी महाराज के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन का प्रयास प्रशसनीय एव स्तुत्य है।

पूज्य प्रवर्तिनी श्री के दर्शन एव उपदेश श्रवण आत्मबोध की गहरी अनुभूति जागृत करते है। आपकी अद्वितीय सरलता, विनय एव गहन अध्ययन पूर्ण जैन समाज की अनमोल निधि हैं।

प्रवर्तिनी जी की गहन साधना एव अध्ययन का आधार, उपदेश के माध्यम से, हम भविको को आत्मबोध जागृत करने के लिए मिलता रहे। आप दीर्घायु हो एव जैन शासन की सेवा मे रत रहे यही शासन देव से प्रार्थना है। तपागच्छ सघ, जयपुर की ओर से एव मेरी ओर से इस पुनीत अवसर पर इसके आयोजको को उनके प्रयास मे सफलता की हृदय से कामना करता हूँ एव बधाई देता हूँ। □

□ श्री सघ, ब्यावर

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ ब्यावर द्वारा प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्रीजी महाराज सा का भाव भीना अभिनन्दन करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

आपश्री का जीवन सदैव मानव कल्याण के प्रति सदा सलग्न एव तत्पर रहा। आपकी आवाज मे ओजस्विता एव वाणी मे मधुरता रूपी अमृत पाया जाता है जिसका आस्वादन प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जा रहा है। आप त्याग वैराग्य, समता, सहिष्णुता, सरलता, सहजता की प्रतिमूर्ति हैं।

आप आगमो की ज्ञाता है एव प्रत्येक विषय का प्रतिपादन एव विवेचन बहुत ही सुन्दर ढग से करती है। आपश्री का ज्ञान गूढ, गहन एव गम्भीर है।

पुन अन्तस्भावेन करबद्ध नतमस्तकेन परम पवित्र पादारविन्दो की कोटिश वन्दना करते हुए यही इष्टदेव से प्रार्थन करते है कि आपश्री शतायु दीर्घायु बनें एव समय-समय पर हम सभी को सतर्क सावधान सचेत जाग्रत करती रहे। □

□ श्री तिलोकचन्दजी गोलेच्छा

(मत्री श्री जैन युवा परिषद्, जयपुर)

भगवान महावीर के बताये 'विश्ववात्सल्य' के मार्ग का अनुसरण करते हुए सेवा, त्याग, तप व सयम के मार्ग का प्रचार करते हुए प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० ने भारत के साध्वी समाज मे विशेष स्थान प्राप्त किया है।

आपके ८१ वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर प्रकाशित 'ग्रन्थ' द्वारा 'श्री जैन युवा परिषद्' जयपुर आपका अभिनन्दन करती है व वीतराग प्रभु से आपके दीर्घ आयु की मगलकामना करती है। हम इस अवसर पर मानवसेवा के लिए व जैन धर्म के प्रचार के लिए पुन समर्पित होने का सकल्प लेते हैं। □

□ जैन श्वे० श्रीसघ

टाटोटी (राज०)

पू० महाराज श्री सज्जनश्रीजी म० सा० का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आपश्री कलियुग मे भी सतयुग की साक्षात् मूर्ति तुल्य है। आपश्री सरलता, नम्रता,

□ श्री विनयकुमारजी लूनिया (जयपुर)

साध्वी श्री सज्जनश्रीजी महाराज एक प्रखर चिन्तक, प्रभावी व्याख्याता, प्रवल सगठक और विशिष्ट साधना सम्पन्न सती है। जैन धर्म त्याग-प्रधान धर्म है। भोग से योग की ओर, राग से विराग की ओर बढने की यह पवित्र प्रेरणा देता है। यही कारण है जैनधर्म मे सन्त-सतियो का जीवन त्याग और तप का जीता-जागता उदाहरण है। जब भी मैं कभी भुआसा महाराज के दर्शन करता हूँ, आत्मविभोर हो उठता हूँ। और मन करता है सान्निध्य मे बैठा ही रहूँ, इस अभिनन्दन ग्रन्थ के विमोचन के सुअवसर पर मैं भी अपनी तरफ से श्रद्धा के फूल समर्पित करता हुआ यही कामना करता हूँ कि आपका आशीर्वाद हमे युगो-युगो तक मिलता रहे।

□

□ श्री निहालचन्द सोनी (मदनगज)

जिन शासन के नन्दन वन मे,
महक रहे ज्यो चन्दन।
श्रमणी प्रवरा सज्जनश्री जी,
लो शत-शत अभिनन्दन ॥

□

□ श्री सुरेश लूनिया (जयपुर)

रत्नगर्भा वसुन्धरा ने समय-समय पर अनमोल रत्न प्रदान किये हैं। उन्ही रत्नो मे एक अनमोल रत्न है—मेरे भुआसा महाराज साध्वी श्री सज्जन श्रीजी महाराज का नाम बडी निष्ठा और गर्व से लिया जा सकता है।

आप हमेशा एक महान साधिका के रूप मे हमारे समक्ष परिलक्षित होती रही है। प्रतिष्ठा और ज्ञान का आप मे किंचित् मात्र भी अभिमान नही है। सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी आप स्वभाव से सरल, विनम्र, मिलनसार एव निरभिमानी हैं। आपमे प्रत्येक साध्वी को निभाने की क्षमता है।

आप एक कुशल व्याख्यात्री भी है। आपकी वाणी मे मधुरता तथा ओजस्विता कूट-कूट कर भरी है। आपकी वाणी मे साधना का ओज है। आप एक सुलझी हुई साधिका एव विचारिका हैं। यही कारण है कि आप जो बात कहती हैं सीधी, सरल और अन्तर्मन को छू लेने वाली होती है। हमारा अहोभाग्य है इस पुनीत अवसर पर हमे भी श्रद्धा के दो शब्द लिखने का अवमर मिला। इस मौके पर मेरा भाव भरा अभिनन्दन है, दीर्घायु की कामना है।

□

□ श्रीमती रेखा लूनिया

जीवन तो सभी जीते है, पर जीने की कला विरले व्यक्तियो मे ही मिलती है। जीवन जीने की एक शैली है, तरीका है। जो अपने आपको खपाता है वही महान् बनता है।

परम विदुषी, साधना सम्पन्न मेरे बडे ननदवाई साध्वी श्री सज्जनश्री जी एक ऐसी ही विशिष्ट साध्वी हैं जिनका जीवन अगरबत्ती की तरह सुगन्धित है, जो स्वय कष्ट सहकर भी आजीवन परोपकार मे जुटी हुई हैं। आप एक ओजस्वी और तेजस्वी साधिका है। आपने अपनी निर्मल वाणी से जन-जीवन मे अभिनव चेतना का सचार किया है।

मैने जव भी कभी महासतिजी के दर्शन किये हमेशा ही मुस्कराते देखा। कभी भी उनके चेहरे पर क्रोध या तनाव, झुझलाहट की रेखायें नही पाई। अपनी शिष्याओ से भी वात्सल्य से ओत-प्रोत व्यवहार देखा। आपकी प्रवचन कला वहुत ही अनूठी व चित्ताकर्षक है। आपके व्याख्यानो मे यह विशेषता रही है कि उनमे गहरा चिंतन, मनन और अपने अनुभवो एव सत्य का उत्कृष्ट वल है वाणी मे मधुरता के साथ ही आप सदा समन्वयात्मक भाषा का प्रयोग करती है।

साध्वियो ने जिनशासन की गरिमा मे सदा ही चार चाँद लगाये है। उन्ही साध्वीरत्नों मे साध्वी श्री सज्जनश्रीजी महाराज का नाम बडे गौरव से लिया जा सकता है। आपका सरल उदार स्वभाव एव धर्मपरायणता तथा आत्मसाधना आपके अद्‌भुत व्यक्तित्व को निखारने मे सदा सहायक रही है।

गुणियो के गुणानुवाद करने से कर्मो की भी निर्जरा होती है। मै अपनी अनन्त श्रद्धा महासती जी के चरणो मे समर्पित करती हूँ कि वे युग-युग तक धर्म की प्रबल प्रभावना करती रहे और आपका यशस्वी जीवन सभी के लिये प्रेरणास्पद रहे। आपश्री का अभिनन्दन हमारे लिये गौरवास्पद बात है। ☐

☐ श्री चिरंजीलालजो रेड

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि परम-विदुषी प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म सा की ८२वी वर्षगाठ के पावन अवसर पर एक सार्वजनिक अभिनन्दन समारोह उनके तेजस्वी व्यक्तित्व और कृतित्व को उजागर करने वाला अभिनन्दन गन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। अभिनन्दन गन्थ के प्रकाशन से देश के हर क्षेत्र व धर्म के लोगो पर उनके चरित्रवान जीवन का गहरा प्रभाव पडेगा। इस शुभ अवसर पर हम सब मिलकर आपका सादर अभिनन्दन करते हुए आपके शतायु होने की कामना करते है।

☐

☐ श्रीमती पन्ना सुकलेचा

परम विदुषी साध्वीरत्न श्री सज्जनश्री जी महाराज एक पहुँची हुई साधिका हैं और खरतर-गच्छ धर्म सघ की वर्तमान मे प्रवर्तिनी है। उनके गौरवमय जीवन को जब मै निहारती हैं तो मेरा मन बासो उछलने लगता है।

मुझे गौरव है हमारे परिवार मे ऐसी विदुषी साध्वी है जिन्होने हमारे कुल गौरव मे चार चाँद लगाये है। उनकी ८२वी जन्म जयन्ती पर यह अभिनन्दन गन्थ समर्पित किया जा रहा है। जिससे उनकी महिमा और गरिमा स्वत सिद्ध होती है। मै भी इस सुनहरे अवसर पर श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ।

☐

☐ सुश्री शालिनी लूनिया

जैनधर्म के खरतरगच्छ सघ की विदुषी प्रव-र्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० एक अलौकिक प्रतिभा की दिव्य ज्योतिर्मय तारिका है।

आप खरतरगच्छ सघ की एक ओजस्वी साध्वी है। आपका जीवन अनन्त आकाश से भी अधिक विशाल है। मै ऐसी परम विदुषी भुवासा म० सा० को नतमस्तक हो शत-शत अभिनन्दन करती हूँ व इस मगल अवसर पर यह कामना करती हूँ कि आप युग-युग तक स्वस्थ व प्रसन्न रहकर जैनधर्म की ज्योति को अक्षुण्ण बनाये रखे।

☐

☐ सुश्री सायर लूनिया

साध्वी सज्जनश्रीजी म० सा० विदुषी प्रव-र्तिनी। लूनिया परिवार की बेटी और गोलेच्छा परिवार की बहू। आप अलौकिक गुणो से, कठिन साधना से, सतत् अध्ययन अध्यापन से, इस प्रकार महिमा मडित हुई कि स्वनामधन्या होने के साथ-साथ दोनो परिवारों का नाम भी उज्ज्वल कर दिया। हमे गर्व है कि हमारे परिवार मे से एक ऐसी विभूति ने जन्म लिया जिन्होंने जिनशासन सेवा के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दिया। आपकी कीर्ति तो ध्रुव नक्षत्र के समान खरतरगच्छ सघ की विदुषी आगमज्ञा प्रवर्तिनी के नाम से स्वत दीप्तिमयी है।

प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० ने साधना-मय जीवन के ८७ वसन्त पूर्ण किये हैं। त्याग और तपस्या के इस भव्य गरिमामय व्यक्तित्व का आज लूनिया परिवार शत-शत अभिनन्दन करता है। ☐

☐ श्री मानकचन्दजी लूनिया

सज्जनश्री महाराज आपका
शत शत है अभिनन्दन।
नतमस्तक हो श्री चरणो मे
करते है हम वन्दन ॥
आगमवेत्ता-जिनवरचेता
आप विनय की प्रतिमा।
जैन धर्म की जागृत प्रतिभा,
अतुलनीय है गरिमा ॥
सहज सरल समता की देवी,
अभिनन्दन स्वीकार करो।
हम अनजान अभिज्ञ प्राणि हैं,
मुक्तिमार्ग मे हाथ धरो ॥
शत शत वन्दन, शत अभिनन्दन,
कोटि नमन चरणो मे।
बसो सदा जन-जन अन्तर मे,
वाणी मे नयनो मे ॥

प्रवर्तिनी आर्या श्री सज्जनश्रीजी के प्रति मेरे मन मे जो असीम श्रद्धा उत्पन्न हुई है उसका कारण यह नही है कि वे मेरी बुआजी है। इस श्रद्धा का कारण यह भी नही है कि वे जैन श्वे० खरतरगच्छ सघ के उच्च पद पर पदासीन है। यह भी इस श्रद्धा का कारण नही है कि वे आगमज्ञा हैं, शास्त्रज्ञ है, भाषाविद है, कवयित्री है तापसी हैं? नही! मेरे आत्मज्ञ मन में प्रवर्तिनी विदुषीवर्या सज्जनश्रीजी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होने का एक मात्र कारण है उनका "नारी" होना? नारी होकर भी उन्होने साधना, तपस्या, ज्ञानाराधना, सयम के पथ पर चलकर जो नारी की गरिमा को बढाया है वह निस्सन्देह पूजनीय है। "नारी नरक की खान" उक्ति को वे एक चुनौती है उस क्रातिकारी वैज्ञानिक गेलीलियो की तरह जिसने यह सिद्ध कर दिया था कि सूर्य, पृथ्वी के चारो ओर नही घूमता वरन् पृथ्वी सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाती है। नारी उत्थान, नारी चेतना, नारी जागरण, नारी अनुशासन मे वे आज भारत के किसी भी सम्प्रदाय, किसी भी धर्म सघ, किसी भी नारीकल्याण सस्था से पीछे नही है। प्रवर्तिनी जी का पथ तलवार की धार पर चलने के समान है। पुरुष सघो का आचार्यो द्वारा सचालन इतना खतरो भरा नही जितना कि नारी सघो का सचालन करना और इस कसौटी पर कठोर अनुशासन अनुगामिनी प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म० सा० सौ टक खरी उतरी हैं। मेरा मन यही आजानुनतमस्तक हो श्रद्धावनत हो जाता है। गुरुवर्या विचक्षणश्री जी म सा के स्वर्गवास के उपरान जैन श्वे० खरतर-गच्छ सघ प्रवर्तिनी जी की सचालन सगठन प्रतिभा के सहारे निरन्तर उन्नतिशील रहा है। क्या यह उपलब्धि किन्ही शाब्दिक प्रशसा से प्रशसनीय हो सकती है? शब्द असमर्थ हैं अस्तु भावाजलि अर्पित कर ही आपश्री का अभिनन्दन हो सकता है।

प्रवर्तिनी श्री के अनेक गुणो मे अद्वितीय गुण है आपश्री की "विनम्रता" "सहजता" "सरलता"।

"अमृत रस से भरे फलो का,
वृक्ष सदा झुक जाता है।
धरती का प्राणी उसमे ही,
छाया पाता, जीवन पाता है॥

ऐसे अमृत भरे कल्पवृक्ष सी ही हैं प्रवर्तिनी श्री जी! विनम्र-सहज-सरल, आज तक मैंने किसी श्रावक से, किसी शिष्या से, किसी खरतरगच्छ धर्मावलम्बी से प्रवर्तिनी जी के अहकार, असहज व्यवहार, क्रोध, आवेश के बारे मे कभी कुछ नही सुना प्रत्युत सबने आपश्री को सहज सरल विनम्र शातमना ही कहकर बखाना। तो क्या "खल्कए आवाज नक्काराए खुदा" नही है? आपश्री निसदेह अभिनन्दन की अधिकारिणी है। अधिकारिणी हैं अपनी तपस्या से, साधना से, ज्ञान से और अधिकारिणी है अपने पिता श्री—मेरे दादाजी श्री गुलावचन्द जी से विरासत मे मिले धार्मिक गुणो को प्रभामडित करने से।

कल की बुआजी और आज की प्रवर्तिनी श्री जी, आपके चरणो मे मेरा नतमस्तक प्रणाम। ☐

□ श्रीमती प्रेमलता गोलेछा

एव गोलेछा परिवार, जयपुर

(भू. पू कोषाध्यक्ष : श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन महिला समिति)

शांत सरल स्वभाव, लोक कल्याणी, तपस्विनी, ज्ञान मूर्ति, विदुषी, आर्यारत्न, प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब (पूजनीय ताई जी म सा) के चरणो मे कोटि-कोटि वन्दना।

अनुपम व्यक्तित्व की धनी मानव-मानवसे सहज प्रेम करने वाली, ज्ञानज्योति धर्मप्राण धर्मवती, आपके गुणो की महिमा जितनी गाई जाये उतनी ही कम है। आपने जयपुर रियासत के दीवान सेठ नथमलजी गोलेछा की पौत्रवधु बनकर ससुराल का नाम रोशन किया। इतना महान त्याग आप जैसी पुण्यात्मा नारी ही कर सकती है। आज तीनो समाज मे आपकी महिमा का गुणगान किया जाता है।

तीनो ही समाजो मे स्थानकवासी की बहू बनकर, तेरापथ की लडकी मन्दिरमार्गी समाज मे दीक्षा ग्रहण करके तीनो ही समाजो को गौरवान्वित किया है।

आपने आत्म-कल्याण के साथ-साथ लोककल्याण का भी पूरा ध्यान रखा। आपने जैन समाज मे गौरवान्वित होती हुई एक मिसाल दिखाई है। म सा आपने अपने शुद्धाचार और शातिपूर्ण जीवन द्वारा मानवता का मार्ग दर्शन किया है। अहिंसा, सत्य महान साधनापथ पर बढते चले जाने का सन्देश दिया है।

इन्ही मगल श्रेष्ठमय, कल्याणकारी शुभकामनाओ के साथ हम आपका अभिनन्दन करते है कि आपका स्वास्थ्य सदैव सुन्दर, स्वस्थ रहे, आप दीर्घायु हों और मधुर वाणी से समाज को निरन्तर लाभान्वित करती रहे।

'इन्ही मगल कामनाओ से
कर रहे हम वन्दन
शत-शत वन्दन करते हुए
हम कर रहे आपका अभिनन्दन।"

□

□ श्रीमती कमलादेवी लूनिया

(धर्मपत्नी स्व० श्री पूनमचन्द जी लूनिया)

पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी महाराज सा का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है ऐसी जानकारी मिलने पर मन अत्यन्त ही आनन्द मे भर गया क्योकि किसी के भी व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से जानने के लिए अभिनन्दन ग्रन्थ एक ऐसा माध्यम होता है जिसमे भिन्न-भिन्न समुदायो के व्यक्तियो द्वारा व्यक्ति विशेष के जीवन व व्यक्तित्व की सही जानकारियो का सकलन प्राप्त होता है। यह अभिनन्दन ग्रन्थ पूजनीय महाराज साहब के व्यक्तित्व को भली-भाति उजागर करने का सफल प्रयास है। इसके लिए मेरी ओर से हार्दिक शुभकामना है।

□

□ श्रीमती कमल लाड

(पुत्री स्व० श्री केशरीचन्द जी लूनिया)

साध्वीरत्न श्री सज्जनश्री जी महाराज एक

अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस माध्यम से मुझे भी कुछ श्रद्धा सुमन समर्पित करने का सुनहरा अवसर मिला है। हम अपनी अनन्त आस्था के सुमन समर्पित कर अपने आपको धन्य-धन्य अनुभव कर रहे है। □

□ श्री सुशीलकुमार जी बॉठिया, जयपुर

आगमज्योति, आशुकवयित्री पूज्यवर्या प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्री जी म सा का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। पू० गुरुवर्याश्री का प्रभावशाली व्यक्तित्व एव गरिमामय उत्कृष्ट जीवन की सौरभ चिहुँ दिशि मे महक रही है। आप सयम के प्रत्येक क्षेत्र मे निपुणता लिये हुए प्रत्येक क्षण आत्म-साधना के प्रति अर्पित हैं।

पू गुरुवर्याश्री के गुणो को लिपिबद्ध करने मे मैं अपनी बुद्धि से स्वय को असमर्थ अनुभव कर रहा हूँ। पू गुरुवर्या श्री के चरणो मे कोटि-कोटि वदन अभिनन्दन प्रेषित करता हुआ जिनशासनदेव से व गुरुदेव से प्रार्थना करता हूँ, पू गुरुवर्याश्री के स्वास्थ्य के लिए।

जिनशासन की ज्योति बनकर सदा चमकती रहे इसी शुभेच्छा के साथ बांठिया परिवार की ओर से हार्दिक अभिनन्दन।

□

□ श्री हेमराजजी ललवानी

मुझे जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि पू आगम-मर्मज्ञा आशुकवयित्री पू गुरुवर्या श्री सज्जनश्री जी म सा के ८२ वे जन्म दिवस पर उनका सार्वजनिक अभिनन्दन करने का निर्णय लिया गया है। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि इस अवसर पर हम उनके सम्मान मे एक अभिनन्दन ग्रन्थ उन्हे समर्पित करने जा रहे है।

मे आशा करता हूँ कि आपश्री को समर्पित किया जाने वाला अभिनन्दन ग्रन्थ आपके जीवन दर्शन और साधना के बारे मे प्रेरणास्पद जानकारी प्रदान करेगा। □

□ श्री प्रकाश बॉठिया, एव परिवार जयपुर

अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है लूनिया परिवार के द्वारा प पू गुरुवर्या श्री का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

आपश्री का सम्पर्क मुझे बचपन से ही प्राप्त हुआ। जब से मैंने आपश्री के जीवन को देखा, परखा, जाना, सुना और उसमे मुझे अनेक ऐसी विशेषताएँ मिली जो अन्य लोगो मे बहुत अल्प मात्रा मे दृष्टिगत होती है यथा—अध्ययन और अध्यापन, सेवा और समर्पणशीलता, सरलता, सहजता, वात्सल्य और प्रेम। ऐसी महान आत्मा दीर्घकाल तक चिरायु बन शासन सेवा मे अभिवृद्धि करे। और हम सब पर आपकी कृपा दृष्टि अविच्छिन्न सतत् रूप से प्रवाहमान होती रहे। □

□ श्री प्रेमचन्दजी थाथिया, जयपुर

सौम्यस्वभावी, स्वाध्यायप्रेमी, आगमज्ञ, पू० प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म सा के अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशित होने का समाचार पढकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह ग्रन्थ सुन्दर, आकर्षक व समाजोपयोगी हो, यही मेरी हार्दिक भावना है। □

□ श्री जोगराज भैरूँलाल भसाली (गढसिवाना)

प पू प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म सा के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के सुअवसर पर भसाली परिवार का शत्-शत् अभिनन्दन!

मुझे आपश्री के दर्शनो का प्रथम सौभाग्य सिवाना नगर मे प्राप्त हुआ। आपश्री का जीवन प्रत्येक दृष्टि से सेवा पक्ष की दृष्टि से, अध्ययन पक्ष की दृष्टि से, सरलता सहजता की दृष्टि से, देखें तो सर्व गुणो से समन्वित है। आपकी प्रवचन

शैली भी अद्भुत है जिससे प्रभावित होकर मेरी बहिन कु० लक्ष्मी ने अपना जीवन आपके चरणो मे समर्पित करने का सकल्प किया है। वर्तमान मे वह गुरुवर्याश्री के निश्रा मे अध्ययन रत है।

ऐसी अद्भुत, अनुपम, अद्वितीय, ओजस्वी आत्मा शतसहस्र वर्षो तक शासनोन्नति करती हुई हमे भी शीतल व सुखद छायाप्रदान करती रहे।

☐

श्री भँवरलाल पुखराज
☐ श्री शान्तिलाल, सुरेशकुमार
(धरणेन्द्र पदमावती टेक्सटाइल्स अहमदाबाद)

ज्ञान की जगमगाती ज्योति श्री सज्जनश्री जी के दर्शन का अहोभाग्य हमे पहली बार शेरगढ मे स० २०४० मे हुआ। आपका दर्शन होने मात्र होने से ही सघ मे आपके प्रति मन भर गया। आपका स्वभाव, भक्तिभाव, प्रेरणा, मधुरवाणी से सघ मे हर्ष छा गया। आपकी प्रेरणा से सघ मे धर्म जागृति हुई। सघ की विनती स्वीकार कर आपके समुदाय के दो चौमासा भी हमारे यहाँ हुए। आप गुणो की खान हैं। दया के सागर हैं। स्वाध्याय के विराट धनी हैं। हम लूणिया परिवार के हैं। आपने लूणिया गोत्र का गर्व बढाया है। दीक्षा स्वर्ण जयन्ती अभिनन्दन समारोह के शुभ अवसर पर हम आपकी मगल कामना करते है।

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के अभिनन्दन समारोह के उपलक्ष्य मे समस्त लूणिया परिवार का कोटि-कोटि वदन।

☐

☐ श्रीमती निर्मला सखवाल, दिल्ली

यह जानकर हृदय श्रद्धा विभोर हो गया कि आगमज्योति मधुर व्याख्यात्री सघश्रेष्ठा पूज्या साध्वी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य मे अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है।

सासारिक पक्ष मे पूज्या साध्वीजी म० सा० मेरी ताईजी है। आप गृहस्थ मे रहते हुए भी कभी सासारिक भाव मे लिप्त नही रही। साधु-साध्वियो के प्रवचनो से प्रेरणा पाकर स्व और पर का भेद समझ कर आपने जैन भागवती दीक्षा अगीकार की और आत्मकल्याण के साथ-साथ जिनशासन की प्रभावना मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साथ ही उनके ८२वे वर्ष मे पदार्पण पर मै अपनी ओर से यही शुभकामना करती हूँ कि समाज को वर्षो-वर्षो तक आपका सान्निध्य मिलता रहे, तथा आपश्री हमे कल्याण मार्ग की ओर सतत् गमन की प्रेरणा प्रदान करती रहे। यही हमारी शुभकामना है।

पुन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन के लिए साध्वी श्री शशिप्रभाजी म० सा० को बहुत-बहुत साधुवाद।

☐

☐ श्री राकेश जैन

जब मैं महाराज के मुखमण्डल से प्रभावित हो, वातचीत की उत्सुकता को ले दादावाडी मे स्थित साध्वीजी श्रीशशिप्रभाश्री जी महाराज से परिचय हुआ, मेरे हर प्रश्न पूछने पर उन्होने प्रत्युत्तर मे मुझे सन्तुष्ट किया व मेरी श्रद्धा पूज्य गुरुवर्या श्री प्रति और दृढतर हो गयी और मन ही मन उनके गुणो की प्रशसा करने लगा कि साध्वी जी महाराज सबके साथ रहती हुई भी बाहर की प्रकृति से अलग है।

जब भी दर्शन हेतु जाता हूँ हाथ मे पुस्तक लिए हुए ही देखता हूँ। चेहरे पर कभी मलीनता नही देखी, सदा स्वाभाविक मुस्कराता चेहरा रहता है।

थोडे दिन के सम्पर्क से यही अनुभव किया कि शारीरिक अस्वस्थता होते हुए भी अन्यो को पढाती रहती है।

महान विभूति सज्जनश्रीजी महाराज की दीक्षा, जन्म, जयन्ती के उपलक्ष मे, हृदय से हार्दिक अभिनदन करता हूँ, गुरुदेव के चरणो मे मेरी अनुनय प्रार्थना है कि पू० गुरुवर्या श्रीदीर्घायु, चिरायु वन अनेक भव्य जीवो के लिए मार्ग दर्शक बने।

अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस माध्यम से मुझे भी कुछ श्रद्धा सुमन समर्पित करने का सुनहरा अवसर मिला है। हम अपनी अनन्त आस्था के सुमन समर्पित कर अपने आपको धन्य-धन्य अनुभव कर रहे है। ☐

☐ श्री सुशीलकुमार जी बॉठिया, जयपुर

आगमज्योति, आशुकवयित्री पूज्यवर्या प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्री जी म सा का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। पू० गुरुवर्याश्री का प्रभावशाली व्यक्तित्व एव गरिमामय उत्कृष्ट जीवन की सौरभ चिहुँ दिशि मे महक रही है। आप सयम के प्रत्येक क्षेत्र मे निपुणता लिये हुए प्रत्येक क्षण आत्म-साधना के प्रति अर्पित है।

पू गुरुवर्याश्री के गुणो को लिपिबद्ध करने मे मैं अपनी बुद्धि से स्वय को असमर्थ अनुभव कर रहा हूँ। पू गुरुवर्या श्री के चरणो मे कोटि-कोटि वदन अभिनन्दन प्रेषित करता हुआ जिनशासनदेव से व गुरुदेव से प्रार्थना करता हूँ, पू गुरुवर्याश्री के स्वास्थ्य के लिए।

जिनशासन की ज्योति बनकर सदा चमकती रहे इसी शुभेच्छा के साथ बाठिया परिवार की ओर से हार्दिक अभिनन्दन !

☐

☐ श्री हेमराजजी ललवानी

मुझे जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि पू आगम-मर्मज्ञा आशुकवयित्री पू गुरुवर्या श्री सज्जनश्री जी म सा के ८२ वे जन्म दिवस पर उनका सार्वजनिक अभिनन्दन करने का निर्णय लिया गया है। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि इस अवसर पर हम उनके सम्मान मे एक अभिनन्दन ग्रन्थ उन्हे समर्पित करने जा रहे ह।

मैं आशा करता हूँ कि आपश्री को समर्पित जाने वाला अभिनन्दन ग्रन्थ आपके जीवन दर्शन और साधना के बारे मे प्रेरणास्पद जानकारी प्रदान करेगा। ☐

☐ श्री प्रकाश बॉठिया, एव परिवार जयपुर

अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है लूनिया परिवार के द्वारा प पू गुरुवर्या श्री का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

आपश्री का सम्पर्क मुझे बचपन से ही प्राप्त हुआ। जब से मैंने आपश्री के जीवन को देखा, परखा, जाना, सुना और उसमे मुझे अनेक ऐसी विशेषताएँ मिली जो अन्य लोगो मे बहुत अल्प मात्रा मे दृष्टिगत होती है यथा—अध्ययन और अध्यापन, सेवा और समर्पणशीलता, सरलता, सहजता, वात्सल्य और प्रेम। ऐसी महान आत्मा दीर्घकाल तक चिरायु बन शासन सेवा मे अभिवृद्धि करे। और हम सब पर आपकी कृपा दृष्टि अविच्छिन्न सतत् रूप से प्रवाहमान होती रहे। ☐

☐ श्री प्रेमचन्दजी धाधिया, जयपुर

सौम्यस्वभावी, स्वाध्यायप्रेमी, आगमज्ञ, पू० प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म सा के अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशित होने का समाचार पढकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह ग्रन्थ सुन्दर, आकर्पक व समाजोपयोगी हो, यही मेरी हार्दिक भावना है। ☐

☐ श्री जोगराज भैरूँलाल भंसाली (गढसिवाना)

प पू प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म सा के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के सुअवसर पर भसाली परिवार का शत्-शत् अभिनन्दन !

मुझे आपश्री के दर्शनो का प्रथम सौभाग्य सिवाना नगर मे प्राप्त हुआ। आपश्री का जीवन प्रत्येक दृष्टि से सेवा पक्ष की दृष्टि से, अध्ययन पक्ष की दृष्टि से, सरलता सहजता की दृष्टि से, देखे तो सर्व गुणो से समन्वित है। आपकी प्रवचन

शैली भी अद्भुत है जिससे प्रभावित होकर मेरी बहिन कु० लक्ष्मी ने अपना जीवन आपके चरणो मे समर्पित करने का सकल्प किया है। वर्तमान मे वह गुरुवर्याश्री के निश्रा मे अध्ययन रत है।

ऐसी अद्भुत, अनुपम, अद्वितीय, ओजस्वी आत्मा शतसहस्र वर्षो तक शासनोन्नति करती हुई हमे भी शीतल व सुखद छायाप्रदान करती रहे। ☐

श्री भँवरलाल पुखराज

☐ श्री शान्तिलाल, सुरेशकुमार

(धरणेन्द्र पदमावती टेक्सटाइल्स अहमदाबाद)

ज्ञान की जगमगाती ज्योति श्री सज्जनश्री जी के दर्शन का अहोभाग्य हमे पहली बार शेरगढ मे स० २०४० मे हुआ। आपका दर्शन होने मात्र होने से ही सघ मे आपके प्रति मन भर गया। आपका स्वभाव, भक्तिभाव, प्रेरणा, मधुरवाणी से सघ मे हर्ष छा गया। आपकी प्रेरणा से सघ मे धर्म जागृति हुई। सघ की विनती स्वीकार कर आपके समुदाय के दो चौमासा भी हमारे यहाँ हुए। आप गुणो की खान है। दया के सागर है। स्वाध्याय के विराट धनी है। हम लूणिया परिवार के है। आपने लूणिया गोत्र का गर्व बढाया है। दीक्षा स्वर्ण जयन्ती अभिनन्दन समारोह के शुभ अवसर पर हम आपकी मगल कामना करते है।

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के अभिनन्दन समारोह के उपलक्ष्य मे समस्त लूणिया परिवार का कोटि-कोटि वदन।

☐

☐ श्रीमती निर्मला संखवाल, दिल्ली

यह जानकर हृदय श्रद्धा विभोर हो गया कि आगमज्योति मधुर व्याख्यात्री सघश्रेष्ठा पूज्या साध्वी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य मे अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है।

सासारिक पक्ष मे पूज्या साध्वीजी म० सा० मेरी ताईजी है। आप गृहस्थ मे रहते हुए भी कभी सासारिक भाव मे लिप्त नही रही। साधु-साध्वियो के प्रवचनो से प्रेरणा पाकर स्व और पर का भेद समझ कर आपने जैन भागवती दीक्षा अगीकार की और आत्मकल्याण के साथ-साथ जिनशासन की प्रभावना मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साथ ही उनके ८२वे वर्ष मे पदार्पण पर मै अपनी ओर से यही शुभकामना करती हूँ कि समाज को वर्षो-वर्षो तक आपका सान्निध्य मिलता रहे, तथा आपश्री हमे कल्याण मार्ग की ओर सतत् गमन की प्रेरणा प्रदान करती रहे। यही हमारी शुभकामना है।

पुन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन के लिए साध्वी श्री शशिप्रभाजी म० सा० को बहुत-बहुत साधुवाद। ☐

☐ श्री राकेश जैन

जब मैं महाराज के मुखमण्डल से प्रभावित हो, बातचीत की उत्सुकता को ले दादावाडी मे स्थित साध्वीजी श्रीशशिप्रभाश्री जी महाराज से परिचय हुआ, मेरे हर प्रश्न पूछने पर उन्होने प्रत्युत्तर मे मुझे सन्तुष्ट किया व मेरी श्रद्धा पूज्य गुरुवर्या श्री प्रति और दृढतर हो गयी और मन ही मन उनके गुणो की प्रशसा करने लगा कि साध्वी जी महाराज सबके साथ रहती हुई भी बाहर की प्रकृति से अलग है।

जब भी दर्शन हेतु जाता हूँ हाथ मे पुस्तक लिए हुए ही देखता हूँ। चेहरे पर कभी मलीनता नही देखी, सदा स्वाभाविक मुस्कराता चेहरा रहता है।

थोडे दिन के सम्पर्क से यही अनुभव किया कि शारीरिक अस्वस्थता होते हुए भी अन्यो को पढाती रहती है।

महान विभूति सज्जनश्रीजी महाराज की दीक्षा, जन्म, जयन्ती के उपलक्ष मे, हृदय से हार्दिक अभिनदन करता हूँ, गुरुदेव के चरणो मे मेरी अनुनय प्रार्थना है कि पू० गुरुवर्या श्रीदीर्घायु, चिरायु बन अनेक भव्य जीवो के लिए मार्ग दर्शक बने।

उनके स्वस्थ स्वास्थ्य की मगल कामना करता हुआ मुझ पतित पर सदा कृपा दृष्टि रहे यही श्री चरणो मे विनम्र प्रार्थना है।

पू० गुरुवर्याश्री का मुझ पर असीम उपकार है। उस उपकार से कृतघ्न न बनू। कृतज्ञ बन मोक्ष को प्राप्त करू"। यही गुरुवर्याश्री के चरणो मे मेरी अभ्यर्थना है। ☐

☐ श्री मोहनचन्दजी गोलेच्छा, उटकमण्ड

पूज्यवर्या, आगम मर्मज्ञा, प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्री म०सा० का लूनिया परिवार की ओर से अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

गुरुवर्याश्री जैन समाज की निधि है, आप यथा नाम तथागुण से ओत-प्रोत है। आपकी भद्र प्रकृति सभी को प्रभावित करती है। आप खरतरगच्छ की शान है।

आप ज्ञान, ध्यान, तप, जप की उत्कृष्ट साधिका हैं। आप मे करुणा की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। शरण मे आये प्रत्येक प्राणी को जिनवाणी का अमृत पान कराती हैं। इनकी वाणी जनकल्याणी, हितकारिणी है। पू० महाराज के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही मेरी बहिन किरण ने १० वर्ष की उम्र में ही उन्हे गुरु के रूप मे चुनकर सयम हेतु जीवन समर्पित कर दिया। ३२ वर्ष से सयमी जीवन व्यतीत करती हुई, शासनसेवा व गुरुवर्या की सेवा मे रत है जो वर्तमान मे पू० शशिप्रभाश्रीजी म०सा० के नाम से प्रख्यात है।

यह अभिनन्दन ग्रन्थ जिस दिव्य प्रतिभा मूर्ति के चरणो मे समर्पित होगा। वास्तव मे वे गुलाब सी मोहकता लिये हुए हैं। व्यक्तित्व निस्सन्देह निखरा हुआ है, निशक बिखरा हुआ है।

मैं भी व अपने परिवार की ओर से भावाभिनदन श्रद्धाभिनदन उन पावन परम पवित्र श्रीचरणो मे समर्पित करता हुआ गुरूदेव से प्रार्थना करता हूँ कि इन्हे स्वस्थ स्वास्थ्य प्रदान करें। ☐

☐ श्री भगवानचन्दजी छाजेड़ एवं समस्त परिवार

परम पूज्या प्रवर्तिनी महोदया गुरुवर्या श्रीसज्जनश्रीजी महाराज साहब के ८२ वर्ष प्रवेश के प्रसग पर समस्त छाजेड परिवार आपका हार्दिक अभिनन्दन करता है।

मेरा अहोभाग्य है कि आपश्री के दर्शनो का लाभ मुझे सिवाना नगर मे प्राप्त हुआ। मार्गदर्शन से ही मेरा मन आपकी ओर श्रद्धान्वित हो गया। जब मैंने आपका त्याग, तप, सयम से परिपूर्ण प्रवचन सुना तभी से मेरा मन धर्म की ओर उन्मुख हुआ। धर्म क्या है ? धर्म क्यो करते है ? धर्म से क्या लाभ होता है ? इत्यादि जानकारी मुझे आपके सम्पर्क मे प्राप्त हुई। इससे पूर्व मैं कुछ भी नही जानता था। आपके आध्यात्मिक प्रवचन से न केवल मेरा ही मन अपितु मेरी भतीजी जो पूज्याश्री के सान्निध्य मे अध्ययनरत है, ने तो अपना सर्वस्व ही गुरुवर्याश्री के चरणो मे समर्पित कर दिया। इस प्रकार आपके अद्भुत व अनुपम प्रवचन से एक दो ही नही हजारो व्यक्ति धर्म की ओर अग्रसर हुए।

मैं गुरुदेव से अभ्यर्थना करता हूँ कि ऐसी महान् आत्मा दीर्घायु चिरायु बनें। समस्त छाजेड परिवार पर आपकी कृपादृष्टि अनवरत रूप से सतत् प्रवाहित होती रहे। ☐

☐ श्रीमती इन्दूबाला सखवाल, दिल्ली

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ कि साध्वी श्री सज्जनश्री जी म० सा० की ८२ वी वर्षगाठ के उपलक्ष्य पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन होने जा रहा है। पूज्य म० सा० मेरी ताईजी है और मेरा बचपन उनके वात्सल्यरूपी प्यार-दुलार के साथ उन्ही की गोद मे बीता था।

वीर प्रभु से मै यही मगल कामना करती हूँ कि आपके जीवन से प्रेरणा पाकर हम भी अपने मानवजीवन को सार्थक करें। साध्वी श्री शशिप्रभा जी म० को अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन करने के लिए आभार प्रकट करती हूँ। ☐

☐ श्री हुक्मीचन्दजी लूणिया, ब्यावर

ससार में अनेक व्यक्ति है। किन्तु हर व्यक्ति अभिनन्दन के काबिल नही होते हैं परन्तु पूज्या प्रवर्तिनी श्री पूर्ण रूप से अभिनन्दन के योग्य है।

आपमें साधकीय जीवन के गुण पूर्ण रूप से विद्यमान है। हम सुनते है कि सन्त निर्विकल्प होना चाहिये, निस्पृह, निर्लेप होना चाहिये। ये ही सन्त के गुण पूज्य महाराज श्री के जीवन में मैंने निकटता से देखा।

पूज्या श्री के ब्यावर चातुर्मास में मैने प्रथम ही अनुभव किया, वो किसी भी बाह्य प्रवृत्ति में भाग नही लेती, आने-जाने वालो से उन्हे कभी भी व्यर्थ का आलाप करते हुए नही देखा, कभी किसी से जोश से बात करते नही देखा।

यदि दर्शक पाँच दिन मे आये, चाहे दस दिन मे, चाहे महीने मे आये कभी भी उपालम्भ की भाषा मे उलाहना देते हुए नही देखा, सदा स्वय के स्वाध्याय मे, साधना में समय सम्पूर्ण करना इसी लक्ष्य के साथ समय का सदुपयोग करती है।

गुरुदेव से मैं हार्दिक प्रार्थना करता हूँ कि पूज्या श्री चिरायु, दीर्घायु बन समान गच्छ का अभ्युत्थान कर प्राणी मात्र को मोक्ष का अधिकारी बनावे। ☐

☐ श्री राजेन्द्र नाहटा, भोपाल

अनोखे बहु अनुभवी, सरल स्वभावी-यशस्वी-तपस्वी, चहुँमुखी व्यक्तित्व की धनी, साहित्यप्रेमी एव धार्मिक शिक्षण मे जिज्ञासु, सेवा परायणा, आगमज्योति, परम पूजनीय प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब के दर्शन अनेक प्रसगो पर हुए। गत अनेक वर्षो से श्री खरतरगच्छ महासघ के कार्यक्रमो के सन्दर्भ मे मार्ग-दर्शन एव प्रेरणा की स्रोत रही है। आपश्री ने खरतरगच्छ की गतिविधियो, सगठन उद्देश्यो मे विशेष रुचि ली है।

बहुत समीप से मैं उनकी कार्य प्रणाली एव मधुर भाषा से अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ।

मै इनके गुणो के प्रति विनयावनत हूँ। आप जैन समाज की प्रकाश स्तम्भ है और वर्षो अपने प्रकाश से सबको आलोकित करेगी।

इसी श्रृखला मे 'पुण्य जीवन ज्योति', 'श्रमण सर्वस्व', 'श्री कल्पसूत्र' आदि अनेक रचनाये प्रकाशित की है। ☐

☐ पं० कन्हैयालालजी दक, उदयपुर

जिस महान् आत्मा के गुणानुवाद करने के लिए यह अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है, वे प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी विशुद्ध सामयिक चारित्र की धारिका है, उनका ज्ञान, दर्शन व चारित्र रूप रत्नत्रय की प्राप्ति करते रहने का निरन्तर लक्ष्य रहा है। उनकी गुण-गरिमा का अभिनन्दन करना सयम, तप तथा त्याग का अभिनन्दन करता है।

इस प्रकार के शुद्ध सयम का पालन करके जीवन को धन्य व सार्थक बनाने वाली साधिका को शत-शत वन्दन। ☐

☐ श्री मूलचन्दजी, मिश्रीमल-छगनमल भसाली

जैन जगत की अनुपम ज्योति, आगम मर्मज्ञा, शासन प्रभाविका महामना प्रवर्तिनी पदासीन परम श्रद्धेया पूज्या श्री सज्जनश्री जी म सा. के विशिष्ट व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जयपुर श्रीसघ ने पूज्याश्री के सयमी जीवन की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य मे 'अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित करने का जो निर्णय लिया है वह अत्युत्तम, प्रशसनीय व अनुकरणीय है। ☐

☐ सुश्री सुरंजी

भगवान महावीर का सदेश है—गुणो के विकास के लिए सूत्र है—"गुणीजनो की चर्चा, गुणीजनो की वाणी का श्रवण, गुणीजनो के गुणो का वर्णन और गुणीजनो के गुणो का तहेदिल से गुणगान।" अनेकानेक गुणो की स्वामिनी प्रवर्तिनी पू. श्री सज्जनश्रीजी म सा के गुणो के अभिनन्दन के लिये अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशित हो रहा है।

जीवन मे गुणो का विकास होना ही जीवन की सार्थकता है। ऐसे व्यक्तित्व को ही दुनिया नमन करती है। वन्दन करते हुए आशीर्वाद चाहती हूँ कि मुझ मे भी इन गुणो का विकास हो।

□

□ श्रीमती मेमबाई सुराणा

पिछले ३२ वर्षों मे मैने प्रवर्तिनीश्रीजी के अनेक बार दर्शन किये। करीब ५ वर्ष निरन्तर उनके जयपुर वर्षावास मे तो उन्हे निकट से देखने का खूब अवसर मिला।

मैने देखा है—प्रवर्तिनीश्रीजी प्रारम्भ से ही सेवा और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति है। गुरुसेवा मे वे सदा तत्पर रही है। किसी के जीवन मे सेवा गुण अधिक और किसी के जीवन मे स्वाध्याय अधिक होता है किन्तु प्रवर्तिनीजी ने सेवा और स्वाध्याय दोनो ही क्षेत्रो मे अग्रिम पक्ति मे स्थान लिया।

सरल और सहज व्यक्तित्व से परिपूर्ण प्रवर्तिनी जी का आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के प्रति सहज वात्सल्यभाव रहता है।

सन्तो का जीवन बृहस्पतिपुत्र भी वर्णन करने मे समर्थ नही तो मैं सामान्य श्राविका तो कह ही क्या सकती हूँ। मात्र श्रद्धा के दो शब्द आपश्री के चरणो मे समर्पित करती हुई अपने इष्ट देव से आपश्री दीर्घायु की शुभकामना करती हूँ।

हे ज्ञानज्योतिपुज गुरुवर,
सहज हो तुम सरल हो।
जिनशासन की इस बगिया के,
पुष्प एक तुम विरल हो।
नाम सज्जन, हृदय सज्जन,
गुणो के भण्डार हो।
क्या कहू गुण आपरा,
वन्दन हजार वार हो।

□

□ श्री विजयकुमारजी कक्कड, सरवाड

पृथ्वी पर आदि अनादि से समय-समय पर महान् विभूतियाँ हुई हैं, जिन्होने अपने अनूठे व्यक्तित्व द्वारा दुनियाँ को ज्ञान रूपी प्रकाश से दैदीप्यमान किया है।

आज के युग मे ऐसी ही एक महान विभूति है, जिसकी रग-रग मे चन्द्रमा के समान शीतलता, नभ के समान विशालता, करुणा, दया, वात्सल्यना कूट-कूट कर भरी है। ऐसे व्यक्तित्व की धनी समता मूर्ति, आगम वेत्ती, मधुर वक्त्री, आशुकवयित्री पूज्य गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी म सा हैं।

ऐसी पूज्य गुरुवर्याश्री ने अपने जीवन को पूर्ण रूप से जिनशासन के प्रति समर्पित कर दिया है। हमेशा पठन, पाठन एव स्वाध्याय मे अपने आपको तल्लीन रखकर, आगम व शास्त्रो का गूढ अध्ययन कर सासारिक प्राणियो को उनका सार बताना आपके जीवन का प्रमुख ध्येय रहा है।

ऐसी महान विभूति के अभिनन्दन समारोह पर उनके चरणो मे शत-शत वन्दन करता हुआ अपने इष्ट देव से उनकी सहस्रायु होने की प्रार्थना करता हूँ।

□

□ श्री भीखमचन्दजी कोचर, खडगपुर

मेरे हृदय के उद्गार हैं कि गुरुवर्याश्री की जितनी प्रशसा की जावे वह कम है। मेरे परिवार को उज्ज्वल बना दिया। नरकवासी को मोक्ष का द्वार बता दिया। ऐसी महान् विभूति कोकिल कठी ज्ञान दृष्टि रखने वाली पुण्य आत्मा को बार-बार वन्दना करता हूँ। धन्य हैं उनके माता-पिता को जो ऐसा दुर्लभ रत्न समाज को भेंट दिया। ऐसी महान् विभूति के दर्शन मात्र से कई भवो के कर्म नष्ट हो जाते है।

□

श्री सिरहमल नवलखा, श्रीमती प्रेमलता नवलखा, जयपुर

आगम ज्योति प्रवर्तिनी आर्यारत्न पूज्य श्री सज्जनश्री महाराज साहिबा का हम अभिनन्दन समारोह मनाने जा रहे है। आप जैसी कला सपन्न, परम विदुषी, स्वल्प मधुरभाषी, अध्ययनशील एव गहन गम्भीर तात्विक एव आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत साध्वी जी हमारे समाज मे विरली ही है। आपको शत-शत नमन।

ऐसी गुण गरिमा एव सयम तप त्याग से ओत-प्रोत प्रवर्तिनीजी के अभिनन्दन का सौभाग्य हमे प्राप्त हो रहा है, वस्तुत यह हमारा ही परम अहो-भाग्य है। इस शुभ अवसर पर हम आपके प्रति पूर्ण श्रद्धा से नतमस्तक है, एव आपके यशस्वी जीवन से प्रेरणा लेकर अपना जीवन भी सार्थक बनाने का सकल्प लेते है।

☐

☐ श्री दुलीचन्दजी टाक (जयपुर)

परम पूज्या गुरुवर्या, प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म सा के विषय मे कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने जेसा है। आपश्री आशुकवयित्री आगमज्ञा, ज्योतिष, ध्यान आदि विषयो की मर्मज्ञा तो है ही साथ ही अत्यन्त शात एव सरल स्वभावी है।

जयपुर सघ का अपूर्व सौभाग्य है कि आपश्री के दर्शन वदन का लाभ सतत मिल रहा है। हम श्रावक तो मात्र उनके गुणो की अनुमोदना ही कर सकते हैं। शासन देव से प्रार्थना है कि आपश्री दीर्घायु होकर सघ की सम्भाल करती रहे।

☐

☐ श्री वलवन्तराजजी भन्साली

अभिनन्दन समारोह के इस अवसर पर पूज्य प्रवर्तिनी जी म सा के वैदुष्य और सयम-तप-त्यागपूर्ण गुणगरिमा का अभिनन्दन करते हुए मैं आपके सुस्वास्थ्य तथा दीर्घायु की कामना करता हूँ।

☐

☐ श्री गजेन्द्रकुमार जी भसाली, उदयपुर

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ, जयपुर भाग्यशाली है जिसे ऐसी पूज्यवर्याश्री जी का अभिनन्दन करने का सुयोग मिल रहा है।

ऐसा अभिनन्दन वस्तुत राष्ट्र, समाज एव खरतरगच्छ सघ के लिए नयी चेतना का अभिनन्दन है ? ऐसे शुभ कार्यों के सयोजको को मै साधुवाद देता हूँ। और इस महोत्सव की हीरकोज्ज्वल सफलता के लिए हार्दिक मगलभावना प्रेषित करता हूँ। पूज्यवर्याश्री जी को शुभकामनाएँ देकर रस्म अदायगी करना धृष्टता होगी, सस्कृति के इस सवाहक को मैं अपना प्रणाम अर्पित करता हूँ।

☐

☐ श्री मानमलजी सुराणा, एव सम्पूर्ण परिवार अजमेर (राज०)

अत्यन्त हार्दिक प्रसन्नता है कि प श्रद्धेया प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० के ८२वे जन्म जयन्ती महोत्सव पर उ भा श्री जैन खरत-रगच्छ सघ, वैशाख शुक्ला पूर्णिमा वि० स० २०४६ तदनुसार शनिवार दि० २० मई १९८९ को जयपुर नगर मे अभिनन्दन समारोह समायोजित कर रहा है। चतुर्विध सघ पर प पूजनीया प्रवर्तिनी जी के अनेक उपकार है। आपका आदर्श जीवन हम सबके लिये धर्म आराधना हेतु परम प्रेरणास्पद है। इस सुअवसर पर प पू प्रवर्तिनी श्री के चरण कमलो मे नत मस्तक होकर सविनय वदना अर्ज करता हूँ और शासन देव से प्रार्थना करता हूँ कि आप चिरायु और स्वस्थ रहकर इसी प्रकार जैन शासन की सेवा एव प्रभावना करती रहे एव आपकी आदर्श विदुषी शिष्याएँ भी आपके आदर्श जीवन का अनुकरण करे और आत्मकल्याण व लोककल्याण द्वारा जैन शासन की शोभा बढाती रहे।

☐

☐ श्री कन्हैयालालजी लोढा

महासती श्री सज्जनश्रीजी अपने नाम के अनुरूप ही सज्जनता की प्रतिमा है। तप, त्याग, सेवा, सदाचरण, सयम आपके जीवन का मूल मत्र है। आप प्रकृति से सरल, मन से उदार हैं। आप राग-द्वेष, मोह के जीतने के लिए सतत प्रयत्नशील रहती है, चाहे जैसी प्रतिकूल परिस्थिति हो आपकी शान्ति अक्षुण्ण रहती है। आप दिखावा, भीड-भाड से दूर रहने वाले है। आप सरलता, नम्रता करुणा की साक्षात मूर्ति ही हैं। आपका व्यक्तित्व प्रभावक व प्रेरणादायक है। आप दीर्घायु हो, शासन की सेवा करते रहे, यही शुभ भावना है। ☐

☐डॉ० सू०प्र० वर्मा दल्ली, राजहरा(म०प्र०)

प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज का तपोमय जीवनरूपी स्वर्ण, उत्कृष्ट साधना की प्रचण्ड भट्टी मे तपकर, विशुद्ध, कुन्दन बना है। आप अदम्य इच्छाशक्ति, अतुलनीय प्रभुभक्ति, औदार्य, आत्म-चिन्तन, तपस्विता, तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता, दूरगामी कल्पनाशक्ति से सम्पन्न नीति प्रीति परमार्थ के प्रकाश पुंज की प्रतीक, परहिताकाक्षी, सरलता की प्रतिमूर्ति, सौम्य सौजन्य, सकल्प की दृढता, सतुलित दिनचर्या एव मधुर वातावरण की प्रणेता आदि गुणो से सम्पन्न है। आप मे, तर्क की सूक्ष्मता, विषय प्रतिपादन की क्षमता, विचारो की स्पष्टता, भावो की कोमलता, व्यवहार की सरलता, दुखियो के प्रति सहानुभूति आदि गुण इतने स्वाभाविक रूप मे है कि आपके सम्पर्क मे आने वाला व्यक्ति सहज ही आकृष्ट हो जाता है।

आपके उद्बोधन से यह परिलक्षित होता है, कि "आज का मानव अज्ञान से परेशान नही, वह तो गलत ज्ञान से परेशान है।"

आपके जीवन मे झाँका जावे तो आपकी शासन सेवा, धर्म के प्रति गहरी निष्ठा ही दृष्टिगोचर होती है, तथा आध्यात्मिकता एव सत्य, अहिंसा का अद्भुत समन्वय प्रतीत होता है।

आपश्रीजी का जीवन, कमल की भाँति, पर्वतशिखर पर चढने वाले यात्री की भाँति सदा निर्लिप्त, सतत जाग्रत और उच्चतम ध्येय के प्रति केन्द्रित तथा गतिशील रहता है।

जिस प्रकार मौन उषा, अपने कर मे सुन्दर पुष्पमाला से सजी सुनहरी लाली लेकर पृथ्वी का अभिषेक करने आती है, ठीक उसी प्रकार आपश्री जी अपने स्वर्ण कुम्भ से सत्य, अहिंसा का शीतल अमृत पान करानी रहती हैं। आपके जीवन की शतायुता की मगल कामना करते है। ☐

☐श्री मोहनजी सोनी (कवि एव गीतकार) दानीगेट, उज्जैन

परमपिता परमात्मा जब अपना कोई सन्देश हम पृथ्वीवासियो तक पहुँचाना चाहता है तो वह महान् सन्तो के द्वारा पहुँचाता है। ऐसी ही पूज्य-वर्या, प्रवर्तिनी महोदया, प्रात स्मरणीया, वन्दनीया, चिन्तनशीला, विदुषीवर्या, कवयित्री, सगीतसारिका, विनयवती, निरभिमानी, मधुर भाषिणी, वात्सल्य-हृदया और सर्वभूतेषु मैत्री की कल्याणमयी भावना से ओतप्रोत तथा सरलता की प्रतिमूर्ति श्रीसज्जन श्री महाराज साहब को वीर प्रभु की सन्देश वाहिका के रूप मे पाकर, सम्पूर्ण जैन और जैनेतर समाज अपने भाग्य की सराहना करता है। विलक्षणता की प्रतिमूर्ति, मूर्तिमत अध्यात्मज्ञान गगा, सात्विक मनीषी और हम सबकी पूज्या, आपको कोटिश वन्दन एवम् अभिनन्दन। ☐

☐ ।। सज्जना श्रीमुपास्महे ।।

प० चण्डीप्रसादाचार्यो दाधिमथः (पूर्व प्रिंसीपल महाराजा संस्कृत महाविद्यालय, जयपुरम्)

अर्थे संस्पृश्य हृत्तन्त्री याभिसभाषणे स्वरान् ।
व्यक्तवर्णपदा शुद्धा ता वन्दे सज्जनास्पदाम् ।।१।।

इहलोके तथान्यत्र चतुर्वर्गफलान्विताम् ।
सदिशन्नी हिता नीतिं नयान्ती च विनीतताम् ।।२।।

वारयन्तीमध पातान् प्रेरयन्तो शिवा मतिम् ।
अर्पयन्ती परा विद्या तर्पयन्ती स्वभाषणै ।।३।।

मातर सर्वजैनाना सज्जना श्रीमुपास्महे ।
कस्ता न पूजयेद् देवी यस्या सततभाषणे ।।४।।

विद्यारत्नानि विद्यन्ते विश्रुतानि चतुर्दश ·
अयि जैनागमबद्ध परिकरा विद्वासो भक्ताश्च ।

महामान्याना सुविदितयशसा सुगृहीतनामधेयाना सज्जनश्रीमहाभागानामभिनन्दनग्रन्थ प्रकाश्यते—इतिश्राव श्राव नितान्त प्रमोमुदीति मामकीनाचित्तवृत्ति । विदितप्रभावा सज्जनश्री महाभागा सर्वत्र प्रथते । पण्डिताना सर्वदैवानया समादर कृत इति अस्माभि समवलोकितम् । अस्या महाभागाया अध्यापनप्रसगे ननम् आसा व्यवहार जातेन वय नितान्त प्रभाविता । अस्या महाभागाया बहुश्रुतत्व समवलोक्य कस्य चेतो न प्रसीदते । अस्या महाविभूतेस्तेजपुञ्ज समवलोक्य न केवल सर्वे जैनाचार्या एव प्रभाविता, अपितु साहित्यशास्त्रमर्मज्ञ आशुकवि श्रीहरिशास्त्री अपि मुक्त कण्ठेन प्राशसत्—

वेशोऽतिभव्योऽस्या महाविभूते
सस्मारयत्येव मुनीन्द्ररूपम् ।
न केवल शास्त्रविचक्षणा सा
चारित्र्यमप्यस्यार्बुधै समर्च्यम् ।।

शिष्यान्वेषणे च या सदा व्यावृता, तासा समुज्ज्वलजीवने समर्पितभावा सदा अस्माभि समवलोकिता । जैनागमे सर्वथा व्रद्धादरा अपि

अन्यान्यागमेषु अपि समादरा कृतपरिचया चैव-विधाया अस्या महाभागाया अभिनन्दनग्रन्थे मयापि दिव्यास्तुति प्रेष्यते ।

अधिगच्छति शास्त्रार्थं स्मरति श्रद्धधाति च ।
यत्कृपालेशतस्तस्मै नमोऽस्तु गुरवे सदा ।।

☐

☐ श्री कुमारपाल वि० शाह

मैंने गभीरतापूर्वक अनुभव दिया है कि पू० प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज निरन्तर स्वाध्याय मे डूबी रहती हैं। जैनागम एव अन्य दर्शन के गहन अध्ययन चिन्तन-मनन से आपका सम्पूर्ण जीवन ही स्वाध्यायमय हो गया है। समय-समय पर आपश्री के दर्शन व विचार विनिमय का प्रसग आता है। आपश्री इतने सरल शब्दो मे धर्म के मर्म को समझा देती है, इतनी सुन्दरता से गहन तत्वो का विवेचन कर देती है कि सुखद आश्चर्य होता है। शत-शत वन्दन ।

☐

☐ श्री मोतीलालजी ललवाणी, सीवानागढ

मुझे ज्ञात हुआ कि जयपुर सघ प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी म सा के जन्म तिथि वैसाख पूर्णिमा के दिन उनका अभिनन्दन करने जा रहा है। परम श्रद्धेय प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी महाराज का जीवन वैशिष्ट्य भी एक व्यक्तित्व सम्पदा है। इस सम्पदा के लिए कहा जा सकता है कि वह अव सामाजिक धरोहर है।

स्वाध्याय और ध्यान तो आपकी साधना के मुख्य अग हैं। प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्री का अभिनन्दन उनकी गुण गरिमा सयम, तप, त्याग, का अभिनन्दन है। ऐसे हमारी गुरुवर्या का अभिनंदन का अनुपम अपूर्व अवसर हमे प्राप्त हो रहा है। यह हमारे लिए गौरव का विषय है। ऐसे गुरुवर्या के चरण कमल मे शत-शत वदन ।

☐

☐ श्री कन्हैयालालजी लोढा

महासती श्री सज्जनश्रीजी अपने नाम के अनुरूप ही सज्जनता की प्रतिमा है। तप, त्याग, सेवा, सदाचरण, सयम आपके जीवन का मूल मत्र है। आप प्रकृति से सरल, मन से उदार हैं। आप राग-द्वेष, मोह के जीतने के लिए सतत प्रयत्नशील रहती है, चाहे जैसी प्रतिकूल परिस्थिति हो आपकी शान्ति अक्षुण्ण रहती है। आप दिखावा, भीड-भाड से दूर रहने वाले है। आप सरलता, नम्रता करुणा की साक्षात मूर्ति ही है। आपका व्यक्तित्व प्रभावक व प्रेरणादायक है। आप दीर्घायु हो, शासन की सेवा करते रहे, यही शुभ भावना है। ☐

☐डॉ० सू०प्र० वर्मा दल्ली, राजहरा(म०प्र०)

प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज का तपोमय जीवनरूपी स्वर्ण, उत्कृष्ट साधना की प्रचण्ड भट्टी मे तपकर, विशुद्ध, कुन्दन बना है। आप अदम्य इच्छाशक्ति, अतुलनीय प्रभुभक्ति, औदार्य, आत्म-चिन्तन, तपस्विता, तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता, दूरगामी कल्पनाशक्ति से सम्पन्न नीति प्रीति परमार्थ के प्रकाश पुँज की प्रतीक, परहिताकाक्षी, सरलता की प्रतिमूर्ति, सौम्य सौजन्य, सकल्प की दृढता, सतुलित दिनचर्या एव मधुर वातावरण की प्रणेता आदि गुणो से सम्पन्न है। आप मे, तर्क की सूक्ष्मता, विषय प्रतिपादन की क्षमता, विचारो की स्पष्टता, भावो की कोमलता, व्यवहार की सरलता, दुखियो के प्रति सहानुभूति आदि गुण इतने स्वाभाविक रूप मे है कि आपके सम्पर्क मे आने वाला व्यक्ति सहज ही आकृष्ट हो जाता है।

आपके उद्‌बोधन से यह परिलक्षित होता है, कि "आज का मानव अज्ञान से परेशान नही, वह तो गलत ज्ञान से परेशान है।"

आपके जीवन मे झाँका जावे तो आपकी शासन सेवा, धर्म के प्रति गहरी निष्ठा ही दृष्टिगोचर होती है, तथा आध्यात्मिकता एव सत्य, अहिंसा का अद्‌भुत समन्वय प्रतीत होता है।

आपश्रीजी का जीवन, कमल की भाँति, पर्वतशिखर पर चढने वाले यात्री की भाँति सदा निर्लिप्त, सतत जाग्रत और उच्चतम ध्येय के प्रति केन्द्रित तथा गतिशील रहता है।

जिस प्रकार मौन उषा, अपने कर मे सुन्दर पुष्पमाला से सजी सुनहरी लाली लेकर पृथ्वी का अभिषेक करने आती है, ठीक उसी प्रकार आपश्री जी अपने स्वर्ण कुम्भ से सत्य, अहिंसा का शीतल अमृत पान कराती रहती है। आपके जीवन की शतायुता की मगल कामना करते है। ☐

☐श्री मोहनजी सोनी (कवि एव गीतकार) दानीगेट, उज्जैन

परमपिता परमात्मा जब अपना कोई सन्देश हम पृथ्वीवासियो तक पहुँचाना चाहता है तो वह महान् सन्तो के द्वारा पहुँचाता है। ऐसी ही पूज्य-वर्या, प्रवर्तिनी महोदया, प्रात स्मरणीया, वन्दनीया, चिन्तनशीला, विदुषीवर्या, कवयित्री, सगीतसारिका, विनयवती, निरभिमानी, मधुर भाषिणी, वात्सल्य-हृदया और सर्वभूतेषु मैत्री की कल्याणमयी भावना से ओतप्रोत तथा सरलता की प्रतिमूर्ति श्रीसज्जन श्री महाराज साहब को वीर प्रभु की सन्देश वाहिका के रूप मे पाकर, सम्पूर्ण जैन और जैनेतर समाज अपने भाग्य की सराहना करता है। विलक्षणता की प्रतिमूर्ति, मूर्तिमत अध्यात्मज्ञान गगा, सात्विक मनीषी और हम सबकी पूज्या, आपको कोटिश वन्दन एवम् अभिनन्दन। ☐

☐ ।। सज्जना श्रीमुपास्महे ।।

प० चण्डीप्रसादाचार्यो दाधिमथः (पूर्व प्रिंसीपल महाराजा सस्कृत महाविद्यालय, जयपुरम्)

अर्थं सस्पृश्य हृत्तन्त्री याभिसभाषणे स्वरान् ।
व्यक्तवर्णपदा शुद्धा ता वन्दे सज्जनास्पदाम् ।।१।।

इहलोके तथान्यत्र चतुर्वर्गफलान्विताम् ।
सदिशन्ती हिता नीतिं नयान्ती च विनीतताम् ।।२।।

वारयन्तीमध पातान् प्रेरयन्ती शिवा मतिम् ।
अर्पयन्ती परा विद्या तर्पयन्ती स्वभाषणै ।।३।।

मातर सर्वजैनाना सज्जना श्रीमुपास्महे ।
कस्ता न पूजयेद् देवी यस्या सततभाषणे ।।४।।

विद्यारत्नानि विद्यन्ते विश्रु तानि चतुर्दश ।
अपि जैनागमवद्ध परिकरा विद्वासो भक्ताश्च ।

महामान्याना सुविदितयशसा सुगृहीतनामधेयाना सज्जनश्रीमहाभागानामभिनन्दनग्रन्थ प्रकाश्यते—इतिश्राव श्राव नितान्त प्रमोमुदीति मामकीनाचित्तवृत्ति । विदितप्रभावा सज्जनश्री महाभागा सर्वत्र प्रथते । पण्डिताना सर्वदैवानया समादर कृत इति अस्माभि समवलोकितम् । अस्या महाभागाया अध्यापनप्रसगे ननम् आसा व्यवहार जातेन वय नितान्त प्रभाविता । अस्या महाभागाया वहुश्रु तत्व समवलोक्य कस्य चेतो न प्रसीदते । अस्या महाविभूतेस्तेजपुञ्ज समवलोक्य न केवल सर्वे जैनाचार्या एव प्रभाविता, अपितु साहित्यशास्त्रमर्मज्ञ आशुकवि श्रीहरिशास्त्री अपि मुक्त कण्ठेन प्राशसत्—

वेशोऽतिभव्योऽस्या महाविभूते
सम्मारयत्येव मुनीन्द्ररूपम् ।
न केवल शास्त्रविचक्षणा सा
चारित्र्यमप्यस्याबुधै समर्च्यम् ।।

शिष्यान्वेषणे च या सदा व्यावृता, तासा समुज्ज्वलजीवने समर्पितभावा सदा अस्माभि समवलोकिता । जैनागमे सर्वथा वद्धादरा अपि

अन्यान्यागमेषु अपि समादरा कृतपरिचया चैवविधाया अस्या महाभागाया अभिनन्दनग्रन्थे मयापि दिव्यास्तुति प्रेष्यते ।

अधिगच्छति शास्त्रार्थं स्मरति श्रद्धधाति च ।
यत्कृपालेशतस्तस्मै नमोऽस्तु गुरवे सदा ।।

☐

☐ श्री कुमारपाल वि० शाह

मैंने गभीरतापूर्वक अनुभव किया है कि पू० प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज निरन्तर स्वाध्याय में डूबी रहती हैं। जैनागम एव अन्य दर्शन के गहन अध्ययन चिन्तन-मनन से आपका सम्पूर्ण जीवन ही स्वाध्यायमय हो गया है। समय-समय पर आपश्री के दर्शन व विचार विनिमय का प्रसग आता है। आपश्री इतने सरल शब्दो मे धर्म के मर्म को समझा देती है, इतनी सुन्दरता से गहन तत्वो का विवेचन कर देती है कि सुखद आश्चर्य होता है। शत-शत वन्दन।

☐

☐ श्री मोतीलालजी ललवाणी, सीवानागढ

मुझे ज्ञात हुआ कि जयपुर सघ प्रवर्तिनीश्री सज्जनश्रीजी म सा के जन्म तिथि वैसाख पूर्णिमा के दिन उनका अभिनन्दन करने जा रहा है। परम श्रद्धेय प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी महाराज का जीवन वैशिष्ट्य भी एक व्यक्तित्व सम्पदा है। इस सम्पदा के लिए कहा जा सकता है कि वह अव सामाजिक धरोहर है।

स्वाध्याय और ध्यान तो आपकी साधना के मुख्य अग हैं। प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्री का अभिनन्दन उनकी गुण गरिमा सयम, तप, त्याग, का अभिनन्दन है। ऐसे हमारी गुरुवर्या का अभिनदन का अनुपम अपूर्व अवसर हमे प्राप्त हो रहा है। यह हमारे लिए गौरव का विषय है। ऐसे गुरुवर्या के चरण कमल मे शत-शत वदन।

☐

☐ श्री जवाहरलाल लोढा,

(सम्पादक साप्ताहिक श्वेताम्बर जैन, आगरा)

यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है कि जैन श्वेताम्ब्रर खरतरगच्छ सघ जयपुर अपनी प० पूज्यनीया आगममर्मज्ञा प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी महाराज के ८१वे जन्म दिवस वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन आपका अभिनन्दन करने जा रहा है।

प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी महाराज का अभिनन्दन उनकी गुणगरिमा और त्याग तपस्या का अभिनन्दन है। हम प० पू० प्रवर्तिनीजी के चरणो मे शुभकामनाएँ अर्पित करते है और प्रभु से प्रार्थना करते है कि दीर्घकाल तक अपने सद्उपदेशो से भव्य आत्माओ को लाभान्वित करती रहे।

अभिनन्दन आयोजक सघ को भी हम धन्यवाद देते हैं, उनके इस सदप्रयास के लिये।

☐

☐ श्रीसौभागमलजी विजयकुमारजी

(अध्यक्ष श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सघ टोक)

आज के भौतिक युग मे जब मानवता व्यथित है, तब जैन धर्म के सिद्धान्त अत्यधिक, आवश्यक एव प्रासगिक हैं। जैन साधु-साध्वियाँ आदर्श के प्रतीक है। साध्वियो की इसी परम्परा मे पूजनीय प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी अमूल्य सेवाओ के प्रति हम श्रद्धानत है और उनका हृदय से अभिनन्दन करते हैं।

पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब ने टोक मे भी चातुर्मास किया है और इसके अतिरिक्त टोक मे एक महत्वपूर्ण अवधि तक विराम और विश्राम भी किया है। हम उनके अमूल्य ज्ञान से और आदर्श जीवन से अत्यन्त प्रभावित हुए है।

हम अपनी पूरी भक्ति और शक्ति से उनका अभिनन्दन करते है और शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि वे इन्हे दीर्घायु करें।

☐ श्रीमती शकुन्तला सुराणा, जयपुर

पूज्य प्रवर्तिनी "आगम ज्योति" श्री सज्जनश्री जी म सा की भव्यता पर मुझे कुछ टूटे-फूटे शब्द लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह मेरे लिए गौरव का विषय है। मैं अपनी लघुता से उनकी गरिमा व भव्यता का अभिनन्दन करती हूँ।

जिनेश्वर देव से यही कामना है आप स्वस्थ रहते हुये चिरायु बने। परस्पर सद्भावना, सहानुभूति, सच्चे प्रेम का निर्झर बहाती रहे।

☐

☐ श्रीमती निर्मला कडावत, जयपुर

(एम० काम०, एम० ए०)

जैन समाज आज जिन अपूर्व प्रतिभाशाली रत्नो को पाकर ससार मे अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुये हैं व भविष्य हेतु भी सुरक्षित है। इन्ही प्रतिभाशाली रत्नो मे पूज्या गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब भी एक है जिन्होंने अपनी पीयूषमयीवाणी एव मुखमडल पर ज्ञान के दिव्य तेज के द्वारा सम्पूर्ण देश के जैन व जैनेतर समाज को आलोकित किया है।

हम सभी का शत-शत अभिनन्दन एव वन्दन।

अद्भुत ज्योति, अद्भुत प्रज्ञा,
हो तुम आगम मर्मज्ञा।
फैल रही है कीर्ति तुम्हारी,
हो हर क्षेत्र मे सुयोग्या॥

☐

☐ श्रीमती अनिता भण्डारी

आगम मर्मज्ञा, प्रखर व्याख्यात्री, मृदुभाषी, सरलता और सादगी की प्रतिमूर्ति श्रद्धेय सज्जन श्रीजी महाराज साहव के वहुमुखी व्यक्तित्व मे "सादा जीवन और उच्च विचार" के अभिदर्शन होते है।

स्वाध्याय, मनन, चिन्तन का अद्भुत त्रिवेणी ... ण व्यक्तित्व मे परिलक्षित होता

है। प्रमाद और आलस्य तो उनसे कोसो दूर रहता है, क्योकि वे हर समय पठन-पाठन और लेखन कार्य मे तल्लीन रहती है। इनका प्रमुख गुण यह है कि स्वकल्याण और विकास का ध्यान रखने के साथ-साथ आप जनकल्याण और समाजोत्थान की भावना मे भी ओत-प्रोत है। अभिनन्दन के अवसर पर मेरा शत-शत वन्दन। □

□ श्रीमती ताराकुमारी झाड़चूर

शब्दो की एक सीमा होती है उनमे इस असीम अनुपम ज्योतिर्मय व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करना सम्भव नही है, तथापि विचारो की तरगो को रोक नही पा रही हूँ। मैं करीब ३८ वर्ष पूर्व जयपुर के झाडचूर परिवार मे आई थी तव पूज्य गुरुवर्या के अलौकिक व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ा था और शनै शनै वह गूढ होता गया। वे अत्यन्त सरल एव करुणाहृदयी है। इतनी बुद्धिजीवी होकर भी जरा सा भी मान नही है, न पद की लालसा है और न ही नाम की आकाक्षा। ऐसी गुरुवर्या के दर्शन एव स्पर्श से जिस सुख की अनुभूति होती है सम्भवत उसे ही परमानन्द कहा गया है। मुझे शुरू से ही पुराने स्तवन अच्छे लगते है क्योकि उनमे भावाभिव्यक्ति बहुत ही उत्कृष्ट होती है। गुरुवर्या के कुछ स्तवन भले ही वे फिल्मी गानो की तर्ज पर ही क्यो न हो, अत्यन्त सारगर्भित है। गुरुदेव के एक भजन की आखरी पक्ति मे पूज्य गुरुवर्या ने कहा है "दो ज्ञानमय उपयोग ऐसा आत्म को जाने," कितना आध्यात्मिक भाव एव कितना सरल कि साधारण व्यक्ति के भी समझ मे आ जाए।

जयपुर श्री सघ पर गुरुवर्याश्री की विशेष कृपा रही है। जव भी प्रमाद मे फँस कर धर्म कृत्य छोड देते है तो पुन जागृत करती रहती है। कितना ख्याल एव कितनी आत्मीयता है। ऐसी महान विभूति के चरणो मे त्रिकाल वन्दन करते हुए पूज्य गुरुवर्याश्री के आरोग्य तथा दीर्घ जीवन की गुरुदेव से मगल कामना करती हू। □

□ श्री जोगेश्वरनाथजी संड

धर्म प्रवर्तिनी पूज्यवर्या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म० साहव, आगम ज्योति के इस अभिनन्दन समारोह के लिये मेरी हार्दिक शुभ-कामनाये तथा ऐसी महाप्राण साध्वीजी के सुस्वस्थ होने तथा शतायु होने की मगल कामना अर्पित करता हूँ। शत-शत नमन। □

□ श्रीमती रत्ना ओसवाल

(सहमन्त्राणी · अखिल भारतीय महिला समिति, राजनांद गाँव म० प्र०)

अपने आचार-विचार की समतल पृष्ठभूमि पर व्यक्तित्व की परिभाषा वन उभरता है, वही सत है, वही साध्वी है। परम पूज्य प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जनश्रीजी का व्यक्तित्व आचार-विचार की समन्विति से मडित है। इस मगल वेला पर उन्हे शत-शत मेरा वदन। □

□ श्रीमती भवरदेवी गोलेच्छा

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आगमज्ञा विदुषीवर्या समता मूर्ति सरल स्वभावी सुपुनीत सत महामहिम प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के अभिनन्दन ग्र थ का प्रवर्तन प्रकाशन होने जा रहा है। वास्तव मे यह सत का सम्मान तो है ही उससे अधिक यह उनके कर्मो से जुडे अन्य सु पुनीतो के सद्‌गु ण ग्रहणात्मकता का प्रकाशन भी है।

अन्त मे मै इतना ही कहूँगी

> "वदौ गुरुपद पदुम परागा।
> सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥
> अमिय मूरिमय चूरन चारू।
> शमन सकल भवरूज परिवारू॥

गुरुवर्या के चरणो मे कोटिश प्रणाम। □

☐ श्री जवाहरलाल लोढा,

(सम्पादक साप्ताहिक श्वेताम्बर जैन, आगरा)

यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है कि जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ सघ जयपुर अपनी प० पूज्यनीया आगममर्मज्ञा प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी महाराज के ८१वें जन्म दिवस वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन आपका अभिनन्दन करने जा रहा है।

प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी महाराज का अभिनन्दन उनकी गुणगरिमा और त्याग तपस्या का अभिनन्दन है। हम प० पू० प्रवर्तिनीजी के चरणो मे शुभकामनाएँ अर्पित करते है और प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि दीर्घकाल तक अपने सद्उपदेशो से भव्य आत्माओ को लाभान्वित करती रहे।

अभिनन्दन आयोजक सघ को भी हम धन्यवाद देते है, उनके इस सदप्रयास के लिये।

☐

☐ श्रीसौभागमलजी विजयकुमारजी

(अध्यक्ष श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सघ टोंक)

आज के भौतिक युग मे जब मानवता व्यथित है, तब जैन धर्म के सिद्धान्त अत्यधिक, आवश्यक एव प्रासगिक हैं। जैन साधु-साध्वियाँ आदर्श के प्रतीक हैं। साध्वियो की इसी परम्परा मे पूजनीय प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी अमूल्य सेवाओ के प्रति हम श्रद्धानत हैं और उनका हृदय से अभिनन्दन करते है।

पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब ने टोक मे भी चातुर्मास किया है और इसके अतिरिक्त टोक मे एक महत्वपूर्ण अवधि तक विराम और विश्राम भी किया है। हम उनके अमूल्य ज्ञान से और आदर्श जीवन से अत्यन्त प्रभावित हुए है।

हम अपनी पूरी भक्ति और शक्ति से उनका अभिनन्दन करते हैं और शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि वे इन्हे दीर्घायु करें।

☐ श्रीमती शकुन्तला सुराणा, जयपुर

पूज्य प्रवर्तिनी "आगम ज्योति" श्री सज्जनश्री जी म सा की भव्यता पर मुझे कुछ टूटे-फूटे शब्द लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह मेरे लिए गौरव का विषय है। मैं अपनी लघुता से उनकी गरिमा व भव्यता का अभिनन्दन करती हूँ।

जिनेश्वर देव से यही कामना है आप स्वस्थ रहते हुये चिरायु बने। परस्पर सद्भावना, सहानुभूति, सच्चे प्रेम का निर्झर बहाती रहे।

☐

☐ श्रीमती निर्मला कडावत, जयपुर

(एम० काम०, एम० ए०)

जैन समाज आज जिन अपूर्व प्रतिभाशाली रत्नो को पाकर ससार मे अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुये हैं व भविष्य हेतु भी सुरक्षित है। इन्ही प्रतिभाशाली रत्नो मे पूज्या गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहब भी एक है जिन्होने अपनी पीयूषमयीवाणी एव मुखमडल पर ज्ञान के दिव्य तेज के द्वारा सम्पूर्ण देश के जैन व जैनेतर समाज को आलोकित किया है।

हम सभी का शत-शत अभिनन्दन एव वन्दन।

अद्भुत ज्योति, अद्भुत प्रज्ञा,
हो तुम आगम मर्मज्ञा।
फैल रही है कीर्ति तुम्हारी,
हो हर क्षेत्र मे सुयोग्या ॥

☐

☐ श्रीमती अनिता भण्डारी

आगम मर्मज्ञा, प्रखर व्याख्यात्री, मृदुभाषी, सरलता और सादगी की प्रतिमूर्ति श्रद्धेय सज्जन श्रीजी महाराज साहब के बहुमुखी व्यक्तित्व मे "सादा जीवन और उच्च विचार" के अभिदर्शन होते है।

स्वाध्याय, मनन, चिन्तन का अद्भुत त्रिवेणी ॰। इनके विलक्षण व्यक्तित्व मे परिलक्षित होता

है। प्रमाद और आलस्य तो उनसे कोसो दूर रहता है, क्योकि वे हर समय पठन-पाठन और लेखन कार्य मे तल्लीन रहती है। इनका प्रमुख गुण यह है कि स्वकल्याण और विकास का ध्यान रखने के साथ-साथ आप जनकल्याण और समाजोत्थान की भावना से भी ओत-प्रोत है। अभिनन्दन के अवसर पर मेरा शत-शत वन्दन। □

□ श्रीमती ताराकुमारी झाडचूर

शब्दो की एक सीमा होती है उनमे इस असीम अनुपम ज्योतिर्मय व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करना सम्भव नही है, तथापि विचारो की तरगो को रोक नही पा रही हूँ। मै करीब ३८ वर्ष पूर्व जयपुर के झाडचूर परिवार मे आई थी तब पूज्य गुरुवर्या के अलौकिक व्यक्तित्व का प्रभाव पडा था और शनै शनै वह गूढ होता गया। वे अत्यन्त सरल एव करुणाहृदयी है। इतनी बुद्धिजीवी होकर भी जरा सा भी मान नही है, न पद की लालसा है और न ही नाम की आकाक्षा। ऐसी गुरुवर्या के दर्शन एव स्पर्श से जिस सुख की अनुभूति होती है सम्भवत उसे ही परमानन्द कहा गया है। मुझे शुरू से ही पुराने स्तवन अच्छे लगते है क्योकि उनमे भावाभिव्यक्ति बहुत ही उत्कृष्ट होती है। गुरुवर्या के कुछ स्तवन भले ही वे फिल्मी गानो की तर्ज पर ही क्यो न हो, अत्यन्त सारगर्भित है। गुरुदेव के एक भजन की आखरी पक्ति मे पूज्य गुरुवर्या ने कहा है "दो ज्ञानमय उपयोग ऐसा आत्म को जाने," कितना आध्यात्मिक भाव एव कितना सरल कि साधारण व्यक्ति के भी समझ मे आ जाए।

जयपुर श्री सघ पर गुरुवर्याश्री की विशेष कृपा रही है। जब भी प्रमाद मे फँस कर धर्म कृत्य छोड देते है तो पुन जागृत करती रहती है। कितना ख्याल एव कितनी आत्मीयता है। ऐसी महान विभूति के चरणो मे त्रिकाल वन्दन करते हुए पूज्य गुरुवर्याश्री के आरोग्य तथा दीर्घ जीवन की गुरुदेव से मगल कामना करती हू। □

□ श्री जोगेश्वरनाथजो संड

धर्म प्रवर्तिनी पूज्यवर्या प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म० साहब, आगम ज्योति के इस अभिनन्दन समारोह के लिये मेरी हार्दिक शुभ-कामनाये तथा ऐसी महाप्राण साध्वीजी के सुस्वस्थ होने तथा शतायु होने की मगल कामना अर्पित करता हूँ। शत-शत नमन। □

□ श्रीमती रत्ना ओसवाल

(सहमत्राणी · अखिल भारतीय महिला समिति, राजनाद गाँव म० प्र०)

अपने आचार-विचार की समतल पृष्ठभूमि पर व्यक्तित्व की परिभाषा बन उभरता है, वही सत है, वही साध्वी है। परम पूज्य प्रवर्तिनी साध्वी श्री सज्जनश्रीजी का व्यक्तित्व आचार-विचार की समन्विति से मडित है। इस मगल बेला पर उन्हे शत-शत मेरा वदन। □

□ श्रीमती भंवरदेवी गोलेच्छा

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आगमज्ञा विदुषीवर्या समता मूर्ति सरल स्वभावी सुपुनीत सत महामहिम प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म० सा० के अभिनन्दन ग्र थ का प्रवर्तन प्रकाशन होने जा रहा है। वास्तव मे यह सत का सम्मान तो है ही उससे अधिक यह उनके कर्मो से जुडे अन्य सु पुनीतो के सद्गुण ग्रहणात्मकता का प्रकाशन भी है।

अन्त मे मैं इतना ही कहूँगी ·

"वदौ गुरुपद पदुम परागा।
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥
अमिय मूरिमय चूरन चारू।
शमन सकल भवरुज परिवारू॥

गुरुवर्या के चरणो मे कोटिशः प्रणाम। □

☐ श्री उत्तमचन्द डागा
(सयुक्त मन्त्री)

जयपुर सदा से पुण्य भूमि रही है। तप, त्याग की ये भूमि रत्नो की खान है। इसी पुण्यभूमि की जनक जैन समाज की गौरव महासती प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म एक प्रतिभाशाली, गौरवमयी, साधनामयी, साध्वीरत्न हैं। आपका सम्पूर्ण जीवन साधना के पथ पर निरन्तर गतिशील रहा है।

आप जैसी विलक्षण महान उदारमना महासती जी का अभिनन्दन वन्दन वास्तव मे आपके सयम पथ का ही अभिनन्दन है। वे हमारी गौरवशाली परम्परा की सच्ची प्रतीक है। हम ऐसी महान साध्वी रत्न का अभिनन्दन कर अपने को निश्चय ही गौरवशाली महसूस करते है।

☐

☐ श्री राजेश महमवाल, नवलगढ

त्याग व सयम के पथ पर इतने बडे समुदाय को लेकर चलने वाली गुरुवर्या प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी म का व्यक्तित्व एक अक्षय प्रेरणा का स्रोत रहा है। ज्ञान के इस पवित्र स्रोत के किनारे खडा प्रत्येक श्रावक आत्मसस्कारो के लिये नई दीप्ति पाता है। साधुत्व जैन समाज की परम्परा व शक्ति रही है और इसी शक्तिमान आभा की नैतिकता का अपना एक दिव्याकाश है जहाँ अनेक प्रकाश शक्तियाँ आपकी शक्ति से जगमगा रही है जो भविष्य के लिये सयम की राह मे सेतु वन इस परम्परा को अविरल गति व मार्गदर्शन देती रहेगी।

वीर-शासन की सेविका, आध्यात्मिक विभूति एव सात्विक-मनीषा को मेरा कोटिश कोटिश वन्दन।

☐

☐ श्री मानमल कोठारी

पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज साहव के अभिनन्दन समारोह का आयोजन वहुत ही सराहनीय और समीचीन है। पूज्याश्रीजी वहुत ही विदुषी और शस्त्रो की महान् ज्ञाता है। आपने शासन की बडी सेवा की है।

पूज्याश्रीजी पर हमे गर्व है। आपका वहुमान, आप मे रही समाज की सच्ची भक्ति का द्योतक है।

"उत्तम ना गुण गावता,
गुण उपजे निज अग।"

आपश्रीजी के गुणग्राम से हमे भी महान् लाभ प्राप्त होगा।

☐

☐ श्री लहरसिंह बाफना

विदुषीवर्या प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी म सा के अभिनन्दन समारोह के शुभ अवसर पर मै श्री जैन श्वेताम्बर सघ खेतडीनगर की ओर से समारोह की सफलता की शुभकामना करता हूँ। और कामना करता हूँ कि साध्वीजी के जीवन से समाज के गौरव की वृद्धि के साथ-साथ पवित्र और विद्यावान जीवन जीने की प्रेरणा भी मिलेगी।

☐

☐ श्री एस. मोहनचन्द ढड्ढा
[२६८, लायड्स रोड, रायपेठ, मद्रास]

भारत की समस्त जैन समाज की साध्वी समुदाय मे प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्रीजी महाराज का एक अनूठा स्वरूप है। इनकी वाणी व व्यवहार मे अद्भुत प्रभावकता है। आपका व्यक्तित्व और कृतित्व वेजोड है। आपकी वाणी और काव्य कृतियाँ सभी के लिए प्रेरणाप्रद है। ऐसी वन्दनीया साध्वीश्री जी के चरणो मे शत-शत नमन! शुभ कामना।

☐

□ साध्वी रंभाश्रीजी महाराज

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भगिनी प्रवर्तिनी श्रीसज्जनश्रीजी महाराज का अभिनन्दन किया जा रहा है।

उनका व्यक्तित्व अपने आप में अनुपम व अनुकरणीय है।

गुरुदेव से प्रार्थना है कि चिरायु बन जिनशासन की सेवा सलग्न रहे। □

□ श्री ज्ञानचन्दजी लूनावत

(मन्त्री श्री जिनदत्त सूरि सेवा सघ, कलकत्ता)

पूज्यवर्या प्रवर्तिनी महोदया श्रीसज्जनश्रीजी महाराज साहब के अभिनन्दन समारोह के समाचार जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। आपश्री मे ऐसे अनेको गुण है जिससे मस्तक श्रद्धा से स्वत ही झुक जाता है। आपश्री प्रकाड विदुषी है। प्रकाड विद्वान होना बहुत बडी बात है किन्तु उससे भी बडी बात है विद्वत्ता का लेश मात्र भी अहकार न होना। विद्वत्ता की उच्च स्थिति मे पहुँचने के बाद भी अहकार पर विजय पाने वाले व्यक्ति तो नगण्य ही होते हैं। पूज्या प्रवर्तिनीजी इस गुण को प्राप्त करने मे पूर्ण समर्थ हुई है।

व्यर्थ की विकथा से दूर रहकर धर्मध्यान व शुक्ल ध्यान मे रहना मुनि जीवन का प्रमुख गुण है। प्रवर्तिनी महोदया सदा ही विकथा से दूर तप-स्वाध्याय मे लीन रहती हैं। आपश्री मे, ज्ञान एव चारित्र दोनो का एक साथ समावेश है।

इसके अतिरिक्त विनम्रता, मधुर भाषणता, सेवाभावना आदि अनेक गुण आप मे है। आपश्री केवल विदुषी ही नही, वक्तृत्व कला सम्पन्न, सफल लेखिका एव कवयित्री भी है। आपश्री का अभिनन्दन करते हम अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

□ श्री महताबचन्दजी बाँठिया, बम्बई

अत्यन्त आनन्द का अनुभव हो रहा है कि पूज्या प्रवर्तिनीश्री का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

पू गुरुवर्याश्री जैनाकाश की दिव्यतारिका है। आपश्री स्वभाव से पूरी तरह मुनित्व जीवन से निकट है। साधुत्व का लक्षण है-समता व अनासक्ति। जिनके जीवन मे ये दो गुण आत्मसात हो गये, वे निश्चित रूप से निर्ग्रन्थ बन गये। पू गुरुवर्याश्री को इन्ही गुणो से परिपूर्ण देखा।

मै अन्त करण से हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ यही शुभकामना करता हूँ कि पूज्या प्रवर्तिनीजी दीर्घायु बन ससार-रसिको को शासनरसिक बनाये। □

□ श्री हेमचन्द चौरडिया

(व्यवस्थापक ' ज्ञान भडार,
श्री जैन श्वे खरतरगच्छ सघ, जयपुर)

यह मन का व्यापार निरन्तर,
इसमे तो वह छूट सकेगा।
तोडेगा ममता के बन्धन,
कर पायेगा आत्म-नियन्त्रण,
जिसने मन को जीत लिया—,
वह जीवन को जीत सकेगा।

कवि के उपरोक्त विचारो को सार्थक करने वाली प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज साहब का अभिनन्दन करना अपने आप मे एक महान पुण्य कार्य है।

आपके आदर्श चरित्र, सौम्यता, सयम, सरल स्वभाव, हृदय की भव्यता एव विद्वत्ता का अभिनन्दन करके सम्पूर्ण जैन समाज गौरवान्वित होगा ही, साथ ही साथ जैन समाज के उत्थान मे आपका योगदान सदैव की भाँति मिलता रहेगा। आप दीर्घायु हो इसी कामना के साथ। □

□ श्रीमती प्रेमदेवी झाडचूर (जयपुर)

हार्दिक प्रसन्नता का विषय है कि पू गुरुवर्या श्री सज्जनश्रीजी म सा का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

जिस तरह से माँ अपने बच्चे को अगुली पकड-कर सही रास्ता बताती है, भटकने नही देती है

उमी प्रकार पू गुरुवर्य्याश्री ने मुझे सद्‌मार्ग बताकर मुझ पर अनन्य उपकार किया है।

विचक्षण भवन का निर्माण चल रहा था तव गुरुवर्य्याश्री की प्रेरणा से ही मैंने व्याख्यान हाल वनवाने मे सम्पत्ति का सदुपयोग किया।

गुरुवर्य्याश्री के चरणो मे सश्रद्धा, सभक्ति, सविनय प्रार्थना करती हूँ कि जब-जब भी कुमार्ग पर भटकूँ सदा आप मुझे ज्ञान की ज्योति दिखा सुमार्ग पर ले आये।

गुरुदेव से प्रार्थना करती हूँ कि पू० गुरुवर्य्याश्री दीर्घायु बन समार-रसिक जीवो को अपने उपदेश से शासन-रमिक—मोक्ष-रसिक वनाये। इसी शुभ-कामना के साथ— ☐

☐ विमला झाडचूर, जयपुर

वहुमुखी प्रतिभा और आपके द्वारा प्रेरित भक्ति ज्ञान से देश परिचित है। आपने अपनी उच्चतम साधना एव ज्ञान के द्वारा देश और विदेश के सहस्रों मानव प्राणियो का कल्याण किया है। आपश्री सरल स्वभावी शान्तमूर्ति है आपकी अमृत-मयी वाणी और आशीर्वाद मे जैमे जादू ही भरा है।

मेरा स्वय का अनुभव है कि कभी ज्वर या सिर मे दर्द या अन्य कोई व्याधि शरीर मे हो जाती है तो आपश्री का वासक्षेप आशीर्वाद मिलते ही शान्ति अनुभव होती है। जब भी मै उपाश्रय मे आती तो आप जैसी शान्ति-मूर्ति के दर्शनो से आत्मा को अनन्त शान्ति मिलती है। मेरी तो प्रतिक्षण यही इच्छा रहती है कि आपश्री के पास ही वैठी रहूँ और अमृतमयी वाणी का पान करती रहू। आपश्री की वाणी मे मानो अमृत ही वरसता है वम मन यही चाहता है कि आपश्री वोलती ही

मैं आपश्री से इतनी प्रभावित हूँ कि यद्यपि मैं सासारिक जीवन मे रह रही हूँ लेकिन प्रतिक्षण आपश्री की निराली छवि आँखो के सामने छायी रहती है और घर के कार्य करती हुई भी ध्यान आपश्री की ओर चला जाना है। मैंने अपने जीवन मे ऐसी शान्त सरल छवि कभी किसी की नही देखी। आप युग-युग तक जैन शासन की प्रभावना करती रहे। ☐

☐ कमलेश भडारी, जयपुर

मुझे जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि पू प्रवर्तिनी गुरुवर्य्या श्री सज्जनश्री जी म० सा० के त्याग-तप-सयम का शालीन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है?

वैसे तो उनका जीवन ही त्याग-तप-सयम से परिपूर्ण है फिर भी लिखित शब्दो के माध्यम से उनके गुणो को एक सूत्र मे बाँधने का जो निर्णय लूणिया परिवार ने लिया है वे वहुत ही भाग्यशाली है।

मैंने गुरुवर्य्या श्री को बहुत ही निकटता से देखा—देखने पर कभी ऐसा न पाया कि उनके जीवन मे प्रमाद है। सदा अप्रमत्तदशा मे रहती हुई स्वय स्वाध्याय करती है व अन्यो को करवाती है।

अध्ययन व अध्यापन मे सदा मग्न रहती हुई आत्म गुणो को विकसित करने मे अपने जीवन के हर क्षणो को जोडा। बाह्य व्यर्थ के कार्यों मे कभी भी अमूल्य क्षणो को नष्ट नही करती हैं।

गुरुदेव से प्रार्थना करती हूँ कि आपश्री के जीवन के आशिक गुण मेरे जीवन मे भी प्रविष्ट हो जिससे मेरा जीवन सफल वने व सत्पथ को प्राप्त कर ससार के जन्म-मरण के चक्र से छूटकर सिद्धत्व को प्राप्त करूँ। ☐

काव्यांजलियाँ

करते तेरा अभिनन्दन !

—गणी श्री मणिप्रभसागरजी म.

सज्जनश्री की काया के मिस, सज्जनता ने धारा अग ।
सज्जनता की उपासना चल, रही निरन्तर नित्य अभग ॥ १ ॥

महावीर प्रभु के शासन का, लिये हुए शुभ वेश धवल ।
परिणामो की परम धवलिमा, पल-पल बना रही उज्ज्वल ॥ २ ॥

शम-दम सयम सत्य अहिसा, तत्त्व साधना के कर स्थिर ।
तत्पर बनी साधिका सज्जन, पूर्ण समर्पित कर निज सिर ॥ ३ ॥

उजडे उखडे झाड मूल जड, पडे पान फल-फूल कही ।
बीज सुरक्षित रह जाने पर, मानी जाये भूल नही ॥ ४ ॥

बाह्याभ्यन्तर का जो अन्तर, यही कषाय यही बन्धन ।
सयम अनल अनिल हो समता, अन्तर बन जाये ईंधन ॥ ५ ॥

कथन सरल अति कठिन आचरण, धन्य वही जो करे, तरे ।
मर मिटने की हिम्मत वाले, प्रलयकाल से नही डरे ॥ ६ ॥

साध्वी सज्जनश्री का करते, सज्जन जन मन अभिनदन ।
सज्जनता के श्री चरणो मे, त्रिभुवन का शत-शत वदन ॥ ७ ॥

सत्कृत सम्मानित स्तुत नित हित, परहित निरता विरता नित्य ।
सज्जनश्री की सज्जनता से, रहे प्रकाशित सत् साहित्य ॥ ८ ॥

प्रवर्तिनी प्रवरा आर्याश्री, सहृदया सरलात्मा शुचितम ।
सौम्याकृति अति प्रतिभावाली, साध रही शम दम सयम ॥ ९ ॥

तेरा मन नही यहाँ पर, अस्थिरता मे स्थिर आत्मा ।
झाक रही आत्मा आत्मा मे, मिल जाये गर परमात्मा ॥१०॥

'मणिप्रभ' करता सज्जनश्री का, अभिनदन स्वीकारा जाय ।
सबसे शोभित आप, आपसे, शोभित है सारा समुदाय ॥११॥

हे दिव्य ज्योति ! हे ज्ञान ज्योति !

—शशिकर 'खटका' राजस्थानी

हे ! दिव्य ज्योति, हे ज्ञान ज्योति, हे आगम ज्योति वन्दन है।
हे ! सरल स्वभावी पूज्य प्रवर्तिनी, अभिनन्दन है अभिनदन है ।।

जन्म लूनिया कुल मे लेकर तुमने उसे दीपाया।
मेहताव देवी की कुक्षी को उज्ज्वल यहाँ वनाया।
नगर गुलाबी गुलावचन्दजी थे सब ही के प्यारे।
श्रीमती मेहताव देवी सग द्वादश व्रत थे धारे।
उनके सग सग तुमने जाना जग मे बस क्रन्दन है।
हे ! सरल स्वभावी पूज्य प्रवर्तनी अभिनन्दन है अभिनन्दन है।

ज्ञानश्रीजी महाराज के चरण शरण तुम आई।
कोई नही किसी का जग मे सुनी वात मन भाई।
छोड सभी एक दिन जायेगे बात मर्म की जानी।
कर्म काटना होगा जग मे बात धर्म की मानी।
सुनकर शिक्षा गुरुणी जी की मन मे हुआ स्पन्दन है।
हे ! सरल स्वभावी पूज्य प्रवर्तिनी अभिनन्दन है अभिनन्दन है ।।

आषाढ शुक्ला दूज सवत् निन्यान्वे का आया।
मणिसागरजी की निश्रा मे वैराग्य वेश अपनाया।
आचार्य देव हरिसागरजी से वृहद् दीक्षा ले ली।
त्याग दिया ससार आपने जीवन बनी पहेली।
त्याग मयी जीवन ही तुमको लगा यहाँ वन नन्दन है।
हे ! सरल स्वभावी पूज्य प्रवर्तनी अभिनन्दन है अभिनन्दन है ।।

श्री सज्जनश्रीजी महाराज ने तन को बहुत तपाया।
तेले अठाई मास खमण कर जीवन सफल बनाया।
रचना का ससार शशिकर हर पल गाथा कहता।
स्तवन रचना का स्रोत आपके मन मे हर पल वहता।
आप बोलते तो जग का जग जाता था मन है।
हे ! सरल स्वभावी पूज्य प्रवर्तिनी अभिनन्दन है अभिनन्दन है ।।

अभिनन्दन

—श्रावक 'श्री छगन'

ओ! धर्म प्राण! ओ तप्त त्राण! गुण रत्न खाण अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भाँण ओ शात प्राण, वैराग्य खाण शत वन्दन है॥

तुम आगम ज्योति उजागर हो।
ज्योतिर्मय गरिमा गागर हो।
कवितव्य हृदय रस सागर हो॥

ओ! ज्ञानवान चारित्रवान, दर्शननिधान अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भाण, ओ शात प्राण, वैराग्य खाण शत वन्दन है॥

विनयी हो सौम्य स्वभाव मयी।
मधुरिम वाणी अभिमान नही।
परदुखकातर वात्सल्यमयी॥

ओ! नीतिवान ओ रीतिवान, ओ कीर्तिवान अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भाण, ओ शात प्राण वैराग्य खाण शत वन्दन है॥

है विकथा का लवलेश नही।
स्व-श्लाघा मन अवशेष नही।
रति अविरति कुछ शेष नही।
अवमात् मान मन क्लेश नही॥

ओ! त्यागवान, विरागवान, अनुरागवान अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भांण ओ शांत प्राण वैराग्य खाण शत वन्दन है॥

हो प्रोढा पर गतिशीला हो।
स्वाध्याय ध्यान लवलीना हो।
तन रुग्ण आत्मबलशीला हो।

ओ! धैर्यवान ओ शौर्यवान, गाम्भीर्यवान अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भाण ओ शात प्राण वैराग्य खाण शत वन्दन है॥

वन्दन है बारम्बार तुम्हे।
शत आयु हो अभिलाष हमे।
सज्जन हो सज्जन चरणो मे।
"छगन" शीश पुनि-पुनि नमे॥

ओ! "खरतर" की जागृत ज्योति बार-बार अभिनन्दन है।
ओ! दिप्त भाण, और शात प्राण, वैराग्य खाण शत वन्दन है॥

सबका नम्र प्रणाम

—श्री मोहन सोनी,
(दानीगेट, उज्जैन)

जिनके तप से सुवह सुहानी, और सलोनी शाम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को, सवका नम्र प्रणाम।

सवत् उन्नीस सौ पैसठ, वैशाख पूर्णिमा आई,
जयपुर की धरती से रवि की, प्रखर किरन टकराई।
श्री गुलाव की फुलवारी मे महकी गध सुहानी,
किसे पता था लिखी जायेगी, तप की नई कहानी।

है कृतज्ञ हर जैन, आपने पाया मन निष्काम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को, सवका नम्र प्रणाम।

श्री ज्ञानश्रीजी की शिष्या का दर्शन हितकारी,
सब उपाधियाँ मिली आपसे, धन्य हो गई सारी।
आठ दशक के तपश्चर्य की आभा चमक रही है,
जितना किया लोकहित उसकी महिमा महक रही है।

किये आपके दर्शन हमने मिला पुण्य परिणाम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को, मबका नम्र प्रणाम।

सन् बयासी मे प्रवर्तिनी पद ने शोभा पाई,
त्याग तपस्या सयम देखा धन्य हुई पुरवाई।
तीर्थं तीर्थं मे जाकर मन से दूर भगाई माया,
वीर प्रभु के विमल स्वरो को जन जन तक पहुँचाया।

जहाँ आपके चरण पडे हैं धन्य हुआ वह ग्राम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को, सबका नम्र प्रणाम।

तप का अभिनन्दन कर, हमने गौरव प्राप्त किया है,
किसी पुण्य के फल से ही, अनुभव पर्याप्त किया है।
मन के भावो को शब्दो मे, लाये अर्पित करने,
युगो युगो तक मिले आपके शुभाशीष के झरने।

दरस आपका इन आँखो मे बना रहे अविराम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को सबका नम्र प्रणाम।

हमे शक्ति दें आप कि जीवन भक्तिभाव मे बीते,
हृदय सभी के, सत्य अहिंसा से न कभी हो रीते।
जो भटके हैं उन्हे ज्ञान की ज्योति राह दिखलाये,
ध्यान हमारा दुराचरण मे कभी अटक ना पाये।

जिधर आपकी दृष्टि जाय, हो जाये तीरथ धाम,
प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री को सबका नम्र प्रणाम।

सज्जनश्रियमहं वहुशोऽभिनन्दे

—मुनिश्री ललितप्रभसागरजी

यस्या स्वभावमतुल सरल गम्भीर, निर्धूतकल्मपमनिन्द्यमचिन्त्यरूपम् ।
सर्वेऽपि साधुपुरुपा सतत वदन्ति, ता सज्जनश्रियमहं वहुशोऽभिनन्दे ॥१॥

या स्तूयते सकलशास्त्र-विचार वोधात्, साध्वीजनै श्रमण-श्रावक सर्वसघै ।
सम्मानिता समभवच्च गुणैरुदारै, ता सज्जनश्रियमह वहुशोऽभिनन्दे ॥२॥

यस्या मुखाव्जममल परिदर्शनीय, कान्त नितान्तमनिश सुविकासमेति ।
या ज्योतिरागमनिधे नितरा विभाति, ता सज्जनश्रियमह वहुशोऽभिनन्दे ॥३॥

या वीतरागरुचिरास्तसमस्तदोपा, नारीजगत्सु महनीयतमा विभाति ।
या विद्यया च वयसा च समुन्नतास्ति, ता सज्जनश्रियमह वहुशोऽभिनन्दे ॥४॥

शुभ्रावदातरुचिरेण गुणेन यस्या, लोकत्रयेऽपि गरिमा परिवर्धतेऽद्य ।
श्री वर्द्धमानकथितस्य मतस्य नून, ता सज्जनश्रियमह वहुशोऽभिनन्दे ॥५॥

जयतु जयतु नित्य, ज्ञान विज्ञान सारा, शुभगुणगणभारा, धर्मकर्माक्षितारा ।
ललितवरविचारा, सर्वशास्त्राधिकारा, विगतवहुविकारा, सज्जनश्रीरुदारा ॥६॥

पद्य पुष्पम् —पं० ब्रह्मदत्त शर्मा फलोदी

सुरम्ये धन्वे वै सिधुपुरीनवासैरपचिता,
सुमन्ये मान्येय जिनवरकथावाचकवरा,
सुगण्या धर्मज्ञे नयपथसुगन्त्रीवुधवुधा,
सता सल्लोकश्री जंयजयनिनादैर्विजयते ॥१॥

जिनेजन्य ज्ञान वितरति च नित्य सुकृतिने,
कवैवर्यै वर्या मधुमधुवचोभि प्रियकरा,
जिनेमग्ना साध्वी गुरुजन मुखैर्मानितपदा,
सता सल्लोकश्री जंयजय निनादैर्विजयते ॥२॥

सुशिष्या मर्मज्ञा निगमनिपुणा सत्कविवरा,
दृढा वीरे भक्ति करुणहृदया दीनसुखदा,
शुभे जैने शास्त्रे तव गुणगणज्ञा वहुजना
सता सल्लोकश्री जंयजय निनादैर्विजयते ॥३॥

वरेण्या शास्त्रज्ञे जिनगुणगणज्ञा शुभमना,
सुशीला दैवज्ञा प्रथितलटियाले सिधुपुरे ।
चिरायुर्जीव्यात्सा शुभशुभ गिरा दत्त वचनम्,
सता सल्लोकश्री जंयजय निनादैर्विजयते ॥४॥

गुरुपरम्परा प्रशस्तिः

—श्री भंवरलाल नाहटा, (कलकत्ता)

श्री जिनदत्त गुरु नत्वा सूरेश्च कुशल प्रभो ।
सुविहितस्य मार्गस्य लिख्यतेऽय प्रशस्तिका ॥ १ ॥

गच्छे खरतरे स्वच्छे क्षमाकल्याणपाठको ।
शुद्ध साधु क्रियाधारी विद्वज्जैनशिरोमणि ॥ २ ॥

श्रमणार्या सुसघोऽभूत् परम्परा सुविस्तृता ।
तपस्वी क्रियापात्राश्च गणाधीश परम्परा ॥ ३ ॥

सूरिपदप्राप्तो येनऽजीमगजपुरेवरे ।
श्री हरिसागराचार्यं जैनधर्मप्रभावक ॥ ४ ॥

पट्टोद्धारकस्सद्वक्ता सूरयानन्दसागर ।
वीरपुत्राभिधानेन ख्यातिमाप्त सुभारते ॥ ५ ॥

सुमति सिन्धूपाध्याय पट्टे श्री मणिसागर ।
सूरि पद प्राप्त येन शास्त्रवादि शिरोमणि ॥ ६ ॥

मत्काव्य कला प्रतिभा-धारी कवीन्द्रसूरय ।
रचितानि यैश्च सत्पूजा स्तवकाव्यान्यनेकश ॥ ७ ॥

श्री हेमेन्द्रगणाधीश-तत्पट्टोदयसागर ।
द्वितीयोऽनुयोगाचार्य - कान्त्यब्धिसुप्रभावक ॥ ८ ॥

सघयात्रा सुसस्थान-सूपधानाद्यनेकश ।
प्रतिष्ठा जिनबिम्बादि कारितानि महोत्सवै ॥ ९ ॥

समायोजिते सघेन जयपुरे हि सदुत्सवै ।
आषाढ षष्ठी दिवसे सूरिपदो द्वौ सद्गुरौ ॥१०॥

स्वनामधन्य प्रतापीश्च सन्मुनि मोहनलालजित् ।
जिनयश सूरिपट्टे जिनर्द्धिरत्नसूरय ॥११॥

लब्धि-केशर-बुद्धिञ्च पाठकपन्यासो गणी ।
जयानन्द क्रियापात्र प्रवचने वाचस्पति ॥१२॥

अत्याग्रहेनुपाध्याय सघेनालकृता पदे ।
चिर नन्दन्तु वर्द्धन्तु श्रमणसघो च भूतले ॥१३॥

आगमज्ञा सद्विदुषी आर्याश्री सज्जनाभिधा ।
प्रवर्तिनी पदारूढा कवयित्री सल्लेखिका ॥१४॥

भक्त्या भँवरलालेन विरचिता प्रशस्तिका ।
शासनोन्नतिं कुर्वन्तु दीर्घायुषि गुरुत्तमा ॥१५॥

अभिनन्दन स्वीकारो

—सुदीप एवं गौरव लूनिया

अभिनन्दन है बुआ दादीजी का, जिनका सज्जनश्री है नाम ।
सुदीप-गौरव पौत्र आपके, कोटि-कोटि करते प्रणाम ॥

धर्म-ज्ञान सयम-नियम का, पाठ आपने हमे पढाया ।
बातो ही बातो मे चौबीस तीर्थंकरो का नाम सिखाया ॥

कितना अच्छा लगता है जब, लोग बताते है हमको ।
आप ज्ञान की अतुल राशि हैं, ज्ञान बाँटती है सबको ॥

आप विदुषी है—प्रवर्तिनी मा ऐसा कहती है ।
लेकिन हमको आप सुवाश्री, केवल "ममतामयी" लगती है ॥

कोटि-कोटि वन्दन चरणो मे, करते हैं शतवार नमन ।
धन्य हुए हम आज मनाकर, जन्म दिवस पर अभिनन्दन ॥

शत शत प्रणतियाँ

—साध्वी श्री शशिप्रभाश्रीजी

श्रद्धा भरी शत-शत प्रणतियाँ, पदकंजो में है हमारी।
श्रमणीगण मे अग्रणी है, अप्रतिम प्रतिभा के धारी॥
धन्य राजस्थान की अवनी, धन्य-धन्य है आपकी जननी।
धन वैशाख पूर्णिमा रजनी, जन्म हुआ था आनन्दकारी'' ॥

किया धन्य तारुण्य ले दीक्षा, सम्यगदर्शन ज्ञान सुशिक्षा।
हम भी मागे ज्ञान की भिक्षा, दे दो हमको हे दातारी''॥
हिन्दी गुर्जर प्राकृत भारती, राजस्थानी सस्कृत विचारती।
क्षण-क्षण तत्वस्वरूप विचारती, सशय सबके दूर निवारी '॥

विनय विवेक साकार बने है, जिनके वचन भी स्नेहसने है।
सन्तसती देखे ही घने है, तव रीति है सबसे न्यारी ॥
जब देखो वाचन मे निरत है, अथवा अध्यापन में रत है।
विकथा से तो सदा विरत है, कहते है यो सब नरनारी'''' ॥

काव्यकलामय कृतियाँ ऐसी, सुनते लगती अमृत जैसी।
होती जग मे विरली वैसी, पण्डितजन कहते सुविचारी'''॥
आगम ज्योति कहते गुरुजन, करती गद्यपद्य का सर्जन।
अमर रहे यशोनाम से सज्जन, जब तक "शशि" सूरज सचारी'''' ॥

अभिनन्दन स्वीकारो

—साध्वी प्रियदर्शनाश्री

अभिनन्दन स्वीकारो भगवती तुम दर्शन अति सुखकारो॥ (टेर)॥
भाव सुमन श्रद्धाञ्जलि भरकर, अर्पण करने आई दर पर, कर कृपा अवधारो॥१॥
क्रोध कषाय मान मद त्यागी, आत्मज्ञान की बन अनुरागी, सम्यग्दर्शन धारो॥२॥
आगमज्ञान की अद्भुत ज्ञाता, ग्रन्थ अनेको की निर्माता, बहुमुखी प्रतिमा धारो॥३॥
उदार हृदया सरल सुप्रज्ञा, विध-विध भाषा की सुविज्ञा, चमको ज्यू ध्रुव तारो॥४॥
ज्ञान ज्योति मन मदिर भर दो, आत्मभूमि अति निर्मल करदो, मिथ्या तिमिर निवारो॥५॥
जनकल्याणी! विश्वविख्याता, करुणामयी! श्रुतज्ञान प्रदाता, गुणगरिमा भण्डारो॥६॥
"प्रियदर्शना" अभिनन्दन करती, कोटि-कोटि अभिवदन करती, प्राण जीवन आधारो॥७॥

अज्जा सज्जणसिरी अहिणंदणं

—डा. उदयचन्द जैन
(उदयपुर)

णच्चा उसह देव, लोगालोग-पगासग-जुत्त ।
पणमामि सव्वतित्थ, कम्म-कलक विणासअहेउ ॥१॥

अह तेसिं णमो सया, ससार-जलहि-तारण-समिद्धो ।
झाण-णाण-तवो रत्ता, सिरि-महावीर-जिणेसर ॥२॥

ते वे सव्वे मुणिवरा सयल वदणीया णिच्च ।
जिणचरणबु रत्ता मुत्ति-पह-गमणसीला य जे ॥३॥

जस्स परम-पसादेण, बुद्धि-णिच्च पवड्ढए सूरो विव ।
गोतम-गणहाडरिया-उवज्झाय-साहु-अज्ज-अज्जिया ॥४॥

चदणसम-सुरहीओ चदणा-गुण-गुणाण कया सया ।
वदे सज्जण-अज्ज भव्व-राजीव-दिवायरो व्व ॥५॥

कुल-परिचया—

सावग सग्गण्ण-वारह-वय-धारी-सगीतण्ण कवी वि ।
पिउ-सिरि-गुलाबचदो, लूणियाकुल-साहग-वरिट्ठो ॥६॥

सु-सावगा धम्मवई, महताब देवी माउसिरी ।
सा वि धम्मशीला, तत्तवेत्ता बारह-वय-धारिणी ॥७॥

मायाए वच्छल्ल, पिउ-पीई-भाऊ-सणेह-जुत्त ।
णयणाहिरामा सा तु, सज्जणसिरी सज्जणाण पिया वि ॥८॥

गुणसीला अईधीरा, तत्तजिण्णासु धम्मवई वि ।
ववहार-णाण जुत्ता, सक्कय-पाइय-भास-पवीणा ॥९॥

अगल-भासा-हिंदी, गुज्जर-रायट्ठाणी समाधेज्जा ।
णाणा-भासा भासी, सज्जण-सिरी-महासई सा ॥१०॥

वालत्तणे वि सया, पडिक्कमाइ-अहिरुइ-कया ।
महुर-भासा-भासिणी, धम्म-रहारूढ-वाहिणी सया ॥११॥

ताए पाणिग्गहण, जयपुर-सु-पसिद्ध गोलेच्छा-परिवारस्स ।
णहमलदीवणस्स तु, कल्लाण-मलेण सह जाया ॥१२॥

पइवज्जा—

विक्कम-सवय-णाव-णवसहस्स-एग-आपाढ-सुक्क बीए।
सिंहलग्ग-णीसाए सा जिण-पइवज्जा धरिया ॥१३॥

स-सत्तीए भत्तीइ, गुरुमणिसायाराइरिय-महपट्टु।
विहद-दिक्खा-सिक्ख च हरिसायर-समुह धरिया ॥१४॥

अज्झप्प-चितणीया, सा अज्जा सव्व-गारव-मंडिया।
वीरस्स परमभाव णिय-हियय-सम्मत्तजुत्त-कया ॥१५॥

रअ-रअति जत्थ पमत्ता हियएसु सुरीधरा।
होंति जस्स लोय-दूलया सुमणेसु मुणीवरा।
कित्ति सि परा जग-जणाण सया विहु सय-समया,
पव्वजइ जत्थ समुत्थरइ एस इह सज्जणसिरी ॥१६॥

चलल छीहत्तणेण पाविअ - धम्म - मग्ग,
विसमत्थमोहसायरे कुणेइ क ण भग्ग।
एअ तुह हिययरअ-गुण सुन्दरि-सत्थसार,
सोहा विणिज्जिअ-देहण पावइ अप्पसार ॥१७॥

ण मुणिज्जइ गिह-सुहाणि मलिइआ ण गणिज्जइभग्गओ,
परिजण सुणियरो ण य जाणिज्जइ गध-मालई वि हु विलग्गओ।
आयारियबर-दिणमणि तुह हिदयोदहि-सदेव-धावतिहि,
रयणत्तय-धम्म-सारणि विहहि-णारीहि हरिसिज्जति हि ॥१८॥

णक्खत्तेसु चदो, रम्म-णिम्मल-दीह-दाह-हरण जह।
तह सा अज्जा णिच्च, अज्जागणेसु मणोरमा जाया ॥१९॥

दिक्खा-सिक्खा-भाव, सुरम्म-साहण-रूव-धम्म धरइ।
ण तु पडि-खलण-कारण, ण तु जणाववाययेऊहि ॥२०॥

णाणा-भास महुर-भसग दसणण्णाय-कव्व,
कोसागम सरस-एसग धारिउ धम्म-सुत्त।
णाणा-सत्थ णव-णव-सु-कव्व सुगुच्छ सुगध,
सारा-सार णिय-सुहियय देइ सु-पहि-अज्जा ॥२१॥

वर रम्म झाण सयल-गुणवति-बुहगणे,
वर सिक्खा-भत्ति हिय-गहणसज्झे णिवसिआ।
वर कम्माण खय-करणत्थ वि रआ,
सु-सजाय पुण्ण खणणहेउ-पेम्म पगलिया ॥२२॥

कम्मं कलक-दलण रयण धरेई,
सणाण - दसण - चरित्त - तवोधणेण।
झाण पवड्ढण - स - भाव - ममत्ति - मुरुं,
सा सज्जणासिरि - सु - सिद्ध - पहम्मि - रमेई ॥२३॥

गारव-गाहा—

णाण-झाण-परायणा, सत्थण्णा सतिभूइ-धम्मसालिणी ।
गुरुणी सिरि-णाणसिरी, उवजोगसिरी णाणासत्थ-पवीणा ॥२४॥

ण तु पुर भासा-णाई, लोगिग-भासा-पवीणा सा ।
जिणागम-तत्तवेया, पुण्ण-तलण्फासी अवि तु ,मा ॥२५॥

आगम-जोइ-उवाहिं आगम-सु-रस-सरिया कारणाहिं ।
अलकर पाविऊण, सलिल व्विव गहीरा जाया ॥२६॥

जिण-सासण णहम्मि सा जोइ-सील-तारगमिव पगासिआ ।
चदिम-कलकजुत्ता, सा तु णिस्कलकिया भूया ॥२७॥

परमविउसिं होऊण अज्जाए अग्गणी जाया अवि सा ।
कव्व-सरस धाराए सव्वाण जणाण अवि कया ॥२८॥

पगई-सत-सहावा, णिरहिमाणो विणयी सेवासीला ।
हिय मिग्र-महुर-भासिणी, दत्त-चित्त-अज्झयणसीला वि ॥२९॥

आहार-विहार जुत्ता, णाणा भायेसु पद-गमणसीला ।
सवत्थ जिण तत्ताण, परूवण सया अहि कया वि ॥३०॥

अण्णाणणासणट्ठ, वत्थु - तत्त - विवोहणट्ठ वि ।
धम्म-देसणट्ठ सा, णाण - दीव-पगास - सया कया ॥३१॥

साहण साहण चिट्ठे, तत्थ सज्झ ठेव भवेउ जीवाण ।
साहण भोतिगेय य, सज्झ-अज्झप्पगुण उच्चइ ॥३२॥

अप्पा सासय लोए, अप्पा खलु णाण दसण-चरण-जुत्तो ।
अप्पा विसय-विहीणो, अप्पा सव्व-गुण-गणाण वइहव तु ॥३३॥

कोहो वा माणो वा, माया वा लोहो-णेव साहगो ।
अप्पाण वल सेय किं अण्णेण पयोजण वि ॥३४॥

अप्पाणेव ह गुरू, अप्पाणमेव सुसरिं इह लोए ।
इह भावण भाविऊण य, गामाणुगाम-विहर सीला ॥३५॥

पवासावाससमए, गुरु गारवाइरिय-चरणपहे वि ।
णेव पजहिआ धम्म, वक्खाण - पीयूस-विसेसण ॥३५॥

णह सच्छण्णचदो पवड्ढए पुण्णिमा पेज्जत तु ।
सा सज्जण-महासई जिण-सासण-पहावणाइ रआ ॥३६॥

णिज्झरणी पीऊस-धारा—

गज्ज-पज्ज-साहणाइ सजमी-जीवण-सु-कया-रयणा वि ।
सुरम्मा गुण-गहीरा, सुहाकर-सम-अमिय-दत्ता वि ॥३७॥

पुण्ण-जीवण-जोइ वि, विलिहिऊण स-णाम धण्णा-कया ।
पुण्ण धम्म-धुरि अवि, समण-संघ-दहिवित्त-सुरक्खिया ॥३८॥

समण-सव्वस्स-पोत्थी, साहु-जीवणस्स पह-पदरिसिगा वि ।
आयार-वियारहिं, परिपुण्णा पइट्ठा वि गया ॥३९॥

तमोछण्ण लोए तु, समुवागए दिवायरे जायए ।
पगासग-अइणिम्मतो, जणमणो तम-रहिओ होई ॥४०॥

महावीरस्स चरिया, पाइय-णिवद्ध-कप्पसुत्तम्मि अत्थि ।
तस्स पाइयमुत्तस्स, रट्ठिय-भासा-हिंदी कया ॥४१॥

ण तु अईसरला-सु-गमा-सुरस-भावाणुजुत्तो अवि ।
जण-कल्लाण-णिमित्त, एसा अइ-सेट्ठ-कज्ज कया ।४२॥

वारह-पव्व-वाक्खाइ दव्वाणुजोगमय-अज्झप्प-पवोहो ।
वजभासा समलकिअ-पज्ज-कवित्त-सवइया-दव्व-सगहो ॥४३॥

चेइय-वदण-कुलक, गुरुदेव-जिणदत्तसूरिणा विरइय ।
वयारोव-विहि णामा, हिंदी-भासाए पगासिआ च ॥४४॥

वालाववोहणट्ठ चउवीस-जिण-थवण रट्ठ-भासाए ।
कुसुजलि - विणयजलि-गीयजलि-वीर-गुण - गुच्छआई ।४५॥

तव्व-पुण्ण-चरिया—

अज्झयण ण तु केवल, ण कव्व-धारा अवि वलिट्ठा ।
णाण-झाण-तव रत्ता, स-पर-कल्लाण-करणट्ठ वि ॥४६॥

तुह णिय-जीवण-झाणे, उवहाण-णव-पय-ओली धारिया ।
विस - थाणय - तव-ओली - कल्याणय-तव-मण रजिया ॥४७॥

पखवासा तव-कया वि, अप्प-धम्म-पवड्ढण णिच्च ।
पचमि-सोलिया-तवो, दस-पच्चक्खाण-तवो मया किया ॥४८॥

जया विहार-अज्जाइ, तया समागया जणा पभूया य ।
पाउ धम्म - मुहाण, मच्च - सील - सजम - हेऊहि ॥४९॥

अह उदयचदो अवि, अहिणदण-वदण करोमि कुणसि णिच्च ।
धम्मस्स वोहणट्ठ, सद्धावतो तत्त वियारी ॥५०॥

सत - सतवास जीवउ, सा सज्जणसिरी महासई ।
अस्सि-वास पेरत, का या जीवा ण धण्णा अत्थि ॥५१॥

●●

वन्दन करें हम........

—आर्या प्रियदर्शनाश्रीजी

प्र — प्रकर्ष भाव से मम सिर ऊपर
वर — वरदहस्त रख दो गुरुवर
ति — तिमिर हटाकर मम मानस का
नी — नीतियुक्त बने जीवन स्तर ... .. (१)
श्री — श्री चरणो का आश्रय पाकर
सज् — सद्ज्ञानामृत पान करू
ज — जन्म जरा मरणादि रूप इस
न — नश्वर तन का त्याग करू ... (२)
श्री — श्री को प्राप्त करू तब मेरी
म — मद मोह मान अरु क्रोध की मेना
हा — हारे, जीवन उज्ज्वल हो · · (३)
रा — राज मिले अपने घर का
ज — जब गुरु सज्जन मे श्रद्धा जागे
सा — सागर सम गम्भीर है जीवन
ह — हर क्षण निज का ध्यान धरें
व — बडे-बडे पडित भी जिनकी गुण गरिमा का
गान करे .... (४)
का — काम-क्रोध मद लोभ भगे तब
ह — हृत्तत्री के तार बजे
द — दमन किया इन्द्रिय राज पर
य — यम नियम के साज सजे ..... (५)
से — सेवागुण अतिउत्तम तुझ मे
अ — अमर अखड आनन्ददायी
भि — भिन्न स्वरूप जड चेतन का है
न — नही कभी सुख दु खदायी . . (६)
न् — न्याय काव्य कोप ज्योतिष की
द — दर्शन की भी ज्ञाता तुम
न — नम्र भाव से तव पद कज मे
वन्दन करें प्रियनेत्री हम। .. ...(७)

कोटि-कोटि अभिनन्दन !

—प्रवर्तक श्री महेन्द्रमुनि 'कमल'

अभिनदन, कोटि-कोटि अभिनदन
त्याग का, वैराग्य का
सयम का, शील का
सत्य के कृत्य का
अहिंसा के शातिदायी नृत्य का।
धर्म का, ध्यान का,
साधना की गौरव गरिमा मण्डित पहिचान का।
आप सज्जन हो और सरल हो
सघन मे विरल हो
मूर्ति करुणा की, स्नेह धारा हो वरुणा की।
मन से सौम्य हृदय से तरल हो
अहिंसा सयम, तप और
अनेकानेक सदगुणो से तरल हो।
धवल परिधान मे,
अपने ही ध्यान मे
युग को दिशा बोध देने
पक मे फँसी युग नाव खेने
अवस्था व्यवस्था की चिंता से दूर
बही जा रही हो, चली जा रही हो।
आपसे महावीर का, आनदातिरेक प्रदान करने
वाली वाणी
सुन-सुनकर भव्य, प्राणी
गद्गद् हो रहा है,
दुष्प्रवृत्तियाँ खो रहा है।
सप्रदायवाद से दूर,
समन्वय भाव से भरपूर
महाश्रमणी सज्जन
आदरपूर्वक अभिनदन
कोटि-कोटि अभिनदन।

'गुणाष्टक'

—चन्द्रप्रभाश्रीजी

भव्यजन तारिके, विमल गति धारिके,
चन्द्रिके जैन गगनागणस्य,
शुद्ध श्रद्धान्विते, सुदृढ सकल्पिके
प्रणति तव पाद युग्मे मदीयम् ....॥१॥
त्यक्त यौवनवये, जनक-पति वैभवे,
जैन मार्गानुगामिनी सुधन्या,
सरल सभापिणी विनय नय वासिनी
प्रणति तव पाद पद्मे मदीयम् ....॥२॥
दुरितमतिवारिणी सर्वहित काक्षिणी,
तारिणी भव्य भवविशद नौका,
कलुपिता नहि कदा वासित मुदा,
प्रणति तवपादपद्मे मदीयम् .... .॥३॥
आगम श्रुतरता तत्व चिंतनपरा,
सदा निष्ठित मति ज्ञान गगे,
खरतरगच्छ सु दिव्य मणिवत् सदा,
प्रणति तव पादपद्मे मदीयम् ....॥४॥
सज्जननाम तव कर्मरिपु रोधन,
बोधन शुद्ध भावानुभावम्,
मातृवात्सल्यरस सतत सचारिणी,
प्रणति तव पादपद्मे मदीयम् . ..... ॥५॥
जन शासन समुन्नति, सदा काक्षिणी,
राजते शशिप्रिया जयसुदिव्या,
तत्व सम्यग् शुभभाव दर्शनयुते,
प्रणति तव पादपद्मे मदीयम् . ...॥६॥
कामना सतत तव सगति मम इहि
गमनवेलाजति दारुणाहि
विप्रलम्भो तव शल्य तुल्य मम,
प्रणति तव पादपद्मे मदीयम् .. . ॥७॥
[illegible] कुमति विद्राविणी,
ज्ञान उपयोगमयि धर्मशीले ।
[illegible], चन्द्र गुण सस्तुता
प्रणति तव पादपद्मे मदीयम् ... .॥८॥

शत-शत वन्दन

—विजयकुमार जैन

शत-शत नमन कर रही मृत्तिका
शत-शत नमन कर रहा समीर
शत-शत नमन कर रहे आज घन
शत-शत नमन उदधि कर गभीर
शत-शत नमन कर रही यह क्षिति
करते है हम सब भी वन्दन
जन्म दिवस पावन वेला पर
शत-शत वन्दन शत अभिनन्दन ।

नारी के प्रति

—मनु

अपनो ने अवज्ञा
पीडा परायो ने
सस्कृति ने सकट
और विधि ने दी वेदना ।
नारी तू निर्मल है
कलियो सी कोमल है
स्नेह प्यार ममता का
निर्बाध निर्झर है ।
अम्बर से अन्तर मे
धरती का धीर लिये
कष्टो से क्रीडा कर
पीर कोटि पिये जा ।
जीवन की ज्वाला मे
तप-तप तपस्विनी
अविरल आलोकित कर
जगती मे ज्योति जला ।
स्मृतियां सजो सजो
विस्मृत कर व्यथा को
नियन्ता को निर्दय
जता को उठना दे ।

□
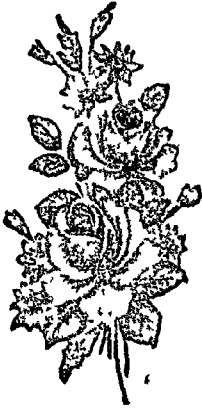
पुण्यश्लोका सज्जनश्रीजी

—श्रीमती राजकुमारी बेगानी

मणिरत्नो का व्यवसाय प्रधान
गुलाबी शहर जयपुर
सम्वत् १९६५ की
वैशाख शुक्ला पूर्णिमा
पूर्ण ज्योत्स्ना मे थिरकता चन्द्र
स्निग्ध चाँदनी मे नहायी-सी धरती
पुलकित उल्लसित वातावरण
ऐसे मे
श्रेष्ठीवर्य गुलाबचदजी लूणिया के
वशोद्यान मे
भार्या महताब देवी की कुक्षि डाल पर
एक सुवासित कली खिली
महक-महक गया
धरती का हरित आँचल।
पितृगृह की दुलार भरी प्यार भरी
मृदु मुदुल बयार के
मन्द सुगन्ध झोको मे विकसित होकर
दीवान नथमलजी जौहरी के
सुपौत्र के साथ
परिणय सूत्र मे बधी।
किन्तु मुक्त को बधन कैसा ?
प्रकाश को अधकार कैसा ?
हृदय रम न पाया
उस भोग विलास भरे
कृत्रिम वातावरण मे

अत
खुली श्वासो के लिए
सस्कारो के वातायन से
स्वार्थपरक जगत को झाँका।
खुल पडे स्मृति पटल
स्मरण हो आया
नव किसलयो का हरे पल्लवो का
सूखे पीत पर्णों मे बदलकर
झर जाना
उपेक्षित चरणो से कुचलकर
निष्ठुर हाथो से झाड़ बुहार कर
फेंक दिया जाना।
काँप उठी वैराग्य ज्योति
जल उठा ज्ञान दीप
प्रकाशित हो गया कमल वन
बदल गया जीवन दर्शन
उठे कदम उस ओर
जिस डगर पर चलकर
चूक जाता है मृत्यु का छोर
मिल जाता है चितन तत्व
शाश्वत अमरत्व।
शुद्ध सस्कार प्रेरित
इस भव्य आत्मा ने
पूज्य गुरुवर्या खरतरगच्छ प्रवर्तिनी
श्री ज्ञानश्रीजी महाराज के

श्री चरणों में पहुँच कर
धारण कर लिया
आर्या का सुवेष
नाम हुआ सज्जनश्री।
प्रारम्भ हुआ नव्य जीवन
सूत्रो का पारायण
आगमो का मन्थन
छट गया कषाय
निकल पडा अमृत।
जिसे पान कर
लुप्त हुयी विपमता
वस छा गयी जीवन मे
समता ही समता।
अब उदारमना साध्वीश्री
पद यात्राएँ करती हुयी
लगी लुटाने दोनो हाथो मे
स्व-स्वभाव भूली दिग्भ्रमित आत्माओ को
ज्ञान पीयूष सत्यामृत।
तप से स्वाध्याय से]
परिषहो को सहन कर
शुभ्र बना आचरण
सिंह लगन मे दीक्षित
सिंह-सा निर्भीक मन
दहाड उठा, गरज उठा
क्षुद्रता पर
निकृष्टता पर
प्रान्त-प्रान्त मे छायी
अज्ञान की जडता पर।
हे शास्त्र मर्मज्ञा साध्वी शिरोमणि, प्रवर्तिनी
तुम चलती रही, चलती रही
सयम के कठोर पथ पर
सतत अनवरत
लिखती रही स्वानुभव को
समझाती रही जिनवाणी को
गाती रही वीतरागियो की
पावन गाथाओ को।
और आज भी
अस्सी वर्ष की इस आयु मे भी
कहाँ अन्त है उस शौर्य का ?
व्याधियो से जूझती हुयी
देह आत्मा के भेद को समझती हुयी
जल रही हो
धर्म की मशाल-सी।
हे पुण्यश्लोका
तुम वेद की ऋचाओ-सी
मत्र के वीजाक्षरो-सी
सूत्रो की चूलिकाओ-सी
अहिंसा की प्रशान्त धुरी-सी
ससारविरक्ता
खरतरगच्छ की
प्रदाता कल्पवृक्ष-सी।
हे साधना सौम्या!
हम अज्ञानी]
क्या करेंगे तुम्हारा अभिवन्दन
जिस दुर्लभ सयम को
स्वय देव करें नमन
मैं तो बस
भावभीनी श्रद्धा से
तुम्हारे युग्म चरणो मे
करती कोटि-कोटि वन्दन।

●●

सूरज सरीखा व्यक्तित्व : श्रीसज्जनश्रीजी महाराज

—प्रो० डॉ संजीव प्रचंडिया 'सोमेन्द्र'

सूरज
धरती पर उतर आया है
और उसकी किरणें
बिखर गयी है घरो के बन्द/खुले आँगन पर
जो शुष्क और साफ है
किसी पहाडी चट्टान की तरह ।
सूरज
दरवाजे पर दस्तक देता है,
खिडकी से झाँकता है
और सीढियो से ऊपर चढ जाता है ।
मीलित/अर्द्ध मीलित आँखो को खोलता है
सोयो को जगाता हैं
हँसता है/हँसाता है
बच्चे हो या जवान या फिर बूढे
सभी के साथ खेलता है आँख मिचौनी
एकदम अनहोनी ।
सूरज कितना विचित्र है
साथ रहता है पर दूर है ।
मजबूर है ।
साधक है, तपस्वी है
पर, मान अभिमान से
नितात दूर है ।
मजबूर है ॥
आओ जरा अपने को देखें
सूरज की किरणो को गौर से पेखें
कूडा-करकट को झाडें-बुहारें
पूज्य को पूजें
गुणो का गान करे ॥
समरस का आव्हान करे ।
आओ सूरज से
नित नए भोर की किरणें मांगे
प्रमोद को छोडे
अज्ञता के घुप्प अँधेरे से
अपने मुख को मोडे
बुराइयो को हम न दुहराये
एक सकल्प ले—
स्वय जगे और
दूसरो को जगाएँ ॥

सज्जन नाम है तुमने पाया

—साध्वी सुरेखाश्री

असत् का छोडा तुमने साथ,
सत् के सग को बढाया हाथ ।
सत्-जन मे नाम गुजाया,
सज्जन नाम है तुमने पाया ॥
गुण सौरभ पाई पिता गुलाब से,
तत्व-ज्ञान मिला माता महताब से ।
सुसस्कारो का हुआ बीज वपन,
साकार हुआ उनका सपन ॥
ज्ञान गुरु से पाई गुण गरिमा,
उपयोग गुरु की बढाई महिमा ।
सत्य सेवा और स्वाध्याय से,
धो डाली कलुषित कालिमा ॥
पुण्य समुदाय की तुम लडी,
हाथ मे पुस्तक रहे हर घड़ी ।
जिन प्रवचन का करती पान,
जिन शासन की रखी शान ॥
कर-कमलो जब लेखनि होती,
स्वाति बूँद से निकले मोती ।
विरुद दिया आशु कवयित्री,
तत्वज्ञा हो तुम आगम ज्योति ॥
गुरु विचक्षण के पाट पर,
हुई तुम प्रवर्तिनी पदासीन ।
नभ पर रहे चाँद ओ सूरज,
रहो धरा पर तुम आसीन ॥

शत-शत अभिनन्दन

—कु० कविता डागा

चिन्तन, मनन, प्रेम की धारा,
उज्ज्वल ज्योति, निर्मल, गभीरा,
नभ की ज्योतिर्मयी तारिका,
तुम सफल कवयित्री, सफल लेखिका,
करते हम तुझको शत् वन्दन,
अभिनन्दन ! तेरा अभिनन्दन ॥

महताब कुवर की कोख सवारी
नाम "गुलाब" किया उजियारा,
आत्म-विश्वासी, आत्म - सयमी,
तेरी दृढता का हम सब करते है वन्दन
अभिनन्दन ! है अभिनन्दन ॥

राजस्थान, बगाल, गुजरात, मे,
फैलाया वीर प्रभु का सन्देश प्यारा,
उतर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश मे भी,
बही अहिंसा की शुचि धारा,
जैन धर्म फैलाने वाली,
वन्दन है शत् शत् वन्दन,
अभिनन्दन । है अभिनन्दन ।

शान्त स्वभावी, निर-अभिमानी,
सेवाभावी, मधुर है वाणी,
अध्यात्म की अप्रतिम प्रतिमा,
मेरा सब कुछ है चरणो मे अर्पण,
अभिनन्दन है अभिनन्दन ॥

"पुण्य जीवन ज्योति" लिखकर,
जैन-धर्म का किया प्रचार,
तपस्या मे रही विचक्षण,
तेले, वेले का नही पारावार,
जिन धर्म की प्रतिभा, सज्जन श्रीजी,
"कविता" करती है वन्दन,
अभिनन्दन है अभिनन्दन ।

तुमको मेरा प्रणाम

—सुधाकर श्रीवास्तव 'सुधाकर',
(नवलगढ राज०)

स्वाध्यायशील "सज्जन श्रीजी"
तुमको मेरा शत शत प्रणाम ।

उद्देश्य समुज्ज्वल निस्पृह ले,
रह रही कर्म मे नित्य व्यस्त,
बस एक चिरन्तन-चिन्तन है,
हो ध्वस्त-त्रस्त कटुता निरस्त ।

मुक्ति पथ जिधर, बढ गयी उधर,
खिच गई रेख उर पर ललाम ।

पथ बाधा तृण के तुल्य तोड,
तडिता सी तडप लिए आयी ।
साहस असीम भर कर उर मे,
बढ चली दिशा दस कतरायी ।

तुम स्वाभिमान की व्रती-वीर,
निश्छल, निर्मल, निष्काम-काम ।

"श्रीकल्पसूत्र" "समुदाय-सूत्र",
लिखकर प्रबोध अध्यात्म दिया ।
जिसका आस्वादन कर सबने,
निज-निज जीवन कृतकृत्य किया ।

व्यक्तित्व तुम्हारा निखर रहा,
बनकर जग मे आदित्य-धाम ।

स्वाध्यायशील "सज्जनश्रीजी",
तुमको मेरा शत्-शत् प्रणाम ।

अनुपम अद्वितीय

—अनुपमा लूनिया

अनुपम, अद्वितीय ॥
आगमज्ञा, विदुषीवर्या,
आर्यारत्न प्रवर्तिनीश्रीजी,
अनेकानेक उपाधि मण्डिता
किन्तु, कितनी सहज-सरल
ममतामयी मेरी "दादी-सा"।
सयम ही जीवन जिनका
ज्ञान ही जिनका पोषण,
तप और साधना की भूमि पर
किया जिन्होने
आत्म सुरभित पौध-रोपण
चालीस वर्षो से सिंचित,
सेवित यह पौध आज
कल्पवृक्ष बन गया है,
कि
स्नेह, वात्सल्य, समता
के सुधोपम फलो से लदा-फदा
अम्बर से धरती तक
झुक गया है।
इस शीतल छाया तले
मैं, तुम, हम सब
श्रात-क्लात ससारी
पाते हैं नयी चेतना,
स्फूर्ति प्रेरणा,
उत्तिष्ठ होने की-जाग्रत होने की,
अग्रसर होने की
उस पथ की ओर
जिधर जाने से
मुक्ति का "गुलाब" मिल सके,
यह जीवन सार्थक होकर
जीवन कहलाने योग्य
वन सके।

☐ मुक्तक

—साध्वी श्री मधुस्मिताश्रीजी

(सुशिष्या शासनज्योति मनोहरश्रीजी)

साहस नही चन्द्र पकडने का,
फिर भी मन वाचाल हुआ,
कलम हाथ मे लेकर मैंने,
गुरु चरणो मे नमन किया। ॥१॥

पिता गुलाव चद लूणिया ने
गुलाव पुष्प को जन्म दिया
महक फैलाकर पूरे विश्व मे
जन-जन का उद्धार किया। ॥२॥

यह जीवन क्षण भगुर है
इतना ही बस तुमने जाना
गुरु चरणो मे किया समर्पण
ज्ञान, उपयोग आत्मा को साधा ॥३॥

यहाँ न कोई अपना मेरा
इतना दृढकर तुमने माना
महावीर प्रभु शाश्वत है अपने
कुशल गुरु को मन मे धारा ॥४॥

रहूँ असग चाह नही कुछ
पाया सुख उसमे ही पाया
पर के दु:ख को अपना करके
निज सुख को क्षण मे त्यागा ॥५॥

आगम वेत्ता आशु कवयित्री
वक्तृत्व कला की आप हो धनी
श्रमण सर्वस्व प्रकाशन करके
सयम पथ की हुई प्रवर्तिनी ॥६॥

मैं मन्दज्ञानी अल्पज्ञ बालिका
क्या जानूँ गुरु गरिमा को
सागर सम गभीर गुणो की
अनन्त ज्ञान निधि महिमा को ॥७॥

☐

कोटि-कोटि वन्दन!

—पदमा लूनिया

आँखे हैं अनुभवी आपकी
दर्शाती है जो
समस्त जीवों के प्रति
स्नेह एव करुणा का छलकता सागर
परिपूर्ण है ये जीवन रस के
हर पहलू के सकलन से ।
जो जानती है
जीवन की वास्तविकता को
और सदैव देती हैं प्रेरणा
सतत् सत्य के मार्ग पर चलने की
इच्छा होती है हरपल मेरी
इन्हें नमन करने की ।

वाणी की परिपक्वता व मधुरता
देती है यह प्रवल सदेश
कि क्षण भर भी प्रमाद न करें
साथ ही देती है सकेत
कि जीवन के प्रत्येक क्षण मे
तत्पर रहे कुछ कर जाने को
न खो दें भूल से भी
उस अमूल्य क्षण को
जो शायद जीवन का
मार्ग ही बदल दे
मन करता है हरदम मेरा
इन्हे सुनते रहने का ।

सगति आपकी करती है
आध्यात्मिकता से ओत प्रोत
आज के भटकते युवक वर्ग के
विचलित हो रहे मानस को
करती है आगाह
कि बचा कर रखें स्वय को
भौतिकता के इस
विकट मोहपाश से
और कहती है कि जीवन को करें
सादगी मे अलकृत
मन करता है मेरा भी प्रतिपल
सदा रहूँ निकट आपके ।

तीक्ष्ण बुद्धि व मस्तिष्क आपका
भडार है असीमित ज्ञान का
झरते हैं ज्ञान के पुष्प
निरन्तर जिससे !
यदि समेट सके
एक दो पुष्प भी इनमे से तो
अवश्य सफल हो जाये
यह दुर्लभ मानव जीवन !
ईश्वर से है
एकमात्र कामना मेरी
करे ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि
मुझे भी प्रदान !

व्यक्तित्व आपका है मिसाल
साहस व त्यागमय
जीवन का
एक उगता सूरज है यह
अलौकिक आलोक है
जिसके चारो ओर ।
जिसे शत-शत
नमन करने को
मन करता
सम्पर्क मे आने वाले
हर इन्सान का ☐

आस्था के मोती

सुश्री प्रतिभा लूणिया, शेरगढ़

आर्य भूमि मे तुमने अवतार लिया
आर्य संस्कृति से आत्मा का सस्कार किया
आर्य अणगार बन हृदय मे तुमने
आर्य विचारो का साकार किया ॥१॥

जिन शासन की हो तुम शान
स्वीकार की तुमने महावीर की आन
ससार मे जब तक चाद सूरज हैं
तब तक हम गायेगे तेरे गुणगान ॥२॥

अध्ययन ही जिनके जीवन का प्रथम अग हैं
सेवा ही जिनके जीवन का दूसरा उपाग हैं
सरलता ही जिनके जीवन मे पद-पद पर मिलती है
ऐसी अद्भुत गुरुवर्या के पद्मो में मेरी प्रणति है ॥३॥

अध्ययन ही जिनके जीवन की सहजात वृत्ति है
अन्य को पढाना ही जिनकी प्रवृत्ति है
लेखन काव्य रचना मे रत रहती हुई
जिनका मुख्य लक्ष्य ससार निवृत्ति है ॥४॥

□

□ पूज्या गुरुवर्या सबसे आली है

□ प्रकाशचन्द निर्मलकुमार बाठिया

पूज्या गुरुवर्या सबसे आली है
वो शात सरल चित्त वाली है।
सूरत मोहनगारी है सबका मन हरने वाली है।
मीठी मधुरी वाणी है मानो अमृत की प्याली है।
४५ आगमज्ञान वाली है, प्रवर्तिनी पद की धारी है।
जीवन मे जिनके रत्नत्रय की आराधना निराली है।
जैनशासन की मजबूत डाली है,
चहुँ ओर हरियाली है।
ज्ञान मंडल मे खुशियाली है, मानो आई दीवाली है।

□

□ संतों की वाणी पर गजल

□ उमा श्रीवास्तव 'उमाश्री'

सतो की वाणी पर गर देश चला होता,
बेकसूर न मरते, सबका ही भला होता,
आतकवाद और उग्रवाद से असुर नही होते,
उपदेशो का अमृत गर एक बार चखा होता,
खडित न हो पाती विवेक और बुद्धि,
उपदेशो का चन्दन गर शीश मला होता,
नफरत की नागफनी नही उठाती सिर,
नेह के तुलसी चौरे पर गर दीप जला होता,
मणि से ज्यादा मूल्यवान है सतो के आशीष,
उनके पद चिह्नो पर गर पथिक चला होता।

□

□ 'आगमज्ञा' सज्जनश्री

□ प्यारा मूथा, अमरावती

चर अचर जग मे तेरा 'रत्नत्रयी' राज रहे,
छ दर्शन के मुकाबिल मे तू सरताज रहे।
'वीर' से देव जहाँ 'हरि' से गुरुराज रहे,
उस 'प्रवर्तिनी सज्जन' के ही सरताज रहे।
'ज्योति आगम' की जली, गैर दिये सब मद हुए,
इक यही रोशनी ससार मे जाबाज रहे।
बज रहा डका जिनागन मे तुम्हारे बाइस,
दस दिशाओ मे सदा गूजती आवाज रहे।
ज्ञान की आग मे तप-तप के बनी तुम कुन्दन,
पर लगे यश को, बुलद और भी परवाज रहे।
'ईश' दे उम्र तुम्हे और सलामत रक्खे,
सुज्ञ ससार को सयम पे तेरे नाज रहे।
पूज्य! स्वीकारो मेरा भाव भरा दिल का प्यार,
'प्यार' जो कल भी रहा, कल भी रहे, आज रहे।

□

हे ! सज्जनश्रीजी महाराज

— *पराक्रमसिह चौधरी* कोठियाँ (भीलवाड़ा)

जन जन के मन मे ज्ञान ज्योति का तुमने दीप जलाया ।
सत्य अहिंसा दया धर्म का निश दिन तुमने नीर पिलाया ।
मेरे मन में जो भी हैं वे सारे विकार आप हरो ।
हे सज्जनश्रीजी महाराज मुझ पर यह उपकार करो ।
नगर गुलावी जयपुर मे तुमने जन्म लिया था,
गुलाबचन्द मेहताव देवी का जीवन धन्य किया था,
गोलेछा कल्याणमलजी पति वन कर के आये,
पर मोक्ष मार्ग के वढते पाँव रोक नही पाये,
मन बोला सुख पाना है तो दीक्षा ग्रहण करो ।
हे ! सज्जनश्रीजी महाराज मुझ पर यह उपकार करो ।
आप विदुपी आगम ज्योति वनकर जग मे आई,
जिन शासन मे प्रवर्तिनी की पावन पदवी पाई
सेवाभावी निरभिमानी तुम स्वल्प मधुर भाषी हो,
शान्त प्रकृति, स्वाध्यायी सदा मोक्ष अभिलाषी हो,
पापी से नही सदा पाप, तुम कहती मत घृणा करो ।
हे सज्जनश्रीजी महाराज मुझ पर यह उपकार करो ।
प्राकृत दर्शन न्याय व्याकरण इनको तुमने जाना,
काव्य कोप जैनागम को पढकर के पहचाना,
प्रतिभा से सम्पन्न आप थी वनी मधुर व्याख्यानी,
'पुण्य जीवन ज्योति' लिखकर कहलाई महा ज्ञानी,
पथ भ्रमित हो रही मानवता इसमे ज्ञान भरो ।
हे ! सज्जनश्रीजी महाराज मुझ पर यह उपकार करो ।
तपोनिष्ठ मेवा भावी वनकर लोक सुधारा,
महावीर की शिक्षा से तुमने परलोक सवारा,
अभिनन्दन की वेला मे मन मेरा नित नाचे,
महावीर वन कर आगम ज्योति मेरे मन मे राचे,
अपनी ज्ञान ज्योति को मेरे मन मे आज भरो ।
हे ! सज्जनश्रीजी महाराज मुझ पर यह उपकार करो ।

भावधारा

—अजय कुमार गोलेछा, जयपुर

प्रकृति नटी ने साज सजाकर अनुपम रूप दिखाया है।
श्री महावीर की अनुकम्पा से यह पावन दिन आया है।
करते हैं तन मन से वन्दन, जननी ममतामयी आपका।
आराधन अपनी सस्कृति का, अभिनन्दन तव आत्मत्याग का।
शोभित है दिन रवि से और निशा रजनीकर से
पकज शोभित है तडाग से जग शोभित महाराज आप से।
पूर्णमासी के पूर्णचन्द्र की चन्द्रकला सी उदित हुई
शत वन्दन है अभिनन्दन है ज्ञान ध्यान की रश्मि छवि।
पच महाव्रत धारिका जप-तप सयम है साधना
कोटि-कोटि वन्दन स्वीकारो अन्तर्मन की यही कामना।
इन श्रद्धा विश्वास सूत्रो मे बँधे हुए, है हम आपके सहचर
गोलेछा परिवार मे बोये है आपने प्रकाश के बीज अमर।

पुष्पान्जली

–केसरीसिह चौरडिया, कलकत्ता

स्वनाम धन्य विद्वान विदुषी गुरुवर्या श्री सज्जनश्री जी
वन्दन कर मैं धन्य हुआ वयोवृद्ध श्री महासती जी का
अभिनन्दन करने को तेरा "खरतरगच्छ जैन" सघ का भाव जगा
धन्य यहाँ के श्रावक श्राविकाएँ जयपुर नगर का भाग्य जगा
गुणगाथा मै लिखूं विनय से तुम हो आगम ज्योति
जैन धर्म कुल अवतरण हुई, गुणवान प्रभावी "मोती"
जाज्वल्यमान चारित्र आपका चन्दा जैसा शीतल
शात स्वभावी महाप्रभावी पथ प्रदर्शिका भूतल
प्रवर्तिनी पद से शोभित है आज हमारी महोदया
उनके मन मे बसी हुई है प्राणी मात्र के लिये दया
उनको नहिं लालच कुछ भी था अपनी ख्याति का
फर्ज हमारा भी वनता है सेवा कुछ तो करने का
गुणगान करें जितना तेरा हृदय नही भरता है
दर्शन तेरा मिले नित्य दिल ऐसा करता रहता है
मजबूरी है गुरुवर्या हम दूर आपसे वसे हुए
फिर भी भवर-केसरी हृदय में, गुरुवर्या जी बसे हुए।

खण्ड ३

जैन परम्परा के गरिमामय
अतीत के प्रेरक और
शिक्षाप्रद मुह बोलते पृष्ठ

३. इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ

इतिहास- सागर की तरह महान और विशाल है । वर्तमान एक छोटी सी लहर की भांति अत्यन्त क्षुद्र ! तरल !

जीवन का सिर्फ एक क्षण, यह प्रथम क्षण वर्तमान है, जिसमे हम जी रहे है । वर्तमान दूसरे ही क्षण अतीत हो जाता है । अनागत सत्ता-हीन है । वर्तमान विद्यमान है, और अतीत इतिहास बनकर साक्षात् हमारी स्मृतियों में, धारणाओं में जीवन्त है, इसलिए वर्तमान से भी अधिक विराट, अधिक महान और अधिक अवलोकनीय है- इतिहास ।

हजारो, लाखों अनुभूतियो का महाकोश है, अतीत घटनावलियों की अनन्त तरगों का महासागर है इतिहास । इतिहास की आख जिसके पास है, वह सक्षम द्रष्टा है । इतिहास का शिक्षक जिसके साथ है, जीवन की परीक्षा मे हर चरण पर उत्तीर्ण होने की दृढ़ सभावना उसके साथ है । इतिहास कालचक्र की वह वर्तुलाकृति है, जिसमे समाये हैं-असख्य अनुभव, अनन्त शिक्षासूत्र । हमारा इतिहास उजली-धुधली, विरल-सरल रेखाओं का पुज है । भद्र-अभद्र घटनाओ का विराट ग्रथ है । हमे एक तटस्थ दृष्टि से देखना है, उसके चित्रो को, स्थितप्रज्ञ होकर सुनना है, उसकी पदचाप को और फिर उसी आधार पर वर्तमान क्षण का मूल्याकन करना है ।

प्रस्तुत खण्ड मे हम पढ़ सकेगे-इतिहास की उन महत्वपूर्ण प्रेरक घटनावलियो को, परिवर्तनो को, जिन्होंने जैनत्व को ज्योतिष्मान् बनाया है । मानवता को महिमा प्रदान की है और साधुता को हर सन्दर्भ मे श्रृगारित किया है । आदि युगपुरुष भगवान ऋषभदेव से चरम परम पुरुष भगवान महावीर तक की पुराण-पर्वतो के बीच बहती पुण्य सलिला का दर्शन-स्पर्शन करते हुए इतिहास रूप साक्ष्य पुरुष की आखों से देखा उत्तर कालीन इतिवृत्त खरतरगच्छ की उज्ज्वल गरिमा मडित गाथाओ का अकन प्रस्तुत है, एक सपूर्णता का स्पर्श लिये हुए..

—'सरस'

रग, विरगे सुगन्धित धूपवासित वस्त्र पहनते है। विना नाथ के बैलो के सदृश स्त्रियो के आगे गाते हैं। आर्यिकाओ द्वारा लाये गये पदार्थ खाते है और तरह-तरह के उपकरण रखते है। सचित्त, जल, फल, फूल आदि द्रव्य का उपभोग करते है। दिन मे दो-तीन बार भोजन करते और ताम्बूल, लवगादि भी खाते है। ये लोग मुहूर्त निकालते है, निमित्त बतलाते है तथा भभूत देते है। ज्यौनारो मे मिप्ट आहार प्राप्त करते है। आहार के लिए खुशामद करते है और पूछने पर भी सत्य धर्म नही वतलाते। स्वय भ्रष्ट होते हुए भी आलोचन-प्रायश्चित्त आदि करवाते हैं। स्नान करते, तेल लगाते, शृगार करते और इत्र फुलेल का उपयोग करते है। अपने हीनाचारी मृत गुरुओ की दाहभूमि पर स्तूप वनवाते हैं। स्त्रियो के समक्ष व्याख्यान देते हैं और स्त्रियाँ उनके गुणो के गीत गाती हैं। सारी रात सोते, क्रय-विक्रय करते और प्रवचन के बहाने व्यर्थ बकवाद मे समय नप्ट करते है। चेला बनाने के लिए छोटे-छोटे वच्चो को खरीदते, भोले लोगो को ठगते और जिन-प्रतिमाओ का क्रय-विक्रय करते है। उच्चाटन करते और वैद्यक, मन्त्र-यन्त्र, गडा, ताबीज आदि मे कुशल होते हे। ये सुविहित साधुओ के पास जाते हुए श्रावको को रोकते है। शाप देने का भय दिखाते है, परस्पर विरोध रखते है और चेलो के लिए आपस मे लड पडते है।"

चैत्यवास का यह चित्र आठवी शताब्दी का है। इसके पश्चात् तो चैत्यवासियो का आचार उत्तरोत्तर शिथिल होना ही गया और कालान्तर मे चैत्यालय भ्रष्टाचार के अड्डे वन गये तथा वे जैन-शासन के लिए अभिशाप रूप हो गये। ग्यारहवी शताब्दी के चैत्यवासियो की हीन स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए मुनि जिनविजयजी[1] लिखते हैं—

'इनके समय से श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय मे उन यतिजनो के समूह का प्रावल्य था जो अधिकतर चैत्यो अर्थात् जिन मन्दिरो मे निवास करते थे। ये यतिजन जैन देव मन्दिर, जो उस समय चैत्य के नाम से विशेष प्रसिद्ध थे, उन्ही मे अहर्निश रहते, भोजनादि करते, धर्मोपदेश देते, पठन-पाठनादि मे प्रवृत्त होते और सोते-बैठते। अर्थात् चैत्य ही उनका मठ या वासस्थान था और इसलिए वे चैत्यवासी के नाम से प्रसिद्ध हो रहे थे। इसके साथ उनके आचार-विचार भी बहुत से ऐसे शिथिल अथवा भिन्न प्रकार के थे जो जैन-शास्त्रो मे वर्णित निर्ग्रन्थ जैन-मुनि के आचारो से असगत दिखाई देते थे। वे एक तरह से मठपति थे।

'शास्त्रकार शान्त्याचार्य, महाकवि सूराचार्य, मन्त्रवादी वीराचार्य आदि प्रभावशाली, प्रतिष्ठा-सम्पन्न विद्वदग्रणी चैत्यवासी यतिजन उस जैन समाज के धर्माध्यक्षत्व का गौरव प्राप्त कर रहे थे। जैन समाज के अतिरिक्त आम जनता मे और राजदरबार मे भी चैत्यवासी यतिजनो का बहुत बडा प्रभाव था। जैन धर्मशास्त्रो के अतिरिक्त, ज्योतिष, वैद्यक और मन्त्र-तन्त्रादि शास्त्रो और उनके व्यावहारिक प्रयोगो के विपय मे भी ये जैन यतिगण बहुत विज्ञ और प्रमाणभूत माने जाते थे। धर्माचार्य के खास कार्यो और व्यवसायो के सिवाय ये व्यावहारिक विपयो मे भी वहुत कुछ योगदान किया करते थे। जैन गृहस्थो के वच्चो की व्यावहारिक शिक्षा का काम प्राय इन्ही यतिजनो के अधीन था और इनकी पाठशालाओ मे जैनेतर गणमान्य सेठ साहूकारो एव उच्चकोटि के राज-दरबारी पुरुपो के बच्चे भी बडी उत्सुकतापूर्वक शिक्षालाभ प्राप्त किया करते थे। इस प्रकार राजवर्ग और जनसमाज मे इन चैत्यवासी यतिजनो की

---

१. कथाकोश प्रस्तावना, पृ० ३।

वहुत कुछ प्रतिष्ठा जमी हुई थी और सब बातो मे इनकी धाक जमी हुई थी। पर, इनका यह सब व्यवहार जैन-शास्त्रो की दृष्टि से यतिमार्ग के सर्वथा विपरीत और हीनाचार का पोषक था।'

चैत्यवास की इस दुर्दशा को देखकर चैत्यवासी यतिजनो के मन में भी क्षोभ उत्पन्न होता था, परन्तु उसका प्रतीकार करने का साहस विरले ही कर पाते थे। ऐसे साहसी और सच्चे यतियो/सुविहितो मे श्री वर्धमानाचार्य का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने ८४ चैत्यस्थानो के अधिकार और वैभव को छोडकर सच्चे साधु-जीवन को बिताने का सकल्प लिया था। वे चैत्यवासी जीवन को छोडकर सुविहित अग्रणी उद्योतन सूरि के शिष्य वने और चैत्यवास का समूलोच्छेदन करने के लिए सक्रिय प्रयत्न किये। वे जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागरसूरि आदि अठारह साधुओ के साथ चैत्यवासियो के गढ अनहिलपुर पाटण आये। अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ झेलकर भी वहाँ के राजपुरोहित के माध्यम से वहाँ के तत्कालीन महाराजा दुर्लभराज के सम्पर्क मे आये। महाराज दुर्लभराज की अध्यक्षता मे ही पचासरा पार्श्वनाथ मन्दिर मे शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। चैत्यवासी प्रमुख आचार्य सूराचार्य आदि के साथ शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ आचार्य वर्धमान की उपस्थिति मे आचार्य जिनेश्वर ने किया और उन्होने प्रतिपादित किया कि वर्तमान चैत्यवासी आचार्यो यतियो का आचार पूर्णत शास्त्रविरुद्ध है। शास्त्र प्रमाणो के सम्मुख चत्य-वासी आचार्यगण निरुत्तर हो गये। आचार्य वर्धमान और जिनेश्वर आदि की चारित्रिक उत्कृष्टता, प्रखर तेजस्विता, स्पष्टवादिता आदि को देखकर महाराज दुर्लभराज प्रभावित हो गये और उन्होने कहा कि **'आपका मार्ग वास्तव मे खरतर है, पूर्णत सच्चा है।'** यह शास्त्रार्थ विक्रम सवत् १०६६ से १०७८ के मध्य हुआ था। आचार्य वर्धमान की उपस्थिति मे शास्त्रार्थ जिनेश्वरसूरि ने किया था, अत तभी से इस सुविहित परम्परा मे खरतर गच्छ का उद्भव हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य जिनेश्वर से उद्भूत आचार-विचार की इस परम्परा को, जहाँ इस परम्परा के अनुयायी लोग 'सुविहित' नाम प्रदान कर रहे थे, वहाँ उसके लिये एक-दूसरे नामकरण का भी विधान हो रहा था। यह तो स्पष्ट ही है कि तत्कालीन चैत्यवासियो के विपरीत यह एक उग्र, प्रखर और कट्टर सुधारवादी परम्परा थी, जो न केवल चैत्यवासियो से पृथक् थी वरन् उन वसतिवासियो के मार्ग से भी पृथक् थी जो तत्कालीन चैत्यवासी शिथिलता को चुपचाप सहन करते चले आ रहे थे। इसलिए स्वाभाविक था कि यह परम्परा अपनी उग्रता और कट्टरता की विशेपता को लेकर जनता मे प्रसिद्ध हो जाती, सम्भवत इसी आधार पर जनता ने इनको 'खरतर' कहना प्रारम्भ किया।

इतिहास मे ऐसे ही उदाहरण अन्यत्र मिलते है। ईसाई समाज मे 'प्यूरीटन' नाम की उत्पत्ति इसी प्रकार के उग्र सुधारवाद के वातावरण को लेकर हुई और अपने ही देश मे 'उदासी सम्प्रदाय' के नामकरण का आधार भी ऐसा ही प्रतीत होता है। इस प्रकार के नामो का जन्म स्वभावत उसी समय होता है, जव इन नामो की आधारभूत विशेपता सबसे अधिक आकर्षक, नवीन तथा विरोध-प्राप्त होती है। जिनेश्वराचार्य की विचारधारा के लिये इस प्रकार का युग स्पष्टत उस समय से प्रारम्भ होता है जव वह चैत्यवासियो के दुर्भेद्य गढ "अणहिलपुरपत्तन" मे अपने प्रभाव को दिखलाते है। खरतरगच्छीय परम्परा के अनुसार "खरतर' विरुद जिनेश्वराचार्य को तत्कालीन राजा दुर्लभराज द्वारा दिया गया था। इस बात को लेकर वहुत निराधार विवाद चला है, परन्तु इसमे विवाद के लिये कोई स्थान नही है। राजा ने यह विरुद दिया हो अथवा न दिया हो, आचार्य जिनेश्वर की विचारधारा की वह मूलभूत विशेपता जिसके कारण इस विरुद की कल्पना की जा सकती है, जनता के हृदय पर अवश्य ही अपना प्रभाव

जमा चुकी होगी और उसी के फलस्वरूप जनता ने उनका जो नामकरण किया, वह समाज के मस्तिष्क पर अमिट अक्षरो मे लिख गया। व्यक्ति चाहे वह चक्रवर्ती राजा ही क्यो न हो समाज-सागर का एक क्षुद्र बुद्-बुद् है, जो अपना क्षणिक अस्तित्व दिखाकर चला जाता है। परन्तु, समाज एक प्रवहमान सरिता है जो अक्षुण्ण रूप से अपनी युग-युग की सिद्धियो और स्मृतियो को समेटे चलता रहता है। इसलिए समाज के मानस-पटल पर आचार्य जिनेश्वर के सुधारवाद की खरतरता ने जो प्रभाव डाला उसकी स्थायी अभिव्यक्ति होना निश्चित था। चाहे कोई राजा उसको मानता या न मानता, चाहे कोई आचार्य या सम्प्रदाय उसको स्वीकार करता या नही करता। किसी विरुद के महत्व को बढाने के लिए राजमान्य होने की आवश्यकता नही। वसतिमार्ग को मान्यता किसने दी थी ? चैत्यवासी नाम को रखने वाला कौन था ? वर्तमान युग मे हवाई जहाज को चीलगाडी कहने वाला और मोटर सायकिल को फट-फटिया कहने वाला कौन था ? इसका उत्तर यही है कि समाज या जनता। अत इस प्रकार के नामकरणो के मूलकर्ता के विषय मे विवाद करना भाषा-विज्ञान के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करना है।

जब यह कहा गया कि दुर्लभराज की राजसभा मे "खरतरविरुद" की सृष्टि हुई, तो चाहे राजा ने अपने मुख से उस शब्द का उच्चारण किया हो या न किया हो, यह एक ऐसा सत्य कथन था जिससे कोई इनकार नही कर सकता, क्योकि जिस विशेषता ने जिनेश्वर की विचारधारा को "खरतर विरुद" दिया उसका सर्वप्रथम सफल और सार्थक विस्फोट यही हुआ था।

कुछ लोगो ने शका उठाई है कि दुर्लभराज की अध्यक्षता मे आचार्य जिनेश्वर और सूराचार्य का उक्त शास्त्रार्थ हुआ ही नही। इस प्रसग मे प्रभावकचरितकार का मौन रहना भी प्रमाण रूप मे रखा जा सकता है, परन्तु प्रथम तो प्रभावकचरितकार से पूर्ववर्ती सुमतिगणि और जिनपालोपाध्याय के प्रबन्धो मे तथा उनके भी पूर्ववर्ती आचार्य जिनवल्लभ के पट्टधर युगप्रधान जिनदत्तसूरि प्रणीत गणधर सार्धशतक, गुरुपारतन्त्र्य स्तोत्र आदि काव्यो मे इस घटना का स्पष्ट उल्लेख मिलता है और दूसरे प्रभावक-चरितकार के लिए इस विषय मे मौन धारण करने के लिए एक उपयुक्त कारण भी था।

प्रभावकचरित अनेक प्रभावक चरित्रो के साथ-साथ सूराचार्य के चरित्र का भी वर्णन करता है जो उक्त शास्त्रार्थ मे जिनेश्वराचार्य के साथ पराजित हुए बताए जाते है, इसलिये यदि सूराचार्य के गौरव को घटाने वाली किसी घटना का इसमे उल्लेख किया जाता तो वह ठीक नही होता। इसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि प्रभावकचरितकार बहुत ही उदारमना होते हुए भी स्वय एक चैत्यवासी आचार्य थे। अत सामाजिक शिष्टाचार की दृष्टि से भी उनके द्वारा चैत्यवासी प्रधानाचार्य की पराजय का उल्लेख किया जाना ठीक न होता। साथ ही मुनि जिनविजयजी के शब्दो मे "प्रभावकचरित के वर्णन से यह तो निश्चित ही ज्ञात होता है कि सूराचार्य उस समय चैत्यवासियो के एक बहुत प्रसिद्ध और प्रभाव-शील अग्रणी थे। ये पचासरा पार्श्वनाथ के चैत्य के मुख्य अधिष्ठाता थे। स्वभाव से बडे उदग्र और वाद-विवादप्रिय थे। अत उनका इस वाद-विवाद मे अग्ररूप से भाग लेना असभवनीय नही, परन्तु प्रासगिक ही मालूम देता है। शास्त्राधार की दृष्टि से यह तो निश्चित ही है कि जिनेश्वराचार्य का पक्ष सर्वथा सत्यमय था। अत उनके विपक्ष का उसमे निरुत्तर होना स्वाभाविक ही था। इसमे कोई सदेह नही कि राजसभा मे चैत्यवासी पक्ष निरुत्तरित होकर जिनेश्वर का पक्ष राज सन्मानित हुआ और इस प्रकार विपक्ष के नेता का मानभग होना अपरिहार्य बना। इसलिये सभव है कि प्रभावकचरितकार को सूराचार्य के इस मानभग का उनके चरित मे कोई उल्लेख करना अच्छा नही मालूम दिया हो और उन्होने

इस प्रसग को उक्त रूप में न आलेखित कर अपना मौन भाव ही प्रकट किया हो[1]। अत यह ध्रुव सत्य है कि आचार्य जिनेश्वर का सूराचार्य के साथ दुर्लभराज की राजसभा में शास्त्रार्थ हुआ और उसमे सूराचार्य पराजित हुए।

कुछ लोग अर्वाचीन पट्टावलियो[2] के अनुसार इस वाद-विवाद के समय के विषय मे भी निरर्थक वाद-विवाद को खडा करते है। यह चर्चा किस सवत् में हुई थी ? उसके सम्बन्ध मे युगप्रधान जिनदत्तसूरि, जिनपालोपाध्याय, सुमतिगणि, प्रभावकचरितकार आदि मौन हैं। इसका कारण भी यही है कि सब ही प्रबन्धकारो ने जनश्रुति, गीतार्थश्रुति के आधार से प्रबन्ध लिखे है और वे भी सब १०० और २५० वर्ष के मध्यकाल मे। वस्तुत समग्र लेखको ने सवत् के सम्बन्ध मे मौन धारण कर ऐतिह्यता की रक्षा की, अन्यथा सवत् के उल्लेख मे असावधानी होना सहज सभाव्य था। अत यह सहज सिद्ध है कि महाराज दुर्लभराज का राज्यकाल १०६६ से १०७८ तक का माना जाता है, उसी के मध्य मे यह घटना हुई है।

खरतरगच्छ की उत्पत्ति मूलत वर्धमानसूरि की अध्यक्षता मे हुई थी, अत इस खरतरगच्छ का सक्षिप्त परिचय आचार्य वर्धमानसूरि से ही प्रारम्भ किया जा रहा है।

(१) आचार्य वर्धमानसूरि

अभोहर देश मे जिनचन्द्र नाम के चैत्यवासी आचार्य निवास करते थे और वे चौरासी स्थानो के अधिपति थे। उन्ही के शिष्य वर्धमान थे। जिनचन्द्राचार्य ने उनको आचार्य पद भी प्रदान कर दिया था। आचार्य वर्द्धमान शास्त्रविरुद्ध चैत्यवासियो के आचार से अत्यन्त खिन्न रहते थे और अन्त मे गुरु-आज्ञापूर्वक परम्परा को त्यागकर दिल्ली आए और शास्त्र-सम्मत सयमी जीवन पालन करने वाले उद्योतनाचार्य के शिष्य बने। उद्योतनाचार्य ने भी उन्हे योग्य समझकर आचार्य पद से विभूषित किया। इन्ही के नेतृत्व मे आचार्य जिनेश्वर ने अणहिल पत्तन में शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त की। खरतरविरुद प्राप्त किया। आचार्य वर्द्धमान ने सूरिमन्त्र की भी विशिष्ट साधना की और यह मन्त्र उनके लिए सस्फुरित हो गया था। अर्वाचीन पट्टावलियो के अनुसार आबू पर्वत पर महामन्त्री विमलकारित "विमलवसही" की प्रतिष्ठा भी इन्ही आचार्य के करकमलो से हुई थी।

आचार्य वर्द्धमान भगवान महावीर की सौधर्मीय परम्परा मे अडतीसवे पाट पर कौटिकगण, चन्द्र कुल, वज्रशाखा एव खरतरविरुदधारक थे।

इनका शिष्य समुदाय भी विशाल था और वे स्वय शास्त्रो के प्रौढ विद्वान् थे। इनके द्वारा प्रणीत उपदेशपद टीका (रचना सम्वत् १०५५) उपदेशमाला बृहत्वृत्ति, उपमिति भवप्रपच कथा समुच्चय एव कुछ स्तोत्र आदि प्राप्त होते है।

इनका समय अनुमानत ग्यारहवी शताब्दी के प्रथम चरण से १०८० तक माना जा सकता है। इनका स्वर्गवास आबू पर्वत पर ही हुआ था। इनके द्वारा विक्रम सवत् १०४९ मे प्रतिष्ठित कटिग्राम की प्रतिमा प्राप्त है।

---

१ कथाकोष प्रस्ता० पृ० ४१

२ अर्वाचीन किन्ही पट्टावलियो मे स० १०८० का उल्लेख मिलता है तो किसी मे १०२४ का, जो श्रवण परम्परा का आधार रखता है। इस परम्परा मे भी ६००, ८०० वर्ष के अन्तर मे २-४ वर्ष का लेखन फरक रह जाय, यह स्वाभाविक है। इसे चर्चा का रूप देना निरर्थक ही है।

(२) जिनेश्वरसूरि

प्रभावकचरित के अनुसार ये मूलत मध्य देश (वर्तमान मे उत्तर प्रदेश का मध्य भाग) के निवासी थे। ये कृष्ण नामक ब्राह्मण के पुत्र थे, इनका नाम पहले श्रीधर था और इनके एक भाई था, जिसका नाम श्रीपति था। दोनो भाई बडे प्रतिभाशाली और मेधावी थे तथा वेद, वेदाग, इतिहास, पुराण, पट् दर्शनशास्त्र, स्मृतिशास्त्र आदि का इन दोनो ने विशेष अध्ययन किया था। विद्या पारगत होकर ये दोनो भाई धारा नगरी आये और वहाँ के जैन धर्मावलम्बी उदारमना सेठ लक्ष्मीपति के यहाँ आश्रय लिया। एकदा आचार्य वर्द्धमान विहार करते हुए धारा नगरी आये। सेठ लक्ष्मीपति ने इन दोनो भाइयो का साक्षात्कार वर्द्धमानाचार्य से करवाया। दोनो भाई आचार्य के तेज और तप से अत्यन्त प्रभावित हुए और आचार्य के पास दोनो भाइयो ने दीक्षा ग्रहण कर ली। श्रीधर जिनेश्वर वने और श्रीपति बुद्धिसागर। इन दोनो का प्रौढ वैदुष्य देखकर आचार्य वर्द्धमान ने इन दोनो को आचार्य पद प्रदान किया, तभी से ये दोनो जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागर सूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

अपने गुरु की मनोभिलाषा को पूर्ण करने हेतु अपने गुरु के साथ ही विचरण करते हुए अनहिलपुर पत्तन आये और अपने अगाध पाण्डित्य के कारण राजपुरोहित सोमेश्वर के यहाँ आश्रय लिया। चैत्यवासी आचार्यो को जव भनक पडी कि यहाँ सुविहित साधु आये है तो उन्होने इनके निष्कासन के लिए षड्यन्त्र-पूर्वक अनेक प्रयत्न किए किन्तु वे सव निष्फल हुए। अन्त मे महाराजा दुर्लभराज की अध्यक्षता मे इनका सूराचार्य आदि विद्वानो के साथ शास्त्रार्थ हुआ। चैत्यवासी आचार्य शास्त्र-प्रमाणो के समक्ष निरुत्तर हुए। महाराजा दुर्लभराज ने इन्हे खरतरविरुद दिया और इनके निवास-स्थान के लिए त्रिपुरुष प्रासाद नामक मुख्य शिव मन्दिर के पास ही कनहट्टी मे स्थान दिया। प्रभावकचरित के अनुसार तभी से वसतिवास की परम्परा प्रारम्भ हुई।[1]

इनके शास्त्रार्थ के बाद चैत्यवासियो का गढ ध्वस्त हो गया और वे राज सम्मानित होकर सर्वत्र नि सकोच होकर सुविहित मार्ग का प्रचार-प्रसार करने लगे।

इनकी बहन ने भी दीक्षा ग्रहण की थी, जिसका दीक्षा नाम कल्याणमति था। आचार्य वर्द्धमान-सूरि ने ही इन्हे श्रेष्ठ प्रवर्तिनी पद दिया था।

आचार्य जिनेश्वर सूरि का शिष्य समुदाय भी अत्यन्त विशाल था, जिनमे से प्रमुख-प्रमुख थे— जिनचन्द्र, अभयदेव, धनेश्वर, हरिभद्र, प्रसन्नचन्द्र, विमल, धर्मदेव, सहदेव, सुमति आदि। इनमे से जिन-चन्द्र, अभयदेव, धनेश्वर जिनका दूसरा नाम जिनभद्र था तथा हरिभद्र को आचार्य पद एव धर्मदेव, सुमति, विमल इन तीनो को उपाध्याय पद प्रदान किया था। धर्मदेव उपाध्याय और सहदेव गणि ये दोनो भाई थे। धर्मदेव उपाध्याय के शिष्य हरिसिंह जो भविष्य मे आचार्य बने और सहदेव गणि ने पण्डित सोमचन्द्र को दीक्षित किया था, जो भविष्य मे युगप्रधान जिनदत्त सूरि बने। सहदेवगणि के शिष्य अशोकचन्द्र थे, वे परवर्तीकाल मे आचार्य वने। सुमतिगणि के शिष्य गुणचन्द्रगणि हुए, जो वाद मे आचार्य वनने पर देवभद्राचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। आचार्य जिनेश्वर ने अपने पाट पर जिनचन्द्रसूरि को स्थापित किया।

---

१. प्रभावकचरित के अभयदेवसूरि चरित के अन्तर्गत जिनेश्वरसूरि का चरित।

आचार्य जिनेश्वर न केवल वाक्चातुर्य और शास्त्रचर्चा के ही आचार्य थे, अपितु लेखनी के भी प्रौढ आचार्य थे। आपने प्रमालक्ष स्वोपज्ञवृत्ति सहित, अष्टक प्रकरण टीका, [रचना सवत् १०८०] चैत्यवन्दनक [रचना स वत् १०९६], निर्वाण लीलावति कथा [रचना सवत् १०९२], कथा कोष प्रकरण स्वोपज्ञवृत्ति सहित [रचना सवत् ११०८], पचलिगी प्रकरण, पट् स्थान प्रकरण आदि दार्शनिक, सैद्धान्तिक एव कथा साहित्य की रचनाएँ की थी।

आचार्य जिनेश्वरसूरि का स्वर्गवास कव और कहाँ हुआ, निश्चित नही है, किन्तु आपकी सम्वत् ११०८ मे रचित कथाकोष स्वोपज्ञवृत्ति प्राप्त है, अत इसके वाद ही आपका स्वर्गवास हुआ होगा।

(३) जिनचन्द्रसूरि

आचार्य जिनेश्वर के पश्चात् उनके पट्ट पर जिनचन्द्रसूरि हुए। आपके सम्बन्ध मे कोई इतिवृत्त प्राप्त नही है। इसमे तो कोई सन्देह नही कि आप वहुश्रुतज्ञ-गीतार्थ थे। आपने अपने लघु गुरु-वन्धु गीतार्थ, विख्यात कीर्तियुक्त, अभयदेवसूरि की अभ्यर्थना से 'सवेगरगशाला' नामक प्राकृत ग्रन्थ की १०,०५० श्लोक वृहत् परिमाण मे सवत् ११२५ मे रचना पूर्ण की। यह ग्रन्थ मूल, गुजराती एव हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके है। अनुवादको ने गच्छ-कदाग्रह से इनको तपागच्छ का आचार्य लिखा है, जो नितान्त भ्रामक है, क्योकि इसकी रचना ११२५ मे हुई और तपागच्छ की उत्पत्ति १२८४ मे हुई। सवेगरगशाला के अतिरिक्त श्रावकविधि-दिनचर्या, धर्मोपदेश काव्य, क्षपकशिक्षा प्रकरण आदि छोटी-मोटी सात रचनाएँ प्राप्त है।

इनका स्वर्गवास कव हुआ, इस सम्वन्ध मे कोई सकेत प्राप्त नही है।

(४) अभयदेवसूरि

जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर गच्छनायक के रूप मे हमे आचार्य अभयदेवसूरि के दर्शन होते है। आपके प्रारम्भिक जीवन वृत्त के सम्वन्ध मे हमे केवल प्रभावकचरित मे ही किंचित् उल्लेख प्राप्त होते है। इसके अनुसार आचार्य जिनेश्वरसूरि सम्वत् १०८० के पश्चात् जावालिपुर [जालौर] से विहार करते हुए मालवा प्रदेश [मध्य भारत] की तत्कालीन प्रसिद्ध राजधानी धारानगरी पधारे।

इसी नगरी मे श्रेष्ठि महीधर रहते थे। धनदेवी इनकी पत्नी का नाम था और अभयकुमार इनका पुत्र था। आचार्य जिनेश्वर के प्रवचनो से प्रबुद्ध होकर अभयकुमार ने दीक्षा ग्रहण की और दीक्षा नाम इनका हुआ—अभयदेव मुनि। आचार्य जिनेश्वर ने आपकी योग्यता और प्रतिभा को देखकर आचार्य पद प्रदान किया और वे आचार्य अभयदेवसूरि के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। इनका सर्वप्रथम टीका ग्रन्थ ११२० मे रचित प्राप्त है। उसमे स्वय के लिए सूरि शब्द का प्रयोग किया है, अत यह निश्चित है कि ११२० से पूर्व ही ये आचार्य वन चुके थे।

श्वेताम्वर जैन साहित्य मे जो ग्यारह अग माने जाते है, उनमे से केवल आचाराग सूत्र और सूत्रकृताग सूत्र पर आचार्य शीलाक द्वारा रचित टीकाएँ प्राप्त थी। शेष नव अगो पर कोई विवेचन प्राप्त नही था। मूल पाठ भी लेखको की अशुद्ध परम्परा के कारण अशुद्धतर होते जा रहे थे। वाचना-भेदो की वहुलता मूल आगमो को कूट आगम सिद्ध कर रहे थे, जो कुछ वाचन-मनन की प्रणाली थी, वह कूट पाठो की वहुलता से नष्ट होती जा रही थी। ऐसी परिस्थिति देखकर अभयदेवसूरि ने अपनी समयज्ञता का परिचय दिया और अपनी वहुश्रुतज्ञता का उपयोग समाज के लिए हो, अत उन्होने शेष नव अगो

पर विवेचन लिखना प्रारम्भ किया। इस निर्माण कार्य हेतु वे प्राय कर ११२० के ११२८ तक अनहिलपुर पाटण मे रहे। नव अगो पर सम्यक् प्रकार से विवेचन लिखा। ११२४ मे धोलका रहे और वहाँ पचाशक पर टीका लिखी। इन टीकाओ का सशोधन सुविहित साधुओ से न कराकर उन्होने तत्कालीन चैत्यवासियो मे प्रमुख आचार्य द्रोणाचार्य से अनुरोध किया कि मेरी लिखी हुई टीकाओ का आप सशोधन कर दें। द्रोणाचार्य ने भी विशाल हृदय का परिचय दिया और प्रतिपक्षी का शिष्य न समझकर एक गीतार्थ का श्लाध्य, प्रशस्य और सर्वोत्तम कार्य समझकर अभयदेवरचित समग्र टीकाओ का सशोधन कर उस पर प्रामाणिकता की मोहर लगा दी।

टीकाओ की रचना करते समय अहर्निश जागरण और अत्युग्रतप के कारण आचार्य का शरीर-व्याधि से ग्रस्त हो गया। व्याधिग्रस्त अवस्था मे प्रवास करते हुए खम्भात पधारे और सेढी नदी के किनारे 'जयतिहुअणवर' नामक नवीन स्तोत्र के द्वारा भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति की, उसी समय भगवान् पार्श्वनाथ को मूर्ति भूमि से स्वयमेव प्रकट हुई और वही मूर्ति खम्भात मे नूतन मन्दिर बनवाकर प्रतिष्ठित की गई। तभी से यह स्थान स्तम्भनक पार्श्वनाथ तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है।

जिनपालोपाध्याय और सुमतिगणि इस घटना को नवागी टीकाओ की रचना के पूर्व मानते हैं, जबकि प्रभावकचरितकार टीका रचना के बाद मानते हैं। कुछ भी हो, यह निश्चित है कि स्तम्भनक पार्श्वनाथ तीर्थ की स्थापना आचार्य अभयदेवसूरि के द्वारा हुई थी।

आचार्य अभयदेवसूरि की गणना आप्त टीकाकारो मे की जाती है। ये परम गीतार्थ तो थे ही, अपितु प्रौढ व्याख्याता भी थे। इनके द्वारा निर्मित पचाशक टीका, षट्स्थान भाष्य, प्रज्ञापना तृतीय पद सग्रहणी, पच निर्ग्रन्थी प्रकरण, आराधना कुलक, आगम अष्टोत्तरी, नवपद प्रकरण भाष्य, सत्तरी भाष्य, बृहद् वन्दनक भाष्य, निगोद षट्त्रिंशिका, पुद्गल षट्त्रिंशिका एव कई स्तोत्र प्राप्त है जो आपके अगाध वैदुष्य को प्रकट करते है।

आप केवल जैन आगमो के ही उद्भट विद्वान् नही थे अपितु तर्कशास्त्र और न्यायशास्त्र के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् प्रसन्नचन्द्रसूरि, वर्द्धमान सूरि, हरिभद्र सूरि और देवभद्र सूरि ने आप ही के पास विद्याध्ययन किया था।

आपके प्रमुख शिष्य थे—वर्द्धमानसूरि, हरिश्चन्द्र सूरि और परमानन्द एव उपसम्पदा प्राप्त जिनवल्लभ गणि।

आचार्य अभयदेव का स्वर्गवास अनुमानत ११३९ के बाद ही हुआ होगा।

(५) जिनवल्लभसूरि

आचार्य अभयदेव सूरि के पट्ट पर जिनवल्लभसूरि हुए। स्वप्रणीत 'अष्टसप्ततिका' अपरनाम 'चित्रकूटीय-वीरचैत्य प्रशस्ति' के अनुसार वे कूर्चपुर गच्छीय चैत्यवासी आचार्य जिनेश्वराचार्य के शिष्य थे। ये मूलत आशिका (हाँसी) के निवासी थे। बाल्यावस्था मे ही इन्हे 'सर्पाकर्षणी और सर्पमोक्षणी दोनो विद्याएँ सिद्ध थी। अपने गुरु के पास रहकर इन्होने समस्त शास्त्रो का अध्ययन किया था। एक समय शास्त्रो का अध्ययन करते हुए इन्हे लगा कि हम लोगो का जीवन शास्त्रविहित नही है। शास्त्र-विहित मार्ग पर चलने से ही कल्याण हो सकता है।

जिनेश्वराचार्य ने अपने शिष्य जिनवल्लभ को सैद्धान्तिक आगम ग्रन्थो का अध्ययन करवाने के लिए सुविहिताग्रणी आचार्य अभयदेव के पास भेजा। आचार्य अभयदेव ने भी जिनवल्लभ को योग्य

समझकर उदारमना होकर एक चैत्यवासी यति को सहर्ष आगमो की वाचना दी। समस्त आगमो की वाचना प्राप्त कर जिनवल्लभ कृत-कृत्य हो गये। उन्ही के निकट रहते हुए इन्होने ज्योतिष शास्त्र का भी विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया। विद्याध्ययन के पश्चात् जिनवल्लभ वापस जाने लगे तो आचार्य अभयदेव ने कहा—"वत्स, सिद्धान्त के अनुसार जो साधुओ का आचार व्रत है, वह तुम सब समझ चुके, अत उसके अनुसार आचरण कर सको, वैसा ही प्रयत्न करना।"

जिनवल्लभ ने आचार्य के हार्दिक उद्‌गारो को [शिरोधार्य किया। वहाँ से चलकर प्रयाण करते हुए वे मरुकोट पहुँचे और वहाँ जिनालय मे विधि चैत्य के नियमानुसार श्लोक उत्कीर्ण करवाये।

अपने चैत्यवासी गुरु जिनेश्वराचार्य से मिले और उनकी अनुमति प्राप्त कर वे वापस अभयदेव-सूरि के पास पहुँचे और उनसे 'उपसम्पदा' ग्रहण की। उस समय इनके साथ इनके गुरुभ्राता जिनशेखर भी थे। आचार्य अभयदेव जिनवल्लभ को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए, किन्तु वे स्वय उन्हे अपने पट्ट पर आसीन न कर सके। उन्होने इस कार्य के लिए प्रसन्नचन्द्राचार्य को सकेत किया—"जब भी अवसर मिले इन्हे आचार्य पद प्रदान कर मेरा पट्टधर घोपित करना।" किन्तु, प्रसन्नचन्द्र भी समय पर इस कार्य को सम्पन्न न कर सके और उन्होने अपने शिष्य देवभद्राचार्य को इस कार्य के लिए सकेत किया।

जिनवल्लभगणि विहार करते हुए चित्रकूट (चित्तौड) आये। वहाँ उन्हे रहने को चण्डिका का मठ मिला। गणिजी ने चण्डिका को प्रतिबुद्ध किया। चितौड मे इनके तप, त्याग, निर्भीकता आदि गुणो से वहाँ इनका प्रभाव छा गया। इनके अनेको अनुयायी बने। चित्तौड मे रहते हुए भगवान महावीर के शास्त्रसमर्थित पट्-कल्याणको की मान्यता को पुन प्रचारित किया।

भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर के दो विधि चैत्यो का निर्माण भी उनके उपदेश से हुआ और उन्होने स० ११६२ मे प्रतिष्ठाएँ भी करवाई।[1] धाराधिपति महाराजा नरवर्मा भी इनके भक्त थे और महाराजा नरवर्मा ने चित्तौड के महावीर चैत्य के लिए दान भी दिया था।

सवत् ११६७ मे आचार्य प्रसन्नचन्द्र के वचनो को स्मरण कर परम गीतार्थ देवभद्राचार्य ने इनको चित्तौड बुलाया और आषाढ सुदी छठ के दिन इनको आचार्य पद प्रदान कर नवागी टीकाकार अभयदेव सूरि का पट्टधर घोपित किया। बागड देश मे विहार कर आपने १०,००० अजैनो को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। छ मास के अल्पकाल मे ही सवत् ११६७ कार्तिक बदी बारस को आपका चित्तौड मे ही स्वर्गवास हो गया।

जिन वल्लभसूरि प्राकृत और सस्कृत भाषा के उद्‌भट विद्वान् थे। साथ ही वे जैन दर्शन और इतर दर्शनो के भी प्रौढ विद्वान थे ही। साहित्य के धुरन्धर विद्वान थे ही। इनकी विद्वत्ता के सम्बन्ध मे युगप्रधान जिनदत्तसूरि तो इन्हे महाकवि माघ, कालिदास और वाक्‌पतिराज से भी बढकर मानते है।

इनके द्वारा विविध विपयो मे निर्मित वर्तमान मे ४४ कृतियाँ प्राप्त होती है, जिनमे से सैद्धान्तिक विषयो मे सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धार, आगमिक वस्तुविचारसार, पिण्डविशुद्धि प्रकरण,

---

१ चित्तौड मे आज दोनो ही मन्दिर प्राप्त नही हैं। महावीर चैत्य की शिलोत्कीर्ण प्रशस्ति अष्ट सप्तति/ वीर चैत्य प्रशस्ति की प्रतिलिपि प्राप्त है। पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रशस्ति का शिलापट्ट प्रशस्ति भी प्राप्त हो गई है।

औपदेशिक ग्रन्थो मे द्वादशकुलक, धर्मशिक्षा प्रकरण, द्वादशकुलक सघपट्टक आदि, काव्य ग्रन्थो मे शृगारशतक, प्रश्नोत्तरैकपष्टिशतम् आदि एव स्तोत्र साहित्य प्राप्त है ।[1]

आचार्य जिनेश्वर ने चैत्यवास के विरुद्ध जो शखनाद किया था, उसको प्रवल वेग के साथ इन्होने आगे बढाया । न केवल विरोध ही अपितु उसका वेधानिक मार्ग भी प्रस्थापित किया । यही कारण है कि आचार्य जिनेश्वर से खरतरगच्छ सुविहित पथ के नाम से प्रसिद्ध था, वह जिनवल्लभ के समय मे विधि पक्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

पट्टावलियो के अनुसार इनके स्वदीक्षित शिष्य अधिक न थे । मुख्यतया केवल रामदेवगणि का ही नाम प्राप्त होता है, जिनकी दो रचनाएँ प्राप्त है—सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धार प्रकरण टिप्पण, पड्शीति टिप्पणक । इनके भक्त श्रावको मे नागौर निवासी धनदेव के पुत्र कवि पद्मानन्द भी अच्छे विद्वान् थे और इनकी रचित वैराग्यशतक कृति प्राप्त है ।

(६) युगप्रधान दादा जिनदत्तसूरि

जन्म—११३२, दीक्षा—११४१, आचार्य पद ११६६, स्वर्गवास १२११ । सौधर्मीय परम्परा मे ४४वे पाठ पर जिनवल्लभसूरि के पट्टधर दादा शब्द से जैन जगत् मे विख्यात युगप्रधान जिनदत्तसूरि हुए । ये धोलका के निवासी थे । इनके माता-पिता के नाम थे—हुम्वड ज्ञातीय वाछिग एव वाहड देवी । इनका जन्म ११३२ मे हुआ था । विदुषी साध्वियो के उपदेशो से प्रतिबुद्ध होकर इन्होने सवत् ११४१मे धर्मदेव उपाध्याय के पास दीक्षा ग्रहण की । इनका दीक्षा नाम था—सोमचन्द्र । इनके शिक्षा गुरु थे—सर्वदेवगणि, अशोकचन्द्राचार्य और हरिसिंह आचार्य ।

आचार्य जिनवल्लभसूरि के आकस्मिक देहावसान हो जाने से आचार्य देवभद्र ने सवत् ११६६ वैशाख शुदी एकम् को बडे महोत्सव के साथ आचार्य पद देकर इन्हे जिनवल्लभसूरि के पाट पर स्थापित किया । आचार्य पदारोहण के समय नाम परिवर्तन कर जिनदत्तसूरि नाम रखा ।

आचार्य बनने के पश्चात् जिनदत्तसूरि चैत्यवास को निर्मूल करने मे कटिबद्ध हो गये और निर्भीकता एव प्रखरता के साथ चैत्यवास की मान्यताओ का खण्डन करते हुए सुविहित/विधि पक्ष का प्रवल प्रचार करने लगे । इनकी उत्कृष्ट चारित्रिक सम्पदा और तप-त्याग को देखकर बडे-बडे चैत्यवासी आचार्य—जयदेवाचार्य, जिनप्रभाचार्य, विमलचन्द्रगणि, मत्रवादी जयदत्त, गुणचन्द्रगणि, ब्रह्मचन्द्रगणि आदि ने भी चैत्यवास का त्याग कर इनके पास दीक्षा ग्रहण की थी । अजमेर के तत्कालीन नृपति अर्णो राज, त्रिभुवनगिरि के महाराजा कुमारपाल आदि भी आपके भक्त थे और आपको उच्च सम्मान देते थे । त्रिभुवनगिरि के महाराजा कुमारपाल के साथ आपके चित्र की काष्ठपट्टिका आज भी जैसलमेर ज्ञान भडार मे विद्यमान है । अनेक स्थानो पर विचरण करते हुए अजमेर, त्रिभुवनगिरि आदि स्थानो पर विधिचैत्यो की प्रतिष्ठाएँ कराई थी । लगभग सहस्राधिक साधु-साध्वियो को दीक्षा दी थी । विक्रमपुर आदि स्थानो पर अनेक उपद्रवो को दूरकर एक लाख तीस हजार जैनेतरो को जैन बनाकर ओसवश को समृद्ध किया था । आपके प्रतिवोधित गौत्रो की सख्या ५२ है ।

महादेवी अम्विका के द्वारा आपको युगप्रधान पद प्राप्त हुआ था । परम्परागत पट्टावलियो के अनुसार आप वडे चमत्कारी भी थे । प्रथम अनुयोग/मत्रग्रन्थ की प्राप्ति भी आपको हुई थी । चौसठ योगणियो को प्रतिवोध दिया था । ५२ वीर एव ५ पीर भी आपकी सेवा मे उपस्थित रहते थे ।

---

१ इनके कृतित्व और व्यक्तित्व का विशेप अध्ययन करने के लिए महोपाध्याय विनयसागर लिखित 'वल्लभ भारती' देखें ।

विक्रम सवत् १२११ आषाढ बदी ग्यारस (परम्परा के अनुसार आषाढ सुदी ग्यारस) को आपका स्वर्गवास अजमेर मे हुआ था। आज भी आपके चमत्कार सर्वत्र देखे व सुने जाते है, और आज भी आप भक्तो के मनोरथ पूर्ण करते है।

आपके द्वारा निर्मित कोई बडी कृतिया तो प्राप्त नही है। गणधर सार्द्धशतक, सन्देह दोलावली, उपदेश कुलक आदि छोटी-मोटी २७ कृतियाँ प्राप्त होती है। इनमे से चर्चरी, उपदेश रसायन और काल स्वरूप कुलक अपभ्र श भाषा की रचनाएँ है, जो हिन्दी के आदि काल मे महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

(७) मणिधारी जिनचन्द्रसूरि

जन्म—११९७, दीक्षा—१२०३ आचार्य पद १२०५, गच्छनायक—१२११, स्वर्गवास—१२२३.

मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के माता-पिता सेठ रासल और देल्हण देवी थे। ये जैसलमेर के निकट विक्रमपुर के निवासी थे। इनका जन्म विक्रम सवत् ११९७ भादवा सुदी आठम को हुआ था। ये जन्म से ही विलक्षण, अनेक शुभलक्षणो से युक्त, प्रतिभावान एव सस्कारयुक्त थे। माता-पिता के साथ आचार्य जिनदत्तसूरि के दर्शनार्थ अजमेर पहुँचे और आचार्य की देशना से प्रतिबुद्ध होकर अजमेर म ही सवत् १२०३ फाल्गुन सुदी नवमी को आचार्य से ही दीक्षा ग्रहण की। गणनायक जिनदत्तसूरि ने इनकी विशिष्ट प्रतिभा और योग्यता को देखकर इनके जन्म स्थान विक्रमपुर मे ही सवत् १२०५ मे वैशाख सुदी छठ के दिन इन्हे आचार्य पद प्रदान किया और नामकरण किया जिनचन्द्रसूरि। सम्भवत जैन समाज मे यह प्रथम ही उदाहरण होगा जबकि अत्यल्प ९ वर्ष की अवस्था मे कोई व्यक्ति आचार्य बना हो। गणनायक जिनदत्तसूरि का स्वर्गवास होने पर सवत् १२११ मे ये गच्छनायक बने।

सवत् १२१४ मे इन्होने त्रिभुवनगिरि मे शान्तिनाथ मन्दिर के शिखर की प्रतिष्ठा की। इसके बाद हेमदेवी नाम की आर्या को प्रवर्तिनी पद दिया। सवत् १२१७ मे मथुरा मे नरपति आदि आठ मुमुक्षुओ को दीक्षा दी। इसी वर्ष मे क्षेमन्धर सेठ को प्रतिबोध दिया और वैशाख शुक्ला दसमी को मरुकोट मे चन्द्रप्रभ स्वामी के विधि चैत्य मे कलश एव ध्वज दड की प्रतिष्ठा की। सवत् १२१८ मे ऋषभदत्त आदि पाच साधु एव जगश्री आदि तीन साध्वियो को दीक्षित किया। १२३१ मे सागरपाट मे पार्श्वनाथ विधि चैत्य मे देवकुलिका की प्रतिष्ठा की। वहाँ से अजमेर पधार कर श्री जिनदत्तसूरि के स्मारक स्तूप की प्रतिष्ठा की। तत्पश्चात बब्बेरक ग्राम मे गुणभद्रगणि आदि पाँच शिष्यो को दीक्षित किया। आशिका नगरी मे नागदत्त मुनि को वाचनाचार्य पद दिया। महावन मे अजितनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा की। इन्द्रपुर मे गुणचन्द्रगणि के पितामह लाल श्रावक द्वारा बनाए हुए शान्तिनाथ विधि चैत्य मे दड, कलश और ध्वजा प्रतिष्ठित की। तगलाग्राम म अजितनाथ विधि चैत्य की प्रतिष्ठा की। सवत् १२२२ मे वादली नगर मे पार्श्वनाथ मन्दिर मे दड, कलश, ध्वजा आदि की प्रतिष्ठा कर, अम्बिका शिखर पर स्वर्ण कलश की स्थापना करवाई। नरपालपुर मे एक अभिमानी ज्योतिषी को ज्योतिष शास्त्र मे पराजित किया।

वहाँ से आचार्य जिनचन्द्र रुद्रपल्ली आये। रुद्रपल्ली मे वहाँ राज्य सभा मे पदमचन्द्राचार्य के साथ तमोवाद पर शास्त्रार्थ हुआ और इस शास्त्र चर्चा मे जिनचन्द्रसूरि ने विजय प्राप्त की। इस विजय के कारण ही वहाँ के आचार्य श्री के भक्त जयतिहट्ट के नाम से प्रसिद्ध हुए।

विहार करते हुए चौरसिन्दानक ग्राम के पास श्रीसघ के साथ आचार्य ने पडाव डाला। वहाँ पर लूटपाट करते हुए म्लेच्छो के भय से सघ आकुल-व्याकुल हो गया। आचार्य ने अपने तपोवल से सघ का यह कष्ट दूर किया। म्लेच्छ सैनिक पास होकर निकल गए। वे सघ के पडाव को न देख सके।

आचार्य विचरण करते हुए दिल्ली के निकट पहुँचे। दिल्ली के मुख्य-मुख्य श्रावक अपने परिवारो के साथ बडे आडम्वर से आचार्य के दर्शन के लिए वहाँ जाने लगे। दिल्ली के तत्कालीन महाराजा मदनपाल (अनगपाल, जो कि पृथ्वीराज चौहान के नाना थे) भी आचार्य के दर्शन के लिए आचार्य की सेवा मे पहुँचे। सकेत और स्वय की अनिच्छा होते हुए भी दिल्लीनरेश और प्रमुख श्रेष्ठियो के अत्याग्रह को आचार्य टाल न सके, और दिल्ली आए तथा १२२३ का चातुर्मास दिल्ली मे ही किया। दिल्ली मे ही अपने अनन्य भक्त कुलचन्द्र को एक यत्र पट्ट दिया, जिसकी उपासना से वह समृद्धिशाली सेठ बन गए। एकदा दिल्ली के बाहर जगल मे दो मिथ्यादृष्टि देवियो को मास के लिए लडते हुए देखा। करुणार्द्र हृदय सूरिजी ने अधिगाली नामक देवी को प्रतिबोध देकर मास बलि का त्याग करवाया और पार्श्वनाथ विधि चैत्य के दक्षिण स्तम्भ मे रहने के लिए आवास प्रदान किया।

विक्रम सवत् १२२३ भादवा बदी चौदस के दिन इनका स्वर्गवास हुआ। शरीर त्यागते समय आचार्यश्री ने अपने पार्श्ववर्ती लोगो से कहा था "नगर से जितनी दूर हमारा दाह सस्कार किया जाएगा, नगर की आबादी उतनी ही दूर तक बढेगी।" इनका दाह-सस्कार महरोली मे किया गया, जहाँ आज भी इनका स्तूप विद्यमान है और चमत्कारो का केन्द्र है। जहाँ आज भी जैन, अजैन सभी उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने हेतु उनके समाधि स्थल के दर्शन करते है।

कहा जाता है कि आपके भालस्थल पर मणि थी, अत आप मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के नाम से ही जैन समाज मे दूसरे दादा के नाम से विख्यात हुए।

आपने भी अनेक अजैनो को प्रतिबोध देकर महत्तियाण जाति की स्थापना कर जैन समाज की वृद्धि की थी।

इनके द्वारा रचित कोई विशिष्ट और विशाल कृति प्राप्त नही है। केवल लघुकायिक दो कृतियाँ प्राप्त हैं—व्यवस्था शिक्षा कुलक एव पार्श्वनाथ स्तोत्र। इनके पठनार्थ कागज पर लिखी हुई प्राचीनतम "ध्वन्यालोकलोचन" की प्रति जो जैसलमेर ज्ञान भण्डार की थी, वह आज राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के सग्रहालय की शोभा वढा रही है। जिसमे इनके लिए विशेषण दिया गया है—"प्रतिवादिकरटिकरट विकटरद • विज्ञातसकल-शास्त्रार्थ।"

खरतरगच्छ एव इसकी अन्य सभी शाखाओ की आचार्य परम्परा मे चतुर्थ पाट पर जिनचन्द्र सूरि नाम रखने की प्रथा प्रारम्भ से ही प्राप्त होती है। कई विद्वानो के मतानुसार यह प्रथा सवेगरगशालाकार जिनचन्द्रसूरि से प्रारम्भ हुई, परन्तु अधिकाश विद्वानो का मत है कि यह चतुर्थ नाम की परम्परा मणिधारी जिनचन्द्रसूरि से ही प्रारम्भ हुई है।

(८) युगप्रवरागम जिनपतिसूरि

जन्म—विक्रम सवत् १२१०, दीक्षा—१२१७, आचार्य पद १२२३, स्वर्गवास १२७७।

मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के पाट पर षट्त्रिंशद्वादविजेता युगप्रवरागम जिनपतिसूरि हुए। मरुस्थल के विक्रमपुर निवासी मालू गोत्रीय श्रेष्ठि यशोवर्धन की भार्या सूहव देवी की कुक्षि से विक्रम सवत् १२१० चैत्र वदी आठम के दिन आपका जन्म हुआ था। आपका जन्म नाम नरपति था। विक्रम सवत् १२१७ फाल्गुन सुदी दसवी के दिन मथुरा मे मणिधारी जिनचन्द्रसूरि ने इनको दीक्षा प्रदान की थी। जिनचन्द्र सूरि के स्वर्गवास के पश्चात् उन्ही के निर्देशानुसार विक्रम सवत् १२२३ कार्तिक सुदी तेरस को दिल्ली मे ही वडे महोत्सव के साथ इनको आचार्य पद प्रदान किया गया था। स्वर्गीय युगप्रधान जिनदत्तसूरि जी के वयोवृद्ध शिष्य जयदेवाचार्य के तत्वावधान मे यह महोत्सव सम्पन्न हुआ और इनका

नाम परिवर्तन कर जिनपतिसूरि घोषित किया गया। इसी महोत्सव के समय जिनभद्र को आचार्य पद प्रदान किया गया। साथ ही आपने पदमचन्द्र और पूर्णचन्द्र को दीक्षा प्रदान की।

विक्रम सवत् १२२४ मे आचार्य जिनपतिसूरि ने विक्रमपुर मे गुणधर आदि छ को दीक्षा प्रदान की और जिनप्रिय मुनि को उपाध्याय पद प्रदान किया। सवत् १२२५ मे पुष्करणी नगर में पत्नी सहित जिनसागर एव जिनपाल आदि आठ को दीक्षा प्रदान की। वहाँ से विहार कर विक्रमपुर मे आये और जिनदेवगणि को दीक्षा दी। सवत् १२२७ मे उच्चा नगरी मे धर्मसागर आदि सात को दीक्षित किया। जिनहित मुनि को वाचनाचार्य पद दिया। वहा से मरुकोट आये। मरुकोट में शीलसागर, विनयसागर और उनकी बहिन अजितश्री को सयम व्रत प्रदान किया। १२२८ मे सागरपाड़ा आये, वहा पर सेनापति आम्बड तथा सेठ साढल के बनवाये हुए अजितनाथ तथा शान्तिनाथ मन्दिरो की प्रतिष्ठा करवाई। वहाँ से बब्बेरक गाँव पधारे, वहाँ आशिका नगर के श्री सघ के साथ आशिका के महाराजा भीमसिह भी आचार्य श्री के दर्शनार्थ बब्बेरक आये। महाराजा के आग्रह से आचार्य श्री आशिका नगरी पधारे, आशिका नगरी मे ही महाप्रमाणिक दिगम्बर आचार्य के साथ वाद-विवाद हुआ और इस चर्चा मे जिनपतिसूरि को विजय प्राप्त हुई।

सूरिजी वहाँ से १२२९ मे धनपाली पहुँचे और वहाँ पर सम्भवनाथ स्वामी की प्रतिमा की स्थापना और शिखर की प्रतिष्ठा की। सागरपाट मे पण्डित मणिभद्र के पट्ट पर विनयभद्र को वाचनाचार्य का पद दिया। १२३० मे स्थिरदेव आदि तीन साधु और अभयमति आदि चार साध्वियो को दीक्षा प्रदान की। १२३२ फाल्गुन सुदी दसमी को विक्रमपुर मे भाडागारिक गुणचन्द्र गणि के स्मारक स्तूप की प्रतिष्ठा की। वहाँ से पुन विहार कर आशिका नगरी पधारे, बडे महोत्सव के साथ नगर प्रवेश हुआ, उस समय आचार्यश्री के साथ ८० साधु थे। ज्येष्ठ सुदी तीज के दिन बडे विधि विधान के साथ पार्श्वनाथ मन्दिर के शिखर पर ध्वजाकलश आरोपित किया। आशिका मे ही धर्मसागर गणि और धर्मरुचि-गणिनी को सयमी बनाया। १२३३ आषाढ माह मे कन्यानयन के विधि चैत्यालय मे आचार्यश्री के चाचा साह मानदेव कारित भगवान महावीर की प्रतिमा स्थापित की। व्याघ्र-पुर मे पार्श्वदेवगणि को दीक्षा प्रदान की। सवत् १२३४ मे फलवर्धिका नगरी के विधिचैत्य मे पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा स्थापित की। इसी वर्ष जिनमत गणि को उपाध्याय पद और गुणश्री साध्वी को महत्तरा पद दिया और सर्वदेवाचार्य और जयदेवी नाम की साध्वी को दीक्षा दी। सवत् १२३५ मे आचार्यश्री का चातुर्मास अजमेर मे हुआ। इसी वर्ष दादा जिनदत्तसूरि के प्राचीन स्तूप का जीर्णोद्धार हुआ। देवप्रभ और उसकी माता चरणमति को दीक्षा प्रदान की। अजमेर मे ही सवत् १२३६ मे सेठ पासट द्वारा बनवाई हुई महावीर मूर्ति की स्थापना की, अम्बिका शिखर की भी प्रतिष्ठा करवाई। वहाँ से सागरपाड़ा मे आकर अम्बिका शिखर की स्थापना करवाई। सवत् १२३७ में बब्बेरक गाँव मे जिनदत्त को वाचनाचार्य पद दिया। सवत् १२३८ मे पुन आशिका पधारे और दो बडी जिनप्रतिमाओ की प्रतिष्ठा की।

आचार्य जिनपति सूरि १२३९ मे फलवर्धिका (फलोदी—मेडता रोड) पधारे। उनके प्रभाव को सहन न कर वहाँ का निवासी उपकेशगच्छीय पद्मप्रभाचार्य मात्सर्य एव ईर्ष्यावश अपलाप करने लगा। आचार्यश्री के विहार कर अजमेर पहुँचने के पश्चात् वहाँ के दोनो के भक्तदलो मे सघर्ष होने लगा और इस सघर्ष का नतीजा हुआ अन्तिम हिन्दू सम्राट महाराजा पृथ्वीराज चौहान की राज्यसभा मे शास्त्रार्थ। महाराजा पृथ्वीराज ने शास्त्रार्थ की तिथि कार्तिक शुक्ला दसवी निश्चित की और निश्चित समय पर महाराजा पृथ्वीराज नरानयन पर दिग्विजय कर वापस लौटे। कार्तिक सुदी दसवी के दिन आचार्य

जिनपति सूरि श्री जिनमतोपाध्याय, पण्डित श्री स्थिरचन्द्र, वाचनाचार्य मानचन्द्र आदि मुनिवृन्द के साथ राज्यसभा मे पहुँचे। इधर पद्मप्रभ आचार्य भी भाट-वटुको के साथ सभा मे पहुँचे। महाराजा पृथ्वीराज ने सिंहासन पर बैठने के पश्चात् प्रधानमन्त्री कैमास को आज्ञा दी कि पण्डित वागीश्वर, जनार्दन गौड और विद्यापति आदि राजपण्डितो के समक्ष इन दोनो का शास्त्रार्थ होने दो। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। पद्मप्रभ को व्याकरण, साहित्य, दर्शन, छन्दशास्त्रो का पूर्णज्ञान न होने के कारण वह राजपण्डितो के समक्ष पराजित सा होने लगा, मरता क्या न करता, आखिर पद्मप्रभ ने इन्द्रजाल और अन्त मे मल्लयुद्ध के लिये आह्वान किया। जिनपतिसूरि के अनन्य भक्त सेठ रामदेव के साथ शास्त्रार्थ के वदले राज्यसभा मे मल्लयुद्ध भी हुआ। अन्त मे तिरस्कृत एव अपमानित होकर राजकीय पुरुषो ने उसका गला पकडकर उसे राज्यसभा के बाहर निकाला।

आचार्यश्री के असाधारण ज्ञान को देखकर राजपडितो ने जिनपतिसूरि को विजयी घोषित किया। और महाराजा पृथ्वीराज आचार्यश्री के सौम्य और शान्त मुद्रा तथा अगाध पाडित्य को देखकर अत्यन्त प्रमुदित हुए और जयपत्र बडे महोत्सव के साथ हाथी के हौदे पर रखकर आचार्यश्री के पास भिजवाया गया। महाराजा पृथ्वीराज स्वय जयपत्र देने के लिए उपाश्रय पधारे थे। (इस शास्त्रार्थ का विशेष अध्ययन करने के लिए देखें —जिनपालोपाध्याय प्रणीत गुर्वाविलि, पृष्ठ २५ से ३४।)

सूरिजी महाराज अजमेर से विहार कर १२४० मे विक्रमपुर आये, वहाँ चौदह मुनियो के साथ छ मास तक गणि योग तप किया। सवत् १२४१ मे फलौदी पधारे, वहाँ जिननाग आदि पाँच साधुओ एव धर्मश्री आदि दो साध्वियो को दीक्षा प्रदान की। फलवर्धि मे ही सवत् १२४२ माघ सुदी पूर्णिमा के दिन जिनमतोपाध्याय का स्वर्गवास हुआ। सवत् १२४३ का चातुर्मास खेड नगर किया, वहाँ से अजमेर पधारे। सवत् १२४४ मे अनहिलपुर पाटण का निवासी अभयकुमार नामक श्रावक महाराजा भीमसिंह और उनके प्रधानमन्त्री जगदेव से 'खरतरसघ' के नाम से तीर्थयात्रा सघ निकालने का आदेश प्राप्त कर अजमेर आचार्य श्री के पास पहुँचा। अजमेरवासी श्री सघ की प्रार्थना स्वीकार कर आचार्यश्री ने तीर्थ यात्रा हेतु प्रस्थान किया। इधर आचार्य श्री के दो शिष्य जिनपाल गणि और धर्मशील गणि जो त्रिभुवनगिरि मे यशोभद्राचार्य के पास न्यायदर्शन शास्त्र का अध्ययन कर रहे थे, वे भी आचार्यश्री की आज्ञा प्राप्त कर शीलसागर और सोमदेव को साथ लेकर त्रिभुवनगिरि के श्रीसघ के साथ सघ मे सम्मिलित हुए। यात्रा का आमत्रण प्राप्त कर विक्रमपुर, उच्चा, मरुकोट, जैसलमेर, फलौदी, दिल्ली, बागड और माण्डव्यपुर आदि नगरो के सघ भी इस यात्रा सघ मे आकर सम्मिलित हुए। सघ प्रयाण करता हुआ चन्द्रावती नगरी पहुँचा, वहाँ पूर्णिमा गच्छ के प्रामाणिक आचार्य अकलकसूरि पाँच आचार्यो के साथ आये और आचार्य जिनपतिसूरि के साथ उनका मिलन हुआ। आचार्य अकलक की आचार्य जिनपति के साथ जिनपति नाम को लेकर व्याकरणिक दृष्टि से चर्चा हुई और आचार्य जिनपति के असाधारण वैदुष्य से आचार्य अकलक प्रभावित हुए। साथ ही साधु तीर्थ यात्रा मे सघ के साथ जाये या नही आदि अनेक शास्त्रीय विपयो पर भी चर्चा हुई। अन्त मे अत्यन्त प्रसन्न होकर आचार्य अकलक ने कहा—'खरतराचार्य, आप वास्तव मे वादलब्धि सम्पन्न है।'

वहाँ से सघ के साथ आचार्यश्री चन्द्रावती नगरी पहुँचे। वहाँ पौर्णमासिक गच्छावलम्बी श्री तिलकसूरि के साथ नैयायिक दृष्टि से अनेक विपयो पर चर्चा हुई। इस पण्डित गोष्ठी से आचार्य तिलकप्रभ अत्यन्त प्रमुदित हुए और आचार्य जिनपति की अधिकाधिक प्रशसा करने लगे।

इसके वाद सघ वहाँ से चलकर आशापल्ली पहुँचा। वहाँ वादी-देवाचार्य की पोपधशाला मे विराजमान प्रद्युम्नाचार्य से सेठ क्षेमन्धर का वार्तालाप हुआ। वार्ता के मध्य सेठ क्षेमन्धर को पितृ-

परम्परागत मार्ग छोडकर खरतरगच्छ स्वीकार करने के विषय मे प्रद्युम्नाचार्य ने सेठ को उपालम्भ देते हुए खरतरगच्छ की मान्यताओ के सम्बन्ध मे कुछ अपशब्द कहे और खरतराचार्य जिनपतिसूरि के साथ आयतन-अनायतन सम्बन्धी विषय को लेकर शास्त्रार्थ के लिए तैयारी भी दिखाई। आचार्य जिनपति ने तीर्थ यात्रार्थ सघ की त्वरा देखकर वापसी मे शास्त्रार्थ का आह्वान स्वीकार किया। वहाँ से सघ के साथ प्रस्थान कर आचार्यश्री ने खम्भात गिरनार आदि तीर्थों की यात्राएँ की। आगे मार्ग की गडबडी के कारण सघ शत्रुजय तीर्थ न जा सका।

जब सघ वापस लौटकर आशापल्ली पहुँचा और वहाँ पूर्व निर्णयानुसार आचार्य जिनपति का प्रद्युम्नाचार्य के साथ आयतन-अनायतन विषयक शास्त्रार्थ बडी गम्भीरता के साथ हुआ। शास्त्र प्रमाणो के सामने प्रद्युम्नाचार्य टिक न सके और आचार्य जिनपति ने विजय प्राप्त की। इस सम्बन्ध मे प्रद्युम्नाचार्य रचित 'वादस्थल' ग्रन्थ और उसके उत्तर के रूप मे जिनपतिसूरि द्वारा रचित 'प्रबोधोदय वादस्थल' ग्रन्थ देखना चाहिए।

इस विजय से आचार्य जिनपति की गुजरात मे कीर्ति पताका फहराने लगी।

दण्डनायक अभयड का षड्यन्त्र भी विफल हुआ।

वहाँ से सघ के साथ आचार्य श्री अनहिलपुर पाटण पहुँचे, वहाँ पर जिनपतिसूरि ने अपने गच्छ के ४० आचार्यो को एकत्रित कर उनको सम्मानित किया। इसके बाद आचार्य श्री सघ के साथ लवणखेटक (वर्तमान मे बालोतरा के पास खेड) गए। वहाँ पर पूर्णदेवगणि आदि तीन को वाचनाचार्य पदवी प्रदान की। इसके बाद पुष्करणी नगरी मे जाकर सवत् १२४५ फाल्गुन माह मे सूर प्रभ आदि ६ साधुओ और सयमश्री आदि तीनो को दीक्षित किया। सवत् १२४६ में श्रीपत्तन मे महावीर प्रतिमा की स्थापना की।

सवत् १२४७ और १२४८ मे लवणखेडा मे रहकर मुनि जिनहित को उपाध्याय पद दिया। सवत् १२४६ मे पुन पुष्करिणी आकर मलयचन्द्र को दीक्षा दी। सवत् १२५० मे विक्रमपुर पधारकर पदमप्रभ को आचार्य पद दिया और नाम परिवर्तित कर सर्वदेवसूरि नाम रखा। सम्वत् १२५१ मे माण्डव्य पुर पधारे।

वहाँ से अजमेर पाटण होकर भीमपल्ली (भीलडी) आए। कुहियप ग्राम मे जिनपालगणि को वाचनाचार्य पद दिया। लवण खेडा के राणा श्री केल्हण का विशेष आग्रह होने पर पुन लवणखेडा जाकर "दक्षिणावर्त आरात्रिकावतारणत्व" बडी धूमधाम से बनाया। सवत् १२५२ मे पाटण आकर विनयानन्द को दीक्षित किया। सवत् १२५३ मे नेमिचन्द्र भण्डारी को प्रतिबोध दिया। मुसलमानो द्वारा पाटण नगर का विध्वस होने पर ढाटी गॉव में आकर चातुर्मास किया। १२५४ मे धारानगरी मे जाकर शान्तिनाथ देव के मन्दिर मे विधिमार्ग को प्रचलित किया। और वही महावीर नाम के दिगम्बर को तर्क सम्बन्धी परिष्कारो से अतिरजित किया। वही पर रत्नश्री को दीक्षित किया, जो भविष्य मे प्रवर्तिनी पद पर आरूढ हुई। नागद्रह मे चातुर्मास किया। सवत् १२५६ चैत्र वदी पचमी के दिन लवणखेट मे नेमिचन्द्र आदि चार को सयमी बनाया। सवत् १२५८ चैत्रवदी पाचम को लवणखेडा के शान्तिनाथ मन्दिर मे विधि पूर्वक मूर्ति स्थापना तथा शिखर प्रतिष्ठा भी करवाई। वही पर चैत्रवदी दूज के दिन वीरप्रभ तथा देवकीर्ति को भागवती दीक्षा दी।

१२६० आपाढ वदी छठ के दिन इन दोनो को बडी दीक्षा प्रदान की। यही वीरप्रभ भविष्य मे आचार्य के पट्टधर जिनेश्वरसूरि बने। इसी दिन सुमति गणि और पूर्णभद्र गणि को सयमी बनाया और आनन्दश्री नाम की साध्वी को महत्तरा पद दिया। तदनन्तर जैसलमेर के देवमन्दिर मे फाल्गुन सुदी दूज को पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा की स्थापना की। सवत् १२६३ मे फाल्गुन वदी चौथ को लवणखेडा मे

मह० कुलधर कारित महावीर प्रतिमा की स्थापना की। इसी स्थान पर नरचन्द्र आदि तीन और विवेकश्री आदि चार को सयम व्रत प्रधान किया और धर्मदेवी को प्रवर्तिनी पद से अलकृत किया। सवत् १२६५ मे लवणखेडा मे ही मुनिचन्द्र, मानचन्द्र, सुन्दरमति और आशमति को मुनिव्रत मे दीक्षित किया। सवत् १२६६ मे विक्रमपुर मे भावदेव आदि तीन को सयमी बनाया, गुणशील को वाचनाचार्य पद दिया और ज्ञानश्री को दीक्षा प्रदान की। सवत् १२६९ मे जाबालीपुर (जालौर) मे मह० कुलधर कारित महावीर प्रतिमा को विधि-चैत्यालय मे बडे समारोह के साथ स्थापित किया। जिनपाल गणि को उपाध्याय पद और धर्मदेवी प्रवर्तिनी को महत्तरा पद देकर प्रभावती नामकरण किया। इसके अतिरिक्त महेन्द्र आदि तीन पुरुषो को व चन्द्रश्री आदि स्त्रियो को दीक्षा प्रदान की और वहाँ से विक्रमपुर की ओर विहार कर गए।

सवत् १२७० मे बागड श्रीसघ के अत्याग्रह से बागड देश पधारे। सवत् १२७१ मे बृहद्द्वार पधारे। वहाँ के श्री आशराज राणक और ठाकुर विजयसिंह आदि ने आचार्यश्री का स्वागत किया। वहाँ आपने अपने उपदेशो से मिथ्याक्रिया को बन्द करवाया। स० १२७३ मे बृहद्द्वार मे ही लोक प्रसिद्ध गगा दशहरा पर्व पर गगा स्नान करने के लिए अनेक राणाओ के साथ नगरकोट के महाराजाधिराज पृथ्वीचन्द्र भी आए थे। उनके साथ काश्मीरी पडित मनोदानन्द को अपने पाडित्य का अभिमान था और उसने शास्त्रार्थ के लिए जिनपतिसूरि को प्रेरित किया। जिनपतिसूरि स्वय न जाकर उन्होने अपने शिष्य जिनपालोपाध्याय को धमरुचि गणि, वीरभद्र गणि, सुमति गणि और ठाकुर विजयसिंह आदि के साथ शास्त्रार्थ हेतु भेजा। महाराजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की सभा मे पडित मनोदानन्द के साथ जिनपालोपाध्याय का शास्त्रार्थ हुआ। 'जैन षड् दर्शनो से बहिभूत है' इस पर शास्त्रार्थ हुआ। उपाध्याय की तार्किकता के समक्ष पडित मनोदानन्द निरुत्तर हो गया। अपने पडित की पराजय को देखकर महाराजा पृथ्वीचन्द्र को अन्तर्दु ख तो अवश्य हुआ, किन्तु जयपत्र उपाध्यायजी को ही समर्पित करना पडा। इस उपलक्ष मे सवत् १२७३ जेठ बदी तेरस के दिन श्रावक समाज द्वारा एक बहुत बडा जयोत्सव मनाया गया।

सवत् १२७४ मे भावदेवमुनि को दीक्षा दी और दारिद्रेरक गाँव मे चातुर्मास किया। सवत् १२७५ मे जेठ सुदी बारस के दिन जालोर मे भुवनश्री आदि तीन महिलाओ को और विमलचन्द्र आदि दो पुरुषो को साधुदीक्षा प्रदान की। सवत् १२७७ मे आचार्यश्री पालणपुर पधारे। वही पर आचार्य महाराज के नाभि के नीचे स्थान पर एक गाँठ पैदा हुई और साथ ही सग्रहणी रोग भी पैदा हो गया। अपना अन्तिम समय निकट जानकर अपने पाट पर वीरप्रभ गणि को स्थापित करने का निर्देश भी किया। सघ के साथ क्षमायाचना करते हुए समाधिपूर्वक आचार्यश्री का स्वर्गवास हुआ। सवत् १२७७ आषाढ शुक्ला दसवी के दिन पालणपुर मे ही आचार्यश्री का दाहसस्कार किया गया। इस अवसर पर जिनहितोपाध्याय भी जालौर से आ गए थे और उन्होने शोक विह्वल होकर दिवगत आचार्य के गुण-गरिमा की १६ श्लोको मे अपनी अन्तर्व्यथा को प्रकट किया।

आचार्य जिनपतिसूरि शास्त्रचर्चा मे वादीगज केशरी तो थे ही, साथ ही असाधारण प्रतिभा के धनी भी। इनके द्वारा निर्मित सघपट्टक बृहद्वृत्ति, प्रबोधोवादस्थल एव १३-१४ स्तोत्र प्राप्त है।

(८) जिनेश्वर सूरि (द्वितीय)

जन्म—सवत् १२४५, दीक्षा—१२५८, आचार्य पद १२७८, स्वर्गवास १३३१।

आचार्य जिनपतिसूरि के पाट पर द्वितीय [illegible]नेश्वरसूरि [illegible]। ये मरुकोट निवासी भण्डारी नेमिचन्द्र के पुत्र थे। इनकी माता का नाम लक्ष्मणी [illegible] [illegible]गसर सुदी ग्यारस को इनका

जन्म हुआ था। अम्बिका देवी के स्वप्नानुसार इनका जन्म नाम अम्बड रखा गया था। गच्छनायक जिनपतिसूरि के सदुपदेश से वैराग्यवासित होकर आचार्यश्री के करकमलो से सवत् १२५८ चैत्र बदी दूज खेड नगर में शान्तिनाथ भगवान के विधि चैत्यालय मे दीक्षा ग्रहण की थी। इनका दीक्षा नाम वीरप्रभ रखा गया था।

जिनपालोपाध्याय का जो शास्त्रार्थ पण्डित मनोदानन्द के साथ हुआ था उस समय वीरप्रभ गणि भी जिनपालोपाध्याय के साथ थे। आचार्य जिनपतिसूरि ने अपने साध्य बेला के समय वीरप्रभ गणि को आचार्य पद पर स्थापित करने का सकेत किया था। तदनुसार ही सवत् १२७८ माघ सुदी छठ के दिन जालौर नगर मे जिनहितोपाध्याय, जिनपालोपाध्याय आदि की उपस्थिति में आचार्य सर्वदेवसूरि ने सघ की सहमति के साथ इनको आचार्य पद पर स्थापित किया था। आचार्य पदारोहण के समय इनका नाम परिवर्तित कर जिनेश्वरसूरि रखा गया था।

सवत् १२८१ मे श्री जिनेश्वरसूरि ने ठाकुर अश्वराज और सेठ राल्हा के सहयोग से उज्जयन्त, शत्रुञ्जय और स्तम्भनक आदि प्रमुख तीर्थो की यात्राएँ की। खम्भात मे वादी यमदण्ड नामक दिगम्बर विद्वान से मिलन एव वार्तालाप हुआ। खम्भात मे आचार्यश्री का प्रवेश महोत्सव प्रसिद्ध महामन्त्री श्री वस्तुपाल ने ही करवाया था। सवत् १२९१ वैशाख सुदी दसवी के दिन जालौर मे अनेक साधु-साध्वी बनाये। जेठ वदी दूज रविवार के दिन विजयदेव को आचार्य पद से अलकृत किया। सवत् १२९४ मे सघहित को उपाध्याय पद दिया। सवत् १२९६ फाल्गुन बदी पचमी को पालणपुर मे प्रबोधमूर्ति को दीक्षा प्रदान की। ज्येष्ठ सुदी दशमी को पालणपुर मे ही शान्तिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा करवाई, जिसे पाटण मे स्थापित की गई। १२९७ मे पालणपुर मे अनेको को दीक्षा प्रदान की। १२९८ वैशाख माह मे जालौर मे मह० कुलधर ने जिनचैत्य पर स्वर्णमय दण्ड ध्वज का आरोपण किया। सबत् १२९९ प्रथम आश्विन मास की दूज के दिन महामन्त्री कुलधर ने आचार्यश्री से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के बाद महा-मन्त्री कुलधर का नाम कुलतिलक मुनि रखा गया था।

सवत् १३०४ वैशाख सुदी चौदस के दिन जिनेश्वरसूरि जी ने विजयवर्द्धन गणि को आचार्य पद प्रदान किया और इनका नाम जिनचन्द्राचार्य रखा। इसी दिन विवेकसमुद्र आदि अनेको को दीक्षा प्रदान की। सवत् १३०५ आषाढ सुदी दसमी के दिन पालणपुर मे अनेक तीर्थंकर प्रतिमाओ और नन्दीश्वर पट्ट की प्रतिष्ठा की।[1]

जिनेश्वरसूरिजी ने सवत् १३०६ जेठ सुदी तेरस के दिन श्री मालनगर मे अनेक तीर्थंकर प्रति-माओ की प्रतिष्ठा की।

जैन शासन और खरतरगच्छ की प्रभावना करते हुए आचार्य जिनेश्वर सवत् १३३१ में जालौर पधारे और यह चातुर्मास जालौर मे ही किया। चातुर्मास के मध्य मे ही शारीरिक अस्वस्थता के कारण अपना अन्तिम समय निकट जानकर अपने करकमलो से ही सघ के समक्ष वाचनाचार्य प्रबोधमूर्ति गणि को सवत् १३३१ आश्विन बदी पचमी को अपने पद पर स्थापित कर जिनप्रबोधसूरि नामकरण किया

---

१. इस समय की प्रतिष्ठित दो मूर्तियां—घोघा के जिनालय मे और दो धातु मूर्तियाँ चिन्तामणि मन्दिर भूमिगृह, बीकानेर मे विद्यमान हैं। और, दो प्रतिमाएँ आषाढ सुदी तेरस की प्रतिष्ठित चिन्तामणि मन्दिर भूमिगृह बीकानेर मे विद्यमान हैं।

और पालणपुर मे स्थित जिनरत्नाचार्य को सदेश भिजवाया कि चातुर्मास के पश्चात् इनका आचार्य पद स्थापना महोत्सव वडे आडम्बर के साथ करना। पश्चात् आचार्यश्री ने अनशन ग्रहण किया और आश्विन बदी छठ की रात्रि को इनका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य जिनेश्वर शासन प्रभावक और उद्भट विद्वान् थे। इनके द्वारा निर्मित विशेष साहित्य तो प्राप्त नही है, किन्तु श्रावक धर्मविधि प्रकरण एव बारह स्तोत्र प्राप्त है।

इनके शासनकाल मे अनेको दिग्गज विद्वान् और साहित्य-निर्माता हुए, उनमे से कतिपय विद्वानो के नाम एव उनकी प्रमुख कृतियो का उल्लेख इस प्रकार है—

(१) सर्वराज गणि—गणधर-सार्धशतक एव पचलिंगी लघु वृत्ति
(२) पूर्णकलश गणि—प्राकृत द्व्याश्रय काव्य टीका
(३) चन्द्रतिलकोपाध्याय—अभयकुमार चरित
(४) सूरप्रभाचार्य—कालस्वरूप कुलक वृत्ति
(५) जिनरत्नसूरि—निर्वाण लीलावती सार
(६) लक्ष्मीतिलकोपाध्याय—प्रत्येकबुद्ध चरित्र, श्रावकधर्म-वृहदवृत्ति आदि
(७) अभयतिलकोपाध्याय—सस्कृत द्व्याश्रय काव्य वृत्ति, न्यायालकार टिप्पण, पानी वादस्थल आदि
(८) प्रबोधचन्द्रसूरि—सदेहदोलावलि वृहद्वृत्ति
(९) धर्मातिलक गणि—लघु अजितशान्तिस्तव वृत्ति

(१०) जिनप्रबोधसूरि

जन्म—१२८५, दीक्षा—१२९६, आचार्य पद—१३३१, स्वर्गवास—१३४१।

द्वितीय जिनेश्वरसूरिजी के पट्ट पर आचार्य जिनप्रबोधसूरि हुए। आपका जन्म थारापद्र नगर मे सवत् १२८५ श्रावण सुदी छठ को हुआ था। आपके पिता खीवड गोत्रीय श्रीचन्द्र थे और माता सिरिया देवी। सवत् १२९६ फाल्गुन बदी पाचम को पालणपुर मे आचार्य जिनेश्वरसूरि के करकमलो से दीक्षा ग्रहण की थी। प्रतिभासम्पन्न देखकर आचार्यश्री ने सवत् १३३० वैशाख बदी छठ को जालौर मे आपको वाचनाचार्य पद प्रदान किया था। आप मे गच्छनायक की योग्यता देखकर जिनेश्वरसूरि ने ही अपने करकमलो से सक्षेप विधि-विधान के साथ सवत् १३३१ आश्विन बदी पचमी को अपने पद पर स्थापित किया था।

आचार्य जिनेश्वर के निर्देशानुसार पदस्थापना हेतु चातुर्मास समाप्त होने पर जिनरत्नाचार्य जालौर आए। इस प्रसग पर श्री चन्द्रतिलकोपाध्याय, श्री लक्ष्मीतिलकोपाध्याय प्रमुख साधु-साध्वी वृन्द भी जालौर आया। सघ द्वारा विशाल महोत्सव किया गया और सवत् १३३१ फाल्गुन वदी अष्टमी के दिन विस्तृत विधि विधान के साथ वयोवृद्ध जिनरत्नाचार्य ने जिनप्रबोधसूरि की पद स्थापना की।

आपके शासनकाल मे जो समय-समय पर अनेकानेक प्रतिष्ठाएँ, दीक्षाएँ, पदस्थापना एव विशिष्ट कृत्य हुए उनकी तालिका इस प्रकार है—

प्रतिष्ठायें—सवत् १३३२ जेठ वदी एकम को जालौर मे, जेठ बदी छठ और नवमी को स्वर्णगिरि पर, सवत् १३३४ वैशाख वदी पाचम को भीमपल्ली मे, सवत् १३३५ फाल्गुन वदी पाचम व फाल्गुन सुदी पाचम को चित्तौड मे, सवत् १३३६ वैशाख वदी छठ को वरडिया मे, स० १३३७ जेठ वदी पाचम को बीजापुर मे और स० १३४० वैशाख सुदी तीज को जैसलमेर मे।

सघयात्रा

सवत् १३३३ मे सेठ विमलचन्द्र के पुत्र सेठ क्षेमसिह और सेठ बाहड ने आचार्यश्री की उपस्थिति में विशाल तीर्थ यात्रा सघ निकाला था। यात्रा सघ मे आचार्यश्री के साथ जिनरत्नाचार्य, लक्ष्मीतिलकोपाध्याय, विमलप्रज्ञोपाध्याय, वाचक पद्मदेव गणि आदि २७ साधु एव प्रवर्तिनी ज्ञानमाला, प्र० कुशलश्री, प्रवर्तिनी *कल्याणऋद्धि आदि २१ साध्वियो का समूह भी सम्मिलित था। यह तीर्थयात्रा* सघ चैत्र बदी पाचम के दिन जालौर से रवाना होकर श्रीमाल, पालणपुर, तारगा, बीजापुर, खम्भात, शत्रुञ्जय तीर्थ, गिरनार आदि तीर्थो की यात्रा करता हुआ सकुशल एव सानन्द वापस जालौर पहुँचा था। सवत् १३३५ मे जब आचार्य श्री चित्तौड आए थे, तो उनका प्रवेश महोत्सव बडे आडम्बर के साथ हुआ था और वहाँ के प्रतिष्ठा आदि समस्त महोत्सवो मे चित्तौड के महाराज कुमार अरिसिह जी भी उपस्थित थे। सवत् १३३७ वैशाख बदी नवमी के दिन आचार्यश्री का बीजापुर मे प्रवेश महोत्सव भी अनुपमेय हुआ था। उस समय बीजापुर के महाराजाधिराज सारगदेव, महामात्य मल्लदेव, मन्त्री बुद्धिसागर आदि की उपस्थिति मे ही प्रतिष्ठा महोत्सव आदि विशिष्ट कृत्य सम्पन्न हुए थे, जो अभूतपूर्व थे। १३३६ मे विधि मार्ग अनुयायी सघो के साथ आचार्यश्री ने आबू की यात्रा की। तत्पश्चात् समियाणा के महाराजा श्री सोम के अत्याग्रह को स्वीकार कर वहाँ चातुर्मास किया। और चातुर्मास पश्चात् जैसलमेर के नरेश कर्णदेव के अत्याग्रह पर १३४० की फाल्गुन चौमासी जैसलमेर की थी। जैसलमेर से विहार कर आचार्यश्री जालौर आए, वही उनके शरीर मे भयकर दाह ज्वर उत्पन्न हुआ और अपने ही करकमलों से जिनप्रबोधसूरि जी ने सवत् १३४१ वैशाख सुदी तीज के दिन अपने पाट पर जिनचन्द्रसूरि को स्थापित किया और वैशाख सुदी अष्टमी के दिन इस पार्थिव देह को त्याग कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर गए।

खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावलि के अनुसार आपके द्वारा निर्मित वृत्तप्रबोध, पजिका प्रबोध एव बौद्धाधिकार विवरण आदि ग्रन्थो का उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु वर्तमान मे उनमे से कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, तदपि आचार्य बनने के पूर्व सवत् १३२८ मे रचित कातन्त्र दुर्गपदप्रबोध टीका अवश्य प्राप्त है।

आपके शासनकाल मे विवेकसमुद्रोपाध्याय आदि अनेको गीतार्थ विद्वान् थे।

(११) कलिकाल केवली जिनचन्द्रसूरि

आचार्य जिनप्रबोधसूरि के पाट पर कलिकाल केवली जिनचन्द्रसूरि हुए। आपका जन्म सवत् १३२४ मिगसर सुदी चौथ के दिन सिवाणा में हुआ था। सिवाणा के मन्त्री देवराज आपके पिता थे और आपकी माता थी कोमल देवी। इनका जन्म नाम खम्भराय था। जिनकुशलसूरि के पिता मत्री जिल्हागर खम्भराय के भाई थे अत जिनकुशलसूरि जी के ये चाचा होते थे। सवत् १३३२ ज्येष्ठ सुदी तीज को स्वर्णगिरि से जिनप्रबोधसूरि ने इनको दीक्षा प्रदान कर क्षेमकीर्ति नामकरण किया था। जिनप्रबोधसूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था मे क्षेमकीर्ति को आचार्य/गणनायक पद के अनुरूप समझकर सवत् १३४१ वैशाख सुदी तीज के दिन बडे समारोहपूर्वक अपने ही हाथो से अपने पाट पर स्थापित कर जिनचन्द्रसूरि नाम रखा।

इसके बाद जिनचन्द्रसूरि ने संवत् १३४२ वैशाख सुदी १० के दिन जालौर के महावीर चैत्य मे २ क्षुल्लक और ३ क्षुल्लिकाओ को दीक्षा दी। उसी दिन वाचनाचार्य विवेकसमुद्र गणि को उपाध्याय पद, सर्वराज गणि को वाचनाचार्य पद और बुद्धिसमृद्धि गणिनी को प्रवर्तिनी पद दिया। इसी वर्ष ज्येष्ठ वदी ६ को सेठ क्षेमसिंह निर्मापित २७ अगुल प्रमाण वाली रत्नजटित अजितनाथ प्रतिमा एव अन्य श्रेष्ठी

वर्ग निर्मापित अनेक प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा की थी। यह प्रतिष्ठा महोत्सव जालौर के महाराजा सामत सिंह के नेतृत्व मे हुआ था। ज्येष्ठ बदी ११ के दिन वाचनाचार्य देवमूर्तिगणि को उपाध्याय पद दिया।

सवत् १३४४ मिगसर सुदी १० को जालौर मे पडित स्थिरकीर्ति गणि को आचार्य पद देकर उनका नया नाम दिवाकराचार्य रखा। सवत् १३४५ आषाढ सुदी ३ के दिन २ दीक्षाएँ दी। वैशाख वदी एकम् को २ साधु और २ साध्वियो को दीक्षित किया तथा इसी दिन राजदर्शन गणि को वाचनाचार्य पद से विभूषित किया।

सवत् १३५२ मे जिनचन्द्रसूरि की आज्ञा से वाचनाचार्य राजशेखर गणि ने वडगाँव के ठाकुर रत्नपाल सेठ चाहड, सेठ मूलदेव आदि श्रावक सघो के साथ पूर्व देश के तीर्थो की तीर्थयात्रा की।

इसी वर्ष आचार्यश्री ने भीमपल्ली से सेठ धनपाल के पुत्र सेठ भडसिंह तथा सामल श्रावक के द्वारा निकाले हुए श्रीसघ के साथ तीर्थयात्रा के लिए प्रयाण किया। शखेश्वर, श्रीपत्तन आदि तीर्थो की यात्रा की। इस वर्ष का चातुर्मास बीजापुर किया सवत् १३५३ मिगसर वदी पाचम को २ साधुओ को दीक्षा दी।

इसके वाद सघ की प्रार्थना से जिनचन्द्रसूरि जालौर आये। जालौर के सेठ सलखण के पुत्र सीहा तथा माण्डव्यपुर के सेठ झाझण के पुत्र मोहन ने तीर्थयात्रा सघ निकाला। इस सघ मे आचार्यश्री सम्मिलित हुए। जालौर से आबू तक की यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न कर वापस जालौर आये। सवत् १३५४ ज्येष्ठ वदी १० को जालौर मे दीक्षा एव मालारोपण महोत्सव हुआ, ६ साधुओ और १ साध्वी को दीक्षा दी। इसी वर्ष अषाढ सुदी २ को सिरियाणक गाँव मे महावीर मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाकर सवत् १३५५ मे महावीर प्रतिमा की स्थापना करवाई। यह महोत्सव सेठ भाण्डा के पुत्र जोधा ने किया।

सवत् १३५६ मे जैसलमेर महाराजाधिराज जैत्रसिंह की प्रार्थना से मिगसर बदी ४ को जैसलमेर पधारे। आचार्यश्री की अगवानी करने के लिए स्वय महाराजा ४ कोस सम्मुख आये थे। प्रवेश महोत्सव दर्शनीय व सस्मरणीय था। सवत् १३५७ मे २ को दीक्षित किया। सवत् १३५८ माघ सुदी १० को पार्श्वनाथ विधि चैत्य मे अनेक प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा करवाई। सवत् १३५९ मे फाल्गुन सुदी ११ को एकादशी के दिन बाडमेर पधारे। सवत् १३६० माघ वदी दशमी को मालाधारणादि महोत्सव हुआ। वहाँ से सिवाणा पधारे। सवत् १३६१ वैशाख बदी ६ के दिन अनेक स्थानो से आये हुए सवा लाख मनुष्यो की उपस्थिति मे अनेक मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई।[1] इसी अवसर पर पडित लक्ष्मीनिवास गणि और हेमभूषण गणि को वाचनाचार्य पद दिया।

एक वार पूज्यश्री सघ के साथ पुन सवत् १३७५ वैशाख बदी ८ के दिन नागौर पधारे। मत्रीदलीय कुलभूषण ठाकुर अचलसिंह श्रावक ने बादशाह कुतुबुद्दीन सुल्तान से सर्वत्र निर्विरोध यात्रा के लिए फरमान प्राप्त किया। जगह-जगह निमन्त्रण-पत्र भिजवाये गये। चारो तरफ के यात्रार्थी श्रीसघ नागौर आये। शुभमुहूर्त मे आचार्य जिनचन्द्रसूरि की अध्यक्षता मे यात्रोत्सव प्रारम्भ हुआ। वहाँ से सघ नरभट्ट पहुचा। वहाँ दादा जिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिष्ठापित नवफना पार्श्वनाथ के दर्शन किये। वहाँ से वागड देश होते हुए कन्यानयन पधारे। यहाँ पर भी दादा जिनदत्तसूरि स्थापित महावीर स्वामी को नमन किया। वह से सघ प्रयाण करता हुआ हस्तिनापुर पहुँचा। वहाँ महोत्सव मनाया गया। वहाँ से सघ चलता हुआ दिल्ली के पास तिलपथ नामक स्थान पर पहुँचा। यहाँ के निवासी द्रमकपुरीयाचार्य ने मात्सर्यवश बादशाह कुतुबुद्दीन के सामने झूठी शिकायत की। बादशाह ने सघ का प्रयाण रोक दिया। सघनायक जिनचन्द्रसूरि

---

१. इसी समय की प्रतिष्ठित महावीर पंचतीर्थी, बीकानेर के चिन्तामणि मन्दिर (भूमिगृह) मे विद्यमान है।

को बुलाया। आचार्यश्री के तेजस्वी मुखमण्डल को देखकर वह प्रसन्न हुआ और संघ यात्रा को चालू रखने का आदेश दिया। द्रमकपुरीयाचार्य को झूठी शिकायत के कारण कैद कर लिया। आचार्य जिनचन्द्र सूरि ने सेठ तेजपाल, साह खेतसिंह, ठाकुर अचलसिंह और ठक्कर फेरु को बादशाह के पास भेजकर उस आचार्य को कैद से मुक्त कराया। वहाँ से प्रयाण करते हुए खडासराय स्थान पर पहुँचे। चातुर्मास निकट आ जाने से चातुर्मास वही किया। सघ के अग्रगण्यो अचलसिंह आदि के अनुरोध पर चातुर्मास मे ही मथुरा तीर्थ की यात्रा की। वहाँ से वापस लौटकर खडासराय मे ही चातुर्मास पूर्ण किया। चातुर्मास मे जिनचन्द्रसूरिजी महाराज के स्तूप की दो बार बडे विस्तार से यात्रा की।

अकस्मात् ही आचार्यश्री के शरीर मे कम्परोग उत्पन्न हुआ। अपने ध्यान-बल से अपना अन्तिम समय निकट जानकर राजेन्द्रचन्द्राचार्य के नाम पत्र लिखकर ठाकुर विजयसिह के हाथ भिजवाया। इस पत्र मे निर्देश दिया गया था कि मेरे पट्ट पर वा० कुशल कीर्ति गणि का अभिषेक करना। इधर मेडता नगर के राणा मालदेवजी का अनुरोधपूर्ण आमन्त्रण पाकर वहाँ से मेडता नगर के लिए विहार किया। मेडता पधारने पर राणा मालदेव ने बडे ठाठ-बाट से प्रवेशोत्सव कराया। वहाँ से कोसाणा पधारे। सवत् १३७६ आषाढ सुदी ६ के दिन ६५ वर्ष की उम्र मे जिनचन्द्रसूरिजी ने इस विनाशशील पच-भौतिक शरीर को त्यागकर स्वर्ग मे देवताओ का आतिथ्य स्वीकार किया। विधि-विधान के साथ आपका वहाँ दाह-सस्कार किया गया। तत्पश्चात् मत्रीश्वर देवराज के पौत्र मत्री माणकचन्द्र के पुत्र मत्री मुन्ध-राज श्रावक ने चिता स्थान की जगह आचार्यश्री की चारणपादुका सहित एक सुन्दर स्तूप बनवाया।

(१२) दादा श्री जिनकुशलसूरि

प्रत्यक्ष प्रभावी युगप्रधान तीसरे या छोटे दादाजी के नाम से विख्यात जिनकुशलसूरि एक असाधारण महापुरुष थे। आपका जन्म सिवाणा मे सवत् १३३७ मिगसर बदी तीज के दिन हुआ था। छाजेड गोत्रीय मन्त्री देवराज आपके पितामह थे और जेसल/जिल्हागर आपके पिता थे। आपका जन्म नाम कर्मण था। कलिकालकेवली जिनचन्द्रसूरि, जो कि ससार पक्ष मे आपके चाचा होते थे, के उपदेश से प्रतिबोध पाकर उन्ही के करकमलो से सवत् १३४५ फाल्गुन शुक्ला अष्टमी के दिन गढ सिवाणा मे अर्थात् अपनी जन्मभूमि मे ही दीक्षा ग्रहण की। आपका दीक्षित होने पर नाम रखा गया था कुशल-कीर्ति। तत्कालीन गच्छ के वयोवृद्ध गीतार्थ विवेकसमुद्र के पास समस्त शास्त्रो का अध्ययन किया था। १३७५ माघ सुदी बारस को बडे महोत्सव के साथ जिनचन्द्रसूरि ने कुशलकीर्ति गणि को नागौर में वाचनाचार्य पद प्रदान किया था। गच्छनायक जिनचन्द्रसूरि का स्वर्गवास हो जाने पर उनके निर्देशानु-सार ही राजेन्द्रचन्द्राचार्य ने सवत् १३७७ ज्येष्ठ वदी ग्यारस के दिन अणहिलपुर पाटन में महामहोत्सव के साथ अनेक देशो के सघ के समक्ष वाचनाचार्य कुशलकीर्ति को आचार्य पद पर स्थापित किया और इनका नामकरण किया जिनकुशलसूरि। इस उत्सव का सारा आयोजन पाटण के सेठ तेजपाल रुद्रपाल ने किया था।

सवत् १३७८ का चातुर्मास भीमपल्ली मे किया। वहाँ हेमभूषण गणि को उपाध्याय पद और मुनिचन्द्र गणि को वाचनाचार्य पद दिया और अनेको को दीक्षा दी। विवेकसमुद्रोपाध्याय का साध्यकाल निकट जानकर पुन पाटण आये और उन्हे विधिपूर्वक अनशन करवाया। सवत् १३७८ ज्येष्ठ शुक्ला दूज को उनका स्वर्गवास हुआ। आषाढ शुक्ला तेरस के दिन पाटण मे ही उनके स्तूप की प्रतिष्ठा कर-वाई। विवेक-समुद्रोपाध्याय ने ही तत्कालीन गणनायक कलिकालकेवली जिनचन्द्रसूरि, दिवाकराचार्य, राजशेखराचार्य, वाचनाचार्य राजदर्शन गणि, वाचनाचार्य, सर्वराज गणि आदि अनेक मुनिगणो को आगम, व्याकरण, न्याय आदि शास्त्रो का अभ्यास करवाया था।

दिल्ली निवासी श्रीमालकुलोत्पन्न सेठ रयपति ने सम्राट गयासुद्दीन तुगलक से तीर्थयात्रा का फरमान प्राप्त किया कि "जिनकुशलसूरि जी महाराज की अध्यक्षता मे सेठ रयपति श्रावक का सघ शत्रुजय, गिरनार आदि तीर्थयात्रा के निमित्त जहाँ-जहाँ जाये वहाँ-वहा इसे सभी प्रान्तीय सरकारें आवश्यक मदद दे। और, सघ की यात्रा मे वाधा पहुचाने वाले लोगो को दण्ड दिया जाये।" फरमान प्राप्त करने के पश्चात् सघयात्रा के लिए सेठ रयपति ने आचार्यश्री से अनुमति चाही।

आचार्यश्री से तीर्थयात्रा का आदेश प्राप्त कर सेठ रयपति ने वैशाख वदी सातम को विशाल सघ के साथ दिल्ली से प्रस्थान किया। सघ कन्यानयन, नरभट, फलौदी होता हुआ पाटण पहुँचा। वहाँ सूरिजी से सघ मे साथ पधारने की प्रार्थना की। जिनकुशलसूरिजी भी अपने विशाल साधु समुदाय के साथ सघ यात्रा मे सम्मिलित हुए। सघ आषाढ बदी छठ को शत्रुजय पहुँचा। वहाँ दो दीक्षाएँ हुईं। सप्तमी के दिन समवसरण, जिनपतिसूरि, जिनेश्वरसूरि आदि गुरुओ की प्रतिष्ठाएँ करवाईं आषाढ बदी नवमी के दिन व्रतग्रहण समारोह हुआ और उसी दिन सुखकीर्ति गणि को वाचनाचार्य पद प्रदान किया। यह विशाल यात्री सघ शत्रुजय से प्रस्थान कर आषाढ सुदी चौदस को गिरनार पहुचा। यात्रा सम्पन्न कर सूरिजी पाटण पधार गये और सघ वहाँ से वापस दिल्ली की ओर प्रस्थान कर गया।

सवत् १३८१ वैसाख वदी पाँचम को पाटण के शातिनाथ विधि चैत्य मे सूरिजी की अध्यक्षता मे विराट प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। इसमे अगणित जिनप्रतिमाए जिनप्रबोधसूरि, जिनचन्द्रसूरि, अम्बिका आदि मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवाई। वैशाख वदी छठ के दिन जयधर्मगणि को उपाध्याय पद दिया।

भीमपल्ली के श्रावक वीरदेव ने सम्राट गयासुद्दीन से तीर्थयात्रा का आदेश प्राप्त कर सूरिजी की निश्रा मे जेठ बदी पाँचम को भीमपल्ली सघ निकाला। यह विराट सघ वायड, सेरीसा, सरखेज, आसापल्ली, खम्भात होता हुआ शत्रुजय पहुँचा। वहाँ आदिनाथ मन्दिर के विधिचैत्य मे नवनिर्मित चतुर्विशति जिनालय एव देव कुलिकाओ पर कलश व ध्वज आदि का आरोपण हुआ। तीर्थ यात्रा सानन्द सम्पन्न कर सघ वापस लौटाता हुआ सेरीसा, शखेश्वर, पाडल होते हुए श्रावण सुदी ग्यारस को भीमपल्ली पहूचा।

सवत् १३८२ वैशाख सुदी पाचम को भीनमाल मे श्रावक वीरदेव ने महामहोत्सव किया जिसमें अनेक सघो की उपस्थिति मे विनयप्रभ आदि अनेक साधु-साध्वियो को आचार्यश्री ने दीक्षा प्रदान की। वहाँ से सूरिजी साचोर, लाटहृद होकर बाडमेर पधारे। वही जिनदत्तसूरि रचित 'चैत्यवदन कुलक' पर विस्तृत टीका की रचना आपने की। सवत् १३८३ पोष सुदि पूनम को अनेको को दीक्षाएँ दी। वहाँ से लवणखेटक होकर समियाणा होते हुए जालौर पधारे। फाल्गुन बदी नवमी को विविध उत्सव हुए और अनेक जिनबिम्बो की प्रतिष्ठा[1] एव अनेको को दीक्षित किया।

जिनकुशल सूरिजी ने अपने जीवनकाल मे ५० हजार नये जैन बनाए। शासन की महती प्रभावना की। आपकी रचित दो कृतियाँ प्राप्त है—चैत्यवदनकुलक टीका और जिनचन्द्रसूरि चतु सप्तति एव सस्कृत भाषा मे नव स्तोत्र प्राप्त है।

---

१ इस समय की प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ पचतीर्थी बीकानेर सुपार्श्वनाथ मन्दिर मे विद्यमान है।

जिस प्रकार अपने जीवनकाल मे जैनसघ के लिये ये परोपकारी थे वैसे ही स्वर्गवास के पश्चात् भी आज भी भक्तो के मनोवाछित पूर्ण करने मे कल्पवृक्ष के सदृश है, हाजरा हजूर है। आज सारे भारत वर्ष मे आपके जितने चरण, मूर्तियाँ व दादावाडियाँ हैं, अन्य किसी की नही। आपकी शिष्य परम्परा भी विशाल रही है। आपके शिष्य विनयप्रभ हुए। विनयप्रभ के पौत्र शिष्य क्षेमकीर्ति हुए। इन्ही के नाम से क्षेमकीर्ति उपशाखा निकली। इस शाखा मे सैकडो प्रौढ विद्वान हुए, इनमे से उपाध्याय जयसोम, उपाध्याय गुणविनय आदि के नाम उल्लेखनीय है। इस शाखा मे अतिम यति श्यामलालजी के शिष्य विजयचन्द्र हुए जो वीकानेर की गद्दी पर जिनविजयेन्द्रसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। अब यह परम्परा लुप्त हो गई है।

आपके शासनकाल मे अनेको दिग्गज विद्वान हुए, जिनमे से कतिपय के नाम इस प्रकार है —

पडावश्यक वालाववोधकार, तरुणप्रभसूरि, लब्धिनिधान उपाध्याय, कवि पद्म, ठक्कर फेरू, धर्मकलश, सारमूर्ति, समधरू, राजशेखराचार्य, दिवाकराचार्य, गौतमरासकार विनयप्रभ आदि।

(१३) जिनपद्मसूरि

युगप्रधान दादा जिनकुशलसूरिजी के पट्टधर जिनपद्मसूरि हुए। इनके पिता का नाम अम्बदेव या आम्बाशाह था। कहाँ के निवासी थे, माता का क्या नाम था, जन्म किस सवत् मे हुआ ? कोई उल्लेख नही मिलता है। १३८४ माघ सुदी पाँचम को देवराजपुर मे जिनकुशलसूरिजी ने आपको दीक्षा प्रदान कर पद्ममूर्ति नाम रखा था। इस प्रसग मे पदममूर्ति के लिए 'क्षुल्लक' शब्द का प्रयोग किया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ८-१० वर्ष की वाल्यावस्था मे ही इन्होने दीक्षा ग्रहण की। आचार्यश्री के पास ही रहकर समस्त शास्त्रो का विधिवत् अध्ययन किया था।

जिनकुशलसूरिजी का स्वर्गवास हो जाने पर और उनके आदेशानुसार सवत् १३९० ज्येष्ठ सुदी छठ सोमवार को देवराजपुर (देरावर) के आदिनाथ विधि चैत्य मे वडे विधि-विधान एव महोत्सव के साथ तरुणप्रभाचार्य ने इनको आचार्य पद पर विठाया और जिनपद्मसूरि नाम घोषित किया। इस प्रसग पर महोपाध्याय जयधर्म, महोपाध्याय लब्धिनिधान आदि तीस साधु और अनेको साध्वियाँ उपस्थित थी इस पाट महोत्सव का आयोजन सेठ हरिपाल ने किया था। इसी समय जिनपद्मसूरि ने अनेक मुनियो को भागवती दीक्षा दी। इसी समय अमृतचन्द्र गणि को वाचनाचार्य पद दिया।

जिनपद्मसूरि के सम्बन्ध मे यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि एक वार जब वे विवेकसमुद्रोपाध्याय आदि मुनियो के साथ वाड़मेर गए हुए थे तो वहाँ लघुद्वार वाले मन्दिर मे विशालकाय भगवान महावीर की मूर्ति देखकर वाल्यस्वभाव से प्रेरित होकर ये शब्द कहे —

"व्हा णडा वसही वड्डी अन्दरि किउ करि माणी।" अर्थात् इतने छोटे द्वार वाले मन्दिर के अन्दर इतनी विशाल मूर्ति कैसे लाई गई ? इससे कितने ही श्रावको को असन्तोष व अरुचि भी पैदा हुई, किन्तु शीघ्र ही श्री विवेकसमुद्रोपाध्यायजी ने उसका समाधान कर दिया।

इसके बाद आप जब गुजरात के लिये विहार कर रहे थे, उस समय मार्ग मे सरस्वती नदी के किनारे ठहरे। तब एकान्त मे यह चिन्ता हुई कि "कल गुजरात पहुँच कर पत्तनीय सघ के सन्मुख धर्मदेशना देनी है और मै बालक हूँ, कैसे धर्मदेशना दे सकूंगा ?" तो सरस्वती नदी के किनारे ठहरने के कारण सरस्वती ने सन्तुष्ट होकर वरदान दिया और आपने प्रातःकाल पाटण पहुँचकर अर्हन्तो भगवन्त

इन्द्रमर्हिता" इत्यादि शार्दूलविक्रीडितछन्दोवद्ध नवीन काव्य का निर्माण कर उसका ऐसा सुन्दर प्रवचन पत्तनीय सघ के सम्मुख किया कि मब आश्चर्यचकित हो गये और आपको "वालधवलकूर्चाल सरस्वती" इस उपाधि मे सुशोभित किया। सोमकुन्जर कृत पट्टावली के अनुसार यह विरुद इन्हे पाटण से प्राप्त हुआ था।

सवत् १४०० वैशाख शुक्ला दशमी के दिन लघु अवस्था मे ही आपका स्वर्गवास हो गया था।

(१४) जिनलब्धिसूरि

आचार्य जिनपद्मसूरि के पट्टधर जिनलब्धिसूरि हुए। तरुणप्रभाचार्य कृत जिनलब्धिसूरि वहत्तरी के अनुसार आपका जीवनवृत्त इस प्रकार है —

जैसलमेर निवासी नौलखा गोत्रीय धणसीह के ये पुत्र थे, इनकी माता का नाम खेताही था। सवत् १३६० मिगसर सुदी वारस के दिन अपने ननिहाल साचोर मे इनका जन्म हुआ था। जन्म नाम लखनसिंह था। कलिकाल केवली जिनचन्द्रसूरि से प्रतिबोध पाकर सवत् १३७० माघ सुदी ग्यारस को अणहिलपुर पाटण मे जिनचन्द्रसूरि के करकमलो से ही दीक्षा ग्रहण की। दीक्षावस्था का नाम था लब्धिनिधान। मुनिचन्द्र गणि, राजेन्द्रचन्द्राचार्य, तरुणप्रभाचार्य एव जिनकुशलसूरि के पास गहन अध्ययन कर स्वशास्त्र और परशास्त्र के परम निष्णात बने थे। सवत् १३८८ मिगसर सुदि ग्यारस के दिन देरावर मे जिनकुशलसूरिजी ने इन्हे उपाध्याय पद से विभूषित किया था।

सवत् १४०६ आश्विन सुदी बारस के दिन नागौर मे आपका स्वर्गवास हो गया। श्री सघ ने आपके अग्नि सस्कार स्थान पर स्तूप का निर्माण करवाकर इनके चरणो की प्रतिष्ठा करवाई थी। आपकी निर्मित कृतियो मे चैत्यवदनकुलकवृत्ति पर टिप्पण एव कई जिनस्तोत्र प्राप्त है।

(१५) जिनचन्द्र सूरि

जिनलब्धिसूरि के पट्टधर जिनचन्द्रसूरि हुए। इनका जन्म कुसुमाण गॉव मे हुआ था। इनके पिता का नाम केल्हा था और माता का नाम सरस्वती था। जन्म नाम था पातालकुमार। सवत् १३८० आषाढ वदी छठ के दिन वडे महोत्सव के साथ शत्रुजय तीर्थ पर दादा जिनकुशलसूरिजी के करकमलो से दीक्षा ग्रहण की थी। आपका मुनि अवस्था का नाम था यशोभद्र। अमृतचन्द्र गणि के पास आपने विद्याध्ययन किया था। अन्तिम समय मे जिनलब्धिसूरि ने इनको पाट पर बिठाने का सकेत किया था। तदनुसार ही तरुणप्रभाचार्य ने सवत् १४०६ माघ सुदी दशमी को जैसलमेर मे आपको गच्छनायक पद पर प्रतिष्ठित किया। गच्छनायक वनने पर आपका नामकरण किया गया जिनचन्द्रसूरि। आचार्य पद का महोत्सव सेठ हाथीशाह ने किया था। सवत् १४१४ आषाढ वदी तेरस के दिन आपका स्वर्गवास हुआ। वही कूपाराम मे आपका स्तूप वनवाया गया।

(१६) जिनोदयसूरि

जिनचन्द्रसूरि के पट्ट पर जिनोदयसूरि आरूढ हुए। आपका जन्म सवत् १३७५ मे पालनपुर निवासी मालू गोत्रीय शाह रुद्रपाल की पत्नी धर्मपत्नी धारलदेवी की कुक्षि से हुआ था। जन्म नाम समर

था। सवत् १३८२ भीमपल्ली के महावीर चैत्य मे पिता रुद्रपाल द्वारा कृत उत्सव से बहिन कील्हू के साथ आचार्य प्रवर जिनकुशलसूरि जी के पास दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा नाम था सोमप्रभ। सवत् १४०६ जैसलमेर मे जिनचन्द्रसूरि ने इनको वाचनाचार्य पद प्रदान किया था। सवत् १४१५ जेठ बदी तेरस को खम्भात मे अजितनाथ विधि चैत्य मे लूणिया गोत्रीय शाह जेसल अथवा सघवी रत्ना एवं पूनी कृत नन्दी महोत्सव द्वारा तरुणप्रभाचार्य ने आपको आचार्य पद पर अभिषिक्त किया और जिनोदयसूरि नाम रखा। इसी वर्ष आपने खम्भात में अजितनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई और इसी वर्ष शत्रुजय तीर्थ की यात्रा की। पॉच स्थानो पर पाच बडी प्रतिष्ठाये की। आपने २४ शिष्य और १४ शिष्याओ को दीक्षित किया एव अनेको को सघवी, आचार्य, उपाध्याय, वाचनाचार्य, महत्तरा आदि पदो से अलकृत किया। इस प्रकार पचपर्व दिन (पॉचो तिथि) उपवास करने वाले, बारह ग्रामो मे अमारिघोषणा कराने वाले तथा अट्ठाइस साधुओ के परिवार के साथ अनेक देशो मे विहार करने वाले आचार्यश्री का सवत् १४३२ भाद्रपद बदी एकादशी को पाटणनगर मे स्वर्गवास हुआ।

इनके विषय मे इन्ही के शिष्य मेरुनदनगणि ने सवत् १४३१ मे अयोध्या मे विराजमान लोकहिताचार्य को एक विज्ञप्ति पत्र भेजा। यह विज्ञप्ति पत्र बडा ही महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप मे है। इसमे अपने गुरु जिनोदयसूरि की यात्रा का विस्तृत वर्णन दिया है।

आपके द्वारा रचित त्रिविक्रमरास (सवत् १४१५) और शाश्वत जिनस्तव प्राप्त है। आपके समय के विद्वानो मे ज्ञानकलश, मेरुनदन, विजयतिलक आदि एव गुणसमृद्धि महत्तरा प्रमुख है। आज भी आपके द्वारा प्रतिष्ठित अनेको मूर्तियाँ अनेको स्थलो पर प्राप्त है।

(१७) जिनराजसूरि

इनके जन्म सवत् स्थान आदि के सम्बन्ध मे कोई उल्लेख प्राप्त नही है। जिनराजसूरिरास के अनुसार इनके पिता का नाम तेजपाल मिलता है। जिनोदयसूरि का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् लोकहिताचार्य ने सवत् १४३३ फाल्गुन बदी छठ के दिन आचार्य पद प्रदान कर जिनराजसूरि नाम रखा और जिनोदयसूरि का पट्टधर घोषित किया। पट्टाभिषेक पदमहोत्सव सा० कडुआ धरना ने किया था। इस पद महोत्सव के समय विनयप्रभोपाध्याय भी उपस्थित थे। आप सवालाख श्लोक प्रमाण न्यायग्रन्थो के अध्येता थे। आपने अपने करकमलो मे सुवर्णप्रभ, भुवनरत्न और सागरचद्र इन तीन मनीषियो को आचार्य पद प्रदान किया था। आपने सवत् १४४४ मे चित्तौडगढ पर आदिनाथ मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। सवत् १४६१ मे देवकुलपाटक (देलवाडा) मे आपका स्वर्गवास हुआ था। भक्तिवश आराधनार्थं देलवाडा के सा० नान्हक श्रावक ने आपकी मूर्ति बनाकर उनके पट्टधर श्रीजिनवर्धनसूरि से प्रतिष्ठा करवाई थी, जो आज भी देलवाडा मे विद्यमान है। आपके करकमलो से प्रतिष्ठित मूर्तियाँ आज भी अनेक नगरो मे बडी सख्या मे प्राप्त है। आपके द्वारा रचित शान्तिस्तव और शत्रुजय विनती दो लघु कृतियाँ प्राप्त है।

आपके शिष्यो मे उद्भट विद्वान् जयसागरोपाध्याय हुए हैं। ये दरडागोत्रीय थे और १४६० के पूर्व ही इन्होने दीक्षा ग्रहण की थी। इन्ही के भाई ने आबू तीर्थ पर खरतरवसही का निर्माण करवाया था। इनके द्वारा मौलिक टीकाग्रन्थ, स्तुति स्तोत्र आदि प्रचुर मात्रा मे प्राप्त है। जिनमे से विज्ञप्ति त्रिवेणी, पर्वरत्नावली, पृथ्वीचन्द्र चरित्र और जिनकुशलसूरि छन्द आदि उल्लेखनीय है।

(१८) जिनभद्रसूरि

आचार्यप्रवर जिनराजसूरि के पट्ट पर सागरचन्द्राचार्य ने जिनवर्धनसूरि को स्थापित किया था। किन्तु, उन पर देवी प्रकोप हो गया था अत १४ वर्ष पश्चात् गच्छ की उन्नति के निमित्त जिनराजसूरि के पट्ट पर सवत् १४७५ मे जिनभद्रसूरि को स्थापित किया गया। जिनवर्धनसूरि से खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा का उद्गम हुआ। अत उनके सम्बन्ध मे पिप्पलक शाखा के परिचय मे लिखा जाएगा।

जिनभद्रसूरि का परिचय इस प्रकार है —

मेवाड देश के देउलपुर नगर मे छाजेड गोत्रीय श्रेष्ठी धीणिग रहते थे। उनकी पत्नी का नाम खेतलदेवी था। खेतलदेवी की कुक्षि से इनका जन्म सवत् १४४६ चैत्र शुक्ला (वदी) छठ को हुआ। आपका जन्म नाम राभणकुमार था। किन्ही पट्टावलियो मे इनका गोत्र छाजेड के स्थान पर भसाली प्राप्त होता है। सवत् १४६१ मे जिनराजसूरि के उपदेश से प्रतिबोध पाकर आपने दीक्षा ग्रहण की। मुनि अवस्था का नाम रखा गया कीर्तिसागर। वाचनाचार्य शीलचन्द्रगणि के पास रहकर इन्होने समस्त शास्त्रो का अध्ययन किया। सवत् १४७५ माघ सुदी पूनम को सागरचन्द्राचार्य ने कीर्तिसागर को आचार्य पद देकर जिनभद्रसूरि नाम रखा और जिनराजसूरि का पट्टधर घोषित किया। आचार्य पद का महोत्सव नाल्हिग शाह ने किया था।

उपाध्याय क्षमाकल्याण रचित पट्टावली के अनुसार पद स्थापना के समय सात भकारो का उल्लेख मिलता है —१ भाणसोल नगर, २ भाणसालीक गोत्र, ३ भादो नाम, ४ भरणी नक्षत्र, ५ भद्राकरण, ६ भट्टारक पद, ७ भद्रसूरि नाम।

आचार्य बनने के पश्चात् आपने अपने जीवनकाल मे दो विशिष्ट कार्य किये। १ जिन मन्दिरो का निर्माण और प्रचुर प्रमाण मे अर्थात् सहस्राधिक जिन मूर्तियो की प्रतिष्ठा। २ ज्ञान भडारो की स्थापना।

आबू, गिरनार तीर्थो पर तो प्रतिष्ठाएँ करवाई ही, साथ ही जैसलमेर मे सहस्राधिक जिन मूर्तियो का निर्माण करवाकर प्रतिष्ठा करवाई। यही कारण है कि जैसलमेर तीर्थ स्वरूप को प्राप्त हो गया।

मुगलो के द्वारा ज्ञान भडारो की होली को देखकर हजारो शास्त्रो की प्रतिलिपियाँ करवाकर आपने देवगिरि, नागौर, जालौर, पाटण, माण्डवगड, आशापल्ली, करणावती, खम्भात और जैसलमेर आदि मे ज्ञान भडारो की स्थापना करवाई। सुरक्षा और पर्यावरण की दृष्टि से सवत् १४९२ से १४९७ के मध्य जैसलमेर ज्ञान भडार की स्थापना करवाई। सैकडो प्राचीनतम ताडपत्रीय ग्रन्थो और उनकी प्रतिलिपियाँ करवाकर इस ज्ञान भडार को समृद्ध किया। प्रतिलिपियो का सशोधन स्वय भी करते थे और अपने विद्वत् साधुमण्डल मे भी करवाते थे। जैसलमेर का ज्ञान भडार प्राचीनतम एव दुर्लभ ताडपत्रीय ग्रन्थो के कारण भारत भर मे अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस 'जिनभद्रसूरि ज्ञान भडार' मे ऐसी-ऐसी अप्राप्य एव दुर्लभ सैकडो कृतियाँ है जो अन्यत्र अप्राप्त हैं। जैसलमेर को छोडकर आपके द्वारा स्थापित सात ज्ञान भडारो का अता-पता ही नही है। हाँ, उनके द्वारा लिखापित सैकडो कृतियाँ आज भी पाटण और खम्भात के ज्ञान भडारो से प्राप्त होती है। जैसलमेर के इस ज्ञान भडार के लिए

जैन समाज ही नही अपितु सारा साहित्य ससार भी आपका चिरकृतज्ञ है। आपके द्वारा प्रतिष्ठित, लेखाकित शताधिक मूर्तियाँ आज भी विद्यमान है।

भावप्रभाचार्य और कीर्तिरत्नसूरि को आपने ही आचार्य पद से विभूषित किया था। कीर्तिरत्न सूरि ही नाकोडा तीर्थ के सस्थापक एव प्रतिष्ठापक थे और इन्ही से कीर्तिरत्नसूरि शाखा के नाम से एक उपशाखा प्रारम्भ हुई थी। इसी शाखा मे प्रसिद्धतम आचार्य जिनकृपाचन्द्रसूरि जी हुए। जयसागरजी को उपाध्याय पद भी आपने ही प्रदान किया था।

जैसलमेर नरेश राउल वैरीसिंह और त्र्यबकदास जैसे आपके चरणो मे भक्तिपूर्वक प्रणाम करते थे। जयसागरोपाध्याय ने सवत् १४८४ मे नगरकोट (कागडा) की यात्रा के स्वरूप 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' नामक महत्वपूर्ण विज्ञप्ति पत्र आपही को भेजा था। सवत् १४९४ और १५०९ मे जैसलमेर मे सभवनाथ एव चन्द्रप्रभ मन्दिरो की प्रतिष्ठा करवाई थी। श्री जिनभद्रसूरि शाखा मे अनेक दिग्गज विद्वान हुए है। आज भी आपकी शाखा मे कुछ यति विद्यमान है। खरतरगच्छ की वर्तमान मे उभय भट्टारकीय, आचार्यीय, भावहर्षीय एव जिनरगसूरि आदि शाखाओ के आप ही पूर्व पुरुष है।

सवत् १५१४ मिगसर वदी नवमी के दिन कुम्भलमेर मे आपका स्वर्गवास हुआ था। नाकोडा शान्तिनाथ मन्दिर मे आपकी प्राचीन मूर्ति विद्यमान है। और, कलकत्ता आदि अनेक दादावाडियो मे आपके चरण आज भी पूजित होते है।

(१९) जिनचन्द्रसूरि

महाप्रभावक युगप्रवर आचार्य जिनभद्रसूरि के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरि हुए। इनका जन्म सवत् १४८७ मे जैसलमेर मे हुआ था। इनके पिता का नाम चम्म गोत्रीय शाह वच्छराज था और माता का नाम था वाल्हादेवी। सोमकुजरकृत गुर्वावली मे साहूसाखा गोत्रीय वतलाया है और माता का नाम स्याणी लिखा है। आपका जन्म नाम करणा था। १४९२ मे आपने दीक्षा ग्रहण की थी और दीक्षा नाम था कनकध्वज। सवत् १५१५ जेठ वदी दूज के दिन कुम्भलमेरु निवासी कुकड चौपडा गोत्रीय शाह समरसिंहकृत नन्दी महोत्सव मे श्री कीर्तिरत्नसूरि ने आचार्य पद प्रदान कर जिनचन्द्रसूरि नाम रखा था। सवत् १५३७ मे जैसलमेर मे आपका स्वर्गवास हुआ था।

(२०) जिनसमुद्रसूरि

ये वाडमेर निवासी पारस गोत्रीय देकोशाह के पुत्र थे। देवलदेवी इनकी माता का नाम था। सवत् १५०६ मे इनका जन्म हुआ और सवत् १५२१ मे दीक्षा ग्रहण की। दीक्षानन्दी महोत्सव पुन्जपुर में मण्डन दुर्ग के निवासी श्रीमालवशीय सोनपाल ने किया था। दीक्षा नाम कुलवर्धन था। सवत् १५३३ माघ सुदी त्रयोदशी के दिवस जैसलमेर मे, सघपति श्रीमालवशीय सोनपालकृत नदिमहोत्सव मे श्रीजिन-चन्द्रसूरिजी ने अपने हाथ से पद स्थापना की थी। ये पच नदी के सोमयक्ष आदि के साधक थे। सवत् १५३६ मे जैसलमेर के अष्टापद प्रासाद मे आपने प्रतिष्ठा की थी। परम पवित्र चारित्र के पालक आचार्यश्री का सवत् १५५५ मिगसर वदी १४ (१५५४ माघ) को अहमदावाद मे देवलोक हुआ।

आपके शासनकाल मे अनेक प्रौढ विद्वान् हुए हैं, जिन्होने साहित्य सर्जना कर साहित्य के भडार को समृद्ध किया। इनमे से कुछ मुख्य-मुख्य विद्वानो के नाम इस प्रकार हैं—वाग्भटालकार, वृत्तरत्नाकर,

शीलोपदेशमाला, षष्टि शतक आदि १७ ग्रन्थो के बालावबोधकार, मेरुसुन्दरोपाध्याय, क्षेमराजोपाध्याय, षष्टिशतक टीकाकार तपोरत्न गणि, पुष्पमाला वृत्तिकार, साधु सोम उपाध्याय, हर्षराज, धर्मदेव, मुनिसोम, लक्ष्मीसेन आदि।

(२१) जिनहंससूरि

इनके पश्चात् गच्छनायक श्रीजिनहससूरिजी हुए। सेत्रावा नामक ग्राम मे चोपडा गोत्रीय साह मेघराज इनके पिता और श्री जिनसमुद्रसूरि जी की बहिन कमलादेवी माता थी। सवत् १५२४ मे इनका जन्म हुआ था। आपका जन्म नाम धनराज और धर्मरग दीक्षा का नाम था। सवत् १५३५ मे विक्रमपुर मे दीक्षा ली थी। सवत् १५५५ मे अहमदाबाद नगर मे आपकी आचार्य पद पर स्थापना हुई। तदनन्तर सवत् १५५६ ज्येष्ठ सुदी नवमी के दिन रोहणी नक्षत्र मे श्रीबीकानेर नगर मे बोहिथरा गोत्रीय करमसी मत्री ने फीरोजी लाख रुपया व्यय करके पुन आपका पद महोत्सव किया और उसी समय शान्तिसागराचार्य ने आपको सूरिमन्त्र प्रदान किया। वही नमिनाथ चैत्य मे विम्वो की प्रतिष्ठा करवाई। तदनन्तर एक बार आगरा निवासी सघवी डूगरसी, मेघराज, पोमदत्त प्रमुख सघ के आग्रहपूर्वक बुलाने पर आप आगरा नगर आये। उस समय बादशाह के भेजे हुए हाथी, घोडे, पालकी, वाजे, छत्र, चवर आदि के आडम्बर से आपका प्रवेशोत्सव कराया गया। जिसमे गुरुभक्ति, सघशक्ति आदि कार्य मे दो लाख रुपये खर्च किये थे। चुगलखोरो की सूचना के अनुसार बादशाह ने आपको बुलाकर धवलपुर मे रक्षित कर चमत्कार दिखाने को कहा। तब आचार्य ने दैविक शक्ति से बादशाह का मनोरजन करके पाँच सौ बन्दीजनो (कैदियो) को छुडवाया और अभय घोषणा कराकर उपाश्रय मे पधार आये। तब सारे सघ को बडा हर्ष हुआ। तदनन्तर अतिशय सौभाग्यधारी, तीनो नगरो मे तीन प्रतिष्ठाकारी तथा अनेक सघपति—प्रमुखपद स्थापक श्रीगुरुदेव पाटन नगर मे तीन दिन अनशन करके सवत् १५८२ मे स्वर्गवासी हुए। सवत् १५८७ मे जिनमाणिक्यसूरि द्वारा प्रतिष्ठित आपके चरण जैसलमेर पार्श्वनाथ जिनालय मे विद्यमान हैं।

(२२) जिनमाणिक्यसूरि

श्री जिनहससूरिजी ने अपने पट्ट पर श्रीजिनमाणिक्यसूरिजी को स्थापित किया। इनका जन्म सवत् १५४९ मे कूकड चोपडा गोत्रीय शाह राउलदेव की धर्मपत्नी रयणादेवी की कोख से हुआ था। इनका जन्म नाम सारग था। सवत् १५६० बीकानेर मे ग्यारह वर्ष की अल्पायु मे आपने आचार्य श्रीजिनहससूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। इनकी विद्वत्ता और योग्यता देखकर गच्छनायक श्री जिनहससूरि ने स्वय १५८२ (माघ शुक्ला ५) भाद्रपद बदी त्रयोदशी को पाटण मे बालाहिक गोत्रीय शाह देवराज कृत नन्दि महोत्सव पूर्वक आचार्य पद प्रदान करके पट्ट पर स्थापित किया था। आपने गुर्जर, पूर्वदेश, सिंध और मारवाड आदि देशो मे विहार किया।

एक प्राचीन पट्टावली के अनुसार आपने एक ही दिन में ६४ साधुओ को दीक्षा दी। १२ मुनियो को उपाध्याय पद से विभूषित किया। अन्तिम समय मे देराउर यात्रा मे भी आपके साथ २४ शिष्य थे।

(२३) अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि

युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि के पिता रीहडगोत्रीय साह श्रीवत थे, जो तिमरी नगर के निकटस्थ वडली गाँव मे रहते थे। माता श्रीसिरियादेवी की कुक्षि से सवत् १५९८ मे आपका जन्म हुआ और

संवत् १६०४ मे केवल ६ वर्ष की अवस्था मे ही, पूर्व-पवित्र सस्कारो के द्वारा तीव्र वैराग्य उत्पन्न होने के कारण दीक्षा-ग्रहण करली। आपके दीक्षा गुरु श्रीजिनमाणिक्य सूरिजी थे। आपका पूर्व नाम सुलतान कुमार था और दीक्षानाम था सुमतिधीर। आचार्य जिनमाणिक्यसूरि का देराउर से जैसलमेर आते हुए मार्ग मे ही स्वर्गवास हो गया था। अत सवत् १६१२ भाद्रपद शुक्ला ६ गुरुवार को जैसलमेर नगर मे राउल मालदेव द्वारा कारित नन्दिमहोत्सवपूर्वक आपको आचार्य पद प्रदान कर, जिनचन्द्रसूरि नाम प्रख्यात कर श्री जिनमाणिक्यसूरि का पट्टधर (गच्छनायक) घोषित किया गया। यह काम बेगडगच्छ (खरतरगच्छ की ही एक शाखा) के आचार्य श्रीगुणप्रभसूरिजी के हाथो से हुआ। उसी दिन रात्रि मे श्रीजिनमाणिक्यसूरिजी ने प्रकट होकर समवसरण पुस्तक और जिनआम्नाय सहित सूरिमन्त्र पत्र श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को दिखाया। आपका चित्त सवेग वासना से वासित था। गच्छ मे शिथिलाचार देख कर आप सव परिग्रह का त्याग करने मन्त्री सग्रामसिंह तथा मन्त्रीपुत्र कर्मचन्द्र के आग्रह से बीकानेर पधारे। वहाँ का प्राचीन उपाश्रय शिथिलाचारी यतियो द्वारा रोका हुआ देखकर मन्त्री ने अपनी अश्व-शाला मे ही आपका चातुर्मास कराया और वडी भक्ति प्रदर्शित की। वह स्थान आजकल रागडी चौक मे वडा उपाश्रय के नाम से प्रसिद्ध है।

गच्छ मे फैले हुए शिथिलाचार को देखकर आप सहम गये। जिस आत्म-सिद्धि के उद्देश्य से चारित्र-धर्म का वेश ग्रहण किया गया, उस आदर्श का यथावत् पालन न करना लोकवचना ही नही, अपितु आत्मवञ्चना भी है। गच्छ का उद्धार करने के लिये गच्छनायक को क्रिया उद्धार करना अनि-वार्य है—इत्यादि विचारो के साथ ही आपके हृदय मे क्रियोद्धार की प्रबल भावना उत्पन्न हुई। तदनुसार सवत् १६१४ चैत्र कृष्णा सप्तमी को आपने क्रियोद्धार किया। उसी दिवस प्रथम शिष्य गेहडगोत्रीय प० सकलचन्द्र गणि की दीक्षा हुई। वीकानेर चातुर्मास के पश्चात् सवत् १६१५ का चातुर्मास महेवा नगर मे किया और श्री नाकोडा पार्श्वनाथ प्रभु के सान्निध्य मे छम्मासी तपाराधन किया। तप-जप के प्रभाव से आप मे योग शक्तियाँ विकसित होने लगी।

सवत् १६४७ का चातुर्मास पाटण कर अहमदावाद होते हुए खम्भात पधारे।

इसी समय तत्कालीन सम्राट अकवर के आमन्त्रण से आप खम्भात से विहार कर सवत् १६४८ फाल्गुन शुक्ला द्वादशी के दिवस महोपाध्याय जयसोम, वाचनाचार्य कनकसोम, वाचक रत्ननिधान और प० गुणविनय प्रभृति ३१ साधुओ के परिवार सहित लाहौर मे सम्राट से मिले। स्वकीय उपदेशो से सम्राट् को प्रभावित कर आपने तीर्थो की रक्षा एव अहिंसा प्रचार के लिये आपाढी अष्टाह्निका एव स्तम्भतीर्थीय जलचर रक्षक आदि कई फरमान प्राप्त किये।

एक वार नौरग खान द्वारा द्वारिका के मन्दिरो के विनाश की वार्ता सुनी तो जैन तीर्थो और मन्दिरो की रक्षा के हेतु सम्राट् से विज्ञप्ति की गई। सम्राट् ने तत्काल फरमान लिखवाकर अपनी मुद्रा लगा के मन्त्रीश्वर को समर्पित कर दिया, जिसमे लिखा था कि "आज से शत्रुंजय आदि समस्त जैन तीर्थ मन्त्री कर्मचन्द्र के अधीन हैं।" गुजरात के सूबेदार आजम खान को तीर्थ रक्षा के लिए सख्त हुक्म भेजा जिससे शत्रुजय तीर्थ पर म्लेच्छोपद्रव का निवारण हुआ।

एक वार कश्मीर विजय के निमित्त जाते हुए सम्राट् ने सूरि महाराज को वुलाकर आशीर्वाद प्राप्त किया और आपाढ शुक्ला ६ से पूर्णिमा तक वारह सूवो मे जीवो को अभयदान देने के लिए १२ फरमान लिख भेजे। इसके अनुकरण मे अन्य सभी राजाओ ने भी अपने-अपने राज्यो मे १० दिन, १५ दिन, २० दिन, २५ दिन, महीना, दो महीना तक जीवो के अभयदान की घोषणा कराई।

सम्राट् ने अपने कश्मीर प्रवास मे धर्मगोष्ठी व जीवदया प्रचार के लिए वाचक महिमराज को भेजने की प्रार्थना की। मन्त्रीश्वर और श्रावक वर्ग साथ मे थे ही, अत सूरिजी ने लाभ जानकर मुनि हर्षविशाल और पचानन महात्मा आदि के साथ वाचक महिमराजजी को भी भेजा। मिती श्रावण शुक्ला १३ को प्रथम प्रयाण राजा रामदास की वाडी मे हुआ। उस समय सम्राट्, सलीम तथा राजा, महाराजा और विद्वानो की एक विशाल सभा एकत्र हुई, जिसमे सूरिजी को भी अपनी शिष्य-मण्डली सहित निमन्त्रित किया। इस सभा मे समयसुन्दरजी ने "राजानो ददते सौख्य" वाक्य के १०२२४०७ अर्थ वाला 'अष्टलक्षी' ग्रन्थ पढकर सुनाया। सम्राट ने उसे अपने हाथ मे लेकर रचयिता को समर्पित करके प्रमाणीभूत घोषित किया।

कश्मीर विजय के पश्चात् आपके सामयिक अनन्त चमत्कारो, विशुद्ध गुणो और वैदुष्य को देखकर सम्राट् अकबर अत्यन्त प्रभावित हुए और बडे महोत्सव के साथ सवत् १६४६ फाल्गुन वदी दशमी के दिन अपने हाथो से जिनचन्द्रसूरि को युगप्रधान पद से अलकृत किया। इसी दिन महिम-राज को आचार्य पद देकर जिनसिंहसूरि नाम रखा और जयसोम एव रत्ननिधान को उपाध्याय पद तथा प० गुणविनय व समयसुन्दर को वाचनाचार्य पद से सुशोभित किया। युगप्रधान गुरु के नाम पर इस महोत्सव मे महामन्त्री कर्मचन्द्र वच्छावत ने एक करोड रुपये व्यय किये थे। सम्राट् ने लाहौर मे तो अमारी उद्घोषणा की ही, पर सूरिजी के उपदेश से समुद्र के असख्य जलचर जीवो को भी वर्षपर्यन्त अभयदान देने का फरमान जारी किया था। सम्राट् अकबर के आग्रह पर सूरिजी ने सवत् १६५२ मे पच नदी की साधना कर पाँचो पीरो को वश मे किया था।

सवत् १६६७ का अहमदाबाद और १६६८ का चातुर्मास पाटण मे किया। इस समय एक ऐसी घटना हुई जिससे सूरिजी को वृद्धावस्था मे भी सत्वर विहार कर आगरा आना पडा। बात यह थी कि एक समय सम्राट् जहाँगीर ने जब सिद्धिचन्द्र नामक व्यक्ति को अन्त पुर मे दूषित कार्य करते देखकर, कुपित होकर समग्र जैन साधुओ को कैद करने तथा राज्य सीमा से बाहर करने का हुक्म निकाल दिया था, तब जैनशासन की रक्षा के निमित्त आचार्यश्री ने वृद्धावस्था मे भी आगरा पधारकर सम्राट् जहाँगीर (जो उनको अपना गुरु मानता था) को समझाकर इस हुक्म को रद्द करवाया।

सवत् १६६६ का चातुर्मास आगरा मे किया। इस चातुर्मास मे सूरिजी का सम्राट् जहाँगीर से अच्छा सम्पर्क रहा और शाही दरबार मे भट्ट को शास्त्रार्थ मे पराजित कर 'सवाई युगप्रधान भट्टारक' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। चातुर्मास के पश्चात् विहार कर मेडता होते हुए बिलाडा पधारे और सवत् १६७० का चातुर्मास वही किया। पर्युषण के पश्चात् सूरिजी के शरीर मे व्याधि उत्पन्न हुई। इन्होने अपना अन्तिम समय निकट जानकर अनशन ग्रहण किया और आश्विन बदी दूज के दिन इस नश्वर देह को त्यागकर स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गये। दाह सस्कार के समय इनकी मुख-वस्त्रिका नही जली। अग्नि-सस्कार के स्थान पर स्तूप बनाकर आपके चरणो की प्रतिष्ठा की गई।

महान् प्रभावक होने से आप जैन समाज मे चौथे दादाजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपकी चरणपादुका, मूर्तियाँ जैसलमेर, बीकानेर, मुलतान, खभात, शत्रुजय आदि अनेक स्थानो मे प्रतिष्ठित हुईं। सूरत, पाटण, अहमदाबाद, भरोच, भाइखला आदि गुजरात मे अनेक जगह आपकी स्वर्ग-तिथि "दादा दूज" कहलाती है और दादावाडियो मे मेला भरता है।

सूरिजी के विशाल साधु-साध्वी समुदाय था। उन्होने ४४ नन्दि मे दीक्षा दी थी, जिससे २००० साधुओ के समुदाय का अनुमान किया जा सकता है। इनके स्वय के ९५ शिष्य थे। प्रशिष्य समय-

सुन्दरजी जैसो के ४४ शिष्य थे। और, इनके आज्ञानुवर्ती साधु सारे भारत मे विचरते थे। उस समय खरतरगच्छ की और भी कई शाखाएँ थी जिनके आचार्य व साधु समुदाय सर्वत्र विचरता था। साध्वियो की सख्या साधुओ से अधिक होती है अत समूचे खरतरगच्छ के साधुओ की सख्या उस समय पॉच हजार से कम नही होगी।

आप स्वय गीतार्थ विद्वान् थे, आपका शिष्य समुदाय भी असाधारण वैदुष्य का धारक था। आपके धर्म साम्राज्य मे अद्वितीय प्रतिभासम्पन्न श्रमणो ने जो साहित्य सेवा की है वह वस्तुत अभूतपूर्व है। तत्कालीन प्रमुख-प्रमुख विद्वानो के नाम इस प्रकार है —महोपाध्याय धनराज, महोपाध्याय पुण्य-सागर, उपाध्याय साधुकीर्ति, उपाध्याय जयसोम, उपाध्याय ज्ञानविमल, उपाध्याय हीरकलश, उपाध्याय सूरचन्द्र, उपाध्याय समयसुन्दर, उपाध्याय गुणविनय, उपाध्याय कुशललाभ, उपाध्याय सहजकीर्ति, पद्मराज, कनकसोम, चारित्रसिंह आदि।

(२४) जिनसिंहसूरि

आचार्य जिनसिंहसूरि युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर थे और साथ ही थे एक असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान्। इनका जन्म विक्रम सवत् १६२५ के मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा को खेतासर ग्राम निवासी चोपडा गोत्रीय शाह चापसी की धर्मपत्नी श्रीचाम्पलदेवी की रत्नकुक्षि से हुआ था। आपका जन्म-नाम मानसिंह था। सवत् १६२३ मे आचार्य जिनचन्द्रसूरि खेतासर पधारे थे, तब आचार्यश्री के उपदेशो से प्रभावित होकर एव वैराग्य वासित होकर आठ वर्ष की अल्पायु मे ही आपने आचार्यश्री के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षावस्था का नाम महिमराज रखा गया था। आचार्यश्री ने सवत् १६४० माघ शुक्ला ५ को जैसलमेर मे आपको वाचक पद प्रदान किया था। "जिनचन्द्रसूरि अकबर प्रतिबोध रास" के अनुसार सम्राट् अकबर के आमन्त्रण को स्वीकार कर सूरिजी ने वाचक महिमराज को गणि समय-सुन्दर आदि ६ साधुओ के साथ अपने से पूर्व ही लाहौर भेजा था। वहाँ सम्राट् आपसे मिलकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ था। सम्राट् के पुत्र शाहजादा सलीम (जहाँगीर) सुरत्राण के एक पुत्री मूल नक्षत्र के प्रथम चरण मे उत्पन्न हुई थी, जो अत्यन्त अनिष्टकारी थी। इस अनिष्ट का परिहार करने के लिए सम्राट् की इच्छानुसार सवत् १६४८ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को महिमराजजी ने अष्टोत्तरी शान्तिस्नात्र करवाया, जिसमे लगभग एक लाख रुपया व्यय हुआ था और जिसकी पूजा की पूर्णाहुति (आरती) के समय शाह-जादा ने १००००/– रुपये चढाये थे।

कश्मीर विजय-यात्रा के समय सम्राट् की इच्छा को मान देते हुए आचार्यश्री ने वाचक महिम-राज को हर्षविशाल आदि मुनियो के साथ कश्मीर भेजा था। उस प्रवास मे वाचक महिमराज की अवर्णनीय उत्कृष्ट साधुता और प्रासगिक एव मार्मिक चर्चाओ से अकबर अत्यधिक प्रभावित हुआ था। उसी का फल था कि वाचकजी की अभिलाषानुसार गजनी, गोलकुण्डा और काबुल पर्यन्त अमारि (अभयदान) उद्घोषणा करवाई और मार्ग मे आगत अनेक स्थानो (सरोवर) के जलचर जीवो की रक्षा करवाई। कश्मीर विजय के पश्चात् भी नगर मे सम्राट् को उपदेश देकर आठ दिन की अमारी उद्-घोषणा कराई थी।

वाचकजी के चारित्रिक गुणो से प्रभावित होकर सम्राट् अकबर ने आचार्यश्री को निवेदन कर बडे ही उत्सव के साथ आपको सवत् १६४९ फाल्गुन कृष्णा दशमी के दिन आचार्यश्री के ही कर-कमलो

से आचार्य पद प्रदान करवाकर जिनसिंहसूरि नाम रखवाया। सूरचन्द्र कृत रास के अनुसार इस पद महोत्सव पर टाक गोत्रीय श्रीमाल राजपाल ने १८०० घोडे दान किये थे।

सम्राट् जहाँगीर भी आपकी प्रतिभा से काफी प्रभावित था। यही कारण है कि अपने पिता का अनुकरण कर सम्राट जहाँगीर ने आपको युगप्रधान पद प्रदान किया था।

सवत् १६७४ मे आपके गुणो से आकर्षित होकर आपका सहवास एव धर्मबोध प्राप्त करने के लिए सम्राट जहाँगीर ने शाही स्वागत के साथ अपने पास बुलाया था। आचार्यश्री भी बीकानेर से विहार कर मेडता आये थे। दुर्भाग्यवश वही सबत् १६७४ पौष शुक्ला त्रयोदशी को आपका स्वर्गवास हो गया।

सवत् १६७१ मे लवेरा मे वाचनाचार्य समयसुन्दर को उपाध्याय पद से विभूषित किया था।

आपकी चरण-पादुकाएँ बीकानेर रेलदादाजी और नाहटो की गवाड मे ऋषभदेवजी के मदिर मे विद्यमान है।

(२५) जिनराजसूरि

आप बीकानेर निवासी बोहिथरा गोत्रीय श्रेष्ठी धर्मसी के पुत्र थे। इनकी माता का नाम धारलदे था। सवत् १६४७ वैशाख सुदी ७ बुधवार, छत्रयोग, श्रवण नक्षत्र मे इनका जन्म हुआ था। इनका जन्म नाम खेतसी था। सवत् १६५६ मिगसर सुदी ३ को इन्होने आचार्य जिनसिंहसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम राजसिंह रखा गया, किन्तु बृहद् दीक्षा के पश्चात् इनका नाम राजसमुद्र रखा गया था। बृहद् दीक्षा यु० श्रीजिनचन्द्रसूरि ने दी थी। आसाउल मे उपाध्याय पद स्वय युगप्रधानजी ने सवत् १६६८ मे दिया था। जैसलमेर मे राउल भीमसिंहजी के सन्मुख आपने तपागच्छीय सोमविजयजी को शास्त्रार्थ मे पराजित किया था। आचार्य जिनसिंहसूरि के स्वर्गवास होने पर ये सवत् १६७४ फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को मेडता मे गणनायक आचार्य बने। इनका पट्ट-महोत्सव मेडता निवासी चोपडा गोत्रीय सघवी आसकरण ने किया था। पूर्णिमा पक्षीय श्रीहेमाचार्य ने सूरिमन्त्र प्रदान किया था। अहमदाबाद निवासी सघपति सोमजी कारित शत्रुजय की खरतरवसही मे सवत् १६७५ वैशाख शुक्ला १३ शुक्रवार को ७०० मूर्तियो की इन्ही ने प्रतिष्ठा की थी। जैसलमेर निवासी भणशाली गोत्रीय सघपति थाहरू कारित जैनो के प्रसिद्ध तीर्थ लौद्रवाजी की प्रतिष्ठा भी सवत् १६७५ मार्गशीर्ष शुक्ला १२ को इन्ही ने की थी। और इनकी ही निश्रा मे सघपति थाहरू ने शत्रुजय का सघ निकाला था। भाणवड पार्श्वनाथ तीर्थ के सस्थापक भी ये ही थे। आपने सवत् १६७७ ज्येष्ठ वदी ५ को चोपडा आसकरण कारापित शान्तिनाथ आदि मन्दिरो की प्रतिष्ठा की थी। और, बीकानेर, अहमदाबाद आदि नगरो मे ऋषभदेव आदि मन्दिरो की प्रतिष्ठा भी की थी। कहा जाता है कि अम्बिकादेवी आपको प्रत्यक्ष थी और देवी की सहायता से ही गागाणी तीर्थ मे प्रकटित मूर्तियो के लेख आपने बाँचे थे। आपकी प्रतिष्ठापित सैकडो मूर्तियाँ आज भी उपलब्ध हैं।

सवत् १६८६ मार्गशीर्ष कृष्णा ४ रविवार को आगरे मे सम्राट् शाहजहाँ से आप मिले थे और वहाँ वाद-विवाद मे ब्राह्मण विद्वानो को पराजित किया था एव स्वदर्शनी लोगो के विहार का जहाँ कही प्रतिषेध था वह खुलवाकर शासन की उन्नति की थी। राजा गजसिंह जी, सूरसिंह जी, असरफखान, आलम दीवान आदि आपके प्रशसक थे।

संवत् १६७८ में फाल्गुन बदी सप्तमी को रगविजय को दीक्षा दी थी और उपाध्याय पद भी दिया था। भविष्य में इन्ही से जिनरगसूरि शाखा का उद्‌गम हुआ। सवत् १७०० मे चातुर्मास हेतु पाटण पधारे और जिनरत्नसूरि को अपने पट्ट पर स्थापित किया। इसी वर्ष आषाढ नवमी को पाटण मे ही आपका स्वर्गवास हुआ।

आप उच्च कोटि के साहित्यकार थे। नैषध काव्य पर ३६ हजार श्लोक परिमित 'जैन राजी' नाम की टीका की एव स्थानाग सूत्र विषम पदार्थ वृत्ति की रचना की थी। 'शालिभद्र चौपाई' आपकी प्रसिद्धतम कृति है जिसकी अनेको सचित्र प्रतियाँ प्राप्त होती है। छोटी-मोटी कृतियाँ एव सख्याबद्ध स्तवन आदि अनेको प्राप्त है जिनका सग्रह जिनराजसूरि कृति कुसुमाजली के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

(२६) जिनरत्नसूरि

आचार्य श्रीजिनराजसूरि के पट्ट पर आचार्य श्रीजिनरत्नसूरि विराजे। आप सैरुणा ग्राम निवासी लूणीया गोत्रीय साह तिलोकसी के पुत्र थे। आपकी माता का नाम तारादेवी था। आपका जन्म सम्वत् १६७० मे हुआ था। आपका जन्म नाम रूपचद था। निर्मल वैराग्य के कारण आपने अपनी माता और भाई रतनसी के साथ सम्वत् १६८४ वैशाख सुदी ३ में दीक्षा ग्रहण की थी। आपको जोधपुर मे आचार्यश्री से वासक्षेप की पुडिया मगाकर उपाध्याय साधुसुन्दर ने दीक्षा प्रदान की थी। भणसाली गोत्रीय मत्री सहसकरण के पुत्र मत्री जसवन्त ने दीक्षोत्सव किया था। दीक्षा के पश्चात् इन्होने यावज्जीव कढाई विगय का त्याग कर दिया था। भट्टारक श्री जिनराजसूरिजी ने बडी दीक्षा देकर "रत्नसोम" नाम प्रसिद्ध किया।

आपके गुणो से योग्यता का निर्णय कर जिनराजसूरिजी ने अहमदाबाद बुलाकर आपको उपाध्याय पद प्रदान किया। इस समय जयमाल, तेजसी ने बहुत-सा द्रव्य व्यय कर उत्सव किया। सम्वत् १७०० आषाढ शुक्ला नवमी को पाटण मे आचार्य श्रीजिनराजसूरि ने स्वहस्त से ही सूरिमत्र प्रदान कर अपना पट्टधर घोषित किया। पाटण से विहार कर जिनरत्नसूरिजी पाल्हणपुर पधारे। वहाँ सघ ने हर्षित हो उत्सव किया। वहाँ से स्वर्णगिरि के सघ के आग्रह से वहाँ पधारे। श्रेष्ठि पीथा ने प्रवेशोत्सव किया। वहाँ से मरुधर मे विहार करते हुए सघ के आग्रह से बीकानेर पधारे। नथमल बेणे ने बहुत-सा द्रव्य व्यय करके प्रवेशोत्सव किया। वहाँ से उग्र विहार करते हुए सम्वत् १७०१ का वीरमपुर मे सघाग्रह से चातुर्मास किया।

चातुर्मास समाप्त होते ही सम्वत् १७०३ मे बाडमेर आये। सघ के आग्रह से चातुर्मास वही किया। वहाँ से विहार कर सम्वत् १७०३ का चातुर्मास कोटडा ने किया। चातुर्मास समाप्त होने परवहाँ से जैसलमेर के श्रावको के आग्रह से जैसलमेर आये। साह गोपा ने प्रवेशोत्सव किया। सघ के आग्रह से सम्वत् १७०४ से १७०७ तक के चार चातुर्मास आपने जैसलमेर ही किये। वहाँ से आगरा आये। मानसिंह ने बेगम की आज्ञा प्राप्त कर सूरिजी का प्रवेशोत्सव बडे समारोह से किया। सम्वत् १७०८ से १७११ चार चातुर्मास आगरा मे ही किये। आप शुद्ध क्रिया-चारित्र के अभ्यासी थे। आपने अनेक नगरो मे विहार करके जैन सिद्धान्तो का प्रचार प्रसार किया और सम्वत् १७११ श्रावण कृष्णा सप्तमी के दिन आगरा में आप देवलोक पधारे। अन्त्येष्टि क्रिया के स्थान पर श्रीसंघ ने स्तूप-निर्माण करवाया था।

(२७) जिनचन्द्रसूरि

जिनरत्नसूरि के पट्ट पर जिनचन्द्रसूरि आसीन हुए। आपका बीकानेर निवासी गणधर चोपडा गोत्रीय साह सहसकिरण की पत्नी सुपियारदेवी की कुक्षि से सम्वत् १६६३ मे जन्म हुआ था। आपका जन्म नाम हेमराज था। सम्वत् १७०५ मिगसर सुदी बारस को जैसलमेर मे आपकी दीक्षा हुई और आपका नाम रखा गया हर्षलाभ। सम्वत् १७११ मे जिनरत्नसूरि का स्वर्गवास होने पर उनकी आज्ञानुसार भादवा बदी सप्तमी के दिन राजनगर मे नाहटा गोत्रीय साह जयमल्ल तेजसी की माता कस्तूरबाई कृत महोत्सव द्वारा आपकी पद स्थापना हुई। गच्छवासी यतिजनो मे प्रविष्ट होती शिथिलता को दूर करने के लिए आपने सम्वत् १७१८ मिती आसोज सुदी दशमी को बीकानेर मे व्यवस्था पत्र लागू किया, जिससे शैथिल्य का परिहार हुआ।

आपने अपने शासनकाल में अनेको को दीक्षाएँ दी और अनेक स्थानो मे विचरण करते हुए सवत् १७६२ मे सूरत पधारे। सवत् १७६३ मे आपका सूरत मे ही स्वर्गवास हुआ।

(२८) जिनसुखसूरि

आचार्य जिनचन्द्र के बाद श्रीजिनसुखसूरि पट्ट पर विराजे। ये फोगपत्तन निवासी साहलेचा बोहरा गोत्रीय साह रूपसी के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सुरूपा था। इनका जन्म सवत् १७३९ मार्गशीर्ष शुक्ला १५ को हुआ था। सवत् १७५१ की माघ सुदी पचमी को आपने पुण्यपालसर ग्राम मे दीक्षा ग्रहण की। आपका दीक्षा नाम सुखकीर्ति था। दीक्षा नदि सूची के अनुसार आपकी दीक्षा सवंत् १७५२ फाल्गुन वदी पाचम को बीकानेर मे कीर्तिनन्दि मे हुई थी। सूरत निवासी चौपडा गोत्रीय पारख सामीदास ने ग्यारह हजार रुपये व्यय करके सवत् १७६३ आषाढ सुदी एकादशी के दिन आपका पट्ट महोत्सव किया था।

सूरि पदप्राप्ति के अनन्तर कुछ वर्ष गुजरात मे विचरे और प्रचुर परिमाण मे दीक्षाएँ सवत् १७६५, १७६६, १७६७, १७६८ मे क्रमश खभात, पाटण और पालनपुरादि मे अनेक बार हुई। सवत् १७७० में साचोर, राडधरा, सिणधरी, जालौर, थोभ, पाटोधी आदि मे बहुत सी दीक्षाएँ हुई। सवत् १७७१ से १७७३ तक जैसलमेर, पोकरण मे तथा १७७४ से १७७९ उदरामपुर, बीकानेर, धडसीसर, नवहर तक अनेक नन्दियो मे बहुत-सी दीक्षाएँ हुई। सवत् १७७३ मे नवहर मे मिगसर ३ को इन्द्रपालसर के सेठिया भीमराज को दीक्षा देकर भक्तिक्षेम नाम से प्रसिद्ध किया।

फिर एक समय घोघाबिन्दर मे नवखण्डा पार्श्वनाथ की यात्रा करके आचार्य श्रीजिनसुखसूरि सघ के साथ स्तम्भतीर्थ जाने के लिए नाव मे बैठे। देवगति से ज्यो ही नाव समुद्र के बीच मे पहुँची कि उसके नीचे की लडकी टूट गई। ऐसी अवस्था मे नाव को जल से भरती देखकर आचार्यश्री ने अपने इष्टदेव की आराधना की। तब श्रीजिनकुशलसूरि की सहायता से एकाएक उसी समय एक नवीन नौका दिखाई दी। उसके द्वारा वे समुद्र को पार कर सके। फिर वह नौका वही अदृश्य हो गई।

इस प्रकार श्री शत्रुजय आदि तीर्थो की यात्रा करने वाले, सब शास्त्रो के पारगामी तथा शास्त्रार्थ मे अनेक वादियो को परास्त करने वाले आचार्य श्रीजिनसुखसूरि, तीन दिन का अनशन पूर्ण कर सवत १७८० ज्येष्ठ कृष्णा दशमी को श्रीरिणी नगर मे स्वर्ग सिधारे। उस समय देवो ने अदृश्य रूप मे बाजे बजाये, जिनके घोष को सुनकर उस नगर के राजा तथा सारी प्रजा चकित हो गई थी। अन्त्येष्टि क्रिया के स्थान पर श्रीसघ ने एक स्तूप बनाया था, जिसकी प्रतिष्ठा माघ शुक्ला षष्ठी को जिनभक्तिसूरि ने की थी।

आपकी रचित जैसलमेर चैत्य परिपाटी एव सवत् १७६७ में पाटण में रचित जैसलमेरी श्रावको के प्रश्नो के उत्तरमय सिद्धान्तीय विचार ग्रन्थ प्राप्त है।

(२६) जिनभक्तिसूरि

जिनसुखसूरि के पट्ट पर श्रीजिनभक्तिसूरि आसीन हुए। इनके पिता श्रेष्ठि गोत्रीय हरिचन्द्र थे, जो इन्द्रपालसर नामक ग्राम के निवासी थे। इनकी माता थी हरसुखदेवी। सवत् १७७० ज्येष्ठ सुदी तृतीया को आपका जन्म हुआ था। जन्म नाम आपका भीमराज था। और, सवत् १७७९ माघ शुक्ला सप्तमी को दीक्षा ग्रहण के बाद आपका दीक्षा नाम भक्तिक्षेम रखा गया था। सवत् १७८० ज्येष्ठ बदी तृतीया के दिन रिणीपुर मे श्रीसघकृत महोत्सव करके गुरुदेव ने अपने हाथ से इन्हे पट्ट पर बैठाया था। तदनन्तर आपने अनेक देशो मे विचरण किया।

सवत् १८०४ ज्येष्ठ सुदी चौथ को माण्डवी बन्दर में आपका स्वर्गवास हुआ। जिस स्थान पर आपका दाह सस्कार किया गया था उस अग्नि-सस्कार की भूमि मे उस रात्रि को देवो ने दीपमाला की। सवत् १८५२ मे जैसलमेर स्थित अमृत धर्मशाला मे वाचक क्षमाकल्याणजी ने आपके चरण स्थापित किये।

३०. जिनलाभसूरि

आचार्य जिनभक्ति सूरि के पश्चात् उनके पट्ट पर जिनलाभसूरि आरूढ हुए। ये बीकानेर निवासी बोहिथरा गोत्रीय साह पचायन दास के पुत्र थे, पद्मादेवी इनकी माता थी। आपका जन्म सवत् १७८४ श्रावण सुदी पचम को बापेऊ ग्राम में हुआ था। जन्म नाम लालचन्द्र था। इन्होने सवत् १७९६ ज्येष्ठ सुदी छठ को जैसलमेर मे दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम लक्ष्मीलाभ रखा गया। जिनभक्तिसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् सवत् १८०४ ज्येष्ठ सुदी पचम को माण्डवी बदर मे आपकी पद स्थापना हुई। इस अवसर पर आपका नाम जिनलाभसूरि रखा गया। पद स्थापना महोत्सव छाजहड गोत्रीय साह भोजराज ने किया।

इस प्रकार परम सौजन्य, सौभाग्यशाली, महाउपकारी, अनेक सद्गुणो से सुशोभित, पाद-विहारी, जिनलाभसूरि ने सवत् १८३४ आश्विन बदी दशमी के दिन बूढानगर मे देवगति प्राप्त की। आपकी रचनाओ मे आत्मप्रबोध प्रकाशित है तथा दो चौबीसियाँ व स्तवन आदि प्राप्त है। आपके शासन-काल मे कई प्रमुख विद्वान थे। इनमे से महोपाध्याय रामविजय (रूपचन्द्र गणि) शिवचन्द्रोपाध्याय, महोपाध्याय क्षमाकल्याण आदि प्रमुख है।

卐 卐

चार दादा गुरुओं का संक्षिप्त जीवन-परिचय

(१) युगप्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरि

जन्म सवत्	११३२
जन्म गाँव	धुधुका (गुजरात)
जन्म नाम	सुलतान
पिता	वाछिग सा० मत्री
माता	वाहडदेवी
गोत्र	हुबड
दीक्षा सम्वत्	११४१
गुरु नाम	श्री जिनवल्लभसूरि
आचार्यपद सम्वत्	११६९
स्वर्गवास	आषाढ शुक्ला ११, सम्वत् १२११
स्वर्ग-भूमि	अजमेर

(२) श्री मणिधारी दादा जिनचन्द्रसूरि

जन्म सम्वत्	११९७
जन्म गाँव	जैसलमेर
जन्म नाम	सूर्यकुमार
पिता	रासल
माता	देल्हण दे
गोत्र	महतीयाण
दीक्षा सम्वत्	१२०३
गुरु नाम	श्री जिनदत्तसूरि
आचार्यपद सम्वत्	१२०५
स्वर्गवास	भादवा कृष्णा १४, सम्वत् १२२३
स्वर्ग-भूमि	दिल्ली

(३) प्रकट प्रभावी दादा श्री जिनकुशलसूरि

जन्म सम्वत्	१३३७
जन्म गाँव	गढ सिवाणा
जन्म नाम	करमण
पिता	जेसल
माता	जयतश्री
गोत्र	छाजेड
दीक्षा सम्वत्	१३४७
गुरु नाम	श्री कलिकाल केवली जिनचन्द्रसूरि
आचार्यपद सम्वत्	१३७७
स्वर्गवास	फाल्गुण कृष्णा अमावस्या, स. १३८९
स्वर्गभूमि	देराउर

(४) अकबर प्रतिबोधक दादा श्री जिनचन्द्रसूरि

जन्म सम्वत्	१५९५
जन्म गाँव	खेतसर
जन्म/नाम	सोमचन्द्र
पिता	जेल्हागर
माता	श्रियादेवी
गोत्र	रिहड
दीक्षा सम्वत्	१६०४
गुरु नाम	श्री जिनमाणिक्यसूरि
आचार्यपद सम्वत्	१६१२
स्वर्गवास	आसोज कृष्णा २, सम्वत् १६७०
स्वर्गभूमि	ब.लाड़ा

(दादा गुरुदेव . भ्रुनपति दुकलिया से सादर)

—दर्शनाचार्य साध्वी शशिप्रभाश्री
(प्र० सज्जनश्री जी म० की सुशिष्या, आगम एव दर्शनशास्त्र की विदुषी :
प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ की मुख्य सम्पादिका)

क्रान्ति के विविध रूप तथा धार्मिक क्रान्तिकारक

अनादि काल से इस जगत मे परिवर्तन होता है। यहाँ सभी पदार्थ, कार्यव्यवस्थाएँ भले ही वे व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक हो, वैयक्तिक हो या सामाजिक हो, अथवा राजनैतिक हो या धार्मिक, उनमे परिवर्तन होता ही रहता है। आत्मा से लेकर जड पदार्थों मे उत्थान-पतन ह्रास विकासादि की क्रिया निरन्तर गतिशील रहती है। अनादिकालीन सनातन शाश्वत स्वभाव सभी पदार्थों—द्रव्यो का कभी परित्याग नही करता। जगत की यह स्वाभाविक स्थिति है। किन्तु यहाँ क्रान्ति सभी द्रव्यो मे, भले वे जड हो या चेतन चलती रहती है।

क्रान्ति शब्द की व्युत्पत्ति और भावार्थ—भ्वादि गणीय "क्रमु" पादविक्षपे धातु से स्त्रियाक्तित्" सूत्र से क्तिन् प्रत्यय लगाकर क्रान्ति शब्द की निष्पत्ति होती है जिसका सामान्य अर्थ होता है घूमना, चलना, भ्रमण करना, स्थानान्तरण करना, प्रगति करना। और इस क्रमु के उपसर्ग लगाने से तो भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप वनकर अर्थ भी अनेक प्रकार के हो जाते है। जैसे उत्क्रान्त, विक्रान्त, उत्क्रम, पराक्रम, अपक्रम, अनुक्रम, आक्रमण, सक्रमण, परिक्रमण-प्रतिक्रमण आदि अनेक शब्द है, जो पृथक-पृथक अर्थो मे प्रयुक्त होते हैं। धातु के मूल अर्थ मे परिवर्तन हो जाता है। क्रान्ति कई प्रकार की होती है। यथा—भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक इत्यादि। वर्तमान व्यवस्था मे परिवर्तन होना क्रान्ति है।

भौतिक—पचभूत, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, इन पाँच तत्वो मे दो प्रकार की क्रान्ति होती है। प्रथम स्वभाव से, दूसरी मनुष्य द्वारा प्रायोगिक। जैसा कि आज वैज्ञानिक कर रहे हैं और इन तत्वो मे मनुष्यादि के लिए विभिन्न सुख-सुविधाएँ प्रदान करने वाले अन्नादि का निर्माण भोज्यवस्तुएँ, औषधियाँ, पीने के पदार्थ, नवीन प्रकार के सुख देने वाली, मनोरजन करने वाली अनेक विधाए टेलीफोन, टेलीविजन, सिनेमा, नाटक, रेल, मोटर, वायुयान, अन्तरिक्षयान आदि का सृजन। यहाँ तक कि यन्त्र मानव रोवोट, टेस्ट ट्यूब मे मानव शिशु वनाने तक मे सफलता प्राप्त करली है। और मनुष्य के विचारो तक मे

परिवर्तन कर देने वाली औषधियो और इन्जेक्शनो का निर्माण कर लिया है। जीव तथा जड, स्थावर जगम सभी को नष्ट कर देने वाले अनेक अस्त्र-शस्त्रो का निर्माण भी इस भौतिक क्रान्ति की देन है।

स्वाभाविक भौतिक क्रान्ति—अतिवृष्टि, वज्रपात, तूफान, भूकम्प आदि से होती है। किन्तु इससे उतनी क्रान्ति नही होती जितनी कि मनुष्य ने विज्ञान द्वारा करने की योजनाएँ बनायी है। क्योकि उन अस्त्रो से जगत् प्रलय होने मे एक मिनट भी नही लगेगा।

सामाजिक क्रान्ति—संसार मे निवास करने वाले भाँति-भाँति के रगरूपधारी मनुष्यादि देश-कालादि की परिस्थितियो के अनुसार अपना समाज—एक समूह बनाकर उसके रहन, सहन, आचार, व्यवहार आदि की एक आचार संहिता रचकर उसके अनुसार जीवन-यापन करते है। जिस व्यक्ति से आचार सहिता का पूर्ण पालन नही होता, वह नियम भग करके स्वेच्छाधारी बना मनुष्य केवल अपना ही स्वार्थ सिद्ध करने लग जाता है। तब सामाजिक क्रान्ति होती है। कभी-कभी तो यह क्रान्ति उन्नति का कारण न बनकर मनुष्य जाति को अवनति के गहरे गर्त में ढकेल देती है। जिससे मनुष्य का जीवन अत्यन्त अशान्त और दुखमय बन जाता है। आज का मनुष्य तो नैतिक और धार्मिक नियमो का भग करना ही क्रान्ति मान बैठा है।

आर्थिक क्रान्ति—जब अर्थ का एक स्थान या व्यक्ति मे पु जीकरण होने लगता है, जनता दीन, दरिद्र, अभावग्रस्त बन जाती है तो आर्थिक क्रान्ति होती है। प्राय यह क्रान्ति कभी-कभी तो मनुष्यो की हत्या या व्यक्ति की, स्वतन्त्रता का अपहरण कर उसे किसी व्यवस्थापक—शक्तिशाली के सर्वथा अधीन रहने को बाध्य कर देती है।

पारिवारिक क्रान्ति—परिवार का मुखिया या कोई सदस्य जब परिवार के प्रति अपना उत्तरदायित्व भूलकर स्वय की सुख-सुविधा का ही ध्यान रखता है या अनैतिक आकाक्षाओ की पूर्ति की ओर उन्मुख होकर वैसा आचरण करने लग जाता है तो परिवार के सदस्य उससे पराड्मुख हो जाते हैं। और व्यक्ति स्वय भी अकेला पड जाता है। परिवार मे भी विघटन होकर छिन्न-भिन्न होने लगता है। ऐसे कठिन समय मे परिवार का कोई बुद्धिमान, सदाचारी, विवेकी, विनयी व्यक्ति अपने मधुर व्यवहार द्वारा विघटन को रोककर परिवार के पुनर्गठन द्वारा सुव्यवस्थित बनाकर, वास्तविक क्रान्ति —उत्क्रान्ति कर लेता है अन्यथा परिवार भंग हो जाते है। और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मे सुख खोजने वाले व्यक्ति अधिक परतन्त्र और परिवार से कटकर रहने के कारण स्वय को अकेला सा अनुभव करते हुए दिमागी टेन्शन मे रहने के कारण रोगो से ग्रस्त हो, दुखी जीवन बिताने को बाध्य हो जाते हे।

वैयक्तिक क्रान्ति—व्यक्ति जब अपने जीवन मे से समस्त दोषो विकारो, व्यसनो को निष्क्रान्त कर देता है, उत्तम विचारो, सद्गुणो और सत्कर्मो की ओर अग्रसर होता है तो वह व्यक्तिगत क्रान्ति होती है। वर्षो के ही नही अनन्तकाल से परिचित/सेवित कोधादि कषाय, इन्द्रियजनित सुख सामग्रियो, मन को भाने वाले सभी पदार्थो का परित्याग करना, सभी प्रकार के व्यसनो का क्षणमात्र मे त्याग कर देना वीर आत्माओ के लिए सामान्य कार्य है। ऐसो के इतिहास से भारतीय इतिहास के पत्र स्वर्णाक्षरो से भरे हैं।

राजनैतिक क्रान्ति—अत्याचारी शासक के विरुद्ध जनता विद्रोह कर उसे सत्ता से विहीन कर देती है। या उसे कारागार में डाल देती है। अथवा सशस्त्र क्रान्ति करे तो दोनो ओर से कई व्यक्ति मारे जाते है। जो अधिक बलवान् हो वह सत्ता हस्तगत कर शासक बन जाता है। सशस्त्र न हो तो बहुमत के अनुसार सत्ता मिल जाती है। और वही शासक बन जाता है।

धार्मिक क्रान्ति—धर्म के दो तत्व है। १ दर्शन २ आचार। दार्शनिक क्रान्ति जगत के और जगत मे विद्यमान स्थावर जगम जीवो एव पचभूत आदि के उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय के विषय को लेकर वैचारिक क्रान्ति आदिकाल से होती रही है और वर्तमान मे भी कई दार्शनिक है जो इस सम्बन्ध मे अपने-अपने चिन्तन प्रस्तुत करते है। ससार मे दार्शनिको की प्राचीन अथवा अर्वाचीन मान्यताएँ, जो प्रत्यक्षादि प्रमाणो और तर्कों की कसौटी पर खरी उतरती हो, अकाट्य प्रमाणो और तर्क द्वारा सिद्ध हो, जिनका वचन युक्तिपूर्ण हो वे ही दार्शनिक ससार मे अमर बनते है। और बुद्धिमान व्यक्ति उन्ही के वचनो पर विश्वास करके आत्मबल की साधना से अपना जीवन सफल कर लेते है। दूसरी आचार सम्बन्धी क्रान्ति तत्कालीन शिथिलाचार के विरुद्ध होती रही है। और अतीत से वह जगत के विभिन्न सम्प्रदायो मे होती रही है। और वर्तमान मे भी यह प्राय होती रहती है। कई बार तो क्रान्ति के नाम पर मूल दार्शनिक मान्यताओ और आगमिक सत्यो को भी स्वपूजाकाक्षीजन नकार जाते है। और 'मेरा तो सच्चा' की धुन मे सर्वज्ञ निरूपित सिद्धान्तो को भी तथा तीर्थंकर भगवन्त द्वारा आचरित कार्यो को भी पाप कहकर जैनशासन के प्रति घोर अनीति करते भयभीत तक नही होते, जैन इतिहास मे वे निह्नव कहलाते है।

शिथिलाचार के विरुद्ध क्रान्ति होती रही है। समय-समय पर होने वाले क्रियोद्धार इसके साक्षी है। काल के प्रभाव से चतुर्विध सघ मे आचार, आहार, विहार-व्यवहार सम्बन्धी शिथिलता आती रहती है। युगान्तरकारी पुरुष वे ही कहलाये जो स्वय सयम-तप के कठोर पथ पर चलते हुए जनता के सामने प्रत्यक्ष आदर्श उपस्थित करके उसे अपनी ओर उन्मुख किया तथा साथ ही विद्वत्ता के बल पर अपने आचार-विचार और आगमिक ज्ञान सूत्र सिद्धान्तो की बातो को बडे-बडे नृपतियो व शासको के सामने अन्य दार्शनिको से वाद-विवाद करके सिद्ध किया और विविध प्रकार के विरुद प्राप्त किये।

खरतर विरुद भी एक ऐसा ही विरुद है जिसे श्री उद्योतनसूरि के प्रशिष्य और श्री वर्द्धमान-सूरि के शिष्य श्री जिनेश्वरसूरि ने प्राप्त किया था। श्री वर्द्धमान जिनेश्वरसूरि के समय अणहिलपुर पाटन के नृपति दुर्लभराज भीम पर चैत्यवासी साध्वाभासो का बडा प्रभाव था। उन्होने राजा से यह आज्ञा पत्र ले रखा था कि पाटण मे हमारे अतिरिक्त कोई भी जैन साधु प्रवेश नही करेगा। चैत्यवासी जैन मन्दिर मे रहते थे। और साध्वाचार के विपरीत उनके आचरण थे। सामान्य नीतिवान गृहस्थ से भी पतित अवस्था तक उनका पतन हो चुका था। यहाँ तक कि वेश्यागमन, मद्यपान, द्यूतरमण आदि व्यसनो तक के सेवन मे आकण्ठ मग्न हो गये थे। पवित्र जैन देरासर और उपाश्रय उनकी रासलीलाओ के क्रीडा-गण बने चुके थे। देवद्रव्य का भक्षण करना उनका भोगो मे दुरुपयोग करना तो साधारण बात थी। मात्र अपने मन्त्र-तन्त्र और विद्याबल से उन्होने बडे-बडे नृपो पर अपना प्रभाव जमा रखा था। पतित अवस्था की पराकाष्ठा यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि मुनिवेशधारी रत्नाकरसूरि को नगर के उपवन मे घूमने गये हुए एक मन्त्री ने वेश्या के साथ भ्रमण करते, पान का बीडा मुख मे दबाये, इत्र पुष्पमाला आदि धारण किये हुए देखा और वाहन से उतरकर मन्त्री ने उन्हे सविधि वन्दन किया। जिससे उनकी आत्मा कांप

उठी और वैसे जीवन से भारी ग्लानि हो गई। वे श्री शत्रुञ्जय तीर्थाधिराज पर चले गये। पुन. सर्वविरति धारण कर घोर तपस्या द्वारा अपने पापो का प्रायश्चित्त किया। ऐसी अनेक घटनाओ से मध्यकालीन इतिहास भरा पडा है।

एक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व—महान् शासन प्रभावक जिनेश्वर सूरि १०,११वी शताब्दी के प्रकाण्ड विद्वान, बिशुद्ध सयमी आबू पर्वत पर विमल मत्रीकारित विमल वसही मे प्रतिष्ठा कराने वाले श्री वर्द्धमान सूरि के शिष्य थे। जिन्होंने इन चैत्यवासियों के प्रति जिहाद बोला चैत्यवासियो की धज्जियाँ उडा देने वाले सघ पट्टक ग्रन्थ के कर्त्ता श्री जिनवल्लभसूरि आपके ही चतुर्थ पट्टधर हुए हैं। गुरुजी भी तथा अनेक गुरुभाई बुद्धिसागर सूरि आदि साथ ही थे। उत्कृष्ट चारित्रपालन करने वाला यह साधुसमूह उस समय मारे जैन समाज मे सुविहित पक्ष नाम से सुविख्यात था। इन्ही जिनेश्वरसूरि के व्यक्तित्व की विद्वत्ता, सयमदृढता और वाक्कुशलता ने पाटण की राजसभास्थित सुप्रसिद्ध चैत्यवासी सूराचार्य के साथ वाद-विवाद मे विजय माला धारणा करायी। सुप्रसिद्ध-विद्वान श्रीजिनविजयश्री ने इसी प्रसग को लेकर लिखा है—

"शास्त्रोक्त यतिधर्म के आचार और चैत्यवासी यतिजनो के उक्त व्यवहार मे परस्पर बडा असामञ्जस्य देखकर और श्रमण भगवान महावीर उपदिप्ट श्रमणधर्म की इस प्रकार प्रचलित दशा से उद्विग्न होकर श्री जिनेश्वरसूरि ने इसके प्रतिकार के निमित्त अपना एक सुविहित मार्ग प्रचारक तथा मुनिजनो का गण स्थापित किया और इन चैत्यवासियो के विरुद्ध एक प्रवल आन्दोलन शुरू किया। चौलुक्य नृपति दुर्लभराज की सभा मे चैत्यवासी पक्ष के समर्थक अग्रणी सूराचार्य जैसे महाविद्वान और प्रवल सत्ताशील आचार्य के साथ शास्त्रार्थ कर उसमे विजय प्राप्त की। उनकी शिष्य सन्तति वहुत वडी और अनेक शाखाओ-प्रशाखाओ मे फैली हुई थी। उसमे बडे-बडे विद्वान क्रियानिष्ठ और गुणगरिष्ठ आचार्य उपाध्याय आदि समर्थ साधु पुरुष हुए। नवागवृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि, सवेगरगशाला आदि ग्रन्थो के प्रणेता श्री जिनचन्द्रसूरि, आदिनाथ चरित्र रचयिता श्री वर्द्धमान सूरि, पार्श्वनाथ चरित्र एव महावीर चरित्र के कर्ता गुणचन्द्र गणि (अपरनाम देवचन्द्रसूरि) सघ पट्टकादि अनेक ग्रन्थो के प्रणेता श्री जिनवल्लभसूरि इत्यादि अनेकानेक बडे-बडे धुरन्धर विद्वान और शास्त्रकार जो उस समय उत्पन्न हुए वे इन्ही जिनेश्वरसूरि के शिष्यो-प्रशिष्यो मे थे।

चैत्यवासियो के गढ पाटण (गुजरात) की राजसभा मे शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त करने और राजा द्वारा "आखरे-सच्चे हैं" कहने पर खरतर कहलाने लगे। और इन श्री जिनेश्वरसूरि का नाम मात्र पाटन मे ही नही अपितु समस्त गुजरात, मारवाड, मेवाड, मालव, पजाब, सिन्ध आदि देशो मे विख्यात हो गया। इस कार्य से अनेक चैत्यवासी आचार्य उपाध्याय और यति गणी आदि ने चैत्यवास का त्यागकर सुविहित मार्ग का अवलम्वन ले कठोर सयम का पालन करने मे तत्पर बने। इनमे से कितने ही आपके शिष्य वने ? कितने ही आचार्यो ने अपने गच्छ गुरुपरम्परा मे रहकर क्रियोद्धार किया। हजारो ही नही लाखो व्यक्तियो ने आपके व आपकी शिष्य परम्परा का त्याग, तप, सयम, और प्रभावशाली उपदेशो से चमत्कारी वासक्षेप से प्रभावित होकर जैनत्व धारण किया। मास, मदिरा, शिकार आदि व्यसनो का त्यागकर ओसवाल जाति मे, श्रीमाल जाति मे, सम्मिलित हो गये। वर्द्धमान सूरि से लेकर शताब्दियो तक इस पट्ट परम्परा के आचार्यो ने जो जैन जाति मे वृद्धि की वह जैन शासन को एक अनुपम और अभूतपूर्व

देन है। इतिहास तो इसका साक्षी है ही पर जीती, जागती, ओसवाल, श्रीमाल आदि कई जातियाँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। चैत्यवास उन्मूलन के साथ मन्दिर की व्यवस्थाओ, पूजा पद्धतियो मे भी शास्त्रानुकूल परिवर्तन हुए। विधिचैत्य वने जिनमे रोशनियाँ दण्डिया रास आदि तथा रात्रि जागरण निषिद्ध किये गये। तरुणी स्त्रियो को प्रभु की पूजा निषिद्ध की गई। सध्या की आरती होने के तुरन्त वाद जैन मन्दिरो के द्वार 'मगल' (वन्द) कर दिये जाते थे। मन्दिर की चौरासी आशातनाएँ न हो, इसका कठोरता से पालन होने लगा। सचमुच उस समय जैन शासन को, सघ को, जिन-प्रासादो को, पतन के गहरे गर्त से उद्धार करने और सनातन विशुद्ध श्रमण सस्कृति को पुन प्रनिष्ठित करने का भागीरथ कार्य स्वनामधन्य आचार्य जिनेश्वरसूरि ने किया, जो जैन इतिहास के स्वर्णाक्षरो मे अकित है। इस परम्परा के अनेक वहुश्रुत, कवि शासन प्रभावक, ग्रन्थकार साधु-साध्वी और गृहस्थ विद्वान विश्वविख्यात हो चुके है।

इनमे से कुछ का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत छोटे से लेख मे देने का लोभ सवरण नही किया जा सकता। अत इस परम्परा मे सुप्रसिद्ध महान आचार्यो का, युग प्रवर्त्तक महान् आत्माओ का परिचय इस प्रकार है। सुविहित खरतरगच्छ के महान आचार्य श्री जिनेश्वरसूरि थे। इनका परिचय ऊपर आ चुका है। ये साहित्यकार भी थे। इन्ही के पट्टधर श्री अभयदेवसूरि थे। जिन्होने श्री स्तम्भनक पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट की तथा नवागी टीकाकार के नाम से जगविख्यात है। इन्ही की पचाशक वृत्ति, उववाईसूत्र वृत्ति, प्रज्ञापना तृतीय पद सग्रहणी, पट्स्थान, भाष्य, आगम अष्टोतरी, जयतिहुअण स्तोत्र आदि अनेक कृतियाँ उपलब्ध है। इन्ही के गुरुभ्राता श्री जिनचन्द्रसूरि थे। इनकी रचनाएँ (सवेग-रगशाला) श्रावक विधि आदि अनेक है। इनके पद पर (श्री अभयदेवसूरि की आज्ञा से) श्री देवभद्रसूरि ने चित्तौड मे श्री जिनवल्लभसूरि को पद पर आचार्य वनाया। इन्होने बागड देश मे विचरण कर १०,००० अजैनो को प्रतिवोध देकर जैन बनाया। इन्होने पिण्डविशुद्धि, षडशीति चतुर्थ कर्म-ग्रन्थ, सघपट्टक, सूक्ष्मार्थ विचार-सार आदि अनेक ग्रन्थो की रचना की। धारा नगरी के नृपति श्री नरवर्म को अपनी लोकोत्तर प्रतिमा से चमत्कृत किया।

इनके पट्टधर "वडे दादाजी" के नाम से सुविख्यात जिनदत्तसूरि ने एक लाख तीस हजार अजैनो को जैन वनाया। अम्बिकादेवी ने युग-प्रधान पद दिया। सात राजाओ को प्रतिवोध देकर जैन वनाया। वावन वीर तथा चौसठ योगनियाँ एव भैरव आपके आज्ञाकारी भक्त थे। इनके विषय मे नाहटा वन्धु लिखित चरित्र देखना चाहिये। गुरुदेव ने कई ग्रन्थो का सृजन किया है, जिनमे गणधर सार्द्ध शतक, उपदेश रसायन सम्यक्त्व व्रतारोपण विधि (चैत्यवन्दन कुलक) गणधर, सप्तति, चर्चरी आदि प्रमुख है।

मणिधारी दादा के नाम से प्रसिद्ध श्री जिनचन्द्र सूरि इनके पट्टधर थे। जिन्होने महत्तयाण जाति को जैन वनाया। महान सम्राट इन्द्रप्रस्थ के तोमरराज मदनपाल (अनगपाल) को प्रभावित किया था। क्योकि इस समय अनगपाल दिल्ली के राजा थे, ऐसा इतिहासप्रसिद्ध है। (जैन साधु प्राय पर्याय-वाची शब्दो का या प्रचलित नाम की अपेक्षा उसका सस्कृत रूप ही अपनी रचनाओ मे प्रयुक्त करते थे।) यह राजा आपका परमभक्त था।

अतिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान की राज्यसभा मे तथा अन्यत्र ३६ वार विजय प्राप्त करने वाले श्री जिनपतिसूरि भी महान विद्वान और प्रतिभाशाली युगवर आचार्य थे। इन्होने सघ पट्टक वृति समाचारी आदि अनेक ग्रन्थो का सृजन किया। इनके पट्ट पर श्री जिनेश्वरसूरि द्वितीय विराजमान हुए। अनेक जिनविम्वो की प्रतिष्ठा और कई भव्यात्माओ की भागवती दीक्षा आपके कर-कमलो मे

सम्पन्न हुई। आपने "श्रावक धर्मविधि" नामक ग्रन्थ की रचना की। आपके पट्टधर जिनप्रबोधसूरि थे। इन्होने "कातन्त्र-व्याकरण" पर "दुर्गपदप्रबोध" नामक वृत्ति का निर्माण किया।

आपके पट्टाधीश 'कलिकाल केवली विरुदधारक, अनेक राजाओ के प्रतिबोधक कुतुबुद्दीन बादशाह को प्रभावित करने वाले सुविहित नामधेय जिनचन्द्र हुए। इन्होने कई दीक्षाएँ, प्रतिष्ठाएँ, सघ यात्राएँ आदि धर्मकार्य करवाये। इनके समय के खरतरगच्छ सभी प्रकार से उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान था। ये मारवाड, गुजरात, सिन्धु, पजाब, सपादलक्ष, मरुस्थल, वागड(हरियाणा), दिल्ली, मथुरा, हस्तिनापुर आदि प्रदेशो मे विचरे। इनके विषय मे श्री जिनकुशलसूरि जो इन्ही के पट्टधर थे लिखते हैं कि ये .

लद्धिये सिरि गोयम स्वाई गुणेहिं वयरसामि गुरु।
सीलेण थूलिभद्दो पभावणाए सुहत्थि ॥

अर्थात्– वे (कलिकाल केवली जिनचन्द्रसूरि) लब्धियो से गौतम स्वामीरूप, विद्वत्ता आदि मे वज्रस्वामी, शील मे स्थूलिभद्र और शासन प्रभावना मे आर्य सुहस्ति सूरि (सम्राट सम्प्रतिराजा के गुरु) जैसे थे।

इनका जन्म स्थान समियाणा (सिवाणा) गोत्र छाजेड था। आठ वर्ष की बाल्यवय मे मुनि बने थे। जन्म ति स १३२४, दीक्षा १३३२ और आचार्य पद १३४१ मे हुआ था। १६ वर्ष की किशोरावस्था मे इतने विद्वान और सर्वगुण युक्त थे कि सघ की सर्वसम्मति से गुरु श्री प्रबोधसूरि ने इन्हे गच्छाधीश बना दिया था। अत्यन्त प्रभावशाली युगप्रधान आचार्य थे। इनके पट्ट पर स्थविराग्रणी आचार्य श्री राजेन्द्रसूरि ने सर्वगुण सम्पन्न कुशलकीर्तिगण को स्थापित किया। वे श्री जिनकुशलसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस समय ७०० मुनिराज एव २८०० साध्वियाँ खतरगच्छ मे आपके आज्ञानुवर्ती थे।

इन्ही के समकालीन महाविद्वान कवि शिरोमणि श्री जिनप्रभसूरि लघु खरतर शाखा मे महाप्रभावशाली आचार्य थे। तत्कालीन तुगलक बादशाह फिरोजशाह और मोहम्मदशाह इनके परम भक्त थे। इनके बनाये विविध तीर्थ कल्प, विधिप्रथा तथा सैकडो स्तोत्र आज भी समुपलब्ध है नित्य अभिनव सुरचित स्तुति से प्रभु की स्तवना करके प्रत्याख्यान पारने की प्रतिज्ञा थी।

इन्ही कुशलसूरि ने ५०,००० अजैनो को जैन बनाया था। इनका आचार्यपद पाटण (अणहिलपुर पट्टन) मे भारी समारोहपूर्वक हुआ था। आपका प्रामाणिक सम्पूर्ण चरित्र नाहटा बन्धुओ द्वारा लिखित सुप्राप्य है। इनका विहार क्षेत्र अधिकतर छोटी मारवाड-सिरोही, जालौर, सिवाणा आदि मरुस्थल, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, बाडमेर आदि प्रदेश तथा सिन्धु देश पजाब आदि था। जैनदर्शन की प्रभावना करने मे भारी समर्थ आचार्य थे। आप आज भी छोटे दादाजी के नाम से प्रसिद्ध है। देराउर (सिन्धु प्रदेश) मे इनका स्वर्गवास वि० स० १३८९ मे फागुन कृष्णा ५ का होने का उल्लेख प्राचीन पट्टावलियो मे है। किन्तु प्रतिलिपिकारो के द्वारा अज्ञानवश ५ को १५ लिख दिया गया लगता है। और वर्तमान मे कई वर्षो से फागुन वदी अमावस्या ही प्रसिद्ध है। आप विद्वान, साहित्यकार और कवि थे। आपकी अनेक कृतियाँ उपलब्ध है। उनमे चैत्यवन्दन कुलकवृत्ति, शान्तिनाथ चरित्र (प्राकृत) जिनचन्द्र चतु सप्ततिका, पार्श्वस्तोत्र, यमक अलकार युक्त आदिनाथ स्तोत्र, फलौदी पार्श्वनाथ स्तोत्र आदि मुख्य है। श्री जिनकुशलसूरि के चरण और मूर्तियाँ हजारो ग्राम-नगरो मे पूजी जाती है। देराउर तो पाकिस्तान मे रह गया किन्तु मालपुरा मे तो आज भी उनका चमत्कारी

स्थान जैन दादाबाडी, देश-विदेश मे विख्यात है। जहाँ वर्ष भर सैकडो यात्री आते रहते है। और फागुन बदी अमावस्या को भारी मेला लगता है। पूजा, रात्रि जागरण, वरघोडा, स्वधार्मिक वात्सल्य आदि बडी धूमधाम से होते है। आपका प्रभाव इस कलिकाल मे भी प्रत्यक्ष है। अनेक भक्तो के कष्ट-निवारण करने के समाचार तो आज भी कई पत्रो मे प्रकाशित होते रहते है। इनके भक्तो द्वारा रचित हजारो स्तवन जन-जन के मुख से सुने जाते है। इनकी महिमा के विषय मे कुछ लिखना तो सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है। अनुमानत पौने सात सौ वर्ष हो जाने पर भी दादा श्री जिनकुशल सूरि का नाम जैन जगत मे सुविख्यात है। उनके जन्म की सप्तम शताब्दी उन्ही के जन्म स्थान सिवाणा मे मनाई गई। पुरानी दादावाडी के स्थान पर नवीन जिनमन्दिर सहित दादाबाडी का निर्माण हुआ है। मन्दिर मे भगवान शखेश्वर पार्श्वनाथ आदि की प्रतिमाएँ और दादावाडी मे सभी दादागुरुओ की मूर्तियाँ स्थापित हो गयी है।

पुरानी दादावाडियो, स्तूपो, मूर्तियो एव चरणपादुकाओ की सख्या लगभग १० हजार है। और दिनानुदिन वृद्धिगत है। सैकडो गुरुदेव भक्तगण दादा के जाप पूजन गुणगान भक्ति कर रहे है। मनो-वाञ्छित पूर्ण करने मे श्री दादागुरुदेव साक्षात् कल्पवृक्ष के समान है। यदि ऐसा नही होता तो कोई उन्हे जानता तक नही। यह सब उनके महान् प्रभाव के साक्षात् प्रमाण है।

इसी परम्परा मे भडारो के सस्थापक, हजारो मूर्तियो की अजनशलाका (प्रतिष्ठाकारक) श्री जिनभद्रसूरि, नाकोडा तीर्थ सस्थापक श्री कीर्तिरत्नसूरि, बादशाह अकबर व जहाँगीर प्रतिबोधक, सैकडो शिथिलाचारी साधुओ को मत्थेरण (गृहस्थी वस्त्र धारण) बना देने वाले महान् क्रियोद्धारक, चतुर्थ दादा श्री जिनचन्द्रसूरि, आठ अक्षरो के दस लाख अर्थ करने वाले अद्भुत विद्वान श्री समयसुन्दर जी गणि एक पूर्व का ज्ञान रखने वाले, द्रव्यानुयोग के, न्याय के, तत्त्वचर्चा के अनेक गद्य पद्यमय ग्रन्थो के रचयिता श्रीमद् देवचन्द्र गणि तथा योगिराज आनन्दघन आदि महापुरुष हुए है, जिनकी चरित्रतपोनिष्ठता, विद्वत्तादि गुण सौरभ से वीरशासन उद्यान सुरभित है। आज तक अनेक शासन प्रभावक, मुनिराज, साध्वियाँ, श्रावक, श्राविका आदि से यह परम्परा समृद्ध रही है और भविष्य मे भी इस परम्परा को अखण्ड रखने वाले अनेक महानुभाव होगे।

इसी मगलमय भावनापूर्वक विरमित होती हूँ।

□ □

सज्जन वाणी .—

१ जिन्होने सत्य को आचरण मे उतारा है, जिनकी वाणी सत्य से ओत-प्रोत है, जिनका मन भव्य चिंतन मे लीन है वे ससार के पूज्यवान माने जाते है।

२ जिन्होने अस्तेय व्रत धारण कर लिया, उन्हे सभी सम्पत्तियाँ अनायास मिलती हैं उनके जीवन मे कभी दरिद्रता नही आती। और वे सभी के विश्वासपात्र बन जाते है।

□ *मंजुल विनयसागर जैन*

खरतरगच्छ की संविग्न साधु परम्परा का परिचय

यह निर्विवाद सत्य है कि यशोलिप्सा और शारीरिक सुविधावाद आदि ऐसी मानवीय दुर्बलताएँ हैं कि इसके घेरे मे आकर अच्छे से अच्छे व्रती और तपस्वी भी अपने आत्मिक मार्ग से फिसल जाते हैं। यह दुर्बलताएँ यह भेद नही करती कि यह साधु है या साध्वी, श्रावक है या श्राविका, व्रती है या अव्रती। तनिक-सी फिसलन भी क्रमश अपना व्यूह बनाकर वृहद् रूप धारण कर लेती है। फलत मानव उस फिसलन की गर्त मे धीमे-धीमे बढता जाता है और उसका ऐसा आदी हो जाता है कि उसको धर्म के आवरण मे लपेटना चाहता है। इसी के प्रतिफलस्वरूप जीवन मे शिथिलाचार बढता जाता है। जिस शिथिलाचार का आचार्य वर्धमान और आचाय जिनेश्वर ने सक्रिय विरोध किया था और सुविहित/सविग्न परम्परा की नीव रखी थी वह शताब्दियो तक फलती-फूलती रही। धीरे-धीरे शिथिलाचार ने इसमे प्रवेश करना प्रारम्भ किया। इसी के प्रतिकार रूप मे अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि ने सवत् १६१४ मे क्रियोद्धार किया। पुन इसमे शिथिलता के बीज पैदा हुए। सवत् १६९१ मे समयसुन्दरोपाध्याय ने क्रियोद्धार किया। धीमे-धीमे पुन इसमे विकृतियाँ आने लगी तो इसके प्रतिकारस्वरूप कई क्रियापात्र साधुओ ने समय-समय पर क्रियोद्धार किया। इन क्रियोद्धारक साधुवर्ग की परम्परा वर्तमान समय मे सविग्न परम्परा कहलाई। इस समय मे यह सविग्न परम्परा ३ महापुरुषो के नाम से खरतरगच्छ मे प्रसिद्ध है —

१ सुखसागरजी म० का समुदाय, २ कृपाचन्द्रजी म० का समुदाय और ३ मोहनलालजी म० का समुदाय। अत इन तीन समुदायो का यहाँ सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना अभीष्ट है।

सुखसागरजी म० का समुदाय

सुखसागरजी म की परम्परा मे यह एक विशेष बात है कि वे अपनी परम्परा को "क्षमा कल्याणजी म की वासक्षेप" के नाम से मानती आ रही है, अत सुखसागरजी म की परम्परा का वस्तुत अभ्युदय महोपाध्याय क्षमाकल्याणजी म से ही प्रारम्भ होता है। इसी कारण इस परम्परा का परिचय क्षमाकल्याणजी के दादागुरु उपाध्याय प्रीतिसागर गणि से प्रारम्भ करते है।

(१) उपाध्याय प्रीतिसागरगणि

प्रीतिसागर गणि आचार्य जिनभक्तिसूरि के शिष्य थे। आपका जन्म नाम प्रेमचन्द था। दीक्षा-

आर्यपुत्र
श्री उदयसागर सूरिजी
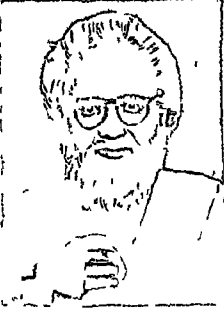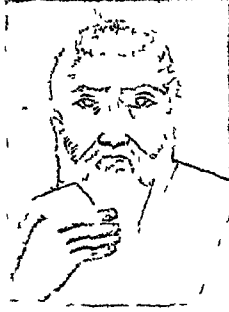
खरतरगणाधीश्वर
श्री सुखसागर सूरिजी

योगीन्द्र
श्री मज्जिनकवीन्द्रसागर सूरिजी
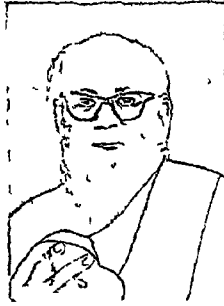
वीरपुत्र
श्री मज्जिन आनन्दसागर सूरिजी

युगप्रधान दादा
श्री जिनकुशल सूरिजी
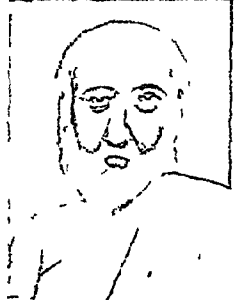
तपस्वी
श्री छगनसागर सूरिजी

अनुयोगाचार्य
श्री जिनकान्तिसागर सूरिजी
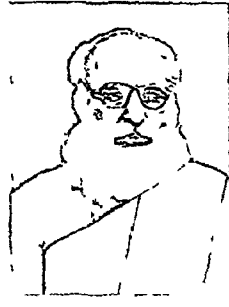
शान्तमूर्त्ति
श्री मज्जिन हरीसागर सूरिजी

गणाधीश्वर
श्री हेमेन्द्रसागर सूरिजी

नन्दी सूची के अनुसार इनकी दीक्षा १७८८ माघ बदी तेरस को सिणधरी मे हुई थी। सवत् १८०१ मे ये श्री जिनभक्तिसूरिजी के साथ राधनपुर मे थे। जिनभक्तिसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् सवत् १८०४ से ये श्री जिनलाभसूरि के साथ भुजनगर, गूढा और जैसलमेर मे रहे। सवत् १८०८ कार्तिक बदी तेरस को वीकानेर में आपका स्वर्गवास हुआ। सवत् १८५२ मे प्रतिष्ठित आपकी चरण पादुकाएँ जैसलमेर मे है।

(२) वाचक अमृतधर्मगणि

आपका कच्छ निवासी ओस वशीय वृद्ध शाखा मे जन्म हुआ था। आपका जन्म नाम अर्जुन था। सवत् १८०४ फागुन सुदी एकम को भुज नगर मे श्री जिनलाभसूरि के कर कमलो से दीक्षित होकर श्री प्रीतिसागर गणि के शिष्य बने थे। अनेक तीर्थो की यात्राएँ की थी। सिद्धान्तो के योगोद्वहन किये थे। सवत् १८२७ में जिनलाभसूरि ने इनको वाचनाचार्य पद दिया था। सवेग ग से आपकी आत्मा ओत-प्रोत होने से सवत् १८३८ माघ सुदी पाचम को सर्वथा परिग्रह का त्याग कर दिया था। १८४० तक तत्कालीन आचार्य जिनचन्द्रसूरि जी के साथ रहे। सवत् १८४३ मे पूर्व देश की ओर विचरण किया, तीर्थयात्राएँ की और धर्मप्रचार किया। आपके उपदेश से कई नवीन जिनालय बने, कई प्रतिष्ठा आदि कार्य सम्पन्न हुए। स वत् १८४८ मे पटना मे स्थूलिभद्रजी की देहरी की प्रतिष्ठा करवाई। सवत् १८५० का चातुर्मास बीकानेर मे किया और १८५१ का चातुर्मास जैसलमेर करने के पश्चात् माघ सुदी आठम को जैसलमेर मे आपका स्वर्गवास हुआ। वहाँ आपके चरण प्रतिष्ठित है।

(३) उपाध्याय क्षमाकल्याण

वीकानेर के निकटवर्ती केसरदेशर गॉव के मालू गोत्र मे सवत् १८०१ मे इनका जन्म हुआ था। इनका जन्म नाम खुशालचन्द था। सवत् १८१२ से अमृतधर्म गणि के पास रहकर अध्ययन करने लगे और सवत् १८१६ मे आपाढ वदी दूज को जैसलमेर मे श्री जिनलाभसूरि जी के करकमलो से दीक्षित होकर अमृतधर्म गणि के शिष्य वने। दीक्षा नाम क्षमाकल्याण रखा गया। इन्होने विद्याध्ययन उपाध्याय राजसोम और उपाध्याय रामविजय (रूपचन्द) के सान्निध्य मे रहकर किया था। इनका विचरण श्री जिनलाभसूरि व श्री जिनचन्द्रसूरि जी के साथ ही अधिकाशत हुआ। सवत १८२४ मे वीकानेर, १८२६ से १८३३ तक गुजरात, काठियावाड और १८३४ मे आवू व मारवाड के तीर्थो की यात्रा करते हुए जैसलमर आये तथा १८४० तक वही रहे। १८४३ मे वगाल और वालुचर मे चातुर्मास किया। वहाँ भगवती सूत्र आगम की वाचना की। १८४८ तक पूर्व देश मे विचरण कर धर्म प्रचार करते रहे।

सवत् १८५५ मे जिनचन्द्रसूरि जी ने आपको वाचक पद से और श्री जिनहर्षसूरि ने उपाध्याय पद से अलकृत किया। गच्छ मे वयोवृद्ध एव गीतार्थ होने के कारण यह महोपाध्याय कहलाये।

सवत् १८३८ मे आपने क्रियोद्धार किया था और साधु परम्परा के लिये कई विशिष्ट नियम निर्धारित किये थे। सवत् १८७३ पौप वदी चौदस मगलवार को वीकानेर मे आपका स्वर्गवास हुआ। वीकानेर की रेलदादाजी मे आपकी चरण पादुका व सीमधर जिनालय तथा सुगनजी के उपाश्रय मे मूर्तिया प्रतिष्ठित है।

आपके कई चमत्कार भी प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि जोधपुर के महाराजा ने जव जैसलमेर पर आक्रमण किया था तथा जैसलमेर के महारावल की प्रार्थना पर क्षमाकल्याणजी ने सर्वतोभद्र यन्त्र लिखकर दिया था। इस यन्त्र के प्रताप से ही महारावल विजयी होकर आये थे। जैसलमेर के महारावल आपके परम भक्त थे।

आप अपने समय के परम गीतार्थ एव चिन्तनशील धुरन्धर विद्वान थे। आपके द्वारा निर्मित सस्कृत व भाषा के स्वतन्त्र ग्रन्थ, प्रश्नोत्तर ग्रन्थ एव टीका ग्रन्थ प्राप्त होते हैं जिनमे से मुख्य-मुख्य हैं—तर्क स ग्रह फक्किका, गौतमीय काव्यवृत्ति, खरतरगच्छ पट्टावली, आत्मप्रवोध, सूक्तिरत्नावली सटीक, प्रश्नोत्तर सार्ध शतक, साधु एव श्रावक विधि प्रकाश, यशोधर चरित्र एव श्रीपाल चरित्र टीका तथा चातुर्मासिक, अष्टाह्निका आदि पॉच व्याख्यान।

आपके प्रमुख शिष्य थे—कल्याणविजय, विवेकविजय, विद्यानन्दन, और धर्मविशाल।

(४) धर्मविशालजी (धर्मानन्द)

इनकी दीक्षा सवत् १८७० ज्येष्ठ वदी छठ को जयपुर मे हुई। इनका दीक्षा नाम धर्मविशाल रखा गया किन्तु ये धर्मानन्द के नाम से ही प्रसिद्ध रहे। आपने सवत् १८७४ आपाढ शुक्ल छठ को बीकानेर रेलदादाजी मे क्षमाकल्याण उपाध्याय के चरण प्रतिष्ठित किये। इन्ही के उपदेश से भाण्डासर मन्दिर के अहाते मे सीमधर स्वामी के जिनालय का निर्माण हुआ। सवत् १८८६ मे माघ सुदी पाचम को बीकानेर मे राजाराम को दीक्षित किया, रत्नराज नाम रखा। सम्भवत यही भविष्य मे राजसागरजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। सवत् १९१२ मे सुगुण को शिष्य बनाया और दीक्षा नाम सुमतिमडन रखा। यह अच्छे विद्वान और कवि थे। इन्होने पचज्ञान, पचपरमेष्ठी आदि दसो पूजाएँ बनाकर पूजा साहित्य की प्रशसनीय अभिवृद्धि की थी। बीकानेर का स्थान आज भी सुगनजी के उपाश्रय के नाम से प्रसिद्ध है। इन्ही के प्रयत्न से शिववाडी मे मन्दिर की स्थापना हुई थी। सवत् १९२८ ज्येष्ठ वदी दूज को धर्मानन्दजी के चरण रेलदादाजी मे सुमतिमण्डन द्वारा प्रतिष्ठित प्राप्त हैं। अत इसके आसपास ही धर्मानन्दजी का स्वर्गवास हुआ होगा। अन्तिम व्यवस्था मे धर्मानन्दजी के आचार-व्यवहार मे कुछ शिथिलता आ गई थी।

(५) राजसागरजी

इनका जन्मनाम राजाराम था। धर्मानन्दजी के पास १८८६ माघ सुदी पाचम को दीक्षा ग्रहण की और राजसागर नाम प्राप्त किया। ये प्रौढ विद्वान् थे। इन्होने अनेक मानवो को मास-मदिरा का त्याग करवा कर दुर्व्यसनो से मुक्त कराया था और शुद्ध धर्म प्रदान किया था। इनके सम्बन्ध मे विशेष इतिवृत्त प्राप्त नही है।

(६) ऋद्धिसागरजी

इनका भी कोई परिचय प्राप्त नही है। ये उच्चकोटि के विद्वान थे, साथ ही चमत्कारी मन्त्रवादी भी। वृद्ध जनो से ज्ञात होता है कि दैवीय मन्त्र-शक्ति से इन्हे ऐसी शक्ति प्राप्त थी कि वे इच्छानुसार आकाश गमन कर सकते थे। आबू तीर्थ की अग्रेजो द्वारा आशातना देखकर इन्होने विरोध किया था। राजकीय कार्यवाही मे समय-समय पर स्वय उपस्थित होते थे। और अन्त मे तीर्थरक्षा हेतु गवर्नमेन्ट से ११ नियम प्रवृत्त करवाकर अपने कार्य मे सफल हुए थे। त्रिस्तुतिक प्रसिद्ध आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि और तपागच्छ के प्रौढ आचार्य झवेरसागरजी का जव चतुर्थ स्तुति के सम्बन्ध मे शास्त्रार्थ हुआ तो उस शास्त्रार्थ के निर्णायको मे वाराणसी के दिड्मण्डलाचार्य बालचन्द्राचार्य और ऋद्धिसागरजी ही थे। सवत् १९५२ मे आपका स्वर्गवास हुआ।

(७) गणाधीश सुखसागरजी

इनका जन्म सरसा मे १८७६ मे हुआ था। दूगड गोत्रीय मनसुखलालजी इनके पिता थे और माता का नाम था जेतीवाई। युवावस्था मे माता-पिता का वियोग हो जाने पर ये जयपुर मे आकर

अपनी बहन के पास रहने लगे थे और किराने का व्यापार करने लगे थे। कुछ ही दिनो मे अपनी व्यावहारिक कुशलता के कारण जयपुर के प्रसिद्ध सेठ माणकचन्दजी गोलेच्छा के ये मुनीम नियुक्त हुए।

सवत् १६०६ मे जयपुर में ही मुनि श्री राजसागरजी और ऋद्धिसागरजी का चातुर्मास हुआ। चातुर्मास के मध्य मुनिजनो के सम्पर्क मे रहने के कारण इनका हृदय वैराग्यवासित हो गया। इसी के फलस्वरूप सवत् १६०६ में ही भादवा सुदी पाचम के दिन इन्होने दीक्षा ग्रहण की, मुनि सुखसागर नाम रखा गया। दीक्षा का सारा महोत्सव सेठ माणकचन्दजी गोलेच्छा ने किया था। राजसागरजी ने इस नव दीक्षित सुखसागर को ऋद्धिसागरजी का शिष्य घोषित किया था।

गहन शास्त्र अध्ययन करने के पश्चात साधुजीवन में आई शिथिलता से उद्विग्न होकर सवत् १६१८ मे क्रियोद्धार किया। इस समय आपके साथ आपके दो गुरु भाई भी थे, जिनके नाम पद्मसागरजी और गुणवन्तसागरजी थे। क्रियोद्धार के पश्चात् शत्रुजय तीर्थ की यात्रा कर फलौदी पधारे।

इधर साध्वी रूपश्री की शिष्याएँ उद्योतश्री जी, धनश्री जी भी शिथिलाचार का त्याग कर १६२२ मे फलौदी आई और सविग्न सुखसागरजी को अपना गुरु मानकर उनकी आज्ञानुवर्तिनी हो गई। सवत् १६२४ में लक्ष्मीश्रीजी की दीक्षा हुई, सम्वत् १६२५ मे भगवानदास नामक भव्य पुरुष ने इनके पास दीक्षा ग्रहण की और यही भगवानसागर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कहा जाता है कि एक वार आपने स्वप्न मे देखा कि 'पल्लवित वगीचे मे कुछ बछडो के साथ गायो का झुण्ड घूम रहा है' इस स्वप्न के आधार पर इन्होने भविष्यवाणी की थी कि समुदाय का विस्तार अवश्य होगा किन्तु उसमे साधु कम और साध्वियाँ अधिक होगी। उनकी यह भविष्यवाणी पूर्णत सफल हुई। आप आगम साहित्य के अच्छे विद्वान भी थे। जीवाजीव राशि प्रकाश, बासठ मार्गणा यन्त्र एव अष्टक आदि कई कृतियाँ आपकी प्राप्त है।

सम्वत् १६४२ माघ बदी ४ (२३ जनवरी १८८६) के दिन प्रात काल फलौदी मे आपका स्वर्गवास हुआ। वर्तमान मे आपने जो सुविहित मार्ग का पुनरुद्धार किया था, इसी कारण इनका समुदाय/परम्परा सुखसागर जी म के समुदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ जो आज भी प्रसिद्धि के शिखर पर है।

(८) गणाधीश भगवानसागर जी

ये रोहिणी गाँव के निवासी थे और जसाजी जाट के पुत्र थे। सुखसागरजी के उपदेश से प्रतिबोध पाकर आपने सम्वत् १६२५ मे दीक्षा ग्रहण की थी। सुखसागरजी का स्वर्गवास हो जाने पर आप समुदाय के गणाधीश वने। अन्तिम अवस्था मे आपने अपने भतीजे हरीसिह के लिए छगनसागरजी को निर्देश दिया था कि इसको योग्य अवस्था मे दीक्षा प्रदान करना। सम्वत् १६५७ ज्येष्ठ कृष्णा चौदस को आपका स्वर्गवास हो गया। इनके सात शिष्य हुए, जिनमे से प्रमुख तीन थे—सुमतिसागरजी, त्रैलोक्य सागरजी और हरिसागरजी। इनके कार्यकाल मे सात साधु और ४१ साध्वियाँ हुई।

(६) तपस्वी छगनसागर जी

भगवानसागर जी के पश्चात् इस समुदाय के अधिपति छगनसागर जी हुए। इनका जन्म १८६६ मे फलौदी मे हुआ था। आपके पिता का नाम था सागरमलजी गोलेच्छा और माता का नाम था चन्दन

बाई। अखेचन्दजी श्रावक की पुत्री चुन्नीबाई से आपका पाणिग्रहण हुआ था जिससे तीन पुत्र व एक पुत्री हुई थी।

साध्वीरत्नो के उपदेश व प्रयत्न से प्रतिबोध पाकर सम्वत् १९४३ वैशाख सुदि दशमी को पत्नी के साथ इन्होने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षादाता थे भगवानसागर जी। भगवानसागरजी ने इनको श्री राजसागर जी के पौत्र श्री स्थानसागरजी का शिष्य घोषित किया। ये सिद्धान्तो के अच्छे जानकार थे और महातपस्वी भी थे। भगवानसागरजी का स्वर्गवास हो जाने पर आपने इस समुदाय का भार सम्भाला। आपके कार्यकाल मे ६८ साध्वियो ने दीक्षा ग्रहण की। अन्त मे आपने ५२ उपवास किये जिसमे ४० उपवास जल के साथ थे और १२ उपवास निर्जल थे। इसी की पूर्णाहुति मे सम्वत् १९६६ द्वितीय श्रावण सुदि छठ को लोहावट मे आपका स्वर्गवास हो गया। सम्वत् १९७० मे लोहावट मे आपकी पादुकाएँ स्थापित की गयी।

महातपस्वी छगनसागर जी के स्वर्गवास के पश्चात् सघ ने भगवानसागरजी के प्रमुख शिष्य सुमतिसागरजी से (जो कि उस समय खान देश मे थे) गच्छभार सभालने का अनुरोध किया था, किन्तु सुमतिसागरजी ने अपनी अनिच्छा प्रदर्शित करते हुए त्रैलोक्यसागरजी को सौपने का आग्रह किया।

(१०) त्रैलोक्यसागरजी

जैसलमेर राज्यान्तर्गत गिरासर निवासी पारख गोत्रीय जीतमलजी के पुत्र रूप मे इनका जन्म सवत् १९१८ मे हुआ। इनका जन्म नाम चुन्नीलाल था। इनकी बडी बहन पन्ना बाई थी, जो कि दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् पुण्यश्रीजी के नाम से प्रसिद्ध हुई थी। अपनी बडी बहन पुण्यश्रीजी के प्रयत्न से ही चुन्नीलाल जी ने सवत् १९५२ ज्येष्ठ सुदि सातम को भगवानसागरजी के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम रखा गया त्रैलोक्यसागर।

महातपस्वी छगनसागरजी का स्वर्गवास हो जाने पर एव अपने बडे गुरु भ्राता सुमतिसागरजी का आदेश प्राप्त कर इन्होने समुदाय का आधिपत्य स्वीकार किया। स० १९६९ मे आपका कोटा मे चातुर्मास हुआ। वहाँ ज्ञानसुधारस धर्म सभा की स्थापना की। परासली तीर्थ यात्रा हेतु डग, गगधार और सीतामहु से तीन सघ निकलवाये। सवत् १९७० मे विमलश्रीजी के प्रयत्न से जैसलमेर का सघ निकलवाया। सुजानगढ प्रतिष्ठा मे सम्मिलित हुए। लोहावट मे छगनसागर जैन पाठशाला खुलवाई। सवत् १९७४ श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को लोहावट मे आपका स्वर्गवास हुआ। आपके समय मे इस समुदाय की साधु-साध्वियो की सख्या मे काफी अधिक वृद्धि हुई।

(११) जिनहरिसागरसूरि

इनका जन्म नागौर जिले के रोहिणा गाँव मे सवत् १९४९ मिगसर सुदि सातम को हुआ था। इनके पिता जमीदार झूरिया जाट हनुमन्तसिह जी थे और माता थी केसरदेवी। इनका जन्म नाम हरिसिह था। ये पाच भाइयो मे तीसरे नम्बर के थे। भगवानसागरजी म के ये भतीजे होते थे। भगवानसागरजी ने अन्तिम समय मे अपनी इच्छा छगनसागरजी के सम्मुख जाहिर की थी कि 'इसको योग्य समय पर दीक्षा दे देना' तदनुसार निर्देश का पालन करते हुए छगनसागरजी ने सवत् १९५७ आषाढ वदि पाँचम के दिन फलोदी मे दीक्षा प्रदान की और दीक्षा नाम रखा हरिसागर तथा भगवानसागरजी का शिष्य घोषित किया। सवत् १९७४ मे गणाधीश त्रैलोक्यसागरजी का स्वर्गवास हो जाने पर इन्होने समुदाय का नेतृत्व सभाला।

आप इतिहास और साहित्य के प्रेमी, सरल स्वभावी और अच्छे विद्वान् थे। आपके समय में इस समुदाय मे साधु-साध्वियो की काफी बढोतरी हुई। आपने अपने जीवनकाल मे सभी प्रदेशो मे विचरण किया, तीर्थ यात्राएँ की। प्रतिष्ठा, उद्यापन, सघयात्रा, साहित्य उद्धार आदि अनेक श्लाघनीय कार्य किये। शत्रुञ्जय तीर्थ पर नई खरतरवसही पर प्रयत्न करके आनन्दजी कल्याणजी की पेढी द्वारा वापस पाटिया लगवाया।

सुजानगढ जिनमन्दिर की, केलु ऋषभदेव पचायती मन्दिर की, मोहनबाडी पार्श्वनाथ स्वामी की, हाथरस दादाबाडी की और लोहावट मे गुरु मन्दिर की आपने प्रतिष्ठाये करवाई। आपके कार्यकाल मे अनेको उद्यापन महोत्सव हुये। आपके उपदेश से ही जिनदत्तसूरि ब्रह्मचर्याश्रम, पालीताणा, खरतरच्छ ज्ञानमन्दिर जैनशाला, जामनगर, हरिसागर जैन पुस्तकालय, लोहावट और हरिसागर जैन ज्ञान मन्दिर वालुचर आदि अनेक सस्थाओ की स्थापना हुई।

सवत् १९९२ मे आप शिष्य परिवार सहित अजीमगज पधारे। उस समय मे श्री सघ ने आपको आचार्य पद प्रदान किया। तभी से आप जिनहरिसागरसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आपको मूर्ति लेख सग्रह का, ग्रथो की प्रशस्तियो के सग्रह का और शास्त्रो की प्राचीन प्रतिलिपियो के आधार पर प्रतिलिपियाँ तैयार करवाने का बडा उत्साह था। कई प्रतिलिपिकार निरन्तर आपके पास रहकर प्रतिलिपि करते रहते थे और आप स्वय उनका मिलान करते थे। सैकडो प्राचीन प्रतियो की आपने प्रतिलिपियाँ करवाकर अपने लोहावट के ज्ञान भण्डार को समृद्ध किया था। चारो दादा साहब की पूजाये और तपस्वी छगनसागरजी का जीवन चरित्र आदि आपकी कृतिये प्रकाशित है। फलौदी पार्श्वनाथ तीर्थ मे पार्श्वनाथ विद्यालय की स्थापना भी की थी। सवत् २००६ पोष वदि आठम मगलवार को फलौदी पार्श्वनाथ तीर्थ मे ही आपका स्वर्गवास हुआ था।

(१२) जिनानन्दसागरसूरि

श्रीजिनहरिसागरसूरि जी म० के स्वर्गवास के पश्चात् गणनायक के रूप मे श्री जिनानन्दसागरसूरिजी हुए। इनका जन्म सवत् १९४६ आषाढ सुदि बारस को सैलाना मे हुआ था। इनके माता-पिता थे कोठारी तेजकरणजी और केसरदेवी। इनका जन्म नाम यादव सिह था। प्रवर्तिनी श्री ज्ञानश्रीजी म० से प्रतिबोध पाकर बाईस वर्ष की अवस्था मे तत्कालीन गणनायक श्री त्रैलोक्यसागरजी म० के पास आप दीक्षित हुए। दीक्षा महोत्सव दीवान बहादुर सेठ श्री केसरसिहजी बाफना ने किया था। इनका दीक्षा नाम आनन्दसागर था किन्तु वे वीर पुत्र के नाम से ही प्रसिद्धि को प्राप्त हुये।

आपका सस्कृत, हिन्दी, और अग्रेजी पर अच्छा अधिकार था। अपने समय के आप प्रखर वक्ता थे। आपने ही प्रवर्तिनी श्री वल्लभश्रीजी, प्रवर्तिनी श्री प्रमोदश्रीजी एव प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्रीजी आदि साध्वियों को प्रवचन शैली का अभ्यास कराकर प्रवचनपटु बनाया था। आपने अपने जीवन काल मे मुजचरित्र, हिन्दी कल्पसूत्र, द्वादशपर्व, श्रीपाल चरित्र सप्त व्यसन निषेध, आगमसार आदि अनेक ग्रन्थ लिखे थे 'आनन्दविनोद' (स्तवनादि) एव अनेक निबन्ध—विद्या विनय विवेक अहिसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि की रचना की थी। आगमसार आदि छोटी-मोटी ८९ पुस्तके प्रकाशित करवाई थी। सैलाना नरेश आपके सहपाठी थे, अत उन्ही के अनुरोध पर सैलाना मे आनन्दज्ञान मन्दिर की स्थापना

की थी। श्री जिनहरिसागरसूरि जी म० का स्वर्गवास हो जाने के बाद सवत् २००६ माघ सुदि पाँचम को प्रतापगढ मे खरतरगच्छ सघ द्वारा आपको आचार्य पद पर स्थापित किया गया था।

सवत् २०११ मे अजमेर मे आपकी ही अध्यक्षता मे दादा श्री जिनदत्तसूरि अष्टम शताब्दी समारोह के समय साधु सम्मेलन हुआ था। आपकी ही प्रेरणा से अखिल भारतीय जिनदत्त सूरि सेवा सघ की स्थापना हुई। आपने अनेको को दीक्षा प्रदान की, प्रतिष्ठाये, अन्जनशलाका करवाई। तीर्थ यात्रा सघ आदि निकलवाये। यात्रा सघो मे प्रमुख है—फलौदी से जैसलमेर, इन्दौर से माण्डवगढ, माण्डवी से भद्रेश्वर तीर्थ और माण्डवी से सुथरी तीर्थ।

सवत् २०१६ वैशाख सुदि छठ को सिद्धाचल तीर्थ पर दादाजी की टोक पर नवनिर्मित देहरियो मे आप ही ने प्राचीन चरणो की स्थापना करवाई थी। सवत् २०१६ का चातुर्मास आपका पालीताणा मे ही हुआ। उस समय वहाँ खरतरगच्छ के २६ मुनि एव ३२ साध्वियाँ विराजमान थी। इसी वर्ष जिनदत्तसूरि सेवा सघ का द्वितीय अधिवेशन भी हुआ। सवत् २०१७ पौष सुदि दशम को आपका पालीताणा मे ही स्वर्गवास हुआ।

(१३) जिनकवीन्द्रसागर सूरि

आपका जन्म पालनपुर मे सवत् १९६४ चैत्र सुदि तेरस के दिन हुआ था। आपके पिता थे निहालचन्द शाह और माता थी बब्बूबाई। दस वर्ष की अवस्था मे आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। साध्वी श्री दयाश्रीजी की प्रेरणा से अध्ययन हेतु आप हरिसागरजी म० के पास कोटा आ गये। इनका हृदय वैराग्यवासित होने के कारण श्री हरिसागरजी म० ने सवत् १९७६ फाल्गुन वदि पाँचम को जयपुर मे दीक्षा प्रदान की और दीक्षा नाम रखा मुनि कवीन्द्रसागर।

आप सस्कृत साहित्य के दिग्गज विद्वान् तो थे ही, साथ ही प्रतिभासम्पन्न आशु कवि भी थे। आपकी आवाज भी बुलन्द थी और वक्तृत्व शैली भी अनोखी थी। आपके द्वारा सस्कृत या हिन्दी भाषा मे कोई महाकाव्य या विशिष्ट बडी कृति तो प्राप्त नही है, किन्तु सस्कृत और हिन्दी भाषा मे स्तोत्र, चैत्यवन्दन, स्तुतियाँ और भजन आदि शताधिक सख्या मे प्राप्त हैं। आपके द्वारा निर्मित प्रमुख कृतियाँ है—रत्नत्रय पूजा, पार्श्वनाथ पच कल्याणक पूजा, महावीर पूजा, चौंसठ प्रकारी पूजा, चैत्री पूर्णिमा व कार्तिकी पूर्णिमा विधि, उपधान तप, बीस स्थानक तप, वर्षी तप, छम्मासी तप आदि की देववन्दन विधि। चारो दादा साहब की पूजाएँ एव पचासो स्तवन इन्होने गुरुभक्तिवश अपने पूज्य गुरुदेव के नाम से प्रकट की है। आप साधनाप्रिय भी थे और नगर के बाहर दादाबाडियो आदि मे जाकर साधना भी किया करते थे। आपकी ही प्रेरणा से पालीताणा मे 'हरि विहार' की स्थापना हुई।

जिनानन्दसागरसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् सवत् २०१७ चैत्र वदि सातम के दिन खरतरगच्छ सघ ने आपको आचार्य पद से विभूषित कर जिनकवीन्द्रसागरसूरि नाम रखा। यह महोत्सव अहमदाबाद मे सम्पन्न हुआ था। किन्तु, सघ का दुर्भाग्य था कि वे अधिक समय तक सघ की सेवा न कर सके। सम्वत् २०१७ फाल्गुन सुदि पाचम को अचानक हृदय गति बन्द हो जाने से बूटा मे आपका स्वर्गवास हो गया था।

(इनका विस्तृत जीवन वर्णन पृथक् लेख मे प्रकाशित है।)

(१४) महोपाध्याय सुमतिसागर जी

जैसाकि पूर्व मे सकेत किया जा चुका है कि गणनायक भगवानसागर जी म के प्रमुख शिष्य सुमतिसागरजी थे। इनका जन्म स० १६१८ मे नागौर मे हुआ था। रेखावत गोत्रीय थे और नाम था सुजाणमल। शादी भी हुई थी। पुत्री भी थी, जिसका भविष्य मे विवाह धनराज जी बोथरा के साथ हुआ था। पुत्री की पुत्री का विवाह नागौर के ही सरदारमल जी समदडिया के साथ हुआ था। वैराग्य रग लग जाने से २६ वर्ष की अवस्था मे घर-वार, पत्नी एव पुत्री का त्याग कर स० १६४४ वैशाख सुदी ८ के दिन सिरोही मे भगवानसागरजी म के पास दीक्षा ग्रहण कर उनके शिष्य वने। दीक्षावस्था का नाम था—मुनि सुमतिसागर। तत्कालीन गणनायक छगनसागरजी म का स्वर्गवास होने पर सघ की वाग-डोर सम्भालने के लिये सघ ने सुमतिसागरजी से निवेदन किया था, किन्तु सुमतिसागरजी ने जो कि उस समय खानदेश मे थे, अपने लघु गुरुभ्राता श्री त्रैलोक्यसागरजी को गणनायक वनाने का अनुरोध किया। सम्वत् १६७२ मे वम्बई मे आचार्य श्री कृपाचन्द्रसूरि ने सुमतिसागरजी को उपाध्याय पद-प्रदान किया था और सम्वत् १६७६ मे इन्दौर मे सुमतिसागरजी को महोपाध्याय पद से अलकृत किया था। सम्वत् १६६४ मे आपका अचानक हृदय गति रुक जाने से कोटा मे ७६ वर्ष की अवस्था मे स्वर्गवास हुआ था।

(१५) जिनमणिसागरसूरि

महोपाध्याय सुमतिसागरजी के प्रमुख शिष्य थे जिनमणिसागरसूरि। सम्वत् १६४३ मे वीमा पोरवाल जाति के परिवार मे आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम था गुलाबचन्दजी और माता का नाम था पानीवाई, जो कि वाकडिया वडगाव के रहने वाले थे। इनका जन्म नाम था मनजी। सम्वत् १६६० मे जव मनजी पालीताणा की यात्रा पर गये तो यात्रा करते समय ही इनमे वैराग्यरग जागृत हुआ और १६६० मे ही वैशाख सुदी द्वितीया को सिद्धाचल तीर्थ पर ही सुमतिसागरजी के पास दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षा नाम रखा गया मुनि मणिसागर। सम्वत् १६६४ मे मुनि मणिसागरजी ने योगीराज चिदानन्दजी (द्वितीय) लिखित 'आत्मा भ्रमोच्छेदन भानु' नामक पुस्तक जो कि ८० पृष्ठ की थी,[1] उसे विस्तृत कर ३५० पृष्ठो मे पूर्ण की और चिदानन्दजी के नाम से ही प्रकाशित की। यह थी आपकी साहित्य निश्छलता और निरभिमानता।

उन्ही दिनो सम्मेतशिखर महातीर्थ के लिये श्वेताम्बर और दिगम्बर समाज मे केस चल रहा था। मणिसागरजी ने सम्मेतशिखर मे रहकर एक माह तक कठोर अनुष्ठान किया। फलत सम्मेत-शिखर के केस मे श्वेताम्वर समाज को सफलता प्राप्त हुई।

सम्वत् १६६६ मे मुनि विद्याविजयजी ने खरतरगच्छ की मान्यताओ पर जब दोषारोपण किया तो मणिसागरजी ने प्रारम्भ मे प्रत्युत्तर के रूप मे एक छोटी सी पुस्तिका लिखी और उसी का विस्तार रूप 'बृहद् पर्युषणा निर्णय' और 'पट्कल्याणक निर्णय' था। इन दोनो पुस्तको ने खरतरगच्छ को मान्य-ताओ को सवल आधार दिया और शास्त्रानुसार स्थायी रूप दिया।

सम्वत् १६७२ मे जव कृपाचन्द्रजी म को आचार्य पद दिया गया। जिनकृपाचन्द्र सूरि ने उस समय सुमतिसागरजी को उपाध्यायपद और मणिसागरजी को पण्डित पद प्रदान किया। इसी वर्ष बम्वई मे तपागच्छ के धुरन्धर विद्वान् श्री सागरानन्दसूरि और श्री वल्लभविजयजी (विजयवल्लभसूरि) आदि ने खरतरगच्छ की मान्यताओ पर आरोप करते हुए कई बुलेटिन निकाले।

पण्डित मणिसागरजी ने भी बुलेटिनो के द्वारा उनका मचोट उत्तर दिया और शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया। सप्रमाण सचोट उत्तर मिलने के कारण तपागच्छ के आचार्य उत्तर न दे सके और न शास्त्रार्थ के लिये आगे ही आये। इसी प्रकार इन्दौर मे जब सागरानन्दसूरि और विजयधर्मसूरि के वीच देव द्रव्य का विवाद चल रहा था तब पण्डित मणिसागरजी ने विजयधर्मसूरि को भी शास्त्रार्थ के लिये ललकारा और इसी समय इसी प्रसग पर उन्होने 'देव द्रव्य निर्णय' नामक पुस्तक लिखी। इन्दौर मे ही मुखवस्त्रिका के प्रसग को लेकर स्थानकवासी समाज के प्रमुख विद्वान् और प्रसिद्ध वक्ता मुनि चौथमल जी को भी शास्त्र चर्चा के लिये आमन्त्रित किया, किन्तु वे भी समक्ष न आये। अन्त मे पण्डित मणिसागर जी 'मुख पर मुखवस्त्रिका बाँधना अशास्त्रीय है।' का प्रतिपादन करने वाली 'आगमानुसार मुहपत्ती का निर्णय' पुस्तक प्रकाशित की। इसी प्रकार जब मुनि ज्ञानसुन्दरजी ने 'साध्वियो को व्याख्यान देने का अधिकार नही है' पुस्तिका लिखी तो इसके प्रत्युत्तर मे शास्त्रीय प्रमाणो के आधार पर इन्होने पुस्तिका लिखी थी 'साध्वी व्याख्यान निर्णय।'

इनके उपदेश से कोटा मे श्री हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय और जैन प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना हुई। कल्पसूत्र आदि पाँच-छह आगमो के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुए।

सम्वत् १९९८ का इनका चातुर्मास जयपुर मे हुआ था और यही पर इन्होने सुखसागरजी म. के समुदाय मे सर्वप्रथम उपधान तप करवाया था। सम्वत् १९९९ मे ही श्री कल्याणमलजी गोलेच्छा को वडी कठिनता से समझा कर उनकी पत्नी को नथमलजी के कटले मे ही वडे महोत्सव के साथ दीक्षित किया था और दीक्षा नाम सज्जनश्री जी रखा था, जो कि इस समय प्रवर्तिनी पद को सुशोभित कर रही हैं और जिनका इस समय अभिनन्दन महोत्सव होने जा रहा है।

सम्वत् २००० का आपका चातुर्मास बीकानेर मे हुआ। यहाँ भी उपधान तप करवाया, उपधान तप के मालारोपण महोत्सव के प्रसग पर आचार्य जिनऋद्धिसूरिजी म ने सम्वत् २००० पौष वदी एकम को उनको आचार्य पद से सुशोभित किया था।

सम्वत् २००७ माघ वदी अमावस ६ फरवरी १९५१ को अकस्मात् ही आपका स्वर्गवास हो गया।

उनके प्रथम शिष्य थे मुनि विनयसागर जो बाद मे गृहस्थ हो गये। उनके एक शिष्य और थे श्री गौतमसागरजी और गौतमसागरजी के शिष्य अस्थिर मुनिजी। इन दोनो का ही स्वर्गवास हो चुका है।

(१६) जिनउदयसागरसूरि

श्री जिनकवीन्द्रसागर सूरिजी के स्वर्गवास के पश्चात् समुदाय का भार गणि श्री हेमेन्द्रसागर जी के कन्धो पर आया। वे उसे सुचारु रूप से कार्यान्वित करते रहे। उनका भी सूरत मे स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् समाज मे यह अभाव विशेष रूप से खलने लगा कि गच्छ मे कोई आचार्य ही नही है। फलत अखिल भारतीय जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ महासघ ने निर्णय लिया कि अब आचार्य पद रिक्त न रखकर दोनो ही मुनि गणो को आचार्य बना दिया जाय। फलत सन् १९८२ मे जयपुर मे आचार्य पद महोत्सव हुआ और सघ ने एक साथ दो आचार्य बनाये —जिनउदयसागरसूरि एव जिनकान्तिसागरसूरि। आप दोनो का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है —

जिनउदयसागरसूरिजी का गृहस्थावस्था का नाम था देवराज भडारी। इनके माता-पिता का नाम था श्री सुल्तानकरणजी भडारी एव श्रीमती जतन देवी। इनका जन्म स० १९६० फाल्गुन वदि अमावस को सोजत मे हुआ था। विक्रम सवत् १९८८ माघ सुदि पाचम को बीकानेर मे २८ वर्ष की अवस्था मे ही वीर पुत्र आनन्दसागरजी (जिनआनन्दसागरसूरि) के पास दीक्षा ग्रहण कर उनके शिष्य बने। दीक्षा नाम मुनि उदयसागर रखा गया था। १३ जून १९८२ को जयपुर नगर में श्री सघ ने आपको आचार्य पद से विभूषित किया। तभी से आप जिनउदयसागरसूरि के नाम से प्रसिद्ध है और तभी से इस सुखसागरजी महाराज के समुदाय के गणनायक पद का भार सभाला और समुदाय का नेतृत्व कर रहे है।

आप गुजराती, हिंदी, अँग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओ के अच्छे जानकार है। आपका विचरण क्षेत्र मुख्यत राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, बिहार, बगाल और उत्तर प्रदेश रहा है। आपने अनेक स्थलो पर प्रतिष्ठा, अजनशलाका, आदि महोत्सव कराये है। आपके नेतृत्व मे कई उद्यापन भी हुए है। कई स्थानो पर नई दादाबाडियो का निर्माण और कई का जीर्णोद्धार भी करवाया है। कई पुस्तको का पुनर्प्रकाशन भी करवाया है जिसमे पचप्रतिक्रमण सूत्र सविधि आदि मुख्य है। आप सरल स्वभावी है। वर्तमान मे आप अपने शिष्यो—उपाध्याय महोदयसागरजी, पूर्णानन्दसागरजी, पीयूषसागरजी के साथ सिवनी मे विराज रहे है।

(१७) जिनकान्तिसागरसूरि

सन् १९८२ मे जयपुर मे जो दूसरे आचार्य बने वे थे जिनकान्तिसागरसूरि। इनका जन्म विक्रम सवत १९६८ माघ बदि एकादशी को रतनगढ मे हुआ था। आपके पिता का नाम मुक्तिमलजी सिंघी था और माता का नाम था सोहनदेवी। आपका जन्म था तेजकरण/तोलाराम। रतनगढ मे तेरापथी सप्रदाय का प्राचुर्य एव प्रभाव होने के कारण इनके माता-पिता तेरापथी परम्परा को ही मानते थे। तत्कालीन तेरापथी समुदाय के अष्टम आचार्य कालूगणि के पास इन्होने अपने पिता के साथ ही (तेजकरण) दस वर्ष की बाल्यावस्था मे ही दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा सवत था १९७८।

तेरापथ मे दीक्षित होने पश्चात् इन्होने शास्त्र अध्ययन किया। प्रखर बुद्धि तो थी ही, साथ ही चिंतन भी प्रौढ था। फलत मूर्तिपूजा, मुखवस्त्रिका, दया, दान आदि के सम्बन्ध मे तेरापथ सप्रदाय की मान्यताएँ इन्हे अशास्त्रीय लगी और तेरापथ सप्रदाय का त्याग कर सवत् १९८९ ज्येष्ठ सुदि तेरस के दिन अनूप शहर मे गणनायक हरिसागरजी महाराज (जिनहरिसागरसूरिजी) के करकमलो से भागवती दीक्षा अगीकार की। तभी से आप मुनि कान्तिसागरजी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आप प्रखर वक्ता थे। वाणी मे ओज था। श्रोताओ को मत्र मुग्ध करने की आप मे कला थी। भाषणो मे कुरान शरीफ, बाइबल, गीता और जैन साहित्य का पुट देते हुए सुन्दर प्रवचन देते थे। फलत आपकी ख्याति बढती ही गई।

आगम ज्ञान के अतिरिक्त आप सस्कृत, प्राकृत, हिंदी, गुजराती, मारवाडी का भी अच्छा ज्ञान रखते थे, साथ ही कवि भी थे। हिन्दी और राजस्थानी भाषा मे आपने स्तवन साहित्य और रास साहित्य की कई रचनाएँ की है, जिनमे से प्रमुख है —अजनारास, मयणरेहारास, प्रतिभावहार, पैंतीस बोल विवरण आदि।

आपका विचरण क्षेत्र राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, बिहार, बगाल, हरियाणा, जम्मू कश्मीर, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु रहा।

आपने अनेक स्थानो पर प्रतिष्ठाएँ करवाईं। दादावाड़ियो का निर्माण करवाया। अनेको उपधान तप करवाये। नाकोडा तीर्थ जैसे क्षेत्र मे खतरगच्छ का डका वजवाया। और, वाडमेर से शत्रुजय का जो पैदल यात्री सघ निकाला था, वह वास्तव मे वर्णनीय था। इस यात्रा मे एक हजार व्यक्ति थे। लगभग १०० वर्ष के इतिहास मे खरतरगच्छ के लिए यह पहला अवसर था कि इतनी दूरी का और इतने समूह का एक विशाल यात्री सघ निकला। आपने कई सस्थाये भी निर्माण की। खरतरगच्छ की वृद्धि के लिए आप सतत प्रयत्नशील रहते थे।

१३ जून १९८२ को जयपुर मे श्री सघ ने आपको आचार्य पद से विभूपित किया, तभी से आप जिनकान्तिसागर सूरि के नाम से विख्यात हुए।

सवत् २०४२ मिगमर वदि ७ को माण्डवला मे अकस्मात हृदय गति रुक जाने से आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके शिष्यो मे गणि मणिप्रभसागरजी, मनोज्ञसागरजी, मुक्तिप्रभसागरजी, सुयशप्रभसागरजी, महिमाप्रभसागरजी, ललितप्रभसागरजी, चन्द्रप्रभसागरजी, आदि विद्यमान है। गणि मणिप्रभसागरजी अच्छे विद्वान है, व्यवहारपटु है, कार्य दक्ष है और खरतरगच्छ की सेवा मे सलग्न है। मुनि महिमाप्रभसागरजी अपने दो शिष्यो—ललितप्रभसागर और चन्द्रप्रभसागर को योग्य विद्वान वनाने मे प्रयत्नशील हैं।

२. श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी का समुदाय

नाकोडातीर्थ के सस्थापक और प्रतिष्ठापक आचार्य कीर्तिरत्नसूरि से उनके नाम पर एक परम्परा चली जो खरतरगच्छ की एक उपशाखा के रूप मे कीर्तिरत्नसूरि शाखा के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी परम्परा मे मूलत कृपाचन्द्रसूरि थे। इनका जन्म जोधपुर राज्य के चातु गाँव मे स० १९१३ मे हुआ था। इनके पिता का नाम बाफना मेघराजजी था और माता का नाम था अमरा देवी। यतिवर्य मुक्तिअमृत के पास यति दीक्षा सन् १९३६ मे ग्रहण की थी। यति अवस्था मे रहते हुए जव उन्हे अनुभव हुआ कि हमारा आचार-व्यवहार शास्त्र युक्त नही है और यति वर्ग मे परम्परा के दुराग्रह को लेकर द्वन्द्व-युद्ध एव लट्ठालट्ठी देखी तो उन्होने क्रियोद्धार करने का निश्चय किया। यति अवस्था मे बीकानेर मे इनके पास प्रचुर सम्पत्ति थी। उस सब का त्यागकर क्रियोद्धार कर सविग्न साधु बने। आपने क्रियोद्धार करने के पश्चात खेरवाडा आदि स्थानो पर प्रतिष्ठाएँ करवाईं। कच्छ मे उपधान तप करवाये। अनेक स्थानो से आपकी उपस्थिति मे सघ निकले और अनेक भव्य जीवो को प्रतिबोध देकर आपने साधु धर्म मे दीक्षित किया।

सवत १९७२ मे आपका चातुर्मास वम्बई लालवाग मे था। उसी समय सघ ने बडे महोत्सव के साथ इनको आचार्य पद पर अभिषिक्त किया। सूरिमत्र श्री पूज्य श्री जिनचारित्रसूरिजी ने आपको प्रदान किया। सूरत मे जिनदत्तसूरि ज्ञान भडार की स्थापना की। सवत् १९८२ मे बाडमेर मे एक दिन मे ही ४०० व्यक्तियो की मुँहपत्ती तुडवा कर जिन प्रतिमा के प्रति श्रद्धावान वनाया। जैसलमेर ज्ञान भडार के अनेक ताडपत्रीय ग्रन्थो का जीर्णोद्धार करवाया। आपके उपदेशो से इन्दौर, सूरत, और बीकानेर आदि मे ज्ञान भडार, पाठशालाये एव कन्याशालाओ का निर्माण हुआ था। पालीताणा मे कल्याण भवन, चादभवन आदि धर्मशालाये तथा जिनदत्तसूरि व्रह्मचर्याश्रम आदि सस्थाओ की स्थापनाओ मे मुख्य प्रेरणा स्रोत आप ही थे।

आप आगम साहित्य के धुरधर विद्वान थे। अनेक चातुर्मासो मे भगवती सूत्र का वाचन किया था। अनेक आगम कठाग्र थे। साधु समुदाय को आगमो की वाचना देते थे। आपने कल्पसूत्र, द्वादशपर्व व्याख्यान एव श्रीपालचरित्र आदि के हिंदी अनुवाद भी किये थे। आप अच्छे कवि भी थे। आपके द्वारा निर्मित गिरनार पूजा एव कृपाविनोद इसके प्रमाण है। जिनदत्तसूरि पुस्तकोद्धार फड से अनेक प्राचीन ग्रन्थो का प्रकाशन भी करवाया। आपने अनेको शिष्य-प्रशिष्यो को दीक्षित किया था। आपकी उपस्थिति मे लगभग ३५ साधुओ का समुदाय था। आपका उत्कृष्ट चारित्रधर्म अन्य साधुओ के लिए सर्वदा अनुकरणीय रहा।

सवत् १९९४ माघ सुदि ग्यारस के दिन पालीताणा मे आपका स्वर्गवास हुआ। उस समय आपका साधु-साध्वी समुदाय ७० के लगभग था।

अनेक स्थानो पर आपकी प्रतिमाएँ स्थापित की गई थी।

(१) जिनजयसागरसूरि

श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि के आप पट्टधर आचार्य थे। इनका जन्म सवत् १९४३ मे हुआ था। १९५६ मे दीक्षा ग्रहण की थी। सम्वत् १९७६ मे सूरत मे कृपाचन्द्रसूरिजी ने इनको उपाध्याय पद प्रदान किया था और सवत् १९९० मे कृपाचन्द्रसूरिजी ने ही अपने कर-कमलो से इनको आचार्य पद प्रदान किया था। आपके द्वारा निर्मित साहित्य मे जिनदत्तसूरि चरित्र दो भाग, गणधरसार्धशतक भाषान्तर, जिन-कृपाचन्द्रसूरि चरित्र (सस्कृत) आदि प्राप्त हैं। सिद्धान्तो के प्रौढ विद्वान थे। इनका जीवन पूर्णरूपेण विशुद्ध था और दृढ सयमी थे तथा ठाम चौविहार करते थे। अनेक स्थानो पर आपने प्रतिष्ठाए करवाईं थी। आपके ग्रन्थो का सग्रह गढसिवाना की दादाबाडी मे सुरक्षित है। बीकानेर मे आपका स्वर्गवास हुआ।

(२) उपाध्याय सुखसागरजी

श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि के प्रमुख शिष्यो मे आपकी गणना है। आप मूलत इन्दौर के निवासी थे और मराठा जाति के थे। सेठ कानमलजी के परिचय मे आने के बाद इन्होने कच्छ मे जाकर दीक्षा ग्रहण की थी। श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि ने ही इन्दौर मे आपको प्रवर्तक पद प्रदान किया था। १९९२ मे आपको उपाध्याय पद प्राप्त हुआ था। अनेक जगह आपने प्रतिष्ठाएँ करवाई, उपधान तप करवाये और आपके गुरुश्री ने जो साहित्य प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया था उसे वेग के साथ आगे बढाया और पचासो प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशित करवाये। गुजरात, कच्छ, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बिहार एव बगाल प्रदेश और उत्तर प्रदेश मे विचरण कर, चातुर्मास कर शासन की महती प्रभावना की।

सवत् २०२४ वैशाख सुदि नवमी को पालीताणा में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके प्रमुख शिष्य थे मुनि मगलसागर जी और मुनि कान्तिसागरजी।

(३) मुनि कान्तिसागरजी

उपाध्याय सुखसागरजी के लघु शिष्य मुनि कान्तिसागरजी थे। मूलत ये जामनगर के निवासी थे और जैनेतर कुल मे उत्पन्न हुए थे। सवत् १९९२ मे इन्होने दीक्षा ग्रहण की थी।

ये प्रतिभा के धनी और सिद्धहस्त लेखक थे। लेखन के साथ वक्तृत्व कला पर भी आपका पूर्ण अधिकार था। आपकी लिखित 'खण्डहरो का वैभव' और "खोज की पगडडियाँ" ये दो पुस्तकें तो सस्कृति एव कला की दृष्टि से अद्वितीय है। पुरातत्व और कला के भी आप अधिकारी विद्वान् थे। जैन धातु प्रतिमा लेख, नगरवर्णनात्मक हिन्दी पद्य सग्रह, आयुर्वेदना अनुभूत प्रयोगो और सईकी आदि आपकी कृतियाँ प्रकाशित हुई। नागदा और एकलिंग जी पर आपने विस्तृत शोधपूर्ण पुस्तक लिखी थी, वह आपके स्वर्गवास के पश्चात् अन्धकार की गुफा मे विलीन हो गई।

आपका जीवन सघर्षपूर्ण रहा और अनेक विकट परिस्थितियो का आपको सामना करना पडा। २८ सितम्बर १९९९ को आपका जयपुर मे स्वर्गवास हुआ।

सवत् १९९४ के आसपास कृपाचन्द्रसूरिजी के समुदाय मे लगभग ७० साध्वियाँ थी, किन्तु खेद है कि आज इस समुदाय का एक भी साधु विद्यमान नही है और जो कुछ १५-२० साध्वियाँ शेष हैं वे मोहन लालजी म० की परम्परा के जयानन्दमुनिजी की निश्रा मे सयम पालन कर रही है।

३. श्रीमोहनलालजी म० का समुदाय

श्री मोहनलालजी महाराज का नाम आज भी तपागच्छ और खरतरगच्छ मे परम सम्मान और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। ये मूलत नागौर निवासी यतिवर्य ऋद्धिशेखर (रूपचन्दजी) के शिष्य थे। इनकी यति परम्परा मे पूर्वज कीर्तिवर्धन (कर्मचन्दजी) जिनसुखसूरि के शिष्य थे। इनका मूल नाम मोहनलाल था। सवत् १९०० ज्येष्ठ सुदि तेरस को जिनमहेन्द्रसूरि के कर-कमलो से इनकी दीक्षा हुई थी। दीक्षा नाम मानोदय था।

मूलत ये मथुरा के निकट चन्द्रपुर ग्राम के निवासी थे। सनाढ्य ब्राह्मण बादरमलजी के पुत्र थे और इनकी माता का नाम सुन्दरबाई था। सवत् १८९४ मे इनके मातापिता ने नागौर आकर यतिवर्य रूपचन्दजी को समर्पित कर दिया था। यतिजी के पास रहकर ही विद्याभ्यास किया था। सवत् १९३० मे अजमेर मे क्रियोद्धार कर कठिन साध्वाचार का पालन करने लगे। सविग्न साधु बनने के बाद इन्होने मारवाड, गुजरात, सौराष्ट्र आदि अनेक स्थानो पर विचरण कर चातुर्मास किये। १९४९ मे शत्रुञ्जयतीर्थ की तलहटी मे मुर्शिदाबाद निवासी रायबहादुर धनपतसिंह दूगड द्वारा धनवसही की आप ही ने प्रतिष्ठा करवाई। बम्बई मे सर्वप्रथम आप ही पधारे थे। इससे पूर्व कोई भी सविग्न साधु वहाँ नही गया था। तत्पश्चात् तो बम्बई क्षेत्र साधुओ के लिए खुल गया और सर्वदा नियमित रूप से साधुओ के वहाँ चातुर्मास होने लगे।

आप बडे समदर्शी थे। गच्छ का आग्रह आपकी दृष्टि मे नगण्य था। यही कारण है कि आपने अपने विशाल शिष्य समुदाय को सहज भाव से यह स्वीकृति दे दी थी कि जो जिस गच्छ की भी क्रिया करना चाहे प्रसन्नता से कर सकता है। यही कारण है कि आपकी शिष्य परम्परा दो भागो मे विभक्त हो गई—एक खरतरगच्छ की क्रिया करने वाले और दूसरी तपागच्छ की क्रिया करने वाले।

आप बडे तेजस्वी, शान्तस्वभावी, निर्मल चारित्र के धारक थे। बम्बई आदि मे आपका अत्यधिक प्रभाव रहा। आज भी गुजरात और बम्बई आदि मे सैकडो धर्मस्थानो पर मोहनलालजी महाराज के फोटो प्राप्त होते है। साधु समुदाय मे सर्वप्रथम यही आचार्य बने। सम्वत् १९६४ वैशाख वदी चौदस को सूरतनगर मे आपका स्वर्गवास हुआ।

(१) जिनयश सूरि

वचनसिद्ध मोहनलालजी महाराज की खरतरगच्छ परम्परा मे जिनयश सूरिजी पहले आचार्य थे।

इनका जन्म सम्वत् १९१२ मे जोधपुर के साड गोत्रीय पूनमचन्द जी की धर्मपत्नी मापीबाई की कुक्षि से हुआ था। इनका जन्म नाम जेठमल था। पिता के स्वर्गवास हो जाने पर अहमदाबाद जाकर ये नौकरी करने लगे। श्री जीतविजयजी म के प्रयत्न से परासवा ग्राम (कच्छ) मे जाकर धर्माध्यापक का कार्य करने लगे। १५ वर्ष पश्चात् जब वे कच्छ से जोधपुर लौटे, उस समय अपनी माता को जिनप्रतिमा के प्रति श्रद्धालु बनाया। जोधपुर मे ही इन्होने ५१ दिन की दीर्घ तपस्या की, जिसका पारणा दीवान कुन्दनमलजी ने अपने घर ले जाकर करवाया था।

सम्वत् १९४१ जेठ सुदी पाचम को आपने मोहनलालजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की। उस समय आपका नाम यश मुनि रखा गया। सम्वत् १९५४ से ५६ तक पन्यास दयाविमलजी के पास ४५ आगमो का योगोद्वहन किया और पन्यास पद प्राप्त किया। १९५७-५८ मे सूरत व बम्बई चातुर्मास कर आपने हर्ष मुनिजी को पन्यास पद दिया था जो कि बाद मे तपागच्छ परम्परा मे चले गये थे। अनेको स्थानो पर विचरण कर आपने शासन की महती प्रभवना की। ऋद्धिमुनि, रत्नमुनि, लब्धिमुनि आदि को आपने ही दीक्षा प्रदान की थी। स० १९६५ मे गुमानमुनि, ऋद्धिमुनि, केसर मुनि को आपने पन्यास पद दिया था। अनेक तीर्थो की यात्राएँ की थी। सम्वत् १९६९ ज्येष्ठ सुदी छठ के दिन आपको आचार्य पद प्रदान किया गया था। आप दीर्घ और उग्र तपस्वी थे। सम्वत् १९७० मिगसर सुदी तीज को पावापुरी मे आपका स्वर्गवास हुआ।

(२) जिनऋद्धिसूरि

चुरु के यतिवर्य श्री चिमनीरामजी के आप शिष्य थे। रामकुमार आपका नाम था और आप जाति से ब्राह्मण थे। वैराग्यवासित मन होने के कारण गद्दी की जजाल मे नही पडे और वहाँ से चल कर नाल दादाजी के दर्शन किये और एक यतिजी के साथ गिरनार और सिद्धाचल तीर्थ की यात्रा की। सम्वत् १९४१ आषाढ सुदी छठ को मोहनलालजी महाराज के पास दीक्षा ली और रामकुमार से ऋद्धिमुनि बने। यशमुनिजी के शिष्य कहलाये। योगोद्वहन के पश्चात् सम्वत् १९६६ मिगसर सुदी तीज को ग्वालियर मे यशमुनिजी ने आपको पन्यास पद प्रदान किया। सम्वत् १९९५ मे बम्बई मे आचार्य पद प्राप्त कर जिनयश सूरिजी के पट्टधर के रूप मे विख्यात हुए। सम्वत् १९९७ मे रत्नमुनिजी को आचार्य पद देकर जिनरत्नसूरि बनाया और लब्धिमुनिजी को उपाध्याय पद से अलकृत किया।

आप बडे सरल और शात स्वभावी थे, निश्छल हृदयी थे और साधनारत रहते थे। घण्टाकर्ण महावीर का आपको इष्ट था। स्थान-स्थान पर जैन शासन की प्रभावना के अनेको कार्य किये। अनेको मन्दिरो एव मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवायी। कई सघो के वैमनस्य को दूर करने मे सफल हुए थे। कई जगह जैन बोर्डिंग स्थापित करवाये थे और कई स्थानो पर आयम्बिल खाते खुलवाये थे।

थाणा मे श्रीपाल चरित्र के कलापूर्ण भित्ति चित्रो के साथ भव्य एव विशाल जिनमन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई थी। अनेक नवीन उपाश्रय बनवाए थे। कई मन्दिरो के जीर्णोद्धार आपके उपदेश से हुए थे। बोरीवली का सभवनाथ मन्दिर का निर्माण भी आप ही के उपदेश से प्रारम्भ हुआ था। घण्टाकर्ण महावीर का इष्ट होने के कारण स्थान-स्थान पर घण्टाकर्ण महावीर की मूर्तियाँ स्थापित करवाई। स० २००८ मे आपका स्वर्गवास हुआ था। आपके मुख्य शिष्य थे गुलाबमुनि और प्रशिष्य थे महोदयमुनि। दोनो का ही स्वर्गवास हो चुका है। आपके सम्बन्ध मे उपाध्याय लब्धिमुनिजी ने सस्कृत भाषा मे 'जिन-ऋद्धिसूरि चरित' लिखा है जो अभी तक अप्रकाशित है।

(३) जिनरत्नसूरि

आपका जन्म सवत् १६३८ मे लायजा मे हुआ था। जन्म नाम देवजी था। बाल्यावस्था मे ही बम्बई आकर अपने पिता की दुकान मे सहयोगी बनकर काम कर रहे थे। इधर बम्बई मे मोहनलालजी महाराज का चातुर्मास होने से देवजी भाई अपने मित्र लधाभाई के साथ प्रतिदिन व्याख्यान सुनने के लिए जाते थे। प्रतिबोध पाकर दोनो ने दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। मोहनलालजी महाराज ने इन दोनो को राजमुनिजी के पास रेवदर भेज दिया। राजमुनिजी ने इन दोनो को सवत् १६५८ चैत्र वदी तीज को भागवती दीक्षा दी। देवजी भाई का नाम रत्नमुनि रखा और लधाभाई का नाम लब्धिमुनि रखा। यशमुनिजी के पास मे इन्होने योगोद्वहन किया और गणि पद को प्राप्त किया। जिनऋद्धिसूरिजी ने सवत् १६६७ मे बम्बई मे आपको आचार्य पद प्रदान कर जिनरत्नसूरि नाम रखा।

आप बडे धीर प्रकृति के श्रमण थे, सयममार्ग मे दृढ थे और आपने राजस्थान, मालवा, गुजरात, कच्छ, महाराष्ट्र आदि अनेक स्थानो पर भ्रमण कर कई विशिष्ट धार्मिक कार्य सम्पन्न करवाये। आपके वरदाहस्तो से अनेक जिनमन्दिरो की प्रतिष्ठाएँ हुईं, अजनशलाकाएँ हुईं, उपधान तप हुए। कई स्थानो पर नवीन दादाबाडियाँ निर्माण करवाई। कई दादाबाडियो के जीर्णोद्धार करवाये। अनेक स्थलो पर गुरुदेव के चरणो की प्रतिष्ठा करवाई और अनेक उपाश्रयो का जीर्णोद्धार करवाया।

आपने कई भव्य आत्माओ को सयमपथ पर आरूढ किया था। गणि श्री प्रेममुनिजी, मुक्तिमुनिजी, भद्रमुनिजी आदि प्रमुख शिष्य थे। भद्रमुनिजी ही आत्मपथिक बनने के पश्चात् योगीराज सहजानन्दजी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। सवत् २०११ माघ सुदी प्रतिपदा को अजार मे आपका स्वर्गवास हुआ।

आपके बचपन के साथी और दीक्षा मे भी साथी लब्धिमुनिजी उपाध्याय आशु कवि थे। सस्कृत मे इन्होने कई चरित्र काव्य और कई ग्रन्थ लिखे है जिनमे चारो दादाओ के जीवन चरित्र, जिनरत्नसूरि चरित्र, जिनयश सूरि चरित्र, जिनऋद्धिसूरि चरित्र, द्वादश पर्व कथा, सुसढचरित्र एव स्तुति स्तोत्रादि प्रमुख है। आपका सवत् २०२३ मे आसम्बिया मे स्वर्गवास हुआ।

(४) गणिवर्य श्री बुद्धिमुनिजी

आपका जन्म जोधपुर क्षेत्र के गगाणी तीर्थ के निकट विलारे गाँव मे हुआ था। जन्मत आप चौधरी (जाट) वश के थे। पन्यास श्रीकेसरमुनिजी का सुसयोग मिलने के कारण सवत् १६६३ मे ६ वर्ष की अल्प आयु मे ही दीक्षा ग्रहण की। जन्म नाम नवल था और आपका दीक्षा नाम हुआ बुद्धिमुनि। स० १६६५ मे जिनरत्नसूरिजी ने आपको गणि पद से विभूषित किया था।

आप उत्कृष्ट साध्वाचार के पालक थे, कठोर नियमो एव अनुशासन मे रहना इनको अधिक प्रिय था। सस्कृत और प्राकृत भाषा के उद्भट विद्वान् थे। रात-दिवस साहित्यसाधना मे व्यतीत करना ही इनका मुख्य व्यसन था। अनेको ग्रन्थो का आपने सम्पादन किया था और अनेक चर्चात्मक पुस्तको का लेखन भी किया था। तपस्वी भी थे। अनेक स्थानो पर जिनमन्दिरो, जिनप्रतिमाओ, गुरुचरणो आदि की प्रतिष्ठाएँ करवाई थी। कई उद्यापन आपकी अध्यक्षता मे हुए थे। अन्तिम अवस्था मे आप अत्यधिक रुग्ण रहे तथापि तनिक भी साध्वाचार के नियमो का उल्लघन नही किया और एक मिनट भी व्यर्थ न खोकर छोटे-मोटे ग्रन्थो का सपादन करते रहे। स० २०१८ श्रावण सुदी अष्टमी को आपका स्वर्गवास हुआ। आपके शिष्यो मे मुनि जयानन्दजी म० विद्यमान हैं जो अपने शिष्य मुनि कुशाल मुनि जी के साथ विचरण कर रहे हैं। ये विद्वान व क्रियापात्र मुनि है। एक राजेन्द्रमुनि जी (जिनरत्नसूरि शिष्य) भी हैं जो वृद्धावस्था मे होने से ठाणापति हैं।

□ सन्तोष विनयसागर जैन

सुखसागरजी महाराज के समुदाय की साध्वी परम्परा का परिचय

जिस प्रकार शिथिलाचार परिहारी क्रियोद्धारक सविग्न साधु परम्परा का प्रारम्भ १९वी शताब्दी मे उपाध्याय प्रीतिसागर गणि से मानकर उनकी परम्परा का इतिवृत्त दिया है/परिचय दिया है। उसी प्रकार साध्वी वर्ग ने भी इन मुनि-वृन्दो के साथ क्रियोद्धार अवश्य किया होगा, किन्तु इसका कोई प्रामाणिक उल्लेख प्राप्त नही है। क्रियोद्धारिका के रूप मे सर्वप्रथम १९वी शताब्दी मे उद्योतश्रीजी का ही नाम प्राप्त होता है। वर्तमान मे समुदाय की परम्परा भी उद्योतश्रीजी की ही शिष्या परम्परा है अत उद्योतश्रीजी से ही परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) उद्योतश्रीजी

इनका निवास स्थान फलोदी था। नाम नानीबाई था। बाल्यावस्था मे ही फलोदी के ही रतनचन्दजी गोलेछा के साथ विवाह हुआ था। अशुभकर्मोदय के कारण इनके पति का स्वर्गवास हो गया। वैधव्य जीवन बिता रही थी। पति के अचानक स्वर्गवास से मन ससार से विरक्त हो गया था। इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि 'मक्सी तीर्थ की यात्रा करने के पश्चात् घी का प्रयोग करूँगी।' तीर्थ यात्रा हेतु ही जोधपुर आईं। वही सयोग से राजसागरजी महाराज की शिष्या रूपश्री जी से इनका मिलन हुआ और इनकी विरक्त भावना जागृत हो गई। तीन पुत्र, पाँच पौत्र और तीन पौत्रियाँ आदि परिवार के स्नेह बन्धन से मुक्त होकर सम्वत् १९१८ के माघ सुदी पाँचम को राजश्री जी के पास दीक्षा ग्रहण की, नाम उद्योत श्री रखा गया। सम्वत् १९१९ का जोधपुर, सम्वत् १९२० का अजमेर, १९२१ का किशनगढ और १९२२ का चातुर्मास फलोदी मे किया। फलोदी मे ही इन्हे सद्गुरु का सहयोग मिला। सद्गुरु थे क्रियोद्धारक सुखसागरजी। सुखसागर जी की उत्कृष्ट क्रिया पात्रता देखकर उद्योतश्री जी ने भी क्रियोद्धार किया और उनकी आज्ञानुयायिनी बन गई।

दीक्षा के पश्चात् भी कई वर्षों तक पूर्वगृहीत अभिग्रह पूर्ण नही हुआ था, तब तक आपने घृत का प्रयोग नही किया था। कई वर्षों बाद मक्सी तीर्थ की यात्रा सानन्द की और इनका अभिग्रह पूर्ण हुआ। इन्होने ४ साध्वियो को दीक्षा देकर अपने साध्वी समुदाय की वृद्धि की। चारो साध्वियाँ थी—धनश्री, लक्ष्मीश्री, मगनश्री और पुण्यश्री। लक्ष्मीश्री जी को सवत् १९२८ में और मगनश्री जी को सवत् १९३० मे दीक्षा प्रदान की थी।

साध्वियो को शिक्षा-दीक्षा देती हुई अनेक स्थानो पर विचरण करती रही। सवत् १६४० के बाद ही फलोदी मे ही आपका स्वर्गवास हुआ।

इनकी शिष्याओ लक्ष्मीश्री जी और शिवश्रीजी की शिष्याओ मे अत्यधिक मात्रा मे वृद्धि होने के कारण उद्योतश्री जी की परम्परा दो भागो मे विभक्त हो गई। एक लक्ष्मीश्री जी की परम्परा और दूसरी शिवश्री जी की परम्परा।

(२) प्रवर्तिनी लक्ष्मीश्रीजी

इनका निवास स्थान फलोदी था। जीतमल जी गोलेछा की सुपुत्री थी और कनीरामजी झाबक के पुत्र सरदारमलजी की पत्नी थी। इनका नाम लक्ष्मीबाई था। बालविधवा हो जाने से आपकी भावना वैराग्य की ओर अग्रसर हुई। सुखसागर जी महाराज की देशना से प्रतिबोध पाकर सवत् १६२४ मिगसर वदी १० को दीक्षा ग्रहण की। दीक्षानन्तर सवत् १६२५ का जयपुर, १६२६ का फलोदी, १६२७ का बीकानेर और १६२८ का पाटण मे चातुर्मास किया। पाटण से शत्रुजय तीर्थ की यात्रा कर १६२६ का चातुर्मास अहमदाबाद किया और १६३० का चातुर्मास नागोर मे किया। इन्होने अनेक महिलाओ को दीक्षा दी थी। सवत् १६३१ मे पुण्यश्री को दीक्षा दी थी। आप कब तक विद्यमान रही, कब स्वर्गवास हुआ और कहाँ हुआ ? इसका कोई उल्लेख प्राप्त नही है।

(३) प्रवर्तिनी पुण्यश्री जी

जैसलमेर के निकट गिरासर नामक गाँव मे पारख गोत्रीय जोतमलजी रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम कुन्दनदेवी था। दो लडके और एक लडकी के पश्चात् जब कुन्दनदेवी ने गर्भधारण किया तो सिंह का स्वप्न देखा था। सवत् १६१५ वैशाख सुदी छठ को कुन्दनदेवी ने बालिका को जन्म दिया, नाम रखा पन्नीबाई। ११ वर्ष की उम्र मे ही विवाह की बातचीत चली, पन्नीबाई ने अपनी माँ से स्पष्ट शब्दो मे कहा कि 'मैं दीक्षा लेना चाहती हूँ विवाह करना नही।' पिता के समक्ष पन्नीबाई की न चली और सवत् १६२७ आषाढ वदी ७ को फलोदी निवासी दौलतचन्द झाबक के साथ विवाह हुआ। किन्तु, यह सौभाग्य अधिक दिनो तक न रह सका और विवाह के १८ दिन पश्चात् ही पन्नीबाई को दुर्दैव से वैधव्य जीवन स्वीकार करना पडा। तदनन्तर अपनी बडी बहन मूलीबाई के साथ आकर फलोदी रहने लगी और कस्तूरचन्द जी लूणीया के पास से धार्मिक सस्कार प्राप्त करने लगी। विवाह के पूर्व ही दीक्षा की भावना थी, वह भावना अब वेग पकडने लगी। पितृपक्ष और श्वसुरपक्ष ने दीक्षा की आज्ञा न दी। पन्नीबाई ने आज्ञा हेतु अन्न-पानी का त्याग कर दिया। बडी कठिनता से दीक्षा की अनुमति प्राप्त हुई और सवत् १६३१ वैशाख सुदी ११ को फलोदी मे ही महोत्सव के साथ गणनायक सुखसागरजी महाराज के हाथो पुनीत दीक्षा ग्रहण कर लक्ष्मीश्रीजी की शिष्या बनी और इनका नाम रखा गया पुण्यश्री।

सवत् १६३१ से लेकर १६७६ तक ४५ वर्ष पर्यंन्त स्थान-स्थान पर विचरण करती हुई, धर्मोपदेश देती हुई शासन की सेवा और खरतरगच्छ की वृद्धि मे सतत् सलग्न रही।

इनकी दैदीप्यमान आकृति थी, आँखो मे तेज था, वाणी मे ओज और माधुर्य। गुरुजनो के पास रहकर आगम साहित्य आदि का अच्छा अध्ययन किया था। व्याख्यान शैली भी रसोत्पादक थी। यही कारण है कि आपके उपदेशो से अनेक भव्य महिलाओ ने दीक्षा ग्रहण की। सर्वप्रथम सवत् १६३६ मे फलोदी मे दो को दीक्षाएँ देकर अपनी शिष्याएँ बनाई थी। वे थी—अमरश्री और शृगारश्री। सवत् १६३६ से लेकर १६७६ तक के काल मे आपकी निश्रा मे ११६ दीक्षाए विभिन्न स्थानो पर हुई और वे भी बडे महोत्सव के साथ। इन ११६ दीक्षाओ मे से ४६ तो इन्ही की शिष्याएँ थी और

पंच प्रवर्तिनी

पुण्यशालिनी श्री पुण्यश्री जी महाराज

प्रवर्तिनी सुवर्णश्री जी महाराज

प्रवर्तिनी ज्ञानश्री जी महाराज

प्रवर्तिनी विचक्षणश्री जी महाराज

प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज
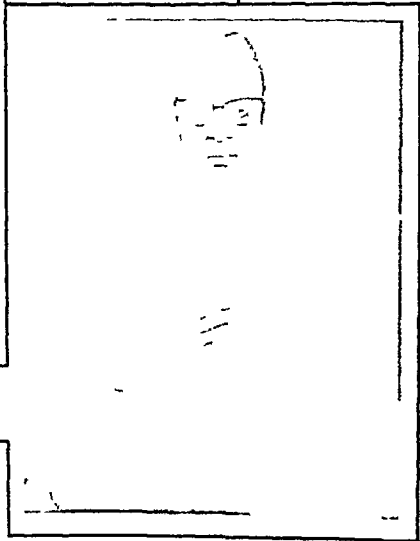
शेष अपनी शिष्याओ की और प्रशिष्याओ की शिष्याएँ बनी थी। गणनायक सुखसागरजी महाराज का वह स्वप्न कि "कुछ बछडो के साथ गायो का झुण्ड देखा" वह पुण्यश्री के समय मे साकार रूप ले गया।

सुखसागरजी महाराज के समुदाय के साधुओ की वृद्धि के लिए भी ये सतत् प्रयत्नशील रही और अनेको को साधुमार्ग की ओर आकर्षित कर दीक्षाएँ दिलवाकर खरतरगच्छ की अभिवृद्धि मे अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया। महातपस्वी छगनसागरजी भी आपकी ही प्रेरणा से सवत् १९४३ मे दीक्षित हुए। महोपाध्याय सुमतिसागरजी भी जिनका नाम सुजानमल रेखावत था, नागोर निवासी थे, आपकी ही प्रेरणा से उन्होने भी स १९४४ वैशाख सुदी ८ को सिरोही मे भगवानसागरजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की थी। अपने भाई चुन्नीलाल को भी प्रेरित कर सवत् १९५३ मे पाटण मे दीक्षा दिलवाई थी, जो कि बाद मे गणनायक त्रैलोक्यसागरजी बने थे। पूर्णसागरजी और क्षेमसागरजी भी आपकी प्रेरणा से ही सवत् १९६३ मे दीक्षित हुये। यादवसिह कोठारी भी प्रज्ञानश्रीजी के प्रयत्नो और पुणपश्रीजी की प्रेरणा से ही सवत् १९६८ मे रतलाम मे दीक्षित हुए थे, यही भविष्य मे वीर पुत्र आनन्द सागरजी/जिनानन्दसागरजी बने थे।

आर्यारत्न पुण्यश्री जी का जैसा नाम था वैसे ही पुण्य की पु ज थी, गुणधारक थी। इनके कार्यकाल मे जो विशिष्ट धार्मिक कृत्य सम्पन्न हुए उनकी तालिका इस प्रकार है —

स १९३७ मे नागौर के सघ के साथ इन्होने केसरियाजी की यात्रा की। १९४१ मे फलौदी मे मदिरो पर कलशारोपण व उद्यापन हुआ। १९४२ मे कुचेरा मे जिनमदिर के ताले लग गये थे, कॉटो की वाड लगा दी गई थी उसका निवारण कर वहाँ शताधिक कुटुम्वो को मदिरमार्गी वनाया था। १९४४ मे नागोर से सघ के साथ शत्रुजय तीर्थ की यात्रा की थी। मार्ग मे जगल मे एक अश्वारोही ने शृगारश्री को लावण्यवती देखकर अपनी वासना का शिकार बनाना चाहा। उस समय पुण्यश्रीजी ने कडकती आवाज मे उसको अनिष्ट की और स केत क्रिया। उसको दिखाई देने बद हो गया, फलत. उसने क्षमा याचना की और भविष्य के लिए कुवासनाओ से बचने की प्रतिज्ञा की। उसे पुन दिखाई देने लगा। सवत् १९४८ मे फलोदी मे नवनिर्मापित आदिनाथ मदिर की प्रतिष्ठा हुई। प्रतिष्ठाकारक थे श्री ऋद्धिसागरजी महाराज। इस प्रतिष्ठा अवसर पर भगवानसागरजी, सुमतिसागरजी, छगनसागरजी आदि भी विद्यमान थे। सवत् १९४८ मे फलोदी मे ही ऋद्धिसागर जी महाराज के पास से पुण्यश्रीजी ने भगवती सूत्र की वाचना ग्रहण की। सवत् १९५१ मे जैसलमेर की यात्रा की। १९५१-५२ मे खीचन के मूल निवासी तत्कालीन लश्कर-ग्वालियर नरेश के कोषाध्यक्ष सेठ नथमलजी गोलेच्छा ने सिद्धाचल का सघ निकालने का निर्णय किया और पुण्यश्रीजी से विनती की। इसी सघ के साथ इन्होने सिद्धाचल की यात्रा की। सघ की अध्यक्षा थी सेठ नथमलजी की बहन जवाहरबाई। सवत् १९५९ मे केसरियाजी की यात्रा की। स० १९६३ मे कालिंद्री के सघ मे जो वैमनस्य था उसे समाप्त करवाया। १९६५ मे रतलाल मे दीवान बहादुर सेठ केसरीसिहजी बाफना ने विशाल व दर्शनीय उद्यापन महोत्सव करवाया था। इस उत्सव मे यशमुनिजी महाराज (जिनयश सूरिजी) उपस्थित थे। १९६५ मे मक्सी तीर्थ की यात्रा की। १९६६ मे इदौर निवासी सेठ पूनमचद सामसुखा ने माण्डवगढ का सघ निकाला था। १९६९ मे रघुनाथपुर के जागीरदार कुलभानुचन्द्रसिह एव ठकुरानी को उपदेश देकर मास का त्याग करवाया था। १९६९ मे ग्वालियर नरेश को भी उपदेश दिया था और राजमाता, महारानियो को पर्व तिथि पर मद्य-मास का त्याग करवाया था।

१९७२ से १९७६ के चातुर्मास आपके जयपुर में ही हुए। अतिम अवस्था मे आप जयपुर आई। जयपुर का पानी आपको लग गया। फलत. अस्वस्थ

रहने लगी, शरीर व्याधिग्रस्त और जर्जर हो गया। धर्माराधन और शास्त्रश्रवण करती हुई सवत् १९७६ फाल्गुन सुदी १० को जयपुर मे ही आप स्वर्गवासिनी हुई। मोहनबाडी मे आपका दाह-सस्कार किया गया। और वही शिवजीरामजी महाराज की छतरी के पास आपकी छतरी वनाकर चरण पादुका स्थापित की गई।

आपकी स्वहस्त दीक्षित शिष्याओ मे से महत्तरा वयोवृद्धा चम्पाश्रीजी का १०५ की अवस्था मे इसी वर्ष स्वर्गवास हुआ है। और प्रशिष्याओ मे वयोवृद्धा रतिश्रीजी आदि अभी विद्यमान है। आपकी साध्वीपरम्परा मे आज भी ९० और १०० के भीतर शिष्याएँ विद्यमान है, धर्म प्रभावना करती हुई शासन की सेवा कर रही है।

(४) प्रवर्तिनी सुवर्णश्रीजी

प्रवर्तिनी पुण्यश्रीजी के स्वर्गवास के पश्चात् उन्ही के निर्देशानुसार प्रवर्तिनी सुवर्णश्रीजी हुई। ये अहमदनगर निवासी सेठ योगीदास जी बोहरा की पुत्री थी। माता का नाम दुर्गादेवी था। इनका जन्म सवत् १९२७ ज्येष्ठ वदी १२ के दिन हुआ था। सुन्दरबाई नाम रखा गया था। ११ वर्ष की अवस्था मे सवत् १९३८ माघ सुदी ३ के दिन नागोर निवासी प्रतापचन्दजी भडारी के साथ इनका शुभ विवाह हुआ। सवत् १९४५ मे पुण्यश्रीजी के सम्पर्क से वैराग्यभावना जागृत हुई। बडी कठिनता से अपने पति से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त कर सवत् १९४६ मिगसर सुदी ५ को दीक्षा ग्रहण की। केसरश्रीजी की शिष्या वनी अर्थात् पुण्यश्रीजी के प्रपौत्र शिष्या वनी। साध्वी अवस्था मे नाम रखा गया सुवर्णश्री। वडी तपस्विनी थी। निरन्तर तपस्या करती रहती थी। घण्टो तक ध्यानावस्था मे रहा करती थी। अनेक वर्षो तक पुण्यश्रीजी महाराज के साथ ही रह कर उनकी सेवा शुश्रूषा मे लगी रहती थी। २२वाँ चौमासा अपनी जन्मभूमि अहमदनगर मे किया था। वहाँ से चौवीसवाँ चौमासा वम्वई मे किया था।

पुण्यश्रीजी के सान्निध्य मे सुवर्णश्रीजी की दीक्षा वारहवें नम्वर पर हुई थी। इनके दीक्षित होने के पश्चात् साध्वियो की दीक्षाओ मे अत्यधिक वृद्धि हुई। सवत् १९९१ तक यह सख्या लगभग १४० को पार कर गई। पुण्यश्रीजी का यह मानना था कि इस सुवर्ण के आने से यह वश वृद्धि वेग से हुई। पुण्यश्रीजी का इन पर अत्यधिक स्नेह था। स्वर्गवास के पूर्व इन्ही को गणनायिका के रूप मे घोषित किया था। सवत् १९७६ से सुवर्णश्रीजी ने प्रवर्तिनी पद का भार सकुशलता के साथ निर्वाह किया। इनकी स्वय की १८ शिष्याएँ थी, प्रशिष्याएँ आदि भी वहुत रही।

आपके समय मे जो विशिष्ट धार्मिक कृत्य हुए उनकी सूची इस प्रकार है—

हापुड मे मोतीलालजी वूरड द्वारा नवमदिर का निर्माण हुआ। आगरा मे दानवीर सेठ लक्ष्मीचन्दजी वेद ने वेलनगज मे भव्य मन्दिर व विशाल धर्मशाला बनाई। सौरीपुर तीर्थ का उद्धार करवाया। महिला समाज की उन्नति हेतु दिल्ली मे साप्ताहिक स्त्री सभा प्रारम्भ की। सवत् १९८४ कार्तिक सुदी ५ के दिन जयपुर मे घूपियो की धर्मशाला मे श्राविकाश्रम की स्थापना की। जो राजरूपजी टाक आदि के सतत् प्रयत्नो से वीर वालिका महाविद्यालय के रूप मे विद्यमान है। वीकानेर मे वीस स्थानक उद्यापन महोत्सव करवाया।

अन्तिम अवस्था मे साध्वी समुदाय की प्रवर्तिनी का पद भार अपने हाथो से ज्ञानश्रीजी को प्रवर्तिनी बनाकर सौपा।

सवत् १९८९ माघ वदी ९ को वीकानेर मे इनका स्वर्गवास हुआ। रेलदादाजी मे इनका दाह-सस्कार किया गया और वहाँ स्वर्ण समाधि स्थल स्थापित किया गया।

(५) प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी

प्रवर्तिनी स्वर्णश्रीजी के स्वर्गवास के पश्चात्

ज्ञानश्रीजी प्रवर्तिनी हुईं। इनका जन्म सम्वत् १९४२ कार्तिक वदी १३ के दिन फलोदी में हुआ था। इनका नाम था गीताकुमारी। केवलचंदजी गोलेछा की ये सुपुत्री थी। मारवाड की पुरानी परम्परा के अनुसार गीता/गीथा का विवाह नौ वर्ष की अवस्था मे ही भीकमचन्दजी वेद के साथ कर दिया था। दुर्भाग्य से एक वर्ष मे ही भीकमचन्दजी वेद का स्वर्गवास हो गया और आप बालविधवा हो गईं। साध्वी रत्नश्रीजी के सम्पर्क से वैराग्य का वीज पनपा और आखिर मे सवत् १९५५ पौष सुदी ७ को गणनायक भगवानसागरजी, तपस्वी छगनसागरजी, त्रैलोक्यसागरजी की उपस्थिति मे फलोदी मे ही इनकी दीक्षा हुई। पुण्यश्री जी की शिष्या घोषित कर ज्ञानश्री नामकरण किया।

इन्होने ४० वर्ष तक विभिन्न प्रान्तो—मारवाड, मेवाड, मालवा, गुजरात, काठियावाड आदि मे विचरण कर धर्म का प्रचार किया। शत्रुंजय, गिरनार, आबू, तारगा, खम्भात, धुलेवा, माण्डवगढ, मक्सी और हस्तिनापुर आदि तीर्थो की यात्राएँ की। सम्वत् १९८९ मे इन्हे प्रवर्तिनी पद दिया गया। तब से पुण्यश्री महाराज के समुदाय का सफलतापूर्वक नेतृत्व करती रही। आपने अनेको को दीक्षाएँ प्रदान की। जिनमे पूज्य सज्जनश्रीजी आदि ११ शिष्याएँ हुई। सम्वत् १९९४ से शारीरिक अस्वस्थता और अशक्तता के कारण जयपुर मे ही स्थिरवास किया। आपका स्वभाव बडा शान्त था, प्रकृति बडी निर्मल थी। निन्दाविकथा से दूर रहकर जप-ध्यान करती रहती थी और शासन-प्रभावना के कार्यो मे दत्तचित्त रहती थी। सम्वत् २०२३ चैत्र वदी १० को जयपुर मे आपका स्वर्गवास हुआ। मोहनवाडी मे इनका अग्नि-सस्कार किया गया।

(६) उपयोगश्रीजी

आप फलोदी निवासी कन्हैयालालजी गोलेछा की पुत्री थी। केसरबाई नाम था। इनका विवाह गुजराजजी बरडिया के साथ हुआ था। छोटी अवस्था मे ही विधवा हो गई थी। ज्ञानश्रीजी के उपदेश से १९७४ माघ सुदी १३ को फलोदी मे दीक्षा ग्रहण की थी। शिष्या अवश्य ही पुण्यश्रीजी की कहलाई। किन्तु सारा जीवन ज्ञानश्रीजी की सेवा हो बीता। उदारहृदया और सेवाभाविनी थी। सम्वत् २०१६ मे जयपुर मे इनका अकस्मात् ही स्वर्गवास हो गया था।

(७) प्रवर्तिनी विचक्षणश्रीजी

जैन कोकिला प्रखरवक्त्री विदुषी विचक्षणश्रीजी का जन्म १९६९ आषाढ वदी एकम् के दिन अमरावती मे हुआ था। इनके पिता का नाम था मिश्रीमलजी मूथा और माता का नाम था रूपादेवी। मूथा जी मूलत चीपाड के रहने वाले थे, किन्तु व्यापार हेतु अमरावती मे निवास कर रहे थे। इस बालिका का जन्म नाम था दाखीबाई। दाख के अनुसार ही बाल्यावस्था से लेकर साध्य वेला तक इनका व्यवहार मधुर ही रहा। छोटी सी अवस्था मे ही इस दाखा की सगाई पन्नालालजी मुणोत के साथ कर दी गई थी। सवत् १९७० मे दाखा के पिता मिश्रीमलजी का अचानक स्वर्गवास हो गया। स्वर्णश्रीजी के सम्पर्क मे सतत् आने के कारण माता और पुत्री दोनो ही दीक्षा की इच्छुक हो गई। ससुराल से आये आभूषणो को दाखा ने पहनना अस्वीकार कर दिया। घर की शादियो मे भी सम्मिलित नही हुईं। इससे इनके दादाजी असन्तुष्ट हुए। माता-पुत्री के द्वारा दीक्षा की अनुमति चाहने पर उन्होने अस्वीकार कर दी, बडी कठिनता से स्वीकार भी किया। उत्सव भी चालू हुए किन्तु वक्त पर दादाजी ने मना ही कर दी। और आखिर मे निम्बाज ठाकुर के यहाँ इसकी पेशी हुई। निम्बाज ठाकुर ने दाखा का परीक्षण करने के पश्चात् दीक्षा की स्वीकृति दे दी। दीक्षा हेतु जतनश्रीजी, ज्ञानश्रीजी, उपयोगश्रीजी आदि पीपाड पहुँच चुके थे। इन्ही की उपस्थिति मे सवत् १९८१ ज्येष्ठ सुदी पाचम को दीक्षा दी गई। दोनो के नाम—माता रूपाबाई का नाम विज्ञानश्री

और दाखा का नाम विचक्षणश्री रखा गया। और दोनो को स्वर्णश्रीजी महाराज की शिष्या घोषित किया। इन दोनो को बडी दीक्षा गणनायक हरिसागरजी महाराज ने दी और विचक्षणश्रीजी को जतनश्रीजी की शिष्या घोषित किया।

दीक्षा ग्रहण के पश्चात् शास्त्रो का अध्ययन करने लगी। प्रखर बुद्धि थी ही और प्रतिभा भी थी। कुछ ही समय मे अच्छी विदुषी बन गई।

आपकी वाणी मे श्रोता को मुग्ध करने का जादू था। बडी-बडी विशाल सभाओ मे निर्भीकता के साथ भाषण/प्रवचन देती थी। बडे-बडे जैनाचार्यो के समक्ष भी भाषण देने मे कभी भी हिचकिचाई नही। तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य युग दिवाकर विजय वल्लभसूरिजी ने तो इनके भाषणो से मुग्ध होकर इन्हे "जैन कोकिला" से सम्बोधित किया था। प्रवर्तिनी ज्ञानश्रीजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् इस समुदाय का भार इन्ही के कन्धो पर आ गया और इन्होने सफलतापूर्वक निभाया।

अपनी समाज की गरीब महिलाओ के पोषण हेतु इन्होने प्रयत्न करके अखिल भारतीय सुवर्ण सेवा फण्ड अमरावती और जयपुर मे स्थापित करवाये और दिल्ली मे सोहनश्री, विज्ञानश्री कल्याण केन्द्र की स्थापना करवाई। इन तीनो सस्थाओ से आर्थिक स्थिति से कमजोर महिलाओ को प्रत्येक प्रकार से गुप्त रूप से सहयोग दिया जाता है। रतलाम मे सुखसागर जैन गुरुकुल की स्थापना करवाई।

आपने अपने उपदेशो से अनेक बालिकाओ, महिलाओ को प्रतिबोध देकर वैराग्य की ओर प्रेरित किया और पचासो को दीक्षा प्रदान की। आपकी दीक्षित शिष्याओ मे सर्वप्रथम दीक्षित अविचलश्री जी आज भी प्रधानजी पद को सुशोभित कर रही हैं। इनको सवत् १९९१ मे दीक्षा दी। कई शिष्याएँ विदुषी है, व्याख्यान पटु हैं और आपके नाम को दीपित करती हुई शासन की सेवा मे सलग्न है।

सवत् २०३३ मे आपके सीने पर अकस्मात ही कैसर की गाँठ हो गई। वह गाँठ बढती ही गई, गाँठ के साथ वेदना भी बढती ही गई। आपने कभी उपचार नही करवाया। अशुभ कर्मो का उदय समझकर शात भाव से सहन करने में ही अपना कुशल क्षेम समझा। देह भिन्न और आत्मा भिन्न है इस विभेद ज्ञान को साकार रूप से अपने जीवन मे चरितार्थ किया। "तन मे व्याधि मन मे समाधि" धारण कर एक अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया। अन्तिम दिनो मे तो गाठ के फूट जाने से जो असीम वेदना होती थी उसे वे शात भाव से सहन करती रही और सवत् २०३७ वैशाख सुदी को श्रीमाला की दादावाडी, जयपुर मे इस नश्वर देह का त्याग कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। मोहनवाडी मे बडे उत्सव के साथ इनका दाह-सस्कार किया गया। मोहनवाडी मे ही इनका विशाल एव भव्य समाधि मन्दिर बना है।

विचक्षणश्रीजी ने अपना उपनाम 'कोमल' रखा था। आपके द्वारा रचित भजन साहित्य प्रचुर सख्या मे प्राप्त है उसमे कई स्थल पर 'कोमल' का प्रयोग किया है। हृदय से जैसी कोमल थी, मधुर थी वैसी ही अनुशासन प्रिय भी थी। यही कारण है कि इनकी दीक्षित समुदाय मे तब तक अनुशासन बना रहा। अन्तिम समय के पूर्व आपने बडी बुद्धिमानी और वैचक्षण्य का कार्य किया कि सज्जनश्रीजी को प्रवर्तिनी पद देने का निर्देश दिया और अपनी साध्वी समुदाय के लिए उनका नेतृत्व अपनी प्रथम शिष्या अविचलश्रजी को प्रधान पद देकर उनके कधो पर डाल दिया।

आज भी आपकी साध्वी समुदाय लगभग ५१ है और वह इस समय अनेक स्थानो पर विचरण कर रहा है।

(८) प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी

गुलाबी नगरी जयपुर में ही जन्मी, यही खेली,

बडी हुई, यही विवाहित जीवन जीया, यही दीक्षा ग्रहण की और यही अब आपका अभिनन्दन समारोह होने जा रहा है। अभिनन्द्यमान सज्जनश्रीजी का विस्तार से परिचय अन्यत्र दिया गया है अत उसका यहाँ पिष्ट-पेषण करना उपयुक्त नही है।

सवत् २०३७ से प्रवर्तिनी पद को सुशोभित कर रही है। अभी आपकी आज्ञा मे निम्नाकित साध्वी समुदाय विचरण कर रहा है —

१ शशिप्रभाश्रीजी आदि १२ ठाणा, सज्जनश्रीजी महाराज की ही शिष्याएँ है।

२ स्वर्गीया चपाश्रीजी महाराज की शिष्याएँ जितेन्द्रश्रीजी, १२ ठाणा से विचरण कर रही है।

३ विचक्षण मण्डल की ५१ साध्वियाँ अनेक स्थानो पर विचरण कर रही है।

४ रतिश्रीजी ७ ठाणा के साथ फलोदी मे विराजमान है।

५ स्वर्गीया पवित्रश्रीजी की शिष्याओ मे दिव्यप्रभाश्रीजी ८ ठाणा के साथ है।

अत मे प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी महाराज दीर्घजीवी हो और शासन तथा खरतरगच्छ के अभ्युदय मे निरन्तर सहयोग देती रहे, यही हार्दिक शुभकामना है।

(२) शिवश्रीजी महाराज का समुदाय

उद्योतश्रीजी महाराज की लघु शिष्या थी शिवश्रीजी। इनके सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की जानकारी अभी तक प्राप्त नही हो सकी है। किन्तु आपका साध्वी समुदाय भी विशाल होने के कारण यह समुदाय शिवश्रीजी के समुदाय के नाम से प्रसिद्ध है। अनेकों को दीक्षा दी होगी, किन्तु जिनकी बाद मे परम्परा चली वे मुख्यत ५ हुई थी। उन पाचो के नाम इस प्रकार है —

प्रतापश्रीजी, देवश्रीजी, ज्ञानश्रीजी, प्रेमश्रीजी और विमलश्रीजी। अब इन पाँचो के परिवार का सक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है —

(१) प्रवर्तिनी प्रतापश्रीजी

शिवश्रीजी के स्वर्गवास के पश्चात् ये प्रवर्तिनी बनी। इनकी दीक्षा सवत् १९४८ मिगसर वदी दूज को हुई थी। गृहस्थावस्था मे ये सूरजमलजी श्रावक की पत्नी थी और नाम ज्योतिबाई था। आपने अनेक शिष्याएँ बनाई थी, इनमे से दिव्यश्रीजी, मोहनश्रीजी आदि आज विद्यमान है।

(२) प्रवर्तिनी देवश्रीजी

इनके सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त नही है। प्रतापश्रीजी के स्वर्गवास के पश्चात् इस समुदाय का नेतृत्व इन्होने सभाला था और इन्होने प्रवर्तिनी पद प्राप्त किया था। चन्द्रकाताश्रीजी आदि कुछ साध्वियाँ इनकी परम्परा मे विद्यमान है।

(३) प्रवर्तिनी प्रेमश्रीजी

प्रवर्तिनी देवश्रीजी के पश्चात् प्रेमश्रीजी ने प्रवर्तिनी पद प्राप्त किया था। फलोदी मे ही इनका स्वर्गवास हुआ था। इनकी परम्परा मे निम्नाकित साध्वियाँ विद्यमान है —

१ विकासश्रीजी ठाणा ३

२ विनोदश्रीजी

३ विदुषी साध्वी हेमप्रभाश्रीजी ठाणा १८ जिनके उपदेश से इस वर्ष बीकानेर मे उपधान तप हुआ था। शास्त्रो की अच्छी जानकार है और अच्छी वक्ता है।

४ सुलोचनाश्रीजी ठाणा ८।

(४) प्रवर्तिनी वल्लभश्री जी

प्रेमश्रीजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् साध्वी समुदाय का नेतृत्व वल्लभश्रीजी के कन्धो पर आया, प्रवर्तिनी बनी। वल्लभश्री जी ज्ञानश्री जी महाराज की शिष्या थी। ज्ञानश्रीजी प्रेमश्रीजी से बडी थी किन्तु स्वर्गवास पूर्व हो जाने के कारण प्रवर्तिनी पद प्रेमश्रीजी को प्राप्त हुआ था और तत्पश्चात् वल्लभश्रीजी को। वल्लभश्रीजी अच्छी विदुषी थी, आगमो की जानकार थी, उपदेश देने मे पटु थी। आपका स्वर्गवास भी फलोदी मे हुआ था। इनकी शिष्या-प्रशिष्याओ मे लगभग ३५ अभी विद्यमान है। जिनका विवरण इस प्रकार है —

१ प्रवर्तिनी जिनश्रीजी ६ ठाणा अमलनेर

२ निपुणाश्रीजी आदि

३ छत्तीसगढशिरोमणि मनोहरश्रीजी १९ ठाणा। ये अच्छी विदुषी साध्वी है। इनकी समस्त साध्वियाँ व्याख्यान देने मे पटु हैं।

४ कुसुमश्रीजी आदि।

(५) प्रवर्तिनी प्रमोदश्रीजी

प्रवर्तिनी वल्लभश्रीजी के स्वर्गवास के पश्चात् प्रवर्तिनी पद पर प्रमोदश्रीजी की स्थापना हुई। प्रमोदश्रीजी शिवश्रीजी महाराज की प्रशिष्या और विमलश्रीजी की शिष्या थी। इनका जन्म स० १९५५ कार्तिक सुदी ५ को फलौदी मे हुआ था। गोलेछा गोत्रीय सूरजमलजी की पत्नी जेठीबाई की पुत्री थी। इनकी दीक्षा स० १९६४ माघ सुदी ५ को फलौदी मे हुई थी। ये भी आगम और साहित्य की अच्छी जानकार थी। इनकी साध्वी परम्परा मे प्रकाशश्री जी, विजयेन्द्रश्रीजी, और विद्युतप्रभाश्रीजी ठाणा ७ आदि विद्यमान है। विद्युतप्रभाश्री जी अच्छी लेखिका है और अभी डाक्टरेट के लिए शोध प्रवन्ध लिख रही है। प्रमोदश्रीजी महाराज का २०३९ पौष वदी १० को वाडमेर मे स्वर्गवास हुआ।

(६) प्रवर्तिनी जिनश्रीजी

प्रमोदश्रीजी के पश्चात् प्रवर्तिनी पद पर प्रवर्तिनी वल्लभश्रीजी महाराज की शिष्या जिनश्री जी विभूषित हुई। इनका जन्म सवत् १९५७ आश्विन सुदी ८ को तिवरी मे हुआ था। पिता का नाम बूरड लाधूरामजी और माता का नाम धुणी-देवी था। सवत् १९७६ मे मिगसर सुदी ५ को आपने वल्लभश्रीजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की थी। २०४० वैशाख शुक्ला दूज को आपने प्रवर्तिनी पद प्राप्त किया था। ८८ वर्ष की वृद्धावस्था और शारीरिक अस्वस्थता के कारण अभी आप ६ ठाणो से अमलनेर मे विराजमान है। शिवश्रीजी समुदाय की लगभग ९० साध्वियो का आप नेतृत्व कर रही हैं।

उपसहार—शिवश्रीजी महाराज के समुदाय का ब्यौरेवार इतिहास समय और सामग्री के अभाव के कारण नही लिखा जा सका। यथाशीघ्र ही समय निकाल कर इसकी अवश्य ही पूर्ति की जायेगी।

सज्जन वाणी

१ जिन्होने सत्य को आचरण मे उतारा है, जिनकी वाणी सत्य से ओत-प्रोत है, जिनका मन भव्य चिंतन मे लीन है। वे ससार के पूज्य वन जाते हैं।

२ जिन्होने अस्तेय व्रत धारण लिया, उन्हे सभी सम्पत्तियाँ अनायास मिलती हैं उनके जीवन मे कभी दरिद्रता नही आती। और वे सभी के विश्वास-पात्र वन जाते है।

☐ साध्वी सम्यग्दर्शनाश्रीजी

स्व० आचार्य श्री जिनकवीन्द्रसागर सूरिजी म०सा०

इस अनादिकालीन चतुर्गत्यात्मक ससार कानन मे अनन्त प्राणी स्व-स्व-कर्मानुसार विचित्र-विचित्र शरीर धारण करके कर्मविपाक को शुभाशुभ रूप से भोगते हुए भ्रमण करते रहते है। उनमें से कोई आत्मा किसी महान् पुण्योदय मे मानव-शरीर पाकर सद्गुरु सयोग से स्वरूप का भान करके विरक्ति की ओर गमन करते है। जन्म-जरा-मरण से छूटकर वास्तविक मुक्ति सुख प्राप्त करने के लिए, तप सयम की साधनापूर्वक स्व-पर-कल्याण साधते है। ऐसे ही प्राणियो मे से स्वर्गीय आचार्यदेव थे, जिन्होने बाल्यावस्था से आत्मविकास के पथ पर चलकर मानव-जीवन को कृतार्थ किया।

वश परिचय व जन्म—आपश्री के पूर्वज सोनीगरा चौहान क्षत्रिय थे और वीर प्रसविनी मरुभूमि के घन्नाणी ग्राम मे निवास करते थे। वि० स० ६०५ मे श्री देवानन्द सूरि से प्रतिबोध पाकर जैन ओस-वाल बने और अहिंसाधर्म धारण किया। पूर्व पुरुष जगाजी शाह रानी आकर रहने लगे। रानी से पाटण और फिर व्यापारार्थ इनके वशज श्रीमलजी वि० १६१६ मे लालपुरा चले गये थे। वहाँ भी स्थिति ठीक न होने से इनके वशज शेषमलजी पालनपुर आये और वही निवास कर लिया। इसी वश मे बेचर भाई के सुपुत्र श्री निहालचन्द्र शाह की धर्मपत्नी श्रीमती बब्बूबाई की रत्नकुक्षि से वि० स० १९६४ की चैत्र शुक्ला १३ को शुभ स्वप्न सूचित एक दिव्य बालक ने अवतार लिया। पिता-माता के इससे पूर्व कई बालक बाल्यावस्था मे ही काल कवलित हो चुके थे। अत उन्होने विचार किया कि यह बालक जीवित रहा तो इसे शासन सेवार्थ समर्पित कर देगे। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार यह बालक शैशवावस्था से ही तेजस्वी और तीव्र बुद्धि था।

जब हमारे यह दिव्य पुरुष केवल १० वर्ष के ही थे तभी पिता की छत्रछाया उठ गई। और यह प्रसग इस बालक के लिए वैराग्योद्भव का कारण बना।

शोकग्रस्त माता पुत्र अपनी अनाथ दशा से अत्यन्त दु खी हो गये। 'दुख मे भगवान याद आता है' यह कहावत सही है। कुछ दिन तो शोकाभिभूत हो व्यतीत किये। बालक धनपत ने कहा, माँ मैं दीक्षा लूँगा। मुझे किसी अच्छे गुरुजी को सौप दे।

माता ने विचार किया अब एक बार बडी बहिन के दर्शन करने चलना चाहिए। माताजी की बडी बहिन जिनका नाम जीवीबाई था, स्वनामधन्या प्रसिद्ध विदुषी आर्यारत्न पुण्यश्री जी म० सा० के पास दीक्षा लेकर साध्वी बन गई थी, उनका नाम था दयाश्रीजी म०। वे उस समय रत्नाश्रीजी म० सा० के साथ मारवाड मे विचरती थी, वही माता पुत्र दर्शनार्थ जा पहुँचे।

तपश्चर्या—प्राय देखा जाता है कि ज्ञानाभ्यासी साधु साध्वी वर्ग तपस्या से वंचित रह जाते है। किन्तु आप महानुभाव इसके अपवादरूप थे। ज्ञानार्जन, एव काव्य प्रणयन के साथ ही तपश्चर्या भी समय-समय पर किया करते थे। ४२ वर्ष के सयमी जीवन मे आपने मास क्षमण, पक्ष क्षमण, अट्ठाइयाँ, पचौले आदि किये। तेलो की तो गिनती ही नही लगाई जा सकती।

साहित्य सेवा—आपने सैकडो छोटे-मोटे चैत्यवन्दन, स्तुतियाँ, स्तवन, सज्झाय आदि बनाये। रत्नत्रय पूजा, पार्श्वनाथ पचकल्याणक पूजा, महावीर पचकल्याणक पूजा, चौसठ अष्ट कर्म प्रकारी पूजा, तथा चारो दादागुरुओ की पृथक्-पृथक् पूजाएँ एव चैत्री पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा विधि, उपधान, विंशति-स्थानक, वर्षी तप, छमासी तप आदि के देववन्दन आदि विशिष्ट रचनाएँ की है। आप सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी मे समान रूप से रचनाएँ करते थे। बहुत सी रचनाओ में आपने अपना नाम न देकर अपने पूज्य गुरुदेव का, गुरुभ्राताओ का एव अन्यो का नाम दिया है। इस सारे साहित्य का पूर्ण परिचय विस्तार भय से यहाँ नही दिया जा रहा है।

आपकी प्रवचन शैली ओजस्वी व दार्शनिक ज्ञानयुक्त थी। भाषा सरल सुबोध और प्रसाद गुण युक्त थी, रचनाओ मे अलकार स्वभावत ही आ गये है। इस प्रकार आपको एक प्रतिभाशाली कवि भी कहा जा सकता है।

आचार्य पद—विक्रम स० २०१७ की पौष शुक्ला १० को प्रखरवक्ता व्याख्यान वाचस्पति वीर पुत्र श्री जिनआनन्दसागर सूरीश्वरजी म० सा० के आकस्मिक स्वर्गगमनान्तर सारी समुदाय ने आप ही को समुदायाधीश बनाया। अहमदाबाद मे चैत्र कृष्णा ७ को भी खरतरगच्छ सघ द्वारा आपको महोत्सपूर्वक आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

आप श्री स्वभाव से ही मिलनसार और गम्भीर थे। दयालुता और हृदय की विशालता आदि सद्गुणो से सुशोभित थे। आप श्री के अन्त करण मे शासन, गच्छ व समुदाय के उत्कर्ष की भावनाएँ सतत जागृत रहती थीं। पालीताना मे निर्मायमान श्री जिन हरि विहार भी आपश्री की सत्प्रेरणा का कीर्ति स्तम्भ है।

आपश्री के कई शिष्य हुए पर वर्तमान मे केवल श्री कल्याणसागरजी म० सा० तथा मुनिवर्य श्री कैलाश सागर जी महाराज ही विद्यमान है।

समुदाय के दुर्भाग्य मे आपश्री पूरे एक वर्ष भी आचार्य पद द्वारा सेवा नही कर पाये कि कराल-काल ने निर्दयतापूर्वक इस रत्न को समुदाय से छीन लिया। उग्र विहार करते हुए स्वस्थ सबल देहधारी ये महान् पुरुष अहमदाबाद से केवल २० दिन में मन्दसोर के पास बूढा ग्राम फा० सुदी एकम को सध्या समय पधारे। वहाँ प्रतिष्ठा कार्य व योगाद्वहन कराने पधारे थे, परन्तु फा० सुदी ५ शनिवार की रात्रि को १२ ३० बजे अकस्मात् हृदय गति के रुक जाने से नवकार का जाप करते एव प्रतिष्ठा कार्य के लिए ध्यान मे अवस्थित ये महानुभाव सघ व समुदाय को निराधार निराश्रित बनाकर देवलोक मे जा विराजे। दादा गुरुदेव व शासनदेव उस महापुरुष की आत्मा को शान्ति एव समुदाय को उनके पदानुसरण की शक्ति प्रदान करे। यही हार्दिक अभिलाषा है।

□ डॉ० शिवप्रसाद
(शोध छात्र—पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी)

खरतरगच्छीय साध्वी परम्परा

समाज की सृष्टि मे नारी का विशिष्ट योगदान है। समाज का अर्थ ही है नर और नारी। उसका अर्थ न तो नर ही है और न केवल नारी। नारी के विना सृष्टि की रचना, समाज का सगठन, जातीय कार्यकलाप, गृहस्थ जीवन सभी अधूरे है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, चाहे वह धार्मिक आदर्श हो, चाहे समाज-सुधार अथवा राजनीति हो, मे नारी का सक्रिय योगदान रहा है।

जहाँ तक नारियो के सन्यास या प्रव्रज्या का प्रश्न है, वैदिक युग मे नारियो के लिये ऐसी कोई व्यवस्था नही थी। वृहदारण्यक उपनिषद्[1], रामायण[2] और महाभारत[3] मे नारियो के सन्यास लेने के प्रसग मिलते है। इन नारियो ने पति के सन्यास लेने, उसकी मृत्यु अथवा योग्य वर न मिलने पर सन्यास का आश्रय लिया था। श्रमण परम्परा के जैन और बौद्ध दोनो धर्मों मे इन कारणो के साथ-साथ वैराग्य के कारण भी स्त्रियो के सन्यास लेने की व्यवस्था दृष्टिगत होती है।

जहाँ तक जैन धर्म मे स्त्रियो की प्रव्रज्या का प्रश्न है, सूत्रकृताग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध[4] से ज्ञात होता है कि पार्श्वनाथ की परम्परा महावीर से भिन्न थी। उत्तराध्ययनसूत्र २३/८७ मे तो पार्श्वापत्यीय श्रमणो और श्रमणियो के लिए पचमहाव्रतो को स्वीकार करवाकर ही महावीर के सघ मे सम्मिलित करने का उल्लेख है। इसी प्रकार स्पष्ट है कि महावीर के पूर्व ही जैन धर्म मे भिक्षु-भिक्षुणी सघ की स्थापना हो चुकी थी। आचारागसूत्र मे श्रमण एव श्रमणियो के आचार सम्बन्धी नियमो की चर्चा से स्पष्ट है कि जैनधर्म मे श्रमण सघ और श्रमणी सघ दोनो की ही साथ-साथ स्थापना हुई थी।

समाज के प्रत्येक वर्ग की महिलाओ के प्रवेश के लिए जैन श्रमणी सघ का द्वार खुला हुआ था। स्थानागसूत्र और उसकी टीका[5] मे १० विभिन्न कारणो का उल्लेख है, जिनके कारण ही स्त्रियाँ दीक्षा

---

१ वृहदारण्यकोपनिषद्, ४-४
२ रामायण २-२६-१३, ३-७३-२६, ३-७४-३
३ महाभारत, आदिपर्व ३-७४-१०
४ सूत्रकृताग २,७,७१-८०
५ स्थानाग १०-७१२, टीका भाग-५, पृ० ३६५-६६

ग्रहण करती थी। ये कारण मुख्य रूप से सामाजिक, पारिवारिक एव आर्थिक है। सामान्यत नारी अपने पति, पुत्र, भाई या अन्य किसी प्रिय सम्बन्धी की मृत्यु या प्रव्रज्या ग्रहण करने पर स्वय भी प्रव्रजित हो जाती थी। कभी-कभी धर्माचार्यों के उपदेश से भी स्त्रियो द्वारा प्रव्रज्या लेने का उल्लेख मिलता है।[1]

जैन परम्परा मे प्रारम्भ से ही स्त्रियो को समान धार्मिक अधिकार दिये गये और चतुर्विध सघ मे साधु के साथ साध्वी तथा श्रावक के साथ श्राविका भी सम्मिलित किये गये। जैन धर्म के दोनो सम्प्रदायो और उनकी शाखाओ मे आज भी वडी सख्या मे साध्वियाँ विद्यमान है। इस लेख मे श्वेताम्बर सम्प्रदाय की एक प्राचीन और महत्वपूर्ण शाखा—खरतरगच्छ की साध्वी परम्परा पर प्रकाश डाला गया है। विक्रम सवत् की ग्यारहवी शताब्दी मे अपने अभ्युदय से लेकर आज भी यह गच्छ जैन धर्म के लोक-कल्याणकारी सिद्धान्तो का पालन कर विश्व के समक्ष एक उज्ज्वल आदर्श उपस्थित कर रहा है।

खरतरगच्छ मे अनेक प्रभावक आचार्य, उपाध्याय, विद्वान साधु एव साध्वियाँ तथा वडी सख्या मे तन्त्र-मन्त्र के विशेषज्ञ, ज्योतिर्विद, वैद्यक शास्त्र के ज्ञाता यतिजन हो चुके है, जिन्होने न केवल समाजोत्थान वल्कि सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श और देश्य भाषाओ मे साहित्य-सृजन कर उसे समृद्ध वनाने मे महान् योग दिया है।[2] चैत्यवास का उन्मूलन कर सुविहितमार्ग को पुन प्रतिष्ठित करना खरतरगच्छीय आचार्यो की सबसे बडी देन है।[3]

खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावली[4] मे इस गच्छ के महान् आचार्यो के दीक्षा, विहार, साधु-साध्वी समुदाय, स्थानीय श्रावको के नाम, राजाओ के नाम, प्रतिद्वन्द्वी धर्माचार्यो से शास्त्रार्थ, तीर्थोद्धार आदि अनेक वातो पर विशद् प्रकाश डाला गया है। सम्प्रति लेख मे इसी गुर्वावली के आधार पर खरतरगच्छीय साध्वी परम्परा की एक झाँकी प्रस्तुत है।

वर्धमानसूरि खरतरगच्छ के आदिम आचार्य माने जाते हैं। उनके शिष्य जिनेश्वरसूरि ने चौलुक्य नरेश दुर्लभराज की राजसभा मे चैत्यवासी आचार्य को शास्त्रार्थ मे पराजित कर गुर्जरधरा मे सुविहितमार्गीय मुनियो के विहार को सम्भव वनाया। आचार्य जिनेश्वरसूरि द्वारा दीक्षित जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, जिनभद्र अपर नाम धनेश्वरसूरि, हरिभद्रसूरि, प्रसन्नचन्द्रसूरि, धर्मदेव, सहदेव आदि अनेक मुनियो का उल्लेख तो हमे मिलता है, परन्तु इनके द्वारा किसी महिला को दीक्षा देने का उल्लेख नही मिला है। खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली[5] से ज्ञात होता है कि इन्होने स्वगच्छीय मरुदेवी प्रवर्तिनी को आशापल्ली मे उसके सथारा के समय सल्लेखना पाठ सुनाया था। जिनेश्वरसूरि के शिष्य उपाध्याय धर्मदेव की आज्ञानुवर्तिनी साध्वियो द्वारा धोलका निवासी भक्त वाछिग और उसकी पत्नी वाहडदेवी के पुत्र सोमचन्द्र को सर्वलक्षणो से युक्त देखकर उसे दीक्षा प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है।[6] यही वालक आगे चलकर जिनदत्तसूरि के नाम से खरतरगच्छ का नायक वना।

---

१ जैन और वौद्ध भिक्षुणी सघ, डा० अरुणप्रतापसिंह, पृ० १२-१३

२ खरतरगच्छ का इतिहास (प्रथम खण्ड) महोपाध्याय विनयसागर, भूमिका पृ० ४-५

३ खरतरगच्छ का इतिहास (प्रथम खण्ड) महोपाध्याय विनयसागर भूमिका पृष्ठ ४-५।

४ यह ग्रन्थ मुनि जिनविजय जी के सपादकत्व मे सिन्धी जैन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत १९५६ ई० मे प्रकाशित हो चुका है।

५. जिनविजय जी, सपा० खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० ५ (वम्बई-१९५६)

६. जिनविजयजी, सपा० खरतरगच्छवृहदगुर्वावली पृ० १४-१५. वम्बई १९५६

जिनचन्द्रसूरि और अभयदेवसूरि द्वारा दीक्षित साध्वियो का उल्लेख तो नही मिलता है, परन्तु इनके समय में भी खरतरगच्छ मे साध्वी सघ की विद्यमानता को अस्वीकार नही किया जा सकता है।

जिनवल्लभसूरि का अत्यधिक समय विधिमार्ग के प्रसार मे ही व्यतीत हुआ। उनके उपदेशो से गुजरात, राजस्थान और मालवा के अनेक स्थानो पर विधिचैत्यो का निर्माण हुआ। आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के कुछ माह पश्चात् ही उनका स्वर्गवास हो गया, तत्पश्चात् सोमचन्द्रगणि को जिनदत्तसूरि के नाम से जिनवल्लभ का पट्टधर बनाया गया।[1]

जिनदत्तसूरि द्वारा अनेक साधु-साध्वियो को दीक्षा देने का उल्लेख मिलता है। उनके करकमल से बागड देश मे श्रीमति, जिनमति, पूर्वश्री, ज्ञानश्री और जिनश्री को साध्वी दीक्षा प्राप्त हुई।[2] जिनदत्त सूरि अत्यन्त विद्यानुरागी आचार्य थे, इसीलिए उन्होने अपने गच्छ के साधु-साध्वियो की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया। श्रीमति, जिनमति और पूर्वश्री इन तीन साध्वियो को अन्य स्वगच्छीय मुनियो के साथ उन्होने अध्ययनार्थ धारा नगरी भेजा था।[3] उनकी ही शिष्या गणिनी शांतिमति ने वि० स० १२१५ मे प्रकरणसग्रह की प्रतिलिपि की, जो जैसलमेर ग्रन्थ भण्डार मे सुरक्षित है।[4]

आचार्य जिनदत्तसूरि के स्वर्गारोहण के पश्चात् मणिधारी जिनचन्द्रसूरि खरतरगच्छ के नायक बने। इनके अल्पकाल के नायकत्व मे भी खरतरगच्छ मे अनेक साधु-साध्वियो को दीक्षा हुई। वि० सम्वत् १२१४ मे इन्होने त्रिभुवनगिरि मे शान्तिनाथ जिनालय पर भव्य महोत्सव के साथ सुवर्णध्वज और कलश का आरोपण किया और साध्वी हेमादेवी को प्रवर्तिनी पद से विभूषित किया।[5] वि०स० १२१८ मे उच्चानगरी मे उन्होने ५ मुनियो के साथ जगश्री, गुणश्री और सरस्वती को साध्वी दीक्षा प्रदान की।[6] वि०स० १२२१ मे आचार्यश्री ने देवभद्र और उसकी पत्नी को अन्य ४ साधुओ के साथ दीक्षित किया।[7] वि०स० १२२३ भाद्रपद वदी चतुर्दशी को दिल्ली मे आचार्यश्री का स्वर्गवास हो गया, तत्पश्चात् आचार्य जिनपतिसूरि को उनके पट्ट पर प्रतिष्ठित किया गया। जिनपतिसूरि ने वि० स० १२२७ मे उच्चानगरी मे धर्मशील और उसकी माता को ५ अन्य व्यक्तियो के साथ दीक्षित किया।[8] इसके पश्चात् वे विहार करते हुए मरुकोट पधारे, जहाँ अजितश्री ने उनसे प्रव्रज्या ली[8] वि० स० १२२९ मे फलवर्धिका मे अभयमति, आसमति और श्रीदेवी ने उनसे साध्वीदीक्षा प्राप्त की।[9] यही वि०स० १२३४ मे साध्वी गुणश्री ने महत्तरा पद और जगदेवी ने साध्वी दीक्षा ली।[10] इसी नगरी मे वि०स० १२४१ धर्मश्री और धर्मदेवी को उन्होने श्रमणीसघ मे सम्मिलित किया।[11] वि०स० १२४५ मे पुष्करणी नगरी मे सयमश्री, शान्तमति एव रत्नमति को साध्वी दीक्षा दी गयी।[12] वि० स० १२५४ मे धारा नगरी मे उन्होने साध्वी रत्नश्री को दीक्षि

---

१ जिनविजयजी, सपा० खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० १५ (बम्बई १९५६)
२ खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० १८ ३. खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० १८
४ श्री जैसलमेरदुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रन्थ भण्डार सूची-पत्र, सपा० मुनिपुण्यविजय, क्रमाक १५४ पृ० ५१-५२।
५ खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० २० ६ खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० २०
७ खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० २० ८ खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० २३
९ खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० २३ १० खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० २४
११ खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० २४ १२ खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० ३४

१३०९ मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशी को मुक्तिसुन्दरी को साध्वी दीक्षा दी गयी।[1] वि०स० १३१३ फाल्गुन सुदी चतुर्दशी को जावालिपुर मे जयलक्ष्मी, कल्याणनिधि, प्रमोदलक्ष्मी और गच्छवृद्धि इन चार नारियो को श्रमणी दीक्षा दी गयी।[2] वि०स० १३१५ आषाढ सुदी १० को पालनपुर में बुद्धिसमृद्धि, ऋद्धिसमृद्धि, ऋद्धिसुन्दरी और रत्नसुन्दरी को आचार्यश्री द्वारा साध्वी दीक्षा दी गयी।[3] वि०स० १३१६ माघ सुदी चतुर्दशी को जालौर मे आचार्यश्री ने प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित किया।[4]

वि० स० १३१९ माघ वदी पचमी को विजयश्री तथा वि० स० १३२१ फाल्गुन सुदी २ को चित्तसमाधि एव शान्तिसमाधि को पालनपुर मे आचार्यश्री के हाथो साध्वी दीक्षा प्रदान की गई।[5] विक्रमपुर मे वि० स० १३२२ माघ सुदी चतुर्दशी को मुक्तिवल्लभा, नेमिवल्लभा, मगलनिधि और प्रियदर्शना तथा वि० स० १३२३ वैशाख सुदी ६ को वीरसुन्दरी की प्रव्रज्या हुई।[6] इसी वर्ष विक्रमपुर मे ही मार्गशीर्ष सुदी पचमी को विनयसिद्धि और आगमसिद्धि को साध्वीदीक्षा दी गयी।[7]

वि० स० १३२४ अगहन वदी २ शनिवार को जावालिपुर मे अनन्तश्री, व्रतलक्ष्मी, एकलक्ष्मी और प्रधानलक्ष्मी तथा वि० स० १३२५ वैशाख सुदी १० को पद्मावती ने भागवती दीक्षा अगीकार की।[8]

वि० स० १३२६ मे आचार्यश्री ने श्रेष्ठिवर्ग की प्रार्थना पर २३ साधुओ तथा लक्ष्मीनिधि महत्तरा आदि १३ साध्वियो के साथ शत्रुजय तीर्थ की यात्रा की।[9]

वि० स० १३२८ ज्येष्ठ वदी चतुर्थी को जावालिपुर मे हेमप्रभा को साध्वी दीक्षा तथा वि० स० १३३० वैशाख वदी ६ को कल्याणऋद्धि गणिनी को महत्तरा पद दिया गया।[10] वि० स० १३३१ मे आचार्य जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) का स्वर्गवास हुआ।[11]

आचार्य जिनेश्वरसूरि के स्वर्गारोहण के पश्चात् वि० स० १३३१ फाल्गुन वदि ८ को आचार्य जिनप्रबोध सूरि ने खरतरगच्छ का नायकत्व प्राप्त किया। आपके वरदहस्त से अनेक मुमुक्षु महिलाओ ने दीक्षा प्राप्त की, जिसका विवरण इस प्रकार है—

आचार्यश्री ने वि० स० १३३१ फाल्गुन सुदी ५ को केवलप्रभा, हर्षप्रभा, जयप्रभा, यशप्रभा इन चार महिलाओ को दीक्षा प्रदान कर श्रमणीसघ मे सम्मिलित किया। दीक्षा महोत्सव जावालिपुर मे सम्पन्न हुआ।[12]

वि० स० १३३२ ज्येष्ठ वदी प्रतिपदा शुक्रवार को जावालिपुर मे ही लब्धिमाला और पुण्यमाला को साध्वीदीक्षा प्रदान की गयी।[13] वि० स० १३३३ माघ वदी १३ को आचार्यश्री ने गणिनी कुशलश्री को प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित किया।[14]

वि० स० १३३४ चैत्र वदी ५ को आचार्यश्री शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा पर गये। इस यात्रा मे

---

१ खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली पृ० ५०
२ वही पृ० ५१
३ वही पृ० ५१
४ वही पृ० ५१
५ वही पृ० ५२
६ वही पृ० ५२
७ वही पृ० ५२
८. वही पृ० ५२.
९ वही पृ० ५२
१० वही पृ० ५२
११ वही पृ० ५४
१२ वही पृ० ५४
१३ वही पृ० ५५.
१४. वही पृ० ५५.

उनके साथ २७ मुनि तथा प्रवर्तिनी कल्याणऋद्धि आदि १५ साध्वियाँ भी थी।[1] शत्रुंजय तीर्थ पर ही आचार्य श्री ने ज्येष्ठ वदी ७ को भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा के समक्ष पुष्पमाला, यशोमाला, धर्ममाला और लक्ष्मीमाला को साध्वी दीक्षा प्रदान की।[2]

वि० स० १३३४ मार्गशीर्ष सुदी १२ को जालौर मे गणिनी रत्नश्री को आचार्य जिनप्रबोधसूरि ने प्रवर्तिनी पद प्रदान किया।[3] वि० सं० १३४० ज्येष्ठ वदी ४ को जावालिपुर मे ही आपने कुमुदलक्ष्मी और भुवनलक्ष्मी को दीक्षा प्रदान की।[4] अगले दिन अर्थात् ज्येष्ठ वदी ५ को आपने साध्वी चन्दनश्री को महत्तरा पद प्रदान किया।[5]

वि० स० १३४१ ज्येष्ठ सुदी ४ को आचार्यश्री के वरदहस्त मे जैसलमेर मे पुण्यसुन्दरी, रत्नसुन्दरी, भुवनसुन्दरी और हर्षसुन्दरी को साध्वी दीक्षा प्राप्त हुई।

इसी वर्ष फाल्गुन वदी ११ को आचार्यश्री ने जैसलमेर मे ही धर्मप्रभा और हेमप्रभा को उनकी अल्पायु के कारण साध्वी दीक्षा न देकर क्षुल्लक दीक्षा दी।[6] वि० स० १३४१ वैशाख सुदी ३ अक्षय तृतीया को आपने जिनचन्द्रसूरि को ही अपना पट्टधर घोषित कर वैशाख सुदी ११ को देवलोक प्रयाण किया।[7]

आचार्य जिनचन्द्रसूरि (द्वितीय) ने भी अनेक मुमुक्षु महिलाओ को साध्वी दीक्षा प्रदान कर खरतरगच्छीय श्रमणीसघ के गौरव की वृद्धि की।

आपके वरदहस्त से वि० सं० १३४२ वैशाख सुदी १० को जावालिपुर मे जयमजरी, रत्नमजरी और शालमजरी को क्षुल्लक दीक्षा तथा गणिनी बुद्धिसमृद्धि को प्रवर्तिनी पद प्रदान किया गया।[8] इस दीक्षा महोत्सव मे प्रीतिचन्द और सुखकीर्ति को भी क्षुल्लक दीक्षा दी गयी।[9]

वि० स० १३४५ आषाढ सुदी ३ को जावालिपुर मे ही चारित्रलक्ष्मी को साध्वी दीक्षा दी गयी।[10] इसी नगरी मे वि० स० १३४६ फाल्गुन सुदी ८ को रत्नश्री एव वि० स० १३४७ ज्येष्ठ वदी ८ को मुक्तिलक्ष्मी और युक्तिलक्ष्मी को आचार्यश्री के वरदहस्त से साध्वी दीक्षा प्राप्त हुई।[11] वि० स० १३४७ मार्गशीर्ष सुदी ६ को पालनपुर मे आपने साधु-साध्वियो को बडी दीक्षा प्रदान की।[12]

वि० स० १३४८ चैत्र वदी ६ को बीजापुर मे मुक्तिचन्द्रिका तथा इसी वर्ष वैशाख सुदी ६ को पालनपुर मे अमृतश्री को साध्वी दीक्षा प्रदान की गयी।[13] वि० स० १३५१ माघ वदी ५ को पालनपुर मे ही हेमलता को साध्वी दीक्षा दी गयी।[14] वि० स० १३५४ ज्येष्ठ वदी १० को जावालिपुर मे आचार्यश्री ने जयसुन्दरी को दीक्षा देकर श्रमणीसघ मे सम्मिलित किया।[15]

वि० सं० १३६६ ज्येष्ठ वदी १२ को आचार्य जिनचन्द्रसूरि शत्रुञ्जय, गिरनार आदि तीर्थो की यात्रा पर निकले। इस यात्रा मे आपके साथ प्रवर्तिनी रत्नश्री गणिनी आदि ५ साध्वियाँ तथा कुछ मुनि भी थे।[16] तीर्थयात्रा पूर्ण कर आप भीमपल्ली पधारे जहाँ दृढधर्मा और व्रतधर्मा को दो अन्य व्यक्तियो के

---

१. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ५५
२ वही पृ. ५५
३. वही पृ. ५६.
४ वही पृ ५८.
५. वही पृ. ५८.
६. वही पृ ५८.
७. वही पृ ५८.
८ वही पृ० ५९.
९ वही पृ० ५९.
१० वही पृ० ५९
११ वही पृ० ५९.
१२. वही पृ० ६०.
१३. वही पृ० ६०.
१४. वही पृ० ६१
१५ वही पृ० ६२.
१६ वही पृ० ६२.

साथ क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की।[1] इमी अवसर पर गणिनी प्रियदर्शना को प्रवर्तिनी पद तथा गणिनी रत्नमजरी को महत्तरा पद प्रदान किया।[2]

वि० स० १३६९ मार्गशीर्ष बदी ६ को आपने पाटण मे गणिनी केवलप्रभा को प्रवर्तिनी पद प्रदान किया।[3]

वि० स० १३७१ फाल्गुन सुदी ११ को भीमपल्ली मे प्रियधर्मा, यशोलक्ष्मी और धर्मलक्ष्मी को भागवती दीक्षा प्रदान की गयी।[4] इसी वर्ष ज्येष्ठ वदी १० को जावालिपुर मे पुष्पलक्ष्मी, ज्ञानलक्ष्मी, कनकलक्ष्मी और मतिलक्ष्मी ने प्रवज्या ली।[5]

प्राकृत भाषामय अजनासुन्दरीचरित (रचनाकाल वि० स० १४०७) की रचयिता और प्राकृत भाषा की एकमात्र लेखिका साध्वी गुणसमृद्धि महत्तरा आप की शिष्या थी।[6]

वि० स० १३७५ माघ सुदी १२ को नागौर मे एक भव्य समारोह मे शीर्षसमृद्धि, दुर्लभसमृद्धि और भुवनसमृद्धि को साध्वी दीक्षा तथा गणिनी धर्ममाला एव गणिनी पुण्यसुन्दरी को प्रवर्तिनी पद प्रदान किया गया।[7] इसी अवसर पर आचार्यश्री ने प० कुशलकीर्ति को अपना उत्तराधिकारी (पट्टधर) घोषित कर उन्हे वाचनाचार्य पद दिया।[8] सवत् १३७६ आषाढ सुदी ९ को ६५ वर्ष की आयु में आचार्य जिनचन्द्रसूरि का निधन हो गया।[9] गच्छनायक आचार्य के निधन के पश्चात् गच्छ के ज्येष्ठ मुनिजनो, साध्वियो एव श्रावको ने एक सभा आयोजित कर स्वर्गीय आचार्य के पूर्वआदेशानुसार गणि कुशलकीर्ति को पाटन मे जिनकुशलसूरि के नाम से उनके पट्ट पर आसीन कराया।[10]

आचार्य जिनकुशलसूरि ने वि० स० १३८१ वैशाख बदी ६ को पाटन मे धर्मसुन्दरी और चरित्रसुन्दरी को साध्वी दीक्षा दी।[11] वि० स० १३८३ वैशाख बदी ५ को कमलश्री और ललितश्री की दीक्षा हुई।[12]

वि० स० १३८६ को देवराजपुर मे कुलधर्मा, विनयधर्मा और शीलधर्मा ने साध्वी दीक्षा ग्रहण की[13]। इसी नगरी में वि० स० १३८८ मे जयश्री और धर्मश्री को क्षुल्लिका दीक्षा दी गयी।[14] इस प्रकार

---

१ खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ६३ २ वही पृ० ६४. ३ वही पृ० ६४
४ वही पृ० ६४ ५ वही, पृ० ६४
६ सिरिजेसलमेरपुरे विक्कमचउदसहसतुत्तरे वरिसे।
वीरजिणजम्मदिवसे कियमजणसुन्दरीचरियं ॥५०३॥
जो आसायण कुणई अणत ससारु भमई सो जीवो।
जो आसायण रक्खइ सो पासइ सासय ठाण ॥५०४॥
इति श्री अजणासुन्दरी महासती कथानक समाप्तम्।
कृतिरियं श्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्यणी श्रीगुणसमृद्धिमहत्तराया ॥छ॥
'श्री जैसलमेर दुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रथ भण्डार सूचीपत्र' सपा० मुनिपुण्यविजयजी अहमदाबाद, १९७२ ई० क्रमाक—१२७८ पृ २८२-२८३
७ खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ६५ ८ वही पृ० ६५ ९ वही पृ० ६८
१० वही पृ० ७० ११ वही पृ० ७७ १२ वही पृ० ८०
१३ वही पृ० ८२ १४. वही पृ० ८५

स्पष्ट है कि खरतरगच्छ मे इस समय भी साध्वियो की बडी सख्या थी। वि० स० १३८९ फाल्गुन वदी ५ को आचार्य श्री जिनकुशलसूरि का स्वर्गवास हुआ।[1]

दिवगत आचार्य जिनकुशलसूरि के पूर्व आदेशानुसार क्षुल्लक पद्ममूर्ति को जिनपद्मसूरि नाम से वि० स० १३९० ज्येष्ठ सुदी ६ को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।[2] यह पट्टमहोत्सव देवराजपुर स्थित विधिचैत्य मे स्वगच्छीय साधु-साध्वियो तथा समाज के स्वपक्षीय श्रावको के समक्ष बडे धूम-धाम से सम्पन्न हुआ।[3]

आचार्य जिनपद्मसूरि ने वि० स० १३९१ पौष बदी १० को लक्ष्मीमाला नामक गणिनी को प्रवर्तिनी के पद पर प्रतिष्ठित किया।[4] वि० स० १३९४ चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को आप १५ मुनियो तथा जयर्द्धि-महत्तरा आदि ८ साध्वियाँ और कुछ श्रावको के साथ अर्बुदतीर्थ की यात्रा पर गये।[5] जिनपद्मसूरि द्वारा किसी महिला को साध्वी दीक्षा देने का उल्लेख नही मिलता। वि० स० १४०४ वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को अल्पायु मे ही इनका दु खद निधन हो गया।[6]

बाद की शताब्दियो मे भी खरतरगच्छ मे साध्वियो की पर्याप्त सख्या रही। नाहटाजी द्वारा सकलित और सम्पादित "बीकानेर जैनलेख सग्रह" मे भी १८ साध्वियो का उल्लेख मिलता है।[7] अन्य लेख सग्रहो मे भी खोजने पर कई साध्वियो का नाम मिल सकता है।

खरतरगच्छीय श्रमणीसघ में यद्यपि बडी सख्या में साध्वियाँ थी, परन्तु उन्होने स्वय को धार्मिक अनुष्ठानो तक ही सीमित रखा। जहाँ इस गच्छ में अनेक साहित्योपासक मुनि हो चुके है, वहाँ श्रमणीसघ में मात्र ४-५ विदुषी साध्वियो का उल्लेख प्राप्त होता है।[8] श्री अगरचन्दजी नाहटा ने नारी शिक्षा का अभाव इसका प्रमुख कारण बतलाया है।[9] जो सत्य प्रतीत होता है।

वर्तमानयुग में नारी शिक्षा के उत्तरोत्तर प्रचार के कारण श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनो सम्प्रदायो की सभी शाखाओ मे आज अनेक विदुषी साध्वियाँ है जो तपश्चरण के साथ-साथ स्वाध्याय मे भी समान रूप से रत हैं। खरतरगच्छ मे साध्वी सज्जनश्री ऐसी विदुषी साध्वी है जो अपनी विद्वत्ता के कारण ही प्रसिद्ध है। वस्तुत नारी शिक्षा के प्रचार के कारण मध्यकाल की अपेक्षा आज खरतरगच्छ ही नही वरन् सम्पूर्ण जैन श्रमणीसघ का भविष्य उज्ज्वल है।

❋ ❋
❋

---

१ खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली पृ० ८५। २ वही पृ० ८५ ३ वही पृ० ८६
४ वही पृ० ८७ ५–६ वही पृ० १७७ ७ द्रष्टव्य—परिशिष्ट—च, पृ० ३८
८ नाहटा, अगरचन्द—कतिपय श्वे० विदुषी कवियित्रियाँ, चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रथ (आरा, बिहार १९५४) पृ० ५७० और आगे।
९. वही पृ० ५७३।

☐ हजारीमल बांठिया, कानपुर

खरतरगच्छ की गौरवमयी परम्परा

यदि खरतरगच्छ के सस्थापक पूर्वाचार्यो ने चैत्यवास पर चोट नही की होती तो, यह निश्चित था कि जैनधर्म भी, बुद्धधर्म की तरह भारत की धरती से लुप्त हो जाता। चैत्यवासी परम्परा ने भगवान् महावीर के सिद्धान्तो को तिलाजलि देकर सुविधाधर्म वन लिया था। अपने तन्त्र-मन्त्र-विद्या के सहारे तत्कालीन राजाओ व मन्त्रियो पर अपना अक्षण्ण प्रभाव जमा लिया था। खरतरगच्छ के आदि सस्थापक आचार्य वर्द्धमान सूरि और उनके शिष्य जिनेश्वर सूरि से लेकर जिनपतिसूरि इतने दिग्गज विद्वान हुए जिन्होने राज-सभाओ मे शास्त्रार्थ कर चैत्यवासियो पर विजय प्राप्त की। स्वनामधन्य विद्वान स्व० अगरचन्दजी नाहटा ने ठीक ही लिखा है—

"पाँच सौ-सात सौ वर्षो से जो चैत्यवास ने श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे अपना इतना प्रभाव विस्तार कर लिया था, वह जिनेश्वरसूरि से लेकर जिनपतिसूरि जी तक के आचार्यो के जवरदस्त प्रभाव मे क्षीण-प्राय हो गया।" अत सुविहित मार्ग की परम्परा को पुन प्रतिष्ठित और चालू रखने मे "खरतरगच्छ' की महान देन है। प्राचीन जैन साहित्य-इतिहास-पुरातत्व जो भी वर्तमान मे उपलब्ध हैं उसका पचास प्रतिशत भाग खरतरगच्छ के जैन मुनियो, श्रावको आदि ने रचित किया है। पुरातत्वाचार्य स्व० मुनि जिनविजयजी तो खरतरगच्छ के साहित्य से इतने प्रभावित थे कि उन्होने निष्पक्ष भाव और मुक्त हृदय से लिखा है—

"खरतरगच्छ मे अनेक बडे-बडे आचार्य, बडे-बडे विद्यानिधि उपाध्याय, बडे-बडे प्रतिभाशाली पडित मुनि और वडे-बडे मान्त्रिक, तान्त्रिक, ज्योतिर्विद्, वैद्यक विशारद आदि कर्मठ यतिजन हुए जिन्होने अपने समाज की उन्नति, प्रगति और प्रतिष्ठा के बढाने मे बडा योग दिया है। सामाजिक और साम्प्रदायिक उत्कर्ष के सिवाय खरतरगच्छ अनुयायियो ने सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श एव देश भाषा के साहित्य को भी समृद्ध करने मे असाधारण उद्यम किया और इसके फलस्वरूप आज हमे भाषा, साहित्य, इतिहास दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध विषयो का निरूपण करने वाली छोटी-बडी सैकडो हजारो पुस्तकें और ग्रन्थ आदि कृतियाँ जैन भडारो मे उपलब्ध हो रही है। खरतरगच्छीय विद्वानो द्वारा की हुई यह उपासना न केवल जैन धर्म की दृष्टि से ही महत्व वाली है, अपितु सम्मुच्चय भारतीय सस्कृति के गौरव की दृष्टि से भी उतनी ही महत्ता रखती है।

"साहित्योपासना की दृष्टि से खरतरगच्छ के विद्वान यति मुनि वडे उदारचेता मालूम देते है। इस विषय मे उनकी उपासना का क्षेत्र, केवल अपने धर्म या सम्प्रदाय की वाड से बद्ध नही है। वे जैन और जैनेतर वाङ्मय का समान भाव से अध्ययन-अध्यापन करते रहे है। व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, अलकार, नाटक, ज्योतिष, वैद्यक और दर्शनशास्त्र तक के अगणित अजैन ग्रन्थो पर उन्होने अपनी

पाडित्यपूर्ण टीकाएँ आदि रचकर तत्तद् ग्रन्थो और विषयो के अध्ययन कार्य मे बडा उपयुक्त साहित्य तैयार किया है।"

खरतरगच्छ के गौरव को प्रदर्शित करने वाली ये सब बातें मै यहाँ पर बहुत ही सक्षेप रूप मे, केवल सूत्र रूप मे ही उल्लेखित कर रहा हूँ।

खरतरगच्छ मे योग-अध्यात्म की अनूठी परम्परा रही है। योगीराज आनन्दघन, चिदानन्दजी, श्रीमद् देवचन्द जी, मस्तयोगी ज्ञानसागरजी (नारायण बाबा), अध्यात्मयोगी सहजानन्दघन आदि इसी परम्परा मे हुए है। वर्तमान मे माता धनबाई भी हम्पी की गुफाओ मे अलख जगा रही है। जैनतीर्थो मे शत्रुजय, गिरनार, राणकपुर, कापरडा, नाकोडा और उत्तर-पूर्व भारत मे दिल्ली से लेकर गौहाटी तक सभी कल्याणक तीर्थ या मन्दिर खरतरगच्छ के आचार्यो व मुनियो की देन है। इनके निर्माण व जीर्णोद्धार मे इसी गच्छ के मुनियो व श्रावको ने योगदान दिया है। सक्षिप्त मे यू कहा जावे—चौबीसो तीर्थंकरो की कल्याणक भूमियो को तीर्थरूप देने मे इसी गच्छ के आचार्यो व मुनियो की सूझ-बूझ थी।

सही मायनो मे "युगप्रधान" शब्द को सार्थक करने वाले चारो दादा इसी गच्छ की परम्परा के है जिनके नाम की माला समस्त जैन व अनेको जैनेतर प्रतिदिन जपते है। समस्त भारत मे जहाँ भी श्वेताम्बर जैनो के घर है, जैन दादावाडियाँ बनी हुई है जो आज करोडो-अरबो की जैन-सम्पति है। इसी "युगप्रधान" शब्द व "दादावाडी" का चमत्कार देखकर अन्य जैन समाज भी इन्ही दोनो का प्रयोग कर अपने को धन्य मान रही है।

नवागी टीकाकार श्री अभयदेवसूरि की आगम टीकाएँ, उपाध्याय जमसोम की "युगप्रधानाचार्य गुर्वावली", आचार्य श्री जिनप्रभसूरि का "विविध तीर्थ कल्प" आचार्य अभयदेवसूरि का "जयन्तविजय" श्री जिनचन्द्रसूरि की "सम्वेग रगशाला" महाकवि समयसुन्दर की "अष्ट लक्षी" आदि ग्रन्थ विश्व साहित्य के अजोड गन्थ है। बाबा आनन्दघन के चौबीसी और पद तो अपने आप मे अनूठे है ही।

खरतरगच्छ के श्रावक-श्राविकाओ ने अनेक धर्मकार्य किये, मन्दिर-मूर्तियाँ बनाईं, तीर्थो के जीर्णोद्धार करवाये, हजारो हस्तलिखित प्रतियाँ लिखवाईं। विविध धर्म प्रभावना के कार्य किये। उनका अपना महत्व है। सघपति सोमजी शाह, नर-रतन सेठ, मोतीचन्द नाहटा, मन्त्रीश्वर कर्मचन्द वच्छावत, दीवान अमरचन्द सुराणा, देशभक्त अमरशहीद अमरचन्द बाठिया, सर सिरेमल बाफना, जगत-सेठ परिवार की माणकदेवी, राक्याण परिवार के राजा भारमल आदि अनेक श्रावक-श्राविकाएँ हुई है जिन्होने जैनशासन की अनुपम सेवा की है। विद्वान श्रावको मे इस युग मे स्व० अगरचन्द जी नाहटा का अकेला ही ऐसा नाम है जिन्होने अपनी पचास वर्ष की साहित्य-साधना से माँ भारती के ज्ञान भडार को अनुपम ज्ञान-रत्नो से भर दिया और "विश्व के महान-पुरुषो के सन्दर्भ कोप" मे उनका नाम आदर से जुड गया, जो अमेरिका से प्रकाशित हुआ है।

इसी गौरवमयी परम्परा मे खरतरगच्छ के वर्तमान मे साधु-साध्विये यद्यपि सख्या मे अत्यन्त अल्प है फिर भी वे अपनी त्याग-तपस्या एव विद्वता से जैन एव जैनेतर समाज मे अपना विशिष्ट प्रभाव जमाये हुए है। इसी खरतरगच्छ की गौरवमयी परम्परा की आगमज्ञा विदुपीवर्या, शान्त, सरल स्वभाव, यथानाम तथागुण को सार्थक करने वाली प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी महाराज साहब का अभिनन्दन कर अपने को कृत-कृत्य मान रहे है। उनके चरणों मे शतश नमन-अभिनन्दन। ●

□ श्री भँवरलाल नाहटा

खरतरगच्छ के तीर्थ व जिनालय

आर्यावर्त्त मे तो तीर्थ शब्द अत्यन्त श्रद्धास्पद है ही, समस्त विश्व मे भी महत्वपूर्ण धार्मिक स्थानो या महापुरुषो से सम्बन्धित अधिस्थानो को सभी धर्मो मे आदरणीय माना जाता है। 'तीर्यते अनेन यत्तत्तीर्थं' अर्थात् जिसके द्वारा तिरा जाय उसे तीर्थ कहते है। यह शब्द जैन परम्परा मे प्रवचन या चतुर्विध सघ का द्योतक होने से उसके कर्त्ता तीर्थंकर कहलाते है। यो तीर्थ शब्द तद्विषयक पारगामित्व के कारण ही व्याकरणतीर्थ, न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ आदि मे प्रयुक्त होता है एव उसी प्रकार गगा, त्रिवेणी, मागध आदि तीर्थ—तिरने के घाट भी लोक प्रसिद्ध है। यहाँ और अधिक स्पष्टीकरण के लिए 'तीर्यते ससार सागरो येन तत् तीर्थम्' परिभाषा द्रष्टव्य है। तीर्थ दो प्रकार के होते है—एक जगम और दूसरा स्थावर। जगमतीर्थ है आत्मस्थ महापुरुष आचार्य, उपाध्याय और साधुजन एव स्थावर तीर्थ है वे स्थान, जहाँ पर तीर्थंकर भगवतो का च्यवन, जन्म, दीक्षा एव केवलज्ञान और निर्वाण हुआ है। आचाराग सूत्र, आवश्यक निर्युक्ति और भाष्यादि प्राचीनतम आगमो मे इन तीर्थो का उल्लेख पाया जाता है, जो कल्याणक भूमि अथवा भगवान के विचरण द्वारा पवित्रित है। आचारागनिर्युक्ति की गाथा, ३२६ से ३३२ तक कल्याणक-भूमियो, देवलोक के विमान, असुरादि के भवन, मेरुपर्वत व नन्दीश्वर के चैत्यो व भूमिस्थ व्यन्तर नगरो मे वर्त्तमान जिनप्रतिमाओ तथा अष्टापद, उज्जयन्त, गजाग्रपद, धर्मचक्र, पार्श्वनाथतीर्थ, रथावर्त्त और चमरोत्पात तीर्थों को नमस्कार किया गया है।

इन गाथाओ मे निर्युक्तिकार भद्रबाहु स्वामी चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली द्वारा शाश्वत चैत्यो के साथ अशाश्वत सात तीर्थो का वन्दन किया है। अत शास्त्र एव इतिहास प्रमाण से तीर्थों का अस्तित्व एव उनकी उपादेयता निर्विवाद अनादिकालीन सिद्ध है।

चैत्यवदन कुलक की गाथा मे १ मगल, २ निश्रागत, ३ अनिश्रागत, ४ भक्तिचैत्य और ५ शाश्वत चैत्यो का प्रकार जिनेश्वर भगवान् द्वारा उपदिष्ट बतलाया है। मगलचैत्य मन्दिरो व सद्गृहस्थो के द्वार पर, निश्राकृत व्यक्तिगत अधिकार वाले गृहचैत्यालय, अनिश्राकृत सार्वजनिक जिनालय, भक्तिचैत्य पाँच कल्याणक व तपोभूमि पर, शाश्वत चैत्य नदीश्वरद्वीप, मेरुपर्वतादि तथा देवविमान व भवनो के अकृत्रिम चैत्य है। शाश्वतचैत्यो मे स्वर्ग के देव, जघाचरण विद्याचरणादि मुनि व लब्धिधारी और उन के सहाय्य प्राप्त जन दर्शन-पूजन करते है जिससे अनादिकालीन जिनप्रतिमा का दर्शन-पूजन स्वत सिद्ध है।

मूर्ति आदि के अवलम्बन बिना ध्यानसिद्धि व निरालम्बध्यानश्रेणि प्राप्त करना असभव है । इतिहास प्रमाण व शास्त्रप्रमाण से मूर्त्ति के बहाने मूर्त्तिमान की पूजा है और उसके प्रति श्रद्धान्वित हुए बिना सम्यक्दर्शन और मोक्षप्राप्ति तीन काल मे भी सभव नही ।

भगवान् के समवशरण मे तीनो दिशाओ मे भगवान् के बिम्ब होते थे, अर्थात् नौ पर्षदाएँ तो उन्ही के दर्शन से सम्यक्त्व प्राप्त करते थे, केवल पूर्वाभिमुख भगवान् के साक्षात् दर्शन तीन पर्षदाओ को होते थे । श्रीदेवचन्दजी महाराज ने लिखा है कि मुनि अपने स्थान से जिनवन्दन, ग्रामान्तर विहार, आहार हेतु गोचरी और स्थडिल भूमि—इन चार कारणो से ही उठते है । महानिशीथ सूत्रानुसार यदि मुनि जिनवन्दनार्थ, जहाँ जिनालय हो न जाय तो उसे पाँच उपवास का दण्ड आता है । मूर्त्तिपूजा के कट्टर विरोधी मुस्लिम भी तीर्थयात्रा (हज) को महत्व देते है।

सम्राट मुहम्मद तुगलक सुप्रसिद्ध खरतरगच्छाचार्य श्रीजिनप्रभसूरि से इतना प्रभावित था कि उसने भगवान् महावीर की प्रतिमा को अपने उच्च अधिकारियो के कन्धे पर चढाकर आदर सहित बुलाया एव दिल्ली मे जिनालय, उपाश्रय और जैन बस्ती (सुलतान सराय, भट्टारक सराय) आदि को राज्य की ओर से निर्माण कराया । इतना ही नही सम्राट स्वय सूरिजी के साथ शत्रुजय यात्रार्थ गया । जैन अमूर्त्तिपूजक वीतराग देव के मन्दिरो को अमान्य कर हृदय की माँग को कालीजी, भैरोजी, रामदेवजी आदि ही नही पीरो तक को मानकर पूर्ण करता है । जबकि अनादिकाल से मान्य जिनप्रतिमा को पाँच सौ वर्ष पूर्व तक किसी ने अमान्य नही किया । कई लोग बडे आडम्बर का कारण कहकर बहाना बनाते है पर सचमुच मे देखा जाय तो आज का आडम्बर उस चैत्यवासी युग के अविधि मार्ग से बढकर कुछ भी नही । मन्दिरो मे वेश्यानृत्य, पानचर्वण, रात्रि मे अनुष्ठान, गद्दे-तकिये लगाना मठधारी के लिए सामान्य था । जिसका विरोध हरिभद्रसूरिजी से लगाकर श्री वर्द्धमानसूरि, जिनेश्वरसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनपतिसूरि आदि आचार्यो ने विधि मार्ग प्रचारित कर, चैत्यवासियो के विरोध द्वारा जैनधर्म का बौद्धो की भाँति, तिरोभाव होने से बचा लिया । इन महान् आचार्यो ने विधिचैत्यों की प्रतिष्ठा की, अविधिवर्जित आज्ञा को शिलोत्कीर्णित किया और त्याग-वैराग्य भाव वाले चैत्यवासियो को उपसम्पदा देकर सुविहित मार्ग मे प्रविष्ट कराया ।

जैन तीर्थो पर चैत्यवासियो का प्रभाव अल्प ही था फिर भी दुष्प्रभाव न बढे इसलिए विधि-चैत्य और खरतरवसही निर्माण का कार्य यथावश्यक चालू रहा । अणहिलपुर पाटण मे दुर्लभराज की सभा मे शास्त्रार्थ कर चैत्यवासियो को पराभूत करने से पूर्व तो सुविहित साधुओ का चचुप्रवेश भी गुजरातादि मे नही था । स्वय वर्द्धमानसूरि, जिनेश्वरसूरि आदि १८ ठाणो को ठहरने तक का स्थान चैत्यवासियो के आतक के कारण नही मिला था । उनके अधिकृत स्थानो मे दर्शन-पूजन-भक्तिभाव मे विघ्न-बाधा की उपस्थिति के कारण स्थान-स्थान पर विधिचैत्यो ने प्रतिष्ठित होकर तीर्थ का रूप धारण किया ।

सम्यकत्व सप्तति टीकादि के अनुसार आबूतीर्थ के निर्माता विमलमन्त्री और तिलकमञ्जरी के कर्त्ता कवि धनपाल का सम्बन्ध वर्द्धमानसूरि और जिनेश्वरसूरि से था । आबू की सुप्रसिद्ध कलापूर्ण विमलवसही की प्रतिष्ठा स० १०८८ मे वर्द्धमानसूरि आदि आचार्यो ने करवायी थी । जिसका उल्लेख प्रबन्धो व पट्टावलियो मे सप्राप्त है। वृद्धाचार्य प्रबन्धावली के अनुसार आबू की प्राचीन प्रतिमा श्रीवर्द्धमानसूरिजी द्वारा ही प्रगट हुई थी । "वद्धमाणसूरिहि तित्थ पयडिय" अर्थात् वर्द्धमानसूरि ने आबूतीर्थ को प्रगट किया ।

स्तभन पार्श्वनाथ भगवान् की सातिशय प्रतिमा नवागीवृत्तिकारक अभयदेवसूरिजी द्वारा जयतिहुअण स्तोत्र की रचना/स्तवना से प्रगट हुई और प्रभु के न्हवण जल से आचार्यश्री का रोग उपशान्त हो गया। आज यह तीर्थ खम्भात नगर मे सप्रभावी है। उनके पट्टधर श्रीजिनवल्लभसूरि ने चित्तौड, नागौर आदि अनेक नगरो मे विधिचैत्यो की स्थापना करवायी और चित्रकूटीय प्रशस्ति उत्कीर्ण करवाकर विधिचैत्यो के नियम लिखवाये। इस अप्टसप्तति का विशद परिचय महोपाध्याय विनयसागर जी द्वारा लिखित श्रीजिनदत्तसूरि सेवा सघ की स्मारिका मे प्रकाशित किया गया है।

परम पितामह युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी ने अजमेर, कन्यानयन, विक्रमपुर, नरहड आदि अनेक स्थानो मे विधिचैत्य स्थापित करवाये। जागलू तथा अजयपुर मे एक ही दिन मे प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ है जिनमे विधिचैत्य का नाम हे। यह अवश्य ही जिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिष्ठित है। उनके पट्टधर मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने भी कई प्रतिष्ठाएँ कराई थी।

वादि विजेता श्रीजिनपतिसूरिजी ने कन्नाणा मे अपने चाचा साह मानदेव कारित जिस महावीर प्रभु की प्रतिमा की प्रतिप्ठा की वह भी अपने अतिशय के कारण तीर्थरूप मे मान्य हुई और श्रीजिनप्रभसूरिजी को मुहम्मद तुगलक बादशाह ने भेट की और मन्दिर-निर्माण कराके प्रतिष्ठित की, वह मन्दिर सतरहवी शती तक विद्यमान होने के प्रमाण मिलते है। विविध तीर्थकल्प के दो कल्पो मे इनके चमत्कारो का विशद वर्णन है।

युगप्रधानचार्यगुर्वावली के अनुसार आचार्य श्रीजिनपतिसूरिजी महाराज अजमेर से अनेक नगरो के विशाल सघ के साथ तीर्थयात्रा हेतु निकले और चन्द्रावती आदि होते हुए आशापल्ली पधारे। वहाँ सेठ क्षेमधर के पुत्र प्रद्युम्नाचार्य से शास्त्रार्थ का उपक्रम चला और इसी बीच स्तभन, गिरनारादि यात्रा करके आये। इस यात्रा का विस्तृत वर्णन नही मिलता। यह प्राप्त प्रमाणानुसार स० १२४४ की सघ यात्रा थी।

स० १३२६ मे स्वर्णगिरि से भुवनपाल के पुत्र अभयचद्र तथा देदा आदि के सघ सहित श्रीजिनेश्वरसूरि, जिनरत्नसूरि, चन्द्रतिलकोपाध्याय आदि १३ साधु और १३ ठाणा लक्ष्मीनिधि महत्तरादि साध्वियो के साथ पधारे। शत्रुञ्जय मे बीस हजार और उज्जयत मे १७ हजार भण्डार मे आमदनी हुई।

इन दिनो स्वर्णगिरितीर्थ बडी उन्नति पर था। वहाँ जिनालयो की प्रतिष्ठा, दीक्षादि अनेक उत्सव हुए। वीजापुर, पालनपुर आदि मे सर्वत्र प्रतिष्ठाएँ हुई। श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने तारगा, स्तभन तीर्थ, भरौच आदि की सघ सहयात्रा की। स० १३३४ मे भीलडियाजी मे दीक्षा और प्रतिष्ठा महोत्सव हुए। चित्तौड मे भी प्रतिप्ठा स्वर्णगिरि मे भी हुई।

स० १३३७ मे वीजापुर के वासुपूज्य विधिचैत्य मे अनेक दीक्षा प्रतिष्ठादि उत्सव हुए जिसमे वहाँ तीस हजार की आमदनी हुई। गढसिवाणादि के बाद स० १३४० मे जैसलमेर, विक्रमपुर आदि तीर्थ मे प्रभावना कर जावालिपुर मे महती धर्मप्रभावना करके श्रीजिनप्रबोधसूरि स० १३४१ मे स्वर्गवासी हुए।

कलिकालकेवली श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के उपदेश से स० १३५२ मे वा० राजशेखर सुबुद्धिराज, हेमतिलक, पुण्यकीर्ति आदि गणिवरो ने वडगाँव मे विहार किया। वहाँ के श्रावको के साथ कौशाम्बी, वाराणसी, काकन्दी, राजगृह, पावापुरी नालदा, क्षत्रियकुण्ड, अयोध्या. रत्नपुर यात्रा करते हुए हस्तिना-

पुर तक यात्रा कर वापस आये और बिहार नगर मे चातुर्मास किया। इधर आचार्यश्री अनेक स्थानो, तीर्थो, पाटण, साचौर, शखेश्वरजी आदि मे विचर कर ध्वजारोहण, उद्यापना उत्सव कराके भीमपल्ली आये और बीजापुर मे चौमासा कर जावालिपुर आये।

स० १३५४ ज्येष्ठ बदी १० को जावालिपुर में अनेक महोत्सव हुए। सिरियाणक गाँव मे महावीर प्रासादोद्धार कर बडे ठाठ से स० १३५५ मे महावीरप्रभु स्थापित किए। स० १३५८ जैसलमेर के पार्श्वनाथ विधिचैत्य मे समेतशिखरादि बिम्बो की प्रतिष्ठा की। स० १३६१ मे शातिनाथ विधिचैत्य मे वै० सु० ६ को जावालिपुर सवालक्ष देश के सघ की उपस्थिति मे श्रीपार्श्वनाथादि नाना बिम्बो की प्रतिष्ठा की।

स० १३६६ मे खभात के सा० जेसल ने अपने बडे भाई तोलिय के सघपति पद और लघुभ्राता सा० लाखू के पृष्ठरक्षक पद सभालने पर श्रीपतन, भीमपल्ली बाहडमेर, शम्यानयनादि के सघ एकत्र होने पर स्तंभ तीर्थ से देवालय प्रचलन महोत्सव किया। आचार्यश्री जिनचन्द्रसूरिजी साधु-साध्वियो सहित पीपलाउली गॉव से शत्रुजय महातीर्थ पर्वत का अवलोकन करते हुए पहुँचे। सा० सलखण के पुत्र मोकल ने इन्द्रपद महोत्सव विस्तारपूर्वक किया। शत्रुञ्जय यात्रा के पश्चात् कटकोपद्रव रहते हुए भी सौराष्ट्र मे भ० नेमिनाथ और अबिकादेवी के सान्निध्य से सुखपूर्वक गिरनारजी की तलहटी मे पहुँचे। सा० कुलचन्द्र के पुत्र वीजड ने इन्द्र पद लिया। भगवान् नेमिनाथ को नमस्कार कर सघ सहित खम्भात पहुँचें। सा० जैसल ने देवालय और पूज्यश्री आदि का प्रवेश महोत्सव कर चातुर्मास कराया। बीजापुर मे स० १३६७ मे वासुपूज्य स्वामी को वदन किया। मिती माघ कृष्णा ६ को श्रीमहावीर स्वामी आदि के शैलमय बिम्बो की बडे समारोह से प्रतिष्ठा की।

इसके पश्चात् भीमपल्ली के सेठ सामल ने अनेक नगरो के सघ को आमत्रित कर बडे विस्तार से तीर्थ यात्री सघ का आयोजन श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज के नेतृत्व मे किया। चैत्र शुक्ला १३ को देवालय के साथ सघ का प्रस्थान हुआ। श्री शखेश्वर पार्श्वनाथ तीर्थ मे वन्दना कर आठ दिन पर्यन्त महामहोत्सव का आयोजन कर भक्ति की। वहाँ पाटला ग्राम के श्री नेमिनाथ तीर्थपति को नमस्कार कर १६ साधु और १५ साध्वियो सहित सघ शत्रुजय गिरिराज की यात्रा कर समारोहपूर्वक गिरनार तीर्थ पहुँचे। गीत-गान और वाजित्रादि के साथ तीर्थो की यात्रा की। स्वधर्मीवात्सल्य और अवारित सत्र चालू थे। भिन्न-भिन्न श्रावको व सघपति आदि ने जो लाभ लिया वह गुर्वावली मे विस्तार से वर्णित है। वायड गाँव मे श्री महावीर (जीवित) स्वामी की यात्रा बडे विस्तार से करके श्रावण कृष्णपक्ष मे भीमपल्ली मे प्रवेशोत्सव हुआ।

श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज भीमपल्ली से जावालिपुर पधारे। ज्येष्ठ बदी १० को दीक्षा माला-रोपणादि अनेक महोत्सव हुए। इसके पश्चात् म्लेच्छो द्वारा जावालिपुर का भग होने से अनेक ग्रामो के सघ को सन्तुष्ट कर रूणापुर से ३०० गाडो के सघ सहित श्रीफलवर्धी तीर्थयात्रार्थ पधारे। म्लेच्छ व्याकुल सवालक्ष देशरूपी खारे समुद्र मे भगवान् पार्श्वनाथ की अमृतकूप तुल्य बडे समारोहपूर्वक यात्रा महोत्सव हुआ। फिर नागौर सघ की विनती से नागौर पधारे।

इसके पश्चात् सिन्धु देश के ग्राम नगरो मे विचरकर फिर सवत् १३७४ के शेप मे लौटे। कन्यानयन-वागड देश और सपादलक्ष देश के सघसह द्वितीय वार फजवर्द्धि तीर्थ की यात्रा की। अवारित

सत्र और स्वधर्मी वात्सल्यादि का बडा ठाठ रहा। फिर तीसरी बार दिल्ली, हरियाणा-वागड सवालक्ष, मरुधर देश के सघ सहित अत्यन्त ठाट-बाट से यात्रार्थ पधारे।

सवत् १३७५ वैशाख वदी ८ को मन्त्रीदलीय ठा० प्रतापसिंह के पुत्र अचल ने सुल्तान कुतुबुद्दीन से फरमान प्राप्त कर नागौर, रूण, कोसवाणा, मेडता, नौहा, झूंझणु, नरहड, कन्यानयन, आसिका (हाँसी), दिल्ली, धामइना, यमुनापार नाना स्थान वास्तव्य सघ के साथ हस्तिनापुर, मथुरा यात्रार्थ श्रीजिनचन्द्रसूरि सपरिकर यात्रा की। श्री महावीर जी, कन्नाणा तीर्थ मे आठ दिन तक अठाई महोत्सवादि महान् धर्मप्रभावक कार्य किये। यमुना पार वागड देशीय सघ के ४०० घोडे, ५०० गाडियाँ, ७०० वृषभ थे। चातुर्मास खडासराय मे करने को रुके फिर मथुरा तीर्थ की यात्रा भी वडे विस्तार से की। मथुरा मे सुपार्श्व, पार्श्व और महावीर तीर्थंकरो की यात्रा हुई। अवारित सत्र और स्वधर्मीवात्सल्यादि का बडा ठाठ रहा। दिल्ली मे दादा श्रीजिनचन्द्रसूरि स्तूप की दो बार समारोहपूर्वक यात्रा की। लौटते हुए फिर कन्यानयनीय महावीर जी आदि तीर्थों की यात्रा कर एक मास ठहरे फिर २४ दिन मेडता मे रुककर कोसवाणा पधार कर स्वर्गवासी हुए।

स० १३७९ मे गुजरात की राजधानी पाटणतीर्थ मे शान्तिनाथ विधिचैत्य मे बडे भारी समारोह से प्रतिष्ठोत्सव हुआ। इसी दिन शत्रुजय तीर्थ पर आदिनाथ विधिचैत्य का निर्माण आरम्भ हुआ। वहाँ के लिए भी पाषाण, रत्न और धातुमय अनेक जिनबिम्ब, गुरुमूर्तियो आदि की प्रतिष्ठा श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने की। बीजापुर के वासुपूज्य तीर्थ की यात्रा करने पधारे। तीसरा चौमासा भी पाटण मे हुआ।

शत्रुजय के मानतु ग विहार-खरतरवसही के मूलनायक हेतु २७ अगुल की अति उज्ज्वल बिम्ब निर्माण हुआ और अनेक पाषाण व धातुमय बिम्ब गुरुमूर्तियो की प्रतिष्ठा हेतु शत्रुजय गिरराज यात्रा की, कु कुम पत्रिकाएँ भेजी गई और दिल्ली के रयपति आदि अनेक श्रावक श्रीजिनकुशलसूरिजी का आदेश प्राप्त कर सुलतान गयासुद्दीन तुगलक के फरमान के साथ सभी नगर प्रान्तो के सघसहित पाटण आये। उन्हे श्रीजिनकुशलसूरिजी १७ साधु और १९ साध्वियो का साथ/सान्निध्य प्राप्त हो गया। यह सघ कन्यानयन के श्रीमहावीरजी, नरभट के नवफणा पार्श्वनाथ, फलौदी, पार्श्वनाथ, जालौर-स्वर्णगिरि आदि मार्गवर्ती तीर्थों की यात्रा करके आया था। पाटण से मार्ग मे श्री शखेश्वर पार्श्वनाथ की यात्रा कर आषाढ वदी ६ के दिन सूरिजी श्री शत्रु जय महातीर्थ पहुचे। श्री जिनकुशलसूरिजी ने विद्वत्तापूर्ण नव्यस्तोत्र-स्तुति रचना द्वारा प्रभु को नमस्कार किया। प्रतिष्ठा महोत्सव अभूतपूर्व उत्साह से समारोहपूर्वक हुआ। मिती आषाढ वदी ७ को जलयात्रा करके आदिनाथ भगवान् के मूल मन्दिर मे नेमिनाथस्वामी आदि के अनेक बिम्ब व अनेक गुरुमूर्तियाँ समवशरणादि की प्रतिष्ठा वदी ९ को हुई। हजारो स्त्री-पुरुषो ने नवमी के दिन नन्दि महोत्सवपूर्वक व्रत ग्रहण किये।

सघ ने वडे आडम्बरपूर्वक प्रयाण किया और निरुपद्रव श्री गिरनार जी पहुँचे। यहाँ भी आषाढ चौमासी के दिन तीर्थपति नेमिनाथ भगवान् की नवनिर्मित्त स्तुति स्तोत्रो से वन्दन किया। श्रावको ने तलहटी मे आकर तीन दिन तक स्वर्णाभरण, वस्त्रादि प्रचुर परिमाण मे वितरित किये। फिर समस्त सघ निरावाध रूप से श्रावण शुक्ल १३ को पाटण नगर के उपवन मे पहुँचे। सघ के समाधान हेतु १५ दिन विराजकर बडे भारी समारोह से भाद्रपद वदी ११ के दिन पाटण नगर मे प्रवेश किया।

स० १३८१ मिती वैशाख वदी ५ को पाटण के शान्तिनाथ विधिचैत्य में श्रीजिनकुशलसूरिजी द्वारा विराट् प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ जिसमे अनेक नगरो के मुख्य श्रावक सघ की उपस्थिति थी। इसमें जालौर के लिए महावीर प्रतिमा, देरावर के लिए आदिनाथ, शत्रुजय की वूल्हावसही के लिए श्रेयासनाथ, शत्रुजय के अष्टापद प्रासाद के लिए चौवीस जिन बिम्ब आदि २५० पाषाण व पित्तल की अगणित मूर्तियाँ एव उच्चापुर के लिए श्रीजिनदत्तसूरि, पाटण व जालौर के लिए जिनप्रवोधसूरि, देरावर के लिए जिनचन्द्रसूरि, अविका तथा स्व भडारयोग्य समोशरण की प्रतिष्ठा की।

भीमपल्ली (भीलडियाजी) के सुप्रसिद्ध श्रावक वीरदेव ने सम्राट गयासुद्दीन मे शत्रुजय यात्रार्थ फरमान प्राप्त कर देश-विदेश के सघ को आमन्त्रित किया। ज्येष्ठ बदी ५ को श्रीजिनकुशलसूरि जी ठा० १२ व प्र० पुण्यसुन्दरी आदि साध्वीवृन्द सहित भीमपल्ली से साथ चले। वायड मे श्री महावीर स्वामी, सैरिसा मे श्री पार्श्वनाथ आदि विविध तीर्थो मे ध्वजारोप पूजा, सरखेज देवालय प्रवेशोकोत्सव से आशापल्ली मे युगादिदेव वदनकर मालारोपण महोत्सव किया। फिर पूज्यश्री सघ के साथ खभात पधारे। स्तभन पार्श्वनाथ और अजितनाथ भगवान् की यात्रा की। यहाँ आठ दिन तक वीरदेव ने अनेक प्रकार के महोत्सव किये फिर धधुका महानगर मे अनेक सघवात्सल्यादि हुए। शत्रुजय पहुचकर दूसरी वार यात्रा की। आठ दिन तक अनेक उत्सव हुए। युगादिदेव विधिचैत्यमे नवनिर्मित चतुर्विशति जिनालय पर कलश-ध्वजारोप समारोहपूर्वक हुआ। शत्रुञ्जय से लौटते शेरीषा पार्श्वनाथ यात्रा कर शखेश्वरजी आकर चार दिन महापूजा, अवारित सत्र, स्वधर्मीवात्सल्य, महाध्वजारोपकर पाडलालकार नेमिनाथजी की यात्रा की। फिर भीलडिया/भीमपल्ली पहुँचकर समस्त सघ को अपने-अपने स्थान विदा किया। अनेक प्रकार के उत्सव हुए। साचौर तीर्थ की यात्रा की, एक मास रहे। नागहृद मे महावीर स्वामी को वन्दन किया, पन्द्रह दिन सघ को सतुष्ट कर बाहडमेर पधारे। फिर लवणखेडा, जावालिपुर, समियाणा गये।

स० १३८३ फाल्गुन वदी ९ को अनेक उत्सवो के आयोजन के साथ महातीर्थ श्रीराजगृह मे मत्रीदलीय ठा० प्रतापसिह के पुत्र अचलसिह कारित वैभारगिरि के चतुर्विशति जिनालय के योग्य श्री महावीर स्वामी आदि अनेक पाषाण व धातुमय बिम्ब, गुरुमूर्तियाँ, अधिष्ठायकादि की प्रतिष्ठा सम्पन्न की। इसी दिन प्रतिष्ठित एक प्रतिमा वीकानेर के सुपार्श्वनाथ जिनालय मे है।

श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने जैसलमेर महा तीर्थ पधारकर सिन्धु देश की ओर विहार किया। उन दिनो सिन्ध के अनेक नगरो में प्राचीन व प्रभावशाली जिनालय एव जैनो की बस्ती प्रचुर प्रमाण मे थी। देवराजपुर, उच्चनगर, क्यासपुर, बहरामपुर, मलिकपुर, परशुरोर कोट विचरते हुए अनेक प्रतिष्ठादि उत्सव आयोजित हुए जिसमे पाषाण व धातुमय मूर्त्तियो की प्रतिष्ठा की। स० १३८९ तक पाँच-छ वर्ष सिन्धु देश मे धर्म-प्रचार करते हुए वही स्वर्गवासी हुए।

श्रीजिनपद्मसूरिजी ने भी आदिनाथ भगवान् और गुरुमूर्तियो की प्रतिष्ठाएँ की। स० १३९१ माघ सुदी १५ को पाटणनगर मे सेठ जाल्हण के पुत्र तेजपाल (बोथरा) ने भ० ऋषभदेव आदि ५०० जिनविम्बो की प्रतिष्ठा करवाई।

बूजद्री मे सेठ छज्जन के पुत्र मोखदेव ने राजा उदयसिह के साथ जाकर सूरिजी से आबूतीर्थ यात्रार्थ विनती की। आचार्यजी ने शान्तिनाथ भगवान् के रथाकार नवीन देवालय की प्रतिष्ठा की।

पन्द्रह साधु और आठ साध्वियो के साथ मारवाड और आमन्त्रित सघो के साथ नाणा, तीर्थवन्दन कर आबू, आरासण, चन्द्रावती, तारगा—तृश्रृङ्गम आदि की यात्रा की।

सुलतान मुहम्मद तुगलक श्रीजिनप्रभसूरि से बडा प्रभावित था। कन्यानयनीय महावीरस्वामी की प्रतिमा के चमत्कार स्वय देख चुका था। सम्राट ने सूरिजी से पूछा—ऐसी ही प्रतिमा और कही चमत्कारपूर्ण है ? सूरिजी ने शत्रुजयतीर्थ का कहा तो सम्राट सूरिजी को सघ सहित लेकर शत्रुजय गया। रायण वृक्ष से दुग्ध वृष्टि का चमत्कार देखकर शत्रुजयतीर्थ को कोई नुकसान न पहुँचावे—ऐसा फरमान निकाला। फिर गिरनारजी पर जाकर प्रतिमा पर घन घाव किए। प्रतिमा से अग्नि स्फुलिंग निकलने पर क्षमायाचना कर स्वर्णमुद्राएँ भेंट की। शत्रुञ्जय से नीचे उतरने पर सम्राट ने सभी देवो से उत्कृष्ट जिनेश्वर देव को प्रमाणित किया। जिनप्रभसूरिजी के जीवन-चरित्र और स्तवनो के अनुसार उन्होने सभी तीर्थो की यात्रा की और स्तोत्र रचना तथा तीर्थो के ऐतिहासिक कल्प लिखे थे। जिनप्रभसूरिजी ने सघपति देवराज के सघ सहित स० १३७६ जेठ वदी १३ को शत्रुजय तथा ज्येष्ठ सुदी १५ को गिरनारजी की यात्रा की। स० १३८२ मे फलवर्द्धितीर्थ की यात्रा की थी।

स० १४१२ मे बिहार निवासी महत्तियाण मण्डन के पुत्र ठक्कुर वच्छराज ने विपुलगिरि (राजगृह) पर पार्श्वनाथ भगवान् का जिनालय निर्माण कराया और श्री भुवनहितोपाध्याय ने हरिप्रभ मोदमूर्त्ति, पुण्यप्रधानगणि के साथ पूर्व देश मे तीर्थयात्रा के हेतु विचर कर उक्त मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई जिसकी ३८ श्लोक की महत्वपूर्ण प्रशस्ति नाहरजी के लेखाक २३६ मे प्रकाशित है।

जैसलमेर के सर्वप्राचीन श्री पार्श्वनाथ जिनालय के निर्माता राका परिवार की एक प्रशस्ति जैसलमेर भडार सूची क्रमाक ४२६ मे प्रकाशित है जो सदेहविषौपधि शास्त्र की है। उसमे पारिवारिक स्त्री-पुरुषो के नामोल्लेख सह उनके विशिष्ट धर्मकार्यो का विवरण दिया है। जैसल के पुत्र आवराज द्वारा जो सघ देरावर यात्रार्थ गया था वह श्रीजिनोदयसूरिजी के उपदेश से गया था। स० १४२७ मे जो प्रतिष्ठोत्सव हुआ वह उच्चानगर मे हुआ था। स० १४५४ मे भावसुन्दर का दीक्षोत्सव किया। स० १४४९ मे शत्रुजय-गिरनार आदि तीर्थो की यात्रा की। जिनराजसूरिजी द्वारा मालारोपण हुआ। धन्नाधामा ने ज्ञानपचमी का उद्यापन किया और श्रीजिनेश्वरसूरिजी के पास बहिन सरस्वती ने दीक्षा ली जिसका नाम चारित्रसुन्दरी हुआ।

स० १४३० के पूर्व श्रीलोकहिताचार्यजी महाराज ने पूर्व देश के तीर्थो की यात्रा करके अयोध्या मे चातुर्मास किया। इस यात्रा म जो प्रतिष्ठा, व्रतग्रहणादि अनेक धर्मकृत्य हुए उनके विवरणात्मक एक महत्वपूर्ण पत्र उन्होने श्रीजिनोदयसूरिजी महाराज के पास भेजा था, वह अभी तक कही से भी उपलब्ध नही हो सका है। सौभाग्य से उसके प्रत्युत्तर मे श्रीजिनोदयसूरिजी द्वारा प्रेषित विज्ञप्ति-महालेख सम्प्राप्त हुआ है जिसमे उनके समाचारो का समर्थन और मारवाड, मेवाड, गुजरात, सौराष्ट्र आदि स्थानो की तीर्थयात्रा व धर्मोन्नायक कार्यो का सविस्तार वर्णन है। इससे ज्ञात होता है कि श्री लोकहिताचार्यजी को मत्रीदलीय ठ० चन्द्र के पुत्र ठ० राजदेव सुश्रावक ने मगधदेश के तीर्थों व ग्राम नगरो मे विचरण कराया। उन्होने विपुलाचल, वैभारगिरि आदि की यात्रा की और विचरण कर ब्राह्मणकुण्ड, क्षत्रियकुण्ड भी पधारे। राजगृह के उपर्युक्त दोनो पहाडो पर उन्होने बडे विस्तार से जिनबिम्बादि की प्रतिष्ठा कराई थी। पुरातत्त्वाचार्य श्रीजिनविजयजी ने लिखा है कि यह पत्र बहुत ही सुन्दर और प्रौढ [illegible] भाण [illegible]ण, दण्डी और धनपाल जैसे महाकवियो द्वारा प्रयुक्त गद्य-

पन्द्रह साधु और आठ साध्वियो के साथ मारवाड और आमन्त्रित सघो के साथ नाणा, तीर्थवन्दन कर आवू, आरासण, चन्द्रावती, तारगा—तृश्रृङ्गम आदि की यात्रा की।

सुलतान मुहम्मद तुगलक श्रीजिनप्रभसूरि से वडा प्रभावित था। कन्यानयनीय महावीरस्वामी की प्रतिमा के चमत्कार स्वय देख चुका था। सम्राट ने सूरिजी से पूछा—ऐसी ही प्रतिमा और कही चमत्कारं पूर्ण है ? सूरिजी ने शत्रु जयतीर्थ का कहा तो सम्राट सूरिजी को सघ सहित लेकर शत्रुजय गया। रायण वृक्ष से दुग्ध वृष्टि का चमत्कार देखकर शत्रुजयतीर्थ को कोई नुकसान न पहुँचावे—ऐसा फरमान निकाला। फिर गिरनारजी पर जाकर प्रतिमा पर घन घाव किए। प्रतिमा से अग्नि स्फुलिंग निकलने पर क्षमायाचना कर स्वर्णमुद्राएँ भेट की। शत्रुञ्जय से नीचे उतरने पर सम्राट ने सभी देवो से उत्कृष्ट जिनेश्वर देव को प्रमाणित किया। जिनप्रभसूरिजी के जीवन-चरित्र और स्तवनो के अनुसार उन्होने सभी तीर्थो की यात्रा की और स्तोत्र रचना तथा तीर्थो के ऐतिहासिक कल्प लिखे थे। जिनप्रभसूरिजी ने सघपति देवराज के सघ सहित स० १३७६ जेठ वदी १३ को शत्रुजय तथा ज्येष्ठ सुदी १५ को गिरनारजी की यात्रा की। स० १३८२ मे फलवर्द्धितीर्थ की यात्रा की थी।

स० १४१२ मे विहार निवासी महत्तियाण मण्डन के पुत्र ठक्कुर वच्छराज ने विपुलगिरि (राजगृह) पर पार्श्वनाथ भगवान् का जिनालय निर्माण कराया और श्री भुवनहितोपाध्याय ने हरिप्रभ मोदमूर्त्ति, पुण्यप्रधानगणि के साथ पूर्व देश मे तीर्थयात्रा के हेतु विचर कर उक्त मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई जिसकी ३८ श्लोक की महत्वपूर्ण प्रशस्ति नाहरजी के लेखाक २३६ मे प्रकाशित है।

जैसलमेर के सर्वप्राचीन श्री पार्श्वनाथ जिनालय के निर्माता राका परिवार की एक प्रशस्ति जैसलमेर भडार सूची क्रमाक ४२६ मे प्रकाशित है जो सदेहविषौषधि शास्त्र की है। उसमे पारिवारिक स्त्री-पुरुषो के नामोल्लेख सह उनके विशिष्ट धर्मकार्यो का विवरण दिया है। जैसल के पुत्र आवराज द्वारा जो सघ देरावर यात्रार्थ गया था वह श्रीजिनोदयसूरिजी के उपदेश से गया था। स० १४२७ मे जो प्रतिष्ठोत्सव हुआ वह उच्चानगर मे हुआ था। स० १४५४ मे भावसुन्दर का दीक्षोत्सव किया। स० १४४९ मे शत्रुजय-गिरनार आदि तीर्थो की यात्रा की। जिनराजसूरिजी द्वारा मालारोपण हुआ। धन्नाधामा ने ज्ञानपचमी का उद्यापन किया और श्रीजिनेश्वरसूरिजी के पास वहिन सरस्वती ने दीक्षा ली जिसका नाम चारित्रसुन्दरी हुआ।

स० १४३० के पूर्व श्रीलोकहिताचार्यजी महाराज ने पूर्व देश के तीर्थो की यात्रा करके अयोध्या मे चातुर्मास किया। इस यात्रा म जो प्रतिष्ठा, व्रतग्रहणादि अनेक धर्मकृत्य हुए उनके विवरणात्मक एक महत्वपूर्ण पत्र उन्होने श्रीजिनोदयसूरिजी महाराज के पास भेजा था, वह अभी तक कही से भी उपलब्ध नही हो सका है। सौभाग्य से उसके प्रत्युत्तर मे श्रीजिनोदयसूरिजी द्वारा प्रेषित विज्ञप्ति-महालेख सम्प्राप्त हुआ है जिसमे उनके समाचारो का समर्थन और मारवाड, मेवाड, गुजरात, सौराष्ट्र आदि स्थानो की तीर्थयात्रा व धर्मोन्नायक कार्यो का सविस्तार वर्णन है। इससे ज्ञात होता है कि श्री लोकहिताचार्यजी को मन्त्रीदलीय ठ० चन्द्र के पुत्र ठ० राजदेव सुश्रावक ने मगधदेश के तीर्थो व ग्राम नगरो मे विचरण कराया। उन्होने विपुलाचल, वैभारगिरि आदि की यात्रा की और विचरण कर ब्राह्मणकुण्ड, क्षत्रियकुण्ड भी पधारे। राजगृह के उपर्युक्त दोनो पहाडो पर उन्होने वडे विस्तार से जिनविम्वादि की प्रतिष्ठा कराई थी। पुरातत्त्वाचार्य श्रीजिनविजयजी ने लिखा है कि यह पत्र वहुत ही सुन्दर और प्रौढ साहित्यिक भाषा मे वाण, दण्डी और धनपाल जैसे महाकवियो द्वारा प्रयुक्त गद्य-

शैली के अनुकरणरूप एक आदर्श रचना है। आलकारिक भाषा की शब्द छटा के साथ इसमे ऐतिहासिक घटना निदर्शक वर्णनो का भी सुन्दर पुट सम्मिश्रित है।

इस विज्ञप्ति महालेख से ज्ञात होता है कि श्रीजिनोदयसूरिजी ने नागौर मे मालारोपण उत्सव कराये व तीन बार फलौदी तीर्थ की यात्रा की। कोसवाणा मे श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के चरण स्तूप वन्दना कर सोजत, बाडोल होते हुए मेवाड पधारे। मेवाड से केलवाडा और करहेडा पार्श्वनाथ पधारे। सेठ रामदेव और दूसरे बहुत से श्रावको के नामोल्लेखपूर्वक तत्र सम्पन्न धर्मकार्यो का विशद वर्णन विज्ञप्ति-महालेख मे है। इस समय कल्याणविलास, कीर्तिविलास, कुशलविलास मुनि और मतिसुन्दरी, हर्षसुन्दरी साध्वियो का दीक्षा महोत्सव हुआ। सेठ रामदेव ने सात आठ दिन पर्यन्त स्वधर्मी वात्सल्य तथा विपन्न सार्धमियो की सहायता के साथ पाँच दिन तक अमारि उद्घोषणा करवायी थी। मिती फाल्गुन शुक्ला ८ सोमवार को अमृतसिद्धि योग मे श्री सीमधर, युगमधर, बाहु, सुबाहु विहरमान तीर्थंकर तथा श्री जिनरत्नसूरि प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी। उस समय मेवाड मे म्लेच्छोपद्रव और व्यन्तरोपद्रव होते हुए भी दीक्षा और प्रतिष्ठा के उत्सव निर्विघ्न तथा सम्पन्न हुए।

श्रीजिनोदयसूरिजी ने पाटण के मत्री वीरा और मत्री सारग आदि की विनती से गुजरात की ओर विहार किया। वे नागह्रद, ईडर, बडनगर, सिद्धपुर होकर पाटण पधारे। वहाँ से गुजरात, मेवाड, मारवाड, सिध, कौशल आदि देश के सघ सहित शत्रुजय, गिरनार की यात्रा की। शत्रुजय के मानतु ग खरतर विहार मे ध्वजारोपणादि उत्सव हुए। मूल मन्दिर मे ज्येष्ठ बदी के ३ दिन ६८ प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा की।

विज्ञप्ति त्रिवेणी से विदित होता है कि स० १४८३ का चातुर्मास मम्मणवाहणपुर मे करके मरुकोट महातीर्थ का यात्री सघ निकला। उस समय सिध के अनेक स्थान खरतरगच्छीय महापुरुषो के प्रतिष्ठित तीर्थरूप मे प्रसिद्ध हो गये थे। उपाध्यायजी ने फरीदकोट आकर ब्रह्मक्षत्रिय और ब्राह्मणो आदि को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। यहाँ एक यात्री से समाचार ज्ञात हुआ कि अनेक तीर्थ नष्ट हो जाने पर भी सुशर्मपुर नगरकोट का सप्रभाव तीर्थ आज भी अखण्ड है। उपाध्यायजी महाराज के उपदेश से वहाँ के लिए सघ निकालने की तैयारियाँ होने लगी। इसी बीच उन्होने माबारखपुर जाकर बडे ठाठ के साथ श्री आदिनाथ स्वामी की प्रतिष्ठा की। वहाँ श्रावको के सौ घर थे। फिर विशाल यात्री सघ निकला, जिसने ज्येष्ठ सुदी ५ को नगरकोट पहुँचकर साधु क्षेमसिह के बनवाये हुए शान्तिनाथ जिनालय के दर्शन किये जो खरतरगच्छाचार्य श्री जिनेश्वरसूरि प्रतिष्ठित था। दूसरा मन्दिर राजा रूपचन्द का बनवाया हुआ था, जिसमे महावीरस्वामी की स्वर्णमय प्रतिमा थी। तीसरा मन्दिर युगादिदेव का था जिनका वन्दन कर दूसरे दिन पहाडी पर कागडा किले के अनादियुगीन आदिनाथ भगवान् के सुन्दर तीर्थ के दर्शन किये। राजा नरेन्द्रचन्द्र ने सघ का स्वागत किया। लोगो ने बताया कि यह तीर्थ श्री नेमिनाथ स्वामी के समय मे राजा सुशर्म ने स्थापित किया था। अम्बिका देवी के प्रक्षालन का जल और हजारो घडे पानी से अभिषेक किया हुआ भगवान् का न्हवण जल परस्पर मिलता नही और दरवाजा बन्द कर देने पर भी क्षणमात्र मे सूख जाता है। इस चमत्कारी तीर्थ की यात्रा कर उपाध्यायजी ने राजा नरेन्द्रचन्द्र के आमन्त्रण से राजसभा मे उपदेश दिया। राजा जैन था, उसने अपने देवागार मे रहे स्फटिक आदि विविध रत्नो की प्रतिमाओ के दर्शन कराये। वहाँ से गोपाचलपुर तीर्थ मे स० धिरिराज के बनवाये हुए शान्तिनाथ मन्दिर के दर्शन किये। नन्दवनपुर (नादौन) मे महावीर स्वामी व कोटिल ग्राम मे पार्श्वनाथ भगवान् की यात्रा की। देवपालपुर, कोठीपुर आदि मे अपने शिष्यो को चातुर्मास के

लिए छोडा और स्वय स० १४८४ का चातुर्मास मलिकवाहण मे किया। सिन्ध व पजाब प्रान्त मे उस समय खरतरगच्छ का बडा प्रभाव था, गाँव-गाँव मे मन्दिर व श्रावको के घर थे। खरतरगच्छ की रुद्र-पल्लीय शाखा के मुनिगणो का भी वहाँ चातुर्मास होता था।

सीमा प्रान्त मे देरा गाजीखान, देरा इसमाइल खान, हाजीखान देग, वन्नू आदि सर्वत्र जैनो की वस्ती थी। सिन्ध के मुलतान नगर मे तथा अन्य अनेक नगरो मे जैनो की भरपूर वस्ती थी। खरतरगच्छ के यति-मुनियो का विचरण होता था। मरोट तथा देरावर मे सर्वत्र जिनालय और दादावाडियाँ थी। लाहौर पजाव के गुरुमुकुट स्थान मे मन्त्रीश्वर कर्मचन्द वच्छावत निर्मित दादावाडी थी। पाकिस्तान हो जाने पर सीमा प्रान्त के मन्दिरो से प्रतिमाएँ जैन श्रावक ले आये। कराची, हाला आदि सर्वत्र जिनालय थे। हाला वाले तो अपने मन्दिर की मूर्तियाँ और ज्ञानभडार आदि ले आये। वाकी वहुत से मन्दिर आदि पाकिस्तान हो जाने पर वही रह गये। गुजरावाला मे भी बडी बस्ती जिनालय व दादा साहव के चरणो के मैंने स्वय दर्शन किये है। श्री विजयवल्लभसूरिजी महाराज वहाँ के जैनो को सुरक्षित भारत मे ले आये। पजाव के भारतीय नगरो मे सर्वत्र जिनालय, उपाश्रय आदि है। समाणा मे दादावाडी प्रसिद्ध है। हरियाणा के सिरसा, हिसार आदि नगरो मे जैनो की पर्याप्त वस्ती है। सिरसा मे दो जिनालय एव दादावाडी भी हैं जिसके पीछे नहर किनारे लाखो की जमीन है जिस पर अन्यगच्छीय यति का जैनेतर कुटुम्वी कब्जा किये वैठा है।

स० १५५०-६० के बीच बीकानेर के मन्त्रीश्वर वच्छराज के सघ सहित यात्रा का वर्णन साधु-चन्द्रकृत चैत्य परिपाटी मे है। मन्त्री वरसिह ने मुजफ्फरशाह से छ मास का फरमान प्राप्त कर शत्रुञ्जय, आबू, गिरनार का सघ निकाला। इसी प्रकार सग्रामसिह आदि का भी सघ निकला था। स० १६४४ मे युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी के तत्त्वावधान मे सघपति सोमजी ने शत्रुञ्जय का सघ निकाला था। इत पूर्व स० १६१६ मे भी बीकानेर से शत्रुञ्जय का सघ निकला जिसका विस्तृत वर्णन गुणरगकृत चैत्य परिपाटी मे है।

स० १६५७ मे लिगागोत्रीय सघपति सतीदास ने सघ निकालकर मूलमन्दिर की द्वितीय प्रदक्षिणा मे जिनालय निर्माण कराया था। श्रीमद्देवचन्द्रजी ने वहा ३६ प्रतिमाएँ होने का उल्लेख किया है। इसी वर्ष तलहटी मे वर्तमान माताघर के सामने 'सतीवाव" नामक सुन्दर वापी बनवाई जिसे इतिहास-कारो ने शिलालेख लगा होने पर भी अहमदावाद के सेठ शातिदास कारित लिखने की गम्भीर भूल की है।

स० १६७१ मे वीकानेर से शत्रुञ्जय का सघ निकला जो सघपति आसकरण चोपडा के सघ से जा मिला। विशेप जानने के लिए बीकानेर जैन लेख सग्रह देखना चाहिए।

श्रीजिनरत्नसूरिजी के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी के समय जोधपुर के साह मनोहरदास के सघ मे सूरिजी ने यात्रा कर उनके बनाये हुए चैत्यश्रृगार मे २४ तीर्थंकरो की प्रतिष्ठा की।

श्रीक्षमाकल्याण जी महाराज के समय मे स० १८६६ मे श्रीतिलोकचन्द लूणिया एव राजाराम गिडीया ने शत्रुञ्जय का सघ निकाला था। उसी समय पालीताने का सुप्रसिद्ध वडा—जहाँ वर्षी तप के पारणे होते है, निर्माण कराया गया था। जैसलमेर के सुप्रसिद्ध पटवो का सघ बहुत ही शानदार ढग मे निकला जिममे कई राज्यो की सेनाएँ तथा विशाल यात्री सघ था। इस सघ मे ८० लाख रुपये व्यय हुए थे।

अजीमगज—मुर्शिदाबाद से भी अनेकश सघ निकले। सम्मेतशिखरजी आदि पूर्व देश के तीर्थो के सघ निकलते ही रहते थे। शत्रुञ्जय पर खरतरगच्छ सघ द्वारा अनेक मन्दिरादि बने तथा तलहटी के विशाल धनवसही मन्दिर भी स्वनामधन्य श्रीमोहनलालजी महाराज के हाथ से प्रतिष्ठित है।

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज अनेक बार कच्चरा कीका आदि के संघसह सिद्धावतजी पधारे और उनके उपदेश से अनेक मन्दिरो का जीर्णोद्धार हुआ जिनके अनेक शिलालेख मिलते है। उनके गुरु श्रीदीपचन्दजी ने भी वहाँ प्रतिष्ठाएँ कराई थी। श्री आनन्दजी कल्याणजी की पेढी की स्थापना और शत्रुञ्जय पर कौओ का आना बन्द किया। नगर के वीच यतिजी का वडा और दादावाडी आदि है। पहले खरतरवसही आदि के जीर्णोद्धार वहीवट खरतरगच्छ सघ के अधीन था और यतिजी की पूरी सेवाएँ थी वाद मे अब तो सब कुछ शेष हो गया।

जैसलमेर तीर्थ तो प्रारम्भ से ही खरतरगच्छ के कीर्तिकलाप से मण्डित है। इसके वसने के पूर्व लौद्रनपुर राजधानी थी, वहाँ के राजवश को प्रतिबोध देकर महान् गुरुओ ने भणशाली गोत्रादि प्रतिवोध दिये थे। यहाँ किले के सभी मन्दिर अद्‌भुत कलाधाम है जो खरतरगच्छानुयायियो द्वारा निर्मापित और प्रतिष्ठित है। जैसलमेर का सर्वप्रथम पार्श्वनाथ जिनालय सेठ जगद्धर का वनवाया हुआ था। इनके पूर्वज आषाढ सेठ बडे धर्मात्मा थे जो पहले महेश्वर धर्म को मानने वाले थे। इन्होने व्यास की दुष्टता रखकर माहेश्वरत्व छोडकर उपकेशपुर मे आर्हत्‌धर्म स्वीकार कर लिया, उनका पुत्र जामुणाग और उसका पुत्र बोहित्थ था। इन्ही से बोथरा वश प्रसिद्ध हुआ। वोहित्थ के पद्मदेव और वील्ह नामक पुत्र थे। पद्मदेव ने नागौर के पास कुडलू गाँव मे जिनालय निर्माण कराया। उनके पुत्र सुप्रसिद्ध सेठ क्षेमधर हुए जिन्होने मणिधारीजी से विधिमार्ग स्वीकार किया और स० १२१८ मे वैशाख सुदी १० को मरुकोट मे धर्कटवशीय सेठ पार्श्वनागपुत्र गोल्लक के निर्मापित चन्द्रप्रभ जिनालय मे ध्वजा दण्डकलशारोहण के समय पाँच सौ द्रम देकर माला ग्रहण की। उस समय राजा सिहवल का राज्य था। सेठ क्षेमधर के दो पुत्र महेन्द्र और प्रद्युम्न इत पूर्व चैत्यवासी परम्परा मे दीक्षित हो चुके थे। अजयपुर के विधिचैत्य के मण्डप निर्माण हेतु सोलह हजार रुपये प्रदान किये तथा हजारो पारुत्थक व्यय कर अपने कुल के श्रेयार्थ तीर्थयात्राएँ की। स० १२४४ मे अपने पुत्र प्रद्युम्नाचार्य को प्रतिबोध देने, सुविहित मार्ग मे लाने के लिए आशापल्ली मे श्रीजिनपतिसूरिजी से शास्त्रार्थ कराया था।

सेठ क्षेमधर के यशोदेवी और हंसिनी नामक दो भार्याएँ थी। यशोदेवी के पुत्र जगद्धर ने ही जेसलमेर मे देव विमान तुल्य पार्श्वनाथ जिनालय का निर्माण कराया। इसी मन्दिर को सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के समग्र यवन राज्य मे तोड-फोड डाला गया। जगद्धर की स्त्री साढलही के पुत्र यशोधवल, भुवनपाल और सहदेव थे। यशोधवल प्रतिदिन देशान्तर से आये हुए श्रावको की भोजनादि से भक्ति करते। भुवनपाल छ मास भूमिशयन, एकाशन, स्नान-त्याग, षडावश्यक, नवकार जाप और ब्रह्मचर्य पालक थे। स० १२८८ मे आश्विन सुदी १० को पालनपुर मे श्री जिनपतिसूरि स्तूपरत्न पर ध्वजारोपण किया। श्री भीमपल्लीतीर्थ मे सौध शिखरी प्रासाद निर्माण किराया स० १३१७ मे जिनेश्वरसूरिजी द्वारा महावीर स्वामी प्रतिष्ठित कराये। इनकी पत्नी पुण्यिनी के त्रिभुवनपाल व धीदा पुत्र हुए। उनके पुत्र क्षेमसिंह और अभयचन्द्र हुए। श्री जिनेश्वरसूरिजी की सघ यात्रा मे सेनापति वने थे। सेठ जगद्धर ने श्रीमाल नगर मे समोशरण प्रतिष्ठा की और शान्तिनाथ स्वामी स्थापित किये। जैसलमेर का मुख्य जिनालय राका सेठ आम्वा द्वारा निर्मापित है। आम्वा ने स० १४२५ मे विस्तार से देरावर तीर्थयात्रा

तथा स० १४२७ मे श्री जिनोदयसूरि द्वारा प्रतिष्ठोत्सव करवाया था। स० १४३६ मे यात्री सघ निकालने तथा मोहन के पुत्र कीहट द्वारा स० १४४६ मे शत्रुजय गिरनार तीर्थ का सघ निकालने का उल्लेख है। स० १४५६ व स० १४७३ की दो प्रशस्तियाँ लगी हैं जिसमे "खरनरप्रासाद चूडामणि" तथा वास्तु-शास्त्र के अनुसार श्रीनन्दिवर्द्धमान प्रासाद नाम लिखा है।

दूसरा मन्दिर श्रीसभवनाथ भगवान् का स० १४९४ मे चोपडागोत्रीय सा० हेमराज पूना-दीता-पाचा के पुत्र परिवार सहित बनवाकर स०१४९७ मे श्री जिनभद्रसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित कराया। इस अवसर पर ३०० जिनबिम्बो की अजनशलाका हुई। यह जिनालय भी अत्यन्त सुन्दर कलापूर्ण है जिसके नीचे तलघर मे विश्वविश्रुत ताडपत्रीय ग्रन्थो का श्री जिनभद्रसूरि ज्ञान भडार है।

तीसरा अप्टापद प्रासाद व उसके ऊपर शान्तिनाथ जिनालय है। अष्टापद प्रासाद के मूलनायक कुन्थुनाथ स्वामी है। इन दोनो प्रासादो का चोपडा लाखण व सखवाल खेता ने मिलकर निर्माण कराया था। सखलाल खेता की मा गेली श्राविका चोपडा पाचा की पुत्री अर्थात् लाखण की वहिन थी। ऊपर वाले प्रासाद मे ४५ पक्तियो की महत्वपूर्ण प्रशस्ति उत्कीर्णित है जिसमे सखवाल परिवार के द्वारा सम्पन्न धर्मकार्यो का राजस्थानी भाषा मे विशद वर्णन है। यह प्रतिष्ठा स० १५३६ मे हुई थी। पार्श्वनाथ जिनालय से ऊपर पुल द्वारा मार्ग है, नीचे राजमार्ग है। इस पुल पर दशावतार सहित श्रीलक्ष्मीनारायण-जी की मूर्ति गवाक्ष मे विराजमान है।

प्रशस्ति मे निर्माता के धर्मकार्यो का इस प्रकार उल्लेख है—

(१) कोचरशाह ने कोरटा और सखवाली गाँव मे उत्तुग तोरणयुक्त जिनालय वनवाये। आबू, जीरावला तीर्थ की सघ सहयात्रा की, अपना समस्त धन दान कर कर्ण विरुद पाया।

(२) स० आसराज ने शत्रुजय महातीर्थ का सघ निकाला। धर्मपत्नी गेली जो चोपडा पाचा की पुत्री थी, शत्रुजय, गिरनार, आबू तीर्थो की यात्रा की। शत्रुजय पट्ट, नेमिनाथ स्वामी का सतोरण बिंब कराके सभवनाथ जिनालय मे स्थापित किया। तपापट्टिका बनवाई।

(३) स० खेता ने स० १५११ मे शत्रुजय गिरनार की सघ यात्रा प्रतिवर्ष करते हुए स० १५२४ मे तेरहवी यात्रा कर छहरी पालते हुए प्रभु पूजा की। छट्ठ तपपूर्वक दो लाख नवकार का जाप किया, चतुर्विध सघ की भक्ति की। अपने मामा चोपडा लाखण के परिवार सह जैसलमेरगढ पर द्विभूमिक अप्टापद प्रासाद कराके स० १५३६ फागुन सुदी ३ को जिनसमुद्रसूरिजी से प्रतिष्ठा करवायी। अनेक जिन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित कराईं। सारे मारवाड मे समकित के लड्डू और रुपयो की प्रभावना की। स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र लिखवाये। शातिसागरसूरि की पद स्थापना कराई। दोनो प्रासाद के दोनो तल्लो पर भमती मे जिनबिंब स्थापित किए।

(४) स० वीदा ने शत्रुजय, आबू, गिरनार की सपरिवार यात्रा की समकित के लड्डू व खाड की लाहण की। जिनहससूरिजी की वर्षगाँठ महोत्सव करके प्रत्येक घर मे अल्ली मुद्रा बाँटी, पचमी तप उद्यापन व स्वर्णमुद्रादि अनेक वस्तुएँ चढाईं, पाँच बार लाख नवकार जाप किया।

(५) स० सह समाज के शत्रुजय, गिरनार, राणपुर, वीरमगाव, पाटण, पारकरयात्राकर खाड व अल्ली की लाहण की। वीदा ने यात्रा से आकर प्रत्येक घर मे दस-दस सेर घी की प्रभावना की।

जिनालय के द्वारो की चौकी, पउडसाणा मे जाली युक्त चौदह स्वप्न कराये। खेता व सरस्वती की मूर्ति हाथियो पर बनवाई। स० १५८१ मे जिनालयो के ऊपर पुल बनवाया। ६ आवली कोहर, कुतेक बनवाये। हजार गाये, घृत, गुड, अन्न, रूई अनेक बार ब्राह्मणो को बॉटे।

शीतलनाथ जिनालय—यह जिनालय डागा गोत्रीय श्रावको का बनाया हुआ है। इसका निर्माणकाल शिलालेख प्रशस्ति के अभाव मे निर्माता का नामादि निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। वृद्धिरत्नमाला के अनुसार स० १५०८ और लक्ष्मीचद सेवक कृत तवारीख के अनुसार स० १५०६ मे डागा लूणसा मूणसा ने कराया था। अब मूलनायक प्रतिमा भी स० १५६६ प्रतिष्ठित शातिनाथ स्वामी की हे और काष्टमय परिकर पर ताम्रजटित है।

(६) चन्द्रप्रभ जिनालय—यह तिमजिला मन्दिर चौमुख चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमाएँ है। शिलालेख प्रशस्ति के अभाव मे मूलनायक प्रतिमा पर स० १५०६ कार्तिक सुदी १३ के अनुसार इसके निर्माता भणशाली जयसिह के पुत्र बीदा और सा० मेरा, रणधीर के पुत्र देवराजवत्सराज आदि परिवार ने निर्माण कराके जिनभद्रसूरिजी से प्रतिष्ठित कराया था। स० '५५० मे हेमध्वज रचित स्तवनानुसार मेघनादमण्डप श्रेष्ठि गुणराजकारित है।

(७) श्री ऋषभदेव जिनालय—यह जिनालय स० १५३६ फा० सु० ५ के दिन जिनभद्रसूरिजी के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने कराई थी और निर्माता गणधर चोपडा सच्चू और उसके भतीज जयवत द्वारा निमापित है। इस जिनालय मे नवनिर्मित दादादेहरी स० १९८० मे गणिवर्यरत्नमुनिजी महाराज की उपस्थिति मे यतिवर्य वृद्धिचन्द्रजी द्वारा प्रतिष्ठित है।

ये सात मन्दिर दुर्ग पर एक स्थान पर सलग्न बने है, आठवॉ मन्दिर चौगाना पाड़े मे हे।

(८) श्री महावीर स्वामी का मन्दिर—इसे चैत्य परिपाटी के अनुसार बरधिया साह दीपा ने निर्माण कराया था। वृद्धिरत्नजी ने स० १५८१ मे प्रतिष्ठित होने का उल्लेख किया है। जैसलमेर नगर मे उल्लेखनीय कलापूर्ण सुपार्श्वनाथ जिनालय है जो स० १८६६ मे तपागच्छीय सघ ने निर्माण कराके श्री दीपविजय, नगविजय से प्रतिष्ठित कराया था।

दादावाडियॉ—जैसलमेर खरतरगच्छ का प्रधान केन्द्र होने के कारण नगर के चतुर्दिक् दादावाडियाँ बनी हुई हे। देदानसर, कालानसर, गढीसर, गजरूपसागर, गगासागर आदि का विशेष परिचय न देकर बेगड शाखा के महत्वपूर्ण शिलालेख स० १६६३ का ही उल्लेख करता हूँ जहाँ छाजहड मत्री कालू द्वारा रायपुर मे मन्दिर कराया लिखा है।

अमरसागर—लौद्रवाजी के मार्ग मे अमरसागर नामक सुन्दर स्थान हे जहाँ आदीश्वर भगवान के ३ जिनालय हैं जिसमे एक पचायती मन्दिर स० १९०३ प्रतिष्ठित हे। अवशिष्ट दोनो बाफना सेठो द्वारा निर्मापित हैं। सेठ सवाईरामजी का मन्दिर छोटा है जो स १८९७ मे जिनमहेन्द्रसूरि प्रतिष्ठित है। इसकी प्रतिमाएँ विक्रमपुर से आई हुई हे जो जिनभद्रसूरि प्रतिष्ठित थुल्ल गोत्र की और दूसरी सखवाल गोत्र की है। तीसरा विशाल कलापूर्ण मन्दिर सेठ हिम्मतरायजी का तालाब के किनारे है। इसका निर्माण १९२८ मे होकर जिनमुक्तिसूरि द्वारा प्रतिष्ठित हे। इस मन्दिर मे राजस्थानी भाषा मे स १८६६ की ६६ पक्ति की ऐतिहासिक प्रशस्ति हे। दूसरी प्रशस्ति २६ पक्ति की स० १९४५ की लगी हुई है। हिम्मतरायजी के पिता प्रतापचन्दजी की सपत्नीक मूर्ति सामने पश्चिमाभिमुख चौतरे मे स्थापन का उल्लेख है। मूलनायक आदिनाथ भगवान और द्वितल पर पार्श्वनाथजी और बीस विहरमान हैं। दाहिनी ओर दादा साहब के मन्दिर मे स० १९१७ प्रतिष्ठित व सामने अश्वारोही जीवनरामजी की मूर्ति स० १९२८ की है।

लौद्रव-पार्श्वनाथ तीर्थ—जैसलमेर से १० मील पश्चिम की ओर लौद्रवाजी तीर्थ है जहाँ प्राचीन काल में भाटियो की राजधानी थी। स० १२१२ में जैसलमेर बसने के बाद एकदम उजड गया। सगर राजा के पुत्र श्रीधर और राजधर ने जैन बनकर जिनालय बनवाया। फिर विप्लव मे नष्ट हो जाने से सेठ खमसी ने जीर्णोद्धार कराया। पुत्र जूनसी ने जो १७वी पीढी मे था, उसके पौत्र थाहरूशाह भनशाली ने स० १६०५ मे जीर्णोद्धार कराया। एक विशाल कोट मे पचमेरु या पचअनुत्तर विमान के प्रतीकस्वरूप मदिर बने। इसकी प्रतिष्ठा श्री जिनराज सूरिजी ने कराई। चारो ओर के मन्दिर स० १६९३ मे प्रतिष्ठित हुए। शतदल पद्म यत्र और पट्टावली पट्टक बडे महत्वपूर्ण है। भमती के शिखर के बाह्य भाग मे अधिष्ठाता नागराज धरणेन्द्र की बॉबी है, जो कभी-कभी स्वय भक्तो को दर्शन देते है। अष्टापदजी पर धातुमय कल्पवृक्ष विशाल और दर्शनीय है। दादावाडी सलग्न धर्मशाला मे है।

ब्रह्मसर—यह स्थान जैसलमेर से उत्तर की ओर चार कोश पर है, जहाँ स्वनामधन्य श्री मोहनलालजी महाराज के सदुपदेश से स० १९४४ मे बागरेचो द्वारा निर्मापित जिनालय है। एक मील दूरी पर दादाजी का स्थान है। लूणिया परिवार को सुरक्षित देरावर से निकालकर लाने की चमत्कारिक घटना प्रसिद्ध है।

देवीकोट—यह जैसलमेर से १२ कोश दक्षिण-पूर्व की ओर है। अब जैनो की बस्ती नही रही। जिनालय स० १८६० मे जिनहर्षसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित है। गाँव से बाहर दादाजी का स्थान है। जो स० १८७४ मे प्रतिष्ठित है।

पोकरण—यहाँ तीन जिनालय है। अब ओसवाल लोग बाहर जाकर बस गये, थोड़े से माहेश्वरी जैन धर्मावलम्बी है। मन्दिरो की व्यवस्था जैसलमेर लौद्रवा तीर्थ की पेढी के अन्तर्गत है। उपाश्रय मे दादाजी के चरण और ज्ञानभडार भी हैं।

फलौदी—यह नगर खरतरगच्छ का केन्द्र होने से पचासो साधु-साध्वी इसी पुण्यभूमि से खरतर-गच्छ मे दीक्षित हुए। मन्दिर व दादावाडियो आदि का प्रभाव पर्याप्त प्रसिद्ध है। यहाँ से अनेकश यात्री सघ भी तीर्थयात्रा हेतु निकले है।

खीचन—यहाँ भी खरतरगच्छ का पर्याप्त प्रभाव रहा है। मन्दिर उपाश्रय आदि है, दादावाडी भी हैं।

लोहावट—यहाँ के मन्दिर उपाश्रय ज्ञान-भडारादि प्रसिद्ध है। खरतरगच्छ के अनेक घर बाहर जा बसे हैं फिर भी गच्छ का अच्छा प्रभाव है, चातुर्मासादि होते रहते है।

ओसियांतीर्थ—यहाँ का प्राचीन जिनालय ओसवालो की उत्पत्ति होने से पर्याप्त प्रसिद्ध है। मन्दिर का जीर्णोद्धार स्वनामधन्य मोहनलाल जी महाराज के उपदेश से हुआ। यहाँ का प्रसिद्ध विद्या-धाम खरतरगच्छ की महिमामण्डित है।

जोधपुर—यह राजस्थान का प्रमुख नगर है, खरतरगच्छ की अच्छी वस्ती है। कई जिनालय, ज्ञान-भंडार और दादावाडियाँ अवस्थित है। साधु-साध्वियो के चातुर्मास होते रहते है।

कापरड़ाजी—जोधपुर से ३० मील सुप्रसिद्ध सौधशिखरी जिनालय वाला तीर्थ है। सुप्रसिद्ध राज्याधिकारी भानाजी भडारी ने इसे तीन मजिल ऊँचा निर्माण कराया। अब यहाँ जैनो के घर न रहने से राजस्थान के नगरो की कमेटी ही व्यवस्था करती है।

गागाणी—यहाँ एक मन्दिर है, जैनो की बस्ती न रहने से मन्दिर खाली है। स० १६६२ मे यहाँ भूमिगृह से अति प्राचीन मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी जो सम्राट संप्रति और चन्द्रगुप्त द्वारा निर्मापित थी। यहाँ अर्जुनहेम (प्लेटिनम) की मूर्ति भी मिली थी, इससे अर्जुनपुरी नाम प्रसिद्ध था। प्राचीन अभिलेखो की लिपि अम्बिका देवी की सहायता से जिनराजसूरि ने पढी थी।

पाली—यह स्थान भी खरतरगच्छ का केन्द्र और आद्यपक्षीय खरतरगच्छ के श्रीपूज्यो की गादी रही है। मन्दिर, उपाश्रय, दादावाडी आदि है। साधु-साध्वियो के चातुर्मास, उपाधान आदि होते है।

बालोतरा—यहाँ खरतरगच्छ की अच्छी बस्ती और भावहर्षीय शाखा के श्रीपूज्यो की गद्दी रही है। मन्दिर, उपाश्रयादि सभी है।

बाडमेर—यहाँ खरतरगच्छ के सहस्राधिक घर है और पर्याप्त सम्पन्न है। जिनालयादि सभी धर्मस्थान पर्याप्त प्रसिद्ध है।

नाकोड़ाजी तीर्थ—यह महातीर्थ पहाडो के बीच अत्यन्त प्रभावशाली है जहाँ श्रीकीर्तिरत्नसूरिजी के कुटुम्बी सखवाल (सखलेचा) श्रावको के आवास थे। अधिष्ठायक नाकोडा भैरव प्रत्यक्ष चमत्कारी है। सामने ही कीर्तिरत्नसूरि जी की मूर्त्ति विराजमान है। दो दादावाडियाँ व पहाडी पर नेमिनाथ भगवान है। राजस्थान के तीर्थो मे सर्वाधिक आमदनी वाला और सुव्यवस्थित है, जहाँ से लाखो रुपया बाहर के मन्दिरो के जीर्णोद्धारादि मे, साहित्य प्रकाशन आदि मे लगते रहते है। पहले इसकी व्यवस्था बालोतरा वालो के हाथो मे थी।

नागौर—यह भी अति प्राचीन नगर है जहाँ खरतरगच्छ का अच्छा प्रभाव रहा है। श्री जिन-वल्लभ सूरिजी प्रतिष्ठित प्राचीन मन्दिर था। अन्य मन्दिर, दादावाडी और उपाश्रयादि प्रसिद्ध है।

फलौदी पार्श्वनाथ तीर्थ—यह तीर्थ मेडता रोड स्टेशन के पास है। यह अति प्राचीन है। यहाँ सभी गच्छो का प्रभाव रहा है। खरतरगच्छ युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अनुसार यहाँ श्री जिनपतिसूरि ने भी प्रतिष्ठा स० १२३४ मे कराई थी जो मुस्लिमो द्वारा उपद्रवित होने पर भी होना सम्भव हे। यहाँ हरिसागरसूरि जी का स्वर्गवास हुआ, उन्होने छात्रालय स्थापित किया व दादावाडी भी है।

मेडता—यह प्राचीन नगर जैनो की पर्याप्त वस्ती वाला रहा है। चोपडा आसकरण के परिवार द्वारा निर्मापित शान्तिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा श्री जिनराजसूरि—जिनसागरसूरि ने करवाई थी। जिनसिंह सूरिजी महाराज का स्वर्गवास यही पर हुआ था। सुप्रसिद्ध योगिराज श्री आनन्दघन जी महा-राज का जन्म और महाप्रयाण भूमि भी यही है। श्री कलापूर्णसूरि जी उनका स्मारक निर्माण का प्रशसनीय कार्य कर रहे है। स्टेशन के निकट दादाजी का स्थान है।

बिलाडा—यह अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरि चतुर्थ दादा की स्वर्गवासभूमि है। उपाश्रय, मन्दिरादि नगर मे है। अभी प्र श्री विचक्षणश्री जी म. की प्रेरणा से नई दादावाडी, जिनालय व यात्रियो के ठहरने के कमरे आदि बने हे। श्री कान्तिसागरजी महाराज ने उसकी प्रतिष्ठा करवाई। आश्विन वदी २ को मेला भरता हे।

अजमेर—यह दादा श्री जिनदत्तसूरिजी की निर्वाण भूमि हे। यहाँ अष्टम शताब्दी के पश्चात् काफी उन्नति हुई हे। आषाढ सुदी ११ को मेले मे हजारो की उपस्थिति होती हे। भोजनशाला व छात्रो के रहने की व्यवस्था है। वृद्धाश्रम भी खोला गया है। नगरो मे उपाश्रय मदिर आदि है। उत्साही कार्य-कर्त्ता श्री अमरचन्द जी लूणिया, महेन्द्र पारख आदि अच्छी सेवाये दे रहे हैं।

बीकानेर—राजस्थान के सभी नगरो मे खरतरगच्छ का वर्चस्व रहा है। बीकानेर बसने से पूर्व भी कई स्थान अतिप्राचीन थे। रिणी, राजलदेसर, नौहर, भटनेर, छापर, पल्लू आदि अनेक स्थानो मे जिनालय प्रसिद्ध थे। पूगल, सोरूडा, छापर, ददरेवा, पल्लू आदि मे अब मन्दिर नही रहे है। राव बीकाजी ने बीकानेर बसाया तभी से मन्दिरो का निर्माण होना प्रारम्भ हो गया था। सोलहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे चार मन्दिर बने जिनमे तीन मन्दिर खरतरगच्छीय महानुभावो ने के एक कवलागच्छ का था। सोलहवी शताब्दी मे चिन्तामणिजी, भाण्डासरजी और नमिनाथजी तीनो मन्दिर शिल्पकला की दृष्टि से उच्च कोटि के थे। भाडासर जी का मन्दिर तो त्रैलोक्य दीपक नाम से प्रसिद्ध था। सतरहवी शताब्दी मे समयसुन्दर जी ने बीकानेर नगर की तीर्थरूप मे गणना की है— बीकानेरज वदिये, चिरनदिये रे अरिहत देहरा आहे। तीरथ ते नमु रे। ये चार मन्दिर १७वी शती मे बने। बाद मे १६वी शताब्दी मे सब मिलाकर ३५ मन्दिर हो गये। जागल देश की राजधानी जागलू थी जिसका अजयपुर उपनगर था। वहाँ की एक ही मिती मे प्रतिष्ठित दो प्रतिमाएँ स० ११७६ मिती मिगसर वदी ६ के विधिचैत्यो की है। विक्कमपुर प्राचीन नगर भी बीकानेर रियासत के भूभाग मे है जहाँ सवालाख नव्य जैन प्रतिबोध मे मन्दिर प्रतिष्ठाएँ आदि श्रीजिनदत्तसूरि जी महाराज ने की थी। द्वितीय दादा की जन्मभूमि भी वही है जहाँ अब कुछ भी पुरातत्व नही बचा है। बीकानेर रिसायत मे चूरू, सुजानगढ आदि के जिनालय कलापूर्ण व दर्शनीय है। श्रीचिन्तामणिजी के भूमिगृह मे ११०० जिनप्रतिमाएँ इतिहास की अमूल्य निधि हैं। विशेष जानने के लिए हमारा "बीकानेर जैनलेख सग्रह" ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

बीकानेर से अनेकश महातीर्थो के सघ निकले हैं। बीकानेरी सघ द्वारा निर्माण कराये हुए जिनालय तीर्थो मे सर्वत्र है। सम्मेतशिखर, शत्रुजय, सौरीपुर, गिरनार आदि मे उसके प्रमाण विद्यमान है। शत्रुजय पर खरतरजयप्रासाद, तलहटी की सतीवाव स १६५७ मे लिगागोत्रीय सेठ सतीदास की अमरकीर्ति है। खरतरवसही तो कर्मचन्द्र वच्छावत के पूर्वजो द्वारा निर्मापित है। मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्र के पूर्वजो ने पाटण, भीलडियाजी, कुडलू, जैसलमेर, लाहौर, अमरपुर, बीकानेर, ताल, फलौदी, सीरोही, तोसाम, सागानेर आदि स्थानो मे अनेक जिनालय व दादावाडियो का निर्माण कराया था। सम्राट अकवर ने समस्त तीर्थ मन्त्रीश्वर के अधीन कर दिये थे—"मन्त्री साच्चक्रिरे नून, पु डरीकाचलादय" (कर्मचन्द्र मत्रि वश प्रवन्ध)। सुजानगढ का मन्दिर पनाचन्दजी सिंघी के परिवार द्वारा बनवाया हुआ है। बीकानेर के ज्ञान-भण्डारो मे हस्तलिखित ग्रन्थ अच्छे परिमाण मे उपलब्ध हैं।

कोटा, बूँदी, अलवर, भरतपुर आदि अनेक नगर खरतरगच्छ के ऐतिहासिक महापुरुषो की सेवा से ओतप्रोत है। जयपुर तो राजस्थान की राजधानी है। वहाँ की सेवाये भी कम नही है। सागानेर, मालपुरा आदि स्थान तथा राजस्थान के सैकडो गाँव अपने इतिहास मे स्वस्थान मे अधिवास करने वाले धर्मप्राण श्रावको की सेवा अपने ज्ञात-अज्ञात इतिवृत्त मे स्वर्णाक्षरो से मण्डित हैं। सीमित स्थान मे उनका उल्लेख करना कठिन है। अलवर का रावण पार्श्वनाथतीर्थ का शिलालेख अरडक सोनी गोत्र के खरतरगच्छीय श्रावक की यशोगाथा वर्णन करता है।

चूरू का मन्दिर, दादावाडी और उपाश्रय यतिवर्य ऋद्धिकरणजी की त्यागभावना का ज्वलन्त उदाहरण है। स्थली प्रदेश मे सर्वत्र जिनालय, दादावाडियाँ है पर साधुओ के विहार के अभाव मे अमूर्तिपूजक हो गए।

मालव प्रदेश, वागड आदि सभी स्थान खरतरगच्छ के केन्द्र थे। उज्जैन, इन्दौर, धार, सैलाना,

रतलाम, महीदपुर तथा छोटे-मोटे सभी गाँव-नगरो मे खरतरगच्छीय साधु-साध्वियो तथा यतिजनो के चातुर्मास होते रहे है। तीर्थस्थानो मे भी सर्वत्र उनके कीर्तिकलाप विद्यमान है। मेवाड के सभी नगरो का प्राचीन इतिहास खरतरगच्छ से ओत-प्रोत है। श्रीजिनवर्द्धनसूरि परम्परा के मुनिजन उधर विचरते थे। धीरे-धीरे अनेक गाँव अमूर्तिपूजको द्वारा तिमिराच्छन्न हो गये। श्री केशरियाजी तीर्थ तो राज-मान्य एव सर्वमान्य है। मेवाड और तत्रस्थ तीर्थो की उन्नति मे जैसलमेर के पटवा सेठो की महान् सेवाओ से उपकृत है। चित्तौड, उदयपुर का प्राचीन इतिहास खरतरगच्छ इतिवृत्त आलोकित है।

आगे गुजरात की ओर वढे तो अकेले अहमदावाद के ही दस-वारह मन्दिर केवल सोमजीशिवा द्वारा निर्मापित है। यहाँ खरतरगच्छीय आचार्यो, उपाध्यायो, वाचनाचार्यो की विचरण भूमि मुख्यत थी। पाटण नगर तो खरतरगच्छ के गुजरात प्रवेश का विजय स्तम्भ ही रहा है। खम्भात, सूरत, आदि नगर भी खरतरगच्छ की महान् सेवाओ के मुख्य स्थल रहे है। श्रीजिनचन्द्रसूरि, समयसुन्दरोपाध्याय, कविवर जिनहर्ष, कविवर विनयचन्द तथा श्रीमद्देवचन्द्र जी महाराज की सेवाएँ चिरकाल तक सप्राप्त हुई। इन सभी महापुरुषो की महाप्रयाण भूमि भी यही थी। श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज ने शत्रुजय तीर्थोद्धार के लिए अपने जीवन के ३५ वर्ष गुर्जरभूमि की शासन-सेवा और महातीर्थ के उद्धार मे व्यतीत किये। जहाँ अमूर्तिपूजक प्रचार से गुजरात-सौराष्ट्र मे अन्धकार प्रसरित हो गया था वहाँ आपश्री ने अपने उपदेशो द्वारा अहमदावाद, सूरत, ध्रागधा, लीवडी, भावनगर, जामनगर, चूडा, आदि मे विचरण कर श्रावको को जिनभक्ति के श्रद्धालु वनाकर अनेक स्थानो मे जिनालयो की प्रतिष्ठा कराई। उजडते हुए शत्रुजय तीर्थ को आवाद कर दिया। पालीताना, जूनागढ आदि सर्वत्र खरतरगच्छ का जवर-दस्त प्रभाव रहा है।

वम्वई का प्रारम्भिक इतिहास देखे तो वहाँ जो ७ मन्दिर थे उनमे से एक अचलगच्छ का था और अवशिष्ट सभी नाहटा मोतीशाह, जो राजस्थान से ही खभात, सूरत आदि स्थानो मे होते हुए अगासी (वम्वई) मे आकर पेढी खोली, चीन आदि देशो से जहाजी व्यापार वहुत वडे पैमाने पर किया। गौडीजी की प्रतिमा जी वे राजस्थान से साथ ही लाये थे। भायखला, कोट, चिन्तामणिजी (भोइवाडा) आदि सभी मन्दिर उनके द्वारा वनवाये गये थे। चिन्तामणिजी के मन्दिर मे वीकानेर का कोठारी परिवार साथी था। इसी कोठारी परिवार द्वारा स० १८५६ मे पूना की दादावाडी निर्मापित है। यतिवर्य अमरसिंधुर जी ने आठ वर्ष तक चातुर्मास कर चिन्तामणि पार्श्वनाथ प्रभु के चरणो मे अपनी सेवाएँ दी थी। वम्वई मे साधु विहार खरतरगच्छ भूपण श्री मोहनलालजी महाराज ने ही खोला था, जहाँ साधु लोग अनार्य देश समझ कर आने से कतराते थे। मोहनलालजी महाराज गच्छवाद मे निराग्रही थे। उनके शिष्य भी क्रिया विधि मे स्वतन्त्र और अनाग्रही थे पर उनकी दीक्षा मे परम्परा खरतरगच्छ की ही प्रव्रजित की जाती है।

अव मै कच्छ देश, जो अव गुजरात के अन्तर्गत ही है उसके सम्वन्ध मे कुछ विचार करता हूँ। कच्छ देश भद्रेश्वर नामक प्राचीनतम तीर्थ के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है। राजस्थान के जैसलमेर की तरफ से आकर वसे हुए ओसवाल आदि जैन जातियाँ यहाँ धर्म और अर्थ मे काफी प्रसिद्ध है। तीर्थराज सिद्धाचल जी पर यहाँ के अधिवासियो के मन्दिरादि /टोके वनी हुई है। वम्वई मे भी इनके मन्दिर, उपाश्रय प्रसिद्ध है। अव सम्मेतशिखरजी मे भी जिनालय व धर्मशाला आदि हो गये है। यहाँ के चार मुख्य नगरो मे खरतरगच्छ का सघ निवास करता है, वे हैं—भुज, माण्डवी, अजार और मुद्रा। यहाँ दादावाडी और मन्दिर आदि भी है। वडाला, तवडी आदि मे भी घर थे पर साधु समुदाय का विचरण न होने से

अब नही रहे। भद्रेश्वर तीर्थ मे भी सुन्दर दादावाडी है। मजल गाँव मे भी दादा साहब की चार मूर्त्तियाँ हैं। यहाँ के जन्मे हुए चारित्रात्माओ ने खरतरगच्छ को सुशोभित किया है। उनमे जिनरत्नसूरि जी, उ लब्धिमुनि जी, और योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दजी महाराज उल्लेखनीय है। वर्त्तमान मे श्री मोहनलालजी महाराज के सघाडे मे श्री जयानन्द मुनिजी है।

गुजरात मे जामनगर मे खरतरगच्छ के ८० घर, उपाश्रय, मन्दिर व ज्ञान भडारादि है। पादरा मे दादावाडी है। पहले खरतरगच्छ के घर थे। अब तो सर्वत्र तपागच्छ है पर लगभग ३०-४० साध्वियाँ खरतरगच्छ मे दीक्षित है।

श्रीपूज्यो के पुराने दफ्तरो मे सैकडो गाँवो के श्रावक वर्ग के नाम पाये जाते हैं जो खरतर-गच्छानुयायी थे। अब ये साधु-साध्वियो की सत्सग मिलने के अभाव मे भिन्न सम्प्रदाय या गच्छो मे परि-वर्तित हो गये है।

मद्रास नगर भारत के समृद्धिशाली नगरो मे है, वहाँ भी प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं, मद्रास की दादावाडी सेठ मोतीशाह नाहटा की ही देन है। मोतीशाह का व्यापार कलकत्ता मे भी था और किसी की साझेदारी मे था। बम्बई मे तो आपके जिनालय, दादावाडी, पीजरापोल आदि द्वारा बहुत बडी देन है।

दक्षिण भारत मे राजस्थान से गये हुए लोगो ने अपने पैर जमाये और धर्मध्यान के हेतु मन्दिर, दादावाडी आदि निर्मित कराये। श्रमणवर्ग का भी विहार क्षेत्र बढा और विविध प्रकार से कार्यकलापो मे अभिवृद्धि हुई। कुनूर, बेगलौर, मैसूर इत्यादि सर्वत्र दादावाडियाँ व मन्दिर बने। खर-तरगच्छ के साधु-साध्वियाँ भी उधर गये और अपने उपदेशो द्वारा सेवाएँ दी।

चैत्यवास का उन्मूलन कर विधिवाद प्रचारित करने के हेतु स्थान-स्थान पर विधिचैत्य प्रतिष्ठित हुए। विधिमार्ग या खरतरगच्छ एक दूसरे के पर्याय हैं। शत्रुजय मे खरतरवसही जो मानतुग प्रासाद था, निर्माण के पूर्व ही वहाँ कई मन्दिर खरतरगच्छाचार्यो द्वारा प्रतिष्ठित विधिचैत्य थे। पुरानी खरतर-वसही विमलवसही का अधिकाश भाग था। शुभशीलगणि ने स० १५२१ मे रचित पचशती प्रबन्ध मे १०५४ प्रतिमाओ का उल्लेख किया है–"तत खरतरवसहिकया १०५४ जिनान्" शत्रुजय पर बूल्हावसही, श्रेयासनाथ मदिर, अष्टापद प्रासाद आदि १३वी, १४वी शती के खरतरगच्छीय मदिर थे। सोलहवी शताब्दी के प्राग्वाट कर्णसिहकृत चैत्य परिपाटी रास की १७वी गाथा मे १४५८ बिम्ब और स्थान-स्थान पर कौतुकपूर्ण मण्डप होने का उल्लेख है। यह जिनालय कर्मचद्र वच्छावत के पूर्वज तेजपाल रुद्रपाल निर्मापित था। नगरकोट कागडा की खरतरवसही श्री जिनपतिसूरिजी के कुटुम्ब मे माल्हू गोत्रीय विमलचन्द ने बनवायी और उनके पुत्र क्षेमसिह ने वासुपूज्य स्वामी आदि के बिम्ब विराज-मान कराये। स० १३३३ मे क्षेमसिह ने शत्रुजय का सघ निकाला था।

आबू तीर्थ पर विमलवसही तो वर्द्धमानसूरि प्रतिष्ठित थी ही, उन्होने ही तीर्थ प्रगट किया था। वहाँ सर्वोच्च तीन मजिला पार्श्वनाथ जिनालय भी खरतरवसही है जिसका निर्माण उ जयसागरजी के भ्राता मण्डलीक आदि ने निर्माण कराया था, ये दरडा गोत्रीय महर्द्धिक श्रावक थे।

स० १५११ के लिखे एक पत्र मे जयसागरोपाध्याय के सम्बन्ध मे अनेक ऐतिहासिक बातें है। गिरनार तीर्थ की खरतरवसही लक्ष्मीतिलक प्रासाद जब नरपाल सघपति ने बनाना प्रारम्भ किया तो अम्बा-देवी श्रीदेवी आदि आपके प्रत्यक्ष हुए थे। सेरिसा पार्श्वनाथ जिनालय मे धरणेन्द्र पद्मावती प्रत्यक्ष हुए।

मेवाड के नागद्रह मे नवखण्डा पार्श्व जिनालय मे श्री सरस्वती की प्रसन्नता प्राप्त की थी। गिरनार के अभिलेखो की खोजकर नरपाल सघपति का विशेष परिचय प्रकाश मे लाना चाहिए।

राणकपुर मे भी खरतरवसही है जिसके निर्माता का वतिहास प्रकाश मे आना आवश्यक है। देलवाडा (देवकुलपाटक-मेवाड) मे राणाकुम्भा के मन्त्री नवलखा रामदेव ने खरतरवसही बनवाई थी। देलवाडा गाव आबू के देलवाडा से भी प्राचीन है। कवि धनपाल ने यहाँ के प्राचीन मन्दिरो को यवनो द्वारा भग होने का लिखा है। श्रीरामदेव मन्त्री का वश मेवाड मे बहुत प्रसिद्ध था। आहड (आघाट-मेवाड) के सम्राट सम्प्रति कारापित प्रासाद का जीर्णोद्धार, करहेडा पार्श्वनाथ तीर्थ मे भी प्रतिष्ठादि कराने का उल्लेख मिलता है। उदयपुर नगर के सुप्रसिद्ध पद्मनाभ जिनालय का भी निर्माण आपके वशजो ने ही करवाया था।

कन्नाणा मे सुप्रसिद्ध महावीर स्वामी की प्रतिष्ठा जिनपनिसूरिजी ने करवायी थी। यह मन्दिर उनके बाबा सेठ मानदेव माल्हू द्वारा निर्मापित था। पाटण मे शातिनाथ जिनालय सोलहवी शताब्दी मे तथा वाडी पार्श्वनाथ जिनालय १९वी शती मे बनवाने वाले खरतरगच्छ के महान् श्रावक थे। चौदहवी शती मे दादा जिनकुशलसूरि का पट्टाभिषेक व शत्रुजय की खरतरवसही मानतुग बिहार के निर्माताओ ने भी पाटण मे जिनालय निर्माण कराया था।

शत्रुजय पर मरुदेवी टोक पर नयी खरतरवसही का निर्माण अहमदावाद के सेठ सोमजी, शिवा, रूपजी परिवार ने गगनचुम्बी शिखर वाला निर्माण कराया था जिसमे ६८ लाख रुपये लगे, मीराते अहमदी के अनुसार ८४००० रुपये की तो रस्सियाँ ही लगी थी।

स १५८७ मे कर्मा डोसी के जीर्णोद्धार के समय प्रतिष्ठित एक प्रतिमा मैने श्रीजिनमाणिक्य सूरि द्वारा प्रतिष्ठित देखी थी।

दिल्ली भारत की राजधानी थी, यहाँ प्रारम्भ से ही खरतरगच्छ का प्रभाव था। मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी के द्वारा दिल्लीपति मदनपाल को प्रतिबोध देने व उनके स्वर्गवास भी यही होने की घटना इतिहासप्रसिद्ध है। महरोली का दादातीर्थ प्रसिद्ध है। वहाँ शत्रुजय तीर्थ की स्थापना अपने आप मे एक महत्वपूर्ण कीर्तिकलाप है। अभी वहाँ सम्मेतशिखरजी तीर्थ की स्थापना करने का आयोजन है। छोटी दादावाडी (साउथ एक्सटेन्शन) मोठ की मस्जिद इलाका मे जिनालय और विशाल दादाजी का मदिर, उपाश्रयादि है। नगर मे कई मन्दिर विद्यमान हैं। लखनऊ गद्दी का उपाश्रय व नौघरे का सुमतिनाथ जी का जिनालय काफी प्रसिद्ध है। बीकानेर के यतिजन जहाँ चौमासा करते थे, वहाँ भ० पार्श्वनाथ स्वामी का जिनालय है।

हस्तिनापुर तीर्थ मे श्वे० जैन मन्दिर कलकता के प्रतापचन्दजी पारसान द्वारा निर्मापित था अब वहाँ जीर्णोद्धार होकर विशाल मन्दिर, धर्मशाला, दादावाडी आदि बने है। निशियाजी के प्राचीन स्थान का भी जीर्णोद्धार हो रहा है।

मेरठ, हाथरस, आगरा आदि मे जिनालयादि प्रसिद्ध है। मथुरातीर्थ की यात्रा के लिए सघ आदि जाते थे जिनका इतिहास मिलता है। जिनप्रभसूरि और बाद मे कई खरतरगच्छाचार्य वहाँ पधारे थे। सौरीपुर तीर्थ नेमिनाथस्वामी की जन्म भूमि है वहाँ अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरिजी आदि ने यात्रा की है एव धर्मशाला मन्दिरादि प्राचीनकाल से है। विमलनाथ स्वामी की जन्मभूमि कम्पिल

पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। अभी वहाँ जीर्णोद्धार, धर्मशाला, अस्पताल आदि निर्माण कर प्रतिवर्ष नेत्र शिविर आदि द्वारा बहुत सेवाएँ दी जा रही है। कानपुर का मन्दिर काच जटित मीने के काम का सुप्रसिद्ध है। वाराणसी तो महातीर्थ है। यहाँ श्रीहीरधर्मोपध्याय ने जहाँ काशी मे मन्दिर नही वनाने देते थे, वहाँ शास्त्रार्थ मे पण्डितो पर राजसभा मे विजय पाकर कई मन्दिर वनवाये। रामघाट उपाश्रय मे सलग्न त्रितल जिनालय मे वहुत सी प्रतिमाएँ तथा ज्ञान भण्डार है। यही के विद्वान और त्यागी परम्परा मे वालचन्द्रसूरि, नेमिचन्द्रसूरि, हीरचन्द्रसूरिजी की बहुत वडी सेवाएँ है। धर्मनाथ भगवान की जन्मभूमि रत्नपुरी, अयोध्या, भेलूपुर मदैनीघाट तथा सिहपुरी चन्द्रावती—तीर्थो की व्यवस्था भी ये ही गुरुजन निस्वार्थ सेवा देते थे।

मिर्जापुर में दो मन्दिर एव दादावाडी प्रसिद्ध है। खरतरगच्छीय महानुभावो की ही निर्मापित है। मिथिलातीर्थ विच्छेद होने का कारण यात्रीगणो के आवागमन की कमी के कारण ही था। भागलपुर के मन्दिर मे चरण, मूर्तियाँ वहा से आये हुए है जो श्रीजिनहर्पसूरि द्वारा प्रतिष्ठित है। अभी नमिनाथ स्वामी व मल्लिनाथ स्वामी के चार-चार कल्याण की पवित्रभूमि होने मे निकटस्थ नेपाल की राज्य सीमा मे दिगम्वर भाइयो ने तीर्थ स्थापन हेतु भूमि प्राप्त की है। पास ही श्वेताम्बर तीर्थ स्थापन होना अत्यावश्यक है।

जौनपुर जिसका जेउणापुर प्राकृत रूप का सस्कृत पर्याय यमुनापुर है। जैनो की अच्छी बस्ती तिमजिला मदिर था जो बाद मे मस्जिद वन गया है। जिनवर्द्धनसूरिजी के समय ५२ सघपतियो का विशाल तीर्थयात्री सघ निकला था। ओसवाल श्रीमाल और महत्तियाण खरतरसघ का केन्द्र था।

चैत्यवास की जडे हिलने पर सुविहित श्रमणवर्ग भारत के विभिन्न क्षेत्रो को सभालने के लिए विचरने लगा। खरतर विरुद प्राप्ति तो गुजरात जाने पर हुई पर पहले से ही उनका विहार उत्तरप्रदेश और बिहार प्रान्त मे था ही। यही कारण है कि खरतरगच्छ की शाखाएँ वहाँ जब तक कायम रही क्षेत्रो को सम्भालती रही। बिहार की महत्तियाण (मन्त्री दलीय) जाति अपने को सर्व प्राचीन भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के मत्री श्रीदल सतानीय मानती हुई जैन धर्म का पालन खरतरगच्छ के पूर्वाचार्यो के सान्निध्य मे करती थी। मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने जब उनका शैथिल्य दूरकर चुस्त जैन वनाये तो उनकी "महत्तियाणडा दुई नमइ, कइ जिणकइ जिणचन्द" अथवा 'जिन नमामि वा जिनचद्रगुरु नमामि" उद्घोप प्रसिद्ध हो गया। जिनवल्लभसूरि के शिष्य जिनशेखर सूरि रुद्रपल्ली (रुदोली) के थे अत उन्होने भी उत्तरप्रदेश तथा पजाव के क्षेत्रो को सभाला। दूगड, नाहर आदि अनेक गोत्रो के अभिलेख उन्ही से सम्बन्धित थे पर उनका नामशेप हो जाने पर अन्य गच्छो का उधर वर्चस्व छा गया। श्री जिनेश्वरसूरि द्वितीय ने श्रीजिनसिंहसूरि को वह क्षेत्र सौपा। अयोध्या, जौनपुर आदि मे उनके चातुर्मास होना ग्रन्थ रचना आदि से सिद्ध है। जब वह शाखा कुछ निर्बल पड गई तो श्री जिनराजसूरि के पट्टधर श्री जिनरग अनेक क्षेत्रो को सम्भालने लगे।

नालदा, राजगृह आदि उनके प्रभाव क्षेत्र थे। जालोर से प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित होकर भेजी गई। साधुओं के चातुर्मास, उपधान तप आदि नालदा मे हुए जिसके उल्लेख मिलते हैं। बिहार शरीफ का महत्तियाण मुहल्ला के लिए तो पावापुरी गाँव मन्दिर का शिलालेख डके की चोट उस जाति के बीसो गोत्रो के निवास का विवरण देता है। वहाँ नालदा मे १७ मन्दिर थे। राजगृह नगर के पाँचो पहाडो मे ८१ से ऊपर जिनालय थे। विपुलाचल और वैभारगिरि के उल्लेख व स० १४१२ का शिलालेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एतद्विपयक सूचना देते हैं।

पावापुरी का शिलालेख स्पष्ट बतलाता है कि पटना आदि में ओसवाल सघ जाने से पूर्व महत्तियाण सघ ही तीर्थ मे निर्माण-जीर्णोद्धार आदि कराता रहा है। क्षत्रियकुण्ड, काकन्दी, नालदा, राजगृह के शिलालेख स्पष्ट सूचना देते है।

राजगृह गॉव के मन्दिर मे जिनभद्रसूरिजी के प्राचीन चरण जयसागरोपाध्याय प्रतिष्ठित है। मूलनायक प्रतिमा जिनदास श्रावक के घिसे हुए अभिलेख से महत्तियाण जाति का कर्त्तृत्व सूचक है। यह जाति ओसवाल, श्रीमाल व अग्रवालो मे मिल गई मालूम होती है। मारवाड, गुजरात व वम्बई से दक्षिण भारत मे महाराष्ट्र मे जाकर वस जाने के कुछ प्रमाण मिले, मैंने मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि चरित्र मे इस बात का उल्लेख किया है।

राजगृह—जैन दृष्टिकोण से राजगृह विहार प्रान्त का अतिप्राचीन और महत्त्वपूर्ण स्थान है। भगवान महावीर १६वे भव मे विशाखनन्दी और १८वे भव मे त्रिपृष्ठ वासुदेव यही हुए थे। वीसवे तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के लाखो वर्ष पूर्व यही चार कल्याणक हुए थे। भगवान महावीर के १४ चातुर्मास, गणधरो, निर्वाणभूमि तथा जम्बूस्वामी, शालिभद्र, कयवन्ना, मेतार्य, पूणिया श्रावक, अभयकुमार आदि अनेक महापुरुषो से सम्वन्धित यह तीर्थस्थान है। महाराजा श्रेणिक जो आगामी चौवीसी के प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ होगे, यही के सम्राट और भगवान महावीर से पारिवारिक सम्वन्ध के साथ उनके परम भक्त थे। महाराजा कोणिक के राजधानी चम्पानगर कर देने पर राजगृह उजड जाने पर भी उसके महत्व मे कोई कमी नही आई। यहाँ की गुफाओ मे, प्रतिमाओ पर उत्कीर्णित प्राचीन लिपि अपना सम्वन्ध आज तक अनेक साक्ष्य लुप्त हो जाने, नष्ट हो जाने पर भी सजोये हुए हैं।

उपनगर नालन्दापाडा और विहार शरीफ के अधिवासी जैन वस्ती यहाँ से वरावर सम्वन्धित रही। प्राचीन तीर्थमालाएँ राजगृह और उसके पाँचो पहाडो का वर्णन अत्यन्त गौरव के साथ कीर्त्ति गाथाओ का उद्घोष करती है। सोन भडार का पूर्वगुप्तकाल का अभिलेख गुफा मे अर्हत् प्रतिमा प्रतिष्ठित करने की गौरव गाथा गाती है तथा वहाँ की कलापूर्ण अद्वितीय जिन प्रतिमाएँ जैन सस्कृति और कला की अमूल्य निधि है।

युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अनुसार कलिकाल केवली श्री जिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से वा राजशेखर गणि ने स० १३५२ मे राजगृह नालदा, क्षत्रियकुण्डादि की यात्रा करने के राजगृह के बाद निकटवर्त्ती उद्दड विहार (विहार शरीफ) मे चातुर्मास किया था। वहाँ नन्दि महोत्सव, मालारोपण आदि धार्मिक अनुष्ठान हुए। स० १३६४ मे राजशेखर गणि को श्री जिनचन्द्रसूरि जी ने आचार्य पद से अलकृत किया था। स० १३८३ मे जालोर मे मिती फाल्गुन वदी ६ को श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज ने मन्त्रिदलीय ठ० प्रतापसिंह के पुत्र ठ० अचलसिंह कारित वैभारगिरि के चुतुर्विंशति जिनालय के मूलनायक योग्य श्री महावीर स्वामी आदि के अनेक पाषाण व धातुमय विम्व, गुरुमूर्त्तियाँ व अधिष्ठायको की प्रतिष्ठा की थी।

स० १४१२ की काव्यमय ३३ पक्तियो वाली विस्तृत प्रशस्ति विहार निवासी महत्तियाण ठ० मण्डन के वशज वत्सराज और देवराज ने राजगृह के विपुलाचल पर श्री पार्श्वनाथ स्वामी का ध्वजदण्ड मण्डित विशाल जिनालय निर्माण करवाकर आषाढ वदी ६ को खरतरगच्छ नायक श्री जिनलब्धिसूरिजी के पट्ट प्रभाकर श्री जिनउदयसूरिजी की आज्ञा से उपाध्याय श्रीभुवनहित गणि के पास प्रतिष्ठा करवायी थी।

पर्याप्त प्रसिद्ध है। अभी वहाँ जीर्णोद्धार, धर्मशाला, अस्पताल आदि निर्माण कर प्रतिवर्ष नेत्र शिविर आदि द्वारा बहुत सेवाएँ दी जा रही है। कानपुर का मन्दिर काच जटित मीने के काम का सुप्रसिद्ध है। वाराणसी तो महातीर्थ है। यहाँ श्रीहीरधर्मोपध्याय ने जहाँ काशी मे मन्दिर नही वनाने देते थे, वहाँ शास्त्रार्थ मे पण्डितो पर राजसभा मे विजय पाकर कई मन्दिर वनवाये। गमघाट उपाश्रय मे सलग्न त्रितल जिनालय मे वहुत सी प्रतिमाएँ तथा ज्ञान भण्डार है। यही के विद्वान और त्यागी परम्परा मे वालचन्द्रसूरि, नेमिचन्द्रसूरि, हीरचन्द्रसूरिजी की बहुत वडी सेवाएँ है। धर्मनाथ भगवान की जन्मभूमि रत्नपुरी, अयोध्या, भेलूपुर मदैनीघाट तथा सिहपुरी चन्द्रावती—तीर्थो की व्यवस्था भी ये ही गुरुजन निस्वार्थ सेवा देते ये।

मिर्जापुर मे दो मन्दिर एव दादावाडी प्रसिद्ध है। खरतरगच्छीय महानुभावो की ही निर्मापित है। मिथिलातीर्थ विच्छेद होने का कारण यात्रीगणो के,आवागमन की कमी के कारण ही था। भागलपुर के मन्दिर मे चरण, मूर्तियाँ वहा से आये हुए है जो श्रीजिनहर्षसूरि द्वारा प्रतिष्ठित हैं। अभी नमिनाथ स्वामी व मल्लिनाथ स्वामी के चार-चार कल्याण की पवित्रभूमि होने मे निकटस्थ नेपाल की राज्य सीमा मे दिगम्वर भाइयो ने तीर्थ स्थापन हेतु भूमि प्राप्त की है। पास ही श्वेताम्बर तीर्थ स्थापन होना अत्यावश्यक है।

जौनपुर जिसका जेउणापुर प्राकृत रूप का सस्कृत पर्याय यमुनापुर है। जैनो की अच्छी वस्ती तिमजिला मदिर था जो बाद मे मस्जिद वन गया है। जिनवर्द्धनसूरिजी के समय ५२ सघपतियो का विशाल तीर्थयात्री सघ निकला था। ओसवाल श्रीमाल और महत्तियाण खरतरसघ का केन्द्र था।

चैत्यवास की जडे हिलने पर सुविहित श्रमणवर्ग भारत के विभिन्न क्षेत्रो को सभालने के लिए विचरने लगा। खरतर विरुद प्राप्ति तो गुजरात जाने परहुई पर पहले से ही उनका विहारउत्तरप्रदेश और बिहार प्रान्त मे था ही। यही कारण है कि खरतरगच्छ की शाखाएँ वहाँ जब तक कायम रही क्षेत्रो को सम्भालती रही। बिहार की महत्तियाण (मन्त्री दलीय) जाति अपने को सर्व प्राचीन भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के मत्री श्रीदल सतानीय मानती हुई जैन धर्म का पालन खरतरगच्छ के पूर्वाचार्यो के सान्निध्य मे करती थी। मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने जब उनका शैथिल्य दूरकर चुस्त जैन वनाये तो उनकी "महत्तियाणडा दुई नमइ, कइ जिणकइ जिणचन्द" अथवा 'जिन नमामि वा जिनचद्रगुरु नमामि" उद्घोष प्रसिद्ध हो गया। जिनवल्लभसूरि के शिष्य जिनशेखर सूरि रुद्रपल्ली (रुदोली) के थे अत उन्होने भी उत्तरप्रदेश तथा पजाब के क्षेत्रो को सभाला। दूगड, नाहर आदि अनेक गोत्रो के अभिलेख उन्ही से सम्बन्धित थे पर उनका नामशेष हो जाने पर अन्य गच्छो का उधर वर्चस्व छा गया। श्री जिनेश्वरसूरि द्वितीय ने श्रीजिनसिहसूरि को वह क्षेत्र सौपा। अयोध्या, जौनपुर आदि मे उनके चातुर्मास होना ग्रन्थ रचना आदि से सिद्ध है। जब वह शाखा कुछ निर्बल पड गई तो श्री जिनराजसूरि के पट्टधर श्री जिनरग अनेक क्षेत्रो को सम्भालने लगे।

नालदा, राजगृह आदि उनके प्रभाव क्षेत्र थे। जालोर से प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित होकर भेजी गईं। साधुओ के चातुर्मास, उपधान तप आदि नालदा मे हुए जिसके उल्लेख मिलते है। बिहार शरीफ का महत्तियाण मुहल्ला के लिए तो पावापुरी गाँव मन्दिर का शिलालेख डके की चोट उस जाति के बीसो गोत्रो के निवास का विवरण देता है। वहाँ नालदा मे १७ मन्दिर थे। राजगृह नगर के पाँचो पहाडो मे ८१ से ऊपर जिनालय थे। विपुलाचल और वैभारगिरि के उल्लेख व स० १४१२ का शिलालेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एतद्विषयक सूचना देते है।

पावापुरी का शिलालेख स्पष्ट वतलाता है कि पटना आदि ने ओसवाल सघ जाने से पूर्व महत्तियाण सघ ही तीर्थ मे निर्माण-जीर्णोद्धार आदि कराता रहा है। क्षत्रियकुण्ड, काकन्दी, नालदा, राजगृह के शिलालेख स्पष्ट सूचना देते है।

राजगृह गॉव के मन्दिर में जिनभद्रसूरिजी के प्राचीन चरण जयसागरोपाध्याय प्रतिष्ठित हैं। मूलनायक प्रतिमा जिनदास श्रावक के घिसे हुए अभिलेख से महत्तियाण जाति का कर्तृत्व सूचक है। यह जाति ओसवाल, श्रीमाल व अग्रवालो में मिल गई मालूम होती है। मारवाड़, गुजरात व बम्बई से दक्षिण भारत मे महाराष्ट्र मे जाकर बस जाने के कुछ प्रमाण मिले, मैंने मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि चरित्र मे इस बात का उल्लेख किया है।

राजगृह—जैन दृष्टिकोण से राजगृह विहार प्रान्त का अतिप्राचीन और महत्वपूर्ण स्थान है। भगवान महावीर १६वे भव मे विशाखनन्दी और १८वे भव मे त्रिपृष्ठ वासुदेव यहीं हुए थे। बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के लाखो वर्ष पूर्व यही चार कल्याणक हुए थे। भगवान महावीर के १४ चातुर्मास, गणधरों, निर्वाणभूमि तथा जम्बूस्वामी शालिभद्र, कयवन्ना, मेतार्य पूणिया श्रावक, अभयकुमार आदि अनेक महापुरुषों से सम्बन्धित यह तीर्थस्थान है। महाराजा श्रेणिक जो आगामी चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ होंगे यहीं के सम्राट और भगवान महावीर से पारिवारिक सम्बन्ध के साथ उनके परम भक्त थे। महाराजा कोणिक के राजधानी चम्पानगर कर देने पर राजगृह उजड़ जाने पर भी उसके महत्व में कोई कमी नही आई। यहाँ की गुफाओं ने प्रतिमाओ पर उत्कीर्णित प्राचीन लिपि अपना सम्बन्ध आज तक अनेक साक्ष्य लुप्त हो जाने, नष्ट हो जाने पर भी सजोये हुए हैं।

उपनगर नालन्दापाडा और विहार शरीफ के अधिवासी जैन बस्ती यहाँ से बराबर सम्बन्धित रही। प्राचीन तीर्थमालाएँ राजगृह और उसके पाँचो पहाड़ों का वर्णन अत्यन्त गौरव के साथ कीर्त्ति गाथाओ का उद्घोष करती है। सोन भंडार का पूर्वगुप्तकाल का अभिलेख गुफा में अर्हत् प्रतिमा प्रतिष्ठित करने की गौरव गाथा गाती है तथा वहाँ की कलापूर्ण अद्वितीय जिन प्रतिमाएँ जैन संस्कृति और कला की अमूल्य निधि है।

युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अनुसार कलिकाल केवली श्री जिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से ग राजशेखर गणि ने सं० १३५२ मे राजगृहनालदा, क्षत्रियकुण्डादि की यात्रा करने के राजगृह के बाद निकटवर्त्ती उद्दड विहार (विहार शरीफ) मे चातुर्मास किया था। वहाँ नन्दि महोत्सव, मालारोपण आदि धार्मिक अनुष्ठान हुए। सं० १३६४ में राजशेखर गणि को श्री जिनचन्द्रसूरि जी ने आचार्य पद से अलङ्कृत किया था। स० १३८३ में जालोर में मिती फाल्गुन वदी ६ को श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज ने मन्त्रिदलीय ठ० प्रतापसिंह के पुत्र ठ० अचलसिंह कारित वैभारगिरि के चतुर्विंशति जिनालय के मूलनायक योग्य श्री महावीर स्वामी आदि के अनेक पाषाण व धातुमय बिम्ब, गुरुमूर्तियाँ व अधिष्ठायको की प्रतिष्ठा की थी।

स० १४१२ की काव्यमय ३३ पंक्तियो वाली विस्तृत प्रशस्ति विहार निवासी महत्तियाण ठ० मण्डन के वंशज वत्सराज और देवराज ने राजगृह के विपुलाचल पर श्री पार्श्वनाथ स्वामी का ध्वजदण्ड मण्डित विशाल जिनालय निर्माण करवाकर आषाढ़ वदी ६ को खरतरगच्छ नायक श्री जिनलब्धिसूरिजी के पट्ट प्रभाकर श्री जिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से उपाध्याय श्रीभुवनहित गणि के द्वारा प्रतिष्ठा करवायी थी।

इस महत्वपूर्ण प्रशस्ति मे दिल्लीश्वर फीरोजशाह के मण्डलेश्वर मलिकवय नामक मगधशासक के सेवक से इस पुण्यकार्य मे बडा साहाय्य मिलने का उल्लेख है।

स० १४३१ में अयोध्या स्थित श्री लोकहिताचार्य के प्रति अणहिल्लपुर पत्तन से श्री जिनोदयसूरि प्रेषित 'विज्ञप्ति महालेख' से विदित होता है कि श्री लोकहिताचार्य जी इत पूर्व मन्त्रीदलीय वशोद्भूत ठ० चन्द्रागज सुश्रावक राजदेव तथा इतर मन्त्रिदलीय समुदाय के निवेदन से विहार व राजगृह मे विचरे व विपुलाचल पर श्रावको द्वारा नव निर्मापित जिन प्रासादो को वन्दन किया था। सूरिजी वहाँ से ब्राह्मण कुण्ड व क्षत्रियकुण्ड जाकर पुन विहार होते हुए राजगृह पधारे और विपुलाचल व वैभारगिरि पर वडे समारोह से जिनबिम्बादि की प्रतिष्ठा की थी।

पन्द्रहवी शताब्दी मे विज्ञप्ति त्रिवेणी रचयिता प्रकाण्ड विद्वान श्री जयसागरोपाध्यायजी भी राजगृह और उद्दड बिहार मे विचरे थे। (देखिए ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह पृ० ४०)। स० १५०४ मे जिनवर्द्धनसूरि, जिन्होने अपनी तीर्थयात्रा मे राजगृह यात्रा का विशद वर्णन किया है—के प्रशिष्य जिनसागरसूरिजी की आज्ञा से यहाँ अनेक जिनबिम्वो की प्रतिष्ठा करवायी थी। उस समय की प्रतिष्ठित कितनी ही प्रतिमाएँ वैभारगिरि के खण्डहर, स्वर्णगिरि, राजगृह, काकन्दी और नालन्दा के मन्दिरो मे अब भी पूज्यमान है।

स० १५२४ मे श्री जिनभद्रसूरि पट्ट प्रभाकर श्री जिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से उत्तराध्ययन वृत्तिकार श्री कमलसयमोपाध्यायजी ने श्रीमाल श्रावक छीतमल्ल द्वारा निर्मापित वैभारगिरि शिखरस्थ धन्ना-शालिभद्रमूर्ति, एकादश गणधर चरण पादुका तथा स्वगुरु श्री जिनभद्रसूरिजी के चरणो की प्रतिष्ठा की थी। स० १५२५ मे लिखित आवश्यकसूत्र तथा दशवैकालिक टीका की प्रशस्तियो मे भी राजगृह और क्षत्रियकुण्ड यात्रादि का वर्णन पाया जाता है।

स० १५६५ मे कवि हस सोम ने अपनी तीर्थयात्रा में राजगृह के वैभारगिरि पर मुनिसुव्रत प्रभृति २४ प्रासादो मे ७०० जिनबिम्ब और अन्य सभी स्थानो पर पहाडो के मन्दिरो का वर्णन किया है। सतरहवी शती के कवि विजयसागर ने पाँचो पहाडो पर १५० मन्दिर व ३०३ जिनबिम्ब तथा ११ गणधर आदि अन्य उल्लेखनीय वर्णन किये है। शीलविजयजी ने स० १७४६ मे तीर्थमाला मे सभी दर्शनीय स्थानो का वर्णन किया है। स० १७५० मे सौभाग्यविजयजी ने ८१ जिनालय की सख्या लिखी है।

श्री क्षमाकल्याणोपाध्यायजी इस देश से विचरे और उनके गुरु श्री अमृतधर्मजी ने अतिमुक्तक मुनि की विपुलाचल पर प्रतिष्ठा की थी। श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने स० १८३४-३५-३६ मे समस्त तीर्थो की यात्रा के साथ राजगृह यात्रा कर राजा वच्छराज नाहटा के आग्रह से लखनऊ मे तीन चातुर्मास किये थे।

दानवीर द्वितीय जगडूशाह के पिता वर्द्धमान और उनके भ्राता पद्मसिंह के चरित्र मे अचल गच्छ के अचलगच्छाचार्य अमरसागरसूरिजी ने स० १६९१ मे ८वे सर्ग मे पूरब देश के समस्त तीर्थो की यात्रा कर लाखो रुपया व्यय करने का उल्लेख किया है।

स० १७०७ मे विहार के खरतरगच्छीय महत्तियाण चोपडा तुलसीदास के पुत्र सग्राम व गोवर्द्धन ने विपुलगिरि पर वा० कल्याणकीर्ति के उपदेश से जीर्णोद्धार कराया जिसका अभिलेख दगिम्वराधिकृत जिनालय के नव ग्रह दशदिग्पाल पट्टिका पर खुदा है। तीन वर्ष मुकदमावाजी के पश्चात्

इस महत्वपूर्ण प्रशस्ति मे दिल्लीश्वर फीरोजशाह के मण्डलेश्वर मलिकवय नामक मगधशासक के सेवक से इस पुण्यकार्य मे बडा साहाय्य मिलने का उल्लेख है।

स० १४३१ मे अयोध्या स्थित श्री लोकहिताचार्य के प्रति अणहिल्लपुर पत्तन से श्री जिनोदयसूरि प्रेषित 'विज्ञप्ति महालेख' से विदित होता है कि श्री लोकहिताचार्य जी इत पूर्व मन्त्रीदलीय वशोद्भूत ठ० चन्द्रागज सुश्रावक राजदेव तथा इतर मन्त्रिदलीय समुदाय के निवेदन से विहार व राजगृह मे विचरे व विपुलाचल पर श्रावको द्वारा नव निर्मापित जिन प्रासादो को वन्दन किया था। सूरिजी वहाँ से ब्राह्मण कुण्ड व क्षत्रियकुण्ड जाकर पुन विहार होते हुए राजगृह पधारे और विपुलाचल व वैभारगिरि पर वडे समारोह से जिनबिम्बादि की प्रतिष्ठा की थी।

पन्द्रहवी शताब्दी मे विज्ञप्ति त्रिवेणी रचयिता प्रकाण्ड विद्वान श्री जयसागरोपाध्यायजी भी राजगृह और उद्दड बिहार मे विचरे थे। (देखिए ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह पृ० ४०)। स० १५०४ मे जिनवर्द्धनसूरि, जिन्होने अपनी तीर्थयात्रा मे राजगृह यात्रा का विशद वर्णन किया है—के प्रशिष्य जिनसागरसूरिजी की आज्ञा से यहाँ अनेक जिनविम्वो की प्रतिष्ठा करवायी थी। उस समय की प्रतिष्ठित कितनी ही प्रतिमाएँ वैभारगिरि के खण्डहर, स्वर्णगिरि, राजगृह, काकन्दी और नालन्दा के मन्दिरो मे अब भी पूज्यमान है।

स० १५२४ मे श्री जिनभद्रसूरि पट्ट प्रभावक श्री जिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से उत्तराध्ययन वृत्तिकार श्री कमलसयमोपाध्यायजी ने श्रीमाल श्रावक छीतमल्ल द्वारा निर्मापित वैभारगिरि शिखरस्थ धन्ना-शालिभद्रमूर्ति, एकादश गणधर चरण पादुका तथा स्वगुरु श्री जिनभद्रसूरिजी के चरणो की प्रतिष्ठा की थी। स० १५२५ मे लिखित आवश्यकसूत्र तथा दशवैकालिक टीका की प्रशस्तियो मे भी राजगृह और क्षत्रियकुण्ड यात्रादि का वर्णन पाया जाता है।

स० १५६५ मे कवि हस सोम ने अपनी तीर्थयात्रा मे राजगृह के वैभारगिरि पर मुनिसुव्रत प्रभृति २४ प्रासादो मे ७०० जिनविम्ब और अन्य सभी स्थानो पर पहाडो के मन्दिरो का वर्णन किया है। सतरहवी शती के कवि विजयसागर ने पाँचो पहाडो पर १५० मन्दिर व ३०३ जिनविम्ब तथा ११ गणधर आदि अन्य उल्लेखनीय वर्णन किये है। शीलविजयजी ने स० १७४६ मे तीर्थमाला मे सभी दर्शनीय स्थानो का वर्णन किया है। स० १७५० मे सौभाग्यविजयजी ने ८१ जिनालय की सख्या लिखी है।

श्री क्षमाकल्याणोपाध्यायजी इस देश से विचरे और उनके गुरु श्री अमृतधर्मजी ने अतिमुक्तक मुनि की विपुलाचल पर प्रतिष्ठा की थी। श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने स० १८३४-३५-३६ मे समस्त तीर्थों की यात्रा के साथ राजगृह यात्रा कर राजा वच्छराज नाहटा के आग्रह से लखनऊ मे तीन चातुर्मास किये थे।

दानवीर द्वितीय जगडूशाह के पिता वर्द्धमान और उनके भ्राता पद्मसिह के चरित्र मे अचल गच्छ के अचलगच्छाचार्य अमरसागरसूरिजी ने स० १६९१ मे ८वे सर्ग मे पूरब देश के समस्त तीर्थों की यात्रा कर लाखो रुपया व्यय करने का उल्लेख किया है।

स० १७०७ मे विहार के खरतरगच्छीय महत्तियाण चोपडा तुलसीदास के पुत्र सग्राम व गोवर्द्धन ने विपुलगिरि पर वा० कल्याणकीर्ति के उपदेश से जीर्णोद्धार कराया जिसका अभिलेख दगिम्वराधिकृत जिनालय के नव ग्रह दशदिग्पाल पट्टिका पर खुदा है। तीन वर्ष मुकदमाबाजी के पश्चात्

सागर मुनि राज (वाद में आचार्य) के हाथ से प्रतिष्ठित हो गया। जैसलमेर से स० १५३६ मे श्री जिन-भद्रसूरिजी के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी महाराज के कर कमलो से प्रतिष्ठित दो प्रतिमाएँ भी प्राप्त हो गईं। मन्दिर विशाल हो गया, धर्मशाला के बगल मे नवरतन सज्ञक विशाल धर्मशाला है और उसके पृष्ठ भाग मे भी भूखण्ड क्रयकर और विशाल करने का आयोजन है।

पहले यहाँ बिहार के महत्तियाण सघ द्वारा जीर्णोद्धारित स० १६९८ का मन्दिर था जिसके नीचे भी पुरानी नीव आदि के चिन्ह देखे गये थे। यही तीर्थ को जैन श्वेताम्वर पेढी है। अति प्राचीनकाल से यहाँ खरतरगच्छ का वर्चस्व रहा है। बिहार के महत्तियाण मुहल्ले मे उनका मन्दिर व सैकडो घरो की वस्ती थी। कालान्तर मे आज एक भी घर नही रहा तो वहाँ के मन्दिर से प्रतिमाएँ उत्थापितकर केवल अधिष्ठाता भैरोजी रहे है। बिहार शरीफ मे जिनालय और दादावाडी है जिसकी व्यवस्था वहाँ के निवासी श्री धन्नूलालजी सुचन्ती तथा वाद मे लक्ष्मीचन्दजी सुचन्ती करते थे। अव ट्रस्टियो का चुनाव होता है।

जल मन्दिर—यह विशाल तालाव/कमल सरोवर के वीच अत्यन्त सुन्दर कलापूर्ण सगमरमर निर्मित जिनालय है। लाल पत्थर की विशाल ६०० फुट लम्बे पुल को पार कर मन्दिर मे पहुँचते है। मध्यवर्त्ती मन्दिर मे बीच मे भगवान महावीर के प्राचीन चरण और दोनो ओर गणधर गौतम स्वामी, सुधर्मास्वामी के चरण है। यहाँ दीपावली के दिन निर्वाण के लड्डू हजारो यात्रीगण चढाते है। चारो ओर गुम्वद बने है जिनमे १६ सती, ११ गणधर, दादा जिनकुशलसूरि और दीपविजय गणि के चरण है जो खरतरगच्छ की जिनरगसूरि शाखा के थे। गाँव मन्दिर की धर्मशाला मे खरतरगच्छ की रगसूरि शाखा का उपाश्रय है। जल मन्दिर के पास मुर्शिदाबाद धर्मशाला, नाहरजी, दुधोडियाजी तथा गुईबाबू की धर्मशाला है। जल मन्दिर के सामने महताव बीबी का द्वितल मन्दिर और पुराने चरण स्थापित समवशरण मन्दिर है। गाँव मन्दिर की सडक पर जल मन्दिर के पास भव्य दादावाडी है जिसमे चारो दादा साहव की प्रतिमाएँ श्री उदयसागरजी द्वारा प्रतिष्ठित हुई है। जल मन्दिर से सडक के किनारे पर जिनयश सूरिजी महाराज का समाधि मन्दिर है जिसमे उनकी प्रतिमा विराजमान है। उन्होने ५३ उपवास करके पावापुरी मे ही स्वर्गगति प्राप्त की थी।

पावापुरी के सभी मन्दिर, दिगम्वर मन्दिर और धर्मशाला तथा सभी स्थान तीर्थ भण्डार की भूमि पर निर्मित है। जैन सघ द्वारा नाहरजी की दानशाला मे प्रतिवर्ष चावल, कम्वले आदि गरीबो को वाँटा जाता है। दीवाली के दिन गाव मन्दिर से भगवान की सवारी निकलती है।

पटना—यह प्राचीन पाटलीपुत्र नगर और बिहार प्रान्त की राजधानी है। यहाँ पर सुदर्शन सेठ के शील प्रभाव से शूली का सिंहासन हुआ था और कोशा वेश्या के यहाँ स्थूलिभद्र स्वामी का चातुर्मास हुआ था। गुलजार वाग मे ये दोनो मन्दिर बने हुए है। नगर मे जैन श्वे० मन्दिर और धर्मशाला है। महाराज कोणिक-अजातशत्रु के वाद राजा उदायी ने इसे मगध की राजधानी वनाया। अगदेश भी इसी के अन्तर्गत था। यहाँ १४ पूर्वधर भद्रवाहु स्वामी, वज्रस्वामी आदि अनेक महान् जैनाचार्यो ने विचरण किया है।

गुणायाजी—नवादा स्टेशन से पावापुरीजी जाते एक मील पर सडक के पास ही यह तीर्थ है। तालाव के वीच मे सुन्दर श्वेताम्वर जैन मन्दिर वना हुआ है। धर्मशाला मे से पुल द्वारा जाने का मार्ग है। मन्दिर मे प्राचीन चरण पादुकाएँ तथा प्रतिमाएँ हैं। यहाँ गौतम स्वामी को केवलज्ञान हुआ था।

क्षत्रियकुण्ड—नवादा से जमुई रोड पर सिकन्दरा गढ़ से दो मील पर लिछुआड नामक गाँव मे इस तीर्थ की तलहट्टिका रूप धर्मशाला व महावीर स्वामी का जिनालय है। यहाँ धर्मशाला मे ठहरने की सुविधा है तथा रसोडा-भोजनशाला भी चालू है। यहाँ से ३ मील जाने पर कुण्डघाट बाँध और नदी के दोनो ओर भगवान के दीक्षा व च्यवन कल्याणक के प्राचीन मन्दिर है। सात पहाडी का चढाव पार करने पर भगवान के जन्म स्थान का भव्य मन्दिर आता है जहाँ डेढ हजार वर्ष प्राचीन महावीर स्वामी की मनोज्ञ प्रतिमा है। लोधामानी जो यहाँ से दो मील है सिद्धार्थ राजा के महल के खण्डहर है जहाँ भगवान का जन्म हुआ था। क्षत्रियकुण्ड पहाड पर जीर्णोद्धार, कराके श्री कन्हैयालालजी वैद ने कमरे, स्नान घर और सुन्दर बगीचा बना दिया है।

काकन्दी—ये जमुइ से चार मील दूर प्राचीन गाँव है जहाँ नौवे तीर्थकर श्री सुविधिनाथजी की जन्म कल्याणक भूमि है। मन्दिर व धर्मशाला का जीर्णोद्धार हो रहा है। यहाँ स० १५०४ की प्रतिमा है। एक अति प्राचीन १८०० वर्ष प्राचीन प्रतिमा महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने देखी थी जो बहुत वर्ष पूर्व ही गायब हो गई थी। अनेक तीर्थमालाओ मे इस तीर्थ का उल्लेख है।

चम्पापुरी—यह वासुपूज्य भगवान के पच कल्याणक का महातीर्थ है। स्टेशन भागलपुर औः नाथनगर से निकट है। कोणिक ने अग-मगध की राजधानी कायम की थी। चम्पानाले के पास धर्मशाला मे दो मन्दिर व दादाजी का स्थान भी है। भगवान की निर्वाण भूमि मन्दारहिल बतायी जाती है जो यहाँ से ३० मील है, वहाँ दिगम्बर जैन मन्दिर भी है।

भागलपुर—लूप लाइन के स्टेशन के सामने ही जैन धर्मशाला मे दूगड परिवार का बनाकर जैन सघ को समर्पित किया हुआ जैन मन्दिर भी है। भागलपुर जैन सघ देख-देख रखता है। मिथिलानगरी नमिनाथ स्वामी एव मल्लिनाथ स्वामी की चार कल्याणक भूमि है। वहाँ की प्रतिमा व चरण पादुकाएँ लाकर भागलपुर मन्दिर मे रख देने से तीर्थ विच्छेद हो गया है। अब नेपाल की भूमि मे दिगम्बर समाज तीर्थ स्थापन कर रहा है। श्वेताम्बर समाज को भी तीर्थ स्थापन करना आवश्यक है। श्री जिनहर्षसूरिजी महाराज के प्रतिष्ठित मूर्ति चरणो के मिथिला तीर्थ मे प्रतिष्ठित करना आवश्यक है।

बराकड—यह गिरीडीह से सम्मेतशिखरजी के मार्ग मे भगवान महावीर स्वामी की केवलज्ञान भूमि है जहाँ धर्मशाला मे मन्दिर ऋजुबालुका (बराकड) नदी के तट पर बना हुआ है। दादा साहब के चरण भी प्रतिष्ठित है।

गिरीडीह—स्टेशन के सामने जैन धर्मशाला मे दुधोडिया परिवार द्वारा निर्माप्ति जिनालय है। अब धर्मशाला दूगड परिवार की निजी सम्पत्ति घोषित हो गई है।

सम्मेतशिखर महातीर्थ—पारसनाथ पहाडी नाम से प्रसिद्ध यह पवित्र स्थान २० तीर्थकरो की निर्वाण भूमि है। यहाँ से असख्य मुनि मोक्ष गये है। बीस तीर्थकरो की निर्वाण स्मृति मे प्राचीन काल से टूँके बनी हुई हैं जिनका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है। सर्वत्र प्रभु के चरण पादुके प्रतिष्ठित है। गौतमस्वामी की टूंक पहले आती है। जलमन्दिर नामक स्थान मे विशाल मन्दिर मे प्रभु प्रतिमाए हैं। जलमदिर को दो सौ वर्ष पूर्व अजीमगज के सामसुखा सुगालचद आदि ने बनवाया था जिनके द्वारा अजीमगज मे भी दादासाहब आदि के स्थान बने थे। मन्दिर की प्रतिमाएँ सामसुखा परिवार ने सूरत मे हुई प्रतिष्ठा के समय अजनशलाका करके मँगवाई थी। पार्श्वनाथ स्वामी की टोंक पर कलकत्ता के राय बद्रीदास बहादुर ने सौध शिखरी सर्वोच्च जिनालय निर्माण कराया था। अवशेष सभी टोंके तथा जलमन्दिरादि अभी स० २०१७ मे साध्वीजी रञ्जनश्रीजी के सदुपदेश से जीर्णोद्धारित हुए थे। सम्मेत

शिखरजी पर यात्री सघ सैकडो वर्षो से आता रहा है जिसमे खरतरगच्छ के जैनाचार्यं श्रीजिन वर्द्धनसूरिजी के पधारने का विवरण प्राचीन है और भी अनेक सघ आये। यह पहाड सम्राट अकवर द्वारा हीरविजयसूरिजी को दिए गए फरमानो से श्वेताम्बर समाज के अधिकार मे रहा है। वाद मे जगत सेठजी को भी फरमान मिले। उनकी माता माणक देवी के सघ का विशद वर्णन मिलता है।

पहले सघ पालगज आकर गिरिराज पर जाता था। पालगज राजा के सरक्षक साथ रहते थे। वहाँ जैनमन्दिर भी श्वेताम्बर-दिगम्वर सप्रदाय का सयुक्त बना हुआ है। जव पहाड को रायवद्रीदास वहादुर और मोतीचदजी नरवत आदि के प्रयत्नो से आनदजी कल्याणजी की पेढी ने क्रय कर लिया तव से श्वेताम्बर समाज की ही सपत्ति रही है। जमीदारी उन्मूलन द्वारा अधिकाश भूमि सरकार ने अधिगृहीत कर ली है।

मधुवन तलहटी मे श्वेताम्बर कोठी मे वहुत से मन्दिर है जिनमे कलकत्ता, अजीमगज, वीकानेर, मिर्जापुर आदि के सघ द्वारा निर्मापित मन्दिर है। कोठी के सामने तथा पृष्ठ भाग मे दादावाडी वनी हुई है। विशाल धर्मशाला के मध्य जिनालयो का समूह है। धर्मशाला के वाहर श्री भोमियाजी महाराज का अतिप्राचीन कलापूर्ण मन्दिर है। श्वेताम्बर यात्रीगण सदा से भोमियाजी महाराज के दर्शन करके ही गिरिराज की यात्रा प्रारभ करते थे। आज भी भोमियाजी महाराज की भक्ति मे श्वेताम्बर समाज अग्रगण्य है। अव धर्म मगल विद्यापीठ मे मन्दिर एव छात्रावास आदि इमारतें हो गई हैं। भोमियाजी भवन मे भी मदिर व भोजनशाला आदि निर्माणाधीन है। लगभग एकसौ दस वर्ष पर्यन्त कोठी का बही बट दूगड परिवार के हस्तगत रहा। अव सघ के ट्रस्टी चुने जाकर व्यवस्था करते है। दूगड जी से पूर्व पूरणचन्द्रजी गोलेछा तथा जगतसेठ के परिवार के साथ मुर्शिदावाद का सघ व्यवस्था करता था। तीर्थ को बचाने मे श्रीमणिसागरजी महाराज ने श्री गुलावचद जी ढढा आदि के साथ आकर ७५ वर्ष पूर्व अनुष्ठान द्वारा सफलता प्राप्त की थी। खरतरगच्छ के अनेक आचार्य, उपाध्याय, एव यति मुनियो द्वारा तीर्थ सेवा मे प्रशसनीय योगदान किया था।

कलकत्ता—यो तो बगाल का मुख्य धर्म ही जैनधर्म था। उसके बाद बौद्ध, वैष्णव आदि आये है। वगाल के पुराने अनेक स्थानो मे खण्डित अखडित जैन प्रतिमाएँ व भग्नावशेष जैनमन्दिर पाये जाते हैं पर वगाल मे आकर वसे हुए जैनो का इतिहास मुगल काल व व्रिटिश शासन के साथ-साथ कलकत्ता के विकास का इतिहास है।

कलकत्ता मे स० १८७१ माघ सुदी १० को स्वतन्त्र पचायती मन्दिर का निर्माण होकर खरतर गच्छ नायक श्री जिनहर्षसूरि जी द्वारा प्रतिष्ठित हुआ था। इत पूर्व दादावाडी (माणिकतल्ला) का निर्माण होकर १ स्थूलिभद्र स्वामी २ दादा जिनदत्तसूरि ३ दादा मणिधारी जिनचन्द्रसूरि ४ दादा जिनकुशल सूरिजी तथा ५ जिनभद्रसूरिजी के चरण प्रतिष्ठित हुए थे। दादावाडी के परिसर मे राय बद्रीदास जी के वगीचे मे शीतलनाथ स्वामी का विश्वविश्रुत जिनालय है जहाँ देश-विदेश के दर्शनार्थियो का मेला लगा रहता है। स० १९२४ मे यह निर्मित-प्रतिष्ठित हुआ था।

श्री महावीर स्वामी का जिनालय स० १९३६ मे वडा सगीन और विशाल बना हुआ है। श्री चन्दाप्रभु जी मन्दिर स० १९५२ मे श्री कपूरचन्द जी खारड ने वनवाकर श्री जिनरत्नसूरि जी द्वारा प्रतिष्ठित कराया था।

आदिनाथ जिनालय—कुमारसिंह हाल (४६ इण्डियन मीटरस्ट्रीट) मे सन् १९१९ प्रतिष्ठित है।

यहाँ स्फटिक रत्न की तीन विशाल जिन प्रतिमाएँ है। कुमारसिंह हाल मे गुलावकुमारी लायब्रेरी एव श्री पूरणचन्द्र जी नाहर का पुरातत्व सग्रहालय है। यहाँ सभाएँ तथा पर्युषण के व्याख्यान भी होते है।

मनमोहन पार्श्वनाथ जिनालय—यह भवानीपुर मे शिखरवद्ध विशाल जिनालय और पास ही तीन मजिल मे उपाश्रय साधु-साध्वियो के चातुर्मास और धर्मध्यान का उत्तम साधन है।

१० हसपोखरिया वर्द्धमान भवन मे शांतिनाथ देहरासर, ६,विटिल रसल स्ट्रीट मे हरखचन्द जी काकरिया का देहरासर, भवानीपुर के मेहता विल्डिंग पर तथा १८, हिन्दुस्तान रोड, वालीगज मे छोटूलाल जी सुराणा का पार्श्वनाथ चैत्यालय दर्शनीय हैं।

विहार प्रान्त मे रॉची, टाटानगर, फार्विशगज, प्रतापगंज मे तथा वगाल मे सैंथिया, खड्गपुर, लिलुआ मे जिनालय है। हुगली-चिन्सुरा मे कलकत्ता वसने से पूर्व जिनालय, दादावाडी व भैरुजी का मन्दिर था। अव दिगम्वर मन्दिर और अधिष्ठाता भैरुजी का मन्दिर पार्टिशन हटाकर धर्मशाला मे सलग्न है। दादावाडी गायव है, केवल खुली जमीन पडी है। वगाल की पुरानी वस्तियो दस्तूरहाट, जगीपुर, कासिम वाजार आदि अनेक स्थानो के मन्दिर उठ गये है। मुर्शिदावाद जिले के अजीमगज, जीयागज मे पर्याप्त वस्ती थी। अव अनेक लोग की कलकत्ता आदि मे आ गए है। यहाँ प्राचीन उपाश्रय, मन्दिर और समृद्ध जमीदारो, की राजवाडियाँ है। वहाँ के मन्दिरो का उल्लेख किया जाता है—

अजीमगंज—यहाँ १ नेमिनाथ का मन्दिर, खरतरगच्छ उपाश्रय के वगल मे है, ज्ञान भडार भी है। २ चिन्तामणि का मन्दिर ३ सुमतिनाथ जिनालय—यह सितावचन्दजी नाहर का निर्मापित है। ४ गौडी पार्श्वमन्दिर—धनपतसिंह जी दुगड का वनवाया हुआ है। ५ पद्मप्रभ जिनालय—खरतरगच्छीय प्रतापचन्द जी निर्मापित है। ६ सभवनाथ जिनालय नगर से दूर धनपतजी दुगड निर्मापित है। यहाँ की अधिकाश प्रतिमाएँ पालीताना भेज दी गई है। ७ शान्तिनाथ जिनालय—सुमेरचन्दजी वैद्य की धर्मपत्नी गुलावकुमारी वीवी निर्मापित है।

रामवाग मे दादावाडी मे जिनदत्त सूरिजी व जिनकुशल सूरिजी के चरण पादुके हैं। यहाँ कासिम वाजार से नेमिनाथ भगवान, जीयागज व जगीपुर से आये सहस्र फणा पार्श्वनाथ हैं, सावालिया पार्श्वनाथ व अप्टापदजी का मन्दिर भी है।

जीयागज—गगापार मे जीयागज व वालूचर वसा हुआ है। यहाँ जैन समाजकी कई सस्थाएँ है। (१) सभवनाथजी का पचायती मन्दिर—इसमे दादावाड़ी तथा पृष्ठ भाग मे खरतरगच्छ का उपाश्रय है। (२) विमलनाथ जिनालय—यह श्रीपतसिंह जी दूगड के पूर्वजो का निर्मापित है। सलग्न धर्मशाला, उपाश्रय, आयविलशाला व दादा साहव का मन्दिर भी है। (३) आदिनाथ मन्दिर—इसके वगल मे तपागच्छ का उपाश्रय है। (४) दादावाडी—कीरतवाग मे दादाजी का तथा भगवान का मन्दिर भी है।

जीयागज से ४ मील महिमापुर मे जगतसेठ जी का सुप्रसिद्ध कसौटी मन्दिर है। इसमे दादा साहव के चरण दो सौ वर्ष प्राचीन है।

काठगोला—यहाँ दूगड परिवार के सुप्रसिद्ध विशाल वगीचे मे जिनालय, दादावाडी एव दर्शनीय कोठी वनी हुई है। कूच विहार मे जिनालय व दादावाडी है।

उत्तर वगाल जो पहले पाकिस्तान और वाद मे वगलादेश हो गया, वहाँ रगपुर, माहीगज, नवावगज मे जिनालय व दादावाडी है। सिराजगज मे दादावाडी है। दिनाजपुर मे नाहर परिवार द्वारा वनाया जिनालय है।

आसाम प्रान्त मे १ गवालपाडा व २ तेजपुर मे पार्श्वनाथ जिनालय है। माणकाचर मे दादावाडी है तथा गोहाटी मे घर देहरासर रूप मे चरणादि है।

श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ, जयपुर

(एक परिचय)

जैन समाज की गतिविधियो का जयपुर एक प्रमुख केन्द्र रहा है। धार्मिक एवम् सामाजिक कार्यो के सचालन हेतु यहाँ कई सस्थाये कार्यरत हैं। इन सस्थाओ मे इस सस्था का प्रमुख स्थान है।

इस सघ को महान साधु-साध्वियो की भक्ति का लाभ हमेशा प्राप्त होता रहा है। परम पूज्य प्रवर्तिनी महोदया श्री सज्जनश्रीजी म० सा०, प्रधान पद विभूपिता श्री अविचलश्रीजी म० सा०, विनयमूर्ति श्री विनीताश्रीजी म० सा०, परम पूज्य श्री कमलाश्रीजी, दर्शनाचार्य श्री शशीप्रभाश्रीजी म० सा०, श्री-निर्मला श्रीजी म० सा० आदि ठाणा की भक्ति का लाभ काफी समय से सघ को प्राप्त हो रहा है!

सघ द्वारा समय-समय पर पूजन, साधर्मीवात्सल्य, दादा-मेला आदि का आयोजन किया जाता है।

सघ द्वारा सचालित विभिन्न कार्यो का सक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है —

१ श्री शिवजीराम भवन

इस भवन मे धार्मिक कार्यक्रमो के अलावा कई सामाजिक कार्यक्रम भी होते है। इस भवन का नवीनीकरण कराया जा रहा है। अब तक नई आयबिल शाला व बर्तन विभाग बनकर तैयार हो गये है। पूर्व मे जो छत पर टीनसेड था उसकी जगह पक्की छत का निर्माण हो चुका है। दूसरी मजिल पर एक भव्य व्याख्यान हाल के निर्माण की योजना है। भवन मे स्थाई भोजनशाला शुरू करने पर भी विचार चल रहा है ताकि बाहर से आने वाले जैन बधुओ को शुद्ध आहार का लाभ प्राप्त हो सके। यात्रियो के ठहरने के लिये नये कमरो का निर्माण कराया गया है।

२ श्री सुपार्श्वनाथजी का बडा मदिर

यह जिनमदिर जयपुर नगर के प्राचीन भव्य व अलभ्य कलाकृतियो का रूप तो है ही, साथ मे सघ का धार्मिक दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट स्थान है। इसके पास की 'नायला हवेली' सघ ने खरीद ली है और कब्जा भी ले लिया है। मदिर और नायला हाउस को मिलाकर मदिर के विस्तार की योजना विचाराधीन है। नायला हाऊस के धार्मिक व सामाजिक उपयोग हेतु निर्माण की रूप-रेखा तैयार की जा रही है।

३. श्री ऋषभदेवजी भगवान का मंदिर एवं दादावाडी—(मोहनवाड़ी) :

यह शहर का सर्वाधिक रमणीय स्थान बन गया है। वर्तमान में खूबसूरत लान व बगीचे के निर्माण हो जाने से यह लोगो के सामाजिक कार्यो का प्रमुख केन्द्र है। इसमे नवनिर्मित 'श्री विचक्षण समाधि' अपने आप मे एक आकर्षण है, जहाँ शहर व बाहर के दर्शनार्थी अपूर्व आनन्द का लाभ लेते है। भविष्य मे मोहनवाड़ी को और भी आकर्षक बनाने की कई योजनाये विचाराधीन हैं।

४ श्री चंदाप्रभुजी का मंदिर एवम् दादावाडी, आमेर

जयपुर की पुरानी राजधानी मे स्थित श्री चदाप्रभुजी का भव्य मंदिर व दादावाड़ी है। मंदिर की मूर्ति अत्यन्त ही मनोरम व आकर्षक है। कहते हैं, पूरे भारत मे श्री चन्दाप्रभु भगवान की ऐसी सुन्दर छवि की मूर्ति कही नही है। मंदिरजी मे जीर्णोद्धार कार्य का लाभ एक सधर्मी भाई ले रहे है जिससे प्राचीन मंदिर मे और चार चाँद लग जावेंगे।

५ श्री सांगानेर मंदिरजी व दादावाड़ी :

सांगानेर मंदिरजी के अन्दर का कार्य पूरा हो चुका है। यह मंदिर भी प्राचीन मंदिरो मे से एक भव्य मंदिर है और यहाँ की कला भी काफी आकर्षक है।

सांगानेर दादावाडी मे छतरियो के जीर्णोद्धार कार्य हो जाने से पुरानी भव्यता पुन लौट आई है। दादावाडी मे एक सुन्दर बगीचा भी विकसित किया जा रहा है।

६ श्री चाक्सू मंदिरजी

यह भी एक प्राचीन मंदिर है और यहाँ सालाना पूजा का आयोजन किया जाता है।

७ श्री आदीश्वर भगवान का मंदिर (नथमलजी का कटला)

यह शहर के पास है और इसका आवश्यक जीर्णोद्धार करवाया गया है। परमपूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० के दीक्षा के समय इस मंदिर की प्रतिष्ठा हुई थी और उनके परिवार के सदस्य श्रीमान कल्याणमलजी गोलेच्छा ने इस मंदिर को श्री खरतरगच्छ संघ को भेंट दे दिया था। इस सम्बन्ध मे पूज्य म० सा० का पूर्ण योगदान रहा। इसी वर्ष कुछ नवीन मूर्तियो की प्रतिष्ठा व दादा गुरु-देव के चरण स्थापित किये गये हैं।

८ श्री महावीर भगवान का मंदिर—(टोंक फाटक) .

यहाँ शहर के बाहर बसे कोलोनियो के लोगो के दर्शन व पूजा करने वालो की संख्या मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। मंदिर के नवीनीकरण की योजना विचाराधीन है।

९ श्री विचक्षण विद्या विहार—छात्रावास

यह टोंक फाटक पर स्थित है। विभिन्न जगहो के समाज के छात्रो के यहाँ रहने का प्रबंध है। छात्रो को विद्याध्ययन के अलावा शुद्ध भोजन व धार्मिक प्रवृति का यहाँ लाभ प्राप्त होता है।

१० महिला विभाग

यह विभाग आयविलशाला व उपाश्रय की व्यवस्था मे कार्यरत है। आयविलशाला का नवीनीकरण हो चुका है। आयविलशाला नियमित रूप से प्रगति कर रही है।

११ श्री विचक्षण स्मृति भवन

इसका निर्माण जोरो से चल रहा है। नीचे की मंजिल व तहखाने का कार्य पूरा हो चुका है।

भवन पुरा होने पर यह जयपुर की भव्य इमारतो मे से एक होगा और जनसाधारण के उपयोग मे आवेगा।

१२ मालपुरा दादावाडी—मालपुरा

यह मालपुरा मे स्थित चमत्कारिक स्थान है। दादा गुरुदेव के दर्शन हेतु समस्त भारत के लोग यहाँ आते हैं। यहाँ आवास व भोजन की समुचित व्यवस्था है।

देहली वाले सेठ श्री अमृतलालजी की तरफ से एक वगीचे की व्यवस्था की जा रही है जो इस स्थान की शोभा बढाने के अलावा पूजा हेतु फूल भी उपलब्ध कराता है। दादा गुरुदेव की छतरी के नवीनीकरण व दादावाडी के विस्तार की योजना विचाराधीन है।

१३ श्री खोह मदिर जी

जयपुर के पास खोह गाँव मे स्थित यह प्राचीन मदिर है। इसके जीर्णोद्धार की योजना विचाराधीन है।

१४ श्री बालचद फूलचद धूपिया जैन श्वेताम्बर धर्मशाला

वर्तमान मे यहाँ एक धर्मादा चिकित्सालय सेवा प्रेमी बधुओ की तरफ से चल रहा है।

१५ श्री ज्ञान भण्डार

श्री ज्ञान-भण्डार मे दुर्लभ ग्रन्थ व पुस्तके उपलब्ध हैं, जिसका लाभ साधु-साध्वियो के अलावा समाज को भी प्राप्त होता है।

परम श्रद्धेय श्री सज्जनश्रीजी म० सा० व पूज्य श्री शशीप्रभाश्रीजी म० सा० के अथक प्रयास से इसको नवीन स्वरूप प्रदान किया जा रहा है।

१६ वर्तन भण्डार

सामाजिक व धार्मिक कार्यो के उपयोग हेतु सभी प्रकार के वर्तन व अन्य सामान की व्यवस्था है। धार्मिक सस्थाओ को बर्तन वगैरा नि शुल्क दिये जाते है। इन वर्षो मे काफी नये वर्तन खरीदकर इसको और उपयोगी बनाया गया है।

१७ साधर्मी भक्ति

समय-समय पर बाहर से आने वाले दर्शनार्थियो के आवास व भोजन की व्यवस्था सघ द्वारा सुचारु रूप से की जाती है। ☐

सज्जनवाणी

१ ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले व्यक्तियो की देवता भी सहायता करते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत के प्रभाव से सभी प्रकार की आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं, उन पर आये हुए सकट क्षणमात्र मे दूर हो जाते है।

२ अपरिग्रह व्रत-धारी जगत मे परम पूज्य पद प्राप्त करते हैं। बडे-वडे शक्तिशाली सम्राट उनके चरणो मे झुकते है। और वह सदा निर्भय रहता है।

३ सत्य जव व्यवहार मे आता है तभी उससे स्वय का और सम्पर्क मे आने वालो का कल्याण होता है।

४ कामना और सकल्प मे वडा भारी अन्तर है। कामनाओ से केवल अशान्ति वढती है, भौतिक वस्तुओ की प्राप्ति की इच्छा को कामना कहते हैं। कामनाओ का त्याग किये विना अध्यात्म साधना नही हो सकती। ☐

प्रवर्तिनी सिंहश्रीजी म० के साध्वी-समुदाय का परिचय

☐ *साध्वी हेमप्रभाश्रीजी*

जैन धर्म परम्परा मे—मोक्ष की राह पर चलने का नारी व पुरुष को समान अधिकार है। आत्मसमानता के सगायक भगवान महावीर ने साधना के क्षेत्र मे जाति भेद, वर्ण भेद और रग भेद आदि को कभी नही स्वीकारा। उनका सदा उद्घोष रहा कि साधना करने का, आत्मविकास करने का, मुक्ति प्राप्त करने का सबको समान अधिकार है। आत्म-प्रधान दर्शनो मे परस्पर विभेद रेखायें हो ही नही सकती। जो अनन्त-गुण- युक्त आत्मज्योति पुरुष मे है वैसी ही आत्मज्योति नारी मे है। अत- साधना के क्षेत्र मे पुरुष नारी का कोई भेद नही। यही कारण है कि चतुर्विध सघ की स्थापना मे साधु के साथ साध्वी और श्रावक के साथ श्राविका को भी उन्होने समान स्थान दिया। नेतृत्व की दृष्टि से यद्यपि साध्वियाँ पीछे है। सामान्य स्थिति मे सघ का नेतृत्व कभी उनके हाथो नही आया, तथापि सयम-साधना, शासन-प्रभावना, विद्वत्ता आदि की दृष्टि से सघ में उनका स्थान गौरवपूर्ण रहा, और है। साहस व सकल्प की दृष्टि से देखा जाय तब तो कभी-कभी नारी-पुरुष की प्रेरणा बनने का दिव्य और भव्य सौभाग्य प्राप्त कर चुकी है। ब्राह्मी, सुन्दरी, राजीमती, याकिनी महत्तरा, नागिला आदि इसके अनुपम उदाहरण है। उन्होने अपनी राह मे डगमगाते साधको को स्थिर ही नही किया, उन्होने महान् त्यागी व सयमी बनाकर मुक्ति का पथिक बनाया। इतना ही नही, साधकों की सयम-रक्षा-हेतु उन्होने अपने जीवन का उत्सर्ग तक कर दिया। साध्वी बन्धुमती, इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

भगवान महावीर के समय मे विद्यमान साध्वी प्रमुखा आर्या चन्दनबालाजी से लेकर साध्वियों की यह गौरवपूर्ण परम्परा आज तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। इस परम्परा मे कई सयमी, तपस्वी, विदुषी, कवयित्री एव लेखिका आर्यायें हुई और वर्तमान मे हैं, जिनकी गौरवगाथा प्रकाशस्तम्भ की तरह आज भी मानव-जाति का दिशा-निर्देश करती हैं।

इस परम्परा मे खरतरगच्छीय साध्वी मडल सयमनिष्ठा, विद्वत्ता, वक्तृत्व, लेखन आदि की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। आज भी इस परम्परा मे, कम सख्या मे होते हुए भी, उच्चकोटि की सयम-साधिकाये वक्ता, कवयित्री, लेखिका आदि बडी विदुषी साध्वियाँ हैं, जो आत्म-साधना करती हुई अपने ज्ञान एव प्रतिभा के द्वारा जन-जन तक भगवान महावीर का दिव्य सन्देश पहुँचा रही हैं।

समय के प्रवाह के साथ यह परम्परा कई शाखा-उपशाखाओं से समृद्ध बनी। प० पू० खरतर-

गच्छाधिपति सुखसागरजी म के समुदाय मे वर्तमान में साध्वियो की दो समृद्ध परम्परायें हैं जो पुण्य-मण्डल और शिवमण्डल के नाम से प्रसिद्ध हैं। पुण्य-मण्डल की प्रमुखा हैं, पुण्यश्लोका पुण्यश्रीजी म० सा० एव शिवमण्डल की नेत्री है, प० पू० स्वनामधन्या सयममूर्ति शिवश्रीजी म० सा०। दोनो का मूल एक ही है, दोनो ही प० पू० लक्ष्मीश्रीजी म० सा० की शिष्यायें हैं।

शिष्या-प्रशिष्या का परिवार बढने के साथ स्वाभाविक है कि दो गुरुवहिनो का विहार-प्रचार इत्यादि अलग-अलग दिशा मे हो जाता है, किन्तु एक बात समझ नही आती कि ऐसी क्या आवश्यकता हुई, ऐसी कौन सी परिस्थितियाँ बनी कि सर्वोपरि अनुशासन एक होते हुए भी प्रवर्तिनी की व्यवस्था अलग-अलग की गई। प० पू० लक्ष्मीश्रीजी म० जैसी सयमनिष्ठ, जिनाज्ञासमर्पित गुरुवर्या के नेतृत्व मे फलने-फूलने वाला अनुशासनप्रिय साध्वी-मण्डल मे दो प्रवर्तिनियो की आवश्यकता किस कारण हुई, एकता के बँधे हुए साध्वी-मण्डल ने कालान्तर मे अलगाव पैदा करने वाले इस निमित्त को क्यो स्वीकार किया। व्यवस्था और अनुशासन की दृष्टि से भी दो प्रवर्तिनी वाली बात का यहाँ कोई औचित्य नही लगता। कारण साध्वियो की सख्या इतनी अधिक थी ही नही।

वर्तमान साध्वी-समुदाय का मूल

प० पू० लक्ष्मी स्वरूपा
लक्ष्मी श्रीजी म. सा.

लक्ष्मीश्रीजी म० सा० वास्तव मे गच्छ के लिए लक्ष्मीस्वरूपा सिद्ध हुईं। आपकी परमकृपा का सुपरिणाम है कि आज दोनो मण्डल सुयोग्य साध्वियो से समृद्ध है। आप फलौदी निवासी जीतमलजी गुलेछा की सुपुत्री थी। आपकी शादी उस समय के रिवाज के अनुसार छोटी उम्र मे ही श्रावक परिवार मे हुई। जिनका जीवन मुक्त होने के लिए निर्मित हुआ वह कब बन्धन-बद्ध रह सकती थी। कुछ समय बाद ही अचानक आपके पति की मृत्यु हो गई। छोटी उम्र, धर्मरुचि, पारिवारिक सुविधा ने आपको सत्सग से जोड दिया। प० पू० खरतरगणाधीश सुखसागरजी म० सा० के त्याग, वैराग्यपूर्ण प्रवचन एव प० पू० गुरुवर्या श्री उद्योतश्रीजी म० सा० की सत्प्रेरणा से आप विरक्ता बनी और वि० स० १९२४ की मिगसर वदी १० को दीक्षा ग्रहण की। पू० गुरुदेव एव गुरुवर्याश्री की निश्रा मे शास्त्राध्ययन कर आपने विद्वत्ता प्राप्त की थी। आप विदुषी होने के साथ प्रखरव्याख्यात्री, तपस्विनी, सयम एव प्रभावशालिनी थी। आपकी दो शिष्याये थी १ प० पू० मगनश्री जी म० सा० २ शिवश्रीजी म० सा०। खरतरगच्छ मे शिवमण्डल के नाम से प्रसिद्ध साध्वी मण्डल आपकी ही परम्परा मे है।

आदर्श त्यागप्रतिमा प० पू०
सिंहश्रीजी म०सा०

आपका नाम शिवश्रीजी और सिंहश्रीजी दोनो मिलते है। आपके लिये दोनो ही नाम सार्थक हैं। आपका जीवन मोक्ष (शिव) की प्राप्ति के साधनभूत ज्ञान और क्रिया वस्तुत' उनके जीवन की अनुपम 'श्री' थे। साहस सिंह से कम नही था। अत सिंहश्रीजी भी नाम सार्थक है। आपका जन्म वि स १९१२ मे फलोदी मे हुआ था। पिता का नाम लालचन्द्रजी और माता अमोलक देवी थी। अमोलक देवी की कुक्षि से यह अमोलक रत्न १९१२ मे पैदा हुआ था। आपका नाम शेरू था। तभी तो छोटी उम्र मे आये वैधव्य

देवीतुल्या देवश्रीजी म. सा.

वास्तव मे आप देवीस्वरूपा थी। प्रकृति से गम्भीर, शान्त एव शुचिमना थी। आपका जन्म वि स १९२८ चै शु " को फलोदी मे हुआ था। वैधव्य के पश्चात् पू० गुरुवर्या सिंहश्रीजी म सा के सान्निध्य मे दीक्षा ग्रहण की। आप उच्चकोटि की विद्वत्ता तो नही प्राप्त कर सकी, परन्तु विनय एव सेवा के क्षेत्र मे अग्रगण्य रही। गुरु एव गुरुबहिनो के प्रति आपका जो सेवा-शुश्रूषा एव स्नेह भाव था, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। अपनी गुरुबहिनो का कार्य स्वय करके उन्हे अध्ययन का अवसर देना आपकी महानता का परिचायक है। जहाँ पारस्परिक प्रतिस्पर्धा होना स्वाभाविक है, वहाँ गुरुवहिनो को आगे बढाने मे प्रेमपूर्वक सहयोग करना, आपकी महान् विशिष्टता है। स्नेह के साथ आप मे अनुशासन की कुशलता भी थी। स्नेह और अनुशासन, एक अच्छी सरक्षिका के दोनो ही गुण आपमे मौजूद थे। आपके इन्ही सद्गुणो को देखकर वि स १९९७ माघ बदी १३ को प्रवर्तिनी पद से विभूषित किया गया।

आप १०-११ शिष्याओ के गुरुपद को सुशोभित करती थी। आपकी शिष्याओ मे प पू. विदुषी-रत्ना बा ब्र हीराश्रीजी म० सा० "यथानामा तथागुणा" ही थी। आपका स्वर्गवास वि स २०१० भादवा बदी १३ को फलोदी मे हुआ।

आदर्श प्रेम-प्रतिमा प पू. प्र श्री प्रेमश्रीजी म. सा.

आपश्री का व्यक्तित्व असीम था। उसे शब्दो की सीमा मे बाँधना कठिन है। जिसका जीवन प्रेम-स्वरूप हो, जिसके हृदय मे स्नेह का अजस्र झरना बहता हो, जिसका अन्तर् और बाह्य प्रेम मे पगा हो, उस व्यक्तित्व को शब्दो के चौखटे मे नही ढाला जा सकता। मात्र उसका अनुभव ही किया जा सकता है। आपके सान्निध्य मे रहने का सौभाग्य यद्यपि बहुत ही छोटी उम्र मे मिला था, तथापि उनके जीवन की कुछ स्मृतियाँ हृदय मे यथावत् अकित हैं।

पूज्यवर्या का जन्म फलोदी मे छाजेड कुलदीपक किशनलालजी एव अ० सौ० लाभूदेवी की रत्न-कुक्षि से वि० स० १९३८ की शरद-पूर्णिमा को हुआ था। एक चाँद आकश मे चमक रहा था तो दूसरा दुनियाँ को प्रकाश देने धरती पर अवतीर्ण हुआ था। आपका नाम धूलि रखा। मानो रत्नधूलि मे ही पकते हैं। धर्मसस्कारो मे पली योग्य शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न 'धूलि' को १३ वर्ष की उम्र मे, अईदानजी गुलेछा के साथ, विवाहसूत्र मे बाँध दिया। किन्तु कुदरत को कुछ और ही मजूर था। राग तोडने के लिये जन्मी धूलि, राग का पोपण कैसे कर सकती थी ? जिसका जीवन सर्वजनहिताय एव सर्वजनसुखाय था। वह एक से बँधकर कैसे रह मकती थी जिसका जीवन मुक्ति की साधना के लिये था, वह ससार के कीचड मे कैसे फँस मकती थी। शादी को साल भर पूरा न हुआ, पति की मृत्यु हो गई, दुख होना स्वाभाविक था, किन्तु भगवान् ने कहा है—'अज्ञान खलु महाकष्टम्।" दुख का कारण जीव का अपना अज्ञान हे। ज्योही अज्ञान का अन्धेरा दूर होता है सुख का सवेरा स्वत हो जाता है। भगवान का यह कथन सत्य है यथार्थ है। तपे हुए लोहे पर की गई चोट उसे वाछित आकार मे वदल देती है। आवश्यकता हे विवेकपूर्वक ढालने की।

उस समय धूलिवाई एक दुधमुही वाला थी। कुछ आत्मायें वय से छोटी, किन्तु ज्ञान से परिपक्व होती हैं, जरा-सा निमित्त पाकर उनके अज्ञान की झिल्ली टक-टूक हो जाती है। पू गुरुवर्या विशुद्ध

दस्युदल नजदीक आता जा रहा था। पर यह समूह बेखबर ध्यान लीन था। एक ही सकल्प था कि उपसर्ग होगा तो मृत्यु का वरण करेंगे। उपद्रव शान्त हो जायगा तो सयम की साधना करते हुए शासन-प्रभावना करेंगे। किन्तु यह क्या ? साध्वी-मडल के नजदीक आकार डाकू दल अन्धो की तरह भ्रमित हो गया। आगे की राह ही नही सूझ पाई। आखिर दिशा बदलनी पडी। पुन वही नीरवता छा गयी। साध्वीमडल ने आँख खोली, सुदूर-सुदूर क्षितिज पर लौटते हुए डाकुओ की धूल उडती दिखाई दी। सयम-शील की विजय से आर्या-मण्डल की आँखें चमक उठी और वे वीरागनाएँ पुन नमस्कार मन्त्र का ध्यान करती हुई अपनी राह पर चल पडी।

ध्यानावस्था मे कभी-कभी आपको भावी घटनाओ का पूर्वाभास हो जाता था। आपने कई घटनाओ का पहिले से सकेत किया था और वे सत्य निकली थी। आपने अपनी मृत्यु का भी ३ माह पूर्व सकेत दे दिया था। जघाबल क्षीण होने की स्थिति मे आप १५ साल फलोदी मे स्थानापन्न रही।

वि० स० २०१० की भादवा शु० १५ को अनिच्छा से आपको प्रवर्तिनी पद से विभूषित किया गया। अपने पूर्व सकेतानुसार आ० कृ० १३ को मानो वस्त्र परिवर्तन कर रही हो, इस तरह पूर्ण तैयारी-पूर्वक हँसते-हँसते मृत्यु का वरण किया। आपने गच्छ व शासन को १७ विदुषी, विशुद्धसयमी, शासन-प्रभाविका, प्रखर व्याख्यात्री शिष्याओ की अपूर्व भेंट दी। जिनके द्वारा की गई शासन सेवा एव वर्तमान मे २५ प्रशिष्याओ द्वारा हो रही शासनसेवा के लिये गच्छ को बडा गौरव है। आपके यशश्रीजी म, शान्तिश्रीजी म, क्षमाश्रीजी म०, अनुभवश्रीजी म०, शुभश्रीजी म०, तेजश्रीजी म० आदि अनेक शिष्यायें हुईं। वर्तमान मे साध्वीश्री विनोदश्रीजी म०, प्रियदर्शनाश्रीजी म०, विकासश्रीजी म०, हेमप्रभाश्रीजी, सुलोचनाश्रीजी म० आदि विचरण कर रहे हैं।

प. पू सौजन्यमूर्ति ज्ञानश्रीजी म. सा.

आप लोहावट निवासी पारख गोत्रीय मुकनचन्दजी एव कस्तूरदेवी की सुपुत्री थी। आपका जन्म वि० स० १९२८ की श्रावण शुक्ला ३ को हुआ था। आपका नाम जडाव था। वास्तव मे आपका जीवन सुसंस्कार एव सद्गुणो से जडा हुआ था। आपका विवाह लोहावट मे ही लक्ष्मीचन्द जी सा० चौपडा के साथ हुआ। किंतु काल ने १२ वर्ष की अल्प अवधि मे ही सस्कारी युगल को वियुक्त कर दिया। जडावबाई विधवा हो गई। जिस हृदय मे वास्तव मे धर्म रमा है, वहाँ कर्म आते तो है किंतु प्रभाव नही जमा सकते। दुख आता है किंतु विकल नही कर सकता। प्रत्युत प्रेरक बनता है। जडाववाई का भी यही हाल था। पतिवियोग की व्यथा उनकी आत्मोन्नति मे प्रेरक बनी। इसे सफल बनाने का काम किया पू श्रीसिंहश्रीजी म० के सदुपदेशो ने। ५ वर्ष के अथक प्रयास से आखिर सफलता मिली और वि० स० १९६१ की मार्गशीर्ष शुक्ला पचमी के दिन दीक्षा ग्रहण की। ज्ञानश्रीजी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। बडी उम्र मे दीक्षा लेकर भी आपकी पढने की रुचि अद्वितीय थी। यही कारण है कि आपने बडी उम्र मे अच्छा अध्ययन किया। आपकी ज्ञानरुचि ने ही लोहावट फलोदी आदि मे कन्या पाठशाला खुलवाई। आपके उपदेश से खीचन, जैसलमेर का सघ निकला। वल्लभश्री श्री जी म जैसी महान् साध्वी-रत्न आपकी ही देन है। धर्मशालाओ का निर्माण हुआ। १९९६ वै० सु० १३ को फलोदी मे आप समाधिपूर्वक दिवगत हुईं। आप १३ सुयोग्य शिष्याओ की गुरुणी थी। प पू शासन दीपिका मनोहर श्रीजी म० सा० आपकी ही प्रशिष्या है।

प. पू. जन-मन वल्लभा श्री वल्लभश्रीजी म० सा०

विद्वत्ता के साथ सरलता एव नम्रता से वल्लभ वास्तव मे सबकी वल्लभ थी। आपका जन्म लोहावट मे पारख गोत्रीय सूरजमलजी की धर्मपत्नी श्रीमती गोगादेवी की कुक्षि से वि० स० १६५१ पौष कृष्णा ७ को हुआ था। १० वर्ष की उम्र मे ही भुवाजी (ज्ञानश्रीजी म) द्वारा प्रदत्त सस्कार प पू गुरुवर्या श्री सिहश्रीजी म के प्रभावशाली, वैराग्यमय प्रवचनो से अकुरित हुए। भुवाजी के साथ दीक्षा लेने का सकल्प कर लिया। व्यक्ति सघर्ष करता है। किंतु ममता के साथ सघर्ष करना कठिन ही नही अति कठिन है।१० वर्ष की उम्र मे उन्हे कडा सघर्ष करना पडा, किंतु जहाँ सकल्प है, वहाँ सिद्धि है। आखिर भुवाजी के साथ ही १६६१ मार्गशीर्ष शुक्ला ५ को महान तपस्वी छगनसागर जी म० सा० के कर-कमलो से दीक्षित हो भुआ-भतीजी की यह अलबेली जोडी पू० गुरुवर्या सिहश्रीजी म सा का शिष्यत्व स्वीकार कर कृतार्थ बनी। छोटी उम्र, तीक्ष्ण बुद्धि, दृढ लगन, अध्ययन रुचि से आप थोडे वर्षो मे ही महान् विदुषी बन गईं। पू गुरुवर्या का सान्निध्य तो आपको ४ वर्ष ही मिला, किंतु गुरुबहने विशेषकर प पू. प्रवर्तिनी जी प्रेमश्रीजी म० सा० की आप सर्वाधिक कृपा-पात्र रही। यों विनय, सेवाभाव, सरलता के कारण आप सभी की प्रेम पात्र थी। १० वर्ष तक आप गुरुवहिनो के साथ विचरण करती रही। तत्पश्चात् अपनी परमोपकारिणी ज्ञानश्रीजी म० के साथ सुदूर प्रदेशो मे भ्रमण किया। शास्त्रो का गम्भीर अध्ययन, प्रभावी-प्रवचन शैली से राजा-महाराजा एव ठाकुरो ने प्रभावित होकर अहिसक जीवन स्वीकार किया था। प पू प्रेमश्रीजी म सा के दिवगत होने के पश्चात् उनकी परम कृपा-पात्र आपको छोटी सादडी मे वि० स० २०१० शरदपूर्णिमा को भव्य समारोह के साथ शिव-मण्डल का नेतृत्व रूप प्रवर्तिनी पद से विभूषित किया। आपके हाथो शासन-प्रभावना के अनेको कार्य हुए। अत मे जघावल क्षीण होने पर अमलनेर महाराष्ट्र मे ६ साल स्थानापन्न रही। असाता के उदय मे आपकी समता गजब की थी। तन वेदनाग्रस्त होता, किंतु मन प्रभु मे मस्त रहता। आप वि० स० २०१८ फा० सु० १४ को समाधिपूर्वक स्वर्ग सिधारी। आपके विशाल शिष्या-प्रशिष्या परिवार मे कई साध्वियाँ बडी विदुषी, अच्छी व्याख्यात्री, लेखिका एव कवयित्री हैं। आपश्री ने करीब २० पुस्तको का लेखन सपादन व प्रकाशन करवाया था। वर्तमान मे शिव मडल का नेतृत्व आपकी शिष्या प्रवर्तिनी श्री जिनसूरिजी म कर रहे है। उनका परिचय इस प्रकार है—

प. पू वर्तमान प्रवर्तिनीजीश्री जिनश्रीजी म. सा.

आप वर्तमान मे शिव-मडल के प्रवर्तिनी पद पर प्रतिष्ठित प० पू० प्र० श्री वल्लभश्रीजी म० सा० की प्रधान शिष्या है। आपका जन्म वि० स० १६५७ आश्विन शु० ८ को तिवरी (राज०) मे हुआ था। आपके पिता श्री लादुराम जी बुरड एव मातुश्री घूडी देवी थी। आपका नाम 'जेठीबाई' था। १४ वर्ष की उम्र मे आपका विवाह राजमलजी श्रीमाल के साथ हुआ था किन्तु डेढ वर्ष के बाद ही आप विधवा हो गईं। कभी-कभी दुख सुख के लिए होता है। अन्धकार मे प्रकाश की किरण चमक जाती है। वि० स० १६७६ मे प० पू० ज्ञानश्रीजी प० पू० वल्लभश्रीजी म० तिवरी पधारी। आप भी गुरुवर्याओ के दर्शनार्थ गईं। कुछ ही क्षणो के ससर्ग ने जेठीबाई की चेतना को जगाया। गुरुवर्या श्री तो दूसरे दिन जोधपुर की ओर विहार कर गईं किन्तु जेठीबाई के दिल मे हलचल बढती गई। उनके ही पुण्य से खिंची पू० गुरुवर्या का वह चातुर्मास तिवरी मे ही हो गया। जेठीबाई की मनोकामना सफल बनी। पू० गुरुवर्या

के सान्निध्य से उन्होने अध्ययन के साथ-साथ अपने आत्मबल एव वैराग्य-भावना को दृढ बनाया। चातुर्मास बाद वि० स० १९७६ मि० सु० ५ को दीक्षा ग्रहण कर पू० वल्लभश्रीजी म० सा० की प्रधान शिष्या बनी। अध्ययन के साथ आप सामुदायिक विचार-विमर्श, देखभाल आदि का उत्तरदायित्व निभाने मे अपनी गुरुवर्या का पूर्ण सहयोग करने लगी। आपकी सूझ-बूझ इतनी विवेकपूर्ण थी कि विगडती बात बना लेती थी। पूज्या प्रवर्तिनी जी के पास आपका पद सदा 'मन्त्री' जैसा ही रहा। गुरुसेवा आपके जीवन का सर्वस्व था। शिष्य का विनय, गुरु के वात्सल्य को खीचता है। जहा ये दोनो होते हैं, वहाँ आनन्द का पूछना ही क्या ? आपने अपने समूचे अस्तित्व को गुरु मे विलीन कर दिया था। उनकी अपनी इच्छा, भावना कुछ भी नही है, सब कुछ गुरु समर्पित है। आप उन शिष्यो मे थी, जो गुरुहृदय मे वसकर 'धन्यतम' की कोटि मे आते हैं। इसी के परिणामस्वरूप प० पू० प्रमोदश्रीजी म सा के स्वर्गवास के वाद शिव-समुदाय का सचालन आपके हाथो सौपा गया। आज आपकी उम्र ८८ वर्ष की है फिर भी अपने उत्तरदायित्व को वडी कुशलता के साथ निभा रही है। आपकी दीर्घायु की कामना के साथ शासन देव से प्रार्थना है कि आपके सफल नेतृत्व मे, समुदाय अधिकाधिक रत्नत्रय की आराधना करती, शासन प्रभावना करती हुई समृद्ध बने।

वर्तमान मे विचरण कर रही साध्वी श्री कुसुमश्रीजी म०, निपुणश्रीजी म०, कमलप्रभाश्रीजी म० आदि प्रवर्तिनी श्री वल्लभश्रीजी म० सा० की ही विदुषी शिष्यायें हैं।

प. पू प्रवर्तिनीजी विमलश्रीजी म० सा०

आपका जन्म स्थान एव समय उपलब्ध न हो सका। आप शिवश्रीजी म०सा० की शिष्या थी। आपका सबसे वडा योगदान है प पू प्र श्रीप्रमोद श्रीजी म०सा० जैसे व्यक्तित्व का निर्माण करना। पू शिवश्रीजी म०सा० तो मातापुत्री (पू० जयवन्तश्रीजी म, प्रमोदश्रीजी म) को दीक्षा देकर उनकी शिक्षा-दीक्षा का सारा उत्तरदायित्व पू विमलश्रीजी म को सौपकर अजमेर पधार गई थी। करीब ११ महिनो बाद आपका स्वर्गवास भी हो गया था। अत बालसाध्वीजी प्रमोदश्रीजी, विचक्षण बुद्धि और विलक्षण प्रतिभा को सफल बनाने का सारा उत्तरदायित्व आप पर ही था। आपने उसको बखूबी निभाया और एक तेजस्वी व्यक्तित्व का निर्माण कर शासन की अपूर्व सेवा की। आपका यह योगदान सदा अविस्मरणीय रहेगा।

प पू प्रवर्तिनीजी प्रमोदश्रीजी म० सा०

जहाँ पधारती वहाँ का कण कण प्रमुदित हो जाता। धरती का कण-कण प्रमोद मधुर बन जाता। शारीरिक सौन्दर्य से वाह्य-व्यक्तित्व एव ज्ञान की आभा से आपका आन्तरिक व्यक्तित्व देदीप्यमान था। आप फलोदी मे सूरजमलजी गुलेछा की सद्धर्मपरायण पत्नी जेठी देवी की कुक्षि से वि स १९५५, कार्तिक शु ५ को जन्मी थी। आपका नाम लक्ष्मी था। वास्तव मे आप रुवरूप एव गुण से लक्ष्मी ही थी। ज्ञानपचमी को जन्मी लक्ष्मी शायद ज्ञान साधना के लिए ही न अवतरित हुई हो। युवावस्था मे ही पति की मृत्यु हो जाने मे लक्ष्मी की माता का झुकाव धर्म की ओर वढने लगा। प पू गुरुवर्या श्रीसिंह श्रीजी म०सा० के सम्पर्क ने उनमे एक नई चेतना, नई-स्फूर्ति और नया जीवन जीने की तीव्र आकाक्षा पैदा कर दी। राग के स्थान पर उनके मन मे वैराग्य घोल दिया। इधर लक्ष्मी की सगाई ढाँई साल की उम्र मे ही, सपन्न ढढ्ढा परिवार के सपूत श्रीलालचन्दजी से कर दी गई थी। जैसे-जैसे बडी होती गई, माता के साथ उसका भी गुरुवर्या से सम्पर्क वढता गया। ९ वर्ष की उम्र होते-होते तो पूर्वजन्म के सस्कार

एवं वर्तमान के वातावरण के कारण लक्ष्मी पूर्ण विरक्ता बन गईं। बुद्धि इतनी तीव्र थी कि एक बार सुन लिया सदा के लिए हृदयगम हो गया। प्रतिभा इतनी प्रखर कि कैसा भी प्रश्न क्यो न हो, तुरन्त जवाब तैयार, साहस इतना कि बडो-बडो को बेहिचक जवाब दे देती। माता से अधिक जल्दी थी उन्हे दीक्षा ग्रहण की। दादाजी, नानाजी एव श्वसुरपक्ष तीनो की ममता का केन्द्र लक्ष्मी के लिए इतना आसान नही था घर छोडना। किन्तु जहाँ सकल्प है, वहाँ सिद्धि है। एक सुनहरा प्रभात आ ही गया, माता-पुत्री के सयम-ग्रहण का। वि. स १९९४ माघ सु ५ को दोनो सिंहश्रीजी म सा का शिष्यत्व स्वीकार शासन को समर्पित हो गईं। माता का नाम जयवन्तश्रीजी रखा। उन्होने पुत्री के रूप मे जो अनमोल रत्न शासन को समर्पित किया, उनका यह त्याग सदा अविस्मरणीय रहेगा। होनहार थी ही योग्य निमित्तो ने उन्हे महान् विदुषी बना दिया।

आप कई विषयो मे निष्णात थीं किन्तु आगम-अध्ययन के प्रति आपकी विशेष रुचि एव प्रयास रहा। यही कारण था कि आपका आगम-ज्ञान अगाध एव मार्मिक था। आपने अपनी विलक्षण प्रतिभा एव सतत-चिन्तन के आधार पर चालू कई मान्यताओ को नया मोड दिया। कई बार वे शास्त्रीय चर्चा में अच्छे भले विद्वान मुनिवरो को विषय की अतल गहराई मे ले जाकर चकित कर देती थी। आप ओजस्वी प्रवचनकार थीं, आपकी प्रवचन-शैली इतनी निराली एव रसपूर्ण थी कि एक-एक शब्द से अमृत रस झरता था। आपका आगमिक उच्चारण स्पष्ट शुद्ध एव प्रवाहयुक्त था। आगम ज्ञान एव चिन्तन को स्थायित्व, आपके द्वारा किये गये शासन-प्रभावना के महान् कार्य, मन्दिर, दादावाडी, पाठशाला, आयबिल भवन " धर्म प्रचार एव सुयोग्य शिष्या-मण्डल आपकी स्मृति को सदा ताजी रखेगा। आप केवल विदुषी ही नही तपस्विनी भी थी। ७४ वर्ष की उम्र मे आपने मास-क्षमण जैसी महान् तपस्या की। सब कुछ होते हुए भी एक बात के लिए तो हम अपना दुर्भाग्य समझेंगे कि आपकी प्रतिभा से भावी-पीढी लाभान्वित हो सके ऐसा कोई कृतित्व समुपलब्ध नही हो सका। मात्र वैराग्य-शतक का सक्षिप्त विवेचन या रत्नत्रय-विवेचन आपके द्वारा लिखित उपलब्ध होता है। आपकी १३-१४ शिष्यायें हैं।

आप अन्तिम अवस्था मे अस्वस्थता के कारण बाडमेर मे स्थानापन्न हो गई थीं। वहाँ वि. स. २०३९ की पौष १० को समाधिपूर्वक आपका स्वर्गवास हुआ। ज्ञानपचमी को जन्म, पो० १० को स्वर्गवास मानो प्रकृति ने आपके लिए मुहूर्त्त निकालकर रखा हो।

वर्तमान मे साध्वी श्रीराजेन्द्रश्रीजी म, श्रीचन्द्रयशाश्रीजी म, श्री चन्द्रोदयश्रीजी म, श्री चपक श्रीजी म, आदि आपकी प्रखर शिष्याओ मे से थी। वर्तमान मे साध्वी श्री प्रकाशश्रीजी म विजयेन्द्रश्रीजी म., स्वयप्रभाश्रीजी म, कोमलश्रीजी म, रतनमालाश्रीजी म, विद्युत्प्रभाश्रीजी म. आदि आपकी शिष्या समूह रूप साध्वीमण्डल विचरण कर रहा है।

□□

खरतरगच्छाचार्यो द्वारा प्रतिबोधित गोत्र, जिनका मूल गच्छ खरतर है।

☐ राजेन्द्र कुमार श्रीमाल जयपुर

ओस्तवाल	आयरिया	कटारिया	कठोतिया	कवाड
ककुचौपडा	काकरिया	कूकडा	कुभट	कोटेचा
कोठारी	खटोड	खजाची	खीवसरा	गणधर चौपडा
गाधी	गिडिया	गोलेच्छा	गोडवाडा	गुलगुलिया
गधैया	गाग	गेलडा	गडवाणी	घोडावत
घेवरिया	घीया	चौपडा	चतुर	चीपड
चोरडिया	चडालिया	चौधरी	चपलोत	छाजेड
छजलानी	जोगिया	जडिया	जिन्दानी	जीरावला
झाबक	झाट	झाडचूड	टोडरवाल	टाटिया
टाक	टूकलिया	डूगरेचा	डागा	डोशी
डाकलिया	ढड्ढा	ढोर	ढेलडिया	तातेड
दुगड	कास्टिया	दुधेडिया	दक	दसाणी
दासोत	दुसाज	दफ्तरी	दातेवाडिया	धूपिया
धाडीवाल	नाहटा	नाहर	नवलखा	नावडिया
पटवा	पारख	पुनमिया	पुगलिया	पालरेचा
पोकरण	पालावत	पगारिया	पीचा	फोफलिया
वरडिया	बूबकिया	बाठिया	बाफना	बव
बलाई	बुच्चा	बोहरा	वोथरा	बच्छावत
बुरड	बावेल	वदलिया	बेंगानी	बडेरा
वागरेचा	वालड	वोकडिया	बोरू दिया	भूतेडिया
भूरा	भटनेरा चौधरी	भसाली	भीडकच्या	भडारी
भडगतिया	भाडावत	भाचावत	मूदडा	मरोटी
मालू	मुकीम	मेडतवाल	मुणोत	महिमवाल
मोघा	महतियाण	मडोवरा	मरडिया	मीठडिया
मोदी बैताला	मेहता	मुंथा	राका	राखेचा
रामपुरिया	रातडिया	राणावत	रेड	लूणिया
लूणावत	लालाणी	लोढा	लूकड	ललवानी
वरमेचा	वडेर	वठ	वुच्चा	वाघमार
शाह	शेखावत	सचेती	साड	सावनसूखा
सीपानी	सखलेचा	सोलकी	सेठिया	सोनीगरा
साखला	सुराणा	सियाल	सालेचा	सिंघी
सिंघवी	सोनावत	समदडिया	हाकिम	हरकावत
हुंडिया	हुंवड	श्रीश्रीमाल	भसाली चील मेहता	
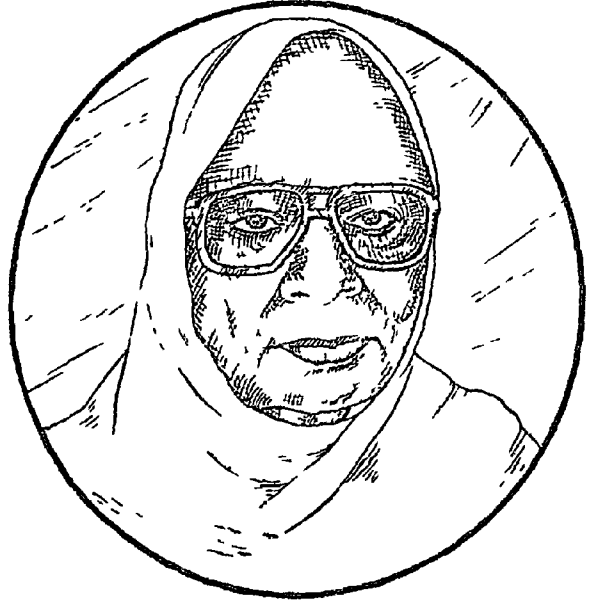
खण्ड ४

४. धर्म, दर्शन और अध्यात्म-चिन्तन

कहते हैं—धर्म की उत्पत्ति सरल हृदय मे आचरण की सगति से होती है, तो दर्शन की उत्पत्ति मस्तिष्क मे तर्क और चिन्तन के मिलन से। धर्म मनुष्य की श्रद्धा और क्रिया का विषय है, दर्शन प्रज्ञा, और मनन का।

धर्म और दर्शन—दो भिन्न छोर प्रतीत होते है किन्तु पूरब-और पश्चिम की भाति इनकी मिलन-रेखा एक ही है। जिस रेखा पर पूरब का अन्तिम छोर है उसी रेखा से पश्चिम का प्रथम चरण प्रारम्भ होता है और इन दोनो की मिलन-रेखा का नाम है- अध्यात्म।

अध्यात्म मे धर्म भी समाहित है और दर्शन भी। सस्कृति और साधना, कला और कर्तव्य-बोध सभी कुछ अध्यात्म के विशाल तट पर मिल जाते है। प्रस्तुत खड मे धर्म, दर्शन, अध्यात्म, कला, कर्तव्यबोध, आदि सब कुछ समाहित है और यही तो उसकी परिपूर्णता है।

जिस प्रकार शरीर के सातो अग मिलकर हाथी को परिपूर्णता देते है, उसी प्रकार धर्म, दर्शन, कला, सस्कृति, कर्तव्य, बोध, साहित्य और साधना, यह सब कुछ मिलकर अध्यात्म को परिपूर्ण रूप प्रदान करते है।

प्रस्तुत खड मे इन्ही विषयो पर विशेषज्ञ विद्वानो द्वारा प्रस्तुत विचार-चिन्तन हमे धर्म, दर्शन और अध्यात्म का सम्यक स्वरूप बोध करायेगा।

अर्हं का विराट् स्वरूप

—संघ प्रमुख श्री चन्दन मुनि

(सस्कृत-प्राकृत के उद्भट विद्वान, कवि
एव अध्यात्मयोगी साधक)

अर्हमित्यक्षर ब्रह्म, वाचक परमेष्ठिन. ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीज, सर्वत: प्रणिदध्महे ।। —ऋषिमण्डलस्तोत्र २

अर्हं बडा चामत्कारिक मन्त्र है। उसे अक्षर-ब्रह्म कहा गया है। जो कभी क्षर नही होता, क्षययुक्त नही होता, मिटता नही, उसे अक्षर कहा जाता है—"न क्षरतीति अक्षरम्"। अर्हं परमेष्ठी का वाचक है। परमेष्ठिन् शब्द मे अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—इन पॉचो का समावेश हो जाता है। इन पॉचो को जैन-दर्शन मे परमेश्वर रूप मे स्वीकार किया गया है। जैन परम्परा मे सिद्धचक्र यन्त्र का बहुत महत्व है। उसकी विधिवत् पूजा, आराधना होती है। "अर्हं" को उसके बीज मन्त्र के रूप मे स्वीकार किया गया है। इसीलिए इसे "सिद्धचक्रस्य सद्बीजम्"—विशेषण से विभूषित किया गया है। ऋषि कहते है "सर्वत प्रणिदध्महे"—हम सर्वतोभावेन इसका प्रणिधान यानी जप आदि के द्वारा आराधना करते है। यहाँ एक गहरी बात है—क्रिया मे उत्तम पुरुष के बहुवचन के वर्तमान का प्रयोग इसलिए किया गया है कि हम निरन्तर सर्वांगीण दृष्टि से इसका ध्यान करते रहे है, करते है। इसी अर्हं की व्याख्या के लिए एक विशेष गीत की रचना की गई है—

ॐ अर्हं-अर्हं गाएजा।
अर्हं-अर्हं गा-गाकर इस मन को विमल बनाएजा ।। ध्रुव ।।
अर्हं-अर्हं रटन लगाते, भव-भव के बन्धन कट जाते।
अन्दर के और बाहर के क्लेशो को दूर हटाये जा ।। १ ।।
ॐ अर्हं-अर्हं गाएजा ।।

अर्हं-अर्हं मे लयलीन होने से मन निर्मल बनता है। मन को निर्मल बनाना ही साधक का उत्कृष्ट लक्ष्य है। जप वास्तव मे अन्त शुद्धि का कार्य करता है। वचन और काया की शुद्धि अन्यान्य

साधनो के द्वारा भी हो सकती है, किन्तु मन को शुद्ध वनाने के लिए, मन का मैल धोने के लिए जप को ही उत्तम साधन माना गया है। प्राचीन आचार्यो ने बडा सुन्दर लिखा है—

अभेददर्शन ज्ञान, ध्यान निर्विषय मन ।
स्नान मनोमलत्याग, शौचमिन्द्रियनिग्रह ॥

इस श्लोक के चार चरणो मे चार व्याख्याएँ दी गई हैं। ज्ञान की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या है—"**ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्तु येन तद् ज्ञानम्**" जिसके द्वारा वस्तु जानी जाती है, अन्य वस्तुओ के साथ उसका पार्थक्य किया जाता है, उसे ज्ञान कहते है। लेकिन यहाँ ज्ञान को सूक्ष्म व्याख्या के साथ प्रस्तुत किया गया है। आचार्य कहते है—"**अभेददर्शनम् ज्ञानम्**" ज्ञान वास्तव मे वह है, जो अभेददर्शन कराता है। जहाँ स्व-पर का भेद मिट जाता है, तू-मैं का विभाजन समाप्त हो जाता है, वही सच्चा ज्ञान है। जब तक दृष्टि मे भेद विद्यमान है तब तक ज्ञान केवल पुस्तकीय ज्ञान है। वह सम्यक्ज्ञान नही है। इसी प्रकार कहा गया—"**ध्यान निर्विषय मन**" मन का निर्विपय हो जाना ध्यान है। केवल आँखे मूँदकर, आसन लगाकर बैठना ध्यान नही है, जब तक मन विपयो से उपरत न हो जाए। यदि मन सर्वथा निर्विषयी है तो चाहे कही किसी स्थिति मे बैठे हो, ध्यान सधता जाता है।

आचार्य आगे लिखते हैं "**स्नान मनोमलत्याग**" जिसके द्वारा मन के मल का विसर्जन हो, वह स्नान है। ऊपरी मैल को धोना केवल बाह्य स्नान है। किन्तु अन्त शुद्धि वास्तविक स्नान है। चौथा चरण है—"**शौचमिन्द्रियनिग्रह**" इन्द्रियो का निग्रह ही शौच है। यदि आप शुचि-पवित्र रहना चाहते है तो इन्द्रिय-सयम करना होगा। इन्द्रियो के असयम मे ही हम अपवित्र बनते है। इसीलिए यह उक्ति प्रसिद्ध है- -"**ब्रह्मचारी सदा शुचि**"। ब्रह्मचारी निरन्तर पवित्र बना रहता है। वह कभी अपवित्र नही होता। अत मनोमल की शुद्धि के लिए जप उत्कृष्ट साधन है।

जप की एक विशेषता और है—"अन्दर के और बाहर के क्लेशो को दूर हटाता है।" दो प्रकार के क्लेश है—अन्दर के क्लेश काम, क्रोध, मोह आदि है तथा बाहर के क्लेश रोग, शोक, व्याधि, प्रतिकूलता आदि है। ससारी जीव इन दोनो प्रकार के क्लेशो से निरन्तर उत्पीडित बने रहते है। इस अर्हं जप के द्वारा वे सब प्रकार के क्लेशो को दूर हटा सकते हैं। यहाँ एक रहस्य और है। जीभ जप के साधन के रूप मे प्रयुक्त होती है। रचना की दृष्टि से उसका कुछ भाग बाहर है और कुछ भाग कण्ठ के भीतर चला गया है। सन्तजन कहते हैं—

रामनाम मणिदीप धरु, जीभ देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार॥

जिस प्रकार कमरे की देहली मे रखा दीपक अन्दर के कमरे को तथा बाहर के आगन को समान रूप से प्रकाशित करता है, उसी प्रकार इस जीभ को देहली मानकर इससे प्रभु-नाम का जप करे तो दोनो ओर प्रकाश होगा। अन्तर्-बाह्य दोनो प्रकार के सक्लेशो से छुटकारा होगा। यहाँ "मणिदीप" का प्रयोग भी विशिष्ट अर्थ मे हुआ है। तेलादि से जलने वाले दीप हवा के झोके से बुझ जाते है, तेल समाप्त होने पर बुझ जाते हैं पर जो स्वत प्रकाशित रत्न होते है, उनके बुझने का कोई खतरा नही। समग्र उपद्रवो के बावजूद वे प्रकाश देते रहते है। यह प्रभु-नाममय मणिदीप हमे अखण्ड प्रकाश देता है। यह अर्हं का जप भी एक प्रकार का मणिदीप ही है। अब हम यह चिन्तन करेंगे कि इस अर्हं शब्द की निष्पत्ति कैसे हुई तया वस्तुत यह शक्ति क्या है ?

अर्ह के आदि में अकार का प्रयोग हुआ है और अन्त में "ह्" आया है। "र" इन दोनो के मध्य ऊर्ध्वगामी बना है।

अकार अपने आप मे बडा प्रभावापन्न अक्षर माना गया है। गीता मे योगेश्वर कृष्ण ने तो यहाँ तक कह दिया है—

"अक्षराणामकारोऽस्मि" —गीता १०/३३

हे अर्जुन ! अक्षरो मे मै अकार हूँ।

अर्हं की व्याख्या करते हुए प्राचीन आचार्य कहते है—

अकारः प्रथम तत्व, सर्वभूताभयप्रदम्।
कण्ठदेश समाश्रित्य, वर्तते सर्वदेहिनाम् ॥
सर्वात्मक सर्वगत, सर्वव्यापि सनातनम्।
सर्वसत्त्वाश्रित दिव्य, चिंतित-पापनाशनम् ॥
सर्वेषामपि वर्णानां, स्वराणां च धुरिस्थितम्।
व्यजनेषु च सर्वेषु, ककारादिषु सस्थितम् ॥

अकार प्रथम तत्त्व है। सब भूतो को अभय प्रदान करने वाला है। यह सभी देहधारियो के कण्ठ-देश को आश्रित कर विद्यमान है। व्याकरणकार भी कहते है—"अकुहविसर्गा कण्ठ्या" अकार का उच्चारण स्थान कण्ठ है। यह सर्वात्म, सर्वगत, सर्वव्यापि सनातन तत्त्व माना गया है। यह समस्त सत्त्वो पर, सद्गुणो पर आश्रित, दिव्य, सुचिन्तित तथा पापनाशक है। सभी वर्णो मे, स्वरो मे यह अग्रसर है—प्रथम स्थान पर है। 'क्' आदि सभी व्यजनो मे सर्वप्रथम यही प्राण रूप मे वर्तमान रहता है। तन्त्र-मन्त्रादि प्रयोगो मे, समग्र विद्याओ मे इसका विशिष्ट स्थान है।

अर्ह का मध्याक्षर "र्" अग्नि-बीज है। वैदिक वाङ्मय मे उल्लेख है—"र बीजं वह्नि ध्यायेत्"। "रकार" को अग्नि-तत्त्व का प्रतीक माना गया है। मन्त्र-वेत्ता आचार्य कहते है—

दीप्तपावकसंकाश, सर्वेषां शिरसि स्थितम्।
विधिना मन्त्रिणा ध्यात, त्रिवर्गफलद स्मृतम् ॥
यस्य देवाभिधानस्य, मध्ये ह्येतद् व्यवस्थितम्।
पुण्य पवित्र मागल्य, पूज्योऽसौ तत्वदर्शिभि. ॥

"र" कार अग्नि के समान दीप्त तथा सब अक्षरो के सिर पर स्थित है। जो विधिवत् इसका ध्यान करता है, त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ, काम रूप फल प्राप्त कर लेता है। जिस देवता के नाम मे, यह मध्य मे स्थित हो जाता है, तत्त्वदर्शियो का कथन है, यह पूजनीय "रकार" तदनुरूप पुण्य, पवित्र, मागलिक सिद्ध होता है। इसीलिए राम, हरि, हर, वीर, पार्श्व आदि शक्तिसम्पन्न नामो मे "र" का अस्तित्व विद्यमान है।

अन्त मे प्रयुक्त "ह" वर्ण आकाश तत्त्व का सूचक है। आचार्य कहते हैं—

सर्वेषामपि भूताना, नित्य यो हृदि सस्थितः।
पर्यन्ते सर्ववर्णानां, सकलो निष्कलस्तया ॥
हकारो हि महाप्राण, लोकशास्त्रेषु पूजित.।
विधिना मन्त्रिणा ध्यातः, सर्वकार्यप्रसाधक ॥

वैयाकरणो की दृष्टि मे हकार को महाप्राण के रूप मे स्वीकार किया गया है। यह सभी भूतो के हृदय मे स्थित है तथा सभी वर्णो मे सकल होता हुआ निष्कल रूप मे व्यवस्थित है। यदि कोई साधक इसका विधिपूर्वक ध्यान करता है तो यह सर्वसिद्धि प्रदान करने वाला है।

"अर्हं" मे वर्णो का अद्‌भुत सयोजन हुआ है। आदि मे अकार और अन्त मे हकार का समायोजन अपने आप मे अनूठा है। आपने ध्यान दिया होगा, ट्रेन मे सबसे आगे इजन लगा होता है। चालक वही से सारी गति नियन्त्रित करता है। किन्तु अन्त मे जो गार्ड का डिब्बा लगा होता है, उसका भी गति-नियन्त्रण में महत्त्वपूर्ण स्थान है। दोनो का दायित्व लगभग समान होता है। यहाँ अन्त मे हकार की स्थिति गार्ड-परिरक्षक जैसी है। ह के ऊपर लगा चन्द्र विन्दु (ँ) भी अनुपम शक्तिस्रोत है। मन्त्राक्षरो मे प्राय चन्द्र-बिन्दु की योजना की जाती है, जो अलौकिक नाद उत्पन्न करता हुआ बीजाक्षरो को शक्ति प्रदान करता है। इसलिए कहा गया है—

त्रीण्यक्षराणि बिन्दुश्च, यस्य देवस्य नाम वै।
स सर्वज्ञ. समाख्यात, अर्हं तदितिपडितै. ॥

अर्हं की एक दूसरी व्याख्या और की गई है, जिसके अनुसार इसमे अकार से विष्णु, रकार से ब्रह्मा तथा हकार से हर का समावेश है। लिखा है—

अकारेणोच्यते विष्णु, रेफे ब्रह्माव्यवस्थित'।
हकारेण हर प्रोक्त, तदन्ते परम पदम् ॥

यह अर्हं शब्द की निर्युक्ति है। वास्तव मे यह बहुत प्रभावशाली बीजाक्षर है। कालिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र द्वारा रचित "सिद्धहेम शब्दानुशासन" व्याकरण का तो पहला सूत्र ही अर्हं है।

एक अन्य दृष्टिकोण से भी अर्हं शब्द का सयोजन विशेष महत्वपूर्ण है।

सस्कृत मे अर्हं धातु पूजा के अर्थ मे है। कहने का आशय [है—पूजनीय—पूजायोग्य अर्हं का उपासक नरेन्द्रो, देवेन्द्रो द्वारा पूजनीय बन जाता है। एक दूसरा अर्थ है—अर्हं—योग्य होना—ज्ञान-दर्शन मे योग्य बन जाना, सक्षम हो जाना। जैसे ज्ञानार्हं, दर्शनार्हं इत्यादि। अरिहन्त देव अनन्तज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्तचारित्र तथा अनन्तबल—इन चार अनन्तताओ के योग्य बन गये हैं। सारी सीमाएँ लाँघकर वे असीम/अपार बन गये है। साधक का ध्यान जब सर्वथा अन्तर्मुखी बन जाता है तो वह सिद्धि-गमन की अर्हता प्राप्त कर लेता है, तद्‌योग्य बन जाता है। ध्यान की गहराई मे उतरे बिना विशिष्ट योग्यता प्राप्त नही हो सकती। अर्हं शब्द अपनी योग्यता उभारने का सूचक है।

O C

पीत्वाज्ञानामृत भुक्त्वा क्रिया-सुरलता फलम्।
साम्यताम्बूलमास्वाद्य तृप्ति याति परा मुनिम् ॥

ज्ञानरूपी अमृत का पानकर और क्रियारूपी कल्पवृक्ष के फल खाकर समतारूपी ताम्बूल चखकर साधु परम तृप्ति का अनुभव करता है।

—ज्ञानसार १/७२

पिता के अचानक स्वर्गवास के बाद वह बालक अनाथ हो गया और कुछ दिनो तक तो बची-खुची सम्पत्ति से आजीविका चलाता रहा, अन्त मे रिक्शा चलाकर पेट भरने लगा। चौराहे पर खडे होकर जोर-जोर से आवाज लगाता कि दो रुपये मे रेलवे स्टेशन, दो रुपये मे रेलवे स्टेशन, ' '।

अब मैं आप सबसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि वह रिक्शा चलाने वाला बालक करोडपति है या नही ?

क्या कहा ?

नही।

क्यो ?

क्योकि करोडपति रिक्शा नही चलाते और रिक्शा चलाने वाले बालक करोडपति नही हुआ करते।

अरे भाई, जब वह व्यक्ति ही करोडपति नही होगा, जिसके करोड रुपये बैंक मे जमा है तो फिर और कौन करोडपति होगा ? पर भाई, बात यह है कि उसके करोडपति होने पर भी हमारा मन उसे करोडपति मानने को तैयार नही होता, क्योकि रिक्शावाला करोडपति हो—यह बात हमारे चित्त को सहज स्वीकार नही होती। आज तक हमने जिन्हे करोडपति माना है, उनमे से किसी को रिक्शा चलाते नही देखा और करोडपति रिक्शा चलाये—यह हमे अच्छा भी नही लगता, क्योकि हमारा मन ही कुछ इस प्रकार का बन गया है।

'कौन करोडपति है और कौन नही है ?'—यह जानने के लिए आज तक कोई किसी की तिजोरी के नोट गिनने तो गया नही। यदि जायेगा भी तो बतायेगा कौन ? बस, बाहरी ताम-झाम देखकर ही हम किसी को करोडपति मान लेते हैं। दस-पाँच नौकर-चाकर, मुनीम-गुमाश्ते और बगला, मोटरकार, कल-कारखाने देखकर ही हम किसी को करोडपति मान लेते है, पर यह कोई नही जानता कि जिसे हम करोड-पति समझ रहे है, हो सकता है वह करोडो का कर्जदार हो। बैंक से करोडो रुपये उधार लेकर कल-कारखाने चल निकलते है और बाहरी ठाठ-बाट देखकर अन्य लोग भी सेठजी के पास पैसे जमा कराने लगते हैं। इस प्रकार गरीबो, विधवाओ, ब्रह्मचारियो द्वारा उनके पास जमा कराये गये करोडो रुपयो से निर्मित बाह्य ठाठ-बाट से हम उसे करोडपति मान लेते हैं।

इस सभावना से भी इन्कार नही किया जा सकता कि जिसे हम करोडपति साहूकार मान रहे हैं, वह लोगो के करोडो रुपये पचाकर दिवाला निकालने की योजना बना रहा हो।

ठीक यही बात सभी आत्माओ को परमात्मा मानने के सन्दर्भ मे भी है। हमारा मन इन चलते-फिरते, खाते-पीते, रोते-गाते चेतन आत्माओ को परमात्मा मानने को तैयार नही होता। हमारा मन कहता है कि यदि हम भगवान होते तो फिर दर-दर की ठोकर क्यो खाते फिरते ? अज्ञानाधकार मे डूबा हमारा अन्तर् बोलता है कि हम भगवान नही हैं, हम तो दीन-हीन प्राणी हैं, क्योकि भगवान दीन-हीन नही होते और दीन-हीन भगवान नही होते।

अब तक हमने भगवान के नाम पर मन्दिरो मे विराजमान उन प्रतिमाओ के ही भगवान के रूप मे दर्शन किये हैं, जिनके सामने हजारो लोग मस्तक टेकते हैं, भक्ति करते है, पूजा करते है। यही कारण है कि हमारा मन डॉटे-फटकारे जाने वाले जनसामान्य को भगवान मानने को तैयार नही होता।

हम सोचते है कि ये भी कोई भगवान हो सकते है क्या ? भगवान तो वे है, जिनकी पूजा की जाती है, भक्ति की जाती है। सच बात तो यह है कि हमारा मन ही कुछ ऐसा बन गया है कि उसे यह स्वीकार नही कि कोई दीन-हीन जन भगवान बन जाये। अपने आराध्य को दीन-हीन दशा मे देखना भी हमे अच्छा नही लगता।

भाई, भगवान भी दो तरह के होते है—एक तो वे अरहत और सिद्ध परमात्मा जिनकी मूर्तियाँ मन्दिरो मे विराजमान है और उन मूर्तियो के माध्यम से हम उन मूर्तिमान परमात्मा की उपासना करते है, पूजन-भक्ति करते है, जिस पथ पर वे चले, उस पथ पर चलने का सकल्प करते है, भावना भाते है। ये अरहत और सिद्ध कार्यपरमात्मा कहलाते है।

दूसरे देहदेवल मे विराजमान निज-भगवान आत्मा भी परमात्मा है, भगवान है, इन्हे कारण-परमात्मा कहा जाता है।

जो भगवान मूर्तियो के रूप मे मन्दिरो मे विराजमान है, वे हमारे पूज्य है, परमपूज्य है, अत हम उनकी पूजा करते है, भक्ति करते है, गुणानुवाद करते है, किन्तु देहदेवल मे विराजमान निज-भगवान आत्मा श्रद्धेय है ध्येय है, परमज्ञेय है, अत निज भगवान को जानना, पहचानना और उसका ध्यान करना ही उसकी आराधना है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति इस निज भगवान आत्मा के आश्रय से ही होती है, क्योकि निश्चय से निज-भगवान आत्मा को निज जानना ही सम्यग्ज्ञान है, उसे ही निज मानना, 'यही मै हूँ'—ऐसी प्रतीति होना सम्यग्दर्शन है और उसका ही ध्यान करना, उसी मे जम जाना, रम जाना, लीन हो जाना सम्यक्चारित्र है।

अष्टद्रव्य से पूजन मन्दिर मे विराजमान 'परभगवान' की की जाती है और ध्यान शरीररूपी मन्दिर मे विराजमान 'निजभगवान' आत्मा का किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति निज आत्मा को भगवान मानकर मन्दिर मे विराजमान भगवान के समान स्वय की भी अष्ट द्रव्य से पूजन करने लगे तो उसे व्यवहार-विहीन ही माना जायेगा, वह व्यवहारकुशल नही, अपितु व्यवहारमूढ ही है।

इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति आत्मोपलब्धि के लिए ध्यान भी मन्दिर मे विराजमान भगवान का ही करता रहे तो उसे भी विकल्पो की ही उत्पत्ति होती रहेगी, निर्विकल्प आत्मानुभूति कभी नही होगी, क्योकि निर्विकल्प आत्मानुभूति निजभगवान आत्मा के आश्रय से ही होती है। निर्विकल्प आत्मा-नुभूति के विना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति भी नही होगी। इस प्रकार उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप मोक्ष मार्ग का आरम्भ ही नही होगा।

जिस प्रकार वह रिक्शा वाला वालक रिक्शा चलाते हुए भी करोडपति है, उसी प्रकार दीन-हीन हालत मे होने पर भी हम सभी स्वभाव से ज्ञानानन्द स्वभावी भगवान है, कारण-परमात्मा है—यह जानना-मानना उचित ही है।

इस सन्दर्भ मे मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि भारत मे अभी किसका राज है ?

क्या कहा, काग्रेस का ?

नही भाई ! यह ठीक नही है, काग्रेस तो एक पार्टी है, भारत मे राज तो जनता-जनार्दन का है, क्योकि जनता जिसे चुनती है, वही भारत का शासन चलाता है, अत राज जनता-जनार्दन का ही है।

उक्त सन्दर्भ मे जब हम जनता को जर्नादन (भगवान) कहते है तो कोई नही कहता कि जनता तो जनता है, वह जर्नादन अर्थात् भगवान कैसे हो सकती है ? पर जब तात्त्विक चर्चा मे यह कहा जाता है कि हम सभी भगवान है तो हमारे चित्त मे अनेक प्रकार की शकाएँ-आशकाएँ खडी हो जाती है, पर भाई, गहराई से विचार करें तो स्वभाव से तो प्रत्येक आत्मा परमात्मा ही है—इसमे शका-आशका को कोई स्थान नही है।

प्रश्न—यदि यह बात है तो फिर ये ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा वर्तमान मे अनन्त दु खी क्यो दिखाई दे रहे है ?

उत्तर—अरे भाई, ये सब भूले हुए भगवान है, स्वय को—स्वय की सामर्थ्य को भूल गये है, इसी कारण सुखस्वभावी होकर भी अनन्तदु खी हो रहे है। इनके दु ख का मूल कारण स्वय को नही जानना, नही पहचानना ही है। जब ये स्वय को जानेगे, पहचानेगे एव स्वय मे ही जम जायेगे, रम जायेगे, तब स्वय ही अनन्तसुखी भी हो जावेगे।

जिस प्रकार वह रिक्शा चलाने वाला बालक करोडपति होने पर भी यह नही जानता है कि 'मैं स्वय करोडपति हूँ'—इस कारण दरिद्रता का दु ख भोग रहा है। यदि उसे यह पता चल जाये कि मैं तो करोडपति हूँ, मेरे करोड रुपये बैंक मे जमा हैं तो उसका जीवन ही परिवर्तित हो जावेगा। उसी प्रकार जब तक यह आत्मा स्वय के परमात्मस्वरूप को नही जानता—पहचानता है, तभी तक अनन्त-दु खी है, जब यह आत्मा अपने परमात्मस्वरूप को भलीभाँति जान लेगा, पहचान लेगा तो इसके दु ख दूर होने मे भी देर न लगेगी।

कगाल के पास करोडो का हीरा हो, पर वह उसे काँच का टुकडा समझता हो या चमकदार पत्थर मानता हो तो उसकी दरिद्रता जाने वाली नही है, पर यदि वह उसकी सही कीमत जान ले तो दरिद्रता एक क्षण भी उसके पास टिक नही सकती, उसे विदा होना ही होगा। इसी प्रकार यह आत्मा स्वय भगवान होने पर भी यह नही जानता कि मैं स्वय भगवान हूँ। यही कारण है कि यह अनन्त काल से अनन्त दु ख उठा रहा है। जिस दिन यह आत्मा यह जान लेगा कि मैं स्वय भगवान ही हूँ, उस दिन उसके दु ख दूर होते देर न लगेगी।

इससे यह बात सहज सिद्ध होती है कि होने से भी अधिक महत्व जानकारी होने का है, ज्ञान होने का है। होने से क्या होता है ? होने को तो यह आत्मा अनादि से ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा ही है, पर इस बात की जानकारी न होने से, ज्ञान न होने से ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान होने का कोई लाभ इसे प्राप्त नही हो रहा है। होने को तो वह रिक्शा चलाने वाला बालक भी गर्भश्रीमन्त है, जन्म से ही करोडपति है, पर पता न होने से दो रोटियो की खातिर उसे रिक्शा चलाना पड रहा है। यही कारण है कि जिनागम मे ज्ञान के गीत दिल खोलकर गाये हैं। कहा गया है कि—

"ज्ञान समान न आन जगत मे सुख कौ कारण।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण ।।[1]

इस जगत मे ज्ञान के समान अन्य कोई भी पदार्थ सुख देने वाला नही है। यह ज्ञान जन्म, जरा और मृत्यु रूपी रोग को दूर करने के लिये परम-अमृत है, सर्वोत्कृष्ट औषधि है।"

---

१. पडित दौलतराम · छहढाला, चतुर्थ ढाल, छन्द ४।

और भी देखिये—

"जे पूरब शिव गये जाहिं अरु आगे जैहै।
सो सब महिमा ज्ञानतनी मुनिनाथ कहै है॥[1]

आज तक जितने भी जीव अनन्त सुखी हुए है अर्थात् मोक्ष गये है या जा रहे है अथवा भविष्य मे जावेगे, वह सब ज्ञान का ही प्रताप है—ऐसा मुनियो के नाथ जिनेन्द्र भगवान कहते है।

सम्यग्ज्ञान की तो अनन्त महिमा है ही, पर सम्यग्दर्शन की महिमा जिनागम में उससे भी अधिक बताई गई है, गाई गई है।

क्यो और कैसे ?

मान लो रिक्शा चलाने वाला वह करोडपति बालक अब २५ वर्ष का युवक हो गया है। उसके नाम से जमा करोड रुपयो की अवधि समाप्त हो गई है, फिर भी कोई व्यक्ति बैंक से रुपये लेने नही आया। अत बैंक ने समाचार-पत्रो मे सूचना प्रकाशित कराई कि अमुक व्यक्ति के इतने रुपये बैंक मे जमा है, वह एक माह के भीतर नही आया तो लावारिस समझकर रुपये सरकारी खजाने मे जमा करा दिये जावेगे।

उस समाचार को उस नवयुवक ने भी पढा और उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा, पर उसकी वह प्रसन्नता क्षणिक साबित हुई, क्योकि अगले ही क्षण उसके हृदय मे सशय के बीज अकुरित हो गये। वह सोचने लगा कि मेरे नाम इतने रुपये बैंक मे कैसे हो सकते है ? मैंने तो कभी जमा कराये ही नही। मेरा तो किसी बैंक मे कोई खाता भी नही है। फिर भी उसने वह समाचार दुबारा बारीकी से पढा तो पाया कि वह नाम तो उसी का है, पिता के नाम के स्थान पर भी उसी के पिता का नाम अकित है, कुछ आशा जागृत हुई, किन्तु अगले क्षण ही उसे विचार आया कि हो सकता है, इसी नाम का कोई दूसरा व्यक्ति हो और सहज सयोग से ही उसके पिता का नाम भी यही हो। इस प्रकार वह फिर शकाशील हो उठा।

इस प्रकार जानकर भी उसे प्रतीति नही हुई, इस बात का विश्वास जागृत नही हुआ कि ये रुपये मेरे ही है। अत जान लेने पर भी कोई लाभ नही हुआ। इससे सिद्ध होता है कि प्रतीति बिना, विश्वास बिना जान लेने मात्र से भी कोई लाभ नही होता। अत ज्ञान से भी अधिक महत्व श्रद्धान का है, विश्वास का है, प्रतीति का है।

इसी प्रकार शास्त्रो मे पढकर हम सब यह जान तो लेते हैं कि आत्मा ही परमात्मा है (अप्पा सो परमप्पा), पर अन्तर् में यह विश्वास जागृत नही होता कि मै स्वय ही परमात्मस्वरूप हूँ, परमात्मा हूँ, भगवान हूँ। यही कारण है कि यह बात जान लेने पर भी कि मैं स्वय परमात्मा हूँ, सम्यक्श्रद्धान बिना दु ख का अन्त नही होता, चतुर्गतिभ्रमण समाप्त नही होता, सच्चे सुख की प्राप्ति नही होती।

समाचार-पत्र मे उक्त समाचार पढकर वह युवक अपने साथियो को भी बताता है। उन्हे समाचार दिखाकर कहता है कि 'देखो, मै करोडपति हूँ। अब तुम मुझे गरीब रिक्शेवाला नही समझना।'

---

१ पडित दौलतराम, छहढाला, चतर्थ ढाल, छन्द ८।

इस प्रकार कहकर वह अपना और अपने साथियो का मनोरजन करता है, एक प्रकार से स्वय अपनी हँसी उडाता है। इसी प्रकार शास्त्रो मे से पढ-पढकर हम स्वय अपने साथियो को भी सुनाते है। कहते है—'देखो, हम सभी स्वय भगवान है, दीन-हीन मनुष्य नही।' इस प्रकार की आध्यात्मिक चर्चाओ द्वारा हम स्वय का और समाज का मनोरजन तो करते है, पर सम्यक्श्रद्धान के अभाव मे भगवान होने का सही लाभ प्राप्त नही होता, आत्मानुभूति नही होती, सच्चे सुख की प्राप्ति नही होती, आकुलता समाप्त नही होती।

इस प्रकार अज्ञानीजनो की आध्यात्मिक चर्चा भी आत्मानुभूति के बिना, सम्यग्ज्ञान के विना, सम्यक्श्रद्धान के विना वौद्धिक व्यायाम वनकर रह जाती है।

समाचार-पत्रो मे प्रकाशित हो जाने के उपरान्त भी जब कोई व्यक्ति पैसे लेने बैंक मे नही आया तो बैंकवालो ने रेडियो स्टेशन से घोषणा कराई। रेडियो स्टेशन को भारत मे आकाशवाणी कहते है। अत आकाशवाणी हुई कि अमुक व्यक्ति के इतने रुपये बैंक मे जमा है, वह एक माह के भीतर ले जावे, अन्यथा लावारिस समझकर सरकारी खजाने मे जमा करा दिये जावेंगे।

आकाशवाणी की उस घोपणा को रिक्शे पर वैठे-वैठे उसने भी सुना, अपने साथियो को भी सुनाई, पर विश्वास के अभाव मे कोई लाभ नही हुआ। इसी प्रकार अनेक प्रवक्ताओ से इस वात को सुनकर भी कि हम सभी स्वय भगवान हैं, विश्वास के अभाव मे बात वही की वही रही। जीवन भर जिनवाणी सुनकर भी, पढकर भी, आध्यात्मिक चर्चाये करके भी आत्मानुभूति से अछूते रह गये।

समाचार-पत्रो मे प्रकाशित एव आकाशवाणी से प्रसारित उक्त समाचार की ओर जव स्वर्गीय सेठजी के उन अभिन्न मित्र का ध्यान गया, जिन्हे उन्होने मरते समय उक्त रहस्य की जानकारी दी थी, तो वे तत्काल उस युवक के पास पहुँचे और बोले—

"वेटा! तुम रिक्शा क्यो चलाते हो?"

उसने उत्तर दिया—"यदि रिक्शा न चलाये तो खायेगे क्या?"

उन्होने समझाते हुए कहा—"भाई, तुम तो करोडपति हो, तुम्हारे तो करोडो रुपये बैंक मे जमा है।"

अत्यन्त गमगीन होते हुए युवक कहने लगा—

"चाचाजी, आपसे ऐसी आशा नही थी, सारी दुनिया तो हमारा मजाक उडा ही रही है, पर आप तो बुजुर्ग है, मेरे पिता के बराबर हैं, आप भी ।"

वह अपनी वात समाप्त ही न कर पाया था कि उसके माथे पर हाथ फेरते हुए अत्यन्त स्नेह से वे कहने लगे—

"नही भाई, मैं तेरी मजाक नही उडा रहा हूँ। तू सचमुच ही करोडपति है। जो नाम समाचार-पत्रो मे छप रहा है, वह तेरा ही नाम है।"

अत्यन्त विनयपूर्वक वह बोला—"ऐसी वात कहकर आप मेरे चित्त को व्यर्थ ही अशान्त न करे। मैं मेहनत-मजदूरी करके दो रोटियाँ पैदा करता हूँ और आराम से जिन्दगी वसर कर रहा हूँ। मेरी महत्वाकाक्षा को जगाकर आप मेरे चित्त को क्यो उद्वेलित कर रहे है। मैने तो कभी कोई रुपये वैंक मे जमा कराये ही नही। अत मेरे रुपये वैंक मे जमा कैसे हो सकते हैं?"

अत्यन्त गद्गद् होते हुए वे कहने लगे —"भाई तुम्हे पैसे जमा कराने की क्या आवश्यकता थी ? तुम्हारे पिताजी स्वय बीस वर्ष पहले तुम्हारे नाम एक करोड रुपये बैंक में जमा करा गये थे, जो अव व्याज सहित तीन करोड हो गये होगे। मरते समय यह बात वे मुझे बता गये थे।'

यह वात सुनकर वह एकदम उत्तेजित हो गया। थोडा-सा विश्वास उत्पन्न होते ही उसमें करोडपतियो के लक्षण उभरने लगे। वह एकदम गर्म होते हुए बोला—"यदि यह बात सत्य है तो आपने अभी तक हमें क्यो नही वताया ?"

वे समझाते हुए कहने लगे—"उत्तेजित क्यो होते हो ? अब तो बता दिया। पीछे की जाने दो, अव आगे की सोचो।"

"पीछे की क्यो जाने दो ? हमारे करोडो रुपये बैंक मे पडे रहे और हम दो रोटियो के लिये मुँहताज हो गये। हम रिक्शा चलाते रहे और आप देखते रहे। यह कोई साधारण बात नही है, जो ऐसे ही छोड दी जावे, आपको इसका जवाब देना ही होगा।"

"तुम्हारे पिताजी मना कर गये थे।"

"आखिर क्यो ?"

"इसलिए कि वीस वर्ष पहले तुम्हे रुपये तो मिल नही सकते थे। पता चलने पर तुम रिक्शा भी न चला पाते और भूखो मर जाते।"

"पर उन्होने ऐसा किया ही क्यो ?"

"इसलिए कि नाबालिगी की अवस्था मे कही तुम यह सम्पत्ति बर्बाद न कर दो और जीवन भर के लिए कगाल हो जाओ। समझदार हो जाने पर तुम्हे ब्याज सहित तीन करोड रुपये मिल जावे और तुम आराम मे रह सको। तुम्हारे पिताजी ने यह सब तुम्हारे हित मे ही किया है। अत उत्तेजना मे समय वर्बाद मत करो। आगे की सोचो।"

इस प्रकार सम्पत्ति सम्बन्धी सच्ची जानकारी और उस पर पूरा विश्वास जागृत हो जाने पर उस रिक्शेवाले युवक का मानस एकदम बदल जाता है, दरिद्रता के साथ का एकत्व टूट जाता है एव 'मैं करोडपति हूँ' ऐसा गौरव का भाव जागृत हो जाता है, आजीविका की चिन्ता न मालूम कहाँ चली जाती है, चेहरे पर सम्पन्नता का भाव स्पष्ट झलकने लगता है।

इसी प्रकार शास्त्रो के पठन, प्रवचनो के श्रवण और अनेक युक्तियो के अवलम्बन से ज्ञान मे वात स्पष्ट हो जाने पर भी अज्ञानीजनो को इस प्रकार का श्रद्धान उदित नही होता कि ज्ञान का घन-पिण्ड, आनन्द का रसकन्द, शक्तियो का सग्रहालय, अनन्त गुणो का गोदाम भगवान आत्मा मै स्वय ही हूँ। यही कारण है कि श्रद्धान के अभाव मे उक्त ज्ञान का कोई लाभ प्राप्त नही होता।

काललब्धि आने पर किसी आसन्नभव्य जीव को परमभाग्योदय से किसी अत्मानुभवी ज्ञानी धर्मात्मा का सहज समागम प्राप्त होता है और वह ज्ञानी धर्मात्मा उसे अत्यन्त वात्सल्यभाव से समझाता है कि हे आत्मन् ! तू स्वय भगवान है, तू अपनी शक्तियो को पहचान, पर्याय की पामरता का विचार

मत कर, स्वभाव के सामर्थ्य को देख, सम्पूर्ण जगत पर से दृष्टि हटा और स्वय मे ही समा जा, उपयोग को यहाँ-वहाँ न भटका, अन्तर् मे जा, तुझे निज-परमात्मा के दर्शन होगे।

ज्ञानी गुरु की करुणा-विगलित वाणी सुनकर वह निकट भव्य जीव कहता है—

"प्रभो! यह आप क्या कह रहे हैं, मैं भगवान कैसे हो सकता हूँ? मैने तो जिनागम मे बताये भगवान बनने के उपाय का अनुसरण आज तक किया ही नही है। न जप किया, न तप किया, न व्रत पाले और न स्वय को जाना-पहचाना—ऐसी अज्ञानी-असयत दशा मे रहते हुए मैं भगवान कैसे हो सकता हूँ?"

अत्यन्त स्नेहपूर्वक समझाते हुए ज्ञानी धर्मात्मा कहते है—

"भाई, ये बनने वाले भगवान की बात नही है, यह तो बने-बनाये भगवान की बात है। स्वभाव की अपेक्षा तुझे भगवान बनना नही है, अपितु स्वभाव से तो तू बना-बनाया भगवान ही है। ऐसा जानना-मानना और अपने मे ही जम जाना, रम जाना पर्याय मे भगवान बनने का उपाय है। तू एक बार सच्चे दिल से अन्तर् की गहराई से इस बात को स्वीकार तो कर, अन्तर् की स्वीकृति आते ही तेरी दृष्टि पर-पदार्थो से हटकर सहज ही स्वभाव-सन्मुख होगी, ज्ञान भी अन्तरोन्मुख होगा और तू अन्तर् मे समा जायगा, लीन हो जायगा, समाधिस्थ हो जायगा। ऐसा होने पर तेरे अन्तर् मे अतीन्द्रिय आनन्द का ऐसा दरिया उमडेगा कि तू निहाल हो जावेगा, कृतकृत्य हो जावेगा। एक बार ऐसा स्वीकार करके तो देख!"

"यदि ऐसी बात है तो आज तक किसी ने क्यो नही बताया?"

"जाने भी दे, इस बात को, आगे की सोच।"

"क्यो जाने दे? इस बात को जाने बिना हम अत्यन्त दुख उठाते रहे, स्वय भगवान होकर भी भोगो के भिखारी बने रहे, और किसी ने बताया तक नही।"

"अरे भाई, जगत को पता हो तो बताये, और ज्ञानी तो बताते ही रहते है, पर कौन सुनता है उनकी, काललब्धि आये बिना किसी का ध्यान ही नही जाता इस ओर। सुन भी लेते है तो इस कान से सुनकर उस कान से बाहर निकाल देते हैं, ध्यान नही देते। समय से पूर्व बताने से किसी को कोई लाभ भी नही होता। अत अब जाने भी दो पुरानी बातो को, आगे की सोचो। स्वय के परमात्मस्वरूप को पहचानो, स्वय के परमात्मस्वरूप को जानो और स्वय मे समा जावो। सुखी होने का एकमात्र यही उपाय है।

कहते-कहते गुरु स्वय मे समा जाते है और भव्यात्मा भी स्वय मे समा जाता है। जब उपयोग बाहर आता है तो उसके चेहरे पर अपूर्व शान्ति होती है, ससार की थकान पूर्णत उतर चुकी होती है, पर्याय की पामरता का कोई चिन्ह चेहरे पर नही होता, स्वभाव की सामर्थ्य का गौरव अवश्य झलकता है।

आत्मज्ञान, श्रद्धान एव आशिक लीनता से आरम्भ मुक्ति के मार्ग पर आरूढ वह भव्यात्मा चक्रवर्ती की सम्पदा और इन्द्रो जैसे भोगो को भी तुच्छ समझने लगता है। कहा भी है—

"चक्रवर्ती की सम्पदा अरु इन्द्र सारिखे भोग।
कागबीट सम गिनत है सम्यग्दृष्टि लोग॥"

यद्यपि अभी वह वही मैला-कुचैला फटा कुर्ता पहने है, मकान भी टूटा-फूटा ही है, क्योकि ये सब तो तब बदलेगे, जब रुपये हाथ मे आ जावेगे। कपडे और मकान श्रद्धा-ज्ञान से नही बदल जाते, उनके लिए तो पैसे चाहिए, पैसे, तथापि उसके चित्त मे आप कही भी दरिद्रता की हीन भावना का नामोनिशान भी नही पायेंगे।

उसी प्रकार जीवन तो सम्यक्चारित्र होने पर ही बदलेगा, अभी तो असयमरूप व्यवहार ही ज्ञानी-धर्मात्मा के देखा जाता है, पर उनके चित्त मे रचमात्र भी हीन भावना नही रहती, ये स्वय को भगवान ही अनुभव करते है।

जिस प्रकार उस युवक के श्रद्धा और ज्ञान मे तो यह बात एक क्षण मे आ गई कि मैं करोडपति हूँ, पर करोडपतियो जैसे रहन-सहन मे अभी वर्षो लग सकते है। पैसा हाथ मे आ जाय, तब मकान बनना आरम्भ हो, उसमे भी समय तो लगेगा ही। उस युवक को अपना जीवन-स्तर उठाने की जल्दी तो है, पर अधीरता नही, क्योकि जब पता चल गया है तो रुपये भी अब मिलेगे ही, आज नही तो कल, कल नही तो परसो, बरसो लगने वाले नही है।

उसी प्रकार श्रद्धा और ज्ञान तो क्षणभर मे परिवर्तित हो जाते है, पर जीवन मे सयम आने मे समय लग सकता है। सयम धारण करने की जल्दी तो प्रत्येक ज्ञानी-धर्मात्मा को रहती ही है, पर अधीरता नही होती, क्योकि जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान और सयम की रुचि (अश) जग गई है तो इसी भव मे, इस भव मे नही तो अगले भव मे, उसमे नही तो उससे अगले भव मे, सयम भी आयेगा ही, अनन्तकाल यो ही जाने वाला नही है।

अत हम सभी का यह परम पावन कर्तव्य है कि हम सब स्वय को सही रूप मे जाने, सही रूप मे पहचाने, इस बात का गहराई से अनुभव करे कि स्वभाव से तो हम सभी सदा से ही भगवान ही हैं—इसमे शका-आशका के लिए कही कोई स्थान नही है। रही बात पर्याय की पामरता की, सो जब हम अपने परमात्मस्वरूप का सम्यग्ज्ञान कर उसी मे अपनापन स्थापित करेंगे, अपने ज्ञानोपयोग (प्रगटज्ञान) को भी सम्पूर्णत उसी मे लगा देगे, स्थापित कर देगे और उसी मे लीन हो जावेगे, जम जावेगे, रम जावेंगे, समा जावेंगे, समाधिस्थ हो जावेंगे तो पर्याय मे भी परमात्मा (अरहतसिद्ध) बनते देर न लगेगी।

अरे भाई! जैनदर्शन के इस अद्भुत परमसत्य को एक बार अन्तर् की गहराई से स्वीकार तो करो कि स्वभाव मे हम सभी भगवान ही है। पर और पर्याय से अपनापन तोडकर एक बार द्रव्यस्वभाव मे अपनापन स्थापित तो करो. फिर देखना अन्तर् मे कैसी क्रान्ति होती है, कैसी अद्भुत और अपूर्व शान्ति उपलब्ध होती है, अतीन्द्रिय आनन्द का कैसा झरना झरता है।

इस अद्भुत सत्य का आनन्द मात्र बातो से आने वाला नही है, अन्तर् मे इस परमसत्य के साक्षात्कार से ही अतीन्द्रिय आनन्द का दरिया उमडेगा। उमडेगा, अवश्य उमडेगा, एक बार सच्चे हृदय से सम्पूर्णत समर्पित होकर निज-भगवान आत्मा की आराधना तो करो, फिर देखना क्या होता है?

बातो से इससे अधिक कुछ नही कहा जा सकता है। अत यह मगलभावना भाते हुए विराम लेता हूँ कि सभी आत्माएँ स्वय के परमात्मस्वरूप को जानकर, पहचानकर स्वय मे ही जमकर, रमकर अनन्त सुख-शान्ति को शीघ्र ही प्राप्त करें। ●

जैन दर्शन में कर्मसिद्धान्त

—पन्यासप्रवर श्री नित्यानन्दविजय जी

[जैन तत्त्व विद्या को अधिकारी विद्वान
प्रसिद्ध प्रवचनकार धर्म प्रभावक सन्त]

भारतीय दर्शनो मे कर्म-दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि पृथ्वी के सभी भागो मे, सभी दर्शनकारो ने कर्मवाद माना है, परन्तु भारतीय दर्शनो मे परस्पर मतभेद होते हुए भी कर्मवाद के अमोघत्व को सभी ने स्वीकार किया है।

विश्व के कवि-मनीपी कर्म-फल के विषय मे एकमत है। अंग्रेजी के महान् साहित्यकार शेक्सपीयर ने कर्म-फल के विषय मे कहा है 'My deeds upon my head' कवि शिह्लन मिश्र 'शान्ति शतकम्' मे वताते है

आकाशमुत्पततु गच्छतु वा दिगन्त—
मम्भोनिधि विशतु तिष्ठतु वा यथेष्टम्।
जन्मान्तरार्जितशुभाशुभकृन्नराणा
छायेव न त्यजति कर्मफलानुवन्धि ॥८२॥

आप आकाश मे चले जाएँ, दिशाओ के उस पार पहुँच जाएँ, समुद्र के तल मे घुस वैठे या चाहे जहाँ चले जाएँ, परन्तु जन्मान्तर मे जो शुभाशुभ कर्म किये है, उनके फल तो छाया के समान साथ ही साथ रहेगे, वे तुम्हे कदापि नही छोडेंगे। जैनाचार्य श्रीमद् अमितगति कहते है—

स्वय कृत कर्म यदात्मना पुरा,
फल तदीय लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्त यदि लभ्यते स्फुट
स्वय कृत कर्म निरर्थक तदा॥

—सामायिक, पाठ ३०

(अपने पूर्वकृत् कर्मो का शुभाशुभ फल भोगना ही पडता है। यदि अन्यकृत कर्मो का फल हमे भोगना पडता हो तव हमारे स्वकृत कर्म निरर्थक ही रहे।)

जैनमतानुसार प्राणिमात्र को कर्म का फल भोगना ही पडता है। फलोत्पत्ति के लिए कर्मफल-नियन्ता ईश्वर का वीच मे कोई स्थान नही है।

भौतिक सस्कृति मे पले हुए लोग कर्मफल मे विश्वास नही करते। उनकी शका है कि "पापी मनुष्य सुखी और सज्जन दु खी क्यो दिखाई देते है ?"

जैनदर्शन के अनुसार कर्म का फल तो अवश्य ही मिलता है उसके मिलने मे कभी अधिक विलम्व भी हो सकता है, परन्तु कर्म का फल न मिले यह तो असम्भव है।

जैनमतानुसार हिसक मनुष्य की समृद्धि और सज्जन पुरुष की दरिद्रता का कारण क्रमश पूर्वजन्मकृत पापानुबन्धी पुण्यकर्म और पुण्यानुबन्धी पापकर्म है। हिंसा और सज्जनता का क्रमश अशुभ और शुभ फल अवश्य मिलता है, चाहे जन्मान्तर मे ही क्यो न मिले।

अनन्त लब्धिनिधान गणधर गौतम स्वामी भगवान महावीर स्वामी से पूछते है
"दुक्खे केण कडे ?"
(दु ख किसने पैदा किया)
भगवान ने बताया
"जीवेण कडे पमाएण"
(स्वय जीव ने ही दु ख उत्पन्न किये हैं)।
गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया
'दु ख पैदा कर आत्मा ने अपना अनिष्ट क्यो किया ?'
प्रभु ने उत्तर दिया
'प्रमादवश।'

प्रमादवश जीव शरीर को आत्मा मानकर भोगो की ओर प्रवृत्त होता है। शारीरिक सुख के लिए वह हिंसा, शोषण आदि दुष्कर्मो मे लिप्त होता है। यह उसकी घोर अज्ञान दशा प्रकट होती है। प्रमाद के कारण जीव राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कालुष्य से कलुषित हो जाता है, अत जीव को अपनी आत्म-शक्ति का बोध होना आवश्यक है।

सम्यक्त्व, स्वाध्याय, सत्सगति, शुद्ध चरित्र आदि से जीव की विभाव दशा मिट जाती है और वह वहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर मुड जाता है।

अन्तर्मुखी आत्मा अपने अन्तर्गत विद्यमान अनन्त चतुष्टय—अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त-सुख और अनन्तवीर्य को अपनी निर्मल साधना से प्रकट करके परमानन्द मे निवास करती है।

जैनदर्शन का कर्मवाद भाग्यवाद को स्वीकार नही करता। उसके अनुसार जीव स्वय अपने भाग्य का निर्माता है। इस निर्माण मे जीव का पुरुपार्थ महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यदि जीव मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थभाव चतुष्टय से विभूषित होकर सत्कर्म मे पुरुपार्थ करे तो उसके अन्तर् के कपाट खुल जायेंगे और वह मानस-मन्दिर मे विराजमान करुणासागर वीतराम परमात्मा के दर्शन कर सकेगा।

O

स्वास्थ्य पर धर्म का प्रभाव

—युवाचार्य महाप्रज्ञ

[सुख्यात दार्शनिक, बहुश्रुत विद्वान् तथा
प्रेक्षाध्यान-योग के अनुभवी साधक एव प्रवक्ता]

卐

मनुष्य इस विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। इसकी श्रेष्ठता का मानदण्ड है—विकसित नाडी-तन्त्र। मनुष्य को जैसा नाडीतन्त्र उपलब्ध है, वैसा किसी अन्य प्राणी को उपलब्ध नही है। इस गरिमा-मय उपलब्धि के लिये उसे सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। उसके मस्तिष्क की सरचना बहुत जटिल है। उसका मेरुदण्ड बहुत शक्तिशाली है। उसे अस्थि मज्जा की विशिष्टता प्राप्त है। अस्थि-रचना केवल एक ढाचा नही है, केवल एक आधार नही है, उसमे अनेक विशेषताएँ छिपी हुई है। सुदृढ अस्थिरचना वाला व्यक्ति ही मन पर नियन्त्रण कर सकता है, मानसिक एकाग्रता को साध सकता है। अस्थिरचना के साथ स्वास्थ्य का भी गहरा सम्बन्ध है। अपने आप मे रहने वाला स्वस्थ (स्वास्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थ) कहलाता है। स्वस्थ की यह व्युत्पत्ति दूसरे नम्बर की है। उसकी पहले नम्बर की व्युत्पत्ति है—जिसकी अस्थियाँ अच्छी होती है वह स्वस्थ (सुष्ठु अस्थि यस्य स स्वस्थ) होता है। मनुष्य के सस्कार अस्थि और मज्जा में अन्तर्निहित होते है। जैसा सस्कार वैसा विचार, व्यवहार और आचार।

स्वास्थ्य का सम्बन्ध केवल शरीर मे नही है। शरीर, मन और भावना—इन तीनो की समीचीन समन्विति का नाम स्वास्थ्य है। बहुत लोग स्वस्थ रहने के लिये पोषक द्रव्यो पर ध्यान केन्द्रित किये हुए है। यह शारीरिक स्वास्थ्य का एक बिन्दु हो सकता है। शरीर अकेला नही है, वह एक समन्वय है। अकेला शरीर स्वस्थ नही रह सकता। मन स्वस्थ है तो शरीर भी स्वस्थ है। यदि मन स्वस्थ नही है तो शरीर कैसे स्वस्थ रहेगा ? हजारो-हजारो वर्ष पहले आयुर्वेद के आचार्यो ने इस सचाई का अनुभव किया था—रोग शारीरिक और मानसिक—दोनो प्रकार के होते है। वर्तमान आयुर्विज्ञान के अनुसार मनोकायिक रोगो की तालिका बहुत लम्बी है। मनोकायिक रोग मन और शरीर—दोनो की रुग्णता से होने वाला रोग है। कायिक रोगो की चिकित्सा

औषधि के द्वारा की जा सकती है। मनोकायिक रोग के लिये औषधि पर्याप्त नही है। मनोभावो को बदले बिना उसकी चिकित्सा सम्भव नही होती।

स्वास्थ्य का मूलस्रोत है—भावो की विशुद्धि। हमारा पूरा जीवन भावधारा के द्वारा सचालित है। भाव से मन प्रभावित होता है और मन से शरीर प्रभावित होता है। जितने निषेधात्मक भाव है, वे सब रोग को निमन्त्रित करने वाले है। क्रोध निषेधात्मक भाव है। उसका वेग अनेक रोगो को निमन्त्रित करता है। उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि के लिये वह विशेष उत्तरदायी है। लोभ भी निषेधात्मक भाव है। उसके वेग मे आहार के प्रति अरुचि, अग्निमाद्य आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। भावो से उत्पन्न होने वाले रोगो का लम्बा विवरण आयुर्वेद के ग्रन्थो में मिलता है। आज वैज्ञानिक भी भाव और रोग के सम्बन्ध की खोज मे काफी आगे बढे है।

स्वास्थ्य के पाँच लक्षण हैं —

१ शारीरिक धातुओ और रसायनो का सन्तुलन
२ प्राण का सन्तुलन
३ इन्द्रियो की प्रसन्नता
४ मन की प्रसन्नता
५ भावो की प्रसन्नता

सन्तुलित आहार से धातुओ और रसायनो का सन्तुलन बनता है। इस सन्तुलन का सम्बन्ध आहार मे है—यह स्पष्ट है। इसका सम्बन्ध धर्म से है—यह बहुत अस्पष्ट है। आहार का सयम करना एक तपस्या है और तपस्या धर्म है। जो व्यक्ति कोलेस्टेरोल बढाने वाली वस्तुएँ अधिक मात्रा मे खाता है वह धमनिकाठिन्य और हृदय रोग से मुक्त नही रह सकता। जो व्यक्ति अधिक मात्रा मे नमक खाता है, वह उच्च रक्तचाप और गुर्दे की बीमारी से कैसे बच सकता है? अधिक मात्रा में सफेद चीनी खाने वाला क्या अम्लता और मधुमेह को निमन्त्रित नही कर रहा है? हमारे शरीर के लिये आहार जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी है आहार का सयम अथवा अस्वाद का व्रत।

जीवन-यात्रा के लिये मन की चचलता जरूरी है। वह सीमा से आगे बढ जाती है तब उससे स्वास्थ्य प्रभावित होता है। पहले मानसिक स्वास्थ्य फिर शारीरिक स्वास्थ्य। चचलता को कम करना केवल मानसिक शान्ति की ही साधना नही है, वह शारीरिक स्वास्थ्य की साधना है। मन की एकाग्रता धर्म का आन्तरिक तत्त्व है। वह स्वास्थ्य का भी एक महत्वपूर्ण अग है।

आहार, नीद और ब्रह्मचर्य—ये तीन स्वास्थ्य के आधार माने जाते है। आहारसयम की भाँति नीद का सयम भी आवश्यक है। बहुत नीद लेना स्वास्थ्य के लिए हितकर नही है। सामान्यत दिन मे सोना अच्छा नही है। यदि आवश्यक हो तो बहुत कम समय के लिए। बहुत है, आधा घण्टा। एक घण्टा तो बहुत ज्यादा है। रात में भी अवस्था अनुपात मे पाँच, छ या सात घण्टा नीद लेना पर्याप्त है। जागरूकता धर्म का महत्वपूर्ण अग है।

सुकरात से पूछा गया—सभोग कितनी बार करना चाहिये?
सुकरात—जीवन मे एक बार।
यह सम्भव नही हो तो?
वर्ष मे एक बार।

यह भी सम्भव न हो तो ?
महीने में एक बार।
यह भी सम्भव न हो तो ?
सुकरात ने कहा—कफन सिरहाने रख लो फिर चाहे जैसे करो।

आहार-सयम, निद्रा-सयम, ब्रह्मचर्य और विधायक भाव ये सब धर्म के प्राण तत्व है। इनकी आराधना धर्म की आराधना है और स्वास्थ्य की साधना भी।

आज धर्म की आराधना कम होती है, सम्प्रदाय की आराधना अधिक होती है। साम्प्रदायिक आचार-सहिता को धर्म मानने वाले लोग अधिक है। धर्म का मूल तत्व भिन्न नही हो सकता। उसमे देश-काल का भेद भी नही होता। यदि त्याग और तपस्या के प्रयोग जीवन मे किये जाएँ तो साम्प्रदायिकता की समस्या भी कम हो सकती है, स्वास्थ्य भी अच्छा रह सकता है।

कुछ रोग आगतुक होते है। चोट लगी हड्डी टूट गई। कुछ सक्रामक होते हैं। कुछ रोग कर्मज होते है। ये सभी स्वास्थ्य को कमजोर बना देते है। इस बहुसक्रामी युग में कोई आदमी अकेला रहता नही, अप्रभावित हुए बिना भी नही रह सकता। इस स्थिति मे स्वास्थ्य के मूल तत्व की खोज आवश्यक होती है। वह है प्राण।

शरीर की अतिरिक्त चचलता—
वाणी की अतिरिक्त चचलता
मन की अतिरिक्त चचलता
श्वास की तेज गति
आहार का असयम
भोग का असयम
निषेधात्मक भाव

ये सब प्राण को क्षीण करते है। आयुर्विज्ञान की भाषा मे रोग-निरोधक क्षमता और आत्मरक्षा प्रणाली को अव्यवस्थित बना देते हैं। फलत बीमारियो के बीज को पनपने का मौका मिल जाता है।

धर्म की आराधना का प्रत्यक्ष उद्देश्य है—भावना की विशुद्धि, मन की एकाग्रता और आत्मा की अनुभूति। उसका परोक्ष परिणाम है—प्राण को प्रबल बनाना। प्राण प्रबल होता है, स्वास्थ्य की धारा अपने आप प्रवाहित हो जाती है।

☐ ☐

पूर्णता या परोपाधे सा याचितकमण्डनम्।
या तु स्वाभाविकी सैव जात्यरत्न विभानिभा।

पराई वस्तु (पुद्गलो) से जो पूर्णता मानी जाती है, वह तो उधार माँगकर पहने हुए आभूषण के समान है। जैसे कि रत्न की अपनी अलौकिक कान्ति उसकी अपनी होती है वैसे ही आत्म भावो से प्राप्त पूर्णता आत्मा की वास्तविक पूर्णता है। —ज्ञानसार १/२

(विवेचक—मुनिश्री भद्रगुप्तविजय जी)

जैन धर्म में मनोविद्या

—गणेश ललवाणी (कलकत्ता)

(धर्म एव दर्शन के क्षेत्र मे जाने-माने क्रान्तिकारी चिन्तक,
हिन्दी-सस्कृत-बगला-अँग्रेजी आदि अनेक भाषाविज्ञ लेखक)

●

जीव तत्व की आलोचना करते हुए जैन मनीषियो ने मनोविद्या नामक ऐसे तत्व की आलोचना की है, विश्लेषण किया है जिसे कि आज हम 'साइकोलाजी' कहते हैं ।

जीव के गुणो मे चेतना एव उपयोग को प्रधान माना गया है । किन्तु चेतना क्या है ? यह समझना उतना आसान नही है क्योकि यह अनुभूति का विषय है । फिर भी चेतना की अभिव्यक्ति किन-किन रूपो मे होती है इस पर प्रकाश डाला गया है । यह अभिव्यक्ति तीन प्रकार से होती है, यथा—(१) सुख-दुख की अनुभूति से, (२) कार्य करने की शक्ति से, (३) ज्ञान की अनुभूति से । जैन दर्शन के अनुसार स्थावर जीव भी सुख-दुख अनुभव करता है, पर कार्य करने की शक्ति अनुभव नही करता जबकि निम्नस्तरीय त्रस जीव सुख-दुख की अनुभूति के साथ कार्य करने की शक्ति को अनुभव करता है, लेकिन उसे ज्ञान की अनुभूति नही होती । ज्ञान की अनुभूति तो होती है मात्र मनुष्य जैसे उच्च स्तरीय जीवो को ही । इन तीन प्रकार की अनुभूतियो को पूर्ण चैतन्य के विकास क्रम के तीन स्तर भी मान सकते हैं—प्रथम स्तर है सुख-दुख के अनुभव का, द्वितीय कार्यशक्ति का, तृतीय ज्ञानशक्ति का । इससे यह फलित हुआ कि जिसे साधारणतया अचेतन पदार्थ समझा जाता है उन मृत्तिकादि मे भी चेतना शक्ति तो है, किन्तु है अविकसित रूप मे । उस चेतना की अभिव्यक्ति होती है मात्र सुख-दुख के अनुभव मे । पाश्चात्य क्रम-विकासवादी मनोवैज्ञानिको ने भी आज इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है । वे कहने लगे हैं कि मनुष्येतर जीवो मे भी एक प्रकार का निम्न स्तरीय चैतन्य रहता है । वे केवल अचैतन्य वस्तु पिण्ड मात्र ही नही हे ।

जीव का दूसरा गुण है उपयोग । उसके भी दर्शन और ज्ञान के भेद से दो प्रकार बताए गए हैं । वस्तु का सामान्य अनुभव है दर्शन । दर्शन मे तो मात्र इतनी ही उपलब्धि होती है 'कुछ है' । उदाहरण-

स्वरूप एक गाय को लीजिए। आपने गाय देखी। दर्शन से आपको इतना ही अनुभव हुआ 'गाय कुछ है' पर क्या है इसकी विशेष जानकारी नही होती। उसके सीग है, पूँछ है, वह घास खाती है, दूध देती है यह सब ज्ञान नही होता। ज्ञान तो उपयोग का दूसरा प्रकार है जिसका उदय होता है दर्शन के बाद। और यह किस प्रकार उदय होता है, आगे जाकर इसकी चर्चा करेंगे।

शास्त्रो मे दर्शन के चार प्रकार बताए गए है। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवल-दर्शन। आँखो से देखकर जब यह अनुभव होता है कि 'कुछ है' तो उसे चक्षुदर्शन कहते है और जो अनुभव आँख के अतिरिक्त नाक, कान, जीभ और त्वचा से होता है उसे कहते है अचक्षुदर्शन। अवधि-दर्शन का अर्थ है एक सीमा के मध्य रूपी द्रव्यो का सामान्य-सा अनुभव और केवलदर्शन का विश्व के समस्त पदार्थो का सामान्य अनुभव।

उपयोग का दूसरा लक्षण है 'ज्ञान'। ज्ञान के पाँच भेद है—मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव और केवल। इनमे प्रथम दो मति और श्रुत ज्ञान को जैन दर्शन मे परोक्ष एव शेष तीन को प्रत्यक्ष माना है। अन्य दर्शन मति अर्थात् इन्द्रियलब्ध ज्ञान को ही प्रत्यक्ष मानता है। किन्तु जैनदर्शन ऐसा नही मानता। वह कहता है जो ज्ञान आत्मा द्वारा होता है वही ज्ञान प्रत्यक्ष है और जो इन्द्रिय तथा मन के सहारे से उत्पन्न होता है वह परोक्ष है। क्योकि जो ज्ञान सीधा आत्मा से होता है उसमे भ्रान्ति हो नही सकती। कारण वह स्व का ज्ञान है। पर जो ज्ञान अन्य की सहायता से उत्पन्न होता है वह भ्रान्तियुक्त हो सकता है। इस भ्रान्त ज्ञान को ही जैनदर्शन 'मिथ्याज्ञान' कहता है और इसके विपरीत ज्ञान को सम्यक् ज्ञान। मति के मिथ्याज्ञान को कुमति, श्रुत के मिथ्याज्ञान को कुश्रुत कहा जाता है।

अवधिज्ञान आत्मिक होने पर भी उस समय मिथ्या हो सकता है जब कि वह अवधि की पूर्ण सीमा तक का पूर्ण ज्ञान न होकर आशिक रूप में उत्पन्न होता है। इस अपूर्ण अवधिज्ञान को विभग-ज्ञान कहते है। भगवान महावीर के समय के कुछ ऐसे व्यक्तियो का उल्लेख हम शास्त्रो मे पाते है जिन्हे यह विभगज्ञान हुआ था और भगवान के समीप जाने पर उनके द्वारा उस भ्रान्त ज्ञान का निरसन किया गया था।

दर्शन के बाद सर्वप्रथम जिस ज्ञान का उद्भव होता है वह है मतिज्ञान। यह ज्ञान मन और इन्द्रियो के सहारे से ही उत्पन्न होता है। मतिज्ञान के भी तीन प्रकार है—उपलब्धि, भावना, उपयोग। किन्तु, इनकी व्याख्या निष्प्रयोजन है। इनका स्वरूप तो नाम से ही प्रकट है। यथा—उपलब्धि अर्थात् ज्ञान का अनुभव, भावना—उस ज्ञान का चिन्तन, उपयोग—वैसी ही परिस्थिति मे पुन उसका प्रयोग। इसी प्रक्रिया का और अधिक स्पष्टीकरण करने के लिए कुछ जैन दार्शनिको ने मतिज्ञान को पाँच भागो मे विभक्त किया है। जैसे—मति, स्मृति, सज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध।

दर्शन से 'कुछ है' यह बोध होने के पश्चात ही ज्ञान की जो क्रिया प्रारम्भ होती है उसका नाम है उपलब्धि या मति। पाश्चात्य दर्शन में इसे सेन्स इन्ट्यूइसन (sense intuition) या परसेप्शन (perception) कहते है। जो मतिज्ञान केवल इन्द्रियो की सहायता मे होता है उसे इन्द्रियनिमित्त मतिज्ञान कहते है और जो ज्ञान अनिन्द्रिय अर्थात् अर्थात् मन की अपेक्षा रखता है उसे अनिन्द्रिय मतिज्ञान कहते है। पर ये दोनो ज्ञान एक ही विषय के दो रूप है। आपने आँख से गाय देखी पर जब तक मन उसको ग्रहण नही करता तब तक उसका बोध नही होता। राह चलते हम हजारो वस्तुएँ देखते है पर मन का

जैन धर्म में मनोविद्या

—गणेश ललवाणी (कलकत्ता)

(धर्म एव दर्शन के क्षेत्र मे जाने-माने क्रान्तिकारी चिन्तक,
हिन्दी-सस्कृत-बगला-अँग्रेजी आदि अनेक भाषाविज्ञ लेखक)

●

जीव तत्व की आलोचना करते हुए जैन मनीषियो ने मनोविद्या नामक ऐसे तत्व की आलोचना की है, विश्लेपण किया है जिसे कि आज हम 'साइकोलाजी' कहते हैं।

जीव के गुणो मे चेतना एव उपयोग को प्रधान माना गया है। किन्तु चेतना क्या है? यह समझना उतना आसान नही है क्योकि यह अनुभूति का विषय है। फिर भी चेतना की अभिव्यक्ति किन-किन रूपो मे होती है इस पर प्रकाश डाला गया है। यह अभिव्यक्ति तीन प्रकार से होती है, यथा—(१) सुख-दुख की अनुभूति से, (२) कार्य करने की शक्ति से, (३) ज्ञान की अनुभूति से। जैन दर्शन के अनुसार स्थावर जीव भी सुख-दुख अनुभव करता है, पर कार्य करने की शक्ति अनुभव नही करता जबकि निम्नस्तरीय त्रस जीव सुख-दुख की अनुभूति के साथ कार्य करने की शक्ति को अनुभव करता है, लेकिन उसे ज्ञान की अनुभूति नही होती। ज्ञान की अनुभूति तो होती है मात्र मनुष्य जैसे उच्च स्तरीय जीवो को ही। इन तीन प्रकार की अनुभूतियो को पूर्ण चैतन्य के विकास क्रम के तीन स्तर भी मान सकते हैं—प्रथम स्तर है सुख-दुख के अनुभव का, द्वितीय कार्यशक्ति का, तृतीय ज्ञानशक्ति का। इससे यह फलित हुआ कि जिसे साधारणतया अचेतन पदार्थ समझा जाता है उन मृत्तिकादि मे भी चेतना शक्ति तो है, किन्तु है अविकसित रूप मे। उस चेतना की अभिव्यक्ति होती है मात्र सुख-दुख के अनुभव मे। पाश्चात्य क्रम-विकासवादी मनोवैज्ञानिको ने भी आज इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है। वे कहने लगे है कि मनुष्येतर जीवो मे भी एक प्रकार का निम्न स्तरीय चैतन्य रहता है। वे केवल अचैतन्य वस्तु पिण्ड मात्र ही नही है।

जीव का दूसरा गुण है उपयोग। उसके भी दर्शन और ज्ञान के भेद से दो प्रकार बताए गए हैं। वस्तु का सामान्य अनुभव है दर्शन। दर्शन मे तो मात्र इतनी ही उपलब्धि होती है 'कुछ है'। उदाहरण-

स्वरूप एक गाय को लीजिए। आपने गाय देखी। दर्शन से आपको इतना ही अनुभव हुआ 'गाय कुछ है' पर क्या है इसकी विशेष जानकारी नही होती। उसके सीग है, पूँछ है, वह घास खाती है, दूध देती है यह सब ज्ञान नही होना। ज्ञान तो उपयोग का दूसरा प्रकार है जिसका उदय होता है दर्शन के बाद। और यह किस प्रकार उदय होता है, आगे जाकर इसकी चर्चा करेगे।

शास्त्रो मे दर्शन के चार प्रकार बताए गए है। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवल-दर्शन। आँखो से देखकर जब यह अनुभव होना है कि 'कुछ है' तो उसे चक्षुदर्शन कहते है और जो अनुभव आँख के अतिरिक्त नाक, कान, जीभ और त्वचा से होता है उसे कहते है अचक्षुदर्शन। अवधि-दर्शन का अर्थ है एक सीमा के मध्य रूपी द्रव्यो का सामान्य-सा अनुभव और केवलदर्शन का विश्व के समस्त पदार्थों का सामान्य अनुभव।

उपयोग का दूसरा लक्षण है 'ज्ञान'। ज्ञान के पाँच भेद है—मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव और केवल। इनमे प्रथम दो मति और श्रुत ज्ञान को जैन दर्शन मे परोक्ष एव शेष तीन को प्रत्यक्ष माना है। अन्य दर्शन मति अर्थात् इन्द्रियलब्ध ज्ञान को ही प्रत्यक्ष मानता है। किन्तु जैनदर्शन ऐसा नही मानता। वह कहता है जो ज्ञान आत्मा द्वारा होता है वही ज्ञान प्रत्यक्ष है और जो इन्द्रिय तथा मन के सहारे से उत्पन्न होता है वह परोक्ष है। क्योकि जो ज्ञान सीधा आत्मा से होता है उसमे भ्रान्ति हो नही सकती। कारण वह स्व का ज्ञान है। पर जो ज्ञान अन्य की सहायता से उत्पन्न होता है वह भ्रान्तियुक्त हो सकता है। इस भ्रान्त ज्ञान को ही जैनदर्शन 'मिथ्याज्ञान' कहता है और इसके विपरीत ज्ञान को सम्यक् ज्ञान। मति के मिथ्याज्ञान को कुमति, श्रुत के मिथ्याज्ञान को कुश्रुत कहा जाता है।

अवधिज्ञान आत्मिक होने पर भी उस समय मिथ्या हो सकता है जब कि वह अवधि की पूर्ण सीमा तक का पूर्ण ज्ञान न होकर आशिक रूप मे उत्पन्न होता है। इस अपूर्ण अवधिज्ञान को विभग-ज्ञान कहते है। भगवान महावीर के समय के कुछ ऐसे व्यक्तियो का उल्लेख हम शास्त्रो मे पाते है जिन्हे यह विभगज्ञान हुआ था और भगवान के समीप जाने पर उनके द्वारा उस भ्रान्त ज्ञान का निरसन किया गया था।

दर्शन के बाद सर्वप्रथम जिस ज्ञान का उद्भव होता है वह है मतिज्ञान। यह ज्ञान मन और इन्द्रियो के सहारे से ही उत्पन्न होता है। मतिज्ञान के भी तीन प्रकार है—उपलब्धि, भावना, उपयोग। किन्तु, इनकी व्याख्या निष्प्रयोजन है। इनका स्वरूप तो नाम से ही प्रकट है। यथा—उपलब्धि अर्थात् ज्ञान का अनुभव, भावना—उस ज्ञान का चिन्तन, उपयोग—वैसी ही परिस्थिति मे पुन उसका प्रयोग। इसी प्रक्रिया का और अधिक स्पष्टीकरण करने के लिए कुछ जैन दार्शनिको ने मतिज्ञान को पाँच भागो मे विभक्त किया है। जैसे—मति, स्मृति, सज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध।

दर्शन से 'कुछ है' यह बोध होने के पश्चात ही ज्ञान की जो क्रिया प्रारम्भ होती है उसका नाम है उपलब्धि या मति। पाश्चात्य दर्शन मे इसे सेन्स इन्ट्यूइसन (sense intuition) या परसेप्शन (perception) कहते है। जो मतिज्ञान केवल इन्द्रियो की सहायता से होना है उसे इन्द्रियनिमित्त मतिज्ञान कहते है और जो ज्ञान अनिन्द्रिय अर्थात् अर्थात् मन की अपेक्षा रखता है उसे अनिन्द्रिय मतिज्ञान कहते है। पर ये दोनो ज्ञान एक ही विषय के दो रूप है। आपने आँख से गाय देखी पर जब तक मन उसको ग्रहण नही करता तब तक उसका बोध नही होता। राह चलते हम हजारो वस्तुएँ देखते है पर मन का

सयोग नही होने के कारण वे हमारे ज्ञान का विपय नही वनती। ज्ञान का विषय वही वनता है जिसके साथ हमारे मन का सयोग होता है। 'लक' ने इसे (idea of sensation) और (idea of reflection) कहा था। आज के पाश्चात्य दार्शनिकगण इसे वहिर्गानुशीलन (extrospection) और अन्तरानुशीलन (introspection) कहते है।

इन्द्रियो के भेद से मतिज्ञान के भी पॉच भेद है। यथा—आँखजनित मतिज्ञान, कानजनित मतिज्ञान, नाकजनित मतिज्ञान, जिह्वाजनित मतिज्ञान और त्वचाजनित मतिज्ञान।

मतिज्ञान या उपलब्धि परसेप्शन (perception) हमे जिस प्रकार होती हे अर्थात् उसमे जो-जो चित्तवृत्तियाँ काम करती है उसका विवरण आज के वैज्ञानिकगण जिस प्रकार दे रहे है उसे जैन दार्शनिको ने हजारो वर्प पूर्व ही दे दिया था। जैन दर्शन ने उन चित्तवृत्तियो को चार नाम दिये है—(१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय, (४) धारणा। दर्शन और अवग्रह मे कुछ अधिक अन्तर नही है। कारण अवग्रह से भी 'कुछ है' इतनी ही प्रतीति होती है, उसके विपय मे सुनिश्चित या सविशेप रूप मे कोई ज्ञान नही होता। जैसा कि हमने गाय के उदाहरण से स्पप्ट किया था। पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे सेन्सेशन (sensation) या प्रिमियम कगनितम (premium cognitum) कहते है। विपय को स्पप्ट करने के लिये इसकी तुलना हम किसी नायक-नायिका के प्रथम दर्शन से कर सकते है। प्रथम होता है मात्र दर्शन। फिर यह जानने की इच्छा होती है, 'वह कौन है ?' इस इच्छा का नाम ही है ईहा। पाश्चात्य दर्शन मे इसे परसेप्चुअल एटेन्शन (perceptual attention) कहते है। वह कौन है यह जानने की व्यग्रता के फलस्वरूप वे जानकारी हासिल करते है कि वह अमुक है। बस इसी प्रक्रिया का नाम है 'अवाय'। पाश्चात्य दार्शनिको की परिभाषा मे यह परसेप्चुअल डिटरमिनेशन (perceptual determination) है। अर्थात् वह अमुक का पुत्र है, अमुक की कन्या है आदि आदि। अवाय मे मतिज्ञान पूर्णता प्राप्त कर लेता है। पर यह अवाय भी किस काम का यदि वह ज्ञान चित्त मे स्थिरता प्राप्त न करे। इतना सव कुछ होने के पश्चात् भी यदि नायक-नायिका एक दूसरे को भूल जाएँ तो वह समस्त व्यर्थ है। अत जिस चित्तवृत्ति के आधार पर यह स्थिरता प्राप्त होती है उसे 'धारणा' कहते है। पाश्चात्य दार्शनिकगण इसे परसेप्चुअल रिटेन्शन (perceptual retension) कहते है।

अवग्रह से धारणा तक मतिज्ञान का प्रथम क्षेत्र है। धारणा मे जो वस्तु बैठ जाती है वह स्मृति का विषय वन जाती है। पूर्वानुभूत विषय के स्मरण का नाम है स्मृति। पाश्चात्य विज्ञान इसे रिकलेक्शन (recollection) या रिकग्निशन (recognition) कहता है। रिकग्निशन या रिकलेक्शन का तात्पर्य है देखी हुई वस्तु को मन मे लाना और उसकी सहायता से जो वस्तुएँ देखी जाती है उन्हे पहचानना। हमने गाय देखी। वह देखना चित्त मे स्थिर हो गया। स्थिर होते ही उसकी स्मृति वन गयी। अत जब हम गाय को देखते है तो उसी स्मृति के आधार पर हम कहते है यह गाय है। 'हब्स' 'हिउम' आदि पाश्चात्य दार्शनिको का यह मत था कि जिसे हम स्मृति कहते हैं वह क्षीयमान मतिज्ञान ही है। परन्तु यह गलत है। कारण, इसमे कुछ ऐसी विशेपता भी है कि जिसके कारण उसे कभी नही भूलते एव देखने मात्र से ही उसकी स्मृति हो आती है। जैसे कि गाय को देखते ही आप दस वर्प की उमर मे भी यही कहेगे 'यह गाय है' और पचास वर्प की उमर मे भी यही कहेगे—'यह गाय है'। स्मृति यदि क्षीयमान मति ही होती तो आप उसे भूल जाते। अत 'हब्स' एव 'हिउम' के मत का आज के 'रीड' आदि पाश्चात्य दार्शनिको ने

है वह इस तर्क या विचार पर ही कहते है । कारण हमने गाय की जो सज्ञा प्रस्तुत की थी वह सव इसमे है । पाश्चात्य विज्ञान इसे इन्डक्शन (induction) कहते हैं । और वे भी जैन दार्शनिको की भाँति ही इन्डक्शन को आवजरवेशन (observation) या भूयोदर्शन का परिणाम मानते है । साथ ही जैनाचार्यो की भाँति यह भी मानते है कि गाय और गोत्व का जो सम्बन्ध है वह इनवेरियेवल (invariable) व अनकन्डिशनल (unconditional) है । जैन दर्शन इसे अविनाभाव या अन्यथानुपपत्ति कहता है ।

अभिनिबोध—तर्कलब्ध विपय की सहायता से अन्य विपय के ज्ञान को अभिनिवोध कहते है। इसका दूसरा नाम है अनुमान । अनुमान को पाश्चात्य विज्ञान मे डिडक्शन (deduction) कहते है। न्यायशास्त्र मे इसका एक प्रचलित उदाहरण है 'पर्वतो वह्निमान धूमात् । पर्वत से धूम या धुआँ निकलते देखकर हम अनुमान करते है कि पर्वत पर आग लगी है । यह अनुमान तर्क पर प्रतिष्ठित है । आग एव धुएँ मे जो अविनाभाव सम्बन्ध है वह तर्क से ही प्राप्त हुआ था । जहाँ-जहाँ हमने आग देखी, वहाँ-वहाँ धुँआ देखा । अत यह सोच लेते हैं कि पहाड से जव धुँआ निकल रहा है तो अवश्य ही वहाँ आग हे ।

वास्तव मे अनुमान तर्कशास्त्र का प्राण है । यह प्रत्यक्षमूलक होने पर भी ज्ञान के आहरण मे अपना विशिप्ट स्थान रखता है । कारण, अनुमान के आधार पर ही हम ससार के अधिकतम व्यवहार चला रहे हैं और अनुमान के आधार पर ही तर्कशास्त्र का विशाल भवन खडा है ।

अनुमान कार्य-कारण के सम्बन्ध से ही उद्भूत होता है । अग्नि से धूम की उत्पत्ति होती है। अग्नि के अभाव मे धूम उत्पन्न नही होता । इस प्रकार कार्य-कारणभाव व्याप्ति का अविनाभाव सम्बन्ध कहलाता है । इसका निश्चय तर्क से होता है जैसा कि हम ऊपर कह आए है । अविनाभाव निश्चित हो जाने पर कारण को देखते ही कार्य का बोध हो जाता है । यह बोध ही अनुमान है । जिस प्रकार धूम को देखकर ही अदृष्ट अग्नि का अनुमान हम कर लेते हैं इसी प्रकार जव हम किसी शब्द को सुनते ही अनुमान कर लेते हैं कि यह आवाज पशु की है या मनुष्य की । फिर मनुष्य की भी है तो अमुक मनुष्य की, पशु की है तो अमुक पशु की । स्वर से स्वर वाले को पहचान लेना अनुमान का ही फल है ।

अनुमान के भी दो भेद है—स्वार्थानुमान, परार्थानुमान । आप जब अपनी अनुभूति से यह ज्ञान प्राप्त करते है तो वह स्वार्थानुमान होता है । पर वाक्य के प्रयोग द्वारा जब वह अन्य को समझाया जाता है तो उसे परार्थानुमान कहा जाता है। परार्थानुमान का शाब्दिक रूप कैसा होगा इस विषय मे न्याय दर्शन ने इन पाँच अवयवो को माना है

१ पर्वत मे अग्नि है (प्रतिज्ञा)
२ क्योकि वहाँ धूम है (हेतु)
३ जहाँ-जहाँ धूम हे, वहाँ-वहाँ अग्नि है (व्याप्ति)
४ पर्वत मे धूम है (उपनय)
५ अत पर्वत मे अग्नि है (निगमन)

प्रसगवश प्रमाण के विषय मे यहाँ दो शव्द उपस्थित किए जाते है। प्रमाण चार प्रकार के होते है। यथा—(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) आगम प्रमाण, (४) उपमान प्रमाण । प्रत्यक्ष प्रमाणो की आलोचना मति आदि ज्ञान की आलोचना मे हो जाती है, अनुमान का उपरोक्त आलोचना मे । आगम प्रमाण का वर्णन श्रुतज्ञान की व्याख्या मे करेगे। उपमान प्रमाण वहाँ है जहाँ प्रसिद्ध पदार्थ के सादृश्य

मे अप्रसिद्ध पदार्थ का बोध होता है। गवय एक पशु है जो कि गाय जैसा होता है। यह बात जिन लोगो ने सुन रखी है वे गाय के सदृश पशु को देखते ही समझ जायेगे कि यह गवय है। इस प्रकार दर्शन और स्मरण के निमित्त से होने वाला सादृश्यता का ज्ञान ही उपमान है।

श्रुतज्ञान—सामान्यत श्रुत का अर्थ है सुना हुआ। वक्ता द्वारा प्रयुक्त शब्द को सुनकर वाच्य-वाचक सम्बन्ध से श्रोता को जो शब्दबोध होता है वह श्रुतज्ञान कहलाता है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि श्रुतज्ञान के पूर्व मतिज्ञान होना अनिवार्य है। ज्ञान के द्वारा श्रोता को शब्दो का जो ज्ञान होता है, वह श्रुतज्ञान है। अत मति और श्रुत ज्ञान में कार्य-कारण का सम्बन्ध है। मतिज्ञान कारण है और श्रुतज्ञान कार्य। मतिज्ञान के अभाव में श्रुतज्ञान पैदा नही होता। यद्यपि ये दोनो ज्ञान एक साथ रहने वाले है, परोक्ष है, फिर भी उनमें भिन्नता है। मतिज्ञान मूक है श्रुतज्ञान मुखर है। मतिज्ञान वर्तमान विषय का ग्राहक है तो श्रुतज्ञान त्रिकाल विषय का ग्राहक है। श्रुतज्ञान से ही हमे प्राचीन इतिहास आदि का, अपनी भवितव्यता का ज्ञान होता है। अभिप्राय यह है कि इन्द्रिय-मनोजन्य दीर्घ-कालीन ज्ञान धारा का प्राथमिक अपरिपक्व अश मतिज्ञान है। और उत्तरकालीन परिपक्व अश श्रुतज्ञान है। जब यह श्रुतज्ञान किसी को पूर्ण मात्रा मे प्राप्त हो जाता है तो उसे श्रुतकेवली कहते है।

श्रुतज्ञान के दो भेद है—(१) द्रव्यश्रुत (२) भावश्रुत। भावश्रुत ज्ञानात्मक है, द्रव्यश्रुत शब्दात्मक है। द्रव्यश्रुत ही आगम है।

अनेक भारतीय धर्मो की भाँति जैन धर्म भी आगम के प्रामाण्य को अगीकार करता है। कारण, जैनधर्म के अनुसार अनेकान्त दृष्टि के प्रवर्तक अखण्ड सत्य के द्रष्टा केवलज्ञानी तीर्थकरो ने समस्त जीवो पर करुणा कर प्रवचन कुसुमो की वृष्टि की। और तीर्थकारो के महान मेधावी गणधरो ने उन्हे अपने बुद्धिपट पर झेलकर प्रवचनमाला गूँथी। अत जैनपरम्परा मे उन प्रवचन मालाओ को आगम प्रमाण रूप मे माना जाता है। तर्क थक जाता है, लक्ष्य डगमगाने लगता है, चित्त चचल हो उठता है तब आप्त प्रणीत आगम ही मुमुक्षुजनो का एकमात्र आधार बनता है। यह आगम ही द्रव्यश्रुत कहलाता है और इनके सहारे उत्पन्न होने वाला ज्ञान भावश्रुत है।

मतिज्ञान की भाँति जैनाचार्यो ने श्रुतज्ञान को भी लब्धि, भावना, उपयोग और नय इन चार भागो मे विभाजित किया है। परन्तु वास्तव मे वह विषय समूह का व्याख्यान भेद मात्र है। इस व्याख्यान प्रणाली के साथ पाश्चात्य तर्क विद्या के एक्सप्लेनेशन (explanation) का सादृश्य है। किसी वस्तु को उसके साथ सम्बन्धयुक्त वस्तु की सहायता से निर्देश करने का नाम है 'लब्धि'। उदाहरणत जब हम गाय शब्द को सुनते है तो प्रथम गाय का सामान्य सा अनुभव होता है और वह भी पूर्व देखी हुई गाय के सादृश्य से। इसे ही हम लब्धि कहते है। तत्पश्चात् उसकी प्रकृति, स्वरूप, कार्य आदि की जो धारणा बनी हुई थी वह समक्ष आती है। इसी का नाम है 'भावना'। भावना प्रयोग कर जब गाय का अर्थ अवधारित करते है उसे उपयोग' कहा जाता है। पर 'नय' कुछ विशेष है। इसमे हम गाय शब्द के अर्थ को और भी परिष्कृत करते है। जैसे गो शब्द को लीजिए। 'गो' शब्द के अर्थ है गाय, धरती, वाक् आदि आदि। अर्थात् जो चलती है वह गो है। किन्तु गो का तात्पर्य हम गाय करते है तो उसका चलनात्मक सामान्य धर्म को न देखकर केवल उसके विशेष धर्म दूध देने पर दृष्टि निबद्ध करते है। बस, यही कार्य है नय का।

मति और श्रुत ज्ञान के साथ-साथ परोक्ष ज्ञान की आलोचना समाप्त होती है। ये दोनो ज्ञान ससारी जीवो को रहते है। किन्तु अब जो प्रत्यक्ष ज्ञान विवृत करने जा रहे है, वे ऐसे नही हैं। जहाँ तक मनुष्य और तिर्यंचो का सम्बन्ध है उन्हे अवधिज्ञान साधना द्वारा ही प्राप्त होता है। जिनमे जन्म से यह ज्ञान देखा जाता है वह उनकी पूर्वजन्मार्जित साधना का परिणाम ही मानना पडेगा।

अवधिज्ञान—अवधि का अर्थ है सीमा या मर्यादा। जब आत्मा मन और इन्द्रियो की सहायता के बिना ही साक्षात् आत्मिक शक्ति के द्वारा रूपी पदार्थो को मर्यादित रूप मे जानने लगती है तो उसे अवधिज्ञान कहते है।

मन पर्याय ज्ञान—मन पर्याय ज्ञान तो विशिष्ट साधक को ही प्राप्त होता है। जिसने सयम की उत्कृष्टता प्राप्त की है, जिसका अन्त करण अत्यन्त निर्मल हो चुका है, वही इस *ज्ञान का अधिकारी होता* है। इस ज्ञान के द्वारा प्राणी की चित्तवृत्तियो को, मनोभावो को, एक निर्दिष्ट सीमा मे जाना जा सकता है।

अवधि एव मन पर्याय दोनो ज्ञान ही यद्यपि अपूर्ण है तथापि यह असाधारण है। आधुनिक विज्ञान जिसे क्लेअरवायेन्स (clairvoyance) कहते है उसके साथ अवधि एव टेलीपैथी या माइण्ड-रीडिंग (telepathy or mind-reading) के साथ मन पर्याय ज्ञान की कथचित् तुलना की जा सकती है।

केवलज्ञान—जिस ज्ञान से त्रिकालवर्ती और त्रिलोकवर्त्ती समस्त वस्तुएँ एक साथ जानी जा सकती हैं उस सर्वोत्तम ज्ञान को केवलज्ञान कहा जाता है। थियोजाफिस्टगण इस ज्ञान को ओम्नीसाएन्स (omniscience) कहते हैं। इस ज्ञान की प्राप्ति होने पर आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और परम चिन्मय बन जाती है। यह मनुष्य की साधना का चरम फल है। इस फल की प्राप्ति होने पर आत्मा जीवन्मुक्त हो जाती है और पूर्ण सिद्धि के सन्निकट पहुँच जाती है।

□□

ज्योतिर्मयीव दीपस्य क्रिया सर्वाऽपि चिन्मयी।
यस्यानन्यस्वभावस्य तस्य मौनमनुत्तरम् ॥

जिस तरह दीपक की समस्त क्रियाएँ (ज्योति का ऊँचा-नीचा होना) प्रकाशमय होती है, ठीक उसी तरह आत्मा की सभी क्रियाएँ ज्ञानमय होती हैं उस अनन्य स्वभाव वाले (एक आत्म स्वभाव मे लीन) मुनि का मौन अनुत्तर (सर्वश्रेष्ठ) होता है।

—उपाध्याय यशोविजय जी कृत —ज्ञानसार ८/१०४
—विवेचन . पन्यासप्रवर श्री भद्रगुप्तविजय जी

卐卐

धर्म-साधना के तीन आधार

—उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि

(व० स्था० श्रमणसघ के उपाचार्य,
शताधिक ग्रन्थो के लेखक,
बहुश्रुत विद्वान विचारक)

- दया/करुणा/अनुकम्पा
- सम्यग्दर्शन/ज्ञान/चारित्र
- विनय

धर्म क्या है ? और दर्शन क्या है ? यह जान लेने के बाद, हर साधक को यह जानना उपयोगी होता है कि आखिर इन दोनो की जड क्या है ? अर्थात्, धर्म और दर्शन की शुरुआत कहाँ से होती है ? इस जिज्ञासा को लेकर जब जैन-वाङ्मय में भ्रमण किया जाता है, तो यह पता चलता है कि यहाँ पर धर्म के मूल की तलाश मे तीन आचार्यो ने अपने दृष्टिकोण प्रकट किये है। ये है —

१ 'दया' धर्म की जड है। प्राणियो पर 'अनुकम्पा' करना दया है। यह दिगम्बर आचार्य जिन-सेन का दृष्टिकोण[1] है।

२ तीर्थंकरो ने अपने शिष्यो को उपदेश दिया है कि धर्म की शुरुआत दर्शन से होती है। यह सिद्धान्त अध्यात्मवादी आचार्य कुन्दकुन्द[2] ने स्पष्ट किया है।

३ दशवैकालिक[3] में, श्वेताम्बर आचार्य शय्यम्भव ने बतलाया है कि धर्म का मूल 'विनय' है। क्योकि 'विनय' से मोक्ष प्राप्त होता है।

---

१ दयामूलो भवेद्धर्मो दया प्राण्यनुकम्पनम्। —महापुराण, २१।५।९२

२ दसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहि सिस्साण। —दर्शनपाहुड, २

३ एव धम्मो विणओ मूल परमो से मोक्खो। —दशवैकालिक, ९।२।२

दया का हार्द

आचार्य जिनसेन के दृष्टिकोण के समर्थन मे आचार्य पद्मनन्दी ने[1] बडी साफ-साफ बात कही है और दया को धर्म का मूल बतलाते हुए उसकी प्रशसा भी की है। वे कहते हैं—'प्राणिदया' धर्मरूपी वृक्ष की जड है, सारे व्रतो मे मुख्य व्रत है, सम्पत्ति का और गुणो का भी भण्डार है। इसलिए हर प्राणी को अपने हृदय मे दया को धारण करना चाहिए। जो ऐसा करते है, वस्तुत वे विवेकवान है।

यह सच है कि जिनेन्द्र भगवान का उपदेश करुणारूपी अमृत से लबालब भरा है।[2] और उसका प्रथम स्रोत दया-करुणा प्रेरित ही है। जो इस धर्म के वास्तविक अनुयायी है, उनके चित्त मे करुणा तो अवश्य ही होनी चाहिए। क्योकि प्रत्येक जिन का धर्मोपदेश देने के पीछे यह आशय रहता आया है—जिस मार्ग/साधन से मैंने स्वय की आत्मा को सासारिक बन्धनो से निकालकर यहाँ तक पहुँचाया है, उसी तरह, ससार के तमाम दुखी जीव भी मेरे द्वारा अपनाये गये रास्ते पर चले और स्वय को मुक्त बनावें। क्योकि जिनेन्द्र भगवान की आत्मा, 'जिन' बनने के साथ ही करुणा के, दया के सागर को अपने आप मे पूरा का पूरा समेट लेती है। यानी, उनमे दया का परिपूर्ण स्वरूप अवतरित हो जाता है। फिर भला वे दुखी-दीन जनो को देखकर, द्रवित क्यो नही होगे ? इसलिए, उनके द्वारा जो भी उपदेश शिष्यो को दिया जाएगा, उसके एक-एक शब्द मे करुणा का अमृत-सिन्धु भरा मिलेगा। जरूरत है, उस करुणामृत की तलाश की, पहचान की।

यह दया या करुणा किसी भी प्राणी मे बाहर से नही आती। यह तो उसके भीतर रहने वाला एक ऐसा तत्त्व है, जो उससे कभी भी अलग रह ही नही सकता। क्योकि यह करुणा या दया, न तो इस धरती पर पैदा होती है, और न ही किसी भौतिक पदार्थ मे से उसे ढूँढ कर निकाला जा सकता है। यह तो 'चेतना' का अपना एक मौलिक गुण/धर्म है।

अनुकम्पा

करुणा/दया का समानार्थक एक और शब्द, जैनधर्म व दर्शन मे प्रयोग किया गया मिलता है। वह है—'अनुकम्पा'। इस शब्द का अर्थबोध भी आचार्यो ने अलग-अलग ढग से दिया है।

बृहत्कल्पसूत्रवृत्ति मे आचार्य मलयगिरि ने लिखा है "अनु—पश्चात् दुखितसत्वकम्पनादनन्तर यत्कम्पन सा अनुकम्पा" (१३२०)। आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्ति मे लिखा है—दुखियो को निहार कर बिना पक्षपात के दुख को दूर करने की इच्छा अनुकम्पा है (२/१५)। ये ही भाव त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र मे भी अभिव्यक्त हुए हैं। (१/३/६१५-६१६)

तीन भेद अनुकम्पा के

भगवती आराधना मे अनुकम्पा को तीन भागो मे विभाजित कर दिया गया है। ये विभाग है—धर्मानुकम्पा, मिश्रानुकम्पा और सर्वानुकम्पा।

सयमी मुनियो पर दया करना 'धर्मानुकम्पा' है। यह धर्मानुकम्पा जब किसी व्यक्ति के अन्त करण मे उत्पन्न होती है, तब वह विवेकवान सद्‌गृहस्थ श्रमणो—निर्ग्रन्थो को योग्य अन्न, जल, निवास,

---

१ मूल धर्मतरोराद्या व्रताना धाम सम्पदाम्।
गुणाना निधिरित्यगि दया कार्या विवेकिभि ॥ —पद्मनदि पचविंशतिका, ३८

२. प्रश्नव्याकरण सवरद्वार।

सम्यग्दर्शन

आचार्य कुन्दकुन्द ने 'सम्यग्दर्शन' को धर्म का मूल माना है। क्योकि इसके विना 'ज्ञान' ज्ञान नही रहता, ज्ञान के विना चारित्र नही पनप पाता, चारित्रहीन को मोक्ष नही मिलता, और मोक्ष के अभाव मे निर्वाण नही प्राप्त होता।[1] मगर, वह 'दर्शन' है क्या ? इस बारे मे जैनाचार्यों ने अलग-अलग ढग से अपने मत प्रकट किये है।

उमास्वाति का कहना है—अपने-अपने स्वभाव में स्थित तत्त्वार्थों का श्रद्धान, 'सम्यग्दर्शन'[2] है। इन्होने जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष, यह सात तत्त्व माने है। आचार्य हेमचद्र आदि ने भी ये ही सातो तत्त्व बतलाये है। उत्तराध्ययन मे, इन सातों के साथ पुण्य और पाप को मिलाकर नौ तत्त्व[3] कहे हैं। जिन आचार्यो ने सात तत्त्व माने है, वे पुण्य और पाप को बध के अन्तर्गत मानते है।

अन्य कुछ आचार्यो ने पदार्थो के विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान[4] को सम्यग्दर्शन बतलाया है, तो कुछ ने पदार्थों के यथावस्थित स्वरूप का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन माना है। सूत्रपाहुड मे उक्त तत्त्वो के प्रति हेय व उपादेय बुद्धि[5] को सम्यग्दर्शन कहा है तो मोक्षपाहुड मे तत्त्वरुचि[6] को सम्यग्दर्शन बतलाया गया है।

नियमसार मे सम्यक्त्व की चर्चा के सम्बन्ध मे बतलाया गया है—आप्त, आगम और तत्त्वो की श्रद्धा से सम्यक्त्व[7] होता है। यानी इन तीनो पर श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है। रत्नकरण्डक श्रावकाचार मे इसी कथन को कुछ और स्पष्ट किया गया है—तीन प्रकार की मूढता और आठ प्रकार के मद से रहित होकर, सत्यार्थ देव, शास्त्र और गुरु पर आठो अगो सहित श्रद्धान करना[8] सम्यग्दर्शन है।

---

१ नादसणिस्स नाण नाणेण विना न हु ति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण ॥

—उत्तराध्ययन, २८/३०

२ तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम्। जीवाजीवास्रव-बध-सवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्।

—तत्त्वार्थसूत्र, १/२, ४

३ जीवाजीवा य बधो य पुण्ण पावाऽऽसवो तहा।
सवरो निज्जरा मोक्खो सते ए तहिया नव ॥　—उत्तराध्ययन, २८/१४

४ (क) पञ्चास्तिकाय—तात्पर्याख्यावृत्ति, १०७
(ख) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, २२
(ग) समयसार, १५५

५ सुत्तत्थ जिणभणिय जीवाजीवादि वहुविह अत्थ।
हेयाहेय च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥　—सूत्रपाहुड, ५

६ तच्चरुई सम्मत्त।　—मोक्षपाहुड, ३८

७ अत्तागमतच्चाण सद्दहणादो हवेइ सम्मत्त।　—नियमसार, ५

८ श्रद्धान परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥

—रत्नकरण्डक श्रावकाचार, ४

तीन वर्ग

इन सारे लक्षणो का निचोड यदि निकाला जाये तो मुख्य रूप से इनके तीन वर्ग बनते है। पहला वर्ग है, तत्त्वार्थो/पदार्थो का श्रद्धान, दूसरा—देव, शास्त्र व गुरु तथा धर्म पर श्रद्धान, तथा तीसरा वर्ग—स्व-पर के भेदविज्ञान के साथ शुद्धात्मा की उपलब्धिरूप श्रद्धान।

इन लक्षणो मे जहाँ पर आप्त, आगम व तत्त्वो की श्रद्धा को सम्यक्दर्शन बतलाया गया है, वहाँ पर पूर्व के दो वर्गो का सम्मिलित रूप लिया गया है। क्योकि यह दोनो ही वर्ग, सम्यग्दर्शन के व्यवहार पक्ष को लेकर किये गये है। जहाँ 'तत्त्वरुचि' को सम्यग्दर्शन कहा गया है वह कथन, उपचारवश किया गया समझना चाहिए। क्योकि रुचि कहते है—'इच्छा' को, या 'अनुराग' को। जिनका मोह नष्ट हो जाता है, उनमे तो 'रुचि' का अभाव हो जाता है। अत 'तत्त्वरुचि' या 'अतीन्द्रिय सुख की रुचि' अथवा शुद्धात्मरुचि' को सम्यग्दर्शन मानेगे, तो ऐसे सम्यग्दृष्टि मे 'मोह' की सत्ता माननी पडेगी। मोह की उपस्थिति मे 'सम्यक्त्व' को कैसे स्वीकार किया जायेगा ? क्योकि, सम्यक्त्व के अभाव मे न तो सम्यग्दर्शन' ही हो पाता है, और न ही 'सम्यग्ज्ञान'। इसलिए जहाँ भी 'रुचि' को सम्यग्दर्शन के लक्षण के साथ जोडा गया है वह प्रयोग, उपचारवश माना जाना चाहिए, और 'तत्त्वरुचि' के प्रसग मे उसे 'अशुद्धतर नय' की[1] अपेक्षा से कहा गया जानना चाहिए।

पूर्व मे जो तीन वर्ग बनाये है, उन वर्गो का परस्पर न तो कोई सैद्धान्तिक भेद है, न ही अलगाव। बल्कि यह भिन्नता भिन्न-भिन्न स्तरो को लक्ष्य मे रखकर, भिन्न-भिन्न दृष्टियो से ही मानी जानी चाहिए। इसी बात को यहाँ विशेष रूप से स्पष्ट किया जा रहा है।

एक सम्यग्दृष्टि जीव को, उनका जैसा श्रद्धान होता है, वैसा श्रद्धान मिथ्यादृष्टि जीव का कभी नही होता। क्योकि, मिथ्यादृष्टि जीव अपने पक्ष के मोहवश अर्हन्त देव आदि का श्रद्धान करता है। अर्हन्त देव आदि के यथार्थ स्वरूप की पहचान, चूँकि एक मिथ्यादृष्टि जीव को नही होती, अत उसका अर्हन्तदेव आदि के प्रति जो पक्षमोहवश श्रद्धान होता है, वह यथार्थ श्रद्धान नही होता। यथार्थ श्रद्धान तो उसे तभी हो पाएगा जब वह इन अर्हन्त आदि के यथार्थ स्वरूप की पहचान कर सकेगा। जिनके यथार्थ श्रद्धान होता है उन्हे अर्हन्तदेव आदि के यथार्थ स्वरूप का भी श्रद्धान होता है। क्योकि, अर्हन्त देव आदि के यथार्थ स्वरूप की जिसे पहचान है, उसे जीव आदि तत्त्वो के यथार्थ स्वरूप की पहचान होगी ही। इन दोनो बातो को परस्पर मे अविनाभावी जानना चाहिए। इसी वजह से अर्हन्तदेव आदि के श्रद्धान को सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन' कहा गया है।

तत्त्व श्रद्धान' को सम्यग्दर्शन मानने मे भी अर्हन्तदेव आदि के श्रद्धान की बात गर्भित है। तत्त्व समूह मे मोक्ष तत्त्व' सर्वोत्कृष्ट है। और मोक्ष की प्राप्ति के पूर्व अर्हन्त' पद की प्राप्ति अवश्यम्भावी है। ऐसा एक भी उदाहरण नही है जिससे यह स्पष्ट हो सके, कि बिना अर्हन्त हुए कोई जीवात्मा मोक्ष-लाभ कर सका है। अत मोक्ष मे श्रद्धान मे होने पर, 'अर्हन्त' मे श्रद्धान अनिवार्यत होता है।

मोक्ष के कारण है—संवर और निर्जरा तत्त्व। ये दोनो उन मुनियो के सम्भव होते है जो निर्ग्रन्थ है वीतरागी है। यानी, जो मुनि संवर-निर्जरा के धारक होगे वास्तव मे वे ही सच्चे गुरु' माने

१ अथवा तत्त्वरुचि सम्यक्त्वम् अशुद्धतरनय-समाश्रयणात्। —षट्खण्डागम—पुस्तक १, पृष्ठ १५१

जा सकते है। इन गुरुजनो पर श्रद्धान होने का अर्थ होता है—सवर निर्जरा तत्त्वो पर श्रद्धान होना। और सवर-निर्जरा तत्त्वो पर श्रद्धान होने का मतलब होता है सच्चे गुरु पर श्रद्धान होना। पूर्व की भाँति, ये दोनो भी, परस्पर अविनाभावी या अन्योन्याश्रित माने जा सकते है।

इसी प्रकार, राग आदि से रहित भाव को 'अहिंसा'[1] कहते है। 'अहिंसा' को ही उपादेय धर्म माना गया है। अत रागादि से रहित भावरूप धर्म को 'सच्चा धर्म' कहा जा सकता है। इसी पर श्रद्धान करना, सच्चे धर्म का श्रद्धान होगा।

इस प्रकार, 'तत्त्व श्रद्धान' मे अर्हन्तदेव आदि का श्रद्धान और 'अर्हन्त देव आदि के श्रद्धान' मे तत्त्वश्रद्धान का भाव अन्तर्निहित है।

विनय

विनय से ज्ञान-लाभ, आचार विशुद्धि और सम्यगाराधना की सिद्धि होती है। और, अन्त मे मोक्षसुख[2] भी मिलता है। अत, विनय की भावना अवश्य ही करनी चाहिए। 'विनय' की इस महत्ता को देखते हुए दशवैकालिक मे इसे धर्म का परममूल' कहा गया है। उत्तराध्ययन के प्रथम अध्ययन मे विनय की सविस्तृत व्याख्या है। भगवती, स्थानाङ्ग और औपपातिक मे विनय के विविध प्रकार बताये है। पर विस्तारभय से हम उन सबकी चर्चा यहाँ कर नही रहे है। भावपाहुड मे भी, विनय के माहात्म्य को स्वीकार करके, साधु/मुनि को सलाह देते हुए कहा गया है—'हे मुनि ! पाँच प्रकार की विनय को मन, वचन व काय से पालन करो। क्योकि, विनय से रहित व्यक्ति, सुविहित मुक्ति को प्राप्त नही करते[3] है।' इस कथन की पुष्टि वसुनन्दि श्रावकाचार[4] मे भी की गई है।

विनय के पाँच प्रकार यह है —दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्र-विनय, तपविनय व उपचार-विनय। यह पाँचो, मोक्षगति के नायक माने गये है।[5] भगवती आराधना[6] और वसुनन्दि श्रावकाचार[7]

---

१ रागादीणमणुप्पा अहिंसगत्त त्ति भासिद समये।
तेसिं चेदुप्पत्ती हिंसे त्त जिणेहि णिद्दिट्ठा ॥ —सर्वार्थसिद्धि, ७/२२ पर उद्धृत

२ ज्ञानलाभाचारविशुद्धि सम्यगाराधनाद्यर्थ विनयभावनम्। ततश्च निवृत्ति सुखमिति विनयभावनं क्रियते। —राजवार्तिक, ६/२३/७

३ विणय पचपयार पालहि मणवयणकायजोएण।
अविणयणरा सुविहिय तत्तो मुत्ति ण पावति ॥ —भावपाहुड, १०२

४ वसुनन्दिश्रावकाचार, ३३५

५ मूलाचार, ३६४

६ विणओ मोक्खद्दार विणआदो सजमो तवो णाण।
णिगएणाराहिज्जइ आयरिओ सव्वसघो य ॥
कित्ती मेत्ती माणस्स भजण गुरुजणे य बहुमाणो।
तित्थयराणा आणा गुणाणुमोदो य विणयगुणा ॥ —भगवती आराधना, १२९ १३१

७ देविंद चक्कहर मडलीयरायाइज सुह लोए।
त सव्व विणयफल णिव्वाणसुह तहा चेव ॥ —वसुनन्दि श्रावकाचार, ३३४

मे भी, विनय से प्राप्त होने वाले उन तमाम गुणो की विस्तृत विवेचना की गई है, जो इस लोक के व्यवहार मे, और परलोक मे सुख की प्राप्ति मे सहयोगी बनकर, उसे परम-प्रतिष्ठा दिलाते हैं।

इन सारे कथनो का सार-सकेत करते हुए पण्डित-प्रव : आशाधर ने कहा है—मनुष्य भव का सार आर्यता, कुलीनता आदि है। इनका भी सार जिनलिग धारण है। इसका भी सार जिनागम की शिक्षा है। और इस शिक्षा का भी सार, यह विनय है। क्योकि, इस विनय के प्रकट होने पर सज्जन पुरुपो के गुण भली-भॉति स्फुरायमान होने लगते है।[1]

यह है विनय का माहात्म्य। इसे गहराई से देखा जाय तो यह सहज ही बोध होता है कि 'विनय' को, जिस तरह लौकिक सम्पदाओ की प्राप्ति मे सहयोगी बतलाया है, उसस, इसे मोक्षमार्ग मे सहयोगी मानने मे कोई शका शेष रह जाती है क्या ? विनय तप की व्यावहारिकता को देखकर, कोई यह अनुमान नही कर सकता कि इसका मोक्ष प्राप्ति मे कोई सीधा सम्बन्ध बनता है।

मोक्ष की प्राप्ति मे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को मूल कारण मानना, जैनशास्त्रो का निचोड है। इस रत्नत्रय मे ज्ञान का अपना महत्त्व है। ज्ञान के विना सम्यक्श्रद्धान और सम्यक्-चारित्र मे परिपूर्णता नही आ पाती। यह जितना सच है, उतना ही सच यह है कि सम्यग्ज्ञान, आगमो के सर्वांगीण अध्ययन, मनन और चिन्तन के विना सम्भव नही होता।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शास्त्रो के चिन्तन और मनन की सामग्री, उनके अध्ययन की परिपक्वता पर आधारित रहती है। यदि शास्त्रो का अध्ययन, सच्चे गुरु के द्वारा, सही पद्धति से न हो पाये, तो उस अधीत शास्त्र विषय पर चिन्तन-मनन का आधार नही वन पाता। इस दृष्टि से, शास्त्रो की जो महत्ता ज्ञान के प्रसग मे आकी गई है, इससे कम मूल्य, सच्चे गुरु का नही माना गया है। वल्कि, गुरु की परिपक्वता को अधिक महत्त्व दिया गया है।

ऐसे गुरु के प्रति, हर मुमुक्षु को, या ज्ञान की इच्छा रखने वाले को श्रद्धा-भक्ति रखना एक अनिवार्य कार्य माना गया है। इसे 'गुरु-भक्ति' या 'गुरु-विनय' के नाम से ग्रन्थो मे बतलाया गया है। गुरु-भक्ति की प्रशसा करते हुए, रयणसार, राजवार्तिक, भगवती आराधना, पद्मनन्दिपचविशतिका, आदि मे कहा गया है—'गुरु-भक्ति से अज्ञान-अधकार का नाश होता है। अज्ञान के विनाश से सम्यग्ज्ञान का उदय होता है और सम्यग्ज्ञान के उदय, विकास और परिपूर्णता से चारित्र पुष्ट होता है। तब, मोक्षरूपी फल को प्राप्त करना सम्भव होता है।'

इस कथन से साफ-साफ पता चलता है कि, 'गुरु-भक्ति' या 'गुरु-विनय' को मोक्ष-प्राप्ति मे परम्परा से, किन्तु एक सीधा कारण माना गया है। इसी तरह, दर्शन, चारित्र आदि विनयो का भी मोक्ष से परम्परया, सीधा सम्बन्ध जुडा है।

आशय यह है कि, पॉचो प्रकार की विनय को मोक्ष से सीधा जुडा होने के कारण, दशवैकालिक आदि आगमो मे उसे 'धर्म का मूल' माना गया है।

---

१ सार सुमानुषत्वेऽर्हद्रूप सपदिहार्हती।
शिक्षास्या विनय सम्यगस्मिन् काम्या सता गुणा ॥ —अनगार धर्मामृत, ७/६२

सामान्य रूप से तो पूज्य पुरुषो का आदर करना,[1] 'विनय' है। मोक्ष के साधनभूत जो सम्यग्-ज्ञानादि है, उनमे, तथा उनके साधको—गुरु आदि के प्रति भी, योग्य रीति से सत्कार आदि देना, तथा कषायो की निवृत्ति आदि करना,[2] 'विनयसम्पन्नता' माना गया है। रत्नत्रय को धारण करने वाले व्यक्तियो के प्रति नम्रता धारण करने को,[3] अधिक या उत्कृष्ट गुण वाले व्यक्तियो के प्रति नम्र-वृत्ति धारण करने[4] को और इद्रियो को नम्र करने[5] को भी 'विनय' माना गया है।

यह लक्षण, विनय के नम्रता अर्थ को लेकर किये गये है। किन्तु, कुछ आचार्यो ने, इस अर्थ मे भिन्न अर्थ करते हुए, विनय के कुछ और ही लक्षण माने है। जिनमे से यह लक्षण मुख्य है —

दर्शन, ज्ञान और चारित्र के द्वारा जो विशुद्ध परिणाम[6] होता है, वही उनकी विनय है। कर्ममल को जो नाश करता[7] है, वह विनय है। ज्ञान, दर्शन एव चारित्र के अतिचार रूप जो अशुभ क्रियाये है, उनको हटाना[8] विनय है। अपने निश्चय रत्नत्रय की शुद्धि[9] निश्चयविनय है। और उसके आधारभूत पुरुषो—आचार्य आदि की भक्ति से उत्पन्न होने वाले जो परिणाम है, वे व्यावहारिक विनय है।

इस सबसे अधिक स्पष्ट और सरल भाषा मे विनय का यह लक्षण है —मोक्ष की इच्छा रखने वाले व्यक्ति, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र, तथा सम्यक्तप के दोषो को दूर करने के लिए, जो कुछ प्रयत्न करते है,[10] उसको विनय कहा गया है। और, इस प्रयत्न करने मे, अपनी शक्ति को न छिपा-कर, शक्ति अनुसार भक्ति करते रहना, 'विनयाचार' है।

इस समस्त विवेचना का आशय यह है कि 'विनय' शब्द 'वि' उपसर्गपूर्वक नी—नयने धातु से बना है। विनयतीति विनय । यहाँ पर, 'विनयति' इस शब्द के दो अर्थ हो सकते है—दूर करना और

---

१ पूज्येष्वादरो विनय । —सर्वार्थसिद्धि, ९/२०

२, सम्यग्ज्ञानादिषु मोक्षसाधनेषु तत्साधकेषु गुर्वादिषु च स्वयोग्यवृत्त्या सत्कार आदर कषायनिवृत्तिर्वा विनय-सम्पन्नता। —राजवार्तिक, ६/२४/२

३ रत्नत्रयवत्सु नीचैर्वृत्तिर्विनय'। —धवला, १३/५-४-२६

४ गुणाधिकेषु नीचैर्वृत्तिर्विनय । —कषायपाहुड, १/१-१/९०

५ चारित्रसार, १४७

६ दसणणाणचरित्ते सुविसुद्धो जो हवेइ परिणामो ।
वारस भेदे वि तवे सो च्चिय विणओ हवे तेसिं ।। —कार्तिकेयानुप्रेक्षा, ४४७

७ यद्विनश्यत्यपनयति च कर्मासत्त निराहुरिह विनयम् ।
शिक्षाया फलमखिलक्षेमफलश्चेत्ययकृत्य ।। —अनगार धर्मामृतम्, ७/६१

८ ज्ञानदर्शनचारित्रतपसामतीचारा अशुभ क्रिया । तासामपोहन विनय ।
—भगवती आराधना विजयोदया, ६/३२

९ स्वकीय निश्चयरत्नत्रयशुद्धिर्निश्चयविनय । तदाधारपुरुषेषु भक्ति परिणामो व्यवहारविनय ।
—प्रवचन० -तात्प० वृ-२२५

१० सुदृग्धीवृत्त तपसा मुमुक्षोर्निर्मलीकृतौ ।
यत्नो विनय आचारो वीर्याच्छुद्धेषु तु ।। —सागार धर्मामृतम्, ७/३५

विशेप रूप से (किसी वस्तु को) प्राप्त करना। विनय, साधनामार्ग मे रुकावट बनकर खडे अप्रशस्त कर्मो को दूर करती है, और जिन-वचन के ज्ञान को प्राप्त कराती है। जिसका फल मोक्ष है अर्थात्, 'विनय' मे वह सब सामर्थ्य छिपी हुई है, जिसकी कामना करते हुए एक वैदिक ऋषि कहता है—

असतो मा सद्गमय!
तमसो मा ज्योतिर्गमय!!
मृत्योर्मा अमृत गमय!!!

भारतीय सस्कृति का हर शास्त्र इस बात से सहमत है कि विद्या (ज्ञान) विनय की दात्री है। विनय से व्यक्ति में वह पात्रता आती है, जिससे वह धर्म को धारण करने लायक बनता है। और, धर्म को धारण करने से सुख प्राप्त होता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आचार्य जिनसेन ने 'दया' को, कुन्दकुन्द ने 'सम्यग्-दर्शन' को, और दशवैकालिक आदि आगमो मे 'विनय' को धर्म का मूल कहने से जो विरोध या विसगति देखी जा रही है, वह अतात्त्विक है। इन आचार्यो की यह दृष्टिभिन्नता, विवाद का विषय नही है। बल्कि, यह समझने के लिए हे कि चाहे तो हम 'दया' को परिपूर्ण बनाकर अपना चरित्र उत्तम बनाएँ, चाहे तो 'सम्यग्दृष्टि' के माध्यम से स्वय को उन्नत बनाएँ, अथवा, 'विनय' के माध्यम से हम अपने आचार-विचार को इतना विशुद्ध/पवित्र बनाएँ, जिससे, हम उस 'धर्म' तत्त्व के मर्म को समझ सके। अपने चरित्र में उसे उतार सके। यह दृष्टिभेद देखकर विवाद मे उलझना, धर्म के मर्म को छेदने जैसा होगा। क्योकि, दया, सम्यक्त्व और विनय, तीनो मे ही समान रूप से वह सामर्थ्य समाया हुआ है, जो इनके आराधक को धर्म के दरवाजे तक सहज ही पहुँचा सकता है।

○ ○

जत्थ य वितय विराओ कसाय चाओ गुणेसु अणुराओ।
किरिआसु अप्पमाओ, सो धम्मो सिवसुहो लोएवाओ।

जिसमे विषय से विराग, कषायो का त्याग, गुणो मे प्रीति और क्रियाओ में अप्रमादीपन है, वह धर्म ही जगत् मे मोक्ष सुख देने वाला है।

—प्राकृत सूक्ति कोष १४३
(महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर जी)

卐 卐

जैनधर्म विश्वधर्म बन सकता है

—(स्व०) काका कालेलकर

(मूर्धन्य गाधीवादी विचारक, चिन्तक
तथा प्रसिद्ध लेखक)

जैनधर्म का, और भगवान महावीर का, मै भक्त हूँ (विद्वान नही)। जैन-समाज का प्रेमी हूँ। जैनसमाज के पुरुपार्थ के प्रति मेरे मन मे आदर है किन्तु एक सनातनी ब्राह्मण अपने को जेनी कैसे कहला सकता है? तो भी, जैन-समाज के कई अच्छे-अच्छे सेवक मेरे प्रति प्रेम और आत्मीयता रखते है और मेरे विचार सुनने के लिए उत्सुकता बताते हैं। इसीलिये मैने चार शब्द वोलने का स्वीकार किया है। जो वाते आपको अच्छी लगे अपनाइये। आप लोगो मे क्षमावृत्ति है। मतभेद सहन करने की आपको आदत है, इसलिये, चार शब्द बोलने की हिम्मत करूँगा।

इस अपने वहुभाषी, बहुवशी और बहुधर्मी देश मे जैनियो के अनेकान्तवाद का स्वीकार और आचार सवको करना ही पडता है। इस देश मे धर्म-समाजो के झगडे कभी नही हुए सो नही, लेकिन कुल मिलाकर हमारा राप्ट्र सहजीवन जीने को और मतभेद सहन करने को काफी सीखा है।

आज मुझे यही वात आपके मामने और आपके द्वारा भारत के सामने रखनी है कि, स्याद्वाद की दार्शनिक दृप्टि मान्य करके, अनेकान्तवाद के उदार हृदय की प्रेरणा से प्रेरित होकर ही, भारत के सामने अव अपने को और सारे विश्व को सर्व-समन्वय-वृत्ति सिखाने के दिन आ गये है।

इस देश मे अधिकाश लोकसख्या सनातनी वृत्ति वाले हिन्दुओ की है। उन्ही का प्रतिनिधि होने से, मैं अपने समाज की गलतियो को अच्छी तरह से समझ सका हूँ, और उन गलतियो का स्वीकार करने मे सकोच नही करूँगा। मुझे डर है कि हमारी चन्द गलतियाँ जैन समाज मे भी पायी जा सकती है। उन्हे पहचान कर उनसे मुक्त होने के लिये आपको भी अन्तर्मुख वनना पडेगा और सवके साथ युगानुकूल सुधार करने के लिये तैयार रहना पडेगा।

हमारा समाज, हजारो वरसो से छोटी-छोटी जातियो मे बँटा हुआ है और जातियो का मुख्य लक्षण है रोटी-वेटी व्यवहार की सकुचितता। इस प्रधान दोप के कारण इतना वडा समाज हजारो वर्ष गुलाम रहा, और महा मुश्किल से स्वतन्त्र होने के वाद भी यह सकुचितता हम छोड नही सके है। ऐसी सकुचितता न होने के कारण ही इस्लाम और ईसाई धर्म हमारे देश मे फैल गये। हमारे यहाँ का वौद्ध-

धर्म, विश्वधर्म बनने की महत्त्वाकाक्षा धारण करके, श्रीलका, ब्रह्मदेश, तिब्बत, चीन, जापान आदि अनेक देशो मे फैल गया।

हमारे देश मे बौद्ध और जैन दोनो धर्म विश्वधर्म बनने की योग्यता रखते है। इनमे भी जैन-धर्म की अपनी अहिसा और समन्वयवृत्ति के कारण यह धर्म विश्वधर्म बनने की अधिक से अधिक योग्यता रखता है। लेकिन शायद भारत के वातावरण के कारण जैन समाज एक सकुचित जाति बन गया है। शायद रोटी-बेटी व्यवहार के बधन के कारण यह सकुचितता आयी हो।

मेरे इस निरीक्षण का और टीका का मुझे स्पष्टीकरण करना जरूरी है। दूसरो का हम पर बुरा असर होगा, इस डर को हद से अधिक महत्त्व देकर, आपने अपने साधुओ के लिये भारत के बाहर न जाने का सख्त नियम बनाया था।

साधु लोगो का मुख्य कार्य धर्म का उत्तम पालन करना और उसका प्रचार करना, यही हो सकता है। तब वे भारत से बाहर जाकर प्रचार क्यो न करे? वही तो प्रचार की अधिक जरूरत है।

अपने बचपन में जब मैने सुना कि जैन साधु भारत से बाहर जा नही सकते, अ।र गये तो वे भ्रष्ट माने जाते है तब मेरे जैसे लोग पूछने लगे---क्या जैनियो का अहिसा धर्म केवल भारत के ही लिये है? भारत के बाहर का मासाहार और हिसा जैनियो को मान्य है? विश्वधर्म बनने के लिये बना हुआ धर्म, ऐसा लाचार कैसे बना?

भगवान महावीर ने अहिसा के साथ स्याद्वाद याने अनेकान्तवाद का जोरो से प्रचार किया। अहिसा का वह अत्यन्त योग्य और सार्वभौम होने लायक रूप है।

जैनधर्म . एक सार्वभौम जीवनदृष्टि

अनेकान्तवाद पर आपके सामने व्याख्यान देने यहाँ नही आया हूँ। मुझे खास इतना ही कहना है कि सारी दुनिया मे धर्म-धर्म के बीच जो ईर्ष्या, असूया और विरोध पाये जाते है उनकी जगह मानव-जाति के सब वशो मे, सब धर्मों मे और सस्कृतियो मे (ईर्ष्या, मत्सर और झगडा टालकर उनके बीच) समन्वय लाने का, आदान-प्रदान और निष्काम सेवा को स्थापन करने का, भारतमाता के मिशन का समर्थन महावीर स्वामी के अनेकान्तवाद मे ही मै देखता हूँ।

भारतमाता और समस्त मानव जाति भविष्य के लिए महावीर के उपदेशो द्वारा ही प्रतिस्पर्धा टालकर, कौटुम्बिक भाव और पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित कर सकेगी।

मै यही कहने आया हूँ कि विश्व-समन्वय के द्वारा युद्धो को टालकर, धर्मो-धर्मो के बीच, गोरे-काले आदि वशो के बीच जो प्रतिस्पर्धा अथवा होड चलती है, उसे टालकर विश्व-समन्वय याने कौटुम्बिक भाव स्थापित करने के लिए ही विश्वव्यापी बनने के लायक जैनधर्म है।

ईसाई और इस्लामी धर्म-प्रचार से हम बोध लेगे, लेकिन उनका पूरा अनुकरण नही करेगे। उनके मिशन प्रतिस्पर्धा को मानते है और हम तो प्रतिस्पर्धा को हिसारूप पाप समझते है। हमे तो दुनिया के सब राष्ट्रो मे, वशो मे, सस्कृतियो मे और धर्मो मे अनेकातवादी विश्व समन्वय-मूलक कौटुम्बिक भाव को फैलाना है।[1]

---

१ धर्मक्रान्ति परिषद् दिल्ली मे १५ सितम्बर १९७४ को प्रदत्त भाषण से।

अनिर्वचनीय आनन्द का स्रोत : स्वानुभूति

—मुनिश्री अमरेन्द्रविजय जी

(अध्यात्मप्रधान अनेक पुस्तको के लेखक

तत्वचिन्तक तथा ओजस्वी प्रवचनकार)

अनुभव जीवनमुक्ति का अरुणोदय

निज अनुभव लवलेश से, कठिन कर्म हो नाश ।
अल्पभव मे भवि लहे, अविचलपुर का वास ।।[1]

उपर्युक्त कथन मे यह बात प्रकट होती है कि स्व-स्वरूप का 'अनुभव' भव-भ्रमण की दीर्घ परम्परा को अत्यन्त लघु कर देता है। अनुभव मे ऐसा क्या जादू है कि उसे प्राप्त करने वाला व्यक्ति अल्पभव मे ही मुक्ति प्राप्त कर ले ? इसका रहस्य यह है कि 'अनुभव' द्वारा एक पल मे आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान मिलता है। निज की यह अनुभूति व्यक्ति की जीवनदृष्टि मे एक जबर्दस्त क्रान्ति लाती है। श्रुत—श्रवण, वाचन आदि—के द्वारा प्राप्त हुआ बौद्धिक स्तर का ज्ञान ऐसी आमूलचूल क्रान्ति का सर्जन नही कर सकता।

मोहनाश का अमोघ उपाय

श्रुत द्वारा स्वरूप का बोध होने से एव उससे चित्त भावित होने से, क्रमश मोह की पकड ढीली होती जाती है, और विषय-कषाय के आवेग कुछ शिथिल हो जाते है। किन्तु विषयो का रस—विषयो मे अनादि से रही सुख-भ्रान्ति—केवल श्रुत से नही टलती[2], यह भ्रान्ति 'अनुभव' से मिटती है। अनुभव द्वारा निज के निरुपाधिक आनन्द का आस्वादन मिलने पर विषयेन्द्रियो के भोग वास्तव मे ही नीरस

---

१ चिदानन्द जी महाराज, स्वरोदय ज्ञान, दोहा-५३।

२ उपाध्याय यशोविजय जी, अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानयोग, श्लोक-४।

लगते है ।[1] इतना ही नही, सर्व पुद्गल खेल इन्द्रजाल के समान लगने लगते है । इससे आत्मज्ञानी के लिए जगत की घटनाओ का महत्त्व स्वप्न की घटनाओ से कुछ भी अधिक नही रहता,[2] अर्थात् 'अनुभव' जीवन-विपयक समग्र दृष्टिकोण ही वदल देता है ।

वौद्धिक प्रतीति विचार-विमर्श से पैदा होती है, किन्तु विचार स्वय ही अविद्या पर निर्भर है ।[3] अत आत्मस्वरूप की निर्भ्रान्त प्रतीति विचार-विमर्श के द्वारा प्राप्त नही होती, यह प्रतीति विचार शान्त होने पर ही मिलती है । मन की उपशान्त अवस्था अथवा उसका नाश यह उन्मनी अवस्था है । इस अवस्था मे 'अनुभव' मिलता है ।[4] इसलिए आत्मज्ञान की—अनुभव की प्राप्ति के इच्छुक मुमुक्षु को चाहिए कि वह प्रथम चचल चित्त को अपनी इच्छानुसार प्रवर्तन करने की सामर्थ्य प्राप्त करे, और फिर एकाग्र वने इस चित्त को आत्मविचार में लगाकर उसका नाश करे ।[5] मोहनाश का यह अमोघ उपाय है ।[6]

अनुभव क्या है ?

चिदानन्द जी महाराज ने 'अनुभव' का परिचय देते हुए कहा है—

आपोआप विचारते, मन पाये विश्राम ।
रसास्वाद सुख ऊपजे, अनुभव ताको नाम ।।
आतम अनुभव तीर से, मिटे मोह अधार ।
आपरूप मे झलझले, नहि तस अन्त अपार ।।[7]

सिद्ध परमात्मा या श्री जिनेश्वरदेव के अथवा अपने ही शुद्ध स्वरूप का चिन्तन-मनन और ध्यान करते किसी धन्य क्षण मे आत्मा शान्त हो जाता है एव ध्याता, ध्येय के साथ तदाकार वन शुद्ध आत्म-स्वरूप मे लीन होकर, स्वय के यथार्थ स्वरूप का एव निजी अन्तरग ऐश्वर्य का 'दर्शन' प्राप्त करता है । खुद के अलौकिक, शाश्वत आनन्दस्वरूप की उस अनुभूति से मोह अन्धकार के नष्ट हो जाने से ध्याता को तत्काल आत्मज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है । इस अपूर्व घटना को शास्त्रीय परिभाषा मे 'आत्मज्ञान' अथवा 'अनुभव' की सज्ञा दी गई है ।

---

१ (क) योगदृष्टि समुच्चय, श्लोक—६९ ।
(ख) अध्यात्म सार, ध्यानस्तुत्यधिकार, श्लोक—२ ।

२ (क) समाधिशतक, दोहा—४ ।
(ख) अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानयोग, श्लोक—६ ।

३ द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका, २३, श्लोक—६ ।

४ (क) अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानयोग, श्लोक—२४ ।
(ख) योगशास्त्र 'सटीक' प्रकाश—१२, श्लोक—३६ ।

५ योगशास्त्र, प्रकाश—१२, श्लोक—५, टीका ।

६ (क) अध्यात्मसार, अनुभवाधिकार, श्लोक १७-१९ ।
(ख) योगशास्त्र, प्रकाश—१२, श्लोक—४० ।

७ अध्यात्म वावनी ।

सूर्योदय से जिस प्रकार अरुणोदय प्रकट होकर रात्रि के अन्धकार को हटा देता है, उसी प्रकार केवल-ज्ञान के सूर्य का उदय हो, उससे पहले अनुभव रूपी अरुणोदय आकर मोह के अन्धकार को हटा देता है। सवेरे प्रकाश आकर पूरी रात की प्रगाढ निद्रा अथवा स्वप्नमाला का एक क्षण मे अन्त कर देता है, उसी प्रकार अनुभव का आगमन देह एव कर्मकृत व्यक्तित्व से अनादि के अपने तादात्म्य को एक ही पल मे चीर डालता है। यह देह और इसमे वसने वाला 'मै'—ये दोनो एक ही आकाश प्रदेश के वासी होने के कारण सामान्य रूप से एक ही महसूस होते है, किन्तु वास्तव मे दोनो है विल्कुल अलग-अलग। अनुभव के प्रकाश मे यह हकीकत, मात्र वौद्धिक समझ न रहकर जीवन्त सत्य वन जाती है। पहने हुए कपडे स्वय से अलग है, यह भान प्रत्येक मनुष्य को जितना स्पष्ट हे, उतनी स्पष्टता से आत्मानुभवयुक्त देह को स्वय से अलग अनुभव करता है।

जिनको अपरोक्ष अनुभव नही हुआ, अथवा इसकी झलक भी प्राप्त नही हुई, उनको स्वानुभूति की दशा वाणी द्वारा समझाना मुश्किल है। जन्मान्ध को रगो के भेद वाणी द्वारा कैसे समझाए जा सकते है? जिन्होने कभी घी अथवा मक्खन चखा तक नही, उन्हे घी अथवा मक्खन का स्वाद वाणी द्वारा किस तरह वताया जाए? अनुभव की अवस्था की जानकारी देने का प्रयास करते हुए अनुभवियो को यही उलझन रहती है। जो स्थिति भाषा से परे है, उसे वाणी द्वारा किस प्रकार व्यक्त करना? अत अनुभव-विषयक कोई भी निरूपण अधूरा लगना स्वाभाविक है। फिर भी इससे अनुभव अवस्था का जरा-सा भी ख्याल जिज्ञासुजन पा रहे हो तो इससे अच्छा और क्या?

ज्ञानियो ने अनुभव को 'तुरीय', अर्थात् चौथी अवस्था कहा है। नीद एव जागृति, इन दो अवस्थाओ से हम सब परिचित है। जागृत अवस्था मे हमारा मन एव इन्द्रिया वाहरी जगत के साथ के सम्वन्ध मे रहकर हमे उसका ज्ञान कराती है। नीद मे वाह्य जगत का सम्पर्क छूट जाता है। इन्द्रियाँ एव मन अपना काम बन्द कर आराम करते है एव हम शून्यता मे खोये हुए रहते है। कितनी ही बार शून्यता मे खो जाने के वजाय, हम स्वप्न देखते हैं, यह इस बात का द्योतक है कि मन की प्रवृत्ति सर्वथा रुकी नही। स्वप्नावस्था मे इन्द्रियाँ बाह्य जगत् को ग्रहण नही करती, शरीर निश्चेष्ट पडा होता है, परन्तु मन गतिशील रहता है। इस प्रकार अपने परिचय की तीन अवस्थाएँ हुई—जागृत, गहरी नीद एव स्वप्न। अनुभव की चौथी अवस्था इन तीनो से भिन्न है, इसका अपना अनोखा व्यक्तित्व है। गहरी नीद मे वाह्य जगत भुला जाता है। उसके साथ ही जागृति भी चली जाती है, जबकि तुरीय के इस अनुभव के समय, वाह्य जगत् का भान न होते हुए भी, सावधानी—जागृति पूर्ण होती है और स्वय की आनन्द-पूर्ण अस्तित्व-सत्ता प्रवलता से अनुभव मे आती है।[1] एक सन्त इस अवस्था का परिचय इस प्रकार देते हैं—

"जागृति मे भी प्रगाढ निद्रा, अर्थात् इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहकार—सभी निद्राधीन है एव देह मे परमेश्वर जागता हे।"

१　(क) योगशास्त्र, प्रकाश-१२, श्लोक—४७-४९।

(ख) उपाध्याय यशोविजय जी कृत अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानयोग, शुद्धि० श्लोक—२४-२५।

जब यह अनुभव आता है, तब अकस्मात् आता है। अचानक ही चित्त विचार-तरंगो से रहित होकर शान्त हो जाता है, देह का भान जाता रहता है एवं आत्मप्रकाश झिलमिलाने लगता है। मेघो से आच्छादित अँधेरी रात मे जैसे अनजाने मार्ग पर खडे पथिक को अचानक दमकती बिजली की कौंध मे अपने आस-पास का दृश्य दिखाई दे जाता है। उसी प्रकार, इस अनुभव से साधक को एक पल में ही आत्मा के निश्चय शुद्धस्वरूप का 'दर्शन' हो जाता है, अपने अकल, अबद्ध, शाश्वत, शुद्धस्वरूप का अनुभव होता है—इसकी प्रतीति मिलती है। श्रुत की तरह यहाँ क्रमश ज्ञान की अभिवृद्धि नही होती, किन्तु क्षणभर मे ही पूर्व के अज्ञान का स्थान आत्मा का निर्भ्रान्ति ज्ञान ले लेता है। वर्षो के शास्त्र-अध्ययन से प्राप्त हो, उससे अधिक स्पष्ट, निश्चित एव सूक्ष्म ज्ञान उन अल्प क्षणो मे प्राप्त हो जाता है।

यह अनुभव अत्यन्त सुखकर होता है। उस समय वचनातीत शान्ति मिलती है, किन्तु अकेली शान्ति अथवा आनन्द के अनुभव को ही स्वानुभूति का लक्षण नही कहा जा सकता। चित्त थोडा भी स्थिर हुआ कि शान्ति एव आनन्द का अनुभव तो होगा, किन्तु यहाँ ज्ञाता एव ज्ञेय का भेद नही रहता, और ध्याता ध्येय के साथ एकाकार बना रहता है, परमात्मतत्त्व के साथ ऐक्य का अनुभव रहता है, आनन्द वचनातीत होता है, विद्युत की कौंध की भाँति एकाएक ज्ञानप्रकाश प्रवाहित हो उठता है, एव साधक को अपने समक्ष विश्व का रहस्य खुल गया-सा प्रतीत होता है एव उसे यह ज्ञान, विश्वास तथा निश्चय हो जाता है कि भविष्य अन्धकारमय नही, किन्तु उज्ज्वल है। इस विश्वास के साथ मृत्यु का भय ही विनष्ट हो जाता है। मृत्यु से परे स्वय का शाश्वत अस्तित्व है, इसकी उसे अचल प्रतीति मिलती है एव उसके अन्तर् मे समस्त विश्व का आलिंगन करने वाला प्रेम उमड पडता है। ये है अपरोक्षानुभूति के समय के कुछ विशेष अनुभव।

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के शब्दो मे कहा जाय तो—

"इस दर्शन—साक्षात्कार के साथ निरवधि आनन्द आता है, बुद्धि की पहुँच के परे का ज्ञान उपलब्ध हो जाता है, स्वय जीवन से भी तीव्रतर सवेदन होता है, एव अपार शान्ति तथा आनन्द का अनुभव होता है 'इस शाश्वत तेज के स्मरण का स्थायी असर रह जाता है, एव ऐसा अनुभव फिर से प्राप्त करने को मन छटपटाता है।"[1]

स्वानुभूति की अभिव्यक्ति

यहाँ यह याद रहे कि शब्द द्वारा अनुभव के विषय मे हम जो कुछ जान सकते है, वह अनुभव का अपने मन से बनाया गया चित्र है। अनुभव के समय ज्ञाता-ज्ञेय का भेद करने वाला मन सोया हुआ रहता है, एवं आत्मा ज्ञेय के साथ तदाकार रहती है। बाद मे मन जाग्रत होता है, तब अनुभव के समय जो हुआ, उसको याद करने का वह प्रयास करता है, जिसमे वह कठिनता से ही सफल होता है।

जागृत होने के बाद चित्त अनुभव को स्मरण करे एव उसका वर्णन दूसरो के सामने प्रस्तुत करे, उसमे—

---

१ डॉ० राधाकृष्णन् 'धर्मोनु मिलन,' पृ० २६७ (भारतीय विद्या भवन, बम्बई—७)

(१) अनुभव करने वाले व्यक्ति की अनुभव की घटना से पहले की मानसिक रचना।

(२) उसके आस-पास की परिस्थिति—देशकाल।

(३) अपने अनुभव की बात वह जिनके समक्ष व्यक्त कर रहा हो, उस जन-समूह की मानसिक, बौद्धिक एव आध्यात्मिक भूमिका।

(४) उस व्यक्ति की स्वय की अभिव्यक्ति की क्षमता (expression power)।

इन सबकी—चारो की छाप, इस वर्णन मे आये बिना नही रहती। अत मन द्वारा वाणी में अनुभव का जो चित्र अकित किया जाता है, वह कोई रम्य नैसर्गिक दृश्य का मात्र दो-चार रेखाओ से अकित 'स्केच' जैसा भी मुश्किल से ही हो सकता है।

जिन्होने इस दशा का अनुभव किया है, वे सभी यही कहते हैं कि उसे वे वाणी द्वारा व्यक्त करने मे स्वय असमर्थ हैं। अत इस अपरोक्षानुभव को पूर्ण रूप से समझने के लिए उसका स्वय अनुभव लेना ही आवश्यक है, शब्द तो इसका सकेत मात्र ही कर सकते है। फिर भी, जैसे अगुली से वृक्ष की डाली की ओर सकेत कर दूज का चन्द्रमा बताया जाता है, उसी प्रकार, शब्द का सकेत करके आत्मानुभव की ओर श्रोताओ की दृष्टि ले जाने का प्रयास होता रहता है।

बहुधा ऐसे सकेत सूत्रात्मक शैली से पद्य मे—काव्य मे हुए है। अभिव्यक्ति मे परे की इन अनुभूतियो को गणित के समीकरण या भौतिक विज्ञान के नियमो की तरह स्पष्ट शब्दो के दायरे मे बाँधा नही जा सकता, काव्य का प्रवाही माध्यम ही, आध्यात्मिक अनुभूति ही अभिव्यक्ति के लिए अधिक रहता है। अत साधको तथा अनुभवियो ने भजनो एव पदो मे, ऐसे ही अन्य काव्य-प्रकारो मे अपनी अनुभूति के कुछ सकेत दिये है। कई महान कवियो ने भी अपनी उत्तम काव्यकृतियो मे इस अनुभूति के सकेत दिये है। फिर भी, काव्यमय भाषा मे अक्षराकित इन त्रुटक सकेतो मे से अनुभव की मूल काया का पूर्ण चित्र उपस्थित करना कठिन होता है। अत पद्यो मे दिये हुए इन सकेतो से सामान्य जन अनुभव के समय को—साधक की आन्तरिक स्थिति का स्पष्ट बोध प्राप्त नही कर पाता।

अनुभव क्या है, इसकी कुछ स्पष्ट कल्पना जिज्ञासु पाठक कर सके, इसके लिए अनुभव-प्राप्त दो-तीन महानुभावो के उद्‌गार उन्ही के गद्य-शब्दो मे यहाँ दिये जा रहे है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ये महानुभाव पिछले सौ वर्षो मे हमारे बीच रहे हुए व्यक्तियो मे से है।

योगियो के अनुभव-कथन मे सभव है कि बुद्धिवादी पाठको को मात्र अतिशयोक्ति या उर्मिलता का आवेग ही दिखाई दे, इसलिए पहले एक बुद्धिजीवी—अमेरिकन डाक्टर का अनुभव, उसके स्वय के ही शब्दो मे आपके सामने प्रस्तुत है। 'अमेरिकन मैडिको साइकॉलॉजिक ऐसोसियेशन' के तथा 'ब्रिटिश मेडिकल ऐसोसियेशन' के साइकॉलॉजिकल विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० रिचार्ड मोरिस बक, एम० डी० स्वय का अनुभव बताते हुए लिखते है—

"अकस्मात् बिना किसी पूर्व सूचना के अग्नि की लपटो-जैसे रग के बादलो से उसने[1] अपने आपको घिरे हुए देखा—उसके मन मे एक क्षण के लिए विचार चमक गया आग का—बडे शहर मे अचानक प्रगटे हुए किसी दावानल का। दूसरे ही क्षण, उसे लगा कि प्रकाश तो उसके अन्दर ही था।

---

१. इस आलेखन मे डा० बक ने स्वय का उल्लेख अन्य पुरुष के सर्वनाम से किया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय वे व्यक्तिगत भावना से कितने ऊपर उठे हुए थे।

इसके वाद तुरन्त ही वह परमानन्द मे डूब गया। अमर्याद आनन्द। इसके साथ या इसके पीछे जो वौद्धिक ज्ञानप्रकाश उभरा, उसे वाणी मे किस प्रकार से व्यक्त किया जाए, इसका वर्णन करना अशक्य है। उसके दिमाग मे ब्राह्मी ऐश्वर्य की एक विद्युतरेखा-सी प्रस्तुत हो गई, जिसका प्रकाश इसके बाद उसके सारे जीवन को आलोकित करता रहा। उसके हृदय पर ब्रह्मामृत की एक बूँद गिरी, जो मुक्तिसुख का आस्वाद सदा के लिए छोड गई।"[1]

इस अनुभव के वाद डा० वक ऐसे अनुभव से भलीभाँति परिचित एक ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क मे आये, जिनके साथ की वातचीत ने, उन्हे स्वय को जो अनुभव हुआ था, उसके रहस्य पर अत्यन्त प्रकाश डाला। इसके वाद उन्होने इस विषय मे सशोधन करके एक ग्रन्थ की रचना की, जिसका नाम है—'Cosmic Con ciousness'—'विश्वचेतना'। स्वय के उपर्युक्त विषय के अनुभव मे इस ग्रन्थ मे विशेष विवरण देते हुए वे लिखते है—

" 'उसका यह दावा है कि इस अनुभव से पूर्व महीनो अथवा वर्षो के अभ्यास द्वारा जितना ज्ञान उसको मिला होगा, उसके वनिस्वत अधिक ज्ञान उसको इस अनुभव के थोडे-से ही क्षणो मे मिल गया—कुछ ऐसा ज्ञान, जो चाहे जितने अभ्यास के द्वारा प्राप्त होना सभव न था। यह प्रचण्ड ज्ञान-प्रकाश थोडे ही क्षणो तक रहा, किन्तु उसका असर स्थायी रहा। उन क्षणो मे उसने जो देखा एव जाना, उसे वह कभी भी भूल नही सकता। इसी प्रकार उस समय उसके चित्त के समक्ष जो प्रगट हुआ, उसमे उसने कभी शका नही उठाई—शका उठ ही नही सकती।"[2]

दक्षिण भारत के विश्व-विख्यात सन्त श्री रमण महर्षि को इस जीवन के किसी भी प्रयत्न अथवा साधना के विना, अचानक ही आत्मानुभूति प्राप्त हुई थी। हाईस्कूल के अन्तिम वर्ष मे वे अभ्यास कर रहे थे। उस समय मात्र सत्रह वर्ष की आयु मे, एक दिन अचानक उनको यह असाधारण अनुभूति हुई। शरीर पूर्ण स्वस्थ होते हुए भी, एक दिन सहसा मृत्यु के भय ने उनको घेर लिया। किसी वाहरी निमित्त के विना ही उन्हे ऐसी प्रतीति हुई, मानो मृत्यु ने अपना पजा उनकी ओर फैला दिया है। शरीर को शव की भाँति निश्चेष्ट वनाकर वे सो गये—मानो शरीर निष्प्राण हो गया हो, ऐसा उन्होने अभिनय किया। किन्तु शरीर की स्थिति शव-जैसी होते हुए भी, भीतर 'मै' का भान तो पूर्ववत् ही चालू रहा, इससे उन्होने मन-ही-मन प्रश्न किया—'मै' कौन ? और आवरण हट गया। उस समय की अपनी अनुभूति का व्यौरा उन्होने स्वय इस प्रकार दिया है—

"मदुरा मे सदा के लिए रवाना होने से पहले लगभग छह सप्ताह पूर्व मेरे जीवन मे यह महान परिवर्तन आया। मेरे चाचा के मकान पर पहली मजिल पर कमरे मे मै अकेला वैठा हुआ था। मुझे कभी कोई वीमारी नही हुई थी, एव उस दिन भी मेरा स्वास्थ्य विल्कुल ठीक था। किन्तु एकाएक मृत्यु के भीषण भय ने मुझे घेर लिया। मृत्यु के भय के आघात के कारण मै अन्तर्मुख हुआ एव मेरे मन मे अनायास ही विचार उभरने लगे, 'अव मृत्यु आ पहुँची है। इसका अर्थ क्या ? मृत्यु किस की ? यह शरीर

---

१ Proceedings and Transactions of the Royal Society of Canada Series II, Vol. 12, pp. 159-196

२ Dr Richard Maurice Bucke, M D, Cosmic Consciousness, p. 10 (E P. Dutton and Co, Newyork)

अव नही रहेगा' एव मैने एकाएक मृत्यु का अभिनय करना शुरू किया। मेरे अगो को स्थिर रखकर मैं भूमि पर लेट गया। श्वास को मैंने रोक लिया और अपने ओठ कसकर बन्द कर लिये, ताकि मैं कोई भी आवाज अपने मुख से न निकाल सकूँ। शव का मैंने हूबहू अनुकरण किया, जिससे इस खोज के अन्तस्तल तक मैं पहुँच सकूँ। इसके बाद मैं स्वय विचारने लगा कि 'मेरा यह शरीर मृत है, लोग इसे उठाकर श्मशान-घाट ले जाएगे और इसे जला देगे, तब यह राख हो जाएगा। किन्तु क्या इस शरीर की मृत्यु से मेरी मृत्यु हो जाएगी? क्या मै शरीर हूँ? मेरा शरीर मौन और जड पडा है, किन्तु मै मेरे व्यक्तित्व को पूर्णरूप से अनुभव कर रहा हूँ और मेरे भीतर उठती 'मैं' की आवाज को भी मैं अनुभव कर रहा हूँ। अर्थात् मै शरीर से परे आत्मा हूँ। शरीर की मृत्यु हो जाती है, किन्तु आत्मा को मृत्यु स्पर्श तक भी नही कर सकती, अर्थात् 'मैं' अमर आत्मा हूँ।' यह कोई शुष्क विचार-प्रक्रिया नही थी, जीवित सत्य की भाँति अत्यन्त स्पष्टतापूर्वक ये विचार मेरे मन मे विजली की तरह कौध गये। विना किसी विचार के मुझे सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन हो गया। 'अह' ही वास्तविक सत्ता थी, और शरीर से सम्बद्ध समस्त हलचल इस 'अह' पर ही केन्द्रित थी। मृत्यु का भय सदा के लिए नष्ट हो चुका था। इसके आगे आत्मकेन्द्रित ध्यान अविच्छिन्न रूप से जारी रहा।

"इस नई चेतना के परिणाम मेरे जीवन मे दृष्टिगोचर होने लगे। सर्वप्रथम मित्रो और सम्बन्धियो मे रस लेना मैंने वन्द कर दिया। मैं मेरा अध्ययन यात्रिक भाव से करने लगा। मेरे सम्वन्धियो को सन्तोप देने के लिए मैं पुस्तक खोलकर वैठ जाता, किन्तु वस्तुस्थिति यह थी कि मेरा मन पुस्तक मे जरा भी नही लगता था। लोगो के साथ के व्यवहार मे मैं अत्यन्त विनम्र एव शान्त वन गया। पहले अगर मुझे दूसरे लडको के वनिस्बत अधिक काम दिया जाता था तो मैं इसकी शिकायत किया करता था और अगर कोई लडका मुझे परेशान करता तो मैं उसका बदला लेता। कोई लडका मेरे साथ उच्छृङ्खल वरताव करने का अथवा मेरी मजाक उडाने का साहस नही करता था। अब सव कुछ बदल चुका था। मुझे जो भी काम सौपा जाता, मैं उसे खुशी से करता। मुझे चाहे जितना परेशान किया जाता, मैं उसे शान्ति से सहन कर लेता। विक्षोभ एव बदला लेने की वृत्ति वाले मेरे अह का लोप हो चुका था। मित्रो के साथ वाहर खेलने जाना मैंने बन्द कर दिया और एकान्त पसन्द करने लगा। अधिकतर ध्यानावस्था मे वैठ जाता और आत्मा मे लीन हो जाता।[1] मेरा बडा भाई मेरी मजाक उडाया करता था और व्यग्य से 'साधु' अथवा 'योगी' कहकर मुझे बुलाता, एव प्राचीन ऋषियो की तरह वन मे चले जाने की सलाह दिया करता था। मुझमे दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि भोजन के सम्बन्ध मे मेरी कोई रुचि-अरुचि नही रही। जो कुछ भी मेरे सम्मुख परोसा जाता—स्वादिष्ट या अस्वादिष्ट, अच्छा या बुरा—मैं उसे उदासीन भाव से निगल जाता।

"एक और परिवर्तन मुझमे यह हुआ कि मीनाक्षी के मन्दिर के प्रति मेरी धारणा बदल गई। पहले मैं मन्दिर मे कभी-कभी मित्रो के साथ मूर्तियो के दर्शन करने तथा मस्तक पर पवित्र विभूति एव

---

१ इस घटना के करीव दो महीने वाद घर का त्याग करके वे अरुणाचल गये। वहाँ ध्यान मे वाहर का कोई विक्षेप न रहे, इसलिए एकान्त स्थान ढूँढते हुए मन्दिर का एक तलघर उनकी नजरो मे चढा, उसमे घुसकर वे ध्यान मे वैठ गये। इस वीरान तलघर मे जीव-जन्तुओ ने उनकी जघाओ को काट खाया। उनमे जख्म हो गये, तथा उन से रक्त एव पीव वहने लगे। यह होते हुए भी उन्हे इसका जरा-सा भी भान न हुआ। इससे यह प्रतीत होगा कि उस समय वे देहभावना से परे होकर आत्मा मे कितने लीन रहते थे।

सिन्दूर लगाने के लिए जाया करता था और बिना किसी आध्यात्मिक प्रभाव के मैं घर वापस आ जाया करता था। किन्तु जागरण के बाद मै प्राय प्रतिदिन सन्ध्या के समय वहाँ जाने लगा। मै मन्दिर मे अकेला जाता और शिव, मीनाक्षी या नटराज एव तिरसठ सन्तो की मूर्तियो के समक्ष अविचल भाव से खडा हो जाता। मेरे हृदय-सागर मे भावना की लहरे उठने लगती ... प्राय मै किसी भी प्रकार की प्रार्थना नही करता था, किन्तु निज की अतल गहराइयो मे विद्यमान अमृतप्रवाह को अनन्त सत्ता की ओर प्रवाहित होने देता। मेरी आँखो मे से आँसुओ की अजस्र धारा बहने लगती और आत्मा को उसमे सराबोर कर देती।

"... यह अनुभव मुझे प्राप्त हुआ, इसके पहले भव-भ्रमण से मुक्त होने की अथवा वासनाशून्य होने की कोई उत्कट इच्छा मुझमें नही उठी थी। मैने ब्रह्म, ससार अथवा ऐसे किसी अन्य तत्त्व के विषय में कभी कुछ सुना नही था। . बाद में तिरूवन्न-मलाई में जब मैने विभु गीता और अन्य धार्मिक ग्रन्थ पढे, तब मुझे ज्ञात हुआ कि धार्मिक ग्रन्थो मे उस अवस्था का विश्लेषण एव नामोल्लेख है, जिसे मैं बिना किसी भी विशेषण या नाम के मुझ मे स्फुरण रूप से अनुभव कर रहा था।"[1, 2]

श्री रमण महर्षि के अनुभव की एक विलक्षणता यह थी कि उनका अनुभव क्षणिक नही था। सामान्य रूप से जब ऐसी अनुभूति मिलती है, तब साधक परमानन्द का अनुभव करता है, किन्तु यह आनन्द कुछ क्षण ही टिकता है। उन क्षणो के बाद वह पुन सामान्य मनुष्य की भाँति ससार के द्वन्द्वो में उलझ जाता है, जबकि श्री रमण महर्षि ने बताया है कि इस अनुभव के बाद उन्हे आत्मा का अनुसन्धान निरन्तर रहने लगा था।

ऐसा क्षणिक अनुभव मिलना भी कोई नगण्य प्राप्ति नही। इसका प्रभाव भी व्यक्ति के समग्र जीवन को छू जाता है। अनुभव प्राप्ति के समय की ध्येय साथ की तन्मयता, आनन्द, आश्चर्य, कृतकृत्यता तथा आत्मदर्शन द्वारा प्राप्त मोहविजय की खुमारी की कुछ झलक उपाध्याय श्री यशोविजय जी महाराज के निम्नलिखित उद्गारो मे से पाठक प्राप्त कर पायेंगे—

हम मगन भये प्रभु ध्यान मे, ध्यान मे प्रभु ध्यान में।
बिसर गई दुविधा तन-मन की, अचिरासुत गुण-गान में ॥१॥
हरिहर ब्रह्म पुरन्दर की रिद्धि, आवत नाहि कोई मान मे।
चिदानन्द की मौज मची है, समता-रस के पान में ॥२॥
इतने दिन तूँ नाहि पिछाण्यो, मेरो जनम गयो सो अजान मे।
अब तो अधिकारी होई बैठे, प्रभुगुण अखय खजान मे ॥३॥

---

१ Arthur Osborne, 'Raman Maharshi And the Path of Self Knowledge, pp 18-24 (Rider and Co London and Jaico Publishing House, Mahatma Gandhiji Road, Bombay).
[हिन्दी अनुवाद वेदराज वेदालकार, 'रमण महर्षि एव आत्मज्ञान का मार्ग', पृष्ठ ६-१२ (शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी अस्पताल रोड, आगरा ३)]

२ श्री रमण महर्षि ने 'अपने' के स्थान पर 'मेरे' शब्द का प्रयोग किया है। उन्ही के शब्द यहाँ दिये है, इसलिए परिवर्तन नही किया, जैसे—'मेरे अगो को स्थिर रखकर लेट गया'—के स्थान पर 'अपने अगो को स्थिर करके लेट गया' होना चाहिए।

गई दीनता अब सबही हमारी, प्रभू ! तुझ समकित दान मे ।
प्रभु गुण अनुभवरस के आगे, आवत नाहिं कोउ मान मे ॥४॥
जिनही पाया तिनहि छिपाया न कहे कोउ के कान मे ।
ताली लागे जब अनुभव की, तब समझे कोई शान मे ॥५॥
प्रभुगुण अनुभव चन्द्रहास ज्यो, सो तो न रहे म्यान मे ।
वाचक 'जश' कहे मोह महाअरि, जीत लियो है मैदान मे ॥६॥

अनुभूति से आता हुआ मूल्यपरिवर्तन

बहुधा प्रारम्भिक अनुभव थोडे ही पलो का होता है—मानो बिजली की कौंध की भाँति एक क्षण मे परमात्मा के दर्शन होते है और उसी प्रकार वे अलोप हो जाते है। किन्तु ये थोडे-से ही क्षण व्यक्ति की मानसिक वृत्ति मे क्राति ला देते है। 'अशे होय इहा अविनाशी, पुद्गल जाल तमाशी'—इस उक्ति मे उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज अनुभवयुक्त व्यक्ति का चित्र स्पष्ट रूप से उभारते हैं। किसी भयानक सपने मे भयभीत बने सोये हुए व्यक्ति की मानसिक अवस्था एव नीद खुल जाने पर भय रहित होकर स्वय मे हल्कापन अनुभव करते उस व्यक्ति की मानसिक अवस्था मे जो अन्तर है, ठीक वही अन्तर अनुभव प्राप्त करने वाले व्यक्ति की, अनुभव के पूर्व की एव अनुभव के बाद की मानसिक स्थिति मे पड जाता है। नीद से जगे हुए व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाता है कि स्वप्न की सृष्टि मात्र अपना मानसिक भ्रम था, यह होते ही उसके मन मे स्वप्न की घटना का कोई महत्त्व नही रहता। इसी प्रकार आत्मा के ज्ञान-आनन्दमय शाश्वत स्वरूप की स्वानुभवसिद्ध प्रतीति मिलते ही भव की भ्राति मिट जाती है एव बाह्य जगत स्वप्न के तमाशे-जैसा ही निस्सार प्रतीत होता है।

शक्ल अलग 'बिरादरी' एक

अनुभव मे गहराई एव स्थायित्व का तारतम्य होता है।[1] किसी का अनुभव गहरा एव स्थायी होता है, तो किसी का क्षणजीवी होता है। आत्मानुभव मिलने के बाद किसी के बाह्य जीवन मे जबर्दस्त परिवर्तन आता है, तो किसी का बाह्य जीवन पहले की तरह ही व्यतीत होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। अनुभव के बाद व्यक्ति के बाह्य जीवन मे कोई परिवर्तन आये या न आये, किन्तु उसका आन्तरकलेवर अवश्य बदल जाता है, जीवन एव जगत विषयक उसकी दृष्टि मे तो जडमूल परिवर्तन होता ही है, क्षणिक अनुभव भी व्यक्ति के मानस पर अपना प्रभाव अचूक छोड जाता है। अनुभव प्राप्त व्यक्ति अनुभव के पूर्व की और उसके बाद की अपनी दृष्टि मे इतना भारी फर्क अनुभव करता है कि उसने मानो नया ही जन्म लिया हो, ऐसा अनुभव करता है।

यह नही कि अनुभव ध्यान के समय ही प्राप्त हो, हो सकता है कि कोई भव्य हृदयस्पर्शी काव्य, उच्च सगीत या ज्ञानियो के किसी वचन का मनन करते हुए चित्त स्तब्ध हो जाए, देह का भान जाता रहे एव आत्मज्योति झिलमिला उठे। ऐसा भी होता है कि मनुष्य किसी भयानक विपत्ति मे फँसा हुआ हो—

---

१ योगशास्त्र, प्रकाश-१२, श्लोक-१३।
इस प्रकार का एक प्रसिद्ध उदाहरण अरुणाचल, तिरुवन्नमलाई, तमिलनाडु (दक्षिण भारत) के आत्मनिष्ठ सत श्री रमण महर्षि का है। यह असाधारण अनुभूति उन्हे अचानक ही कैसे मिली, यह वृत्तान्त आप पहले पढ चुके हैं।

निराशा, विषाद एव उदासीनता से वह बेतरह घिर गया हो—उस दरम्यान यह अनुभव अकस्मात् आये, एकाएक निराशा, विषाद, उदासीनता इत्यादि सभी हट जाएँ एव वह अपनी परिस्थिति का निर्लेप साक्षी रह जाए। जन्मान्तर की साधनाओ के सस्कार जाग जाने पर, किसी को इस जीवन के कुछ भी प्रयत्न, बिना किसी पूर्व तैयारी अथवा बिना किसी बाह्य निमित्त के ही तत्त्वदर्शन की प्राप्ति हो जाती है। कई बार तो जिसका बाह्य जीवन पाप एव अनाचार के पकिल मार्ग मे अग्रसर रहा हो, ऐसे व्यक्ति को भी, इस तरह एकाएक ही आत्मानुभव मिलता है एव उसके जीवन की दिशा बदल जाती है, और भयकर गुनहगार महान सन्त बन जाता है।

चाहे जिस प्रकार से अनुभव मिला हो, किन्तु सभी अनुभवियो की बिरादरी एक ही है। देश, काल एव मानव द्वारा रचित जाति, रग या मत-पथो के बाह्य भेदो को बीध कर वे एक दूसरे की अनुभव की भाषा को पहचान लेते है। किसी उच्च शिखर पर पहुँचने के लिए, तलहटियो से भिन्न-भिन्न मार्गो से जाने वाले यात्री, उदाहरणार्थ कदम्बगिरि की ओर से, घेटी की तलहटी की ओर से अथवा पालीताणा के पास की तलहटी से सिद्धगिरि पर चलने वाले—ज्यो-ज्यो ऊपर चढते जाते है, त्यो-त्यो वे एक दूसरे के करीब आते-जाते है, एव शिखर पर पहुँचने पर तो सभी एक ही स्थल पर आकर मिल जाते है, ठीक वैसा ही आध्यात्मिक पथ पर भी होता है। जिन-जिन को आत्मतत्त्व का अपरोक्ष अनुभव प्राप्त होता है, उन-उन मे एक मूलभूत साधर्म्य आ जाता है। अपनी तात्त्विक सत्ता देह एव जगत से परे है और इस सत्ता मे अवस्थित होना यही मुक्ति है—यह बात प्रत्येक 'अनुभवी' के अन्तर् मे बस जाती है। अत परिभाषा के भेद को छोडकर, वे एक-दूसरे के मन्तव्यो मे रहा हुआ साम्य परख सकते है। इससे कोई अदृश्य तन्तु इनके बीच बन्धुभावना की गाँठ बाँध देता है। अपनी स्वायत्तसत्ता के अनुभव के परिणामस्वरूप जीवन-दृष्टि का प्रभाव प्राय उनके समग्र जीवन-व्यवहार पर पडता है। नये उन्नत आदर्शो के क्षितिज उनके समक्ष खुलते है। दृष्टि की विशालता एव आशावादी जीवनदृष्टि अनुभवशील व्यक्ति का प्रमुख लक्षण बन जाता है। उनकी दृष्टि छिछली न रहकर तत्त्वग्राही बन जाती है, बाह्य प्रदर्शनो से भरमाती नही, और न वह अधानुकरण करती है। वह धर्म, नीति, देश-प्रेम, जीवन-पद्धति आदि किसी भी बात-विषयक प्रचलित मान्यताओ और व्यवहारो को अपनी विवेक-बुद्धि से कसकर देखती है। शास्त्रवचनो के रहस्य को भी वह शीघ्र ग्रहण कर पाती है। निरर्थक वाद-विवादो मे उसे रस नही रहता। अत अन्य लोग जहाँ उग्र चर्चाओ मे उलझ जाते है, वहाँ वह शान्त रहता है।

आत्मज्ञान की उषा

जैसे सूर्योदय से पहले रात्रि के अन्धकार की गहनता को चीरती हुई उषा आती है, वैसे ही आध्यात्मिक साधको के जीवन मे, अनुभव के आगमन से पहले बहिरात्म-भाव को मन्द करती हुई, आत्म ज्ञान की प्रभा फैलती है। इस झलमल प्रकाश में भी मुमुक्षु को स्वरूप का कुछ भान जरूर होता है, परन्तु जब अनुभव के द्वारा उसे स्वरूप की पक्की प्रतीति मिलती है, तभी उसकी बहिरात्मदृष्टि पूर्ण रूप से निराधार बनकर हटती है एव अन्तर्दृष्टि खिल उठती है। कहा गया है—

ज्ञानतणी चादरणी प्रगटी तब गई कुमति रयणी रे।
अकल अनुभव उद्योत हुओ जब सकल कला पिछाणी रे॥

□□

जैन दर्शन और योग दर्शन में कर्म-सिद्धान्त

—रत्नलाल जैन (जैन दर्शन—शोध छात्र)
(एम ए , एम एड)

भारत भूमि दर्शनो की जन्म-भूमि है, पुण्यस्थली है। इस पुण्यभूमि पर न्याय, साख्य, वेदान्त, वैशेषिक, मीमासा, बौद्ध और जैन आदि अनेक दर्शनो का आविर्भाव हुआ। यहाँ के मनीषी दार्शनिको ने आत्मा, परमात्मा, लोक और कर्म-पाप-पुण्य आदि महत्वपूर्ण तत्वो पर बडी गम्भीरता से चिन्तन-मनन और विवेचन किया है।

जैनदर्शन मे 'कर्म' शब्द जिस अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, उस अर्थ मे अथवा उससे मिलते-जुलते अर्थ मे अन्य दर्शनो मे भी इन शब्दो का प्रयोग किया गया है। माया, अविद्या, प्रकृति, अपूर्व, वासना, आशय, धर्माधर्म, अदृष्ट, सस्कार, दैव, भाग्य आदि।

'माया', 'अविद्या' और 'प्रकृति' शब्द वेदान्त दर्शन मे उपलब्ध है। 'अपूर्व' शब्द मीमासा दर्शन मे प्रयुक्त हुआ है। "वासना" शब्द बौद्धदर्शन मे विशेष रूप से प्रसिद्ध है। "आशय" शब्द विशेषत योग और साख्य दर्शन मे उपलब्ध है। "धर्माधर्म", "अदृष्ट" और "सस्कार" शब्द न्याय एव वैशेषिक दर्शनो मे प्रचलित है। "दैव", "भाग्य", "पुण्य", "पाप" आदि अनेक ऐसे शब्द है जिनका साधारणतया सब दर्शनो मे प्रयोग किया गया है। जैन और योग दर्शनो मे कर्मवाद का विचित्र समन्वय मिलता है।

कर्म की जैन परिभाषा—प्रसिद्ध आचार्य देवेन्द्रसूरि कर्म की परिभाषा करते हुए लिखते हैं—"जीव की क्रिया का जो हेतु है, वह कर्म है।" प० सुखलाल जी कहते है—"मिथ्यात्व, कषाय आदि कारणो से जीव के द्वारा जो कुछ किया जाता है, वही कर्म कहलाता है। जब प्राणी अपने मन, वचन अथवा तन से किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति करता है, तब चारो ओर से कर्म योग्य पुद्गल-परमाणुओ का आकर्षण होता है। आत्मा की राग-द्वेषात्मक क्रिया से आकाश प्रदेशो मे विद्यमान अनन्तानन्त कर्म के सूक्ष्म पुद्गल चुम्बक की तरह आकर्षित होकर आत्मप्रदेशो से सश्लिष्ट हो जाते है, उन्हे कर्म कहते है।" जैन लक्षणावली मे लिखा है—"अजनचूर्ण से परिपूर्ण डिब्बे के समान सूक्ष्म व स्थूल आदि अनन्त पुद्गलो से परिपूर्ण, लोक मे जो कर्मरूप मे परिणत होने योग्य नियत पुद्गल जीव-परिणाम के अनुसार बन्ध को

प्राप्त होकर ज्ञान-दर्शन के घातक (ज्ञानावरण व दर्शनावरण तथा सुख-दु ख शुभ-अशुभ आयु, नाम, उच्च व नीच गोत्र और अन्तराय रूप) पुद्गलो को कर्म कहा जाता है।

पातजल योग दर्शन मे कर्माशय—महर्षि पतजलि लिखते है—"क्लेशमूलक कर्माशय—कर्म-सस्कारो का समुदय वर्तमान और भविष्य दोनो ही जन्मो मे भोगा जाने वाला है।" कर्मो के सस्कारो की जड—अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं। यह क्लेशमूलक कर्माशय जिस प्रकार इस जन्म मे दु ख देता है, उसी प्रकार भविष्य में होने वाले जन्मो मे भी दु खदायक है। जब चित्त मे क्लेशो के सस्कार जमे होते है, तव उनसे सकाम कर्म उत्पन्न होते है। बिना रजोगुण के कोई क्रिया नही हो सकती। इस रजोगुण का जब सत्व गुण के साथ मेल होता है, तब ज्ञान, धर्म, वैराग्य और ऐश्वर्य के कर्मो मे प्रवृत्ति होती है। इस रजोगुण का जब तमोगुण से मेल होता है तब उसके उल्टे अज्ञान, अधर्म, अवैराग्य और अनैश्वर्य के कर्मो मे प्रवृत्ति होती है। यही दोनो प्रकार के कर्म शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य या शुक्ल-कृष्ण कहलाते है।

जैन दर्शन की आठ कर्म प्रकृतियाँ—जिस रूप मे कर्म-परमाणु आत्मा की विभिन्न शक्तियो के प्रकटन का अवरोध करते है, और आत्मा का शरीर से सम्बन्ध स्थापित करते है तथा जिन कर्मो से बद्ध जीव ससार भ्रमण करता है, वे आठ है —

१ **ज्ञानावरणीय कर्म**—यह कर्म जीव की अनन्त ज्ञान-शक्ति के प्रादुर्भाव को रोकता है।
२ **दर्शनावरणीय कर्म**—यह कर्म जीव की अनन्त दर्शन-शक्ति को प्रकट नही होने देता।
३ **मोहनीय कर्म**—यह कर्म आत्मा की वीतराग दशा/स्वरूपरमणता को रोकता है।
४ **अन्तराय कर्म**—यह कर्म अनन्तवीर्य को प्रकट नही होने देता।
५ **वेदनीय कर्म**—यह कर्म अव्याबाध सुख को रोकता है।
६ **आयुष्य कर्म**—यह कर्म शाश्वत स्थिरता को नही होने देता है।
७ **नाम कर्म**—यह कर्म अरूपी अवस्था नही होने देता।
८ **गोत्र कर्म**—यह कर्म अगुरु-लघुभाव को रोकता है।

घाति और अघाति कर्म

घाति कर्म—जो कर्म आत्मा के साथ बँध कर उसके नैसर्गिक गुणो का घात करते है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय घाति कर्म है।

अघाति कर्म—जो आत्मा के प्रधान गुणो को हानि नही पहुँचाते। वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र अघाति कर्म है।

योग दर्शन के विपाक—जाति, आयु और भोग

जब तक क्लेश रूप जड विद्यमान रहती है, तब तक कर्माशय का विपाक अर्थात् फल जाति, आयु और भोग होता है।

क्लेश जड है। उन जडो से कर्माशय का वृक्ष बढता है। उस वृक्ष मे जाति, आयु और भोग तीन प्रकार के फल लगते है। कर्माशय वृक्ष उसी समय तक फलता है, जब तक अविद्यादि क्लेशरूपी उसकी जड विद्यमान रहती है।

जैन दर्शन में बन्ध का स्वरूप—जीव और कर्म के सश्लेष को बन्ध कहते है। जीव अपनी वृत्तियो

से कर्म-योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है। इन ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गल और जीव-प्रदेशो का वन्धन—सयोग ही वन्ध है।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती लिखते हे—जिन चैतन्य परिणाम से कर्म बँधता है, वह भाव-बन्ध है, तथा कर्म और आत्मा के प्रदेशो का प्रवेश, एक दूसरे मे मिल जाना, एकक्षेत्रावगाही हो जाना, द्रव्यबन्ध है। कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरि लिखते हैं—"जीव कषाय के कारण कर्मयोग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, यह बन्ध है। वह जीव की अस्वतन्त्रता का कारण है।" आचार्य पूज्यपाद के अनुसार जीव और कर्म के इस सश्लेष को दूध और जल के उदाहरण से समझा जा सकता है।

योग और कषाय—बन्ध के हेतु

दूसरे रूप मे—"योग प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध का हेतु है, और कषाय स्थितिवन्ध और अनुभाग बन्ध का हेतु है।" इस प्रकार योग और कपाय—ये दो वन्ध के हेतु वनते है। तीसरी दृष्टि से—"मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग, ये बन्ध के हेतु है।" इन चार वन्धहेतुओ से सत्तावन भेद हो जाते है।

धर्मशास्त्र, आगम मे प्रमाद को भी बन्ध हेतु कहा है। श्री उमास्वाति ने पाँच बन्ध हेतु माने है—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय और योग।

इस प्रकार जैनदर्शन मे बन्ध-हेतुओ की सख्या पाँच आस्रवो के रूप मे मान्य है।

समन्वय– कर्म-बन्ध के हेतुओ की दृष्टियो का समन्वय इस प्रकार किया गया है—"प्रमाद एक प्रकार का असयम ही है। इसलिये वह अविरति या कपाय मे आ जाता है। सूक्ष्मता से देखने से मिथ्यात्व और अविरति ये दोनो कषाय के स्वरूप से भिन्न नही इसलिए कपाय और योग—ये दो ही बन्ध के हेतु माने हैं।"

कर्म-बन्ध के हेतु—पाँच आस्रव

पाँच आस्रव—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग बन्ध के हेतु है। जैन धर्म-शास्त्रो—आगमो मे कर्म-बन्ध के दो हेतु कहे गये है—१ राग और २ द्वेष। राग और द्वेष कर्म के बीज है। जो भी पाप कर्म है, वे राग और द्वेप से अर्जित होते हैं। टीकाकार ने राग से माया और लोभ को ग्रहण किया है, और द्वेप से क्रोध और मान को ग्रहण किया है।

एक बार गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा "भगवन्! जीव कर्मप्रकृतियो का बन्ध कैसे करते है?" भगवान् ने उत्तर दिया—"गौतम! जीव दो स्थानो से कर्मो का बन्ध करते हैं—एक राग से और दूसरे द्वेप से। राग दो प्रकार का है—माया और लोभ। द्वेष भी दो प्रकार का है—क्रोध और मान।"

क्रोध, मान, माया और लोभ—इन चारो का सग्राहक शब्द कषाय है। इस प्रकार एक कषाय ही वन्ध का हेतु होता है।

योग दर्शन मे बन्ध के मूल कारण—पाँच क्लेश—सब वन्धनो और दुखो के मूल कारण पाँच क्लेश हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेप और अभिनिवेश। ये पाँचो वाधनारूप पीडा को पैदा करते हैं। ये चित्त मे विद्यमान रहते हुए सस्काररूप गुणो के परिणाम को दृढ करते हैं इसलिये इनको क्लेश के नाम से पुकारा जाता है।

साख्य दर्शन की भापा मे इन पाँचो—अविद्या को तमस, अस्मिता को मोह, राग को महामोह, द्वेप को तमिस्र और अभिनिवेश को अन्धतामिस्र के नामो मे अभिहित किया गया है।

आचार्य पूज्यपाद ने लिखा है—"मूढ आत्मा जिसमें विश्वास करता है, उससे अधिक कोई भयानक वस्तु नही। मूढ आत्मा जिससे डरता है, उससे बढकर शरण देने वाली वस्तु इस ससार मे [illegible] है।"

भयकर वस्तु मे विश्वास करना और अभयदान करने वाली वस्तुओ से दूर भागना—यह उस [illegible]थ होता है जब आत्मा मूढ हो, दृष्टिकोण मिथ्या हो, अविद्या, और अज्ञान और मोह से व्यक्ति [illegible] हो।

[illegible] और अविद्या—

मिथ्यात्व—मिथ्यात्व का अर्थ है मिथ्यादर्शन, जो कि सम्यग्दर्शन से उलटा होता है। जो बात [illegible]सी हो, उसे वैसी न मानना या विपरीत मानना मिथ्यात्व है।

मिथ्यात्व के दस रूप—मिथ्यात्व, विपरीत तत्व-श्रद्धा के दस रूप बनते है—

१ अधर्म में धर्म सज्ञा। २ धर्म मे अधर्म सज्ञा। ३ अमार्ग मे मार्ग सज्ञा। ४ मार्ग मे अमार्ग [illegible]। ५ अजीव मे जीव सज्ञा। ६ जीव मे अजीव सज्ञा। ७. असाधु में साधु सज्ञा। ८ साधु मे असाधु [illegible]ज्ञा। ९ अमुक्त मे मुक्त सज्ञा। १० मुक्त मे अमुक्त सज्ञा।

अविद्या—जिसमे जो धर्म नही है, उसमे उसका भान होना अविद्या का सामान्य लक्षण है।

अविद्या के पाद—योग दर्शन के अनुसार पशु के तुल्य अविद्या के भी चार पाद हैं—

१ अनित्य मे नित्य का ज्ञान। २ अपवित्र मे पवित्रता का ज्ञान। ३ दु ख मे सुख का ज्ञान। [illegible] अनात्म (जड) मे आत्म का ज्ञान।

अविरति—विरति का अभाव, व्रत या त्याग का अभाव, दोषो से विरति न होना। पौद्गलिक [illegible]ख के लिये व्यक्त या अव्यक्त पिपासा।

मनोविज्ञान ने मन के तीन विभाग किये है—

१ अदस् मन (Id), २ अह मन (Ego), ३ अधिशास्ता मन (Super Ego)।

अदस् मन—इसमे आकाक्षाएँ पैदा होती हैं। जितनी प्रवृत्त्यात्मक आशा अकाक्षाएँ और इच्छाएँ [illegible] है वे सभी इसी मन मे पैदा होती है।

अह मन—समाज व्यवस्था से जो नियन्त्रण प्राप्त होता है, उससे आकाक्षाएँ यहाँ नियन्त्रित हो जाती है और वे कुछ परिमार्जित हो जाती है। उन पर अकुश जैसा लग जाता है। अह मन इच्छाओ को क्रियान्वित नही करता है।

अधिशास्ता मन—यह अह पर भी अकुश रखता है, और उसे नियन्त्रित करता है।

अविरति अर्थात् छिपी हुई चाह, सुख-सुविधा को पाने की चाह और कष्ट को मिटाने की चाह। यह जो विभिन्न प्रकार की आन्तरिक चाह है, आकाक्षा है—इसे कर्मशास्त्र की भाषा मे अविरति आस्रव कहा है। इसे मनोविज्ञान की भाषा मे अदस् मन कहा गया है।

कषाय—राग और द्वेष

उमास्वाति कहते है—"कषाय भाव के कारण जीव कर्म के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, वह बन्ध कहलाता है।"

आत्मा मे राग या द्वेष भावो का उद्दीप्त होना ही कषाय है। राग और द्वेष—दोनो कर्म के बीज है। जैसे दीपक अपनी ऊष्मा से बत्ती के द्वारा तेल को आकर्षित कर उसे अपने शरीर (लौ) के रूप मे बदल लेता है, वैसे ही यह आत्मा रूपी दीपक अपने रागभावरूपी ऊष्मा के कारण क्रियाओ रूपी बत्ती के द्वारा कर्म-परमाणुओ रूपी तेल को आकर्षित कर उसे अपने कर्म शरीररूपी लौ मे बदल देता है।

राग क्लेश—सुख भोगने की इच्छा राग है—जीव को जब कभी जिस-जिस किसी अनुकूल पदार्थ मे सुख की प्रतीति हुई है या होती है, उसमे और उसके निमित्तो मे उसकी आसक्ति-प्रीति हो जाती है, उसी को राग कहते है। वाचकवर्य श्री उमास्वाति कहते हैं—इच्छा, मूर्च्छा, काम, स्नेह, गृद्धता, ममता, अभिनन्द—प्रसन्नता और अभिलाषा आदि अनेक राग भाव के पर्यायवाची शब्द है।

द्वेष क्लेश—पातजल योग-दर्शन मे लिखा है कि दुःख के अनुभव के पीछे जो घृणा की वासना चित्त मे रहती है, उसे द्वेष कहते हैं। जिन वस्तुओ अथवा साधनो से दुःख प्रतीत हो, उनसे जो घृणा या क्रोध हो, उनके जो सस्कार चित्त मे पडे हो उसे द्वेष—क्लेश कहते हैं।

प्रशमरति मे लिखा है—"ईर्ष्या, रोष, द्वेष, दोष, परिवाद, मत्सर, असूया, वैर, प्रचण्डन आदि शब्द द्वेषभाव के पर्यायवाची शब्द हैं। प्रमाद, अस्मिता और अभिनिवेश का समावेश भी राग-द्वेष मे हो जाता है।

चार कषाय के बावन नाम

कषाय चार है—क्रोध, मान, माया और लोभ। समवायाग—५२ मे चार कषाय रूप मोह के ५२ नाम कहे गए हैं—जिन मे क्रोध के दस, मान के ग्यारह, माया के सत्रह, और लोभ के चौदह नाम बताए गए है जो इस प्रकार है—

क्रोध—१ क्रोध, २ कोप, ३ रोष, ४ दोष, ५ अक्षमा, ६ सज्वलन, ७ कलह, ८ चाडिक्य, ९ भडण और १० विवाद।

मान—१ मान, २ मद, ३ दर्प, ४ स्तम्भ, ५ आत्मोत्कर्ष, ६ गर्व, ७ पर-परिवाद, ८ आक्रोश, ९ अपकर्ष, १० उन्नत और ११ उन्नाम।

माया—१ माया, २ उपाधि, ३ निकृति, ४ वलय, ५ ग्रहण, ६ न्यवम, ७ कल्क, ८ कुरूक, ९ दम्भ, १० कूट, ११ वक्रता, १२ किल्विष, १३ अनादरता, १४ गूहनता, १५ वचनता, १६ परिकुञ्च-नता, १७ सातियोग।

लोभ—१ लोभ, २ इच्छा, ३ मूर्च्छा, ४ काक्षा, ५ गृद्धि, ६ तृष्णा, ७ भिध्या, ८ अभिध्या, ९ कामाशा, १० भोगाशा, ११ जीविताशा, १२ मरणाशा, १३ नन्दी और १४ राग।

आस्रव और कर्माशय—आस्रव काय, वचन और मन की क्रिया योग है। वही कर्म का सम्बन्ध कराने वाला होने के कारण आस्रव कहलाता है।

कपाय सहित और रहित आत्मा का योग क्रमश. साम्परायिक और ईर्यापथ कर्म का बन्ध हेतु आस्रव होता है।

जिन जीवो में क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कपायो का उदय हो, वह कपाय सहित है।

पहले से दसवे गुणस्थान तक के जीव न्यूनाधिक मात्रा मे कपायसहित है और ग्यारहवे-आदि आगे के गुणस्थानो वाले जीव कपाय रहित है।

कर्माशय क्लेशमूल—

पाँच क्लेश जिसकी जड है, ऐसी कर्म की वासना वर्तमान और भविष्य में होने वाले दोनो जन्मो में भोगा जाने के योग्य है। जिन महान योगियो ने क्लेशो को निर्वीज समाधि द्वारा उखाड दिया है, उनके कर्म निष्काम अर्थात् वासनारहित केवल कर्तव्य-मात्र रहते है, इसलिए उनको इसका फल भोग्य नही है। जब क्लेशो के सस्कार चित्त में जमे हो तब उनसे सकाम कर्म उत्पन्न होते है।

शुभ-अशुभ आस्रव—पुण्य-पाप कर्म—शुभ योग पुण्य का वन्ध हेतु है और अशुभ योग पाप का वन्ध-हेतु है। पुण्य का अर्थ है, जो आत्मा को पवित्र करे। अशुभ-पाप कर्मो से मलिन हुई आत्मा क्रमश शुभ कर्मो का—पुण्य कर्मो का अर्जन करती हुई पवित्र होती है, स्वच्छ होती है।

आचार्य कुन्दकुन्द लिखते है—"जिसके मोह-राग-द्वेप होते है, उसके अशुभ परिणाम होते है। जिसके चित्त प्रसाद—निर्मल चित्त होता है, उसके शुभ परिणाम होते है। जीव के शुभ परिणाम पुण्य है और अशुभ परिणाम पाप। शुभ-अशुभ परिणामो मे से जीव के जो कर्म-वर्गणा योग्य पुद्गलो का ग्रहण होता है, वह क्रमश द्रव्य पुण्य-द्रव्य पाप है।

योग दर्शन के अनुसार "वे जन्म, आयु और भोग—सुख-दु ख फल के देने वाले होते है, क्योकि उनके पुण्य कर्म और पापकर्म दोनो ही कारण है।"

आठ कर्मों मे पुण्य-पाप-प्रकृतियाँ—

प्रत्येक आत्मा में सत्तारूप से आठ गुण विद्यमान है—

१ अनन्त ज्ञान
२ अनन्त दर्शन
३. क्षायिक सम्यक्त्व
४. अनन्तवीर्य
५. आत्मिक सुख
६ अटल अवगाहन
७. अमूर्तिकत्व
८ अगुरुलघुभाव

कर्मावरण के कारण ये गुण प्रकट नही हो पाते। जीव द्वारा वाँधे जाने वाले आठ कर्म है—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय, आयुष्य, नाम और गौत्र—ये ही क्रमश आत्मा के आठ गुणो को प्रकट होने नही देते।

कर्मों की मूल प्रकृतियो, उत्तरप्रकृतियो मे पुण्य पाप का विवेचन निम्न प्रकार मिलता है—

मूल प्रकृतियाँ	उत्तर प्रकृतियाँ	पाप प्रकृतिया	पुण्य प्रकृतियाँ
१ ज्ञानावरणीय	५	५	—
२ दर्शनावरणीय	९	९	—
३ वेदनीय	२	१ (असाता)	१ (साता)
४. मोहनीय	२८	२६	२
५ आयुष्य	४	१ (नरक)	३ (देव, मनुष्य, तिर्यन्च)
६ नाम	४२	३४	८ (उच्च)
७ गोत्र	२	१ (नीच)	१ (उच्च)
८ अन्तराय	५	५	—
	९७	८२	१५

पुण्य-शुभ कर्म है, किन्तु अकाम्य है, हेय है —

योगीन्दु कहते है—"पुण्य से वैभव, वैभव से अहकार, अहकार से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से पाप होता हे, अत हमे वह नही चाहिये।" आचार्य कुन्दकुन्द कहते है—"अशुभ कर्म कुशील है—बुरा है और शुभ कर्म सुशील है—अच्छा है, ऐसा जगत् मानता है। परन्तु जो प्राणी को ससार मे प्रवेश कराता है, वह शुभ कर्म सुशील, अच्छा कैसे हो सकता है ? जैसे लोहे की वेडी पुरुप को बाँधती है और सुवर्ण की भी बाँधती है, उसी तरह शुभ और अशुभ कृत कर्म जीव को बाँधते है। अत जीव ! तू दोनो कुशीलो से प्रीति अथवा ससर्ग मत कर। कुशील के साथ ससर्ग और राग से जीव की स्वाधीनता का विनाश होता हे। जो जीव परमार्थ से दूर है, वे अज्ञान से पुण्य को अच्छा मानकर उसकी कामना करते हैं। पर पुण्य ससार गमन का हेतु है, अत तू पुण्य कर्म मे प्रीति मत कर।"

पुण्य काम्य नही है। पुण्य की कामना पर-समय है। योगीन्दु कहते हैं—"वे पुण्य किस काम के जो राज्य देकर जीव को दुख परम्परा की ओर धकेल दे। आत्म-दर्शन की खोज मे लगा हुआ व्यक्ति मर जाए—यह अच्छा है, किन्तु आत्मदर्शन की खोज से विमुख होकर पुण्य चाहे—वह अच्छा नही है।"

सुखप्रद कर्माशय भी दुख है—महर्षि पतजलि लिखते है—"परिणाम-दुख, पाप-दुख और सस्कार-दुख—ये तीन प्रकार के दुख सब मे विद्यमान रहने के कारण और तीनो गुणो की वृत्तियो मे परस्पर विरोध होने के कारण विवेकी पुरुप के लिये सब के सब कर्मफल दुख रूप ही है।" परिणाम-दुख जो कर्म विपाक भोग काल मे स्थूल दृष्टि से सुखद प्रतीत होता है, उसका परिणाम दुख ही है। जैसे स्त्री प्रसग के समय मनुष्य को सुख भासता है, परन्तु उसका परिणाम—वल, वीर्य, तेज, स्मृति आदि का ह्रास प्रत्यक्ष देखने मे आता है। इसी प्रकार दूसरे भोगो मे भी समझ लेना चाहिये।

गीता मे भी कहा है—"जो सुख विपय और इन्द्रियो के सयोग से होता है, वह यद्यपि भोग काल मे अमृत के सदृश भासता है, परन्तु परिणाम मे विप के तुल्य है, इसलिये वह सुख राजस कहा गया है।" विवेकी पुरुप परिणाम-दुख, ताप-दुख, सस्कार-दुख तथा गुणवृत्तियो के निरोध से होने वाले दुख को विवेक के द्वारा समझता है। उसकी दृष्टि मे सभी कर्म विपाक दुख रूप है। साधारण जनसमुदाय जिन भोगो को सुखरूप समझता है विवेकी के लिये वे भी दुख ही है। गीता मे लिखा है—"इन्द्रियो और विपयो के सयोग से उत्पन्न होने वाले जितने भी भोग है, वे सव के सव दुख के ही कारण है।" ज्ञानी कहते हैं—काम-भोग शल्यरूप है, विपरूप है, जहर के सदृश है।

सवर—आस्रव का निरोध,

योग—चित्त वृत्ति का निरोध—

सवर—वाचक उमास्वाति लिखते है--"आस्रव-द्वार का निरोध करना सवर है।" आचार्य पूज्यपाद लिखते है—"जो शुभ-अशुभ कर्मो के आगमन के लिये द्वार रूप है, वह आस्रव है, जिसका लक्षण आस्रव का निरोध करना है, वह संवर है।"

आचार्य हेमचन्द्र सूरि का कथन है—"जो सर्व आस्रवो के निरोध का हेतु है, उसे सवर कहते है।"

"जिस तरह नौका में छिद्रो से जल प्रवेश पाता है और छिद्रो को रूँध देने पर थोडा भी जल प्रविष्ट नही होता, वैसे ही योगादि आस्रवो को सर्वत अवरुद्ध कर देने पर सवृत जीव के प्रदेशो मे कर्म द्रव्यो का प्रवेश नही होता।"

योग चित्तवृत्तियो का निरोध—महर्षि पतजलि लिखते है—योगश्चित्तवृत्तिनिरोध, "चित्त की वृत्तियो का रोकना योग है।" चित्त की वृत्तियाँ जो बाहर को जाती है, उन बहिर्मुख वृत्तियो को सासारिक विषयो से हटाकर उससे उल्टा अर्थात् अन्तर्मुख करके अपने कारण चित्त मे लीन कर देना योग है।

चित्त मानो अगाध परिपूर्ण सागर का जल है। जिस प्रकार वह पृथ्वी के सम्बन्ध से खाडी, झील आदि के आन्तरिक तदाकार परिणाम को प्राप्त होता है, उसी प्रकार चित्त आन्तर-राग-द्वेष काम-क्रोध, लोभ-मोह, भय आदि रूप आकार से परिणत होता रहता है तथा जिस प्रकार वायु आदि के वेग से जलरूपी तरग उठती है, इसी प्रकार चित्त इन्द्रियो द्वारा बाह्य विषयो से आकर्षित होकर उन जैसे आकारो में परिणत होता रहता है। ये सब चित्त की वृत्तियाँ कहलाती है, जो अनन्त है और प्रतिक्षण उदय होती रहती है।

"वृत्तियाँ पाँच प्रकार की है— क्लिष्ट अर्थात् राग-द्वेषादि क्लेशो की हेतु और अक्लिष्ट अर्थात् राग-द्वेषादि क्लेशो का नाश करने वाली।" "पाँच प्रकार की वृत्तियाँ इस प्रकार हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।"

पाँच महाव्रत एव पाँच सार्वभौम यम

जैनदर्शन मे आत्मसाधना—आस्रवनिरोध के लिये पॉच महाव्रतो की पालना के लिये विधान है, इसी प्रकार योग-दर्शन मे योग की साधना के लिये पॉच सार्वभौम यमो की प्रतिष्ठा की गई है। हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह से (मन, वचन और काय द्वारा) निवृत्त होना व्रत है। "अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच यम है।"

मन से, वचन से और शरीर से (कर्म से) सभी प्राणियो की किसी प्रकार से (करना, कराना, अनुमोदन करना) हिंसा—कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है। "भगवान महावीर ने कहा है—हे मानव! तू दूसरे जीवो की आत्मा को भी अपनी ही आत्मा के समान समझकर हिंसा कार्य मे प्रवृत्त न हो । हे पुरुष! जिसे तू मारने की इच्छा करता है, विचार कर, वह तेरे जैसा ही सुख-दु.ख का अनुभव करने वाला प्राणी है। जो हिंसा करता है उसका फल बाद मे वैसा ही भोगना पडता है। अत मनुष्य किसी भी प्रकार प्राणी की हिंसा करने की कामना न करे।"

इसी प्रकार सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रतो, यमो की तीन करण व तीन योग—मन, वचन और काय से पालना करनी चाहिए।

निर्जरा के बारह भेद, अष्टाग योग —

निर्जरा-तप—भगवान महावीर ने कहा है—जिस तरह जल आने के मार्ग को रोक देने पर बडा तालाब पानी के उलीचे जाने और सूर्य के ताप से क्रमश सूख जाता है, उसी प्रकार आस्रव—पाप कर्म के प्रवेश मार्गों को रोक देने वाले सयमी पुरुष के करोडो जन्मो के सचित कर्म तप के द्वारा जीर्ण होकर झड जाते है। निर्जरा तप के बारह (छह बहिरग और छह आभ्यन्तर) अग है—

१ अनशन—	उपवास आदि तप
२ ऊनोदरी	कम खाना, मिताहार
३ भिक्षाचरी—	जीवन निर्वाह के साधनो का सयम
४ रस-परित्याग—	सरस अहार का परित्याग
५ कायक्लेश—	आसनादि क्रियाएँ
६ प्रतिसलीनता—	इन्द्रियो को विपयो से हटाकर अन्तर्मुखी करना
७ प्रायश्चित्त—	पूर्वकृत दोप विशुद्ध करना
८ विनय—	नम्रता
९ वैयावृत्य—	साधको को सहयोग देना
१० स्वाध्याय—	पठन-पाठन
११ ध्यान—	चित्तवृत्तियो को स्थिर करना
१२ व्युत्सर्ग—	शरीर की प्रवृत्ति को रोकना।

अष्टाग योग—महर्षि पतजलि ने लिखा है—"योग के अगो का अनुष्ठान करने से—आचरण करने से अशुद्धि का नाश होने पर ज्ञान का प्रकाश विवेकख्याति तक प्राप्त होता है।"

योग दर्शन मे योग के आठ अग माने गये है—

१ यम २ नियम ३ आसन ४ प्राणायाम ५ प्रत्याहार ६ धारणा ७ ध्यान ८ समाधि।

यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह ये पाँच यम है।

नियम—शौच, सन्तोप, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान—ये पाँच नियम है।

आसन—निश्चल—हलन-चलन से रहित सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।

प्राणायाम—श्वास और प्रश्वास की गति का नियमन प्राणायाम है।

प्रत्याहार—अपने विपयो के सम्बन्ध से रहित होने पर इन्द्रियो का चित्त के स्वरूप मे तदाकार हो जाना प्रत्याहार है।

धारणा—किसी एक देश मे चित्त को ठहराना धारणा है।

ध्यान—चित्त मे वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है।

समाधि—जब ध्यान मे केवल ध्येय मात्र की प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है, तब वही ध्यान समाधि हो जाता है।

केवलज्ञान और विवेक जन्य ज्ञान और मोक्ष—

केवलज्ञान—वाचक उमास्वाति लिखते हैं—"मोह कर्म के क्षय से तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मो के क्षय से केवलज्ञान प्रकट होता है।

प्रतिबन्धक कर्म चार है, इन मे से प्रथम मोहनीय कर्म क्षीण होता है, तदन्तर अन्तर्मुहूर्त बाद ही ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय—इन तीन कर्मो का क्षय होता है। इस प्रकार मोक्ष प्राप्त होने से पहले केवल उपयोग—सामान्य और विशेष दोनो प्रकार का सम्पूर्ण बोध प्राप्त होता है। यही स्थिति सर्वज्ञत्व और सर्वदर्शित्व की है।

विवेकजन्य तारक ज्ञान—

महर्षि पतजलि लिखते है—"जो ससार समुद्र से तारने वाला है, सब विषयो को, सब प्रकार से जानने वाला है, और बिना क्रम के जानने वाला है, वह विवेक जनित ज्ञान है।"

"बुद्धि और पुरुष—इन दोनो की जब समभाव से शुद्धि हो जाती है, तब कैवल्य होता है।"

इस प्रकार बन्धहेतुओ के अभाव और निर्जरा से कर्मो का आत्यन्तिक क्षय होता है। सम्पूर्ण कर्मो का क्षय होना ही मोक्ष है।

पता—गली आर्य समाज
जैन धर्मशाला के पास
हासी (हिसार) १२५०३३

卐 卐

नाव रहेगी तो पानी मे ही रहेगी। आप और हमको, जब तक मोक्ष नही होगा' मोक्ष की साधना ससार मे रहकर ही करनी होगी। ससार इतना बुरा नही है। तीर्थंकर, सन्त, साधुपुरुष, सब इस ससार मे ही तो जन्मे है। उन्होने ससार मे रहकर ही तो साधना की है। यही रहकर तीर्थंकर बने, सन्त बने, महापुरुष बने, ब्रह्मचारी बने, सदाचारी बने। सच तो यह है कि बाह्य ससार इतना बुरा नही है। अन्दर का ससार बुरा है। ससार बुरा नही है, ससार का भाव बुरा है। हम ससार मे भले रहे, किन्तु ससार हमारे अन्दर नही रहना चाहिए। ससार का अन्दर रहना ही बुरा है। पाप का कारण है, कर्म-बन्धन का हेतु है। नाव पानी मे रहती है, बैठने वाले को तिराती है, स्वय भी तिरती है। जब तक नाव पानी के ऊपर बहती रहती है, तब तक बैठने वाले को कोई खतरा नही। नाव पानी मे भले रहे, किन्तु पानी नाव मे नही रहना चाहिए, नही भरना चाहिए। जब पानी नाव मे भरना शुरू हो जाता है तब खतरा पैदा हो जाता है। नाव के डूबने का डर रहता है। मरने की स्थिति आ जाती है, क्योकि नाव पानी से भारी हो गई है।

—आचार्य श्री जिनकान्तिसागर सूरि
('उठ जाग मुसाफिर भोर भई' पुस्तक से)

卐 卐

अर्थात् ज्ञान वृद्धि के लिये, दर्शन शुद्धि के लिये और पदार्थो के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये सक्षेप मे ज्ञान-दर्शन और चारित्र के मार्ग पर बढते हुए एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना शिक्षा का लक्ष्य है जो राग-द्वेष से मुक्त हो। "दशवैकालिक सूत्र" के ९वें अध्ययन मे शास्त्रो के स्वाध्याय का लाभ बताते हुए कहा गया है कि शास्त्राध्ययन से सत्य का साक्षात्कार होता है, चचल चित्त एकाग्र होता है, मन स्थिर होता है और स्वय स्थिर होकर दूसरो के अस्थिर मन को स्थिर बनाने की योग्यता अर्जित होती है।

शिक्षा की पद्धति

जैन शास्त्रो मे शिक्षा के मुख्यत दो प्रकार बताये गये है—१ ग्रहण शिक्षा २ आसेवना शिक्षा। ग्रहण शिक्षा मे ज्ञान-सग्रह की प्रमुखता रहती है तो आसेवना शिक्षा मे ग्रहण किये हुए ज्ञान को आचरण मे लाने पर बल दिया जाता है। सक्षेप मे सम्यक् शिक्षा विचार और आचार का समन्वय है। इन दोनो प्रकार की शिक्षाओ की उपलब्धि के लिए "उत्तराध्ययन सूत्र" के ११वे अध्ययन में स्पष्ट कहा है—

वसे गुरुकुले निच्च, जोगव उवहाणव।
पियकरे, पियवाई से सिक्ख लद्धुमरिहई।। १४ ।।

अर्थात् जो सदा गुरुकुल मे (गुरुजनो की सेवा मे) रहता है, जो योग और उपधान (शास्त्राध्ययन से सम्बन्धित विशेष तप) मे निरत है, जो प्रियकर है और प्रियभाषी है, वह शिक्षा प्राप्त करने के योग्य होता है।

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि शिक्षा के लिये गुरुसेवा मे रहना आवश्यक माना गया है। गुरु ही शिष्य मे उसकी सुषुप्त शक्तियो को विकसित करने की प्रेरणा फूकता है। गुरु के चरित्र का शिक्षार्थी पर सीधा प्रभाव पडता है। गुरु अध्ययन की कला सिखाकर उसे आत्मधर्म मे स्थित करता है। ज्ञान नि शक बनकर, चिन्तन-मनन की प्रक्रिया द्वारा अनुभवन मे आए, इसके लिए स्वाध्याय पर बल दिया गया है। आज तो शिक्षा पद्धति मे अध्ययन-कौशल का इतना विकास हो गया है कि उससे स्वाध्याय-कला का निर्वासन सा हो गया है। बाह्य इन्द्रियो की क्षमता बढने से रग, गन्ध, रस, शब्द, स्पर्श आदि की पहचान और प्रतीति मे विकास हुआ है, विश्व की घटनाओ मे रुचि बढी है और नित्य नवीन तथ्य जानने की जिज्ञासा जगी है पर इसके समानान्तर आत्म-चैतन्य को जानने की जिज्ञासा और उसकी शक्ति को प्रकट करने की क्षमता नही बढी है। फलस्वरूप ज्ञान की आराधना आत्मा के लिये हितकारक, विश्व के लिये कल्याणकारी और वृत्ति-परिष्कारक नही बन पा रही है। ज्ञान के मथन से अमृत के बजाय विष अधिक निकल रहा है। और उस विष को पचाने के लिये जिस शिव-शक्ति का उदय होना चाहिये, वह नही हो पा रही है।

इस अमृतमयी शिव-शक्ति का उदय स्वाध्याय के माध्यम से ही हो सकता है। स्वाध्याय के तीन अर्थ हे—स्वस्य अध्ययन—१ अपने आप का अध्ययन, २ स्वेन अध्ययन—अपने द्वारा अपना अध्ययन, ३ सु+आङ्+अध्याय अर्थात् सद्ज्ञान का मर्यादापूर्वक अध्ययन।

स्वाध्याय प्रक्रिया के पाँच स्तर-सोपान है। स्थानाग सूत्र के ५वे स्थान मे कहा है—

पचविहे सज्झाए पण्णत्ते त जहा—वायणा, पुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा, धम्मकहा।४६५।

अर्थात् वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा।

सर्वप्रथम "वाचना" द्वारा अर्थात् पढकर सिद्धान्त के सत्य को जाना जाता है। फिर उसके

सम्वन्ध मे रही हुई शकाओ के लिए प्रश्न-प्रतिप्रश्न पूछकर ग्रहण किये हुए ज्ञान को शकारहित बनाया जाता है। "वाचना" रीडिंग के समकक्ष है तो पृच्छना डिसकशन रूप है। 'परिवर्तना' मे ग्रहण किये हुए ज्ञान को परिपुष्ट करने के लिये वार-वार उसकी आवृत्ति की जाती है, मनन किया जाता है, ज्ञान का परिग्रहण (रिकेपिच्यूलेशन) किया जाता है। 'अनुप्रेक्षा' मे अनुभव के स्तर पर सिद्धान्त के सत्य को जाना जाता है। इसमे ग्रहण किए हुए ज्ञान का भावन अर्थात् पाचन होता है। यह रेट्रोस्पेक्शन के निकट है। 'धर्मकथा' मे ज्ञान रस रूप मे परिणत हो जाता है, विचार आचार मे ढल जाता है। धर्म का अर्थ ही है—धारण करना (रिटेन्शन) इस प्रक्रिया मे ज्ञान अलग से जानने की वस्तु नही रहता। वह धारणा का अग वनकर चारित्र का रूप ले लेता है। इसी अर्थ मे शिक्षा को चरित्र कहा है।

आज की शिक्षा पद्धति मे स्वाध्याय का यह क्रम मात्र यात्रिक वनकर रह गया है। वह भीतर की परतो को जोड नही पाता। अनुप्रेक्षा और धारणा का तत्व वर्तमान शिक्षा पद्धति से ओझल हो गया है। इसे प्रतिष्ठापित करने के लिये शिक्षा के साथ दीक्षा आवश्यक है। दीक्षान्त समारोह आयोजित करने के पीछे शायद यही लक्ष्य रहा है। पर अव तो दीक्षान्त समारोह भी समाप्तप्राय है। दीक्षान्त का अर्थ ही है—शिक्षा के अन्त मे दीक्षा। दीक्षा का अर्थ है—दिशा का ज्ञान। और उस ज्ञान को प्राप्त कर उस दिशा मे चलने की दक्षता का अर्जन। पर आज तो दिशा ही उलट गई है। यही कारण है कि ज्ञान के नाम पर साक्षरता प्रधान हो गई है। सरसता छूट गई है। केवल आँख से वाँचना, न मन की अनुप्रेक्षा है और न आत्मा की धर्मकथा है। इसीलिये सारी विद्या सरस्वती न वनकर राक्षसी वन गई है। कहा है—

सरसो विपरीतश्चेत्, सरसत्व न मुञ्चति।

साक्षरा विपरीताश्चेत्, राक्षसा एव निश्चिता ॥

सरस्वती के "सरस" मे व्यक्ति के मन को जोडने का अनूठा सामर्थ्य रहता है। उसमे कथनी और करनी की एकता रहती है। उसको उल्टा-सीधा कैसे ही पढो, 'सरस' सरस ही बना रहता है। पर साक्षरा ज्ञान मानव मन को जोडता नही तोडता है, वह कथनी-करनी मे भेद स्थापित करता है। इसीलिये "साक्षरा" उलटने पर 'राक्षसा' वन जाता है।

स्वाध्याय "स्व" मे प्रतिष्ठित होने की प्रक्रिया है। इसके लिये आवश्यक है कि स्वध्यायी पाँच अणुव्रतो—अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करे। इन अणुव्रतो की पुष्टि के लिये ३ गुणव्रतो—दिशाव्रत, उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत और अनर्थदण्ड विरमण व्रत (निष्प्रयोजन प्रवृत्ति का त्याग) की व्यवस्था की गई है और इन गुणव्रतो के पोषण के लिये चार शिक्षाव्रतो का विधान किया गया है। ये शिक्षाव्रत है—सामायिक, देशावकासिक, पौषधोपवास एव अतिथि सविभाग। चारो शिक्षाव्रत भोगवृत्ति पर नियन्त्रण स्थापित करते हुए आत्मविजय की प्रेरणा देते है। सामायिक व्रत अर्थात् पक्षपात रहित यथार्थ स्वरूप मे रमण, सुख-दुख, लाभ-हानि, यश-अपयश, जन्म-मरण मे समताभाव, भोग के प्रति अनासक्ति। देशावकासिक व्रत अर्थात् व्यापक दिशाओ की भोगवृत्ति को सीमित कर उसे देश-काल की मर्यादा मे वाँधने का नियम, कामनाओ पर नियन्त्रण। पौषधोपवास व्रत अर्थात् भोगवृत्ति से हटकर आत्मवृत्ति के निकट रहना, आत्म गुणो का पोषण करना। अतिथि सविभाग व्रत अर्थात् दूसरो के लिए अपने हिस्से की भोगसामग्री का त्याग करना, सेवा की ओर अग्रसर होना, सबको आत्मतुल्य समझना, उनके सुख-दुखो मे भागीदार होना। इन व्रतो को शिक्षाव्रत कहना इस वात का सकेत है कि शिक्षा का मूल लक्ष्य भोग से त्याग की ओर वढते हुए अपने स्व को सर्व मे विलीन कर देना है।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दैनिक कार्यक्रमों मे छ आवश्यक कार्य सम्पन्न करने पर बल दिया गया है। इन्हे आवश्यक कहा गया है। ये है—सामायिक, चतुर्विंशनिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान। सामायिक का मुख्य लक्ष्य आत्म-चिन्तन, आत्म-निरीक्षण है। विना अह का विसर्जन किए आत्म-चिन्तन की ओर प्रवृत्ति नही होती। अत अह को गालने के लिये, जो आत्मविजेता वन चुके है ऐसे २४ तीर्थकरो के गुण-कीर्तन स्तवन और पच परमेष्ठी अर्थात् अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु की वन्दना करने का विधान किया गया है। "प्रतिक्रमण" मे असावधानीवश हुए दोषो का प्रायश्चित्त कर उनसे बचने का सकल्प किया जाता है। "कायोत्सर्ग" मे देहातीत होने का अभ्यास किया जाता है। और "प्रत्याख्यान" मे सम्पूर्ण दोपो के परित्याग का सकल्प लिया जाता है।

श्रमणो को "उत्तराध्ययन" सूत्र के २६वे अध्ययन की १८वी गाथा मे निर्देश दिया गया है कि दिन के प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, दूसरे मे ध्यान अर्थात् अर्थ का चिन्तन, तीसरे मे भिक्षाचरण और चौथे मे पुन स्वाध्याय किया जाय—

पढम पोरिसि सज्झाय, वीय झाण झियायई।
तइयाए भिक्खाचरियं पुणो, चउत्थी सज्झाय॥

इसी प्रकार रात्रि के प्रथम पहर मे स्वाध्याय, दूसरे मे ध्यान, तीसरे मे निद्रा और चौथे मे पुन स्वाध्याय करने का विधान है। इससे स्पष्ट है कि दिन-रात के आठ पहरो मे चार पहर केवल स्वाध्याय के लिये नियत किये गये है।

विधिपूर्वक श्रुत की आराधना करने के लिये आठ आचार वताये गये है—

१ जिस शास्त्र का जो काल हो, उसको उसी समय पढना कालाचार है।
२ विनयपूर्वक गुरु की वन्दना कर पढना विनयाचार है।
३ शास्त्र एव ज्ञानदाता के प्रति बहुमान होना वहुमान आचार है।
४. तप, आयम्बिल आदि करके पढना उपधान आचार है।
५ पढाने वाले गुरु के नाम को नही छिपाना अनिह्नवाचार है।
६ शब्दो ह्रस्व-दीर्घ का शुद्ध उच्चारण करना व्यजनाचार है।
७ सम्यक् अर्थ की विचारणा अर्थाचार है।
८ सूत्र और अर्थ दोनो को शुद्ध पढना और समझना तदुभयाचार है।

शिक्षक का स्वरूप

शिक्षक को गुरु कहा गया है। आचार्य और उपाध्याय प्रमुख गुरु है। आचार्य का मुख्य कार्य वाचना देना और आचार का पालन करना-करवाना है। उपाध्याय का मुख्य कार्य ज्ञानदान देना है। जो अध्ययन के स्व के निकट ले जाये, वह उपाध्याय है। सामान्य लौकिक शिक्षा पद्धति मे भी आचार्य और उपाध्याय पद समादृत है। जैन शास्त्रकारो ने आचार्य और उपाध्याय को विशेष पूजनीय स्थान देकर उन्हे पच परमेष्ठी महामन्त्र मे प्रतिष्ठित किया है। आचार्य के लिये "आवश्यक सूत्र" मे कहा गया है कि वे पाँच इन्द्रियो के विपय को रोकने वाले, नव वाड सहित ब्रह्मचर्य के धारक, क्रोध, मान, माया, लोभ, कपायो के निवारक, पच महाव्रतो से युक्त, पचविध आचार—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारि-

त्राचार, तपाचार, वीर्याचार का पालन करने मे समर्थ, पाँच समितियों और तीन गुप्तियो से युक्त होते है। आचार्य हेमचन्द्र ने गुरु के लक्षण बताते हुए कहा है—

महाव्रताधरा धीरा, भैक्ष्यमात्रोपजीविन ।
सामायिकस्था, धर्मोपदेशका गुरवो मता ।

—योगशास्त्र २/८

अर्थात् महाव्रतधारी, धैर्यवान, शुद्ध भिक्षामात्र से जीवन-निर्वाह करने वाले, समताभाव मे स्थिर रहने वाले, धर्मोपदेशक महात्मा गुरु माने गये है।

शिक्षार्थी की पात्रता

जीवन-निर्माणकारी शिक्षा मे आगे बढने के लिये कौन योग्य-अयोग्य है, इसकी शास्त्रो मे बडी चर्चा की गई है। भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र के ११वे अध्ययन मे शिक्षार्थी की पात्रता की चर्चा करते हुए कहा हे —

अह अट्ठहि ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चइ।
अहस्सिरे सया दते, ण य मम्ममुदाहरे ॥४॥
णासीले ण विसीले, ण सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चई ॥५॥

अर्थात् इन आठ कारणो से व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करने के योग्य कहलाता है। १ जो अधिक हँसने वाला न हो, २ सदा इन्द्रिय दमन करता हो, ३ किसी का मर्म प्रकाशन न करता हो, ४ अखण्डित शील वाला हो, ५ अति लोलुप न हो, ६ श्रेष्ठ आचार वाला हो, ७ क्रोधी न हो और ८ सत्य मे रत हो।

उत्तराध्ययन सूत्र के ११वे अध्ययन की १२वी गाथा मे कहा गया है कि सुशिक्षित व्यक्ति स्खलना होने पर भी किसी पर दोषारोपण नही करता और न कभी मित्रो पर क्रोध करता है। यहाँ तक कि अप्रिय के लिए भी हितकारी बात करता है।

शिक्षार्थी का विनीत और अनुशासनबद्ध होना आवश्यक माना गया है। "धम्मस्स विणओ मूल" (दशवैकालिक ९/२/२) अर्थात् विनय को धर्म का मूल कहा गया है। 'दशवैकालिक सूत्र' के ९वे अध्ययन मे कहा है—

विवत्ती अविणीयस्स, सपत्ती विणियस्स य।
जस्सेय दुहओ नाय, सिक्ख से अभिगच्छइ ॥

अर्थात् अविनीत को विपत्ति प्राप्त होती है और सुविनील को सपत्ति। जिसने ये दोनो बाते जान ली हे, वही शिक्षा प्राप्त कर सकता हे। इसी अध्याय मे कहा गया हे कि जो आचार्य और उपाध्याय की सेवा-शुश्रूषा तथा उनकी आज्ञा का पालन करता हे, उसकी शिक्षा उसी प्रकार बढती है जैसे—जल से सीचा हुआ वृक्ष—

जे आयरिय उवज्झायाण, सुस्सूसावयणकरा।
तेसिं सिक्खा पवड्ढति, जलसित्ता इव पायवा ॥ —९/१२

गुरु की आज्ञा न मानने वाला, गुरु के समीप रहकर भी उनकी शुश्रूषा नही करने वाला, उनके प्रतिकूल कार्य करने वाला तथा तत्त्वज्ञानरहित अविवेकी अविनीत कहा गया है। उत्तराध्ययन सूत्र १-३॥

जो विद्यावान होते भी अभिमानी है, अजितेन्द्रिय है, बार-बार असम्बद्ध भाषण करता है वह अबहुश्रुत है। उत्तराध्ययन ११/२।

ऐसे शिक्षार्थी को शिक्षणशाला से बहिर्गमित करने का विधान है। "उत्तराध्ययन सूत्र" मे ऐसे शिक्षार्थी की भर्त्सना करते हुए उसे सडे कानो वाली कुतिया से उपमित किया गया है। और कहा है कि —जैसे सडे कानो वाली कुतिया सब जगह से निकाली जाती है, उसी तरह दुष्ट स्वभाव वाला, गुरुजनो के विरुद्ध आचरण करने वाला वाचाल व्यक्ति सघ अथवा समाज से निकाला जाता है। ऐसा समझ कर अपना हित चाहने वाला अपनी आत्मा को विनय मे स्थापित करे—

विणए ठविज्ज अप्पाण, इच्छतो हियमप्पणो। —उत्तराध्ययन सूत्र १/६

शास्त्रो मे विनय का अर्थ सामान्य शिष्टाचार या नम्रता तक ही सीमित नही है अपितु वह भीतरी अनुशासन, आत्मनिग्रह और सयम के रूप मे प्रतिपादित है। जिसका मन अस्थिर और चचल है वह विनयभाव को नही धारण कर सकता है। मन की अस्थिरता और चचलता, भोगवृत्ति और आसक्ति का परिणाम है। ऐसा व्यक्ति न अपने शासन मे रहता है और न किसी अन्य के। "आचाराग सूत्र" मे ऐसे व्यक्ति को अनेक चित्त वाला बताया है और कहा है कि वह अपनी अपरिमित इच्छाओ की पूर्ति के लिये दूसरे प्राणियो का वध करता है। उनको शारीरिक और मानसिक कष्ट पहुँचाता है। पदार्थो का सचय करता है और जनपद के वध के लिए सक्रिय बनता है। निश्चय ही ऐसी मानसिकता मे जीने वाला सच्ची शिक्षा ग्रहण नही कर सकता। "स्थानाग सूत्र" के चौथे स्थान मे कहा है—

चत्तारि अवायणिज्जा पण्णत्ता त जहा—
अविणीए, विगइपडिबद्धे अणुवसमिए णउडेमाइ ॥३२६॥

अर्थात् चार व्यक्ति शिक्षा ग्रहण के अयोग्य कहे गये हैं—अविनीत, स्वादेन्द्रिय मे गृद्ध, अनुपशात अर्थात् अति क्रोधी और कपटी। सच्ची शिक्षाप्राप्ति ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप मे परस्पर जुडाव है। यह जुडाव मात्र अध्ययन मे सभव नही पर इसके लिये स्वाध्याय की प्रक्रिया से गुजरना होगा। भगवान महावीर ने अहकार, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य को शिक्षा-प्राप्ति मे बाधक माना है—

अह पचहिं ठाणेहिं, जेहिं, सिक्खा न लब्भई।
थम्भा कोहा, पमाएण, रोगेणालस्सएण य॥

—उत्तरा० ११/३

शिक्षार्थी के लिये अप्रमत्तता और जागरूकता अनिवार्य है। इसके अभाव मे व्यक्ति आतरिकता से जुड नही पाता और विवाद व मूर्च्छा मे ग्रस्त बना रहता है। आत्म-जागरणा द्वारा ही इस मूर्च्छा को तोडा जा सकता है। भगवान महावीर ने जयणा अर्थात् विवेक को इसका साधन बताया है। सक्षेप मे जैन शिक्षा का अर्थ है—अपने आतरिक वीरत्व से जुडना, चेतना के स्तर को ऊर्ध्वमुखी बनाना और प्राणिमात्र के प्रति मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना।

पता—सी-२३५ ए, तिलक नगर, जयपुर ४

सम्यक् आचार की आधारशिला सम्यक्त्व : आचारांग के परिप्रेक्ष्य में

—साध्वी सुरेखा श्री जी
(प० पू० प्र० विचक्षण श्री जी म० सा० शिष्या—विदुषी लेखिका)

भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि के आस्तिक दर्शनो मे जैनदर्शन जीवात्मा को ही परमात्म स्वरूप होना स्वीकार करता है। आत्मा का अभ्युदय आत्माभिमुखता की ओर अग्रसर हुए बिना नही हो सकता। पराभिनिवेश से मुक्त है जिसकी आत्मा, वही परमात्म-पद की ओर कदम बढा सकता है। जब तक निश्चित रूप से जीवात्मा स्व-पर भेदविज्ञानी नही बन जाता, तब तक मोक्षाभिमुख नही हो पाता। यह स्व-पर भेदविज्ञान अर्थात् जीव और जगत्, जड और चेतन का पृथक-पृथक ज्ञान और तदनुसार आचरण हो तब हो पाता है। यही बीजारोपण "सम्यक्त्व" शब्द से अभिप्रेत है। ससार भ्रमण की परिधि को सम्यक्त्व सीमित कर देता है।

हालाकि लौकिक व्यवहार मे सम्यक्त्व/समकित यह शब्द जैनधर्म के प्राय सभी धर्म-स्थानो मे श्रवण गोचर होता है। कभी-कभी तो यह भी सुनाई देता है कि मुझे अमुक गुरु की समकित है। मैंने उन गुरु से समकित ली है। तो क्या सम्यक्त्व अथवा समकित लेने-देने की वस्तु है जो कि गुरु अपने अनुयायियो को प्रदान करते है। इस प्रथा के रूप मे ही सम्यक्त्व है या अनेकान्तवादी जैनदर्शन व जैनागम अन्य अर्थ को द्योतित करता है। व्यवहार और निश्चय इन दो पहलुओ को दृष्टिकोण मे रखकर जैनदर्शन हर वस्तु की मीसामा करता है। उपर्युक्त प्रथा व्यावहारिक हो सकती है, पर निश्चय मे सम्यक्त्व का मूल्याकन अनूठे ढग से किया गया है।

"सम्यक् आचार की आधारशिला सम्यक्त्व' किस प्रकार हो सकता है ? उससे पूर्व यह जान ले कि सम्यक्त्व है क्या ? सम्यक्त्व का अर्थ हो गया है, श्रद्धान ! पदार्थो पर श्रद्धान ! वस्तु तत्व पर श्रद्धान ! अन्य दर्शनो ने जिसे श्रद्धा कहा उसी को जैनो ने पारिभाषिक शब्द दिया है सम्यक्त्व अर्थात् सम्यग्दर्शन। वाचकवर्य उमास्वाति ने इसे परिभाषित किया तत्वार्थ सूत्र मे "तत्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनम्"। यहाँ तत्वो पर श्रद्धा ही सम्यक्त्व है, यह निर्देश किया गया है। व्युत्पत्तिपरक अर्थ करे तो सम् पूर्वक अच् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर सम्यक् शब्द निष्पन्न होता है। 'समचित इति सम्यक्" इस प्रकार भी व्युत्पत्ति होती है। प्रकृत मे इसका अर्थ प्रशसा है। उमास्वाति ने अपने भाष्य मे सम्यग् शब्द का अर्थ करते हुए कहा—"सम्यगिति प्रशसार्थो निपात, समचतेर्वा भाव" अर्थात् निपात से सम्यक् यह प्रशसार्थक शब्द है तथा सम्पूर्वक अच् धातु यह भाव से है। राजवार्तिककार अकलक देव के अनुसार प्रशसार्थक (निपात) के साथ यह प्रशस्त रूप, गति, जाति, कुल, आयु,

विज्ञान आदि अभ्युदय और निश्रेयस का प्रधान कारण होता है। अथवा सम्यक् का अर्थ तत्व भी किया जा सकता है, जिसका अर्थ होगा तत्व दर्शन, अथवा यह क्विप् प्रत्ययान्त शब्द है, जिसका अर्थ है—जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही जानने वाला।

सम्यक् शब्द की व्युत्पत्ति करने के पश्चात् अब 'दर्शन' शब्द की व्युत्पत्ति पूज्यपाद करते हैं—'पश्यति दृश्यतेऽनेन दृष्टिमात्र वा दर्शनम्' अर्थात् जो देखना है, जिसके द्वारा देखा जाय या देखना मात्र।

सिद्धसेन के अनुसार 'दर्शनमिति दृशेऽव्यभिचारिणी सर्वेन्द्रियानिन्द्रियार्थ प्राप्ति' अव्यभिचारी इन्द्रिय और अनिन्द्रिय अर्थात् मन के सन्निकर्ष से अर्थ प्राप्ति होना दर्शन है। दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति 'दृशि' धातु के ल्युट् प्रत्यय करके भाव मे इक् प्रत्यय होने पर जिसके द्वारा देखा जाता है, जिससे देखा जाता है तथा जिसमे देखा जाता है वह दर्शन है। इस प्रकार जीवादि के विषय मे अविपरीत अर्थात् अर्थ को ग्रहण करने मे प्रवृत्त ऐसी दृष्टि सम्यग्दर्शन है। अथवा "प्रशस्त दर्शन सम्यग्दर्शनमिति" अर्थात् जिनेश्वर द्वारा अभिहित अविपरीत अर्थात् यथार्थ द्रव्यो और भावो मे रुचि होना यह प्रशस्त दर्शन है। प्रशस्त इसलिए है कि मोक्ष का हेतु है। व्युत्पत्ति पक्ष के आश्रित अर्थ को लेकर कहते है—सगत वा दर्शन सम्यग्दर्शनम्' अर्थात् जिनप्रवचन के अनुसार सगत विचार करना वह सम्यग्दर्शन है। इस प्रकार जिनोक्त तत्वो पर ज्ञानपरक होने वाली श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा।

तत्त्वार्थ सूत्र मे तथा टीकाकारो ने श्रद्धापरक अर्थ को लेकर ही सम्यक्त्व की व्युत्पत्ति की। किन्तु आगमो मे इसका अर्थ भिन्न है। आगमो मे सर्व प्राचीन व प्रथम अग है आचाराग। आचाराग सूत्र आचारप्रधान है। आचाराग मे सम्यक्त्व नामक अध्ययन होने पर भी सम्यक्त्व का अर्थ श्रद्धापरक नही वरन् सम्यक्आचारपरक है। सम्यक्त्व को स्पष्ट रूप से मुनि आचार कहा गया है। हाँ, सम्यक्आचार श्रद्धापूर्वक होता है। श्रद्धा आचरण मे सम्यक्तता, समीचीनता लाती है, स्थिरता लाती है, शुद्धता लाती है। सम्यक्त्व नामक अध्ययन के अतिरिक्त अन्य अध्ययनो मे भी सम्यक्त्व का उल्लेख तो है पर वहाँ भी सम्यक्त्व को सयम के, मुनित्व के समान माना है। सयमी चारित्रवान् मुनि के आचार को ही सम्यक्त्व से अभिप्रेत किया हैं। सम्यक्त्व और मुनित्व का एकीकरण करते हुए कहा है कि—

"जो सम्यक्त्व है उसे मुनिधर्म के रूप मे देखो और जो मुनिधर्म है उसे सम्यक्त्व के रूप मे देखो।"

हालाँकि चूर्णिकार और वृत्तिकार के अनुसार मौन अर्थात् मुनिधर्म—सयमानुष्ठान है। जहाँ मुनिधर्म है वहाँ सम्यग्ज्ञान है और सम्यग्ज्ञान जहाँ है वहा सम्यक्त्व है। ज्ञान का फल विरति होने से सम्यक्त्व की भी अभिव्यक्ति होती है। इस तरह सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्र मे एकता है।

स्पष्ट है सम्यक्त्व को मुनित्व से अभिप्रेत किया गया है। मुनित्व अर्थात् आचरण की समीचीनता। सम्यक्त्व नामक अध्ययन मे चार उद्देशक है। प्रथम उद्देशक मे सम्यग्वाद का अधिकार है। अविपरीत अर्थात् यथार्थ वस्तुतत्व का प्रतिपादन हो, वह सम्यग्वाद है। इस उद्देशक मे हिंसा का स्वरूप बताकर उसका निषेधात्मक रूप अहिंसा का विधान किया है कि जितने भी तीर्थंकर हुए हैं, हुए थे तथा होगे उन सभी का यह कहना है कि किसी भी प्राणी की हिसा नही करनी चाहिए। यही धर्म शुद्ध है, नित्य है, शाश्वत है और जिन प्रवचन मे प्ररूपित है। इस प्रकार अहिंसा तत्व का सम्यक् एव सूक्ष्म निरूपण के साथ अहिंसा की त्रैकालिक एव सार्वभौमिक मान्यता, सार्वजनीनता एव सत्य-तथ्यता का सम्यग्वाद के रूप मे प्रतिपादन किया है। अहिंसा व्रत को स्वीकार करने वाले साधक को कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे सावधान रहकर अहिंसा व्रत को स्वीकार करने का अहिंसा के आचरण के लिए पराक्रम करना चाहिए। इस प्रकार आचाराग के ४—१ मे सम्यग्वाद के परिप्रेक्ष्य मे अहिंसा धर्म की चर्चा की गई है। चतुर्थ अध्ययन के दूसरे उद्देशक मे धर्मप्रवादियो की धर्म परीक्षा का निरूपण है। विभिन्न धर्मप्रवादियो के प्रवादो मे युक्त-

मे प्रतिभा आती है। इस प्रकार यथार्थ दृष्टिकोण होना जीवन-निर्माण की दिशा मे आवश्यकीय है।

सैद्धान्तिक अपेक्षा से आध्यात्मिक विकास में सम्यक्त्व महत्वपूर्ण है ही किन्तु व्यावहारिक जीवन मे भी सम्यक्त्व अत्यन्त उपयोगी है। सामाजिक क्षेत्र हो या पारिवारिक क्षेत्र हो, राजनैतिक क्षेत्र हो या आर्थिक क्षेत्र हो, धार्मिक क्षेत्र हो या नैतिक क्षेत्र हो हर क्षेत्र मे सम्यकत्व उपयोगी व महत्वपूर्ण है, क्योकि सही दृष्टि सही दिशा की ओर ले जाती है। फलत मजिल तक पहुँचा देती है। गलत राह पर जाने वाला भटक जाता है, सही राह वाला नही।

जीवन के आदर्शो के साथ परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना, सम्यक् रीति से जीवन व्यतीत करना है। राजनैतिक व्यवस्था सम्यक् न होगी तो राष्ट्र मे भ्रष्टाचार बढता ही जावेगा, फलस्वरूप राष्ट्र का अनैतिकता के कारण पतन हो जायेगा। धार्मिक व नैतिक क्षेत्र मे तो स्पष्ट रूप से ही सम्यक्त्व की छाप दृष्टिगोचर होती है। धार्मिक सिद्धान्तो का व्यावहारिक जीवन मे उपयोग होना ही सम्यक्त्व है। जीवन को सुव्यवस्थित रूप मे, सुचारु रूप से प्रतिपादन करने मे, उत्तरोत्तर आत्मिक गुणो के विकास मे सम्यक्त्व ही सहायक है।

□ □

卐 भापा की मधुरता और शिप्टता मे ही व्यक्ति की कुलीनता और सज्जनता छिपी हुई है। भाषा से ही व्यक्ति अपना परिचय दे देता है कि वह किस खानदान से ताल्लुक रखता है। भाषा की शालीनता जहाँ व्यक्ति को सम्मान दिलाती है वही व्यक्ति के प्रथम परिचय मे ही अमिट छाप अकित कर देती है।

卐 इसी जीभ मे अमृत और जहर बसता है। मधुरता भाषा का अमृत है और कटुता जहर है। यह जहर व्यक्ति के स्वय के जीवन मे भी अशान्ति फैलाता है और अन्य को भी परेशान करता है। आपको अनुभव भी होगा। अगर किसी बात को स्नेह से कहते है तो आपका सारा तनाव काफूर हो जाता है। अगर गुस्से मे कहते है—दो-चार गालियाँ सुनाकर कहते है तो तनाव से ग्रस्त रहते है ?

—आचार्य श्री जिनकान्ति सागरसूरि

('उठ जाग मुसाफिर भोर भई' पुस्तक से)

❖ ❖

इम प्रकार आचाराग मे सम्यक्त्व का अर्थ सम्यक्आचरण पर आधारित वताया है। किन्तु अन्य आगमो व आगमेतर साहित्य मे सम्यक्त्व के प्रचलित अर्थ व स्वरूप मे भिन्नता है। अपेक्षाभेद से, निश्चय-व्यवहारनय से उसमे समानता भी द्योतित होती है। आचाराग मे आत्मोपम्य की भावना से ओतप्रोत, अहिंसा, विवेक, अनवद्य तप से युक्त चारित्र को सम्यक्त्व के अर्थ मे व्यापक दृष्टि-कोण से अनुलक्षित किया है। क्योकि उपरोक्त गुणो की सुरक्षा भी पूर्णतया मुनिजीवन मे ही सम्भव है। जवकि सूत्रकृताग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे सयती मुनि के साथ व्रतधारी श्रावको का भी सम्यग्दृष्टि होना वताया गया है। सयती मुनि व श्रावक श्रद्धापूर्वक धर्मानुष्ठान करते है, यत्र-तत्र उसका भी उल्लेख मिलता है। किन्तु सम्यक्त्व के स्वरूप ने श्रद्धा रूपी वाना यहाँ धारण नही किया। उत्तराध्ययन सूत्र मे सर्वप्रथम सम्यक्त्व को तत्व श्रद्धा स्वीकार किया व तत्वो का भी निर्देशन किया गया है। अन्य आगमो मे इसके भेद, प्रकार, अति-चार, अग, लक्षण आदि का कथन किया गया।

आगमेतर साहित्य मे तत्त्वार्थ सूत्र मे वाचकवर्य उमास्वाति ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप स्पष्ट रूप से निर्धारित किया। उत्तराध्ययन सूत्र की अपेक्षा तत्त्वार्थ सूत्र अधिक प्रकाश मे आया। उसका कारण यह रहा कि यह सभी जैन सम्प्रदायो को ग्राह्य है। तत्त्वार्थ सूत्र के टीकाकारो ने भी इसकी विशद चर्चा की। सम्यक्त्व के पर्यायवाची शब्द सम्यग्दर्शन, श्रद्धा, रुचि, प्रतीति, विश्वास भी व्यवहृत होते है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति मे किसी ने ज्ञान को पश्चात्वर्ती माना तो किसी ने सहभागी माना। तत्त्वार्थ के पूर्व नदीसूत्र मे देववाचक गणि ने कहा कि सम्यग्दृष्टि का श्रुत ही सम्यक्श्रुत है अन्यथा वह मिथ्याश्रुत है। दिगम्बर साहित्य मे भी सम्यक्त्व का यही स्वरूप स्वीकृत किया है।

जैनेतर दर्शनो मे वौद्धदर्शन तो श्रमण भगवान महावीर के समकालीन व सन्निकट रहा है। अत इनमे एक दूसरे का प्रतिविम्व झलकना स्वाभाविक है। त्रिपिटको मे सम्यग्दृष्टि को सम्मादिट्ठी कहा गया तथा सम्यग्दृष्टि श्रद्धायुक्त होता है। आर्य अष्टागिक मार्ग, शिक्षात्रय, आध्यात्मिक विकास की पाँच शक्तियाँ और पाँच वल सभी मे श्रद्धा का स्थान प्रथम माना है। इसी मोक्षमार्ग के साधन रूप श्रद्धा को साख्यदर्शन एव योगदर्शन ने विवेकख्याति कह कर सम्वोधित किया है। वेदान्तदर्शन मे ज्ञान मे ही श्रद्धा को अन्तर्निहित किया गया है।

महाभारत मे श्रद्धा को सर्वोपरि माना है तथा श्रद्धा ही सव पापो से मुक्त कराने वाली है ऐसा मान्य किया है। गीता मे श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रद्धा धारण करने का उपदेश दिया और कहा कि श्रद्धावान् ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है, वही सयती होता है। तदनन्तर वह आत्मा परव्रह्म को प्राप्त हो सकती है। ईसाई धर्म व इस्लाम धर्म मे भी श्रद्धा को प्राथमिकता दी है। तात्पर्य यह है कि सर्व धर्म दर्शनो ने श्रद्धा/सम्यग्दर्शन को मोक्ष का हेतु समवेत स्वर से स्वीकार किया है।

आध्यात्मिक दृष्टि से तो सम्यग्दर्शन का स्थान महत्वपूर्ण है ही, किन्तु लौकिक जीवन मे भी इसका महत्व कम नही। जैन मान्यतानुसार इसका हम यथार्थ दृष्टिपरक अर्थ करते हैं तो भी इसका महत्वपूर्ण स्थान सिद्ध होता है। क्योकि यह जीवन के प्रति ही एक दृष्टिकोण हो जाता है। अहिंसा अनेकान्त और अनासक्त जीवन जीने की कला इससे प्राप्त होती है। चूँकि जीवनदृष्टि के अनुसार ही व्यक्तित्व व चरित्र का निर्माण होता है, दृष्टि के अनुसार ही जीवन सृष्टि निर्मित होती है। ऐसे उदाहरणो से इतिहास भरा है। अत यह अपने आप पर निर्भर है कि हमको जैसा वनना है उसी के अनुरूप हम अपनी जीवनदृष्टि वनाएँ। क्योकि जैसी दृष्टि होती है, वैसा ही उसके जीवन जीने का ढग होता है और जैसा उसके जीने का ढग होता है, उसी स्तर से उसके चरित्र का निर्माण होता है और चरित्र के अनुसार ही उसके व्यक्तित्व

इस प्रकार आचाराग मे सम्यक्त्व का अर्थ सम्यक्आचरण पर आधारित बताया है। किन्तु अन्य आगमो व आगमेतर साहित्य मे सम्यक्त्व के प्रचलित अर्थ व स्वरूप मे भिन्नता है। अपेक्षाभेद से, निश्चय-व्यवहारनय मे उसमे समानता भी द्योतित होती है । आचाराग मे आत्मोपम्य की भावना से ओतप्रोत, अहिंसा, विवेक, अनवद्य तप से युक्त चारित्र को सम्यक्त्व के अर्थ मे व्यापक दृष्टि-कोण से अनुलक्षित किया है। क्योकि उपरोक्त गुणो की सुरक्षा भी पूर्णतया मुनिजीवन मे ही सम्भव है। जवकि सूत्रकृताग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे सयती मुनि के साथ व्रतधारी श्रावको का भी सम्यग्दृष्टि होना वताया गया है। सयती मुनि व श्रावक श्रद्धापूर्वक धर्मानुष्ठान करते हैं, यत्र-तत्र उसका भी उल्लेख मिलता है। किन्तु सम्यक्त्व के स्वरूप ने श्रद्धा रूपी वाना यहाँ धारण नहीं किया। उत्तराध्ययन सूत्र मे सर्वप्रथम सम्यक्त्व को तत्व श्रद्धा स्वीकार किया व तत्वो का भी निर्देशन किया गया है। अन्य आगमो मे इसके भेद, प्रकार, अति-चार, अग, लक्षण आदि का कथन किया गया।

आगमेतर साहित्य मे तत्त्वार्थ सूत्र मे वाचकवर्य उमास्वाति ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप स्पप्ट रूप से निर्धारित किया। उत्तराध्ययन सूत्र की अपेक्षा तत्त्वार्थ सूत्र अधिक प्रकाश मे आया। उसका कारण यह रहा कि यह सभी जैन सम्प्रदायो को ग्राह्य है। तत्त्वार्थ सूत्र के टीकाकारो ने भी इसकी विशद चर्चा की। सम्यक्त्व के पर्यायवाची शब्द सम्यग्दर्शन, श्रद्धा, रुचि, प्रतीति, विश्वास भी व्यवहृत होते है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति मे किसी ने ज्ञान को पश्चात्वर्ती माना तो किसी ने सहभागी माना। तत्त्वार्थ के पूर्व नदीसूत्र मे देववाचक गणि ने कहा कि सम्यग्दृष्टि का श्रुत ही सम्यक्श्रुत है अन्यथा वह मिथ्याश्रुत है। दिगम्वर साहित्य मे भी सम्यक्त्व का यही स्वरूप स्वीकृत किया है।

जैनेतर दर्शनो मे वौद्धदर्शन तो श्रमण भगवान महावीर के समकालीन व सन्निकट रहा है। अत इनमे दूसरे का प्रतिविम्व झलकना स्वाभाविक है। त्रिपिटको मे सम्यग्दृष्टि को सम्मादिट्ठी कहा गया तथा सम्यग्दृष्टि श्रद्धायुक्त होता है। आर्य अष्टागिक मार्ग, शिक्षात्रय, आध्यात्मिक विकास की पाँच शक्तियाँ और पाँच वल सभी मे श्रद्धा का स्थान प्रथम माना है। इसी मोक्षमार्ग के साधन रूप श्रद्धा को साख्यदर्शन एव योगदर्शन ने विवेकख्याति कह कर सम्बोधित किया है। वेदान्तदर्शन मे ज्ञान मे ही श्रद्धा को अन्तर्निहित किया गया है।

महाभारत मे श्रद्धा को सर्वोपरि माना है तथा श्रद्धा ही सब पापो से मुक्त कराने वाली है ऐसा मान्य किया है। गीता मे श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रद्धा धारण करने का उपदेश दिया और कहा कि श्रद्धावान् ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है, वही सयती होता है। तदनन्तर वह आत्मा परब्रह्म को प्राप्त हो सकती है। ईसाई धर्म व इस्लाम धर्म मे भी श्रद्धा को प्राथमिकता दी है। तात्पर्य यह है कि सर्व धर्म दर्शनो ने श्रद्धा/सम्यग्दर्शन को मोक्ष का हेतु समवेत स्वर से स्वीकार किया है।

आध्यात्मिक दृष्टि से तो सम्यग्दर्शन का स्थान महत्वपूर्ण है ही, किन्तु लौकिक जीवन मे भी इसका महत्व कम नही। जैन मान्यतानुसार इसका हम यथार्थ दृष्टिपरक अर्थ करते है तो भी इसका महत्वपूर्ण स्थान सिद्ध होता है। क्योकि यह जीवन के प्रति ही एक दृष्टिकोण हो जाता है। अहिसा अनेकान्त और अनासक्त जीवन जीने की कला इससे प्राप्त होती है। चूँकि जीवनदृष्टि के अनुसार ही व्यक्तित्व व चरित्र का निर्माण होता है, दृष्टि के अनुसार ही जीवन सृष्टि निर्मित होती है। ऐसे उदाहरणो से इतिहास भरा है। अत यह अपने आप पर निर्भर है कि हमको जैसा वनना है उसी के अनुरूप हम अपनी जीवनदृष्टि वनाएँ। क्योकि जैसी दृष्टि होती है, वैसा ही उसके जीवन जीने का ढग होता है और जैसा उसके जीने का ढग होता है, उसी स्तर से उसके चरित्र का निर्माण होता है और चरित्र के अनुसार ही उसके व्यक्तित्व

मन्त्र जप क्यो और कैसे ?

मन्त्र विविध शक्तियो का खजाना है। मनोयोगपूर्वक जाप करने से वे सारी शक्तियाँ जपकर्ता मे धीरे-धीरे प्रकट होने लगती है। मन्त्र जप के मुख्य लाभ ये है—

१—मन्त्र दुर्बल मन को सवल करता है।

२—मन्त्र रोगी मन को स्वस्थ करता है ।

३—मन्त्र तेजस् शरीर को सक्रिय एव आभामण्डल का शोधन करता है।

४—मन्त्र चित्त की अन्तर्मुखता को बढाता है।

५—विराट शक्तियो का नियोजन और दुष्ट शक्तियो का निग्रह करता है।

६—मन्त्र विचारो तथा भावनाओ का यथास्थान सम्प्रेषण करता है।

७—मन्त्र कर्म-सस्कारो, बन्धनो का विलय करता है।

यद्यपि समस्या एक है मन की चचलता की किन्तु इसके समाधान अनेक है। आप अपने चरित्र मे जिस गुण की कमी अनुभव कर रहे है उसे दूर करने के लिए नमस्कार महामन्त्र का जप निम्न स्थानो पद निम्नोक्त विधि से कीजिए—

चैतन्य केन्द्रो पर ध्यान से लाभ

णमो अरिहन्ताण—तैजस केन्द्र पर—क्रोध क्षय (नाभि)

,, —आनन्द केन्द्र पर—मान क्षय (हृदय)

,, —विशुद्धि केन्द्र पर—माया क्षय (कण्ठ)

,, —शक्ति केन्द्र पर—लोभ क्षय। (नाभि के नीचे)

"नवपद ध्यान"—

हृदय अथवा नाभि मे आठ पखुडियाँ वाले कमल दल की कल्पना करे। प्रथम पद कर्णिका मे, शेष पखुडियो पर आठ पदो का जाप करे।

अपराजित मन्त्र ध्यान—

कर्णिका मे णमो अरिहन्ताण तथा शेष चार दलो पर चार पदो की धारणा करें। इस मन्त्र का अभ्यास करने से विशेष स्थिरता वनती है।

चैतन्य केन्द्र : महामन्त्र जाप

णमो अरिहन्ताण—मस्तक (तालु स्थान)—शान्ति केन्द्र

णमो सिद्धाण —भ्रकुटि —दर्शन केन्द्र

णमो आयरियाण—हृदय —आनन्द केन्द्र

णमो उवज्झायाण—नाभि —तैजस् केन्द्र

णमो लोए सव्व साहूण—पैरो के अगुष्ठ—ऊर्जा स्थान

ज्ञानेन्द्रियो पर महामन्त्र जाप —

णमो अरिहन्ताण	—बाये कान पर
णमो सिद्धाण	—बाये नेत्र पर
णमो आयरियाण	—दाये नेत्र पर
णमो उवज्झायाण	—दाये कान पर
णमो लोए सव्व साहूण	—दोनो होठो पर

श्वास-प्रश्वास महामन्त्र जप —

णमो अरिहन्ताण	—श्वास भरते समय
णमो सिद्धाण	—श्वास छोडते समय
णमो आयरियाण	—भरते समय
णमो उवज्झायाण	—छोडते समय
णमो लोए सव्व साहूण	—भरते समय, छोडते समय

ग्रह-शाति महामन्त्र जाप —

सूर्य और मगल	—ॐ ह्री णमो सिद्धाण।
चन्द्र और शुक्र	—ॐ ह्री णमो अरिहन्ताण।
बुध	—ॐ ह्री णमो उवज्झायाण।
गुरु	—ॐ ह्री णमो आयरियाण।
शनि, राहु और केतु	—ॐ ह्री णमो लोए सव्व साहूण।

सावधानता—

१—माला को दाहिने हाथ मे हृदय के पास रखते हुए धीरे-धीरे जप क्रिया जपे।

२—एकान्त स्थान का ख्याल रखा जाये। यदि कही पाँच-पच्चीस व्यक्ति एक साथ बैठकर एक ही मन्त्र को एक लयपूर्वक जपते हो तो उनके साथ बैठा जा सकता है।

३—मन्त्र को सामान्यतया बदलना नही चाहिये।

४—मन्त्र जप मे निरन्तरता होनी चाहिए, क्योकि लम्बा जप ही शरीर और चेतना के बीच एक नई हलचल पैदा करता है।

५—प्रारम्भिक अभ्यास के दिनो मे माला अवश्य रखी जानी चाहिये। इससे मानसिक प्रतिवद्धता रहती है। जैन और बौद्ध दोनो परम्पराओ मे यह उल्लेख मिलता है। माला को यत्र-तत्र नही रखना चाहिए। एक दूसरे के बीच माला का आदान-प्रदान भी न हो। जिस माला से जप करते है उसे गले मे नही पहने।

६—मन्त्र-जप विना किसी कामना के होना चाहिए।

७—माला फेरते समय सजग रहे, अन्यथा अन्तर्मुखता के बहाने आप शून्य होते चले जायेगे। सम्भव है एक दिन निष्क्रिय अचेतन मनोभूमि पर ही खडे रह जाये। इसलिए लम्बे जप अनुष्ठान के समय बीच-बीच मे श्वास-दर्शन करते रहे।

८—जप नियमित व निर्धारित सख्या मे होना चाहिये। बीच-बीच मे टूटने वाला जप यह प्रमाणित करता है कि जपकर्ता को अपने मन पर कोई नियन्त्रण नही है। □

स्वरूप-साधना का मार्ग : योग एवं भक्ति

—आचार्य मुनिश्री सुशीलकुमार जी

(प्रख्यात धर्म प्रवक्ता, विश्वधर्म सम्मेलन के सयोजक,
विदेशो मे अहिंसा एव शाकाहार प्रचार मे सलग्न)

जैन परम्परा आत्मा मे अनन्त शक्ति मानती है। और, उस शक्ति का पूर्ण विकास कर आत्मा से परमात्मा बनने की उसमे क्षमता है। श्री हेमचन्द्राचार्य ने इस आत्मशक्ति के पूर्ण विकास का साधन योग बताया है।

जबकि आचार्य हरिभद्रसूरि ने सभी दु खो से मुक्त होने के साधन को योग कहा है। आत्मा की सभी दु खो से मुक्ति होकर निज स्वभाव की प्राप्ति योग द्वारा होती है।

सभी धर्म मनुष्य को दु खो मे मुक्त होने का उपाय बताते है, क्योकि मनुष्य की सहज प्रेरणा दु ख से मुक्त होकर सुख-प्राप्ति की होती है। उसमे योग ऐसी प्रक्रिया है जिससे मनुष्य दु ख से मुक्त होता है।

वैसे मनुष्य सुख-प्राप्ति के प्रयत्न करता है पर सुख-प्राप्ति के प्रयत्नो के बावजूद अधिकाश लोग सुख-प्राप्ति मे सफल नही होते बल्कि दु खी पाये जाते है। क्योकि वे सुख-प्राप्ति का जो मार्ग विविध धर्मो ने बताया है, तदनुसार आचरण न कर अपनी कल्पना से सुख-प्राप्ति के अन्य प्रयत्न मे लगे हुए है।

सुख-प्राप्ति का मार्ग—जैनधर्म ने योग के रूप मे बताया है। प्राय सभी धर्म उसी मार्ग से मनुष्य को दु ख से मुक्त होने का उपदेश करते है।

मनुष्य के सुख-प्राप्ति मे बाधक कौनसी बाते है जो उसे दु खी बनाती है ? यह विचार करने पर दिखाई देगा कि राग और द्वेष यह दो उसके ऐसे महान शत्रु है जो उसे सुख के मार्ग से भटकाकर दु ख मे डालते है। समस्या का मूल राग-द्वेष-कषाय है। कषाय मे मन या चित्त रगा जाता है। राग से रगा हुआ मन प्रीति का अनुभव करता है और प्रीति से लोभ, माया, वासना, और परिग्रह के प्रति मोह जागता है। द्वेष अहकार को जन्म देता है। अहकार से क्रोध, घृणा और तिरस्कार उत्पन्न होता है। जिससे दु खो की परम्परा का निर्माण होकर अनन्त सुख जिसका सहज स्वभाव है, वह आत्मा दु खी बनती है। उस पर कषायो के कारण विविध आवरण आकर दु ख का अनुभव करने लगती है।

आत्मशक्ति को जाग्रत करने के लिये धर्म-विद्या, दार्शनिक चिन्तन और यौगिक अनुसन्धान आदि विधाएँ है। धर्म के अभ्यासियो ने, दर्शन के आचार्यो ने और योग के साधको ने जीवन की अनुभूतियो और शक्तियो को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है कि सारा विश्व उन उपलब्धियो से अभिभूत है।

ज्ञानेन्द्रियो पर महामन्त्र जाप —

णमो अरिहन्ताण	—बाये कान पर
णमो सिद्धाण	—बाये नेत्र पर
णमो आयरियाण	—दाये नेत्र पर
णमो उवज्झायाण	—दाये कान पर
णमो लोए सव्व साहूण	—दोनो होठो पर

श्वास-प्रश्वास महामन्त्र जप —

णमो अरिहन्ताण	—श्वास भरते समय
णमो सिद्धाण	—श्वास छोडते समय
णमो आयरियाण	—भरते समय
णमो उवज्झायाण	—छोडते समय
णमो लोए सव्व साहूण	—भरते समय, छोडते समय

ग्रह-शाति महामन्त्र जाप —

सूर्य और मगल	—ॐ ह्री णमो सिद्धाण।
चन्द्र और शुक्र	—ॐ ह्री णमो अरिहन्ताण।
बुध	—ॐ ह्री णमो उवज्झायाण।
गुरु	—ॐ ह्री णमो आयरियाण।
शनि, राहु और केतु	—ॐ ह्री णमो लोए सव्व साहूण।

सावधानता—

१—माला को दाहिने हाथ मे हृदय के पास रखते हुए धीरे-धीरे जप क्रिया जपे।

२—एकान्त स्थान का ख्याल रखा जाये। यदि कही पाँच-पच्चीस व्यक्ति एक साथ बैठकर एक ही मन्त्र को एक लयपूर्वक जपते हो तो उनके साथ बैठा जा सकता है।

३—मन्त्र को सामान्यतया बदलना नही चाहिये।

४—मन्त्र जप मे निरन्तरता होनी चाहिए, क्योकि लम्बा जप ही शरीर और चेतना के बीच एक नई हलचल पैदा करता है।

५—प्रारम्भिक अभ्यास के दिनो मे माला अवश्य रखी जानी चाहिये। इससे मानसिक प्रतिवद्धता रहती है। जैन और बौद्ध दोनो परम्पराओ मे यह उल्लेख मिलता है। माता को यत्र-तत्र नही रखना चाहिए। एक दूसरे के बीच माला का आदान-प्रदान भी न हो। जिस माला से जप करते हैं उसे गले मे नही पहने।

६—मन्त्र-जप विना किसी कामना के होना चाहिए।

७—माला फेरते समय सजग रहे, अन्यथा अन्तर्मुखता के बहाने आप शून्य होते चले जायेगे। सम्भव है एक दिन निष्क्रिय अचेतन मनोभूमि पर ही खडे रह जाये। इसलिए लम्बे जप अनुष्ठान के समय बीच-बीच मे श्वास-दर्शन करते रहे।

८—जप नियमित व निर्धारित सख्या मे होना चाहिये। बीच-बीच मे टूटने वाला जप यह प्रमाणित करता है कि जपकर्ता को अपने मन पर कोई नियन्त्रण नही है। □

कषाय के कारण आत्मशक्ति पर आवरण आ गया है, अत हम दु खी बने बैठे है, उससे मुक्त होने का व्यवस्थित और मनोवैज्ञानिक मार्ग योग है।

वैदिक, जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मो का यदि कही समन्वय होता है तो योग विद्या मे ही होता है। आध्यात्मिक धरातल पर सभी को योग को अपनाना होता है। दु ख-मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन योग है।

जैनधर्म ने सारे दु खो का मूल हिसा माना है और परम मागल्य अहिसा को। अहिसा सभी सुखो की जननी है। अहिंसा की व्याख्या है—प्राणीमात्र के प्रति समता।

बुद्ध ने भी शील, समाधि और प्रज्ञा द्वारा समता लाने को कहा है। और गीता का तो हार्द ही समता है।

योग इस समता को जीवन मे उतारने का अभ्यास है जिसके फलस्वरूप जीवन मे समता आकर मानव जीने की कला सीखता है। दु खी जीवन को सुखी बनाने की कुन्जी उसके हाथ लगती है।

अन्य धर्मो ने भी वही बात दुहराई है। इसलिये योगमार्ग का प्रचार धर्म का प्रचार है और धर्म का प्रचार ही जैनत्व का प्रचार है।

जैनधर्म आचार मे अहिंसा के द्वारा समता और विचार मे अनेकान्त के द्वारा व्यापकता लाने को कहता है, समता को पुष्ट करता है और सबके प्रति आत्मवत् व्यवहार करने के लिये सयम अपनाने को कहता है। समता का प्रारम्भ अपने से करना होता है और उसके लिये योग सर्वोत्कृष्ट साधन है।

जैन धर्म सबको आत्मवत् मानने वाला आत्मधर्म है। उसकी सारी क्रियाएँ—कर्मकाड इसी पर आधारित है। आत्माभिमुख—अन्तर्मु ख बनने के लिये है। प्राधान्य अर्न्तमुखता है, कर्मकाड और क्रियाएँ गौण है। एक अनुभवी योगी ने बताया है कि सभी तीर्थो मे श्रेष्ठ तीर्थ—धर्मतीर्थ मन है—आत्मा है। अज्ञानी ही बाहर ढू ढते है। मन का मैल धोना है तो उसे अन्तर्मु ख बनाकर अभ्यास करना होगा।

आभ्यन्तर विकास और प्रज्ञा के प्रकर्ष के लिये योग के सिवा कोई दूसरा प्रभावशाली मार्ग नही है। जैनधर्म मे ऋषभदेव से लगाकर महावीर तक २४ तीर्थंकर परमयोगी थे। भगवान महावीर के साधनाकाल का जो वर्णन मिलता है उसमे ध्यान पर अधिक भार दिया गया है। उन्होने समता की ऐसी साधना की कि साधनाकाल मे जो भयानक उपसर्ग लोगो की ओर से दिये गये वे समतापूर्वक सहन किये।

अपने आप की अनुभूति पाना हो तो चित्त को समता मे लगाकर अपने आपको देखो। अपने आप की अनुभूति पाना ही सम्यक्दर्शन है। बिना सम्यक्दर्शन के सम्यक्ज्ञान सम्भव नही और बिना सम्यक्ज्ञान के सम्यक्चारित्र आ नही सकता। और बिना सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के दु ख-विमुक्ति सम्भव नही।

इसीलिये जैन-साधना मे कायोत्सर्ग का अत्यन्त महत्व है। काया--शरीर जिसका क्षण-क्षण मे परिवर्तन होता है। उत्पाद-व्यय का क्रम चल रहा है। उस काया मे जो कुछ चल रहा है, उसे देखना। मन मे चलने वाली प्रत्येक वृत्ति, तरग या सवेदना को देखना, तटस्थतापूर्वक देखना। बाहर से चित्त को अन्तर्मु ख करना सम्यक्दर्शन है। उस देखने मे किसी प्रकार का राग-द्वेष न हो, समतापूर्वक देखना यह योग की दूसरी क्रिया है।

पहली कायोत्सर्ग की, जिसमे काया को भूलकर श्वास का ध्यान करना और दूसरी क्रिया मे शरीर मे चलने वाली क्रिया को सजग होकर देखना। जब मन को बाहरी दुनियाँ से अपने आप को देखने

मे लगाते है तो सहज मे वह अपने आप को देखने मे केन्द्रित होता है। और चू कि वह राग-द्वेप से रगा नही होता है तो ग्रन्थि वधन नहीं होता और नई ग्रन्थि न बँधने से मनुष्य निर्ग्रन्थ वनता है।

न मालूम हम इस राग-द्वेप के कारण कितनी ही ग्रन्थियाँ वाधते जाते है। तनाव से वेचैन होते है। यदि हम वैठकर या खडे रहकर अथवा तो सोकर कायोत्सर्ग द्वारा शरीर का शिथिलीकरण करे और मन को आते और जाते श्वास पर केन्द्रित करे तो कितनी शान्ति और ताजगी पा सकते है।

हम शारीरिक क्रियाओ द्वारा शरीर का प्रकपन करते रहते है, मन, विविध विषयो मे घूमता है तो उसका प्रकपन होता है और वाणी द्वारा भी प्रकपन होता रहता है। इस शक्ति को यदि हम एक स्थान पर वैठकर, शारीरिक प्रकपनो को, मौन द्वारा वाणी के कारण होने वाले प्रकपनो और श्वास की एकाग्रता द्वारा मानसिक प्रकपनो को रोक सके तो स्वाभाविक ही हमारी उर्जा-शक्ति वचेगी और हम अपने आप की अनुभूति लेने को उसे लगायेगे और स्व के दर्शन का जो ज्ञान होगा वह हमे सम्यक् आचार की ओर प्रेरित करेगा।

जैन साधना में योगदृष्टि के ८ प्रकार वताये गये है जिससे रागद्वेप घटकर परिणाम शुद्ध वनते जाते है। वे भेद इस प्रकार है—

१ मित्रा २ तारा ३ वला ४ दीप्रा
५ स्थिरा ६. कान्ता ७ प्रभा ८ परा।

मित्रा दृष्टि

प्रथम दृष्टि मित्रा है, जिसमे राग-द्वेष हल्के होते है, किन्तु होते है कुछ ही मात्रा मे, इसमे जो वोध होता है वह चिनगारी की तरह क्षणिक और कम होता है। जिस वस्तु के प्रकाश मे अनुभूति स्पष्ट नही होती। वह यह निर्णय नही कर पाता कि क्या अनिष्ट है और क्या इष्ट है ? उसके मन मे अच्छे विचार तो आते है पर वे स्थायी प्रभाव नही डाल सकते। वह धार्मिक क्रियाएँ प्रथा के रूप मे करता है पर अहिसा, सत्य, अस्तेय, व्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन चित्त की मलिनता कम हो, इसलिये नही करता, पर शुभ कार्यो मे स्वत रुचि होने लगती है। प्राणीमात्र के प्रति मैत्री भाव वढने लगता है। रागद्वेप की ग्रन्थिया घटने लगती है, चित्त मे निर्मलता आने लगती है। अभ्यास वढाने से तारा दृष्टि तक पहुँचा जाता है।

तारा दृष्टि

मित्रा दृष्टि से इसमे राग-द्वेप का प्रभाव कुछ अधिक हल्का होता है। ज्ञान, विचार शक्ति व वोध पहले से अधिक होता है पर स्थायित्व अव भी नही आता। आत्मविकास के लिये वह अधिक प्रयत्नशील रहता है। शौच, सन्तोप, आत्मानुशासन तथा स्वाध्याय करता है। तथा जिन्होंने उच्च स्थिति पाई उनका स्मरण कर उनके विकास पथ का अनुसरण करने लगता है। चित्त अधिक निर्मल होने से उद्वेग कम होता है। विवेक जगने लगता है। अपने दोप और कमियो के लिये खेद तथा आत्मा के उत्थान की जिज्ञासा जागृत होने लगती है।

वला दृष्टि

साधक अभ्यास मे ज्यो-ज्यो आगे वढता है त्यो-त्यो उसे आसन का अभ्यास वढाना आवश्यक हो जाता है। शरीर की स्थिरता के विना चित्त की स्थिरता नही होती इसलिये एक आसन पर अधिक

देर तक बैठने का अभ्यास बढाना आवश्यक हो जाता है। ज्यो ज्यो अभ्यास बढता है, श्रेय का बोध अधिक स्पष्ट होने लगता है। जो चित्त बाहर दौडता रहता था उसे स्वभाव मे लाने की चेष्टा साधक करता है जिससे अज्ञान के सस्कार कम होकर ज्ञान के सस्कार बढने लगते हैं। कषायो की तीव्रता कम होने लगती है। विषयो का आकर्षण कम होने लगता है। सुख-दु ख, हर्ष, शोक का मन पर प्रभाव कम होने लगता है। निरर्थक बातो मे रस कम होने लगता है। दु खमुक्ति का उपाय जानने की इच्छा तीव्र होती है। तृष्णा कम होने लगती है। प्राप्त परिस्थिति मे सन्तोष मानने लगता है। प्रतिकूल परिस्थिति से घबराता नही। भागदौड अपने आप कम हो जाती है। कार्य सावधानी व सतर्कता से करने लगता है। नई ग्रन्थियो का बँधना कम हो जाता है इसलिये कर्मक्षय होकर आत्मा पवित्रता के पथ पर अग्रसर होने लगती है।

दीप्रा दृष्टि

अभ्यास बढने से रागद्वेष कम होते जाते है, चित्त अधिक निर्मल होने लगता है। बोध स्पष्ट होने से आचरण भी शुद्ध और पवित्र बनता जाता है। इस भूमिका मे साधक प्राणायाम का अभ्यास बढाता है जिससे चित्त एकाग्र बनने में आसानी होती है। साधक की बाह्य दृष्टि कम होकर अन्दर की ओर अधिक ध्यान देने लगता है। सदाचार के प्रति निष्ठा ही नही, पर वह आचरण मे भी आता है। चित्त की शान्ति बढने लगती है।

स्थिरादृष्टि

साधक अभ्यास आगे बढाता है तो राग-द्वेष की ग्रन्थी टूटने लगती है। साधक का मन यदि विषय-विकारो की तरफ जाता है तो उसे वापिस आत्मानुभूति मे लगाता है। आत्मानुभूति से जो ज्ञान होता है, वह स्वय का होता है जिससे वह सम्यक्ज्ञान होता है। साधक को शरीर की नश्वरता तथा आत्मा की अमरता का बोध होता है। पुद्गल परमाणुओ से बना शरीर नश्वर और क्षण-क्षण मे बदलने वाला है। उसमे उत्पाद और व्यय अखण्ड चल रहा है। नश्वरता का ख्याल कर वह क्षमता को बढाता है। कषायो का उपशमन होने से चित्त की निर्मलता बढती है। चित्त की प्रसन्नता बढती है। दूसरो के साथ के व्यवहार मे सौजन्य बढने से साधक दूसरो की भी शान्ति का कारण बनता है। योग की भाषा मे कहा जाय तो प्रत्याहार यानी विषय-विकारो की तरफ जाने वाले मन को स्वानुभव की ओर साधक आरोपित करता है। चित्त की भ्रान्ति दूर होकर निस्सन्देह मन से साधक के द्वारा सहजभाव से निष्ठा के साथ सत्कार्य होने लगते है। आत्मानुभव बढता जाता है।

काता दृष्टि

ज्यो-ज्यो चित्त की एकाग्रता का अभ्यास बढता है, साधक की दृष्टि अधिक प्रकाशवान गहरी और स्थिर होती जाती है। आत्मानुभूति सम्यकदृष्टि का रूप लेती है। अपने आपकी जानकारी वास्तविकता का रूप लेती है। साधक अधिक सजग होकर अपने मे होने वाली सवेदनाओ को अधिक स्पष्टता से देखता है। अपने द्वारा होने वाली क्रिया को सावधानीपूर्वक देखता है। चित्त अधिक शुद्ध होकर उसके द्वारा सद्गुणो की रुचि बढकर उसके द्वारा सदाचार होने लगता है। साधक के द्वारा होने वाले सदाचार या सत्कर्म मे सहजभाव मे अनासक्ति बढती जाती है। उसे जो बोध होता है वह अनुभव पर आधारित होने से सहजभाव से उसकी आसक्ति कम होने लगती है। स्व-भाव और पर-भाव को गहराई से देखने लगता है। आत्मा व पुद्गल के भेद को जानने से साधक के चित्त मे शाति बढती जाती है। आत्मा को मोह मूर्च्छा से अलग रखता है। कर्म-आश्रव छूटने लगते है, सवर दशा प्रकट होती है। अनासक्ति के कारण राग-द्वेष का उपशम होकर नई ग्रन्थियाँ बँधती नही।

दूसरो के साथ व्यवहार मे साधक उदारता का व्यवहार करने लगता है। दूसरो को कप्ट न हो इसलिये सहजभाव से उसमे सयम आता है। वाणी मे मधुरता आती है। साधक जनप्रिय वनने लगता है। योग के 'धारण' नामक अग की प्राप्ति होती है। चित्त को साधक मर्यादित क्षेत्र मे सीमित रखता है। जिसमे चित्त की चचलता कम होने लगती है। अव उसे वाहरी भौतिक भोगो मे अरुचि होकर चित्त को आत्मस्वरूप मे लगाता है। अपने भीतर चलने वाली सवेदनाओ से उसके ज्ञान मे वृद्धि होती है। आत्म-विकास मे वह अधिक सजग वनता है। अपने स्वरूप मे लीन होता है। सजग होकर अपने भीतर चलने वाले व्यापारो को देखता है। उसमे सूक्ष्म वोध जगता है। मनोभावो की शुद्धि हो जाती है। उसका मन वाहरी जगत से अन्तर्जगत् की ओर रमण करने लगता है। जो राग-द्वेप अहता-ममता के कारण आत्मा के शुद्ध स्वभाव पर आवरण आता था, वह दूर होकर निर्मलता वढती है। साधक मे समता वढती जाती है। सयम मे वृद्धि होती है।

प्रभा दृष्टि

साधक एक आसन पर स्थिर होकर नियमित रूप मे सतत् ध्यान का अभ्यास वढाता है तो उसमे सातवी प्रभा दृप्टि प्रकट होती है। जिससे उसका वोध सूर्य की प्रभा की तरह प्रकाशमान होता है। मन विकाररहित होकर ध्यान में अखण्डता आने लगती है। वह अधिक समय तक ध्यान में स्थिर रहने लगता है। जिसमे उसे सहज शान्ति मिलने लगती है। प्राप्त परिस्थिति मे समतापूर्वक रहने का अभ्यास इतना अधिक वढ जाता है कि वाहरी सुख की कामना ही लुप्त हो जाती है। जो सुख आत्मा पर आवरणो के कारण ढका हुआ था, वह आवरणो के दूर होते ही पूर्णरूप से प्रकट होता है जिससे दु ख का उस पर लेश मात्र भी प्रभाव नही रहता। यह स्थिति किसी शास्त्रज्ञान पर आधारित नही होती पर चित्त की निर्मलता के कारण आत्मज्ञान पर—स्वानुभव पर आधारित होती है। राग-द्वेप और कपायो का उपशमन हो जाने से नये कर्मो का वध नही होता। पुराने वधे कर्मो की समता के कारण निर्जरा होने लगती है। दूसरो के साथ समता रखते हुए भी यदि कोई दुर्व्यवहार करता है तो भी साधक उसके प्रति मैत्रीभाव ही रखता है। उस पर आ पडे उन दु खो मे उद्विग्न नही होता। और न ही उसमे सुखो की स्पृहा या लालसा ही होती है। जिससे साधक पर सुख-दु खो का प्रभाव नही होता। वह इन आने वाले सुख-दु खो के खेल को देखता रहता है। उसकी प्रज्ञा स्थिर हो जाती है।

योग की भापा मे यह स्थिति ध्यान कही जा सकती है जिसमे ध्यान की साधना कर आत्मानुभव या स्वानुभव की स्थिति का समय अधिक वढाने का प्रयास होता है जिससे कि परादृप्टि की प्राप्ति हो सके।

परादृष्टि

इसे योग की भापा मे समाधि कहा जाता है, जिसमे आत्मा की शुद्ध स्थिति प्राप्त होकर ससार को निर्लेप भाव से साधक देखता है। ध्यान की वह अवस्था प्राप्त हो जाती है जिससे सहज भाव से साधक आत्म-समाधि मे लीन हो जाता है। इसे जैन-साधना मे शुक्लध्यान कहा जाता है। साधक-जीवन-मुक्त हो जाता है, सभी प्रकार की आसक्तियो से मुक्त रहता है। उसमे केवल आत्मभावना रह जाती है। अपना-पराया का भेद मिटाकर प्राणी मात्र को आत्मवत् देखता है और उनके साथ पूर्ण सयम का आचरण करता है। मोहनीय कर्म का क्षय हो जाने से वीतराग वन जाता है जो अवस्था उसे निर्वाण दशा तक पहुँचा देती है। दु खो से पूर्ण मुक्ति देकर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

धर्मध्यान और भक्ति

जैन-दर्शन मे भक्ति का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भक्ति का रूप भिन्न है। इसमे वीतराग की

भक्ति से साधक सामान्य साधना शुरु कर अन्त मे निरालम्व ध्यान की उच्च अवस्था मे पहुँचता है। जो आलम्वन लिया जाता है वह वीतराग प्रभु का, जो अपने आप पर विजय पाकर पूर्णत्व को पहुँचे। उसी रास्ते से साधक को सिद्धि प्राप्त करनी होती है। भक्तियोग से ज्ञानयोग मे प्रवेश करना होता है जिससे समता तक पहुँच सके और वह अवस्था आती है रूपातीत ध्यान से।

सामान्य साधना भक्ति से ही प्रारम्भ होनी है। भक्ति के भी अनेक प्रकार है, फिर भी मुख्य-रूप से नवधा भक्ति का ही योगदीपिकाकार ने ५६ वे श्लोक मे वर्णन किया है—

श्रवण क्रिया भक्ति—श्रुतश्रवण अन्तरग वृत्ति
कीर्तन क्रिया भक्ति—आत्मकीर्तन, आत्मघोप
सेवन क्रिया भक्ति—भेदज्ञान से आत्मपरिणति
वचन क्रिया भक्ति--शुद्ध चैतन्य भाव का बारम्बार वन्दन
ध्यान क्रिया भक्ति—धर्मध्यान-शुक्ल ध्यान की परिणति
लघुता क्रिया भक्ति—अहतानाश—नम्रता की प्राप्ति
एकता क्रिया भक्ति—समत्व भावना
समता क्रिया भक्ति—सभी मे समत्व दर्शन का अभ्यास।

जव साधक भक्ति के द्वारा अन्तकरण निर्मल कर लेता है तो क्रिया और ज्ञान द्वारा अप्टाग मार्ग पर चढने योग्य हो जाता है। ज्ञान से भक्ति मार्ग का प्रतिपादन इसलिये करना पडा कि सर्वप्रथम स्वामी-सेवक भाव भक्ति मे अवश्य रहता है।

वह अपने स्वामी को परमाराध्य की तरह मानता है और अनेक प्रकार से आत्मज्ञान प्राप्ति के लिये स्वामी का अनुग्रह चाहता है। भक्तिमार्गी स्वामी-सेवक भाव मे जव हिलोरें लेना है तो उस प्रेम-अवस्था का भी योगदीपिकाकार ने अलौकिक रूप से वर्णन किया है और उसकी भी चिन्तन-भेद से ६४ अवस्थाएँ वताई है।

भक्त, प्रभु के अनन्तरूपो को स्मरण करता हुआ प्रेम-विह्वल होकर प्रार्थना स्वरूप प्रभु से किस-किस प्रकार उपलब्धि चाहता है।

परम प्रभु परमात्मा के अलौकिक स्वरूपो को निहारता हुआ भक्त-साधक तद्गुणलब्धि के लिये प्रार्थना करता है।

परमात्मा के अलौकिक शान्त स्वरूप, अनन्त ज्ञान रूप, अनुपम क्षायिक आनन्द निमग्न, समरस एव सहज-स्वरूप का दर्शन तथा अनुभूति कर साधक प्रभुमय होकर गुण चिन्तन करता हुआ अपनी सुध-बुध भूल जाता है और परमात्मस्वरूप हो जाने के लिए विकल हो जाता है, आदि-आदि।

वास्तव मे यह गुण-चिन्तन की साधना ही साधक को प्रभु के साथ तदाकार वनाती है और आत्मा के निजगुणो को चरम उत्कृष्ट तथा प्रकट करने मे सहायक होती है। योगमार्ग का प्रारम्भ ऐसे ही आत्मविश्वासी, प्रभुसमर्पित, वीतराग-उपासक तथा विपय-विरक्त आत्मजिज्ञासुओ के लिए हुआ है।

□ □

आत्म केन्द्रित धर्म और दर्शन

भारत के प्राचीनतम धर्मो मे जैन धर्म ने ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार किया और हर जीव को अपने कर्म का कर्त्ता और भोक्ता होने के विचार को मान्यता दी। अपने पुरुषार्थ से कर्मो के क्षय द्वारा आत्म-विकास करके मोक्ष प्राप्त करने की क्षमता मे पूर्ण विश्वास ने इसे ईश्वर-केन्द्रित न होकर आत्म-केन्द्रित बनाया। कर्म का क्या स्वरूप है, और सभी कर्मो का क्षय किस प्रकार हो, यह जैन दर्शन का मुख्य विषय बन गया। आत्मज्ञान की प्राप्ति कर्मो के क्षय होने से ही हो सकती है। कर्म का क्षय कर्म से नही हो सकता। हर कर्म से नया कर्म ही बनता है, चाहे शुभ हो या अशुभ। जब निर्जरा के द्वारा बुरे कर्मो का क्षय होने लगा या लगता है तो बचे हुए शुभ कर्मो की शक्ति जीव को ज्ञान के विकास की ओर अग्रसर करती है। अन्त मे ज्ञान द्वारा बचे हुए कर्मो का नाश उसी प्रकार हो जाता है जिस प्रकार घास के ढेर का एक चिनगारी द्वारा। इस प्रकार मोक्ष-प्राप्ति के लिए निर्जरा का महत्व बतलाकर जैन दर्शन ने शुरू से ही एक ऐसी भावना को प्रेरणा दी जिसे लोगो ने कर्म-सन्यास नाम से प्रचलित किया।

मोटे तौर पर इसी तरह का समाधान बुद्ध ने भी प्रस्तुत किया। महावीर और बुद्ध के समय मे देश म एक ऐसा दार्शनिक वातावरण बन गया जब उपनिषद, जैन और बौद्ध दर्शनो ने पूर्णत ज्ञानमार्ग को बढ़ावा दिया। परन्तु वेदो से प्रेरणा वाले कुछ उपनिषदो ने इस धारणा की ईश्वर-केन्द्रित दर्शनो से समन्वय करने की चेष्टा की। पूर्वमीमासा ने वैदिक धर्म को अपनाया, जबकि उत्तर-मीमासा ने एक-तत्ववादी उपनिषदो को आधार बनाया। वेदो की खुलकर निन्दा न करते हुए भी उपनिषदो में वैदिक मूल्यो का अवमूल्यन किया गया। शकराचार्य मौटे तौर पर आत्म-केन्द्रित रहे। परन्तु वेदान्त की अन्य सभी शाखाओ के आचार्यो ने ईश्वर-केन्द्रित दर्शनो का प्रतिपादन किया जिसके फलस्वरूप दार्शनिक जगत मे एक ऐसा अन्तर्विरोध बढ गया जिसका समाधान करने का हर प्रयास विफल रहा। यह विरोध केवल सिद्धान्त की दृष्टि तक ही सीमित नही रहा। इसके बहुत महत्वपूर्ण व्यावहारिक परिणाम निकले।

वेदान्त के आचार्यो ने एकेश्वरवाद और एकतत्ववाद का मिश्रण कर दिया। इसने दर्शनशास्त्र को एक अमिट उलझन मे डाल दिया। वेदान्त के आचार्य उस उलझन मे खो गये। जबकि सेमेटिक धर्म पूर्णरूप से ईश्वर-केन्द्रित रहे। वेदान्त पर आधारित सभी धर्म और दर्शन न तो पूर्णरूप से ईश्वर-केन्द्रित रहे, न पूर्णरूप से आत्म-केन्द्रित रहे। उन्होने कर्म के सिद्धान्त मे कर्मफल की अनिवार्यता को मानते हुए भी ईश्वर को कर्मफल पर वीटो (Veto) की शक्ति प्रदान की। प्रारब्ध, विधि, कर्मगति मे सब को बाँधकर भी पुरुपार्थ के लिए उचित स्थान बनाये रखा और ईश्वर की सर्वशक्तिमानता मे कमी नही आने दी।

वेदान्त के अनुयायी व्यावहारिक जीवन मे वैदिक कर्मकाण्ड और उस पर आधारित स्मृतियो से प्रेरणा लेते रहे। इस प्रकार भारतीय जीवन मे एक तरफ वैदिक कर्मकाण्ड और दूसरी तरफ जैन प्रेरित निर्जरा के प्रभाव से अधिक से अधिक बचने का विचार, जो जैन और वैदिक धर्म दर्शनो मे निरन्तर विवाद का विषय बना हुआ था, वह अब वेद-वेदान्त के भीतर भी विवाद का विषय बन गया। गीता ने स्पष्ट रूप से उस समय के विचार-द्वन्द्व को "कर्मयोग बनाम कर्म सन्यास" के द्वन्द्व के रूप मे प्रस्तुत किया।

कर्म द्वारा मोक्ष की प्राप्ति या कर्मसन्यास द्वारा मोक्ष की प्राप्ति के विषय पर बहुत लम्बे समय तक विवाद चलता रहा। गीता ने अपने दर्शन को ईश्वर-केन्द्रित बनाकर कर्म के साथ ज्ञान और भक्ति का इस तरह मिश्रण किया कि उसमे उलझन बढती हो गई। शकराचार्य ने व्यवहार मे सभी तरह के विरोधा-

भासो को पलने दिया, परन्तु सिद्धान्त रूप से वेदान्त को पुन आत्म-केन्द्रित बनाने की पूरी कोशिश की। लेकिन बाद के कई सन्तो ने गीता को केन्द्र बनाकर भक्ति-मार्ग को इस प्रकार बल दिया कि कर्म और ज्ञान का महत्व गौण होने लगा। हमारा सामाजिक और राजनैतिक जीवन भी ईश्वर के भरोसे चलने लगा। हमारी भावनाएँ, शुभ और अशुभ भक्ति-केन्द्रित रही जिसके दुष्परिणाम साम्प्रदायिक तनाव के रूप मे उभरने लगे। ईश्वर-केन्द्रित दर्शनो को अपनाने वाले सेमिटिक धर्मो ने ईश्वर के नाम पर खूब लडाई-झगडे किये। यहूदियो ने यह्वा के नाम पर, ईसाइयो ने ईश्वर के नाम पर और मुसलमानो ने अल्लाह के नाम पर "धर्मयुद्ध" किये और खूब खून बहाया। इन सवका यही विश्वास रहा है कि ईश्वर केवल हमारे साथ है, अन्य धर्मों के लोगो के साथ नही है। वह उनको नरक मे भेज देगा।

भारतीय धर्म और दर्शन जब तक आत्म-केन्द्रित रहे, यहाँ का सामाजिक और राजनैतिक जीवन मतान्धता से विषाक्त नही हुआ था। परन्तु इस्लाम के आने के बाद स्थिति बदलनी शुरू हुई। गुलामी के लम्बे युग मे ईश्वर-भक्ति ने उन्हे एक अजीब तरह की मस्ती प्रदान की। शकराचार्य के बाद वेदान्त पूर्णरूप से ईश्वर-केन्द्रित बन गया। ईश्वर-केन्द्रित बनने पर आत्मज्ञान का अवमूल्यन शुरु हुआ। भक्ति के नाम पर अज्ञान और मतान्धता बढते गये। रामानुज, मध्व और वेदान्त के अन्य आचार्यो ने शकराचार्य के विरुद्ध ही नही बल्कि आपस मे भी अशोभनीय भाषा मे विवाद शुरू कर दिये। ईश्वर के नाम पर धार्मिक वैमनस्य बढने लगा।

जब अग्रेज भारत छोडने को थे, तब मुसलमानो ने पाकिस्तान के लिये जिहाद-सा छेड दिया। उनकी सफलता से इस धारणा को बल मिला कि बडे पैमाने पर हिसा के द्वारा राजनैतिक लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते है। इससे पजाब के मतान्ध लोगो को प्रेरणा मिली। आज पजाब मे रोज निर्दोष लोगो की हत्याएँ हो रही है। वे सब ईश्वर के नाम पर ही हो रही है। हम यह नही कह सकते कि आतकबादियो में भक्ति नही है। वह आवश्यकता से अधिक है। परन्तु आत्म-केन्द्रित दर्शन के अभाव मे वह अज्ञान मे लिप्त है।

आज धार्मिक क्षेत्र मे जिस तरह का वातावरण बना हुआ है, वह भक्ति मार्ग के अनावश्यक महत्व के कारण हुआ है। भक्ति के साथ ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, वरना उसके परिणाम बहुत खतरनाक हो सकते है, व्यक्ति के लिये ही नही बल्कि समाज और देश के लिये भी। सिद्धान्त और व्यवहार में केवल जैन दर्शन ही आत्मकेन्द्रित रहा है। जैन समाज मे जहाँ कही भी बुराई दिखाई दे रही है उसका कारण भक्ति की लहर का कुप्रभाव है। कई क्षेत्रो मे जैन लोग [वैष्णवो की भक्ति की नकल करने मे लगे है। परिणामत जैन समाज मे साम्प्रदायिक्ता की बीमारी कई वर्गो मे फैल गई है। पुस्तक पूजा, मूर्ति पूजा, व्यक्ति पूजा केवल साधन है। वे अपने आप मे साध्य नही है। वे यदि आत्म-ज्ञान जाग्रत नही कर सकते तो अज्ञान से दूषित भक्ति ही पनपायेगे। जो लोग ज्ञानी है और मतो मे परे है, वे ध्यान के महत्व पर अधिक बल देते है। ध्यान व्यक्ति को तुच्छ भावनाओ से परे ले जाता है। यह ध्यान मन्दिर मे मूर्ति के सामने किया जा सकता है और स्थानक, आश्रम या गुफाओ के एकान्त मे भी किया जा सकता है। इस विषय पर जो विवाद हुए है, वे आत्मज्ञान की कमी के सूचक है। यदि जैन दृष्टिकोण आत्म-केन्द्रित रहता है तो भक्ति के साथ जो अज्ञान घुस गया है, उससे वह मुक्त हो सकता है। जैन-जगत को नेतृत्व देने वालों के लिए यह अति आवश्यक है कि वे अपने आत्म-केन्द्रित दर्शन की शुद्धता को बनाये रखे। □

जैन हिन्दी काव्य में 'सामायिक'

डा० (श्रीमती) अलका प्रचण्डिया 'दीति'
(एम. ए (सस्कृत), एम ए (हिन्दी), पी एच. डी.)
सुप्रसिद्ध विदुषी

मोक्षमार्ग के साधन—ज्ञान, दर्शन, चारित्र—सम कहलाते हैं उनमे अयन यानि प्रवृत्ति करना सामायिक है। 'सम' उपसर्गपूर्वक 'आय' धातु मे इक प्रत्यय के योग से सामायिक शब्द निप्पन्न हुआ जिसका अर्थ है—आत्मस्वरूप मे लीन होना। वस्तुत समभाव ही सामायिक है। सब जीवो पर समता—समभाव रखना, पाँच इन्द्रियो का सयम—नियन्त्रण करना, अन्तर्हृदय मे शुभ भावना, शुभ सकल्प रखना, आर्तरौद्र दुर्ध्यानो का त्याग करके धर्मध्यान का चिन्तन करना 'सामायिक' है। 'योगसार' मे आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान का त्याग करके तथा पापमय कर्मो का त्याग करके मुहूर्त-पर्यन्त समभाव में रहना 'सामायिक व्रत' का उल्लेख द्रष्टव्य है—

यथा—

त्यक्तार्त-रौद्रध्यानस्य, त्यक्त सावद्यकर्मण ।
मुहूर्त समता या ता, विदु सामायिकव्रतम् ॥ —योगसार ३/७२

'आवश्यक अवचूरि' मे सामायिक को सावद्य अर्थात् पापजनक कर्मो का त्याग करना और निरवद्य अर्थात् पापरहित कार्यो को स्वीकारना माना है—यथा—'सामाइय नाम सावज्ज जोग परिवज्जण निरवज्ज जोग पडिसेवण च।' 'भगवती' के अनुसार आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थफल है—

यथा—

आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे । —भगवती १/६

सामायिक व्रत भलीभाँति ग्रहण कर लेने पर श्रावक भी साधु जैसा हो जाता है, आध्यात्मिक उच्चदशा को पहुँच जाता है। अत श्रावक का कर्तव्य है कि वह अधिक से अधिक सामायिक करे—

यथा—

सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा ।
एएण कारणेण, बहुसो सामाइय कुज्जा ॥
—आवश्यक निर्युक्ति ८००/१

चाहे कोई कितना तीव्र तप तपे, जप जपे अथवा मुनि-वेष धारण कर स्थूल क्रियाकाण्ड रूप चारित्र पाले, परन्तु समता भाव रूप सामायिक के विना किसी को मोक्ष की प्राप्ति असम्भव है। सब द्रव्यो मे राग-द्वेष का अभाव तथा आत्मस्वरूप मे लीनता ही सामायिक है—

यत्सर्वं द्रव्यसदर्भे राग - द्वेषत्यमोहनम् ।
आत्मतत्व विनिष्ठस्य तत्सामायिकमुच्यते ॥ (योगसार ५/४७)

सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश जैन वाड्मय मे व्यवहृत 'सामायिक' शब्द अपने इसी अर्थ—अभिप्राय में हिन्दी जैन काव्य मे भी गृहीत है। सोलहवी शती के आध्यात्मिक कवि ब्रह्मजिनदास द्वारा रचित 'आदिपुराणरास' रचना मे सामायिक शब्द के अभिदर्शन होते है—

तीनो प्रतिमा पाले नीम लेय
सामाइक तीनो काल रे। (—छन्द ७)

सत्रहवी शती के कविश्री जिनहर्ष ने 'तेरह काठिया स्वाध्याय' रचना मे इस शब्द का व्यवहार किया है—

सामायिक प्रोषध नवकार,
जिनवदन गुरु वन्दन वार। (जिनहर्ष ग्रन्थावली, पृष्ठ ४८०)

पडित वनारसीदास द्वारा विरचित 'नाटक समयसार' में सामायिक शब्द इसी अर्थ मे दृष्टिगत है—

दर्शन विशुद्धकारी बारह व्रतधारी,
सामाइक चारी पर्व प्रोपद विधि कहे। (नाटक समयसार, पृष्ठ १३८)

अठाहरवी शती के कवि भैया भगवतीदास द्वारा रचित 'द्रव्यसग्रह' रचना मे यह शब्द अभिव्यञ्जित है—

व्रत प्रतिज्ञा दूजौ भाव,
तीजौ मिल्यौ सामायिक भाव। —ब्रह्मविलास

कवि दौलनराम द्वारा प्रणीत 'क्रियाकोश' रचना मे इस शब्द की अभिव्यक्ति हुई है—

तहाँ जहाँ सामायिक करे, अथवा श्री जिनपूजा धरे,
इतने थानक चदवा होय दीसै श्रावक को घर सोय। —छन्द १८०

उन्नीसवी शती के कवि वृन्दावनलाल द्वारा प्रणीत 'प्रवचनसार' रचना सामायिक शब्द के आधार पर ही रची गई है यथा—

रागादिक विनु आपको लखे, सिद्ध समतूल
परम सामायिक दशा तव सो लहे अतूल। —पृष्ठ १७४

वीसवी शती की कृतियो में भी सामायिक शब्द इसी अर्थ परम्परा को लेकर अवतरित हुआ है। कवि लक्ष्मीचन्द्र द्वारा रचित 'लक्ष्मी विलास' रचना में सामायिक शब्द दृष्टिगत है—यथा—

सो छह विधि सामाइक वदन, स्तवन, प्रतिक्रमण स्वाध्याय,
कायोत्सर्ग नाम षट् जानौ फिर इक् इक् छह भेद वताय। (छन्द ५५)

इस प्रकार सामायिक से शुभोपयोग/शुद्धोपयोग होता है तथा यथातथ्य से साक्षात्कार होता है। सामायिक का अधिकारी वही साधक है जो त्रस-स्थावर रूप सभी जीवो पर समभाव रखता है। उसी का सामायिक शुद्ध होता है जिसकी आत्मा सयम, तप और नियम में सलग्न हो जाती है। शरीर से शुद्ध होकर चैत्यालय मे अथवा अपने ही घर मे प्रतिमा के सम्मुख अथवा अन्य पवित्र स्थान मे पूर्वमुख या उत्तरमुख होकर जिनवाणी, जिनधर्म, जिनविम्व, पचपरमेष्ठी और कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालयों को नित्य त्रिकाल वदना तथा अपने स्वरूप का अथवा जिनविम्व का अथवा पचपरमेष्ठी के वाचक अक्षरों का अथवा कर्मविपाक का अथवा पदार्थो के यथावस्थित स्वरूप का, तीनो लोक का और असरण आदि वैराग्य भावनाओ का चिन्तवन करते हुए ध्यान करना सामायिक का योग्य ध्येय है। □

पता—मगलकलश, ३९४ सर्वोदय नगर
आगरा रोड, अलीगढ़

जैनधर्म : स्वरूप एवं उपादेयता

—महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

[सुख्यात तत्त्वचिन्तक तथा यशस्वी कवि,
लेखक एव प्रवचनकार]

"जैन" शब्द की निष्पत्ति "जिन" से है। "जिन" का तात्पर्य उन महापुरुषो से है, जिन्होने अपने असीम आत्मवल को उद्बुद्ध कर राग तथा द्वेष आदि को जीता। उन जिनो द्वारा जो अनुभूत सत्य प्रकट हुआ, जो आचार-दर्शन प्रवृत हुआ, वही जिन-शासन है, जैनधर्म है। "जिनशासन" शब्द अपने-आप मे वडी गुण-निष्पन्नता लिए हुए है। साम्प्रदायिक सकीर्णता के भाव से यह सर्वथा अतीत है। राग-द्वेष आदि अनात्मभावो के विजय को केन्द्र मे रखकर जैन चिन्तनधारा तथा आचार-परम्परा का विकास हुआ है। यह एक ऐसा राजमार्ग है, जो व्यक्ति मुक्ति से लेकर समाज-मुक्ति तक प्रशस्त रूप मे जाता है। जैनत्व वास्तव मे एक व्यसन-मुक्त, अहिंसक और स्वस्थ-समाज की रचना का जीवन्त तरीका है। यह परम श्रेय के प्रति समर्पित एक नैतिक अनुष्ठान है।

ऐतिहासिकता की दृष्टि से जैन धर्म अत्यन्त प्राचीन है। कुछ समय पूर्व आधुनिक इतिहासज्ञ भगवान् महावीर को जैनधर्म का आविर्भावक मानते रहे थे, किन्तु अब ज्यो-ज्यो समीक्षात्मक, तुलनात्मक अध्ययन का विकास होता जा रहा है, विद्वानो की मान्यताएँ परिवर्तित होती जा रही है। भगवान् पार्श्व-नाथ जो जैन-परम्परा के तेईसवे तीर्थंकर थे तथा बाईसवे तीर्थंकर अरिष्टनेमि जो कर्मयोगी कृष्ण के चचेरे भाई थे, ऐतिहासिक पटल पर लगभग स्वीकृत हो चुके हैं। इतना ही नही ऋग्वेद, भागवत् आदि मे प्राप्त वर्तमान अवसर्पिणी कालखण्ड के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभ की ऐतिहासिकता भी उजागर हो रही है। जैन वाङ्मय तथा वैदिक वाङ्मय मे भगवान् ऋषभ के व्यक्तित्व का जैसा निरूपण हुआ है, वह वहुलाशतया सादृश्य लिये हुए है। ऐतिहासिक खोज ज्यो-ज्यो आगे वढेगी, अनेक अपरिज्ञात तथ्य और प्रकाश मे आते जायेगे, ऐसी आशा है।

जैन दर्शन व्यक्तित्व-निर्माण मे जिन महत्वपूर्ण उपादानो को स्वीकार करता है, उनमे पूर्वार्जित सस्कारो का अत्यन्त महत्व है। उच्च सस्कार प्राप्त व्यक्तियो की एक विशिष्ट परम्परा स्वीकृत रही है। वैसे पुरुष "शलाका-पुरुष" कहे जाते हैं। शलाका-पुरुष का आशय उन व्यक्तियो से है, जो अपने पराक्रम, ओज, तेज, वैभव तथा शक्तिमत्ता के कारण असाधारणता लिये होते है। वे त्रेसठ माने गये है—२४ तीर्थ-कर, १२ चक्रवर्ती, ६ वासुदेव, ६ प्रतिवासुदेव तथा ६ बलदेव। इनमे चौवीस तीर्थंकर धार्मिक एव आध्यात्मिक दृष्टि से चरम प्रकर्ष के प्रतीक है तथा उनके अतिरिक्त ३६ लौकिक वैभव, ऐश्वर्य, शक्ति

तथा भोग-प्राचुर्य के सवाहकत्व के नाते विशिष्ट है। उनमें वैभव आदि की, अपनी-अपनी पुण्य-सचय के अनुसार, न्यूनाधिकता है। वैभव, शक्ति आदि की दृष्टि से चक्रवर्ती सर्वोपरि है। आध्यात्मिक एव लौकिक सामजस्य का यह एक अद्भुत रूप है, जिसे जैन परम्परा ने बडे समीचीन रूप मे उपस्थित किया है। इन शलाका-पुरुषो/मानव-मनीपियो द्वारा ही मानवता के चिराग की धूमिल पडती ज्योति को नयी शक्ति दी जाती है।

जिस प्रकार जगत् अनादि अनन्त है, शलाका-पुरुषो की परम्परा भी अनादि अनन्त है। तीर्थंकर समय-समय पर धार्मिक प्रेरणा देते है, धर्म को सामूहिक या सगठनात्मक रूप प्रदान करते है। उसमे श्रमण, श्रमणी, श्रमणोपासक, श्रमणोपासिका के रूप मे चतुर्विध वर्गो का समावेश होता है। जैन परिभाषा मे इसे तीर्थ कहा गया है। यह तीर्थ शब्द सघ के अर्थ मे प्रयुक्त है। इस तीर्थ के प्रवर्तक को ही तीर्थंकर कहते है। धर्म यद्यपि साधना की दृष्टि से वैयक्तिक है, किन्तु वह समूह के साथ, किन्ही विशिष्ट आचार-सहिताओ के साथ जो उसके मूल दर्शन पर समाश्रित होती है, समुदाय से जुडता है, तब वह सामाजिक या सघीय बन जाता है। वैयक्तिक के साथ-साथ धर्म का सघीय रूप परमावश्यक है। यह धर्म की सस्कृति, दर्शन तथा लोकजनीनता को सवल प्रदान करता है। यही वह आधार है, जिस पर किसी भी धर्म की वैचारिक सम्पदा और साधना का अस्तित्व, विस्तार, विकास और सप्रसार टिका रहता है।

किसी भी धर्म के दार्शनिक सिद्धान्त और नैतिक सामाजिक विचार उसके पौष्टिक तत्व होते है। प्राय विद्वान यह मानते हे कि जैनधर्म के दार्शनिक और नैतिक विचार उत्कृष्टतम है। दुनिया मे जैन उन कतिपय धाराओ मे है जिनमे धर्म भी है और दर्शन भी। धर्म के दृष्टिकोण से वह सदाचार सिखाता है, दर्शन के दृष्टिकोण से सद्विचार का पाठ पढाता है। जैन-दर्शन तो बडा अनूठा है। वह परम साख्य और परम बौद्ध है। सम्पूर्ण सत्य और रहस्य को शब्दो और अको मे बिठा देने की बौद्धिक स्पर्धा यदि किसी ने अथक प्रयास मे की, तो वह जैन "दर्शन" ने। जैन-दर्शन गणित और विज्ञान की विजय का विस्मयकारी स्मारक है। गणनाबुद्धि की उसमे पराकाष्ठा है।

जैन-दर्शन का अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त पुरुषार्थवाद है। प्रत्येक आत्मा मूलत परमात्मा है। राग-द्वेपजनित क्रोध, मान, माया, आदि कषायजनित कार्मिक आवरणो से इसकी शक्ति, इसका ओज, इसका ज्ञान विविध तरतम्यतापूर्वक आवृत रहता है। सवर और निर्जरामूलक साधना द्वारा इन कर्मावरणो के अपचय से आत्मा का शुद्ध स्वरूप अभिव्यक्त होता है। कार्मिक आवरणो का जब सर्वथा सम्पूर्णत क्षय हो जाता है, तब आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप मे आ जाती है। इसे परमात्मा, परमेश्वर, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त आदि नामो से अभिहित किया जाता है। जैन-दर्शन मे यही ईश्वर का स्वरूप है। ईश्वर एक नही है, सभी मुक्त आत्माएँ परम ज्ञान, परम आनन्द के अधिपति होने के नाते ऐश्वर्य या ईश्वरतायुक्त है।

जैन दर्शन सृष्टि को ईश्वरकृत नही मानता है। वह किसी ईश्वर को सृष्टि का सर्जक या उत्पादक नही मानता। आत्मा और कर्मो का सम्बन्ध ही ससार है। जगत् की [सारी गतिविधियाँ इसी पर आश्रित है। यह क्रम अनादि काल मे चला आ रहा है। इस सम्बन्ध को ध्वस्त एव उन्मूलित करना प्रत्येक जीव का अन्तिम लक्ष्य है।

जैन दर्शन के अनुसार यह जगत् अनादि-अनन्त है। आशिक विप्लव के रूप मे जो ध्वस होता है, वह सामयिक हे। मूलत जगत् का सम्पूर्ण रूप मे विनाश नही होता। जगत् मे जड-चेतनात्मक पदार्थ समाविष्ट रहे है और रहेगे। जो चेतन, पदार्थ या जीव जगत् मे है, उन्हे ससारी जीव कहा जाता है। अपने-अपने आचीर्ण कर्मों के अनुसार वे गतिशील-क्रियाशील है। कर्मो का क्रम शृखला रूप मे ---

न्तर गतिमान रहता है। इनके अतिरिक्त दूसरे वे जीव है, जो मुक्त है, सम्पूर्ण रूप मे कर्मो का क्षय कर अपनी परम शुद्धावस्था प्राप्त कर चुके हैं। वे लोक के अग्रभाग मे, सर्वोच्च भाग मे सस्थित हैं, जिसे सिद्ध-स्थान या सिद्धशिला कहा जाता है।

ससार-चक्र मे भ्रमण करते रहने का मुख्य कारण सत् तत्व के प्रति अनास्था है, जिसे जैन परिभाषा मे मिथ्यात्व कहा जाता है। मिथ्यात्व का मूल उत्स एक उलझी हुई गाठ की ज्यो है, जिसे सुलझा पाना, सही स्थिति मे ला पाना बहुत कठिन है। इसे मिथ्यात्व-ग्रन्थि या मिथ्यात्व रूप कर्म-ग्रन्थि कहा जाता है। म्वय तथा अन्त स्फूर्तिजनित उद्यम के परिणाम-स्वरूप जब मिथ्यात्व की ग्रन्थि खुल जाती है, तव जीव उस नये आलोक का अनुभव करता है, जिसे वह अब तक विस्मृत किये था, दूसरे शव्दो मे जो अव तक आवृत था।

यह स्थिति जैन दर्शन मे सम्यक्त्व के नाम से अभिहित हुई है। मम्यक्त्व साधना का प्रथम सोपान है। यह उसका मूल है। इसे साधे बिना साधक शुद्ध सावना की दृष्टि से एक कदम भी आगे नही वढ सकता। इसके न होने से ज्ञान अज्ञान का रूप लिये रहता है, सदाचरण जीवन मे यथावत् रूपेण समाहित हो नही पाता। अर्थात् ज्ञानाराधना और चारित्र-साधना दोनो असाधित रह जाती है।

जैनधर्म का मानना है कि सम्यक्त्व से रिक्त व्यक्ति चलता-फिरता "शव" है। सत्य तो यह है कि सम्यक्त्व ही जैनत्व की पहचान है। यही तो वह पगडडी है, जो कमल की पखुडी की भाँति निर्लिप्त और आकाश की भाँति स्वाधीन जीवन जीने की एक स्वस्थ जीवन-शैली दर्शाती है।

सम्यक्त्व का दिव्य प्रकाश स्वायत्त हो जाने पर साधक सच्चा परीक्षक बन जाता है। वह देव, गुरु तथा धर्म को भली-भाँति पहचान लेता है कि सच्चे देव वे है, जिन्होने राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, एव लोभ आदि आत्म-विकारक अवगुणो का सर्वथा नाश कर दिया है, जो परम शुद्ध परमात्म-भाव मे सस्थित है। गुरु वे हैं, जिनके जीवन मे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह का समग्र रूप मे क्रियान्वयन है, जो आत्मकल्याण के साथ-साथ लोक-कल्याण मे भी अभिरुचिशील है। जो सयम, साधना और तपश्चरण से जुडा है, जिसमे अहिंसा मौलिक पृष्ठभूमि के रूप मे स्वीकृत है। अहिंसा मे सहजरूपेण सत्य आदि का समावेश हो जाता है।

सस्कृति और नीति के क्षेत्र मे भी जैनत्व विश्व चिन्तन का प्रतिनिधित्व करता है। जैन नीति सिखाती है कि औरो को मत सताओ, सच बोलो, चोरी मत करो, जरूरत से ज्यादा सामान मत रखो, दूसरो की स्त्रियो को या पुरुषो को बुरी नजर से मत देखो। ये वे मील के पत्थर है, जो नैतिकता के मार्ग पर चलने वाले को गुमराह नही होने देते। ससार का कोई भी चिन्तक या धर्म ऐसा नही है, जो जैन-नीति की इन वातो को गलत वता सके।

वस्तुत जैन धर्म के प्रवर्तको का लक्ष्य मानवमात्र मे आचार-शुद्धि, विचार-शुद्धि, जीवन-शुद्धि की मशाल जलाना रहा है। इसलिए जैनधर्म ने खान-पान मे, भोगो मे, वाणी मे सयम रखने की प्रेरणा दी। साम्यवाद एव समभाव की स्थापना के लिए ही अहिंसा पर जोर दिया गया। हिसा और मासाहार जैसी अशुद्ध परम्पराओ के प्रभाव से ही मनुष्य क्रूर, बेरहम, निर्दय और हृदय-हीन बनता है। जैनधर्म का मानना रहा है कि शाकाहार जीवन-शुद्धि का एक मानवीय गुण है, जो तामसी-वृत्तियो को जन्म लेने मे अवरोध पैदा करता है।

जैनधर्म ने विश्व-कल्याण की उदात्त भावना के प्रसार के लिए ही अपरिग्रह को प्रत्येक जैन के

लिए अनिवार्य व्रत बनाया। सत्य और अचौर्य की ओर जन-चेतना को प्रेरित कर जैनधर्म ने न्याय की तुला का जीर्णोद्धार किया।

जैनधर्म के वर्तमानकालीन प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने राजतन्त्र, अर्थतन्त्र, प्रजातन्त्र और आत्मतन्त्र जैसे स्वच्छ शुद्ध तन्त्रो की स्थापना की। यद्यपि जैनधर्म मे उक्त चारो तन्त्रो को अपेक्षित महत्व दिया गया, किन्तु आत्मतन्त्र सच्चिदानन्द स्वरूप मे है, सत्य, शिव, सुन्दर रूप है।

सत् तत्व के स्वीकार और साधनगत तत्वो के अवबोध के साथ-साथ क्रियान्विति का प्रसग आता है वहाँ आत्म-भाव मे अवस्थिति तथा अनात्म-भाव या विभाव से पृथक्करण का प्रयत्न गतिशील होता है, जो जैनदर्शन की भाषा मे विरति या व्रत कहा जाता है। जब सत् को स्वीकार करते है, सहज रूप मे असत् छूटता है। असत् के साथ चिरन्तन लगाव होने के कारण उसे छोड पाना वहुत कठिन होता है। इसलिए उसके छोडने पर विशेष जोर देने हेतु निषेधमुखी या परित्याग-मुखी भाषा का प्रयोग होता है। जैसे अमुक-अमुक कार्यो का त्याग करता हूँ। अपने-आप मे आने के अतिरिक्त त्याग और कुछ नही है। अहिसा या सत्य जो आत्मा के अपने भाव है, सस्थित होते ही हिसा या असत्य का परिहार स्वय हो ही जाता है।

साधना के दो रूप है—समग्र तथा आशिक। समग्र साधना सर्वथा आत्मोन्मुखी होती है। उसमे व्रत स्वीकार निरपवाद होता है। इन साधको द्वारा स्वीकृत व्रत महाव्रत कहे जाते है। वे महान् इसलिए है कि उनकी समग्रता विखडित नही है। ऐसे साधक, श्रमण, मुनि, अनगार या भिक्षु कहे जाते है। सब मे ऐसी आत्म-शक्ति नही होती, अत जैनधर्म मे आशिक साधना का भी विधान है। वहाँ व्रतो की स्वीकृति स्वीकर्ता की आत्म-शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार अशत होती है। अपवादपूर्वक या छूट के साथ वहाँ व्रतो का परिग्रहण होता है। यह साधना गृहस्थ-जीवन से सम्बद्ध है। गृहस्थ-साधक श्रमणोपासक या श्रावक कहा जाता है। इसके व्रत अणुव्रत कहे जाते है, जिनका गुणव्रतो तथा शिक्षा-व्रतो के रूप मे विस्तार है। अणुव्रतादि का पालन करने से व्यक्ति साधना-पथ पर तो वढने की प्रेरणा प्राप्त करता ही है, साथ ही साथ समाज में नैतिकता के प्रसार मे अपनी भूमिका निभाता है।

यद्यपि जैनधर्म निवृत्तिप्रधान है, किन्तु वह प्रवृत्ति मार्ग का निषेध नही करता है। जैनधर्म मानता है कि निवृत्ति को लोक कल्याण की भावना से मुँह नही मोडना चाहिए। निवृत्ति का उद्देश्य अशुभ से हटना होना चाहिए और प्रवृत्ति का उद्देश्य शुभ से जुडना। निवृत्ति को व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के लिए अपनानी चाहिए और प्रवृत्ति मे क्रियाओ का सम्पादन विवेकपूर्वक करना चाहिए।

इस प्रकार निवृत्ति-साधना/मुनि-साधना और प्रवृत्ति-साधना/गृहस्थ-साधना के रूप मे चारित्रिक आराधना के ये दो क्रम है। ये सम्यक् रूप से उत्तरोत्तर प्रगति करते जाये, यह वाछनीय है। किन्तु कुछ ऐसी दुर्बलताएँ है, जिनके कारण कदम-कदम पर वाधाएँ आती रहती हैं। वे दुर्बलताएँ क्रोध, मान, माया तथा लोभ के रूप मे विभाजित है, जिन्हे कषाय कहा जाता है। सम्यक्श्रद्धा, सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र प्राप्त कर लेने पर भी ये भीतर ही भीतर उज्जीवित रहते हैं तथा साधक को विचलित करते हैं। अत व्रत-पालन के साथ-साथ इनको क्षीण करने के लिए भी साधक को सतत् समुद्यत रहना आवश्यक है। नैतिक प्रगति के लिए कषाय-विजय अनिवार्य है। कषाय-विजय का उपक्रम ही जैनदर्शन मे गुणस्थानो के रूप मे व्याख्यात हुआ है। गुणस्थान और कुछ नही, मात्र आत्म-विकास की उत्तरोत्तर विविध भूमिकाओ का परिचायक है।

साधना मे सबसे बडा बाधक तत्त्व वासना या आसक्ति है। यह चिरकालीन सस्कारजनित है। इसे निर्मूल करने के लिए सबसे पहले मन को परिमार्जित करना अपेक्षित है। मानसिक समार्जन हेतु जैन धर्म मे द्वादश अनुप्रेक्षाओ/भावनाओ का अभ्यास अत्यन्त उपयोगी है। भावना तथा चिन्तना मे एक अन्तर है। चिन्तना किसी विषय को सोचने तक सीमित है, जबकि भावना उसमे पुन पुन अवगाहन, आवर्तन तथा तदनुरूप अनुभव से सम्पृक्त है। भावनाओ के विधिवत अभ्यास से चिरसचित वासनाएँ ध्वस्त हो सकती है।

जैनधर्म ने मन की वासनादिपरक अशुभ वृत्तियो के परिमार्जन और शुभ वृत्तियो को आत्म-स्वरूप की ओर दिशा प्रदान करने के लिए ही योग और ध्यान जैसे रास्ते बताये। मन, वचन, काया के योगो से उपरत होकर आत्मपथ पर योजित होना ही योग है। ध्यान इस यौगिक सफलता की कुञ्जी है। ध्यान वास्तव मे अन्तर्यात्रा है। मन, वचन, काया के योगो का स्थिरीकरण ही ध्यान है। मानसिक वृत्तियो को बाहरी भटकाव से अन्तरात्मा की ओर मोडना ध्यान की सहज प्रक्रिया है। ध्यान अध्यात्म का प्रवेश-द्वार है और अध्यात्म शुद्धात्मा मे विशुद्धता का आधारभूत अनुष्ठान है।

जैन धर्म नैतिक जीवन का साध्य मोक्ष मानता है। मोक्ष वास्तव मे सघर्ष का निराकरण एव समत्व का सस्थापन है। इस मच पर पहुँचने के लिए जैनधर्म सोपान है। यह बन्धन से मुक्ति की ओर जाता है। मोक्ष व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूर्णता का परिचायक है।

आध्यात्मिक उपासना के लिए तत्वज्ञान तथा तत्वानुशीलन उपादेय है। तत्वानुशीलनपूर्वक आचीर्ण धर्म सचालित क्रिया-प्रक्रिया का अपना असाधारण महत्त्व और प्रभाव होता है। इससे अन्तर्मन विमल और निर्ग्रन्थ बनता है।

यदि हम जिनशासन के तत्वदर्शन पर विचार करे, तो लगेगा कि वह काफी वैज्ञानिक है। जैन दर्शन द्वारा स्वीकृत तत्व, पदार्थ भी अनेक दृष्टियो से विज्ञान-सम्मत तत्त्वो एव पदार्थो से मेल खाते है। विज्ञान का मूल आधार भौतिकवाद है। जैन दर्शन मे भूत (मैटर) के लिए पुद्गल शब्द का व्यवहार हुआ है। इसके मूल मे पूरण और गलन, बढना-घटना है, जिसका तात्पर्य उसकी अनेक रूपो मे परिणति है। पुद्गल की सबसे छोटी इकाई परमाणु है। परमाणु अविभाज्य है। विज्ञान जिसे एटम कहता है, वह वास्तव मे परमाणु नही है, वह स्कन्ध या वैज्ञानिक भाषा मे मोलीक्यूल है। आज जो परमाणविक ऊर्जा उपलब्ध है, वैज्ञानिक उसे परमाणु विखण्डन से कहते रहे है, जो वास्तव मे स्कन्ध के विखण्डन ने प्रगट हुई है। जैन दर्शन परमाणुवाद मे जिस सूक्ष्मता मे गया, विज्ञान उधर गतिशील है, ये दोनो के सुखद समन्वय की दिशा है।

इसी प्रकार अनेकान्त तथा स्याद्वाद जैनधर्म की अनुपम देन है। पदार्थ का स्वरूप अपने मे गुणो की अनेकता समेटे है, जिसे एक साथ प्रकट नही किया जा सकता। इसके आधार पर जैन दर्शन मे तत्त्व को समझने और विवेचित करने मे जिस पद्धति को स्वीकार किया गया है, वही अनेकान्त और वचन-प्रयोग की दृष्टि से स्याद्वाद का रूप लेती है। इसे सात प्रकार से कहा जाता है। जहाँ पदार्थ के अपने स्वरूप के सद्भाव, दूसरे के असद्भाव तथा दोनो एक साथ कहे जाने मे अवक्तव्यता का आधार लिया गया है। यो भेद मे अभेद सध जाता है। स्याद्वाद का बोध करने के लिए जैन दर्शन का प्रमाण-वाद व नयवाद सहायक है। इस सिद्धान्त की प्रामाणिकता व उपादेयता विश्व के सबसे बड़े वैज्ञानिक अल्बर्ट

आइन्सटीन की "थ्योरी ऑफ रिलेटीविटी" से सिद्ध होती है। विभिन्न वाद और वैचारिक वैषम्य के समाधान के लिए इस सिद्धान्त की उपादेयता असन्दिग्ध है।

पदार्थ-विज्ञान को समझने के लिए जैन दर्शन का त्रिपदी-सिद्धान्त बहुत ही महत्वपूर्ण है। वस्तुत. जैन दर्शन के विवेचन का मूल आधार ही त्रिपदी है। उत्पत्ति, विनाश और ध्रुवता—त्रिपदी के तीन आधार है। अपने मूल स्वरूप की दृष्टि से कोई भी पदार्थ कभी मिटता नही, केवल रूप बदलता है। रूप बदलने मे पहला रूप मिट जाता है, नया रूप प्रकट होता है। प्रकट होते नये रूप को उत्पत्ति, मिटते हुए पुराने रूप को विनाश कहा जाता है। उत्पत्ति और विनाश दोनो को लिये हुए स्थिति ध्रुवता नित्य विद्यमान रहती है।

जिस वनस्पति-जगत का हम उपयोग करते है, वह वास्तव में है क्या—इस पर जैन चिन्तको की देन सर्वथा मौलिक है। जैन चिन्तको के अनुसार वनस्पति जगत सप्राण, सजीव, अनुभूतिशील, स्पन्दनशील है। उसकी भी जीवन-धारा अन्य प्राणियो की ज्यो विविध स्पन्दनो के रूप मे विचित्रता लिये हुए है। वनस्पति पर बहुत सूक्ष्म विवेचन देने का जैन चिन्तको का लक्ष्य यह रहा कि उसके उपयोग मे मनुष्य जहाँ तक सध सके, हिसा से अधिकाधिक दूर रहे। जैन दर्शन मे इस सम्बन्ध मे हुए ऊहापोह गहराई में न जाने वाले लोगो को कल्पित से लगाते थे, किन्तु उन्नीसवी-बीसवी शताब्दी के महान् वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु ने गहन गवेषणा के द्वारा वह सब सिद्ध कर दिया।

जैन दर्शन ने जिन तत्वो की चर्चा की है, उनमे आत्म-तत्व मुख्य है। आत्मवाद की शाश्वतता ही जीवन का रहस्य है। ससारी आत्मा जन्म, सुख, दु ख, मरण आदि से जुडी है। जन्म और मरण आत्मा के कर्मजनित रूप-परिवर्तन के आयाम है।

तात्विक स्वाधीनता जैनधर्म की अस्मिता है। इसके अनुसार स्वाधीनता-स्वतन्त्रता लोक का और लोक की रचना करने वाले प्रत्येक तत्व का सहज गुण है। किसी भी द्रव्य ने ऐसा अस्तित्व नही पाया, जो किसी और के पराधीन हो, हो सकता हो, किसी और की स्वाधीनता छीन सकता हो। अपनी इस स्वाधीनता को खोजने और उसे एकाग्र अखण्ड रूप देने के लिए समर्पित होना ही साधना है, यही जैन धर्म की तात्विक मीमासा की आधारशिला है।

जैन धर्म ने जीवात्मा, पुद्गल-परमाणु आदि षट-द्रव्यो का विवेचन करके उनके सयोग एव विभाग द्वारा विश्व-सृष्टि की जो अवधारणा प्रस्तुत की, वह भी विज्ञान से तुलनीय है।

अत कहा जा सकता है, जैन सस्कृति, जैन दर्शन की धारा बडी समृद्ध परम्परा है। जैसे सूर्य सबके लिए प्रकाशक है, वैसे ही जिनशासन/जैन धर्म है, सबके लिए कल्याणकारी, अमृततुल्य। जिन-शासन के धर्म-सघ/तीर्थ मे आने से पूर्व चाहे कोई किसी भी जाति, वर्ण, वर्ग आदि के घेरे मे रहा हो पर इसमे सम्मिलित होने के बाद कोई भेद-भाव नही रहता। सब एक हो जाते है, समान हो जाते है।

सक्षेप मे, जैनधर्म की मूलभूत सिखावन यही है कि व्यक्ति को "खाओ, पिओ और मौज उडाओ" की भौतिक भूमिका अथवा बाह्य जीवन से ऊपर उठकर आभ्यन्तर जीवन का दर्शन करना चाहिये और विवेकपूर्वक श्रद्धा, ज्ञान एव चारित्र रूप त्रिविध साधना-मार्ग मे विचरण करना चाहिये। इस पर विहार करके ही व्यक्ति वीतराग बन सकता है, 'अर्हत्'—अरिहन्त पद प्राप्त कर सकता है। अत वृत्ति मे अनासक्ति, विचार मे अनाग्रह और वैयक्तिक जीवन मे अहिंसा को ही महत्व देना चाहिये। सक्षेप मे यही जिनशासन है, जैन धर्म है। ●

जैन साधक के "षडावश्यक-कर्म"

—महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

☐ सामायिक ☐

सामायिक मे चित्तवृत्ति की,
समता हो, पापो से विरति।
आत्म-रमण के सुन्दर पथ पर,
यात्रा की है सहज स्वीकृति ॥

हम गृहस्थ चाहे साधक है,
पर क्या सामायिक से युत है ?
अगर नही इसकी धारा तो,
कल्मष-मने, साधनाच्युत है ॥

समता की पावनता से युत,
अन्तर्-गगा मे अवगाहन।
राग-द्वेष का कलुष हटाकर,
सामायिक यो करती पावन ॥

☐ स्तवन ☐

तुम तो वीतराग हो भगवन्।
नही स्तवन से तुम्हे प्रयोजन।
निन्दक हो चाहे तव पूजक,
तेरा सब पर सदा एक मन ॥

तेरा तदपि अनवरत सुमिरण,
नर का पाप-कलक हटाता।
सुप्त चेतना जागृत होती,
निज जिनत्व का वोध कराता ॥

अहकार के हिममय टीले,
तव स्तवन से ढह जाते है।
वहाँ महल आदर्श गुणो के,
अपना वैभव दिखलाते हैं।

☐ वन्दन ☐

सयम तथा गुणो से शोभित,
उत्तम गुरुवर कहलाते हैं।
उन सबको हो शत-शत वन्दन,
मोक्ष-मार्ग जो दिखलाते हैं ॥

गुरु-वन्दन से बढते रहते,
विद्या, ख्याति और अन्तर्बल,
साधकजन गुरु पर आधृत, ज्यो
भवनो को खम्बे का सम्बल।

वन्दन-विनय धर्म की जड है,
विनयवन्त की लघु अभिव्यक्ति।
लघुता मे बसती है प्रभुता,
गुरु-अनुकम्पा से मिलती शक्ति ॥

☐ प्रतिक्रमण ☐

पख वासना के फैलाकर,
पछी उडता नील गगन मे।
सुख का सागर लहराता था,
जव उसके ही अन्तर्मन मे ॥

अन्तरिक्ष में भरी उडानें,
पर तृण भर भी हर्ष न पाया।
व्याकुल पछी मोद खोजता,
लौट नीड मे सहसा आया॥

साधक प्रतिक्रमण से लौटो,
अपनी आत्मा के स्वभाव मे।
हृदय सुधा से भर सकता है,
मात्र वासना के अभाव मे॥

□ कायोत्सर्ग □

काया है माटी का पुतला,
बनता और बिगडता रहता।
पर मानव उस पर मोहित हो,
आत्म-भाव आरोपित करता॥

देह रहे, पर देह भाव मे,
देहातीन-अवस्था पाये।
जड को जड, चेतन को चेतन,
मन मे भेद-ज्ञान यह लाये॥

कर अभ्यास कायोत्सर्ग का,
आत्मध्यान के आलम्बन से।
छूटे काया-भाव, मुक्ति का
मार्ग प्रशस्त बनेगा जिससे॥

□ प्रत्याख्यान □

काक्षा की धारा मे बहना,
जीवन का है यह मुर्दापन।
छोडो बहना, सीखो तिरना,
सागर-तट पाओगे जीवन॥

प्रत्याख्यान इसी को कहते,
काक्षाओ का निरोध होता।
प्रवृत्तियाँ मर्यादित होती,
कर्मास्रव का निरोध होता।

प्रत्याख्यान कल्पतट बन्धन,
पाप-बाढ से मुक्ति दिलाता।
बाँध अधिक जितना दृढ होगा,
उतना वह प्रवाह रुक जाता॥

● मूल में श्रद्धा हो तो विनय स्वत ही प्रस्फुरित हो जाता है। आज यह हमारे हृदय मे इसलिए पुष्ट हो रहा है, क्योकि हमारे हृदय मे श्रद्धा के भाव नही है। आनन्दघन जी महाराज स्पष्ट कहते है—

शुद्ध श्रद्धा विना सर्व क्रिया करी।
छार पर लिपणो तेह जाणो॥

राख पर कितना ही हम गोवर से लेप करें, कही वह गोवर टिकाऊ हो सकता है।

Do with faith, if you lack faith do nothing

श्रद्धा से कर्म करो, अगर श्रद्धा नही है तो वह कर्म निष्फल है।

—आचार्य श्री जिनकान्तिसागर सूरि
('अमर भये ना मरेंगे' पुस्तक से)

जर्मनी के जैन मनीषी :
जैन दर्शन दिवाकर हेरमान याकोबी (जेकोबी)

—डॉ० पवन सुराणा

[यूरोपीय भापाओ के अध्ययन-अनुसन्धान मे निरत
विदुषी लेखिका तथा प्राध्यापिका
अध्यक्षा—यूरोपीय भाषा-विभाग, राज वि वि जयपुर]

जैन दर्शन एव साहित्य के गण्यमान जर्मन विद्वानो वेबर, शूब्रिग, ब्यूलर, ग्लासेनाप्, आर्लसडोर्फ रोथ तथा ब्रुन आदि के नामो के साथ प्रतिभा के धनी हेरमान जेकोवी का नाम प्रमुख रूप से आता है। भारतीय दर्शन एव साहित्य के विविध पक्षो का अध्ययन करने वाले इस जर्मन विद्वान ने जैन दर्शन एव साहित्य का गूढ अध्ययन कर अपनी कृतियो से इस क्षेत्र मे अपना विशिष्ट स्थान बनाया।

लोक-कथाओ एव जर्मन परम्पराओ से जुडी प्रसिद्ध राईन नदी के दोनो किनारो पर बसे कलोन शहर मे १ फरवरी १८५० मे जेकोबी का जन्म हुआ। स्कूल की शिक्षा उन्होने कलोन मे प्राप्त की। बर्लिन मे उन्होने गणित का अध्ययन प्रारम्भ किया। परन्तु दर्शन, साहित्य एव भाषा के प्रेमी जेकोबी को गणित का अध्ययन इतना रुचिकर न लगा। उन्होने गणित को छोडकर सस्कृत तथा तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ किया। १८७२ मे वोन विश्व-विद्यालय से उन्होने डाक्टरेट को उपाधि प्राप्त की। वोन विश्वविद्यालय को १८१८ मे ही भारतीय विद्या का केन्द्र होने का श्रेय प्राप्त था। अपने अध्ययन के वाद वे एक वर्ष तक इगलैण्ड मे रहे। १८७३-७४ मे जेकोबी ने भारत की यात्रा की। अपने अध्ययन के लिए हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त करने के लिए राजस्थान, गुजरात आदि की यात्रा करने वाले प्रसिद्ध जर्मन विद्वान जार्ज ब्यूलर[1] के साथ यात्रा करने का जेकोवी को सुअवसर मिला। इनको जैसलमेर की प्राचीन

१ भारतीय विद्या के जर्मन विद्वान जार्ज ब्युलर (१८३७-१८९८) ने अपने जीवन का आधे से अधिक काल भारत मे ही व्यतीत किया। कई जैन मुनियो, सस्थानो तथा विद्वान श्रावको के सम्पर्क मे आये। बम्बई के एलफिन्स्टन कालेज मे प्रोफेसर रहे। कई कट्टर भारतीय शास्त्री अपने हस्तलिखित पवित्र शास्त्रो को एक विदेशी को नही दिखाना चाहते थे। परन्तु ब्युलर के सस्कृत भापा वोलने के अद्भुत सामर्थ्य ने कट्टर भारतीय धर्मशास्त्रियो के हृदय को द्रवित किया तथा उन्होने अपने अमूल्य शास्त्र विना हिचक के जेकोवो को दिखाये।

जैन हस्तलिपियों आदि को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह यात्रा नवयुवक जेकोबी की दिशा निर्धारक बनी। राजस्थान आदि के विभिन्न प्राचीन जैन सस्थानो, जैन साधु-सन्तो एव विद्वानो से व्यक्तिगत परिचय एव चर्चा ने जैन धर्म तथा दर्शन को विदेशी होते हुए भी समझने तथा अनुसन्धान करने के क्षेत्र मे उनको एक नई दिशा दी।

भारत से लौटने के बाद १८७६ मे वे म्यूनस्टर विश्व-विद्यालय मे भारतीय साहित्य के प्राचार्य बने। १८८५ मे समुद्री किनारे पर बसे उत्तरी जर्मनी के कील शहर मे वे आचार्य (प्रोफेसर) बने। १८८९ मे वे अपने जन्म स्थल कलोन वापिस लौट आये।

१९१३-१४ मे जैकोबी पुन भारत आये। कलकत्ता विश्व-विद्यालय ने उन्हे काव्य-शास्त्र पर व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किया एव डाक्टरेट को मानद उपाधि प्रदान की। अपनी द्वितीय भारत यात्रा के दौरान जेकोबी ने अपभ्र श की दो कृतियो की महत्वपूर्ण खोज की। इससे पूर्व अपभ्र श का ज्ञान व्याकरणाचार्यो के उद्धरणो से ही होता था। "भविस्सदत्त कहा" तथा "सनतकुमारचरितम्" इन दोनो कृतियो[1] का १९१८ तथा १९२१ मे प्रकाशन किया।

जैकोबी १९२२ मे विश्व-विद्यालय की सेवाओ से निवृत्त हुए परन्तु इसके बाद भी अपने जीवन के अन्तिम चरण १९३७ तक वे अपने अनुसन्धान मे लगे रहे। जेकोबी ने कई जैन कृतियो का प्रकाशन तथा उनका अनुवाद जर्मन भाषा मे किया।

इनमें से उल्लेखनीय जैन कृतियाँ निम्न है —

१—दो जैन स्तोत्र[2]

२—भद्रबाहु का कल्पसूत्र[3] भूमिका टिप्पणी तथा प्राकृत-सस्कृत शब्दावलि सहित प्रकाशित

३—कालकाचार्य कथानकम्[4]

४—श्वेताम्वर जैनो का आर्य रग सुत्त[5] (आचाराग)

५—हेमचन्द्राचार्य की स्थविरावली[6]

६—कल्पसूत्र का अनुवाद[7]

७—उत्तराध्ययन सूत्र तथा सूत्रकृताग सूत्र

८—उपमिति भवप्रपञ्च कथा[8]

९—विमलसूरि का पउमचरिय[9]

---

१ "Proceedings of the Bavarian Academy" मे १९१८ तथा १९२१ मे प्रकाशित।

२ १८७६ मे "Indische Studien" मे प्रकाशित।

३ लाइपत्सिग् मे १८७९ मे प्रकाशित।

४ Journal of the German Oriental Society (ZDMG) मे १८८० मे प्रकाशित।

५ Pali Text Society द्वारा लन्दन से १८८२ मे प्रकाशित।

६ Bibliotheka Indica मे १८८३ मे प्रथम प्रकाशित तथा १९३२ मे पुन प्रकाशित।

७ "Sacred Books of the East" १८८४ मे प्रकाशित। इसी मे उत्तराध्ययन सूत्र तथा सूत्रकृताग सूत्र भी १८९५ मे प्रकाशित।

८ १९०१ से १४ तक Bibliotheka Indica मे प्रकाशित।

९. १९१४ मे प्रकाशित।

१०—भविस्सदत्त कहा

जैन कृतियो के सम्पादन एव अनुवाद के अलावा जेकोबी ने कई अनुसन्धान पत्र जैन धर्म तथा दर्शन पर लिखे। अपने गुरु वेबर के साथ ही जेकोवी का नाम भी जैन साहित्य के अग्रणी विद्वानो मे लिया जाता है। जेकोवी ने जैन साहित्य के अलावा गणित तथा विज्ञान आदि अन्य क्षेत्रो मे भी अनुसधान किया। प्राकृत ग्रन्थो के प्रकाशन ने उनको प्राकृत व्याकरण लिखने को भी प्रेरित किया। जेकोवी ने आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक का अनुवाद किया। अपने पेपर भारतीय तर्कशास्त्र मे उन्होने तार्किक ढग से अनुमान के विचार को स्पष्ट किया। सामान्य पाठक के लिए उन्होने "पूर्व का प्रकाश" (Light of Orient) नामक पुस्तक की रचना की।

जेकोवी के सम्मान मे उनकी ७५वी वर्षगाठ पर किरफेल द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ में जेकोवी की सभी कृतियो तथा अनुसन्धान पत्रो का उल्लेख है।

जेकोवी विदेशी विद्वानो मे प्रथम विद्वान थे जिन्होने प्रमाणित किया कि न केवल महावीर वल्कि पार्श्वनाथ भी ऐतिहासिक पुरुष थे तथा जैन धर्म, बौद्ध धर्म से विकसित धर्म न होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। जैन साहित्य पर किए अपने उल्लेखनीय अनुसन्धान के कारण जैन समाज ने उनको "जैन दर्शन दिवाकर" की उपाधि से विभूपित किया।

□ □

पैसा आवश्यक है आवश्यक कार्यो की पूर्ति के लिए, न कि अनावश्यक रूप से पेटियो मे सग्रह के लिए। पेट भरने योग्य पैसा हम न्याय से अर्जित कर सकते हैं। पेटियो को भरने के लिए तो हमे अन्याय करना ही होगा। न मालूम उस सगृहीत धन मे कितने गरीबो की आहे व हाय-हाय लगी हुई होगी। वह तो एक प्रकार से खून से सना धन है। उस धन से क्या कभी कल्याण होने वाला है? आज खूब शिकायते आती हैं कि हमारा मन, मन्दिर में नही लगता। हमारा मन सामायिक में नही लगता। हमारा मन ध्यान मे नही लगता लगता क्यो नही? इसका कारण कभी जानना चाहते हैं? अगर जाना है तो उन कारणो को दूर करने का प्रयत्न करो। ख्याल रहे, "जैसा अन्न, वैसा मन" अन्न शुद्ध नही होगा तब तक मन कैसे शुद्ध होगा? मन की शुद्धि के लिए शुद्ध अन्न की नितान्त आवश्यकता है। पेट में अनाज तो अशुद्ध पहुँचे और हम सामायिक करना चाहे, पूजा करना चाहे तो कभी नही होगा।

—आचार्य श्री जिनकान्तिसागर सूरि
('अमर भये, न मरेंगे' पुस्तक से)

● ●

सामायिक का स्वरूप व उसकी सम्यक् परिपालना

—पं० कन्हैयालाल दक
(जैनधर्म दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान, लेखक, अध्यापक)

सामायिक शब्द जैन धर्म का एक विशेष प्रकार का पारिभाषिक शब्द है, जिसका सीधा व सक्षिप्त अर्थ है, समभाव की प्राप्ति होना। अथवा ऐसी एक विशेष प्रकार की आत्मिक साधना, जिससे साधक को समभाव की प्राप्ति हो। लेकिन इतना मात्र ही सामायिक का अर्थ नही है, वास्तव मे सामायिक एक विशेष प्रकार की अध्यात्म-साधना है, जिससे मानव-जीवन के चरम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति भी सम्भव है। जैनधर्म ग्रन्थो मे सामायिक को श्रावक तथा साधु की एक 'पडिमा' के रूप मे स्वीकार किया गया है, और इसके स्वरूप तथा महत्व पर सविशेष प्रकाश डाला गया है, जिसका परिज्ञान होना प्रत्येक सामायिक प्रेमी के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

यह सर्वविदित है कि जैन धर्म एक आचार-प्रधान धर्म है। केवल सिद्धान्तो का ज्ञान हो जाना, दर्शन-शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित हो जाना और शास्त्रो का पारगामी विद्वान हो जाना ही जैन धर्म मे पर्याप्त नही माना गया है, अपितु ज्ञानपक्ष के साथ मे क्रिया-पक्ष को भी उतना ही प्रधान माना गया है, क्योकि जहाँ क्रिया है, वहाँ श्रद्धा है और श्रद्धा के साथ मे आचार व सम्यक्दर्शन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कही-कही तो 'ज्ञान भार क्रियां विना' कहकर क्रियाशून्य ज्ञान को भार तक कह दिया गया है। आचार या क्रिया की प्रधानता बतलाते हुए नीतिशास्त्र मे भी विद्वान की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि 'यस्तु क्रियावान् पुरुष स विद्वान्' अर्थात् ज्ञान होने के साथ-साथ जो व्यक्ति तदनुकूल आचरण करता है वही विद्वान है। आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने अपने प्रामाणिक ग्रन्थ 'विशेषावश्यक भाष्य' मे कहा गया है कि "नाण किरियाहिं मोक्खो' अर्थात् ज्ञान-सम्यग्ज्ञान और क्रिया अर्थात् सम्यक्चारित्र के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। यहाँ सम्यक्ज्ञान मे सम्यक्दर्शन का भी समावेश हुआ समझ लेना चाहिए।

जैन धर्म के सिद्धान्तानुसार वास्तविक मोक्षमार्ग की भूमिका का प्रारम्भ चतुर्थ गुणस्थान (अविरत सम्यक्दृष्टि) से होता है। सत्य के प्रति दृढनिष्ठा या लगन का होना सम्यग्दर्शन है। अनादि कालीन अज्ञान-अन्धकार मे पडा हुआ मानव जब सत्य-सूर्य के दर्शन कर लेता है, तब वह अपने आपको कृतार्थ-सा अनुभव करता है। लेकिन मानव-जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने के लिए सत्य

के प्रति अटल विश्वास कर लेना ही पर्याप्त नही है, अपने आपको साधनामार्ग मे समर्पित कर देना और भौतिक साधनो पर से तथा देह सम्बन्धी ममता का सर्वथा त्यागकर पूर्ण समतामय हो जाना साधक के लिये परमावश्यक होता है और इस स्थिति को प्राप्त कराने मे शुद्ध सामायिक का अपना महत्वपूर्ण स्थान है ।

जैन धर्म मे आत्म-साधक को दो भागो मे विभक्त किया गया है—अनगार तथा आगार । इन दोनो के द्वारा की जाने वाली साधना क्रमश अनगारधर्म तथा आगारधर्म के नाम से प्रसिद्ध है । जो साधक अपने घर-वार, धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार तथा परिग्रह का सर्वथा त्याग करके, सासारिक ममता व मोह का त्याग करके समभाव की प्राप्ति के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन का उत्सर्ग कर देता है और यावज्जीवन समता दर्शन के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है उसे 'अनगार' कहते है और उसकी साधना 'यावत्कथिक-सामायिक' कहलाती है । इसके विपरीत जो साधक घर-वार, धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार तथा परिग्रह का स्वामी होकर भी अपने गृहस्थी के व्यस्त समय मे से समय निकालकर समभाव का निरन्तर अभ्यास करता है, अपनी शक्ति अनुसार एक, दो, तीन सामायिके करता है, वह आगार या श्रावक कहलाता है और उसकी समभाव की साधना 'इत्वरिक सामायिक' कहलाती है । इत्वरिक सामायिक (एक सामायिक का) काल २ घडी अर्थात् ४८ मिनट का होता है ।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल घर-गृहस्थी या परिवार का त्याग करके ही सामायिक नही की जा सकती है अपितु गृहस्थाश्रम मे रहकर भी कोई भी साधक, अध्यात्म-साधना एव समभाव का अभ्यास कर सकता है । फिर भी इतना तो नि सन्देह कहा जा सकता है कि 'यावत्कथिक सामायिक' का जीवन मे वहुत वडा महत्व है और वह मानव-समाज के लिए एक अनुकरणीय आदर्श है । उसका अपना 'त्रैकालिक' महत्व है ।

हमारे भिन्न-भिन्न शास्त्रो मे सामायिक का जो स्वरूप वतलाया गया है, उसका अवलोकन करने के पश्चात उसकी शुद्धि व सम्यक् परिपालना के सम्बन्ध मे विचार करना समीचीन होगा, इस दृष्टि से सर्वप्रथम सामायिक के स्वरूप का विचार कर ले ।

आवश्यकनिर्युक्ति मे सामायिक का स्वरूप निम्न प्रकार से बतलाया गया है—

जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ।
तस्स सामाइय होई, इह केवलि भासिय ।।

अर्थात् जो ससार के त्रस तथा स्थावर सब प्राणियो पर समभाव रखता है उसी की सामायिक सच्ची सामायिक है, ऐसा केवली भगवान का कथन है । इसका तात्पर्य यह है कि सामायिक के साधक को राग, द्वेष, ममता, मोह आदि का शनै शनै परित्याग करके आत्मस्थ हो जाना पडता है । जिसकी आत्मा यम, नियम, सयम व तप मे सलग्न हो जाती है, वही आत्मा शान्ति व एकाग्रचित्त से इस सामायिक व्रत की साधना कर सकता है । अनवस्थित व चचल चित्त-वृत्ति वाला आत्मा सामायिक व्रत की साधना नही कर सकता है ।

समस्त व्रतो मे सामायिक व्रत ही सर्वश्रेष्ठ है, तथा मोक्ष का प्रधान अग माना गया है । तात्त्विक दृष्टि से देखा जाये तो पाँचवे गुणस्थान से लेकर वारहवे गुणस्थान के अन्तिम समय तक एक मात्र इस सामायिक व्रत की ही उत्तरोत्तर विकसित व उत्कृष्ट साधना की जाती है ।

तेरहवे सयोगी केवली गुणस्थान मे आत्मा जव शुद्ध, बुद्ध, निरजन निराकार व परिपूर्ण अवस्था को प्राप्त कर लेती है, तव उसकी समभाव की साधना भी पूर्ण हो जाती है और वह जीव स्वय

सामायिकमय हो जाता है, इसीलिये आवश्यकनिर्युक्ति में एक स्थान पर कहा गया है कि—'सामाइय भाव परिणइ भावाओ, जीव एव सामाइय' अर्थात् आत्मा की समभाव रूप परिणति हो जाने से जीव (आत्मा) ही सामायिक है। सामायिक को चौदह पूर्वो का तथा द्वादशागी का सार भी कहा गया है। विशेषावश्यक भाष्य की गाथा सख्या २७९६ मे कहा गया है कि—"सामाइय सखेवो चोद्दस्स पुव्वस्स पिंडोत्ति" अर्थात सामायिक नामक व्रत चौदह पूर्वो का सारभूत पिण्ड है। तत्वार्थाधिगमभाष्य के स्वोपज्ञ टीकाकार आचार्य उमास्वाति ने सामायिक व्रत की महिमा पर प्रकाश डालते हुए वतलाया है कि मनुष्यता के पूर्ण विकास के लिये सामायिक एक सर्वोच्च साधना है, और द्वादशागी का सार है।

अन्तकृद्दशाग सूत्र मे जहाँ मोक्षगामी आत्माओ के साधना से परिपूर्ण चरित्रो का उल्लेख आता है, वहाँ स्थान-स्थान पर यह उल्लेख पाया जाता है कि "सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ" अर्थात् प्रत्येक साधक अपने जीवन के साधनाकाल में तपस्या करने के साथ-साथ सामायिक आदि ग्यारह अगों का अध्ययन करते थे, तभी उनकी साधना पूर्णता को प्राप्त होती थी। यो देखा जाय तो बारह अगो में सामायिक नाम का कोई अग है ही नही, फिर भी सूत्र पाठ का आशय यह है कि अध्यात्म-साधना का साधक जितने भी अग या उपाग ग्रन्थो का अध्ययन करता है, उस अध्ययन के अनुरूप ही अपने जीवन को वह समता का साकार स्वरूप प्रदान कर देता है। वह शास्त्रो के साथ समरस हो जाता है, शास्त्राकार हो जाता है। और इसलिये जीव और उसकी सामायिक एक है, अभिन्न है। यह तदाकारता ही यथार्थ सामायिक है।

ऊपर सामायिक की सक्षिप्त व्याख्या करते हुए हमने वतलाया था कि समभाव की प्राप्ति करना ही सामायिक है। परन्तु समभाव की प्राप्ति होना आसान नही है। समभाव को प्राप्त करना एक दीर्घ-कालीन प्रक्रिया है। उसके लिए वर्षो के सतत् अभ्यास की आवश्यकता होती है। रागद्वेप से मुक्त होना, विषय-वासना का परित्याग करना, कर्मबन्ध के मूल कारण चारो कषायो से दूर रहना, ममता और परिग्रह भाव का वर्जन करना और एकान्त स्थान मे ध्यानस्थ अवस्था मे आत्म-स्वरूप का चिन्तन करना अर्थात् सभी सावद्य कार्यो से दूर रहते हुए निरन्तर आत्म-साधना मे तल्लीन रहना ही सामायिक है। जैसा कि कहा गया है—

> **सावद्य कर्ममुक्तस्य दुर्ध्यानरहितस्य च।**
> **समभावो मुहूर्त्तस्तत्, व्रतं सामायिकमाहितम् ॥**

प्रारम्भ मे अपनी चित्तवृत्तियो को अशुभ कार्यो की तरफ जाते हुए रोकना चाहिए, लेकिन मन बहुत चचल है, इसे स्थिर करना अति दुष्कर है। यदि अल्प समय के लिए भी इसे आश्रव मार्ग में जाते हुए रोका जाय तो वह सवर कहलाता है। अभ्यास करते-करते इस 'मन स्थिरीकरण' की सवर क्रिया को कम से कम ४८ मिनट या दो घडी तक वढाते चले जाना चाहिए, तब एक इत्वरिक सामायिक का काल होता है।

यो देखा जाय तो काल एक अखण्ड द्रव्य है, उसे टुकडो मे विभाजित करके सामायिक के काल का निर्धारण नही किया जा सकता है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से चित्तवृत्ति की स्थिरता के लिए साधक के मन सन्तोष के लिए पूर्वाचार्यो ने सामायिक का काल एक मुहूर्त्त का निश्चित किया है। इस एक मुहूर्त में भी चित्त की एकाग्रता या स्थिरता का होना अति दुष्कर है तो जीवन भर के लिए मन, वचन तथा काया की प्रवृत्तियों को शान्त, स्थिर व समभाव युक्त वना पाना तो वर्तमान युग मे एक कल्पना मात्र है।

इत्वरिक सामायिक करने वाला साधक (श्रावक) अन्तरात्मा की साक्षी से सकल्प करता है कि हे प्रभो ! मैं एक मुहूर्त भर के लिए दो करण व तीन योग से सावद्य कार्यो का त्याग करता हूँ और प्राणि-मात्र के साथ समभाव रखते हुए आत्म-साधना के लिए प्रवृत्त होता हूँ। यदि मेरे सकल्प-पूर्ति मे किसी प्रकार की त्रुटि हो तो मैं इस व्रत-भग स्वरूप पाप की स्वय निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ और पाप से निवृत्त होता हूँ। सामायिक के स्वरूप को समझे, समझाए बिना आज सख्या-पूर्ति की दृष्टि से सामायिको की स्पर्धा हो रही है, वे केवल बाह्य वेष-भूषा मात्र है।

आचार्य अमितगति ने अपनी 'सामायिक द्वात्रिंशिका' मे सामायिक के साधक के लिए एक साधना-सूत्र की तरफ सकेत किया है। वह सूत्र (श्लोक) निम्न प्रकार है—

सत्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोद, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम् ।
माध्यस्थ भाव विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ।।

अर्थात्—हे जिनेश्वर देव ! मैं जब तक सामायिक व्रत मे रहूँ, प्राणी मात्र के साथ मेरा मैत्री-भाव बना रहे, गुणीजनो को देखकर आनन्द और उल्लास का भाव जागृत हो, दु खी प्राणियो को देखते ही मेरे हृदय मे कृपा या दया का भाव उत्पन्न हो जाय, मुझसे शत्रुता का भाव रखने वालो के साथ भी मेरा माध्यस्थ भाव बना रहे, कभी द्वेष का भाव हृदय को स्पर्श कर आत्मा को मलीन न बना दे, ऐसी आत्मिक शक्ति मुझे प्रदान करो।

इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तन तथा अभ्यास प्रत्येक साधक को करना चाहिए, चाहे वह श्रावक हो या साधु। आज स्थिति विपरीत है। सामायिक की गुणवत्ता की तरफ सबका उपेक्षा भाव है, केवल द्रव्य सामायिक की तरफ ही विशेष भार दिया जाता है, जिसमे आसन तथा मुहपत्ति की प्रधानता है। आत्म-चिन्तन गौण है। सामायिक करने वाला सामायिक मे बोले जाने वाले शब्दो या पाठो का न अर्थ जानता है और न अन्य किसी प्रकार का उसका गम्भीर चिन्तन ही है। सामायिक-काल मे मौन स्वाध्याय का तो कही नामोनिशान भी नही है।

श्रावक के १२ व्रतो मे सामायिक एक शिक्षाव्रत के रूप मे जाना जाता है। इसे शिक्षाव्रत इसलिए कहा गया है कि सामायिक द्वारा प्राप्त किया जाने वाला समभाव अभ्यास द्वारा ही प्राप्त किया जाता हूँ। आचार्य माणिक्यशेखर सूरि ने आवश्यकनिर्युक्ति मे 'शिक्षा' शब्द का अर्थ निम्न प्रकार से दिया है —

"शिक्षा नाम पुन पुनरभ्यास "— अर्थात् किसी वस्तु का पुन-पुन अभ्याम करना ही शिक्षा है। इस शिक्षा-व्रत मे आत्मा को अन्तर्मुखी बनाने का निरन्तर अभ्यास करना होना है। यह अभ्यास कुछ दिनो या महीनो की साधना से नही, बल्कि वर्षो की और इससे भी आगे कई जन्मो की सतत-साधना और सस्कारो से फलीभूत हो सकता है। कषायो का समूल उच्छेदन करना दुष्कर कार्य है। बडे-बडे ऋषि, महर्षि तथा सन्त-मुनिराज भी राग-द्वेष तथा कषायो से लिप्त हुए पाये जाते है। तेरा-मेरा की भावना वहाँ भी ज्यो की त्यो दिखाई देती है। ऐसी स्थिति मे तीन करण व तीन योग से साध्वाचार का पालन कर पाना या यावज्जीवन शुद्ध सामयिक व्रत का पालन करना कैसे सम्भव है ? सामायिक के साधक को तो अहर्निश निम्न प्रकार से चिन्तन करना चाहिये—

यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्र वृन्दै, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेद पुराण शास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

अर्थात्—हे आत्मा! जब तूने सामायिक व्रत को ग्रहण कर लिया है, तब तू इस प्रकार का चिन्तन कर कि ससार के जितने भी पर-पदार्थ है, वे मेरे नही है और न मैं उनका हूँ। इस प्रकार के विचारो से बाह्य-परपदार्थो के साथ के सम्बन्धो का परित्याग करके तू मुक्ति के मार्ग के लिये तैयार हो जा अर्थात् अपनी आत्मा मे स्थिर हो जा। जो वीतराग देव मुनीन्द्र वृन्दो के द्वारा सदा स्मरण किये जाते है, मनुष्य तथा देवता भी जिनकी सदा स्तुति करते है, वेद, पुराण तथा आगम शास्त्र जिनकी महिमा का सदा गान करते है ऐसे परम विशुद्ध देवाधिदेव मेरे आत्म-मन्दिर मे सदा अधिष्ठित हो, जिससे मेरी आत्मा भी उन जैसी पवित्र बन जाय।

इस प्रकार से साधक की आत्मा मे सतत भक्ति-पूर्ण निर्मल विचारो का झरना प्रवाहित होते रहने से सामायिक मे स्वाभाविक रूप से लगने वाले मानसिक, वाचिक व कायिक दोषो मे बचा जा सकता है और द्रव्य से तथा भाव से सामायिक शुद्ध और शुद्धतर बनती चली जाती है। इस प्रकार की निर्दोष सामायिक करने से जीवन मे अद्भुत आनन्दानुभूति होती है। वह आनन्द अनिर्वचनीय है, केवल अनुभव-गम्य है।

किसी भी व्रत या नियम को स्वीकार करने के पश्चात् उसका भग न हो या किसी प्रकार की स्खलना न हो, इस ओर व्रती को सदा सचेष्ट रहना चाहिए या यो कहे कि व्रत का पालन करते समय किसी प्रकार के प्रमाद का सेवन न हो, इस ओर व्रती का सदा लक्ष्य होना चाहिए। अन्यथा सामायिक व्रत की आशातना या अवहेलना होने के साथ-साथ आत्म-वचना भी होगी। कोई भी व्रत या अध्यात्म साधना किसी को दिखाने, प्रसन्न करने, मान-सम्मान प्राप्त करने, यश-कीर्ति प्राप्त करने या धन-सम्पत्ति प्राप्त करने की अभिलाषा से नही की जाती है, व्रत-पालन करने मे व्रतस्थ आत्मा का आत्म-सन्तोष ही प्रधान है, क्योकि उस व्रत का प्रभाव उस आत्मा को ही अनुभव होगा, अन्य को नही। सामायिक व्रत का पालन करते हुए भी मन, वचन तथा काया सम्बन्धी दोषो के लगने की सम्भावना बनी रहती है, अत उनका सावधानीपूर्वक वर्जन हो, आत्मा के परिणाम शुद्ध व निर्मल बने रहे, इस ओर सदा सचेष्ट रहना चाहिए। 'मैं सामायिक व्रत मे हूँ,' इस बात की स्मृति साधक को निरन्तर बनाये रखनी चाहिए जिससे दुर्विचार, दुर्ध्यान और मन की चचलता अपने आप समाप्त हो जाय। सामायिक के निर्धारित काल का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिए, जिससे व्रती अपने आप यह निश्चय कर सके कि मैंने अपने चचल मन को किस सीमा तक वश मे कर लिया है। इसी प्रकार से साधना के क्षेत्र मे मैं कितना और बढ सकता हूँ?

सामायिक मे करने लायक आवश्यक क्रियाओ को मैंने किया है या नही? चतुर्विंशतिस्तव किया है या नही? भगवदाज्ञा की सम्यक् प्रकार से आराधना की है या नही? इन बातो का भी चिन्तन सामायिक मे किया जाना चाहिए और भविष्य मे ऐसा विशुद्ध चिन्तन करने के लिए सकल्पबद्ध होना चाहिए। जैसा कि ऊपर कहा गया है, सामायिक के ३२ दोषो मे से किसी का भी सेवन न हो, चार प्रकार की विकथाओ मे से किसी का सेवन न किया जाय, चार प्रकार की सज्ञाओ (इच्छाओ) मे से किसी सज्ञा का मानसिक स्पर्श न हो और व्रत-भग करने के जो चार प्रकार है (अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार) उनमे से किसी का भी ज्ञात या अज्ञात अवस्था मे सेवन न किया जाये तभी सामायिक की सम्यक् परिपालना हुई है, ऐसा कहा जा सकता है।

○

अनेकान्त और स्याद्वाद

डॉ० चेतन प्रकाश पाटनी
(जोधपुर)

(प्रबुद्ध लेखक विश्वविद्यालय प्राध्यापक)

वातराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी जिनेन्द्रदेव ने वस्तु-स्वरूप को जानने के लिए लोक को एक मौलिक दिव्य पद्धति प्रदान की है। वस्तु का सर्वांगीण स्वरूप इसी पद्धति से जाना जा सकता है। विचार अनेक है, वे वहुत वार परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते है परन्तु जिनेन्द्र निर्दिष्ट पद्धति से परस्पर का यह विरोध समाप्त हो जाता है। यह पद्धति है—विचारो मे अनेकान्त और वाणी मे स्याद्वाद का अवलम्वन।

अनेकान्त—इस सधिपद मे दो शव्द हैं—अनेक+अन्त। अन्त का अर्थ है—'अन्त. स्वरूपे, निकटे, प्रान्ते, निश्चयनाशयो अवयवेऽपि' इति हैम। अन्त शब्द स्वरूप मे, निकट मे, प्रान्त मे, निश्चय मे, नाश मे, मरण मे, अवयव मे नाना अर्थो मे आता है। अनेकान्त में अन्त का अर्थ स्वरूप, स्वभाव अथवा धर्म है।

'अनेके अन्ता धर्मा सामान्यविशेषपर्यायगुणा यस्येति सिद्धोऽनेकान्त।' जिसमे अनेक अन्त अर्थात् धर्म—सामान्य विशेष गुण और पर्याय पाये जाते हैं, उसे अनेकान्त कहते है। यानी सामान्यादि अनेक धर्म वाले पदार्थ को अनेकान्त कहते है।

परस्पर विरोधी विचारो मे अवरोध का आधार, वस्तु का अनेक धर्मात्मक होना है। हम जिस स्वरूप मे वस्तु को देख रहे है, वस्तु का स्वरूप उतना ही नही है। हमारी दृष्टि सीमित है। जबकि वस्तु का स्वरूप असीम। प्रत्येक वस्तु विराट् है और अनन्तानन्त अशो, धर्मो, गुणो और शक्तियो का पिण्ड है। ये अनन्त अश उसमे सत् रूप से विद्यमान है। ये वस्तु के सह-भावी धर्म कहलाते है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु द्रव्यशक्ति से नित्य होने पर भी पर्यायशक्ति से क्षण-क्षण मे परिवर्तनशील है, यह परिवर्तन अर्थात् पर्याय एक दो नही, सहस्र और लक्ष भी नही, अनन्त है और वे भी वस्तु के ही अभिन्न अश हैं। ये अश क्रमभाविधर्म कहलाते है। इस प्रकार अनन्त सहभावी और अनन्त क्रमभाविपर्यायो का समूह ही एक वस्तु है।

किन्तु वस्तु का स्वरूप इतने मे ही परिपूर्ण नही होता क्योकि विधेयात्मक पर्यायो की अपेक्षा भी अनन्तगुणा निषेधात्मक गुण और पर्याय का नास्तित्व भी उसी वस्तु मे है। जैसे—गाय। इस शब्द का

उच्चारण करने से गाय के अस्तित्व का तथा गाय से भिन्न समस्त पदार्थों के नास्तित्व का ज्ञान होता है अर्थात् गाय अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा है और भैस, हरिण आदि पर-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा नही है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ अस्ति-नास्ति दोनो रूप है।

'गाय' का पूर्ण स्वरूप समझने हेतु उसके सद्भाव (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि स्थूल इन्द्रियो से प्रतीत होने वाले गुण तथा इन्द्रियो से नही प्रतीत होने वाले सूक्ष्म अनन्त गुण) तथा असद्भाव रूप (भैस आदि अभाव रूप गुण) अनन्त धर्मो को जानना परमावश्यक है क्योकि अनन्त धर्मो के ज्ञान बिना वस्तु का स्वरूप पूर्ण रूप से जाना नही जा सकता। वस्तु के अस्ति-नास्ति आदि गुण परस्पर विरोधी प्रतीत होते है परन्तु अनेकान्तवाद/दर्शन/सिद्धान्त उन सबके विरोध को दूर कर देता है। जैसे—एक मनुष्य किसी का पिता, किसी का पुत्र, किसी का भाई, किसी का पति, श्वसुर, देवर, जेठ, मामा, दादा, पोता आदि अनेक नामधारी है तथा ये सम्बन्ध परस्पर विरोधी भी प्रतीत होते है कि जो पिता है वह पुत्र/पौत्र कैसे हो सकता है परन्तु अपेक्षाभेद उस विरोध का शमन कर देता है। इसी प्रकार अनेकान्त नित्य, अनित्य, एकत्व, अनेकत्व आदि विरोधी धर्मो का परिहार करता है। जिस प्रकार एक पुरुष मे परस्पर विरुद्ध से प्रतीत होने वाले पितृत्व/पुत्रत्व और पौत्रत्व आदि धर्म विविध अपेक्षाओ से सुसगत होते है, उसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ मे सत्ता, असत्ता, नित्यता, अनित्यता, एकता, अनेकता आदि धर्म भी विभिन्न नय-विवक्षा से सुसगत हो जाते है। यथा—द्रव्यार्थिक नय की मुख्यता और पर्यायार्थिक नय की गौणता से द्रव्य नित्य है तथा द्रव्यार्थिक नय की गौणता और पर्यायार्थिक नय की मुख्यता से समस्त पदार्थ अनित्य है तथा महासत्ता की अपेक्षा समस्त पदार्थ एक है।

'सद्द्रव्यलक्षणम्' द्रव्य का लक्षण सत् है, इसकी अपेक्षा जीवादि समस्त पदार्थ एक हैं तथा महा-सत्ता की अपेक्षा वर्णन किया जाये तो एक पदार्थ मे दूसरे पदार्थ का सत्त्व न होने से असत् भी है। ऐसा कौन होगा जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले पदार्थो के नानापने को स्वीकार नही करेगा।

आम का फल अपने जीवनकाल मे अनेक रूप पलटता रहता है। कभी कच्चा, कभी पक्का, कभी हरा, कभी पीला, कभी खट्टा, कभी मीठा, कभी कठोर, कभी नरम आदि, ये सब आम की स्थूल अवस्थाएँ है। एक अवस्था नष्ट होकर दूसरी की उत्पत्ति मे दीर्घकाल की अपेक्षा होती है परन्तु क्या वह आम उस दीर्घ अवधि मे ज्यो का त्यो बना रहता है तथा अचानक किसी क्षण हरे से पीला, और खट्टे से मीठा बन जाता है। नही, आम प्रतिक्षण अपनी अवस्थाएँ परिवर्तित करता रहता है परन्तु वे क्षण-क्षण में होने वाली अवस्थाएँ इतने सूक्ष्म अन्तर को लिए हुए होती है कि हमारी बुद्धि मे नही आती, जब यह अन्तर स्थूल हो जाता है तब ही वह बुद्धिग्राह्य बनता है। इस प्रकार असख्य क्षणो मे असख्य अवस्थाओ को धारण करने वाला आम आखिर तक आम ही बना रहता है, उसी प्रकार पदार्थों की मूल सत्ता एक होने पर भी अनेक रूप धारण करती है। पदार्थ का मूल रूप द्रव्य है और प्रति समय पलटने वाली उसकी अवस्थाएँ पर्याय है इसलिए पदार्थ द्रव्य की अपेक्षा नित्य है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य।

द्रव्य परस्पर विरुद्ध अनन्त धर्मो का समन्वित पिण्ड है, चाहे अचेतन द्रव्य हो, चाहे चेतन द्रव्य हो, सूक्ष्म हो या स्थूल हो, मूर्तिक हो या अमूर्तिक हो, उसमे विरोधी धर्मों का अद्भुत सामजस्य है। इसी सामजस्य पर पदार्थ का अस्तित्व स्थिर है अत वस्तु के किसी एक धर्म को स्वीकार कर दूसरे धर्म का परित्याग करके उसके वास्तविक स्वरूप को आँकने का प्रयत्न करना हास्यापद है तथा अपूर्णता मे पूर्णता मानकर सन्तोष कर लेना प्रवचना मात्र है।

स्याद्वाद—नयो के द्वारा अनेक धर्मात्मक वस्तु की सिद्धि करना ही स्याद्वाद है। नय वचनाधीन है और वचनो मे वस्तु के स्वरूप का युगपत् वर्णन करने की क्षमता नही है। क्रम से वस्तु का वर्णन करना स्याद्वाद है।

'स्याद्वाद' शब्द स्यात् और वाद इन दो शब्दो के योग से बना है। 'स्यात्' शब्द अव्यय है। इसका अभिप्राय है कथञ्चित् अर्थात् किसी धर्म की अपेक्षा से, किसी दृष्टिकोण विशेष से। 'वाद' शब्द का अर्थ है—कथन करना। अर्थात् किसी धर्म की अपेक्षा से किसी वस्तु का वर्णन करना स्याद्वाद कहलाता है। कोई-कोई 'स्याद्' शब्द का अर्थ शायद अर्थात् भ्रम, अनिश्चय, सन्देह करते है अत स्याद्वाद को सशय-वाद कहते है परन्तु यह उनका भ्रम है। स्याद्वाद से वाच्य जो वस्तु है, वह निश्चित है, उसमे भ्रम या सन्देह की कोई सम्भावना नही।

'अनेकान्तात्मकार्थकथन स्याद्वाद' (लघीयस्त्रय)। अनेक धर्मो वाली वस्तु मे प्रयोजनादि गुणो का कथन करना स्याद्वाद है। विवक्षा, नय अथवा दृष्टिभेद से एक वस्तु मे अनेक विरुद्ध धर्मो का कथन करना स्याद्वाद है।

तत्त्वार्थसूत्र अध्याय पाँच सूत्र बत्तीस **'अर्पितानर्पितसिद्धे'** से नित्य, अनित्य, एकत्व, अनेकत्व, सामान्य, विशेष, सत्, असत्, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, हेयत्व, उपादेयत्व आदि अनेक धर्मो की सिद्धि होती है।

> **स्याद्वाद सर्वथैकान्त-त्यागात् किवृत्तचिद्विधि ।**
> **सप्तभगनयापेक्षो, हेयादेयविशेषक ॥**

सर्वथा एकान्तवाद का त्यागकर, कथचित् विधि से अनेक धर्मात्मक वस्तु का कथन करना स्याद्वाद है। स्याद्वाद के अभाव मे वस्तु की सिद्धि नही हो पाती है। वस्तु के अनेक धर्मो का वर्णन सप्त भगनय की अपेक्षा किया जाता है। स्याद्वाद वस्तु के सर्वांगीण स्वरूप को समझने की एक सापेक्ष भाषा पद्धति है।

जब प्रत्येक पदार्थ मे अनन्त धर्म विद्यमान है और उन समस्त धर्मो का अभिन्न समुदाय ही वस्तु है तब उसे व्यक्त करने के लिए भाषा की भी आवश्यकता होती है। जब हम वस्तु को नित्य कहते है तो हमे किसी ऐसे शब्द का प्रयोग करना चाहिए जिससे उसमे रहने वाली अनित्यता का निषेध न हो जाये। इसी प्रकार जब वस्तु को अनित्य कहते है तब भी ऐसे शब्द का प्रयोग करना चाहिए जिससे नित्यता का विरोध न हो जाये। इसी प्रकार अन्य धर्मो—सत्ता, असत्ता, एकत्व—अनेकत्व आदि का कथन करते समय भी समझ लेना चाहिए। स्यात् शब्द का प्रयोग सब विरोधो को दूर करने वाला है।

'कथञ्चित्' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ 'स्यात्' शब्द एक सुनिश्चित दृष्टिकोण का सूचक है, इसमे सन्देह, सशय, भ्रम या अनिश्चय की कोई सम्भावना नही। यह स्याद्वाद सभी सघर्षो को दूर करने का एक अमोघ शस्त्र है। विचारो की भिन्नता ही मतभेद या विद्वेष की उद्भाविका है। इस पारस्परिक मतभेद मे एक दूसरे के विचार और दृष्टि का समादर करते हुए एकरूपता लाना स्याद्वाद की मूल भूमिका है। मतभेद होना स्वाभाविक है परन्तु कदाग्रह छोडकर सहृदयतापूर्वक समन्वय की आधार-शिला पर विचार-विनिमय करना यही स्याद्वाद का मूल तत्व है।

जैनधर्म मे अहिंसातत्व जितना रम्य है उतना ही रमणीक जैनदर्शन मे स्याद्वाद सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के बिना वस्तु का सही स्वरूप जानना अशक्य है। 'स्याद्वाद सिद्धान्त' एक अभेद्य किला है जिसके भीतर वादी-प्रतिवादियो के मायामयी गोले प्रवेश नही कर सकते। इसी सिद्धान्त के आधार पर सप्तभगो की प्ररूपणा की जाती है—

१ **स्यादस्ति**—प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा है।

२ **स्याद्नास्ति**—प्रत्येक वस्तु पर-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा नही है।

३ **स्याद् अवक्तव्य**—प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मिक है, उसका सम्पूर्ण स्वरूप वचनातीत है। वस्तु का परिपूर्ण स्वरूप किसी भी शब्द के द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता अत वस्तु अवक्तव्य है।

ये तीनो भग ही शेष भगो के आधार है।

४ **स्यादस्ति नास्ति**—यह भग वस्तु का उभयमुखी कथन करता है कि वस्तु किस स्वरूप मे है और किस रूप मे नही है। प्रथम भग वस्तु के केवल अस्तित्व का, द्वितीय भग केवल नास्तित्व का कथन करता है और तीसरा भग अवक्तव्य का कथन करता है परन्तु यह भग अस्तित्व और नास्तित्व इन दोनो का विधान करता है।

५ **स्यादस्ति अवक्तव्य**—वस्तु अस्ति स्वरूप है तथापि समग्र रूप से अवक्तव्य है।

६ **स्याद् नास्ति अवक्तव्य**—पर-द्रव्य, क्षेत्र आदि की अपेक्षा वस्तु असत् होते हुए भी सम्पूर्ण रूप से उसका स्वरूप वचनातीत है।

७ **स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य**—अपने स्वरूप मे सत् और पर-रूप से असत् होने पर भी वस्तु समग्र रूप से अवक्तव्य है।

उपर्युक्त भगो को व्यावहारिक पद्धति से समझने के लिए एक उदाहरण दिया है—

हमने किसी व्यापारी से व्यापार सम्बन्धी वार्तालाप करते हुए पूछा कि आपके व्यापार का क्या हाल है ? इस प्रश्न का उत्तर उपर्युक्त सात विकल्पो के माध्यम से इस प्रकार दिया जा सकता है—

१ व्यापार ठीक चल रहा है। (स्यादस्ति)

२ व्यापार ठीक नही चल रहा है। (स्याद्नास्ति)

३ इस समय कुछ नही कह सकते, ठीक चल रहा है या नही। (स्याद अवक्तव्य)

४ गत वर्ष से तो इस समय व्यापार अच्छा है, फिर भी हम भय से मुक्त नही है। (स्यादस्ति नास्ति)

५ यद्यपि व्यापार अभी ठीक-ठाक चल रहा है, परन्तु कह नही सकते आगे क्या होगा। (स्यादस्ति अवक्तव्य)

६ इस समय तो व्यापार की दशा ठीक नही है, फिर भी कह नही सकते आगे क्या होगा। (स्याद्नास्ति अवक्तव्य)

७ गत वर्ष की अपेक्षा तो कुछ ठीक है, पूर्णरूप से ठीक नही है तथापि कह नही सकते, आगे क्या होगा। (स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य)

जिस प्रकार अस्ति नास्ति अवक्तव्य के सात भग कहे है वैसे ही नित्य, अनित्य, एक, अनेक आदि मे भी घटित कर लेने चाहिए।

विश्व की विचारधाराएँ एकान्त के पक मे फँसी है। कोई वस्तु को एकान्तनित्य मानकर चलता है तो कोई एकान्तअनित्यता का समर्थन करता है। कोई इससे आगे बढकर वस्तु के नित्यानित्य स्वरूप को गडबड समझकर अवक्तव्य कहता है, फिर भी ये सब अपने मन्तव्य की पूर्ण सत्यता पर बल देते है जिससे सघर्ष का जन्म होता है।

जैनदर्शन स्याद्वाद के रूप मे तत्त्वज्ञान की यथार्थ दृष्टि प्रदान करके सत्य का दिग्दर्शन कराता है तथा दार्शनिक जगत् मे समन्वय के लिए सुन्दर आधार तैयार करता है। स्याद्वाद और अनेकान्त मे परस्पर वाच्यवाचक सम्बन्ध है। स्याद्वाद अनेक धर्मात्मक वस्तु का वाचक है और अनेक धर्मात्मक वस्तु वाच्य है।

हिंसा घृणा का घर : अहिंसा अमृत का निर्झर

—डॉ० आदित्य प्रचण्डिया "दीति"
साहित्यश्री, डी० लिट्०

(कवि तथा लेखक, अपभ्रंश भाषा पर विशेष शोध
तथा शब्द कोष का निर्माण)

मैं बस की यात्रा पर था। बस के चलने मे देरी थी। अन्दर मुझे घुटन महसूस हो रही थी, सो मैं बस से उतर कर बाहर चहलकदमी करने लगा। शायद दिल को कुछ राहत महसूस होने लगी थी। तभी यकायक दृष्टि मेरी, बस के पृष्ठ भाग मे अंकित पंक्ति पर जा पडी कि 'हिंसा घृणा का घर है।' कन्डक्टर की विसिल बजते ही बस मे अपनी सीट पर जा बैठा। बस चल दी अपनी गतव्य दिशा को। मैं खिडकी के सहारे उन्मन सा बाहरी दृश्यो पर नजर फेकने लगा और मेरा मन-मस्तिष्क उस पंक्ति के इर्द-गिर्द घूमने लगा। होठो ने न जाने कितनी बार यह पंक्ति दुहरायी होगी और हर बार सोच की गहराई और गहरी होती चली गई। घर पर पहुँचा। स्टडीरूम की मेज पर झुकने से पहले मैं सोच के कई पडाव पार कर चुका था? बस होना क्या था? मेरे सोच ने शब्दो की अगवानी की और शब्दो का यह गुलदस्ता इस रूप मे आपके सामने है। लीजिए न, आप भी इसकी खुशबू सूँघिये।

सुख-दुःख की अनुभूति व्यक्ति-व्यक्ति की अपनी होती है। आत्मतुला की भावना का विकास हुए विना व्यक्ति हिंसा से उपरत नही हो सकता। कहते है कि हिंसा मे धर्म न तो कभी हुआ है और न कभी होगा। यदि पानी मे पत्थर तैर जाय, सूर्य पश्चिम मे उदय हो जाय, अग्नि ठडी हो जाय और कदाचित् यह पृथ्वी जगत के ऊपर हो जाय तो भी हिंसा मे कभी धर्म नही होगा। इस ससार मे प्राणियो के दुःख, शोक और भय के कारणभूत जो दौर्भाग्य आदि हैं, उन सबकी जनक हिसा है। हिंसा ही दुर्गति का द्वार है। वह पाप का समुद्र है, घोर नरक है और है सघन अन्धकार। वह आठ कर्मो की गाँठ है, मोह है, मिथ्यात्व है। हिंसा चण्ड है, रुद्र भी, क्षुद्र भी, अनार्य भी, नृशस भी, निर्घृण भी और है महाभय भी। असत्प्रवृत्ति अर्थात् रागद्वेष एव प्रमादमय चेष्टाओ द्वारा किये जाने वाले प्राणवध को हिंसा कहते है। वस्तुत पाँच इन्द्रियाँ—श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रस, स्पर्श, तीन बल—मन, वचन, काय, उच्छ्वास-निश्वास तथा आयु—विभु ने दस प्राण कहे है, इनको नष्ट करना हिंसा है।

हिंसा का त्याग क्यो? आत्मा को अहिंसक रखने के लिए या किसी को न सताने के लिए। हमारे पैर के नीचे दबी हुई चीटी का हाल वही होगा जो हाथी के पैर तले दबने मे हमारा। जहाँ तक हो

सके हमारे द्वारा किसी दिल को भी रज न पहुँचे, क्योकि एक आह सारे ससार मे खलबली मचा देती है। सभी प्राणियो को दु ख अप्रिय लगता है अत किसी को नही मारना चाहिए। उन पर हुकूमत भी नही करनी चाहिये। न उन्हे अधीन रखना चाहिए। न ही उनको परिताप देना चाहिए। उद्विग्न भी उन्हे कदापि नही करना चाहिए।

आत्मविमुखता हिसा है। बाहरी स्थिति आत्मविमुखता की जननी है। सरलता आत्म-पवित्रता की सूचक है। बाह्य पर्यावरणो में जो चाकचिक्य है, बाह्य जगत के लुभावने और मोहक रगो मे जो आकर्षण है उससे आत्मा मे वक्रता पैदा होती है। सरलता स्वभाव है, वक्रता विभाव है। हिसा से उपरत वही व्यक्ति हो सकता है जो ऋजुसरल है, आत्मस्थ है, धार्मिक है। जो सरल होता है, वह दूसरो के हनन मे अपना हनन देखता है। दूसरो के परवश करने मे अपनी परवशता देखता है, दूसरो के परिताप मे अपना परिताप देखता है, दूसरो के निग्रह मे अपना निग्रह देखता है और दूसरो की हिसा मे अपनी हिसा देखता है। ये सब अहिसा के ही तो परिणाम है। धार्मिक वही है जो क्रिया की प्रतिक्रिया का अनुसवेदन करता है। जो जानता है कि जिसे मै मारना चाहता हूँ, वह मै ही हूँ, जिसे मैं ठगना चाहता हूँ वह मै ही हूँ।

आज व्यक्ति दृश्यदर्शी हो गया है। दृश्य के द्रष्टा से तो वह बेखबर है। वर्तमान को प्रमाण मान अतीत और अनागत को पर्दा डाल रहा है, झुठला रहा है। वह पुण्य की क्यारी मे विष का बीज वपन करने मे सलग्न है। जिससे क्रूरता भी वर्द्धित हुई है। व्यक्ति के भीतर-बाहर वह मुसकाती है। समत्व-बोध लुप्त हो गया है। सर्वत्र असमत्व भाव आज प्रसर्पित है। एषणाए व्यक्ति मे घर जो कर गई है। आकाक्षाओ ने उसको उन्मत्त बना दिया है। आज व्यक्ति कई मीलो को मिनटो मे नाप सकता है, परिधि सिमट आई है लेकिन भीतर से वह कोसो दूर-सुदूर होता जा रहा है।

दूसरो के गुणो को देखकर चिढना या ईर्ष्या करना, मै हिसा मानता हूँ। जिस प्रकार व्यक्ति को अपने गुण अच्छे लगते है उसी प्रकार दूसरो के गुणो की भी कद्र करनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति मे कुछ न कुछ गुण होते ही हैं, हमें उन्हे आगे रखकर चलना चाहिए। उनको कहने मे ईर्ष्या नही होनी चाहिए। गुण चाहे अपने परिचित के हो या अन्य किसी के, उनको अपनाने मे हिचकिचाहट क्यो ? केवल अपनी ही प्रशसा करना क्या अभिमान का सकेतक नही ? दूसरो मे आत्मीयता पैदा करने का, दूसरो के हृदय को जीतने का सरलतम उपाय है—दूसरो के गुणो को प्रकाशित करना। दूसरो की चापलूसी भले ही न करे किन्तु वास्तविक बात कहने में भी यदि डरे तो वह निर्भय कहाँ रहा ? अहिसा तो निर्भयता का पाठ पढाती है।

विनय आत्मा का स्वभाव है, गुण है। जो व्यक्ति इस गुण से मडित है, ओतप्रोत है, वह हिसक नही, अहिसक होता है। उद्दण्डता या अविनय, घृणा या द्वेष को पैदा करती है। घृणा से दूरी वढती है, एक दूसरे के बीच खाई खुद जाती है। द्वेष से बैर भाव या निन्दा को प्रश्रय मिलता है। व्यक्ति मे मृदुता का विकास होना चाहिए। मृदुता का अर्थ दीनता नही किन्तु उद्दण्डता का अभाव है। दीनता कमजोरी पैदा करती है और कमजोरी व्यक्ति को पथभ्रष्ट करती है। मृदुता आत्मविश्वास वढाती है और व्यक्ति को बलवान बनाती है। अतएव हिसा, प्रतिहिसा का मार्ग पशुता का मार्ग है। वह पशुवल है। प्रेम और सद्व्यवहार का मार्ग मानवता का मार्ग है, वह मानवीय वल है। व्यक्ति का प्रत्येक वचन और क्रियाकलाप प्रामाणिक होने चाहिए। इसका निकष सहयोग मे है, अकेलेपन मे नही। सवके साथ

रहकर, सबके बीच रहकर जो प्रामाणिक रहता है वहाँ उसकी परख होती है। विरोधी हो या मित्र किसी के साथ अप्रामाणिक व्यवहार नही होना चाहिए। जहाँ कहनी और करनी मे एकतानता न हो वहाँ हिंसा मुखर होती है। व्यक्ति जो सोचता है वही कहे, जो कहता है वही करे तो निश्चय ही वह अहिंसा के भव्य और दिव्य महल के प्रवेश-द्वार पर पहुँच जायेगा। कहनी और करनी मे असमानता आत्मवचना है। अहिंसक स्व-पर की भूमिका से ऊपर उठा हुआ होता है। वह अन्याय का पक्षधर नही होता। अनाचारो से समझौता नही करता, वह तो जीवन भर सत्य का उपासक बना रहता है।

हिसा मारना सिखाती है और अहिसा मरना। हिसा बचना सिखाती है और अहिसा बचाना। मारना क्रूरता है, मरना वीरता। बचना कायरता है, बचाना दयालुता है। अहिंसा हृदय की मृदुता है। मृदुता मे दुर्बलता और विकार न आ जाय इसकी पहरेदारी सत्य को करनी होनी है। हमारे मन मे जब तक विचार और आचार के मध्य एक गहरे सामञ्जस्य की दीपशिखा न टिमटिमायेगी तब तक हमारी जीवन बगिया मे स्नेह-सद्भावना की हरियाली नही लहलहायेगी। अनुकम्पा के अकुर नही फूटेगे। दया के सुरभित सुमन नही खिलेंगे और विश्वमैत्री के मधुर फल जन-जन के मन को आकर्षित नही करेगे। वस्तुत ससार रूप मरुस्थल मे अहिसा ही एक अमृत का निर्झर है। उसमे जीवन का एक सरस सगीत है। अहिंसा मानवता के आगम का जगमगाता आलोक है। वह तो सस्कृति का प्राण है, धर्म और दर्शन का मूलाधार है। उसमे अनन्त प्रेम है और है कष्ट सहने की अनन्त शक्ति। आइए, इस आनन्द के रथ पर आरूढ होकर हम स्वय महके और सबको महकाएँ।

मगलकलश
३९४, सर्वोदयनगर
आगरा रोड, अलीगढ (उ० प्र०)

❖ ❖

☐ अरे! मनुष्य के फूल बडे परिश्रम से खिलते है। गुलाब का फूल कितना सघर्ष करके, कितनी निश्चिन्तता से खिलता है और पता नही किस काल मे वह मुरझा जायेगा? फूल खिला है, तो मुरझायेगा जरूर, मगर मुरझाने से पहले हमे फूल की खुशबू ले लेनी है। फूल के मधु का पान कर लेना है। अपने मनुष्य-जन्म को, अपने मनुष्यत्व को, अपने सघर्ष को, अपनी ताकत को सदुपयुक्त कर लेना है। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो सोये-सोये उस फूल को खो देते हैं। अरे! भले मानुष! कितना महिमावन्त है यह जीवन! किसी भी अन्य जीवन मे तुम मोक्ष की साधना नही कर सकते। पूर्णरूपेण यही एक जीवन ऐसा है, मनुष्यत्व ही एक ऐसा फूल है जो पूर्णतया खिल सकता है। पूर्णतया सुगन्ध फैला सकता है।

—महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
('महावीर के महासूत्र' से)

❖ ❖

क्रोध : स्वरूप एवं निवृत्ति के उपाय

—साध्वी हेमप्रज्ञाश्री

[स्व० प्रवर्तिनी विचक्षणश्री जी महाराज की शिष्या
जैन आगमो की विशिष्ट अभ्यासी विदुषी श्रमणी]

●

क्रोध एक ऐसा मनोविकार है, जिसकी अभिव्यक्ति अनेक व्यक्तियो के द्वारा अनेक रूपो मे होती है। किसी का क्रोध ज्वालामुखी के विस्फोट के समान होता है तो किसी का क्रोध उस बडवाग्नि के समान—जो समुद्र के अन्दर ही अन्दर जलती रहती है। किसी का क्रोध दियासलाई की भभक के समान एक क्षण जलकर समाप्त हो जाना है तो किसी का क्रोध कण्डे की अग्नि के समान धीरे-धीरे बहुत देर तक सुलगता रहता है। किसी का क्रोध मशाल की उस आग के समान होता है जो जलकर भी राह दिखा देती है तो किसी का क्रोध उस दावाग्नि के समान होना है जो सब कुछ भस्म कर देती है। किसी का क्रोध उस जठराग्नि के समान होता है जो स्वय के लिए हितकारी बन जाता है और किसी का क्रोध उस श्मशान की आग के समान होता है जो शरीर की एक-एक बोटी को जला डालती है।

क्रोध प्राय प्रत्येक व्यक्ति मे होता है। क्रोध की मात्रा मे अन्तर हो सकता है, क्रोध की अभिव्यक्ति में भिन्नता हो सकती है. क्रोध के काल का प्रमाण अलग हो सकता है किन्तु यदि कोई व्यक्ति क्रोधरहित है तो वह महान सन्त/साधक या वीतराग हो सकता है।

क्रोधी मनुष्य को सर्प की उपमा देते हुए तथागत ने चार प्रकार के सर्प बताए है[1]—

(१) विषैला किन्तु घोर विषैला नही।
(२) घोर विषैला, मात्र विषैला नही।
(३) विषैला, घोर विषैला।
(४) न विषैला, न घोर विषैला।

---

१. अगुत्तर निकाय, भाग-२ पृ० १०८-१०६।

इसी प्रकार क्रोधी व्यक्ति भी चार प्रकार के होते हैं—

(१) शीघ्र क्रोधित, किन्तु अधिक देर नही ।

(२) शीघ्र क्रोधित नही किन्तु आने पर बहुत देर क्रोध ।

(३) शीघ्र क्रोधित एव क्रोध का समय भी लम्बा ।

(४) न शीघ्र क्रोधित, न ही अधिक समय तक क्रोध ।

जैनागमो मे क्रोध के काल की अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद वताए गए है[1]—

(१) **अनन्तानुबन्धी**—पर्वत की उस दरार के समान[2]—जो दीर्घकालपर्यन्त बनी रहती है। उसी प्रकार जो क्रोध जीवनपर्यन्त बना रहता है—वह अनन्तानुबन्धी क्रोध है। ऐसा क्रोधी कभी आराधक नही हो सकता। इसलिए सावत्सरिक प्रतिक्रमण किया जाता है—जिसमे कम से कम एक वर्ष में तो हम क्रोध के प्रसग की स्मृति को समाप्त कर दे ।

(२) **अप्रत्याख्यानी**—पृथ्वी पर बनी रेखा के समान[3] जो काफी समय तक बनी रहती है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानी क्रोध अधिक से अधिक एक वर्ष तक रहता है—उसके पश्चात् तो वह निश्चित समाप्त हो जाता है।

(३) **प्रत्याख्यानावरण**—बालू की रेखा[4]—जिस प्रकार बालू मिट्टी पर बनी रेखा (लकीर) कुछ समय बाद समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण क्रोध अधिक से अधिक चार माह तक रह सकता है। इसलिए चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किया जाता है।

(४) **सज्वलन**—जल की रेखा[5]—जिस प्रकार जल मे खीची रेखा तुरन्त समाप्त हो जाती है उसी प्रकार जो क्रोध तुरन्त शान्त हो जाता है—अधिक से अधिक १५ दिन तक रहता है—वह सज्वलन क्रोध है। इस अपेक्षा से पाक्षिक प्रतिक्रमण किया जाता है।

प्रत्येक दिवस और रात्रि को होने वाली भूल के लिए देवसी-राई प्रतिक्रमण होता है।

ये चारो भेद क्रोध की अभिव्यक्ति की अपेक्षा से नही अपितु क्रोध का प्रसग स्मृति मे कितने काल तक रहता है—इस अपेक्षा से किये गये है।

स्थानाग सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र मे क्रोध की चार अवस्थाएँ बताई गई हैं[6]—

(१) **आभोग निर्वर्तित**—बुद्धिपूर्वक किया जाने वाल क्रोध।[7] वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरि ने आभोग का अर्थ ज्ञान बताया है।[8] आचार्य मलयगिरि ने प्रज्ञापना सूत्र की टीका मे इसकी व्याख्या इस प्रकार की है।[9] जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के द्वारा किए गए अपराध को भली भाँति जान लेना है और विचार करता है कि यह अपराधी व्यक्ति नम्रतापूर्वक कहने से समझने वाला नही है। उसे क्रोधपूर्ण मुद्रा ही पाठ पढा सकती है। इस विचार से वह जानबूझ कर क्रोध करता है।

---

१ ठाण स्थान-४, उ० ३, सू० ३५४।

२ ठाण स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।

३ ठाण स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।

४ ठाण स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।

५ ठाण स्थान ४, उ० ३, सू० ३५४।

६ (अ) ठाण स्थान ४, उ० १, सू० ८८।
(ब) प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरि वृत्ति, पत्र २९१।

७ ठाण, स्थान ४, उ० १, सू० ८८।

८ स्थानाग वृत्ति, पत्र १८२।

९ प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरि वृत्ति, पत्र २९१।

(२) **अनाभोग निर्वर्तित**—अबुद्धिपूर्वक होने वाला क्रोध। आचार्य मलयगिरि के अनुसार[1]—जो मनुष्य किसी विशेष प्रयोजन के बिना, गुणदोष के विचार से शून्य होकर प्रकृति की परवशता से क्रोध करता है—वह अनाभोग निर्वर्तित है।

(३) **उपशान्त**[2]—जिस क्रोध के सस्कार तो हैं किन्तु उदय में नही है।

(४) **अनुपशान्त**[3]—क्रोध की अभिव्यक्ति।

क्रोध की अभिव्यक्ति, क्रोध की उत्पत्ति अनेक कारणो से होती है। अपने प्रति अन्याय होने पर प्रतिरोध प्रकट करने के लिए, कार्यक्षमता के अभाव मे कार्यसलग्न होने पर, शारीरिक दुर्बलता, रोग आदि की अवस्था मे, थकावट मे कार्य करना पडे, कार्य मे कोई अनावश्यक बाधा डाले तो क्रोध आने लगता है। यह तो प्रकट कारण है। वस्तुत जहाँ-जहाँ अपनी अनुकूलता, प्रियता मे बाधा उपस्थित होती है, अपना मान खण्डित होने पर, माया प्रकट होने पर तथा लोभ सन्तुप्ट न होने पर क्रोधोत्पत्ति होती है। मान, माया, लोभ कषाय कारण है तथा क्रोध कार्य है। अपनी इच्छा का अनादर, अपेक्षा उपेक्षा में परिवर्तित होने पर, विचारो मे सघर्ष होने पर क्रोध प्रकटीभूत होता है।

स्थानाग सूत्र में क्रोधोत्पत्ति के दस कारणो का कथन किया गया है[4]—इष्ट पदार्थो, इष्ट विचारो, इष्ट व्यक्तियो के सयोग मे बाधा उपस्थित करने वाले के प्रति क्रोध का उद्‌भव होता है एव अनिष्ट पदार्थो, अनिष्ट विचारो, अनिप्ट व्यक्तियो के सयोग मे कारणभूत बनने वाले के प्रति भी क्रोध उभरता है।

क्रोध की उत्पत्ति का कारण बताते हुए गीता में कहा है[5]—विषयो का चिन्तन करने वाले मनुष्य की उन विषयो मे आसक्ति उत्पन्न हो जाती है, आसक्ति से उन विषयो की प्राप्ति की कामना उत्पन्न होती है, कामना से उनकी प्राप्ति मे विघ्न उपस्थित होने पर क्रोध उत्पन्न होता है। अत क्रोध की उत्पत्ति का मूल कारण विपयो के प्रति आसक्ति है। प्राचीनतम आगम आचाराग सूत्र में तो विषयो को ही संसार कहा है।[6]

क्रोध का प्रकाशन तीव्र रोष के रूप में भी हो सकता है और कभी सामान्य खीझ और चिढ के रूप मे भी। यह कभी-कभी भय या दु ख की भावनाओ से मिश्रित ईर्ष्या में और कभी भय से मिश्रित घृणा की भावना मे भी पाया जाता है।

क्रोध की अभिव्यक्ति अनेक रूपो में होती है। सामान्यतया कभी-कभी मनुष्य अपने क्रोध को भी क्रोध नही समझ पाता है। मात्र तीव्र गुस्सा करना ही क्रोध नही है अपितु क्रोध की कई परिणतियाँ है जिसे भगवती सूत्र आदि में क्रोध का पर्यायवाची बताया है।

क्रोध के पर्याय

समवायाग सूत्र[7] एव भगवती सूत्र[8] में क्रोध के दस पर्यायवाची नामो का कथन किया गया है। जो निम्नलिखित हैं—

---

१ प्रज्ञापना, पद १४, मलयगिरि वृत्ति पत्र २९१

२ ठाणं, स्थान ४, उ० १, सू० ८८।

३. ठाण, स्थान ४, उ० १, सू० ८८।

४ ठाण, स्थान १०, सूत्र ७।

५ गीता, अ० २, श्लोक ६२।

६ आयारो, अ० १, उ० ५, सू० ९३।

७. कोहे कोवे रोसे दोसे अखमा सजलणे कलहे चडिक्के भडणे विवाए ...समवाओ, समवाय ५२, सूत्र १।

८. भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सूत्र २।

(१) क्रोध (२) कोप (३) रोष (४) दोष (५) अक्षमा (६) सज्वलन (७) कलह (८) चाण्डिक्य (९) भडन (१०) विवाद।

भगवती सूत्र के वृत्तिकार ने इनका विवेचन इस प्रकार किया है—

(१) **क्रोध**—'क्रोध परिणामजनक कर्म तत्र क्रोध '[1] क्रोध परिणामो को उत्पन्न करने वाले कर्म का सामान्य नाम क्रोध है। अन्तरग मे क्रोध के कर्मपरमाणुओ का उदय होने पर कभी-कभी व्यक्ति वाह्य निमित्त न होने पर भी अपने भावो मे क्रोध का अनुभव करता है और निमित्त मिले तो उस क्रोध को अभिव्यक्त भी कर देता है।

(२) **कोप**—वृत्तिकार के अनुसार—"कोपादयस्तु तद्विशेषा '[2] विशेष क्रोध ही कोप है। वृत्ति अनुवादक ने कोप का अर्थ इस प्रकार किया है—क्रोध के उदय को अधिक अभिव्यक्त न करना कोप है। कई व्यक्तियो का क्रोध बडवाग्नि के समान होता है—बाह्य दृष्टि से सागरवत् गभीर किन्तु अन्तरग मे ज्वाला।

अभिधान राजेन्द्र कोष मे 'कोप' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है[3]—कोप कामाग्नि से उत्पन्न होने वाली एक चित्तवृत्ति है। वह प्रणय और ईर्ष्या से उत्पन्न होती है। इसी प्रसग मे कोपकार ने साहित्य-दर्पण की व्याख्या भी प्रस्तुत की है। साहित्यदर्पण के अनुसार प्रेम की कुटिल गति के कारण जो कारण विना होता है वह कोप है।

(३) **रोष**—भगवती वृत्ति के अनुसार[4]—'रोष क्रोधस्यैवानुबन्धो'—जो क्रोध सतत् चलता रहता है, जिममे क्रोध की परम्परा वनी रहती है वह रोष है। रोष मे क्रोध का प्रसग समाप्त होने पर भी हृदय मे क्रोध की ज्वाला शान्त नही होती। अत व्यक्ति कार्य करता है किन्तु उसका कार्य ही उसके क्रोधाविष्ट होने का परिचय देता रहता है। कई व्यक्ति जोर-जोर से वस्तु फेकना, उठाना, पॉव पटक-पटक कर चलना, झनझनाहट आदि क्रियाओ से अपने क्रोध का परिचय देते रहते है।

(४) **दोष**—वृत्तिकार के अनुसार[5]—'दोष आत्मन परस्य वा दूषणमेतच्च क्रोधकार्यं द्वेषो वा प्रीतिमात्र।' स्वय को अथवा दूसरे को दूषण देना—क्रोध का कार्य है अत दोष क्रोध का समानार्थक नाम है। दोष का अपर नाम द्वेष भी है। अप्रीति परिणाम द्वेष है। क्रोधावेश मे व्यक्ति स्वय पर या दूसरे पर भयकर दूषण/लाछन लगा देता है—यह दोष है।

(५) **अक्षमा**—'अक्षमा परकृतापराध '[6]—दूसरे के अपराध को सहन न करना—अक्षमा है। प्राय व्यक्ति अपने से सत्ता, सम्पत्ति, पद मे वडे व्यक्ति के अपराध/क्रोध को चुपचाप सहन कर लेता है क्योकि जानता है कि सहने मे ही लाभ है। किन्तु अपने से निम्न वर्ग पर—वह परिवार ही अथवा भृत्यवर्ग—उनके अपराध को महन न करके उनके अपराध से भी अधिक दण्ड देता है।

---

१ भगवती सूत्र—अभयदेवसूरिवृत्ति, श १२, उ ५, सू २
२ भगवती सूत्र—अभयदेवसूरिवृत्ति, श० १२, उ० ५, सू० २
३ अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग ७, पृ. १०६
४ भगवती सूत्र—अभयदेवसूरिवृत्ति, श १२, उ. ५, सू २
५ भगवती सूत्र, श. १२, उ ५, सू २ की वृत्ति
६. भगवती सूत्र—श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति।

(६) सज्वलन—'सज्वलनो मुहुर्मुहु· क्रोधाग्निना ज्वलन'[1]—बार-बार क्रोध से प्रज्वलित होना—सज्वलन है। इस प्रसग पर सज्वलन का अर्थ सज्वलन कषाय की अपेक्षा भिन्न है। अनन्तानुबधी आदि भेदो में सज्वलन का अर्थ अल्प है। यहाँ सज्वलन का अर्थ क्रोधाग्नि का पुन-पुन भडकना है।

(७) कलह—'कलहो महता शव्देनान्योन्यमसमजस भापणमेतच्च क्रोधकार्यं।'[2]—क्रोध मे अत्यधिक एव अनुचित शव्दावली प्रयोग करना। लोक-लाजभय का अभाव, शिष्टता का अभाव, गम्भीरता का अभाव हो तो व्यक्ति कलह करने में सकोच का अनुभव नही करता। इसे सामान्य रूप से वाक्युद्ध भी कहा जाता है अर्थात् शव्दो की वौछार से जो क्रोध प्रदर्शित किया जाय—वह कलह है।

(८) चाडिक्य—'चाण्डिक्य रौद्राकारकरण एतदपि क्रोध-कार्यमेव ···।'[3] क्रोध मे भयकर रौद्ररूप धारण करना चाण्डिक्य है। भयकर क्रोध मे कई व्यक्ति इतने रौद्र, क्रूर, नृशस हो जाते है कि किसी के प्राण हरण करने मे भी नही हिचकिचाते। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जिसने एक ब्राह्मण पर क्रोध आने पर समस्त ब्राह्मणो की आँखे निकालने का आदेश दिया था। परशुराम—जिसने पृथ्वी को क्षत्रियविहीन वनाने के लिए भयंकर रक्तपात किया था। इस प्रकार के भयकर क्रोध को चाण्डिक्य कहा गया है।

(९) भडन—'भण्डन दण्डकादिभिर्युद्धमेतदपि क्रोधकार्यमेव"।'[4] दण्ड, शस्त्र आदि से युद्ध करना—भडन है।

(१०) विवाद—'विवादो विप्रतिपत्तिसमुत्थवचनानि इदमपि तत्कार्यमेवेति ·।'[5] परस्पर विरुद्ध वचनो का प्रयोग करना विवाद है।

कपायपाहुड सूत्र मे भी क्रोध के समानार्थक दस नाम दिए गए है किन्तु उसमे समवायाग सूत्र के दस पर्यायवाची नामो मे से चाण्डिक्य एव भडन भेद प्राप्त नही होते अपितु वृद्धि एव झझा नाम मिलते हैं। कपायपाहुड में क्रोध के दस पर्यायवाची नाम इस प्रकार है[6]—

(१) क्रोध (२) कोप (३) रोप (४) अक्षमा (५) संज्वलन (६) कलह (७) वृद्धि (८) झझा (९) द्वेष और (१०) विवाद।

इनमे से वृद्धि और झझा के विषय मे कषायपाहुड के वृत्ति अनुवादक का कथन इस प्रकार है[7]—

वृद्धि—वृद्धि शव्द का प्रयोग वढने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।[7] जिससे पाप, अपयश, कलह और वैर आदि वृद्धि को प्राप्त हो वह क्रोधभाव ही वृद्धि है। यहाँ क्रोध के अर्थ में वृद्धि शव्द इतना सगत प्रतीत नही होता क्योकि वृद्धि शव्द का प्रयोग क्रोध के परिणाम के रूप में हुआ है. क्रोध रूप मे नही।

---

१ भगवती सूत्र, श १२, उ ५, सू २ की वृत्ति
२ भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति
३. भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति
४ भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति
५ भगवती सूत्र, श० १२, उ० ५, सू० २ की वृत्ति
६ कोहो य कोव रोसो य अक्खम-सजलण-कलह-वड्ढी य।
झझा दोस विवादो दस कोहेयट्ठिया होंति ॥
(क० चू०, अ० ९, गा० ८६)
७ क० चू०, अ० ९, गा० ८६ का अनुवाद

झझा—अत्यन्त तीव्र सक्लेश परिणाम को झझा कहते है।[1] आचाराग सूत्र मे झझा शब्द का प्रयोग व्याकुलता के अर्थ मे किया है।[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने क्रोध के कुछ अन्य रूपो की भी व्याख्या की है[3]—

(१) चिडचिडाहट—क्रोध का एक सामान्य रूप है—चिडचिडाहट। जिसकी व्यजना प्राय शब्दो तक ही रहती है। कभी-कभी चित्त व्यग्र रहने, किसी प्रवृत्ति मे बाधा पडने पर या किसी बात की मनोनुकूल सुविधा न मिलने के कारण चिडचिडाहट आ जाती है।

स्वय को बुद्धि, सत्ता, सम्पत्ति मे अधिक मानने वाला, स्वय को व्यस्त और दूसरे को व्यर्थ मानने वाला भी प्राय चिडचिडाहट से उत्तर देता है।

(२) अमर्ष—किसी बात का बुरा लगना, उसकी असाध्यता का क्षोभयुक्त और आवेगपूर्ण अनुभव होना अमर्ष कहलाता है। क्रोध की अवस्था मे मनुष्य दु ख पहुँचाने वाले पात्र की ओर ही उन्मुख रहता है। उसी को भयभीत या पीडित करने की चेष्टा मे प्रवृत्त रहता है। क्रोध एव भय मे यह अन्तर है[4] कि क्रोध दु ख के कारण पर प्रभाव डालने के लिए आकुल रहता है और भय उसकी पहुँच से वाहर होने के लिए।

अमर्ष मे दु ख पहुँचाने वाली बात के पक्षो की ओर तथा उसकी असह्यता पर विशेष ध्यान रहता है। झल्लाहट, क्षोभ आदि भी क्रोध के ही रूप हैं। जब किसी की कोई वात या काम पसन्द नही आता है और वह वात वार-वार सामने आती है तो झल्लाहट उत्पन्न हो जाती है—जो क्रोध का ही एक रूप है। अपनी गलती पर मन का परेशान होना भी क्षोभ है।

क्रोध के परिणाम—सर्वप्रथम तो क्रोधी व्यक्ति की आकृति ही भयकर एव वीभत्स हो जाती है। शारीरिक एव मानसिक सन्तुलन अव्यवस्थित हो जाता है। आकृति पर अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है जैसे मुख तमतमाना, आखे लाल होना, होठ फडफडाना, नथुने फूलना, जिह्वा लडखडाना, वाक्य व्यवस्था अव्यवस्थित होना।

क्रोध को अग्नि की उपमा देते हुए हेमचन्द्राचार्य ने कहा है[5] कि क्रोध सर्वप्रथम अपने आश्रय-स्थान को जलाता है—बाद मे अग्नि की तरह दूसरे को जलाए या न जलाए। क्रोध के विषय मे ज्ञानार्णव मे शुभचन्द्राचार्य ने भी इसी प्रकार विवेचन किया है।[6] यह निश्चित है कि क्रोधी व्यक्ति दूसरे का अनिष्ट कर सके या नही पर स्वय के लिए शत्रु सिद्ध होता है। शारीरिक दृष्टि से उसकी शक्ति क्षय होती है और अनेकानेक रोगो का जन्म होता है।

आज मनोविज्ञान और औषधि विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है[7] कि क्रोध की स्थिति में थाइराइड

---

१ क० चू०, अ० ६, गा० ८६ का अनुवाद
२ आयारो, अ० ३, उ० ३, सू० ६९
३ चिन्तामणि, भाग-२, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १३९
४ चिन्तामणि भाग २, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १२५
५ योगशास्त्र, हेमचन्द्राचार्य प्रकाश ४, गा० १०
६ ज्ञानार्णव, शुभचन्द्राचार्य, सर्ग १९, गा० ६
७ (अ) शारीरिक मनोविज्ञान, ओझा एव भार्गव, पृ० २१९
(ब) सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, डा० रामनाथ शर्मा, पृ० २४०-२४१

ग्रन्थि ठीक से कार्य नही करती। एड्रीनल मैड्यूला ग्रन्थि ऐड्रीनेलिन हारमोन को रुधिर धारा मे मिलाती है। स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र हृदयगति, रक्तप्रवाह, रक्तचाप तथा नाडी की गति मे वृद्धि कर देता है, पाचनक्रिया मे विघटन डालता है, रुधिर के दवाव को वढाता है। इस प्रकार क्रोध से पेप्टिक अल्सर, हृदयरोग, उच्च रक्तचाप आदि अनेक रोग होते हैं।

क्रोधी व्यक्ति का परिवार में आतक वना रहता है, भयजनक वातावरण रहता है—उसके प्रति स्नेह और प्रेम का ह्रास हो जाता है। परिवार मे अनुशासन आवश्यक है—आतक नही। समाज मे क्रोधी व्यक्ति सम्मान का पात्र नही वन पाता। ऐसा व्यक्ति क्रोध करके अपने ही किए कार्यो पर पानी फेर देता है। अत क्रोध शरीर, परिवार और समाज की दृष्टि मे उचित नही—यह सत्य है किन्तु विशेष रूप से आत्मिक दृष्टि से वह अत्यन्त हानि को प्राप्त होता है।

हेमचन्द्राचार्य ने कहा है[1]—क्रोध शरीर और मन को सताप देता है, क्रोध वैर का कारण है, क्रोध दुर्गति की पगडण्डी है और क्रोध परम सुख को रोकने के लिए अर्गला समान है। क्रोध व्यक्ति की शान्ति को भग कर देता है, हृदय व्याकुल कर देता है, मन क्षुब्ध वना देता है, और आत्मा मे कर्म कालुष्य की वृद्धि कर जन्म-मरण का कारण वनता है।

क्रोध के प्रसग मे क्रोध को न आने देने के लिए कुछ चिन्तन सूत्र उपयोगी है—

(१) क्रोध द्वारा होने वाली हानियो पर दृष्टि
(२) स्वय के दोष देखने का प्रयास
(३) दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न
(४) स्थान परिवर्तन
(५) चिन्तन शैली में परिवर्तन
(६) अल्प अपेक्षाएँ
(७) अहकार को प्रवल होने से रोकना

यदि व्यक्ति प्रयास करे तो वह अपनी वृत्तियो पर नियन्त्रण कर सकता है। ध्यान रखे—

क्रोध प्राणियो के अन्तरग एव वाह्य को अनेक प्रकार से जलाता है अत वह एक अपूर्व अग्नि है। अग्नि मात्र वाह्य को जलाती है किन्तु यह अन्तरग को भी जलाता है। बुद्धिमानो की भी चक्षु सम्वन्धी और मानसिक दोनो ही दृष्टियो का एक साथ उपघात करने से क्रोध कोई एक अपूर्व अन्धकार है, क्योकि अन्धकार तो केवल वाह्य दृष्टि का ही उपघातक होता है। जन्म-जन्म मे निर्लज्ज होकर अनिष्ट करने वाला होने से क्रोध कोई एक अपूर्व ग्रह या भूत है, क्योकि भूत तो एक ही जन्म मे अनिष्ट करता है। उस क्रोध का विनाश करने के लिए क्षमादेवी की आराधना करनी चाहिए।[2]

卐 卐

---

१ योगशास्त्र, हेमचन्द्राचार्य, प्रकाश ४, गा० ९
२ अनगार धर्मामृत, अ० ६, श्लोक ४

जैन कला में तीर्थङ्करों का वीतरागी स्वरूप

—डा. मारुतिनन्दन तिवारी,
—डा. चन्द्रदेव सिंह

[कला इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी—२२१००५ (उ० प्र०)]

जैन कला और स्थापत्य पर डा० यू० पी० शाह प्रभृति विद्वानो ने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ एव लेख प्रकाशित किये है, जिनमे जैन कला के विविध पक्षो की सुन्दर विवेचना और वर्णन मिलते हैं। किन्तु जैन कला मे जैन तीर्थंकरो या जिनो के विषय मे अध्ययन मुख्यत लक्षणपरक रहे है। प्रस्तुत लेख मे हम जैन तीर्थकरो के वीतरागी स्वरूप तथा कला मे उसकी अभिव्यक्ति की चर्चा करेगे।

जैन देवकुल मे वर्तमान अवसर्पिणी युग के २४ तीर्थकरो को सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है, जिन्हे हेमचन्द्र (१२वी शती ई०) ने 'देवाधिदेव' भी कहा है। तीर्थंकरो के मुख्य आराध्य देव होने के कारण सर्वप्रथम कला मे तीर्थकरो की ही मूर्तियाँ बनी। कुछ विद्वान हड़प्पा से प्राप्त नग्न कवन्ध (लगभग २३०० ई० पू०) को तीर्थकर मानते है, जिनमे टी० एन० रामचन्द्रन एव रामप्रसाद चन्दा मुख्य हैं। सिन्धु सभ्यता की लिपि के अन्तिम रूप से अभी तक न पढे जा सकने की स्थिति मे यद्यपि हड़प्पा की मूर्ति का तीर्थकर मूर्ति होना सदेहास्पद हो सकता है किन्तु मूर्ति की नग्नता और उसके खडे होने की कायोत्सर्ग-जैसी मुद्रा किसी न किसी रूप मे ऐसे योगी मूर्तियो के निर्माण और पूजन की परम्परा को अवश्य प्रमाणित करती है जो कालान्तर मे केवल तीर्थंकर मूर्तियो की ही अभिन्न विशेपताएँ रही है। पटना के समीप लोहानीपुर से प्राप्त मौर्यकालीन चमकदार आलेप से युक्त मूर्ति नि सन्देह तीसरी शताब्दी ई० पू० मे तीर्थकर मूर्तियो के निर्माण और पूजन की स्पष्ट साक्षी हैं[1]। शुग काल मे मथुरा और चौसा (भोजपुर, बिहार) जैसे स्थलो पर तीर्थंकरो की मूर्तियाँ बनी। बौद्ध परम्परा के समान जैनपरम्परा मे महावीर या किसी पूर्ववर्ती तीर्थकर ने अपनी मूर्ति निर्माण का निषेध नही किया था। इससे बुद्ध के पूर्व ही तीर्थंकर मूर्तियो के निर्माण का मार्ग जैन धर्मानुयायियो के लिए प्रशस्त था। वसुदेवहिण्डी (छठी शती ई०) तथा अन्य कई प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो सहित हेमचन्द्र कृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (१२वी शती ई०) मे हमे महावीर के जीवन काल मे ही जीवन्तस्वामी स्वरूप मे उनकी प्रतिमा के निर्माण और पूजन के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। जीवन्तस्वामी मूर्तियो के प्राचीनतम उदाहरण भी गुजरात मे अकोटा से प्राप्त हुए हैं।[2] इन गुप्तकालीन मूर्तियो के पीठिका लेख मे स्पष्टत 'जीवितस्वामी' नाम मिलता है।

महावीर स्वामी की ध्यानस्थ मुद्रा लगभग छठी शती ई। सम्प्रति भारत कला भवन वाराणसी B H U (क्रमांक १६१) चित्र भारत कला भवन के सौजन्य से प्राप्त
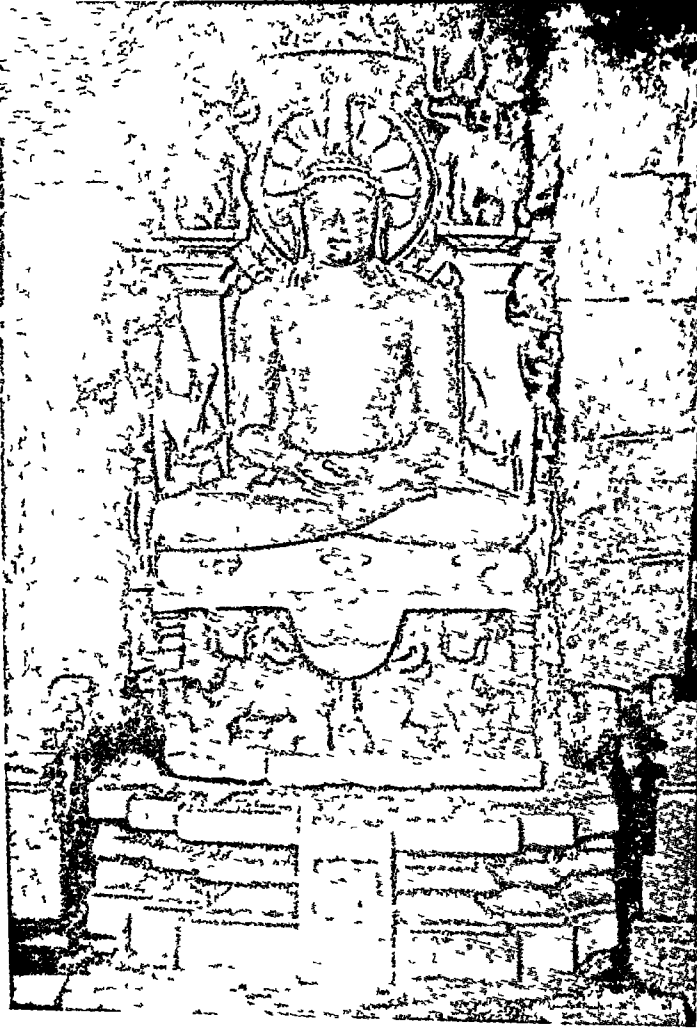
ऋषभनाथ भगवान (ध्यानस्थ मुद्रा) पश्चिमी देवालय पार्श्वनाथ मन्दिर खजुराहो (म प्र) लगभग १०वी ई शती ।
(चित्र—लेखक के सग्रह से)

कुषाण काल मे मथुरा में भागवत सम्प्रदाय के भक्ति आन्दोलन के प्रभाव के कारण पहली बार प्रचुर सख्या मे तीर्थंकर मूर्तियो का निर्माण प्रारम्भ हुआ और तीर्थंकर मूर्तियो के कई लक्षण भी सर्वप्रथम स्थिर हुए। कुषाण काल मे ऋषभनाथ, सम्भवनाथ मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर (वर्धमान) की कई मूर्तियाँ बनी। इन मूर्तियो में सर्वप्रथम वक्षस्थल मे श्रीवत्स चिन्ह के अकन की परम्परा प्रारम्भ हुई जिनके आधार पर सरलता से तीर्थंकर और बुद्ध मूर्तियो के बीच अन्तर किया जा सकता है। तीर्थंकर मूर्तियाँ केवल दो ही मुद्राओ—ध्यानस्थ या पद्मासन मे बैठी और कायोत्सर्ग या खड्गासन मे खडी रूप मे बनी (चित्र २-३)। ये दोनो ही मुद्राये योगी की चिन्तन-ध्यान की विशिष्ट मुद्राये है। आगे की शताब्दियो में भी तीर्थंकर मूर्तियो का निर्माण इन्ही दो मुद्राओ मे हुआ।

कुषाण काल मे तीर्थंकर मूर्तियो मे अष्टप्रातिहार्यो मे से लगभग सात प्रातिहार्यो (सिहासन, चामरधारी सेवक, प्रभामण्डल, अशोक वृक्ष, मालाधारी गन्धर्व आदि) का अकन हुआ। तीर्थंकर मूर्तियो में सभी अष्ट-प्रातिहार्यो का अकन गुप्तकाल मे प्रारम्भ हुआ। गुप्तकाल में ही तीर्थंकर मूर्तियो के साथ शासन देवता या उपासक देवो के रूप मे यक्ष-यक्षी को सश्लिष्ट किया गया और तीर्थंकरो के स्वतन्त्र लाछन भी दिखाये गये। मथुरा, अकोटा (ऋषभनाथ को कुबेर यक्ष और अम्बिका यक्षी के साथ) राजगिर, वाराणसी (चित्र १) विदिशा (दुर्जनपुर, म० प्र०)[3], बादामी एव अयहोल (कर्नाटक)[4] से छठी-सातवी शती ई० की अनेक तीर्थंकर मूर्तियाँ मिली है।

आठवी से तेरहवी शती ई० के मध्य की अनेक तीर्थंकर मूर्तियाँ श्वेताम्बर एव दिगम्बर स्थलो—देवगढ, खुजराहो (चित्र २), शहडोल, मथुरा, राजगिर, खण्डगिरि, कुभारिया, ओसिया, आबू, तारगा, घणेराव, जालोर, हुम्चा, अर्सिकेरी, हलेबिड, तिरुमरुत्तिकुणरम एव एलोरा आदि से प्राप्त हुई है। जिनमे प्रतिमालक्षण की दृष्टि से तीर्थंकर मूर्तियो का पूर्ण विकसित स्वरूप मिलता है। यक्ष-यक्षी, अष्टप्रातिहार्यो एव स्वतन्त्र लाछनो से युक्त मध्यकालीन तीर्थंकर मूर्तियो मे नवग्रह, सरस्वती, लक्ष्मी तथा कुछ अन्य देवी-देवताओ का अकन भी मिलता है।

जैन धर्म प्रारम्भ से ही अत्यन्त उदार और समन्वयवादी रहा है जो न केवल राम और कृष्ण जैसे लोक चरित्रो के जैन देवकुल मे समाविष्ट किये जाने से स्पष्ट है वरन् इससे सम्बन्धित स्वतन्त्र ग्रन्थो की रचना से भी स्पष्ट है जिनमे रामचरित्र से सम्बन्धित **पउमचरिय** (विमलसूरि कृत, ४७३ ई०) एव कृष्ण चरित्र से सम्बन्धित **हरिवश पुराण** (जिनसेनकृत—७८३ ई०) मुख्य है। समन्वयवादी प्रवृत्ति के कारण ही जैन धर्माचार्यो ने ६३ शलाका पुरुषो की सूची मे २४ तीर्थंकरो के अतिरिक्त बलराम, कृष्ण, राम, भरत चक्रवर्ती, लक्ष्मण, बलि, निशम्भु, मधुकैटभ, प्रह्लाद, रावण और जरासन्ध को भी चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव के रूप में सम्मिलित किया। तीर्थंकरो के यक्ष-यक्षी अधिकाशत ब्राह्मण देवी-देवताओ से सम्बन्धित है जिनके माध्यम से जैनो ने ब्राह्मण देवो पर तीर्थंकरो की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। किन्तु यह श्रेष्ठता बौद्ध धर्म के ब्राह्मण देवो के प्रति अपमानजनक स्वरूप से सर्वथा भिन्न रही है। ज्ञातव्य है कि बौद्धो द्वारा ब्राह्मण देवी-देवताओ मे से अनेकश ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश और शक्ति को अपने पैरो के नीचे अपमानजनक स्थिति मे दिखाया गया है। समय के साथ चलने और अपने धर्म को लोकप्रिय बनाये रखने की प्रवृत्ति के कारण समन्वयवादी धारणा की पराकाष्ठा जिनसेन कृत हरिवश पुराण के सन्दर्भ से पूरी तरह स्पष्ट है जिसमे जिनमन्दिर मे कामदेव और रति की मूर्तियो के निर्माण की सस्तुति की गई है।[5] हरिवशपुराण मे जिनमन्दिरो मे सम्पूर्ण प्रजा के कौतुक के लिए कामदेव और रति की मूर्तियाँ बनवाने और मन्दिर कामदेव के नाम से प्रसिद्ध होने के उल्लेख है।

ऋषभनाथ के यक्ष-पक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी स्पष्टत शिव और विष्णु की शक्ति वैष्णवी के प्रभाव से युक्त है। श्रेयासनाथ के यक्ष-यक्षी ईश्वर और गौरी है। इनके अतिरिक्त गरुड, वरुण, कुमार, गौरी, काली, महाकाली, नामो वाले यक्ष-यक्षी के साथ ही विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, कार्तिकेय जैसे ब्राह्मण देवो का भी स्पष्ट प्रभाव यक्ष-यक्षी के निरूपण में उनके नामो एव लक्षणो के सन्दर्भ मे देखा जा सकता है।

समन्वयवादी और समय के अनुरूप परिवर्तन को स्वीकार करने की उपर्युक्त प्रवृत्ति के साथ ही जैनधर्म मे कुछ निजी विशेषताएँ भी रही है। एक ओर जैनधर्म मे सभी प्रकार के परिवर्तनो को स्वीकार किया गया, किन्तु दूसरी ओर मुख्य आराध्यदेव तीर्थंकरो के मूल स्वरूप के साथ किसी भी प्रकार के शिथिलन को कभी भी स्वीकार नही किया गया। तीर्थंकर वीतरागी होते है जिनकी उपासना से भौतिक समृद्धि की प्राप्ति सम्भव नही थी। सामान्य जनो को जैन धर्म मे बनाये रखने के लिए तथा भौतिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति के लिए तीर्थंकरो के साथ शासन देवी-देवताओ के रूप मे यक्ष-यक्षी को सश्लिष्ट किया गया जिनसे सभी प्रकार की भौतिक जगत की इच्छित वस्तुए प्राप्त की जा सकती थी। किन्तु तीर्थंकरो के वीतरागी और सासारिक कर्मो के मुक्तिदायी स्वरूप मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही किया गया। दूसरी ओर जब हम बौद्ध धर्म की ओर दृष्टि डालते है तो बुद्ध का भी प्रारम्भ मे मौलिक स्वरूप तीर्थंकरो के समान ही वीतरागी रहा है, जिन्हे कालान्तर मे विभिन्न भौतिक उपलब्धियो को देने वाले देवता के रूप मे परिवर्तित किया गया। यह बात अभय और वरद मुद्राओ मे बुद्ध को दिखाये जाने से पूरी तरह स्पष्ट है, जिसका अभिप्रेत बुद्ध से अभयदान और वरदान प्राप्त करना था। यही नही, बुद्ध ने समय-समय पर अन्य आचार्यो एव देवताओ की भाँति विभिन्न प्रकार के चमत्कारो द्वारा भी अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन किया था।

केवल जैन धर्म मे ही सारे परिवर्तनो की स्वीकृति के बाद भी तीर्थंकरो के मूल वीतरागी स्वरूप को कभी भी नही छेडा गया। यही कारण है कि तीर्थंकरो को न तो कभी अभयदान और न ही वरदान की मुद्रा मे दिखाया गया। साथ ही कमठ (शम्बर) द्वारा पार्श्वनाथ की तपस्या के समय उपस्थित किये गये विभिन्न उपसर्गो (विघ्नो) और महावीर की तपस्या मे शूलपाणि यक्ष और सगमदेव द्वारा उपस्थित उपसर्गो के समय भी इन तीर्थंकरो द्वारा किसी प्रकार का कोई चमत्कार नही किया गया। पार्श्वनाथ और महावीर दोनो ही शान्त भाव से यातनाओ को सहते हुये ध्यानरत रहे। पार्श्वनाथ के उपसर्गो के समय स्वय नागराज धरणेन्द्र को उपस्थित होकर उनकी रक्षा करनी पडी थी। इसका कदापि यह अर्थ नही है कि ये तीर्थंकर अलौकिक शक्तियो या चमत्कारो से रहित थे, बल्कि अपने वीतरागी स्वभाव के कारण ही ये उनसे विरत रहकर शान्त बने रहे। २२वे तीर्थंकर नेमिनाथ के ससार त्याग कर दीक्षा लेने का प्रसग भी जैन धर्म की इसी मूलभूत प्रवृत्ति को उजागर करता है। अपने विवाह के अवसर पर दिये जाने वाले भोज के लिए रखे गये पशुओ को देखकर उनके मन मे विरक्ति का भाव उत्पन्न हुआ और उन्होने विना विवाह किये ही वापस लौटकर दीक्षा ग्रहण की। यह बात अहिंसा के प्रति जैन धर्म की अटूट निष्ठा को व्यक्त करती है। ऋषभनाथ के पुत्रो—भरत चक्रवर्ती और बाहुवली के युद्ध के समय सैन्य युद्ध के स्थान पर अनावश्यक नरसहार को रोकने के लिए उनके द्वन्द्व युद्ध का निर्णय भी अहिसा की मानसिकता का चरम विन्दु दरशाता है। वाहुवली तीर्थंकर न होते हुए भी विजय के क्षणो मे ससार त्याग कर दीक्षा ग्रहण करते हैं, और अत्यधिक कठिन साधना और तपश्चर्या द्वारा कैवल्य प्राप्त करते है। तपस्या के समय उनके शरीर से लता-वल्लरि के लिपटने के साथ ही वृश्चिक एव सर्प

जैसे जन्तु भी उनके शरीर पर निर्विघ्न बने रहे। इस कठिन साधना के कारण ही जैन धर्म में उन्हें आगे चलकर तीर्थंकर जैसा महत्व दिया गया जो देवगढ़ एवं खजुराहो की मूर्तियों से पूरी तरह स्पष्ट है। भारत की विशालतम धार्मिक प्रतिमा (१०वीं शती ई०) के रूप में श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) में गोम्मटेश्वर बाहुबली की ५७ फुट ऊँची प्रतिमा का निर्माण हुआ जो बाहुबली के प्रबल वीतरागी स्वरूप का प्रतिफल था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैन धर्म में सारे परिवर्तनों के बावजूद तीर्थंकरों के वीतरागी स्वरूप को पूरी तरह बरकरार रखा गया। यही कारण है कि तीर्थंकर मूर्तियाँ केवल योग और ध्यान की मुद्राओं—ध्यान एवं कायोत्सर्ग में ही बनीं। यह विशेषता जैन धर्म की मौलिक विशेषता रही है।

सन्दर्भ :

१. जायसवाल के० पी० "जैन इमेज आफ मौर्य पीरियड" जर्नल आफ बिहार, उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, खण्ड २३, भाग १, १९३७ पृ १३०-३२
२. शाह यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज बम्बई, १९५९, पृ० २८-२९
३. विदिशा से चौथी शती ई० की चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त के नामों वाली महाराजाधिराज रामगुप्त के काल की मूर्तियाँ मिली हैं।
४ चौसा एवं अकोला से पार्श्वनाथ, महावीर तथा बाहुबली गोम्मटेश्वर की छठी-सातवीं शती ई० की मूर्तियाँ मिली हैं।
५ हरिवंश पुराण—२९-१-५.

● ●

मोती पाने के लिए तो समुद्र की गहराई में उतरना ही पड़ता है। लहरों के साथ सतही तौर पर कलाबाजियाँ खाने या गोते लगाने से मोती नहीं मिल जाते। अन्दर डुबकी लगानी पड़ती है तब कहीं जाकर मोती हाथ लगते हैं। हमें आत्मा के अक्षय खजाने को, आत्मा की स्वच्छ छवि को पाने के लिए तो गहराई में उतरना होगा। जिस क्षण हम वासना और चाह से ऊपर उठ जायेंगे उसी दिन से सत्य का साक्षात्कार प्रारम्भ हो जायेगा।

—आचार्यश्री जिनकान्तिसागर जी

● ●

ऋषभनाथ के यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी स्पष्टत शिव और विष्णु की शक्ति वैष्णवी के प्रभाव से युक्त हैं। श्रेयासनाथ के यक्ष-यक्षी ईश्वर और गौरी है। इनके अतिरिक्त गरुड, वरुण, कुमार, गौरी, काली, महाकाली, नामो वाले यक्ष-यक्षी के साथ ही विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, कार्तिकेय जैसे ब्राह्मण देवो का भी स्पष्ट प्रभाव यक्ष-यक्षी के निरूपण में उनके नामो एव लक्षणो के सन्दर्भ मे देखा जा सकता हैं।

समन्वयवादी और समय के अनुरूप परिवर्तन को स्वीकार करने की उपर्युक्त प्रवृत्ति के साथ ही जैनधर्म मे कुछ निजी विशेषताएँ भी रही है। एक ओर जैनधर्म मे सभी प्रकार के परिवर्तनो को स्वीकार किया गया, किन्तु दूसरी ओर मुख्य आराध्यदेव तीर्थंकरो के मूल स्वरूप के साथ किसी भी प्रकार के शिथिलन को कभी भी स्वीकार नही किया गया। तीर्थंकर वीतरागी होते है जिनकी उपासना से भौतिक समृद्धि की प्राप्ति सम्भव नही थी। सामान्य जनो को जैन धर्म मे बनाये रखने के लिए तथा भौतिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति के लिए तीर्थंकरो के साथ शासन देवी-देवताओ के रूप मे यक्ष-यक्षी को सश्लिष्ट किया गया जिनसे सभी प्रकार की भौतिक जगत की इच्छित वस्तुए प्राप्त की जा सकती थी। किन्तु तीर्थंकरो के वीतरागी और सासारिक कर्मो के मुक्तिदायी स्वरूप मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही किया गया। दूसरी ओर जब हम बौद्ध धर्म की ओर दृष्टि डालते है तो बुद्ध का भी प्रारम्भ मे मौलिक स्वरूप तीर्थंकरो के समान ही वीतरागी रहा है, जिन्हे कालान्तर मे विभिन्न भौतिक उपलब्धियो को देने वाले देवता के रूप मे परिवर्तित किया गया। यह बात अभय और वरद मुद्राओ मे बुद्ध को दिखाये जाने से पूरी तरह स्पष्ट है, जिसका अभिप्रेत बुद्ध से अभयदान और वरदान प्राप्त करना था। यही नही, बुद्ध ने समय-समय पर अन्य आचार्यो एव देवताओ की भाँति विभिन्न प्रकार के चमत्कारो द्वारा भी अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन किया था।

केवल जैन धर्म मे ही सारे परिवर्तनो की स्वीकृति के बाद भी तीर्थकरो के मूल वीतरागी स्वरूप को कभी भी नही छेडा गया। यही कारण है कि तीर्थंकरो को न तो कभी अभयदान और न ही वरदान की मुद्रा मे दिखाया गया। साथ ही कमठ (शम्बर) द्वारा पार्श्वनाथ की तपस्या के समय उपस्थित किये गये विभिन्न उपसर्गो (विघ्नो) और महावीर की तपस्या मे शूलपाणि यक्ष और सगमदेव द्वारा उपस्थित उपसर्गों के समय भी इन तीर्थंकरो द्वारा किसी प्रकार का कोई चमत्कार नही किया गया। पार्श्वनाथ और महावीर दोनो ही शान्त भाव से यातनाओ को सहते हुये ध्यानरत रहे। पार्श्वनाथ के उपसर्गों के समय स्वय नागराज धरणेन्द्र को उपस्थित होकर उनकी रक्षा करनी पडी थी। इसका कदापि यह अर्थ नही है कि ये तीर्थंकर अलौकिक शक्तियो या चमत्कारो से रहित थे, बल्कि अपने वीतरागी स्वभाव के कारण ही ये उनसे विरत रहकर शान्त बने रहे। २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ के ससार त्याग कर दीक्षा लेने का प्रसग भी जैन धर्म की इसी मूलभूत प्रवृत्ति को उजागर करता है। अपने विवाह के अवसर पर दिये जाने वाले भोज के लिए रखे गये पशुओ को देखकर उनके मन मे विरक्ति का भाव उत्पन्न हुआ और उन्होने विना विवाह किये ही वापस लौटकर दीक्षा ग्रहण की। यह बात अहिसा के प्रति जैन धर्म की अटूट निष्ठा को व्यक्त करती है। ऋषभनाथ के पुत्रो—भरत चक्रवर्ती और बाहुबली के युद्ध के समय सैन्य युद्ध के स्थान पर अनावश्यक नरसहार को रोकने के लिए उनके द्वन्द्व युद्ध का निर्णय भी अहिसा की मानसिकता का चरम विन्दु दरशाता है। बाहुबली तीर्थंकर न होते हुए भी विजय के क्षणो मे ससार त्याग कर दीक्षा ग्रहण करते है, और अत्यधिक कठिन साधना और तपश्चर्या द्वारा कैवल्य प्राप्त करते है। तपस्या के समय उनके शरीर से लता-वल्लरि के लिपटने के साथ ही वृश्चिक एव सर्प

जैसे जन्तु भी उनके शरीर पर निर्विघ्न बने रहे। इस कठिन साधना के कारण ही जैन धर्म मे उन्हे आगे चलकर तीर्थंकर जैसा महत्व दिया गया जो देवगढ एव खजुराहो की मूर्तियो से पूरी तरह स्पष्ट है। भारत की विशालतम धार्मिक प्रतिमा (१०वी शती ई०) के रूप मे श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) मे गोम्मटेश्वर बाहुबली की ५७ फुट ऊँची प्रतिमा का निर्माण हुआ जो बाहुबली के प्रबल वीतरागी स्वरूप का प्रतिफल था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैन धर्म मे सारे परिवर्तनो के बावजूद तीर्थंकरो के वीतरागी स्वरूप को पूरी तरह बरकरार रखा गया। यही कारण है कि तीर्थंकर मूर्तियाँ केवल योग और ध्यान की मुद्राओ —ध्यान एव कायोत्सर्ग मे ही बनी। यह विशेषता जैन धर्म की मौलिक विशेषता रही है।

सन्दर्भ

१. जायसवाल के० पी० "जैन इमेज आफ मौर्य पीरियड" जर्नल आफ बिहार, उडीसा रिसर्च-सोसायटी, खण्ड २३, भाग १, १९३७ पृ १३०-३२

२ शाह यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज बम्बई, १९५९, पृ० २८-२९

३ विदिशा से चौथी शती ई० की चन्द्रप्रभु और पुष्पदन्त के नामो वाली महाराजाधिराज रामगुप्त के काल की मूर्तियाँ मिली है।

४ बदामी एव अयहोल से पार्श्वनाथ, महावीर तथा बाहुबली गोम्मटेश्वर की छटी-सातवी शती ई० की मूर्तिया मिली है।

५ हरिवश पुराण—२९-१-५

● ●

मोती पाने के लिए तो समुद्र की गहराई मे उतरना ही पडता है। लहरो के साथ सतही तौर पर कलाबाजियाँ खाने या गोते लगाने से मोती नही मिल जाते। अन्दर डुबकी लगानी पडती है तब कही जाकर मोती हाथ लगते है। हमे आत्मा के अक्षय खजाने को, आत्मा की स्वच्छ छवि को पाने के लिए तो गहराई मे उतरना होगा। जिस क्षण हम वासना और चाह से ऊपर उठ जायेगे उसी दिन से सत्य का साक्षात्कार प्रारम्भ हो जायेगा।

—आचार्यश्री जिनकान्तिसागर जी

● ●

ऋषभनाथ के यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी स्पष्टत शिव और विष्णु की शक्ति वैष्णवी के प्रभाव से युक्त है। श्रेयासनाथ के यक्ष-यक्षी ईश्वर और गौरी है। इनके अतिरिक्त गरुड, वरुण, कुमार, गौरी, काली, महाकाली, नामो वाले यक्ष-यक्षी के साथ ही विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, कार्तिकेय जैसे ब्राह्मण देवो का भी स्पष्ट प्रभाव यक्ष-यक्षी के निरूपण मे उनके नामो एव लक्षणो के सन्दर्भ मे देखा जा सकता है।

समन्वयवादी और समय के अनुरूप परिवर्तन को स्वीकार करने की उपर्युक्त प्रवृत्ति के साथ ही जैनधर्म मे कुछ निजी विशेषताएँ भी रही है। एक ओर जैनधर्म मे सभी प्रकार के परिवर्तनो को स्वीकार किया गया, किन्तु दूसरी ओर मुख्य आराध्यदेव तीर्थकरो के मूल स्वरूप के साथ किसी भी प्रकार के शिथिलन को कभी भी स्वीकार नही किया गया। तीर्थंकर वीतरागी होते है जिनकी उपासना से भौतिक समृद्धि की प्राप्ति सम्भव नही थी। सामान्य जनो को जैन धर्म मे वनाये रखने के लिए तथा भौतिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति के लिए तीर्थकरो के साथ शासन देवी-देवताओ के रूप मे यक्ष-यक्षी को सश्लिष्ट किया गया जिनसे सभी प्रकार की भौतिक जगत की इच्छित वस्तुए प्राप्त की जा सकती थी। किन्तु तीर्थकरो के वीतरागी और सासारिक कर्मो के मुक्तिदायी स्वरूप मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही किया गया। दूसरी ओर जव हम बौद्ध धर्म की ओर दृष्टि डालते है तो बुद्ध का भी प्रारम्भ मे मौलिक स्वरूप तीर्थकरो के समान ही वीतरागी रहा है, जिन्हे कालान्तर मे विभिन्न भौतिक उपलब्धियो को देने वाले देवता के रूप मे परिवर्तित किया गया। यह वात अभय और वरद मुद्राओ मे बुद्ध को दिखाये जाने से पूरी तरह स्पष्ट है, जिसका अभिप्रेत बुद्ध से अभयदान और वरदान प्राप्त करना था। यही नही, बुद्ध ने समय-समय पर अन्य आचार्यो एव देवताओ की भाँति विभिन्न प्रकार के चमत्कारो द्वारा भी अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन किया था।

केवल जैन धर्म मे ही सारे परिवर्तनो की स्वीकृति के बाद भी तीर्थंकरो के मूल वीतरागी स्वरूप को कभी भी नही छेडा गया। यही कारण है कि तीर्थंकरो को न तो कभी अभयदान और न ही वरदान की मुद्रा मे दिखाया गया। साथ ही कमठ (शम्वर) द्वारा पार्श्वनाथ की तपस्या के समय उपस्थित किये गये विभिन्न उपसर्गो (विघ्नो) और महावीर की तपस्या मे शूलपाणि यक्ष और सगमदेव द्वारा उपस्थित उपसर्गो के समय भी इन तीर्थकरो द्वारा किसी प्रकार का कोई चमत्कार नही किया गया। पार्श्वनाथ और महावीर दोनो ही शान्त भाव से यातनाओ को सहते हुये ध्यानरत रहे। पार्श्वनाथ के उपसर्गो के समय स्वय नागराज धरणेन्द्र को उपस्थित होकर उनकी रक्षा करनी पडी थी। इसका कदापि यह अर्थ नही है कि ये तीर्थंकर अलौकिक शक्तियो या चमत्कारो से रहित थे, बल्कि अपने वीतरागी स्वभाव के कारण ही ये उनसे विरत रहकर शान्त बने रहे। २२वे तीर्थंकर नेमिनाथ के ससार त्याग कर दीक्षा लेने का प्रसग भी जैन धर्म की इसी मूलभूत प्रवृत्ति को उजागर करता है। अपने विवाह के अवसर पर दिये जाने वाले भोज के लिए रखे गये पशुओ को देखकर उनके मन मे विरक्ति का भाव उत्पन्न हुआ और उन्होने विना विवाह किये ही वापस लौटकर दीक्षा ग्रहण की। यह वात अहिंसा के प्रति जैन धर्म की अटूट निष्ठा को व्यक्त करती है। ऋषभनाथ के पुत्रो—भरत चक्रवर्ती और बाहुवली के युद्ध के समय सैन्य युद्ध के स्थान पर अनावश्यक नरसहार को रोकने के लिए उनके द्वन्द्व युद्ध का निर्णय भी अहिंसा की मानसिकता का चरम विन्दु दरशाता है। वाहुवली तीर्थंकर न होते हुए भी विजय के क्षणो मे ससार त्याग कर दीक्षा ग्रहण करते है, और अत्यधिक कठिन साधना और तपश्चर्या द्वारा कैवल्य प्राप्त करते हैं। तपस्या के समय उनके शरीर से लता-वल्लरि के लिपटने के साथ ही वृश्चिक एव सर्प

जैसे जन्तु भी उनके शरीर पर निर्विघ्न बने रहे। इस कठिन साधना के कारण ही जैन धर्म मे उन्हे आगे चलकर तीर्थंकर जैसा महत्व दिया गया जो देवगढ एव खजुराहो की मूर्तियो से पूरी तरह स्पष्ट है। भारत की विशालतम धार्मिक प्रतिमा (१०वी शती ई०) के रूप मे श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) मे गोम्मटेश्वर बाहुबली की ५७ फुट ऊँची प्रतिमा का निर्माण हुआ जो बाहुबली के प्रबल वीतरागी स्वरूप का प्रतिफल था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैन धर्म मे सारे परिवर्तनो के बावजूद तीर्थंकरो के वीतरागी स्वरूप को पूरी तरह बरकरार रखा गया। यही कारण है कि तीर्थंकर मूर्तियाँ केवल योग और ध्यान की मुद्राओ—ध्यान एवं कायोत्सर्ग मे ही बनी। यह विशेषता जैन धर्म की मौलिक विशेषता रही है।

सन्दर्भ :

१. जायसवाल के० पी० "जैन इमेज आफ मौर्य पीरियड" जर्नल आफ बिहार, उड़ीसा रिसर्च-सोसायटी खण्ड २३, भाग १ १९३७ पृ १३०-३२

२ शाह यू० पी० अकोटा ब्रोन्जेज बम्बई १९५९ पृ० २८-२९

३. विदिशा से चौथी शती ई० की चन्द्रप्रभु और पुष्पदन्त के नामो वाली महाराजाधिराज रामगुप्त के काल की मूर्तियाँ मिली हैं।

४ बदामी एव अयहोल से पार्श्वनाथ, महावीर तथा बाहुबली गोम्मटेश्वर की छठी-सातवी शती ई० की मूर्तिया मिली हैं।

५ हरिवश पुराण—२९-१-५.

● ●

मोती पाने के लिए तो समुद्र की गहराई मे उतरना ही पड़ता है। लहरों के साथ सतही तौर पर कलाबाजियाँ खाने या गोते लगाने से मोती नही मिल जाते। अन्दर डुबकी लगानी पड़ती है तब कही जाकर मोती हाथ लगते हैं। हमे आत्मा के अक्षय खजाने को, आत्मा की स्वच्छ छवि को पाने के लिए तो गहराई मे उतरना होगा। जिस क्षण हम वासना और चाह से ऊपर उठ जायेंगे उसी दिन से सत्य का साक्षात्कार प्रारम्भ हो जायेगा।

—आचार्यश्री जिनकान्तिसागर जी

● ●

स्वात्म–उद्‌बोधन

१ मैं सच्चिदानन्द स्वरूपी आत्मा हूँ। मैं जड अर्थात् पुद्‌गल रूप नही अपितु चैतन्यमय हूँ। मैं स्वय कर्म करता हूँ और उसका फल भी स्वय ही भोगता हूँ। आत्मा का स्वभाव जन्म-मरण करना नही, वह तो अजर, अमर, अखण्ड, अमल, अविचल, अविनाशी है। अपने इसी स्वरूप को प्राप्त करने हेतु मुझे प्रयत्न करना है, उसी की साधना करनी है।

जागरण सकल्प —

२ मै अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तचारित्र रूप रत्नत्रय का स्वामी हूँ, जिसे काम-क्रोधादि लुटेरे लूट रहे है चूँकि आज तक मै मोह की नीद मे सो रहा था पर वीर-वाणी की उदात्त अमृतवर्षी, अलार्म सुनकर जागृत हो गया हूँ, अत शम-क्षमादि खड्‌ग हाथ मे ले पूर्ण रूप से इनका सामना करूँगा।

जिन दर्शन महत्व —

३ देवाधिदेव जिनेश्वर प्रभु के दर्शन, वन्दन, पूजा एव स्मरण जन्म-जन्मान्तरो के सम्पूर्ण पापो का नाश करता है। जिस प्रकार मानसरोवर की शीतल लहरो से ग्रीष्म का ताप शान्त होता है, बावना चन्दन के लेप से शरीर का दाह शमन होता है उसी प्रकार वीतराग देव के दर्शन-वन्दन-पूजन से आत्मा का भव-भव का ताप शान्त हो जाता है।

दृढ सकल्प —

४ इस देव दुर्लभ अमूल्य मानव तन से, आत्मा को परमात्मा बनाने का जो अपूर्व अवसर मुझे सम्प्राप्त हुआ है, उसे कदापि न खोऊँगा और निरन्तर समभाव मे विचरण करता हुआ, जप, तप, त्याग, सयम, प्रभु-भक्ति परोपकार आदि के द्वारा इसे पूर्णत सफल बनाऊँगा। मेरा यही लक्ष्य है।

५ बहुत कठिनता से प्राप्त बहुमूल्य मानव-शरीर की सुरक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है क्योकि इस अमूल्य रत्न के द्वारा आत्मा जन्म-मरण से मुक्त हो परमात्म पद को प्राप्त कर सकता है।

अत अनैतिक आचरण द्वारा बहुमूल्य शरीर-रत्न को नष्ट करना भारी मूर्खता है।

६ जैन भागवती दीक्षा एक ऐसा आध्यात्मिक अनुष्ठान है जिसे स्वीकार कर आत्मा बन्धन से मुक्ति की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, राग से वीतरागता की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर गमन करता है और स्वय परमात्मा बनने की साधना करता है।

(पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज के प्रवचनाशो से)

खण्ड ५

५. नारी : त्याग, तपस्या, सेवा की सुरसरि

नारी-सृष्टि की आदि शक्ति है, सकल ऋद्धि-सिद्धि, विद्या की अधिष्ठात्री है । जननी के रूप मे वह जीव मात्र के जीवन-धारण की वात्सल्यमयी आधार-शिला है । बहन के रूप में वह स्नेह-सौजन्य-प्रेरणा की प्रवाहिनी है, और पत्नी, भार्या, सहधर्मिणी के रूप में वह मानव के समग्र व्यक्तित्व-विकास की मुख्य धारिका है ।

नारी-वत्सलता, स्नेह, सेवा, प्रेरणा और बलिदान की मूर्ति है, तो तपस्या, त्याग, विद्या और साधना से सिद्धि तक की सतत प्रवाहशील सुरसरि भी है । उसकी शुभ्र-शीतलता ने संपूर्ण मानवता को शान्ति और शक्ति दी है । नारी ने अपना विराट रूप देखा, पर अनदेखा कर दिया है, इसलिए लक्ष्मी आज दरिद्रा बन रही है, शक्ति आज दीना बन रही है, और प्रभुता स्वयं प्रताडित हो रही है ।

"श्रमणी" रूप में प्रस्तुत यह ग्रन्थ मुलत, त्याग-तपस्या-साधना और शुचिता की मूर्ति नारी-"श्रमणी" का गौरव-ग्रंथ है, अतः नारी के अस्मिता—बोध, गौरव तथा अभ्युत्थान की चर्चा इसमें आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है । विचारशील प्रतिभाओं द्वारा नारी के उदात्त रूप को निखारने वाले विचार-मुक्ता यहा संकलित है, विशिष्ट विद्वानों की अनुसंधानपरक शैली मे

'सरस'

जैन आगमिक व्याख्या-साहित्य में नारी की स्थिति का मूल्यांकन

●

प्रो. सागरमल जैन

[अनेक ग्रन्थों के लेखक प्रसिद्ध विद्वान]

निदेशक :

पार्श्वनाथ विद्याश्रम

शोधसंस्थान: वाराणसी

●

१. पूर्व युग—ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक।

२ आगम युग—ईसा पूर्व छठी शताब्दी से लेकर ई० मन् की तीसरी शताब्दी तक।

३ प्राकृत आगमिक व्याख्या युग—ईसा की चौथी शताब्दी से सातवी शताब्दी तक।

४ सस्कृत आगमिक व्याख्या एव पौराणिक कथा साहित्य युग—आठवी से बारहवी शताब्दी तक।

इसी सन्दर्भ मे एक कठिनाई यह भी है कि इन परवर्ती आगमो के रूप मे मान्य ग्रन्थो तथा प्राकृत एव सस्कृत आगमिक व्याख्याओ का काल लगभग एक महस्राब्दी अर्थात् ईसा की तीसरी व चौथी शताब्दी से लेकर ईसा की बारहवी शताब्दी तक व्याप्त है। पुन इस कालविशेष मे भी सभी जैन विचारको का नारी के सन्दर्भ मे समान दृष्टिकोण नही है। प्रथम तो उत्तर और दक्षिण भारत की सामाजिक परिस्थिति की भिन्नता के कारण और दूसरे श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्पराओ के भेद के कारण इस युग के जैन आचार्यो का दृष्टिकोण नारी के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न रहा है। जहाँ उत्तर भारत के यापनीय एव श्वेताम्बर जैन आचार्य नारी के सम्बन्ध मे अपेक्षाकृत उदार दृष्टिकोण रखते है, वही दक्षिण भारत के दिगम्बर जैन आचार्यो का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अनुदार प्रतीत होता है। इसके लिए अचेलता का आग्रह और देशकाल-गत परिस्थितियाँ दोनो ही उत्तरदायी रही हैं, अत आगमिक व्याख्या साहित्य के आधार पर नारी की स्थिति का चित्रण करते समय हमे बहुत ही सावधानीपूर्वक तथ्यो का विश्लेषण करना होगा। पुन आगमिक व्याख्या साहित्य और जैन पौराणिक कथा साहित्य दोनो मे ही नारी के सम्बन्ध मे जो सन्दर्भ उपलब्ध है, वे सब जैन आचार्यो द्वारा अनुशसित थे, यह मान लेना भी एक भ्रान्त धारणा होगी। जैन आचार्यो ने अनेक ऐसे तथ्यो को भी प्रस्तुत किया है, जो यद्यपि उस युग मे प्रचलित रहे है, किन्तु जो जैन धर्म की धार्मिक मान्यताओ के विरोधी हैं। उदाहरण के रूप मे बहु-विवाह प्रथा, वेश्यावृत्ति, सतीप्रथा, स्त्री के द्वारा गोमास भक्षण एव मद्यपान आदि के उल्लेख हमे आगमो एव आगमिक व्याख्या साहित्य मे उपलब्ध होते है, किन्तु वे जैन धर्मसम्मत थे, यह नही कहा जा सकता। वस्तुत इस साहित्य मे लौकिक एव धार्मिक दोनो ही प्रकार के सन्दर्भ है, जिन्हे अलग-अलग रूपो मे समझना आवश्यक है।

अत नारी के सम्बन्ध मे जो विवरण हमे आगमिक व्याख्या साहित्य मे उपलब्ध होते हैं, उन्हे विभिन्न काल खण्डो मे विभाजित करके और उनके परम्परासम्मत और लौकिक स्वरूप का विश्लेषण करके ही विचार करना होगा तथापि उनके गम्भीर विश्लेषण से हमे जैनधर्म मे और भारतीय समाज मे विभिन्न कालो मे नारी की क्या स्थिति थी, इसका एक ऐतिहासिक परिचय प्राप्त हो जाता है।

नारी लक्षण

नारी की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति की चर्चा के पूर्व हमे यह भी विचार कर लेना है कि आगमिक व्याख्याकारो की दृष्टि मे नारी शब्द का तात्पर्य क्या रहा है। सर्वप्रथम सूत्रकृताग निर्युक्ति और चूर्णि मे नारी शब्द के तात्पर्य को स्पष्ट किया गया है। स्त्री को द्रव्यस्त्री और भावस्त्री ऐसे दो विभागो मे वर्गीकृत किया गया है।[1] द्रव्य-स्त्री से जैनाचार्यो का तात्पर्य स्त्री की शारीरिक सरचना (शारीरिक चिन्ह) मे है, जबकि भाव-स्त्री का तात्पर्य नारी स्वभाव (वेद) से है। आगम और आगमिक व्याख्याओ दोनो मे ही स्त्री-पुरुप के वर्गीकरण का आधार लिग और वेद माने जाते रहे है। जैन परम्परा मे स्त्री की शारीरिक सरचना को लिग कहा गया है। रोमरहित मुख, स्तन, योनि,

---

१ दव्वाभिलावचिन्धे वेए भावे य इत्थिणिक्खेवो।
अहिलावे जह सिद्धी भावे वेयम्मि उवउत्तो॥ —सूत्रकृताग निर्युक्ति ५४,

गर्भाशय आदि से युक्त शारीरिक सरचना स्त्रीलिंग है, यही द्रव्य-स्त्री है, जबकि पुरुष के साथ सहवासकी कामना को अर्थात् स्त्रियोचित काम-वासना को वेद कहा गया है। वही वासना की वृत्ति भाव-स्त्री है।[1] जैन आगमिक व्याख्या साहित्य मे स्त्री की कामवासना के स्वरूप को चित्रित करते हुए उसे उपलअग्निवत् बताया गया है। जिस प्रकार उपल-अग्नि के प्रज्वलित होने मे समय लगता है किन्तु प्रज्वलित होने पर चालना करने पर बढती जाती है, अधिक काल तक स्थायी रहती है उसी प्रकार स्त्री की कामवासना जागृत होने मे समय लगता है, किन्तु जागृत होने पर चालना करने से बढती जाती है और अधिक स्थायी होती है।[2] जैनाचार्यो का यह कथन एक मनोवैज्ञानिक सत्य लिये हुए है। यद्यपि लिग और वेद अर्थात् शारीरिक सरचना और तत्सम्बन्धी कामवासना सहगामी माने गये हैं, फिर भी सामान्यतया जहाँ लिग शरीर पर्यन्त रहता है, वहाँ वेद (कामवासना) आध्यात्मिक विकास की एक विशेष अवस्था मे समाप्त हो जाता है।[3] जैन कर्म सिद्धान्त मे लिग का कारण नाम कर्म (शारीरिक सरचना के कारक तत्व) और वेद का कारण मोहनीय कर्म (मनोवृत्तियाँ) माना गया है।[4] इस प्रकार लिग, शारीरिक सरचना का और वेद मनोवैज्ञानिक स्वभाव और वासना का सूचक है तथा शारीरिक परिवर्तन से लिग मे और मनोभावो के परिवर्तन मे वेद मे परिवर्तन सम्भव है। निशीथचूर्णि के अनुसार लिग परिवर्तन से वेद (वासना) मे भी परिवर्तन हो जाता है (गाथा ३५९)। इस सम्बन्ध मे सम्पूर्ण कथा द्रष्टव्य है। जिसमे शारीरिक सरचना और स्वभाव की दृष्टि से स्त्रीत्व हो, उसे ही स्त्री कहा जाता है। सूत्रकृताग निर्युक्ति मे स्त्रीत्व के नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, प्रजनन, कर्म, भोग, गुण और भाव ये दस निक्षेप या आधार माने गये हैं, अर्थात् किसी वस्तु के स्त्री कहे जाने के लिए उसे निम्न एक या एकाधिक लक्षणो से युक्त होना आवश्यक है, यथा—

(१) स्त्रीवाचक नाम से युक्त होना जैसे—रमा, श्यामा आदि।

(२) स्त्री रूप मे स्थापित होना जैसे शीतला आदि की स्त्री-आकृति से युक्त या रहित प्रतिमा।

(३) द्रव्य—अर्थात् शारीरिक सरचना का स्त्री रूप होना।

(४) क्षेत्र—देश-विशेष की परम्परानुसार स्त्री की वेशभूषा से युक्त होने पर उस देश मे उसे स्त्रीरूप मे समझा जाता है।

(५) काल—जिसने भूत, भविष्य या वर्तमान मे से किसी भी काल मे स्त्री-पर्याय धारण की हो, उसे काल की अपेक्षा से स्त्री कहा जाता है।

---

१ अभिधान राजेन्द्र, भाग २, पृ० ६२३

२ यद्वशात् स्त्रिया पुरुष प्रत्यभिलाषो भवति, यथा पित्तवशान् मधुरद्रव्य प्रति स फुफुमादाहसम, यथा यथा चाल्यते तथा तथा ज्वलति बृहति च। एवम् बलाऽपि यथा यथा सम्पृश्यते पुरुषेण तथा तथा अस्या अधिकतरोऽभिलाषो जायते, भुज्यमानाया तु छगनकरीषदाहतुल्योऽभिलाषो, मन्द इत्यर्थ इति स्त्रीवेदोदय।

—वही, भाग ६, पृष्ठ १४३०

३ पमत्त निमसधरण नियगच्छेओ वि सत्तरि अपुव्वे।
हासाइछक्कअतो छसट्ठि अनियट्टिवेयतिग ॥

४ देखे—कर्मप्रकृतियो का विवरण। —कर्मग्रन्थ, भाग २, गाथा १८

(६) प्रजनन क्षमता से युक्त होना।

(७) स्त्रियोचित्त कार्य करना।

(८) स्त्री रूप मे भोगी जाने मे समर्थ होना।

(९) स्त्रियोचित्त गुण होना और

(१०) स्त्री सम्बन्धी वासना का होना।[1]

जैनाचार्यो की दृष्टि मे नारी चरित्र का विकृत पक्ष

जैनाचार्यो ने नारी-चरित्र का गम्भीर विश्लेषण किया। नारी-स्वभाव का चित्रण करते हुए तन्दुल वैचारिक प्रकरण मे नारी की स्वभावगत निम्न ९४ विशेषताये वर्णित है[2]—

नारी स्वभाव से विषम, मधुर वचन की वल्लरी, कपट-प्रेम रूपी पर्वत, सहस्रो अपराधो का घर, शोक की उद्गमस्थली, पुरुष के बल के विनाश का कारण, पुरुषो की वधस्थली अर्थात् उनकी हत्या का कारण, लज्जा-नाशिका, अशिष्टता का पुन्ज, कपट का घर, शत्रुता की खान, शोक की ढेर, मर्यादा की नाशिका, कामराग की आश्रय स्थली, दुराचरणो का आवास, सम्मोह की जननी, ज्ञान का स्खलन करने वाली, शील को विचलित करने वाली, धर्मयाग मे बाधा रूप, मोक्षपथ साधको की शत्रु, ब्रह्मचर्यादि आचार मार्ग का अनुसरण करने वालो के लिए दूषण रूप, कामी की वाटिका, मोक्षपथ की अर्गला, दरिद्रता का घर, विषधर सर्प की भाँति कुपित होने वाली, मदमत्त हाथी की भाति कामविह्वला, व्याघ्री की भाति दुष्ट हृदय वाली, ढके हुए कूप की भाँति अप्रकाशित हृदय वाली, मायावी की भाँति मधुर वचन बोलकर स्वपाश मे आबद्ध करने वाली, आचार्य की वाणी के समान अनेक पुरुषो द्वारा एक साथ ग्राह्य, शुष्क कण्डे की अग्नि की भाति पुरुषो के अन्त करण मे ज्वाला प्रज्वलित करने वाली, विषम पर्वतमार्ग की भाति असमतल अन्त करण वाली, अन्तर्दूषित घाव की भाँति दुर्गन्धित हृदय वाली, कृष्ण सर्प की तरह अविश्वसनीय, सहार (भैरव) के समान मायावी, सन्ध्या की लालिमा की भाति क्षणिक प्रेम वाली, समुद्र की लहरो की भाति चचल स्वभाव वाली, मछलियो की भाति दुष्परिवर्तनीय स्वभाव वाली, बन्दरो के समान चपल स्वभाव वाली, मृत्यु की भाँति निर्विशेष, काल के समान दयाहीन, वरुण के समान पाशयुक्त अर्थात् पुरुषो को कामपाश मे बाधने वाली, जल के समान अधोगामिनी, कृपण के समान रिक्त हस्त वाली, नरक के समान दारुणत्रासदायिका, गर्दभ के सदृश दुष्टाचार वाली, कुलक्षणयुक्त घोडे के समान लज्जारहित व्यवहार वाली, बाल स्वभाव के समान चचल अनुराग वाली, अन्धकारवत् दुष्प्रविश्य, विष-बेल की भाँति ससर्ग वर्जित, भयकर मकर आदि से युक्त वापी के समान दुष्प्रवेश्य, साधुजनो की प्रशसा के अयोग्य, विष-वृक्ष के फल की तरह प्रारम्भ मे मधुर किन्तु दारुण अन्त वाली, खाली मुट्ठी से जिस प्रकार बालको को लुभाया जाता है उसी प्रकार पुरुषो को लुभाने वाली, जिस प्रकार एक पक्षी के द्वारा मास खण्ड ग्रहण करने पर अन्य पक्षी उसे विविध कष्ट देते है उसी प्रकार दारुण कष्ट स्त्री को ग्रहण करने पर पुरुषो को होते है, प्रदीप्त तृणराशि की भाँति ज्वलन स्वभाव को न छोडने वाली, घोर पाप के समान दुर्लंघ्य, कूट कार्षापण की भाँति अकालचारिणी, तीव्र

---

१. णाम ठवणादविए खेत्ते काले य पज्जणणकम्मे।
भोगे गुणे य भावे दस ए ए इत्थीणिक्खेवो॥
—सूत्रकृताग निर्युक्ति गाथा ५४

२. तन्दुलवैचारिक सावचूरि सूत्र १९ (देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार, ग्रन्थमाला)।

क्रोध की भाति दुर्लक्ष्य, दारुण दुखदायिका, घृणा की पात्र, दुष्टोपचारा, चपला, अविश्वसनीया, एक पुरुष से बधकर न रहने वाली, यौवनावस्था मे कष्ट से रक्षणीय, बाल्यावस्था मे दु ख से पाल्य, उद्वेग-शीला, कर्कशा, दारुण वैर का कारण, रूप स्वभाव गर्विता, भुजग के समान कुटिल गति वाली, दुष्ट घोडे के पदचिह्न से युक्त महाजगल की भाँति दुर्गम्य, कुल, स्वजन और मित्रो से विग्रह कराने वाली, परदोष प्रकाशिका, कृतघ्ना, वीर्यनाशिका, शूकरवत् जिस प्रकार शूकर खाद्य-पदार्थ को एकान्त मे ले जाकर खाता है उसी प्रकार भोग हेतु पुरुष को एकान्त मे ले जाने वाली, अस्थिर स्वभाव वाली, जिस प्रकार अग्निपात्र का मुख आरम्भ मे रक्त हो जाता है किन्तु अन्ततोगत्वा काला हो जाता है उसी प्रकार नारी आरम्भ मे राग उत्पन्न करती है परन्तु अन्तत. उससे विरक्ति ही उत्पन्न होती है, पुरुषो के मैत्री-विनाशादि की जड, विना रस्सी की पाग, काष्ठरहित वन की भाति पाप करके पश्चात्ताप मे जलती नही है। कुत्सित कार्य मे सदैव तत्पर, अधार्मिक कृत्यो की वैतरणी असाध्य व्याधि, वियोग पर तीव्र दु खी न होने वाली, रोगरहित उपसर्ग या पीडा, रतिमान के लिए मनोभ्रम कारण, शरीर-व्यापी दाह का कारण, बिना बादल विजली के समान, विना जल के प्रवाहमान और समुद्रवेग की भाँति नियन्त्रण से परे कही गई है। तन्दुल वैचारिक की वृत्ति मे इनमे से अधिकाश गुणो के सम्बन्ध मे एक-एक कथा भी दी गई।[1]

उत्तराध्ययनचूर्णि मे भी स्त्री को समुद्र की तरग के समान चपल स्वभाव वाली, सन्ध्याकालीन आभा के समान क्षणिक प्रेम वाली और अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर पुरुष का परित्याग कर देने वाली कहा गया है। आवश्यक भाष्य और निशीथचूर्णी मे भी नारी के चपल स्वभाव और शिथिल चरित्र का उल्लेख हुआ है।[3] निशीथचूर्णि मे यह भी कहा गया है कि स्त्रियाँ थोडे से उपहारो से ही वशीभूत की जा सकती है और पुरुषो को विचलित करने मे सक्षम होती है।[4] आचारागचूर्णि एव वृत्ति मे उसे शीतपरिषह कहा गया है अर्थात् अनुकूल लगते हुए भी त्रासदायी होती है।[5]

सूत्रकृताग मे कहा गया है कि स्त्रियाँ पापकर्म नही करने का वचन देकर भी पुन अपकार्य मे लग जाती है।[6] इसकी टीका मे टीकाकार ने कामशास्त्र का उदाहरण देकर कहा है कि जैसे दर्पण पर पडी हुई छाया दुर्ग्राह्य होती है वैसे ही स्त्रियो के हृदय दुग्राह्य होते है।[7] पर्वत के दुर्गम मार्ग के समान

---

१ तन्दुल वैचारिक सावचूरि सूत्र १६, (देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला)

२ समुद्रवीचीचपलस्वभावा सध्याभ्रमरेखा व मुहूर्तरागा ।
स्त्रिय' कृतार्था' पुरुषं निरर्थक निपीडितालक्तकवद् त्यजन्ति ।
उत्तराध्ययनचूर्णि, पृ० ६५, ऋषभदेवजी, केशरीमल सस्था रत्नपुर (रतलाम) १६३३ ई०

३ पगइत्ति सभावो। स्वभावेन च इत्थी अल्पसत्वा भवति। —निशीथचूर्णि, भाग ३, पृ० ५८४, आगरा १६५७-५८ ।

४. सा य अप्पसत्तत्तणओ जेण वातेण वत्थमादिणा ।
अप्पेणावि लोभिज्जति, दाणलोभिया य अकज्ज पि करोति ।। —वही, भाग ३, पृ० ५८४ ।

५ आचारागचूर्णि पृ० ३१५

६ एव पि ता वदित्तावि अदुवा कम्मुणा अवकरेंति । —सूत्रकृताग, १/४/२३

७ दुग्रहियं हृदयं यथैव वदन यद्दर्पणान्तर्गतम्,
भाव पर्वतमार्गदुर्गविषम स्त्रीणा न विज्ञायते ।
—सूत्रकृताग विवरण १/४/२३, प्र० सेठ छगनलाल, मूँथा बगलौर १६३०

ही उनके हृदय का भाव सहसा ज्ञात नही होता। सूत्रकृताग वृत्ति में नारी चरित्र के विषय मे कहा गया है अच्छी तरह जीती हुई, प्रसन्न की हुई और अच्छी तरह परिचित अटवी और स्त्री का विश्वास नही करना चाहिए। क्या इस समस्त जीवलोक मे कोई अगुलि उठाकर कह सकता है, जिसने स्त्री की कामना करके दु ख न पाया हो ? उसके स्वभाव के सम्बन्ध मे यही कहा गया कि स्त्रियाँ मन से कुछ और सोचती है, वचन से कुछ और कहती हैं तथा कर्म से कुछ और करती है।[1]

स्त्रियो का पुरुषो के प्रति व्यवहार

स्त्रियाँ पुरुषो को अपने जाल मे फँसाकर फिर किस प्रकार उसकी दुर्गति करती है उसका सुन्दर एव सजीव चित्रण सूत्रकृताग और उसकी वृत्ति मे उपलब्ध होता है। उस चित्रण का सक्षिप्त रूप निम्न है[2]—

जब वे पुरुष पर अपना अधिकार जमा लेती है तो फिर उसके साथ आदेश की भाषा मे बात करती है। वे पुरुष से बाजार जाकर अच्छे-अच्छे फल, छुरी, भोजन बनाने हेतु ईंधन तथा प्रकाश करने हेतु तेल लाने को कहती है। फिर पास बुलाकर महावर आदि से पैर रगने और शरीर मे दर्द होने पर उसे मलने को कहती हैं। फिर आदेश देती है कि मेरे कपडे जीर्ण हो गये है, नये कपडे लाओ, तथा भोजन-पेय पदार्थादि लाओ। वह अनुरक्त पुरुष की दुर्बलता जानकर अपने लिए आभूषण, विशेष प्रकार के पुष्प, बाँसुरी तथा चिरयुवा बने रहने के लिए पौष्टिक औषधि की गोली माँगती है। तो कभी अगरु, तगर आदि सुगन्धित द्रव्य, अपनी प्रसाधन सामग्री रखने हेतु पेटी, ओष्ट रगने हेतु चूर्ण, छाता, जूता आदि माँगती है। वह अपने वस्त्रो को रगवाने का आदेश देती है तथा नाक के केशो को उखाडने के लिए चिमटी, केशो के लिए कघी, मुख शुद्धि हेतु दातौन आदि लाने को कहती है। पुन वह अपने प्रियतम से पान-सुपारी, सुई-धागा, मूत्रविमर्जन पात्र, सूप, ऊखल आदि तथा देव-पूजा हेतु ताम्रपात्र और मद्यपान हेतु मद्य-पात्र माँगती है। कभी वह अपने बच्चो के खेलने हेतु मिट्टी की गुडिया, बाजा, झुनझुना, गेंद आदि मगवाती है और गर्भवती होने पर दोहद-पूर्ति के लिए विभिन्न वस्तुएँ लाने का आदेश देती है। कभी वह उसे वस्त्र धोने का आदेश देती है, कभी रोते हुए बालक को चुप करने के लिए कहती है।

इस प्रकार कामिनियाँ दास की तरह वशवर्ती पुरुषो पर अपनी आज्ञा चलाती हैं। वह उनसे गधे के समान काम करवाती है और काम न करने पर झिडकती हैं, आँखे दिखाती हैं तो कभी झूठी प्रशसा कर उससे अपना काम निकालती हैं।

नारी-स्वभाव का यह चित्रण वस्तुत उसके घृणित पक्ष का ही चित्रण करता है किन्तु इसकी आनुभविक सत्यता से इन्कार भी नही किया जा सकता। किन्तु इस आधार पर यह मान लेना कि नारी के प्रति जैनाचार्यो का दृष्टिकोण अनुदार ही था, उचित नही होगा। जैन धर्म मूलत एक निवृत्तिपरक

---

१ सुट्ठुवि जियासु सुट्ठुवि पियासु सुट्ठुवि लद्धपरासु।
अटईसु महिलियासु य वीसभो नेव कायव्वो।
उब्भेउ अगुली सो पुरिसो सयलमि जीवलोयम्मि।
काम तएण नारी जेण न पत्ताइ दुक्खाइ॥ —वही, विवरण १/४/२३

२. वही, १/४/२

धर्म रहा है, निवृत्तिपरक होने के कारण उसमे सन्यास और वैराग्य पर विशेष बल दिया गया है। सन्यास और वैराग्य के लिए यह आवश्यक था कि पुरुष के सामने नारी का ऐसा चित्र प्रस्तुत किया जाय जिसके फलस्वरूप उससे विरक्ति का भाव प्रस्फुटित हो। यही कारण था कि जैनाचार्यो ने आगमो और आगमिक व्याख्याओ और इतर साहित्य मे कठोर शब्दो मे नारी-चरित्र की निन्दा की किन्तु इसका यह अर्थ नही रहा कि जैनाचार्यो के सामने नारी-चरित्र का उज्ज्वलतम पक्ष नही रहा है। सूत्रकृताग निर्युक्ति मे स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि जो शील-प्रध्वसक चरित्रगत दोष नारी मे पाये जाते है वे पुरुषो मे भी पाये जाते है इसलिए वैराग्य मार्ग मे प्रवर्तित स्त्रियो को भी पुरुषो से उसी प्रकार बचना चाहिए जिस प्रकार स्त्रियो से पुरुषो का बचने का उपदेश दिया गया है।[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनाचार्यो ने नारी-चरित्र का जो विवरण प्रस्तुत किया है, वह मात्र पुरुषो मे वैराग्य भावना जागृत करने के लिए ही है। भगवती आराधना मे भी स्पष्ट रूप से यह कहा गया है—स्त्रियो मे जो दोष होते है वे दोष नीच पुरुषो मे भी होते है अथवा मनुष्यो मे जो बल और शक्ति से युक्त होते है उनमे स्त्रियो से भी अधिक दोष होते है। जैसे अपने शील की रक्षा करने वाले पुरुषो के लिए स्त्रियाँ निन्दनीय है, वैसे ही अपने शील की रक्षा करने वाली स्त्रियो के लिए पुरुष निन्दनीय है। सब जीव मोह के उदय से कुशील से मलिन होते है और वह मोह का उदय स्त्री-पुरुषो मे समान रूप से होता है। अत ऊपर जो स्त्रियो के दोषो का वर्णन किया है वह स्त्री सामान्य की दृष्टि से किया है। शीलवती स्त्रियो मे ऊपर कहे दोष कैसे हो सकते है ?[2]

जैनाचार्यो की दृष्टि मे नारी-चरित्र का उज्ज्वल पक्ष—

स्त्रियो की प्रशसा करते हुए कहा गया है, जो गुणसहित स्त्रियाँ है, जिनका यश लोक मे फैला हुआ है तथा जो मनुष्य लोक मे देवता समान है और देवो से पूजनीय है, उनकी जितनी प्रशसा की जाये कम है। तीर्थकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और श्रेष्ठ गणधरो को जन्म देने वाली महिलाये श्रेष्ठ देवो और उत्तम पुरुषो के द्वारा पूजनीय होती है। कितनी ही महिलाएँ एक-पतिव्रत और कौमार ब्रह्म-चर्य व्रत धारण करती है, कितनी ही जीवनपर्यन्त वैधव्य का तीव्र दु ख भोगती है। ऐसी भी कितनी शील-वती स्त्रियाँ सुनी जाती है जिन्हे देवो के द्वारा सम्मान आदि प्राप्त हुआ तथा जो शील के प्रभाव से शाप देने और अनुग्रह करने मे समर्थ थी। कितनी ही शीलवती स्त्रियाँ महानदी के जल प्रवाह मे भी नही डूब सकी और प्रज्वलित घोर आग मे भी नही जल सकी तथा सर्प, व्याघ्र आदि भी उनका कुछ नही कर सके। कितनी ही स्त्रियाँ सर्वगुणो से सम्पन्न साधुओ और पुरुषो मे श्रेष्ठ चरमशरीरी पुरुषो को जन्म देने वाली माताएँ हुई है।[3] अन्तकृत्दशा और उसकी वृत्ति मे कृष्ण द्वारा प्रतिदिन अपनी माताओ के पाद-वन्दन हेतु जाने का उल्लेख है।[4] आवश्यकचूर्णि और कल्पसूत्र टीका मे उल्लेख है कि महावीर ने अपनी माता को दु ख न हो, इस हेतु उनके जीवित रहते ससार त्याग नही करने का निर्णय

---

१ एए चेव य दोसा पुरिससमाये वि इत्थियाण पि। —सूत्रकृतागनियुक्ति गाथा ६२

२ भगवती आराधना गाथा ९८७-८८ व ९९५-९६

३ वही गाथा, ९८९-९४

४ तए ण से कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव विभूसिए देवईए देवीए पायवदाये हव्वमागच्छइ।

अपने गर्भकाल मे ले लिया था।[1] इस प्रकार नारी वासुदेव और तीर्थंकर द्वारा भी पूज्य मानी गयी है। महानिशीथ मे कहा गया है कि जो स्त्री भय, लोकलज्जा, कुलाकुश एव धर्मश्रद्धा के कारण कामाग्नि के वशीभूत नही होती है, वह धन्य है, पुण्य है, वदनीय है, दर्शनीय है, वह लक्षणो से युक्त है, वह सर्वकल्याण-कारक है, वह सर्वोत्तम मगल है, (अधिक क्या) वह (तो साक्षात्) श्रुत देवता है, सरस्वती है, अच्युता है परम पवित्र सिद्धि, मुक्ति, शाश्वत शिवगति है। (महानिशथि २/ सूत्र २३ पृ० ३६)

जैनधर्म मे तीर्थंकर का पद सर्वोच्च माना जाता है और श्वेताम्वर परम्परा मे मल्ली कुमारी को तीर्थंकर माना गया है।[2] इसिमण्डलत्थू (ऋपिमण्डल स्तवन) मे वाह्मी, सुन्दरी, चन्दना आदि को वन्दनीय माना गया है।[3] तीर्थंकरो की अधिष्ठायक देवियो के रूप मे चक्रेश्वरी, अम्विका, पद्मावती, सिद्धायिका आदि देवियो को पूजनीय माना गया है[4] और उनकी स्तुति मे परवर्ती काल मे अनेक स्तोत्र रचे गये हैं। यद्यपि यह स्पष्ट है कि जैनधर्म मे यह देवी-पूजा की पद्धति लगभग गुप्त काल मे हिन्दू परम्परा के प्रभाव से आई है। उत्तराध्ययन एव दशवैकालिक की चूर्णि मे राजीमति द्वारा मुनि रथनेमि को[5] तथा आवश्यक चूर्णि मे ब्राह्मी और सुन्दरी द्वारा मुनि बाहुवली को प्रतिवोधित करने के उल्लेख है[6] न केवल भिक्षुणियाँ अपितु गृहस्थ उपासिकाएँ भी पुरुष को सन्मार्ग पर लाने हेतु प्रतिवोधित करती थी। उत्तराध्ययन मे रानी कमलावती राजा इषुकार को सन्मार्ग दिखाती है,[7] इसी प्रकार उपासिका जयन्ती भरी सभा मे महावीर से प्रश्नोत्तर करती है[8] तो कोशावेश्या अपने आवास मे स्थित मुनि को सन्मार्ग

---

१ नो खलु मे कप्पइ अम्मापितीहिं जीवतेहि मुण्डे भवित्ता अगारवासाओ अणगारियं पव्वइए।

—कल्पसूत्र ९१

(एव) गब्भत्थो चेव अभिग्गहे गेण्हति णाह समणे होक्खामि जाव एताणि एत्थ जीवंतित्ति।

—आवश्यकचूर्णि प्रथम भाग, पृ० २४२, प्र० ऋपभदेव जी केशरीमल श्वेताम्वर स० रतलाम १९२८

२ तए ण मल्ली अरहा केवलनाणदसणे समुप्पन्ने। —ज्ञाताधर्मकथा ८/१८६

३ अज्जा वि वभि-सुन्दरि-राइमई चन्दणा पमुक्खाओ।
कालतए वि जाओ ताओ य नमामि भावेण॥ —ऋपिमण्डलस्तव २०८

४ देवीओ चक्केसरी अजिया दुरियारि कालि महाकाली। अच्चुय सता जाला सुतारया असोय सिरिवच्छा॥
पवर विजय कुसा पण्णत्ती निव्वाणि अच्चुया धरणी। वइरोट्टऽच्छुत्त ग धारि अव पउमावई सिद्धा॥
—प्रवचनसारोद्धार, भाग १, पृ० ३७५-७६, देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार सस्था सन् १९२२

५ तीसे सो वयण सोच्चा सजयाए सुभासिय।
अकुसेण जहा नागो धम्मे सपडिवाइयो॥ —उत्तराध्ययन सूत्र २२, ४८
(तथा) दशवैकालिकचूर्णि, पृ० ८७-८८ मणिविजय सिरीज भावनगर।

६ भगव वभी सुन्दरीओ पत्थवेति ' इम व भणितो। ण किर हत्थि विलग्गस्स केवलनाण उप्पज्जइ।
—आवश्यक चूर्णि भाग १, पृष्ठ २११

७ वतासी पुरिसो राय, न सो होइ पससिओ। माहणेण परिचत्त धण आदाउमिच्छसि॥
—उत्तराध्ययन सूत्र १४, ३८ एव उत्तराध्ययनचूर्णि, पृ० २३० (ऋपभदेव केशरीमल सस्था रतलाम, सन् १९३३)

८. भगवती १२/२।

दिखाती है,[1] ये तथ्य इस बात के प्रमाण है कि जैनधर्म मे नारी की अवमानना नही की गई। चतुर्विध धर्मसंघ मे भिक्षुणीसघ और श्राविकासघ को स्थान देकर निर्ग्रन्थ परम्परा ने स्त्री और पुरुष की समकक्षता को ही प्रमाणित किया। पार्श्व और महावीर के द्वारा बिना किसी हिचकिचाहट के भिक्षुणी सघ की स्थापना की गई जबकि बुद्ध को इस सम्बन्ध मे सकोच रहा—यह भी इसी तथ्य का द्योतक है कि जैनसंघ का दृष्टिकोण नारी के प्रति अपेक्षाकृत उदार रहा है।

जैनसघ मे नारी का कितना महत्वपूर्ण स्थान था इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि उसमे प्रागैतिहासिक काल से वर्तमान काल तक सदैव ही भिक्षुओ की अपेक्षा भिक्षुणियो की और गृहस्थ उपासको की अपेक्षा उपासिकाओ की सख्या अधिक रही है। समवायाग, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, कल्पसूत्र एव आवश्यकनिर्युक्ति आदि मे तीर्थकर की भिक्षुणियो एव गृहस्थ उपासिकाओ की सख्या उपलब्ध होती है।[2] इन सख्यासूचक आकडो मे ऐतिहासिक सत्यता कितनी है, यह एक अलग प्रश्न है, किन्तु इससे इतना तो फलित होता ही है कि जैनाचार्यो की दृष्टि मे नारी जैनधर्म सघ का महत्वपूर्ण घटक थी। भिक्षुणियो की सख्या सम्बन्धी ऐतिहासिक सत्यता को भी पूरी तरह नकारा नही जा सकता। आज भी जैनसघ मे लगभग नौ हजार दो सौ भिक्षु-भिक्षुणियो मे दो हजार तीन सौ भिक्षु और छह हजार नौ सौ भिक्षु-णिया है।[3] भिक्षुणियो का यह अनुपात उस अनुपात से अधिक ही है जो पार्श्व और महावीर के युग मे माना गया है।

धर्मसाधना के क्षेत्र मे स्त्री और पुरुष की समकक्षता के प्रश्न पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करे तो अनेक महत्वपूर्ण तथ्य हमारे समक्ष उपस्थित होते है। सर्वप्रथम उत्तराध्ययन, ज्ञाताधर्मकथा, अन्तकृत्दशा आदि आगमो मे स्पष्ट रूप से स्त्री और पुरुष दोनो की ही साधना के सर्वोच्च लक्ष्य मुक्ति प्राप्ति के लिए सक्षम माना गया है। उत्तराध्ययन मे स्त्रीलिंग सिद्ध का उल्लेख है।[4] ज्ञाता,[5] अन्त-

---

१ जइ वि परिचित्तसंगो तहा वि परिवडइ।
महिलासंसग्गीए कोसाभवणूसिय व्व रिसी॥ ...गा० १२८
(तथा)
तुम एत्थ मोयम्मि अप्पाणं णवि, तुम एरिसओ चेव होहिसि, उवसामेति लद्धबुद्धी इच्छामि वेदावच्चंति गतो, पुणोवि आलोवेत्ता विहरति॥ —आवश्यक चूर्णि २, पृ० १८३
ण दुक्करं तोडिय अंबपिंडी, ण दुक्करं णच्चितु सिक्खियाए।
तं दुक्करं तं च महाणुभावं, जं सो मुणी पमयवणंमि वुट्ठो॥ —वही, १ पृ० ५५५

२. कल्पसूत्र, क्रमश: १३७ १६७ १५७ व १३४ प्राकृत भारती, जयपुर, १९७७ ई०

३ चातुर्मास सूची पृ० ७७ अ. भा. श्वे. जैन चातुर्मास सूची प्रकाशन परिषद बम्बई १९८७।

४ इत्थी पुरिससिद्धा य, तहेव य नपुंसगा।
सलिंगे अन्नलिंगे य, गिहिलिंगे तहेव य॥ —उत्तराध्ययन सूत्र ३६, ५०

५. ज्ञाताधर्मकथा—मल्लि और द्रौपदी अध्ययन।

कृत्दशा[1] एव आवश्यक चूर्णि मे भी अनेक स्त्रियो के मुक्त होने का उल्लेख है। इस प्रकार श्वेताम्वर परम्परा आगमिक काल से लेकर वर्तमान तक स्त्री मुक्ति की अवधारणा को स्वीकार कर साधना के क्षेत्र मे दोनो को समान स्थान देती है। मात्र इतना ही नही यापनीय परम्परा के ग्रन्थ पट्खण्डागम और मूलाचार मे भी स्त्री-पुरुप दोनो मे क्रमश आध्यात्मिक विकास की पूर्णता और मुक्ति की सम्भावना को स्वीकार किया गया है।[2] हमे आगमो और आगमिक व्याख्याओ यथा निर्युक्ति, भाप्य और चूर्णि साहित्य मे कही भी ऐसा सकेत नही मिलता है जिससे स्त्री - मुक्ति का निपेध किया गया हो अथवा किसी ऐसे जैन सम्प्रदाय की सूचना दी गई हो जो स्त्रीमुक्ति को अस्वीकार करता है। सर्वप्रथम दक्षिण भारत मे कुन्दकन्द आदि कुछ दिगम्बर आचार्य लगभग पाँचवी-छठी शतान्दी में स्त्री-मुक्ति आदि का निषेध करते है। कुन्दकुन्द सुत्तपाहुड मे कहते हैं कि स्त्री अचेल (नग्न) होकर धर्मसाधना नही कर सकती, और सचेल चाहे तीर्थकर भी हो मुक्त नही हो सकता।[3] इसका तात्पर्य यह भी है कि कुन्दकुन्द स्त्री-तीर्थंकर की यापनीय (उत्तर भारत के दिगम्बर सघो एव श्वेताम्बर परम्परा मे प्रचलित) अवधारणा से परिचित थे। यह स्पप्ट है कि पहले स्त्री तीर्थंकर की अवधारणा वनी, फिर उस विरोध मे स्त्रीमुक्ति का निषेध किया गया। सम्भवत सवसे पहले जैनपरम्परा मे स्त्रीमुक्ति-निषेध की अवधारणा का विकास दक्षिण भारत मे दिगम्बर सम्प्रदाय द्वारा हुआ। क्योकि सातवी-आठवी शताब्दी तक उत्तर भारत के श्वेताम्बर आचार्य जहाँ सचेलता और अचेलता को लेकर विस्तार से चर्चा करते हैं वहाँ स्त्रीमुक्ति के पक्ष-विपक्ष मे कोई भी चर्चा नही करते है। इसका तात्पर्य है कि उत्तर भारत के जैन सम्प्रदायो मे लगभग सातवी-आठवी शताब्दी तक स्त्रीमुक्ति सम्वन्धी विवाद उत्पन्न ही नही हुआ था। इस सन्दर्भ मे विस्तृत चर्चा प० बेचरदास स्मृति ग्रन्थ मे प० दलसुखभाई, प्रो० ढाकी और मैंने अपने लेख

---

१ (अ) तत्थेव हत्थिखधवरगताए केवलनाण, सिद्धाए इमाए ओसप्पिणीए पढमसिद्धो मरुदेवा। एव आराहण प्रतियोगसगहो कायव्वो। —आ० चूर्णि भाग २, पृ० २१२

द्रष्टव्य, वही भाग १, पृ० १८१ व ४८८।

(व) अन्तकृद्दशा के वर्ग ५ मे १०, वर्ग ७ मे १३, वर्ग ८ मे १०। इस प्रकार कुल ३३ मुक्त नारियो का उल्लेख प्राप्त होता हे।

२ (अ) मणुस्सिणीसु मिच्छाइट्ठि सासणसम्माइट्टि-ट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ—सजदासजदसजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥ —षट्खण्डागम, १,१, ९२ ९३

(व) एव विधाणचरिय चरित जे साधवो य अज्जावो।
ते जगपुज्ज कित्ति सुह च लद्धूण सिज्झति ॥ —मूलाचार ४/१९६

३ लिग इत्थीण हवदि भुजइ पिंड सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एकवत्था वत्थावरणेण भुजेइ ॥
णवि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइवि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उमग्गया सव्वे ॥ —सूत्रप्राभृत, २२, २३

(तथा) मुणहाण गद्दहाण य गोपसुमहिलाण दीसदे मोक्खो।
जे सोधति चउत्थ पिच्छिज्जता जणेहि सव्वेहि ॥ —शीलप्राभृत २९

यह निश्चित ही सत्य है कि आगमिक काल के जैनाचार्यो ने मल्लि को स्त्री तीर्थंकर के रूप मे स्वीकार करके यह उद्घोषित किया कि आध्यात्मिक विकास के सर्वोच्च पद की अधिकारी नारी भी हो सकती है। स्त्री तीर्थंकर की अवधारणा जैनधर्म की अपनी एक विशिष्ट अवधारणा है, जो नारी की गरिमा को महिमामण्डित करती है। यद्यपि हिन्दू धर्म मे शक्ति के रूप मे स्त्री को महत्व दिया गया है, किन्तु जैनधर्म मे तीर्थंकर की जो अवधारणा है, उसकी अपनी एक विशेषता है। वह यह सूचित करती है कि विश्व का सर्वोच्च गरिमामय पद पुरुष और स्त्री दोनो ही समान रूप से प्राप्त कर सकते है। यद्यपि परवर्ती आगमो एव आगमिक व्याख्या साहित्य मे इसे एक आश्चर्यजनक घटना कहकर पुरुष के प्राधान्य को स्थापित करने का प्रयत्न अवश्य किया गया (स्थानाग १०/१६०)। यद्यपि आगमिक व्याख्याओ के काल मे पुरुष की महत्ता बढी और व्रत ज्येष्ठ कल्प को पुरुष ज्येष्ठकल्प के रूप मे व्याख्यायित किया गया। अग आगमो मे मुझे एक भी ऐसा उदाहरण नही मिला जिसमे साध्वी अपनी प्रवर्तिनी, आचार्य या तीर्थंकर के अतिरिक्त दीक्षा मे कनिष्ठ भिक्षु को वन्दन या नमस्कार करती हो, किन्तु परवर्ती आगम एव आगमिक व्याख्या साहित्य मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सौ वर्ष की दीक्षित साध्वी के लिए भी सद्य दीक्षित मुनि वन्दनीय है (बृहत्कल्पभाष्य भाग ६ गाथा ६३९९ एव कल्पसूत्र कल्पलता टीका)।

फिर भी जैनधर्म सघ मे नारी की महत्ता को यथासम्भव सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है। मथुरा मे उपलब्ध अभिलेखो से यह स्पष्ट होता है कि धर्मकार्यो मे पुरुषो के समान नारियाँ भी समान रूप से भाग लेती थी। वे न केवल पुरुषो के समान पूजा, उपासना कर सकती थी, अपितु वे स्वेच्छानुसार दान भी करती थी और मन्दिर आदि बनवाने मे समान रूप से भागीदार होती थी। जैन परम्परा मे मूर्तियो पर जो प्राचीन अभिलेख उपलब्ध होते है उनमे सामान्य रूप से पुरुषो के साथ साथ स्त्रियो के नाम भी उपलब्ध होते हैं जो इस तथ्य के स्पष्ट प्रमाण हैं।[1] यद्यपि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो परम्पराओ में कुछ लोग आज भी यह मानते हैं कि स्त्री को जिन-प्रतिमा के पूजन एव अभिषेक का अधिकार नही है।

आगमिक व्याख्याकाल मे हम देखते हैं कि यद्यपि सघ के प्रमुख के रूप मे आचार्य का पद पुरुषो के अधिकार मे था, किसी स्त्री आचार्य का कोई उल्लेख नही है, किन्तु गणिनी, प्रवर्तिनी, गणावच्छेदिनी, अभिषेका आदि पद स्त्रियो को प्रदान किये जाते थे।[2] और वे अपने भिक्षुणी सघ की स्वतन्त्र रूप से आन्तरिक व्यवस्था देखती थी। यद्यपि तरुणी भिक्षुणियो की सुरक्षा का दायित्व भिक्षु सघ को सौपा गया था किन्तु सामान्यतया भिक्षुणियाँ अपनी सुरक्षा की व्यवस्था स्वय रखती थी, क्योकि रात्रि मे एव पदयात्रा मे भिक्षु और भिक्षुणियो का एक ही स्थान पर रहना वर्जित था। इस सुरक्षा के लिए भिक्षुणी सघ मे प्रतिहारी आदि के पद भी निर्मित किये गये थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि साधना के क्षेत्र मे स्त्री की गरिमा को यथासम्भव सुरक्षित रखा गया—फिर भी तथ्यो के अवलोकन से यह निश्चित है आगमिक व्याख्याओ के युग मे स्त्री की अपेक्षा पुरुष को महत्ता दी जाने लगी थी।

नारी की स्वतन्त्रता

नारी की स्वतन्त्रता को लेकर प्रारम्भ मे जैनधर्म का दृष्टिकोण उदार था। यौगलिक काल मे

---

१ जैन शिलालेख सग्रह, भाग २।

२ (क) बृहत्कल्पभाष्य, भाग ३, २४११, २४०७, (ख) बृहत्कल्पभाष्य भाग ४, ४३३९। (ग) व्यवहारसूत्र ५/१-१६।

स्त्री-पुरुष सहभागी होकर जीवन जीते थे। आगम ग्रन्थ ज्ञाताधर्मकथा[1] में राजा द्रुपद द्रौपदी से कहते है कि मेरे द्वारा विवाह किये जाने पर तुझे सुख-दुःख हो सकता है अत अच्छा हो अपना वर स्वय ही चुन। यहाँ ग्रन्थकार के ये विचार वैवाहिक जीवन के लिये नारी - स्वातन्त्र्य के समर्थक है। इसी प्रकार हम देखते है कि उपासकदशाग मे महाशतक अपनी पत्नी रेवती के धार्मिक विश्वास, खान-पान और आचार-व्यवहार पर कोई जबरदस्ती नही करता है। जहाँ रेवती अपनी मायके से मँगाकर मद्य-मास का सेवन करती है वहाँ महाशतक पूर्ण साधनात्मक जीवन व्यतीत करता है।[2] इससे ऐसा लगता है कि आगम युग तक नारी को अधिक स्वातन्त्र्य था किन्तु आगमिक व्याख्या साहित्य मे हम पाते है कि पति या पत्नी अपने धार्मिक विश्वासो को एक दूसरे पर लादने का प्रयास करते है। चूर्णि साहित्य मे ऐसी अनेक कथाएँ है जिनमे पुरुष स्त्री को अपने धार्मिक विश्वासो की स्वतन्त्रता नही देता है।

इसी प्रकार धर्मसघ मे भी आगम युग मे भिक्षुणी सघ की व्यवस्था को भिक्षुसघ से अधिक नियन्त्रित नही पाते है। भिक्षुणी सघ अपने आन्तरिक मामलो मे पूर्णतया आत्मनिर्भर था, गणधर अथवा आचार्य का उस पर बहुत अधिक अकुश नही था किन्तु छेदसूत्र एव आगमिक व्याख्या साहित्य के काल मे यह नियन्त्रण क्रमश बढता जाता है। इन ग्रन्थो मे चातुर्मास, प्रायश्चित्त, शिक्षा, सुरक्षा आदि सभी क्षेत्रो मे आचार्य का प्रभुत्व बढता हुआ प्रतीत होता है। फिर भी बौद्ध भिक्षुणी सघ की अपेक्षा जैन भिक्षुणी सघ मे स्वायतत्ता अधिक थी। किन्ही विशेष परिस्थितियो को छोडकर वे दीक्षा, प्रायश्चित्त, शिक्षा और सुरक्षा की अपनी व्यवस्था करती थी और भिक्षु सघ से स्वतन्त्र विचरण करते हुए धर्मोपदेश देती है जबकि बौद्धधर्मसघ मे भिक्षुणी को उपोसथ, वर्षावास आदि भिक्षुसघ के अधीन करने होते थे।

यद्यपि जहाँ तक व्यावहारिक जीवन का प्रश्न था जैनाचार्य हिन्दू परम्परा के चिन्तन से प्रभावित हो रहे थे। मनुस्मृति के समान व्यवहारभाष्य मे भी कहा गया है—

जाया पितिव्वसा नारी दत्ता नारी पतिव्वसा।
विहवा पुत्तवसा नारी नत्थि नारी सयवसा॥ ३/२३३

अर्थात् जन्म के पश्चात् स्त्री पिता के अधीन, विवाहित होने पर पति के अधीन और विधवा होने पर पुत्र के अधीन होती है अत वह कभी स्वाधीन नही है। इस प्रकार आगमिक व्याख्या साहित्य मे स्त्री की स्वाधीनता सीमित की गयी है।

पुत्र-पुत्री की समानता का प्रश्न

चाहे प्रारम्भिक वैदिक धर्म मे पुत्र और पुत्री की समकक्षता स्वीकार की गई हो किन्तु परवर्ती हिन्दू धर्म मे अर्थोपार्जन और धार्मिक कर्मकाण्ड दोनो ही क्षेत्रो मे पुरुष की प्रधानता के परिणामस्वरूप

---

१ जस्स ण अह पुत्ता ! रायस्स वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि, तत्थ ण तुम सुहिया वा दुक्खिया वा भविज्जासि। ज्ञानाधर्मकथा १६/८५

२ तए ण सा रेवई गाहावइणी तेहिं गोणमसेहिं सोल्लेहि य ४ सुर च आसाएमाणी ४ विहरइ।
—उवासगदसाओ २४४

तए णं तस्स महासयगस्स समणोवासगस्स बहूहिं सील जाव भावेमाणस्स चोद्दस सवच्छरा वइक्कता। एव तहेव जेट्ठ पुत्त ठवेइ जाव पोसहसालाए धम्मपण्णत्ति उवसपज्जित्ता ण विहरइ।
—उवासगदसाओ, २४५

पुत्र का स्थान महत्त्वपूर्ण हो गया और यह उद्घोष किया गया कि पुत्र के बिना पूर्वजो की सुगति/मुक्ति सम्भव नही ।[1] फलत आगे चलकर हिन्दू परम्परा मे कन्या की उत्पत्ति को अत्यन्त हीनदृष्टि से देखा जाने लगा। इस प्रकार वैदिक हिन्दू परम्परा मे पुत्र-पुत्री की समकक्षता को अस्वीकार कर पुत्र को अधिक महनीयता प्रदान की गई किन्तु इसके विपरीत जैन आगमो मे हम देखते है कि उपासक और उपासिकाएँ पुत्र-पुत्री हेतु समान रूप से कामना करते हैं ।[2] चाहे अर्थोपार्जन और पारिवारिक व्यवस्था की दृष्टि से जैनधर्मानुयायियो मे भी पुत्र की प्रधानता रही हो किन्तु जहाँ तक धार्मिक जीवन और साधना का प्रश्न था, जैन धर्म मे पुत्र की महत्ता का कोई स्थान नही था। जैन कर्म सिद्धान्त ने स्पष्ट रूप से यह उद्घोषित किया कि व्यक्ति अपने कर्मो के अनुसार ही सुगति या दुर्गति मे जाकर सुख-दु ख का भोग करता है। सन्तान के द्वारा सम्पन्न किए गये कर्मकाण्ड पूर्वजो को किसी भी प्रकार प्रभावित नही करते[3] इस प्रकार उसमे धार्मिक आधार पर पुत्र की महत्ता को अस्वीकार कर दिया। फलत आगमिक युग मे पुत्र-पुत्री के प्रति समानता की भावना प्रदर्शित की गई किन्तु अर्थोपार्जन और पारिवारिक व्यवस्था मे पुरुष की प्रधानता के कारण पुत्रोत्पत्ति को ही अधिक सुखद माना जाने लगा। यद्यपि ज्ञाताधर्मकथा मे मल्लि आदि के जन्मोत्सव के उल्लेख उपलब्ध है,[4] किन्तु इन उल्लेखो के आधार पर यह मान लेना कि जैन सघ मे पुत्र और पुत्री की स्थिति सदैव ही समकक्षता की रही, उचित नही होगा। आगमिक व्याख्या साहित्य एव पौराणिक साहित्य मे उपर्युक्त आगमिक अपवादो को छोडकर जैनसघ मे भी पुत्री की अपेक्षा पुत्र को जो अधिक सम्मान मिला उसका आधार धार्मिक मान्यतायें न होकर सामाजिक परिस्थितियाँ थी। यद्यपि भिक्षुणी सघ की व्यवस्था के कारण पुत्री पिता को उतनी अधिक भारस्वरूप कभी नही मानी गयी जितनी उसे हिन्दू परम्परा मे माना गया था।

इस प्रकार जैन आगमिक व्याख्या साहित्य से जो सूचनाएँ उपलब्ध हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि यौगलिक काल अर्थात् पूर्व युग मे और आगम युग मे पुत्र और पुत्री दोनो की ही उत्पत्ति सुखद थी किन्तु आगमिक व्याख्याओ के युग मे बाह्य सामाजिक एव आर्थिक प्रभावो के कारण स्थिति मे परिवर्तन आया और पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्व दिया जाने लगा।

विवाह सस्था और नर-नारी की समकक्षता का प्रश्न

विवाह-व्यवस्था प्राचीन काल से लेकर आज तक मानवीय समाज व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अग रही है। यह सत्य है कि जैनधर्म के अनुयायियो मे भी प्राचीनकाल से विवाह व्यवस्था प्रचलित रही है किन्तु हमे यह भी स्मरण रखना होगा कि निवृत्तिप्रधान होने के कारण जैनधर्म मे विवाह-व्यवस्था को कोई विशेष महत्व नही दिया गया। धार्मिक दृष्टि से वे स्वपत्नी या स्वपति सन्तोषव्रत की व्यवस्था करते है जिसका तात्पर्य है व्यक्ति को अपनी काम-वासना को स्वपति या स्वपत्नी तक ही सीमित रखना

---

१ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति।

२. जइ ण अह दारग वा दारिग वा पयायामि तो ण अह जाय य जाव अणुवुड्ढेमित्ति।

ज्ञाताधर्मकथा, १, २, १६

३ न तस्स दुक्ख विभयति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा।
एक्को सय पच्चणु होइ दुक्ख, कत्तारमेव अणुजाइ कम्म॥ —उत्तराध्ययन १३, २३

४. ज्ञाताधर्मकथा अध्ययन ८, सूत्र ३०, ३१।

चाहिए। तात्पर्य यह है कि यदि ब्रह्मचर्य का पालन सम्भव न हो तो विवाह कर लेना चाहिए। विवाह-विधि के सम्बन्ध मे जैनाचार्यो की स्पष्ट धारणा क्या थी, इसकी सूचना हमे आगमो और आगमिक व्याख्याओ मे नही प्राप्त होती है। जैन-विवाह-विधि का प्रचलन पर्याप्त रूप से परवर्ती है और दक्षिण के दिगम्बर आचार्यो की ही देन है जो हिन्दू-विवाह-विधि का जैनीकरण मात्र है। उत्तर भारत के श्वेताम्बर जैनो मे तो विवाह विधि को हिन्दू धर्म के अनुसार ही सम्पादित किया जाता है। आज भी श्वेताम्बर जैनो मे अपनी कोई विवाह पद्धति नही है। जैन आगमो और आगमिक व्याख्याओ से जो सूचना हमे मिलती है उसके अनुसार यौगलिक काल मे युगल रूप मे उत्पन्न होने वाले भाई-बहन ही युवावस्था मे पति-पत्नी का रूप ले लेते थे। जैन पुराणो के अनुसार सर्वप्रथम ऋषभदेव से ही विवाह प्रथा का आरम्भ हुआ।[1] उन्होने भाई-बहनो के बीच होने वाली विवाह-प्रणाली को अस्वीकार कर दिया। उनकी दोनो पुत्रियो ब्राह्मी और सुन्दरी ने आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने का निर्णय किया। फलत भरत और बहुबलि का विवाह अन्य वशो की कन्याओ से किया गया। जैन साहित्य के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आगमिक काल तक स्त्री विवाह सम्बन्धी निर्णयो को लेने मे स्वतन्त्र थी और अधिकाश विवाह उसकी सम्मति से ही किये जाते थे जैसाकि ज्ञाता मे मल्लि और द्रौपदी के कथानको से ज्ञात होता है।

आगम ग्रन्थो से जो सूचना मिलती है उसके आधार पर हम इतना ही कह सकते है कि प्रागैतिहासिक युग और आगम युग मे सामान्यतया स्त्री को अपने पति का चयन करने मे स्वतन्त्रता थी। यह भी उसकी इच्छा पर निर्भर था कि वह विवाह करे या न करे। पूर्वयुग मे ब्राह्मी, सुन्दरी, मल्लि, आगमिक युग मे चन्दनबाला, जयन्ती आदि ऐसी अनेक स्त्रियो के उल्लेख प्राप्त होते है जिन्होने आजीवन ब्रह्मचर्यपालन स्वीकार किया और विवाह अस्वीकार कर दिया। आगमिक व्याख्याओ मे हमे विवाह के अनेक रूप उपलब्ध होते है। डॉ० जगदीशचन्द जैन ने जैन आगमो और आगमिक व्याख्याओ मे उपलब्ध विवाह के विविध रूपो का विवरण प्रस्तुत किया है यथा—स्वयवर, माता-पिता द्वारा आयोजित विवाह, गन्धर्व विवाह (प्रेमविवाह), कन्या को बलपूर्वक ग्रहण करके विवाह करना, पारस्परिक आकर्षण या प्रेम के आधार पर विवाह, वर या कन्या की योग्यता देखकर विवाह, कन्यापक्ष को शुल्क देकर विवाह और भविष्यवाणी के आधार पर विवाह।[3] किन्तु हमे आगम एव आगमिक व्याख्याओ मे कही भी ऐसा उल्लेख नही मिल सका जहाँ जैनाचार्यो ने गुण-दोषो के आधार पर इनमे से किसी का समर्थन या निषेध किया हो या यह कहा हो कि यह विवाह-पद्धति उचित है या अनुचित है। यद्यपि विवाह के सम्बन्ध मे जैनो का अपना कोई स्वतन्त्र दृष्टिकोण नही था पर इतना अवश्य माना जाता था कि यदि कोई ब्रह्मचर्य पालन करने मे असफल हो तो उसे विवाह-बन्धन मान लेना चाहिए। जहाँ तक स्वयवर विधि का प्रश्न है निश्चित ही नारी-स्वातन्त्र्य की दृष्टि से यह विधि महत्वपूर्ण थी। किन्तु जनसामान्य मे जिस विधि का प्रचलन था वह माता-पिता के द्वारा आयोजित विधि ही थी। यद्यपि इस विधि मे स्त्री और पुरुष दोनो की स्वतन्त्रता खण्डित होती थी। जैनकथा साहित्य मे ऐसे अनेक उल्लेख उपलब्ध हैं जहाँ बलपूर्वक अपहरण करके विवाह सम्पन्न हुआ। इस विधि मे नारी की स्वतन्त्रता पूर्णतया खण्डित हो जाती थी,

---

१ आवश्यकचूर्णि, भाग १, पृष्ठ १५२।

२. आवश्यकचूर्णि भाग १, पृ० १५२-५३।

३ जैनागम मे भारतीय समाज, —डा. जगदीशचन्द्र जैन, पृ० २५३ २६६।

क्योकि अपहरण करके विवाह करने का अर्थ मात्र स्त्री को चयन की स्वतन्त्रता का अभाव ही नही है यह तो लूट की सम्पत्ति है।

जहाँ तक आगमिक व्याख्याओ का प्रश्न है उनमे अधिकाश विवाह माता-पिता के द्वारा आयोजित विवाह ही है केवल कुछ प्रसगो मे ही स्वयवर एव गन्धर्व विवाह के उल्लेख मिलते हैं जो आगम युग एव पूर्व काल के है। माता-पिता के द्वारा आयोजित इस विवाह-विधि मे स्त्री-पुरुषो की समकक्षता पर कोई प्रभाव नही पडता है। यद्यपि जैनाचार्यो ने विवाह-विधि के सम्बन्ध मे गम्भीरता से चिन्तन नही किया किन्तु यह सत्य है कि उन्होने स्त्री को गरिमाहीन बनाने का प्रयास भी नही किया। जहाँ हिन्दू-परम्परा मे विवाह स्त्री के लिए बाध्यता थी। वही जैन-परम्परा मे ऐसा नही माना गया। प्राचीनकाल से लेकर अद्यावधि विवाह करने न करने के प्रश्न को स्त्री-विवेक पर छोड दिया गया। जो स्त्रियाँ यह समझती थी कि वे अविवाहित रहकर अपनी साधना कर सकेगी उन्हे बिना विवाह किये ही दीक्षित होने का अधिकार था। विवाह-सस्था जैनो के लिये ब्रह्मचर्य की साधना मे सहायक होने के रूप मे ही स्वीकार की गई। जैनो के लिए विवाह का अर्थ था अपनी वासना को सयमित करना। केवल उन्ही लोगो के लिए विवाह सस्था मे प्रवेश आवश्यक माना गया था जो पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य का पालन करने मे असमर्थ पाते हो, अथवा विवाह के पूर्व पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन का व्रत नही ले चुके है। अत हम कह सकते हैं कि जैनो ने ब्रह्मचर्य की आशिक साधना के अग के रूप मे विवाह सस्था को स्वीकार करके भी नारी की स्वतन्त्र निर्णय शक्ति को मान्य करके उसकी गरिमा को खण्डित नही होने दिया।

बहुपति और बहुपत्नी प्रथा

विवाह सस्था के सन्दर्भ मे एक महत्वपूर्ण प्रश्न बहुविवाह का भी है। इसके दो रूप है बहुपत्नी प्रथा और बहुपति प्रथा। यह स्पष्ट है कि द्रौपदी के एक अपवाद को छोडकर हिन्दू और जैन दोनो ही परम्पराओ ने नारी के सम्बन्ध मे एक-पति प्रथा की अवधारणा को ही स्वीकार किया और बहुपति प्रथा को धार्मिक दृष्टि मे अनुचित माना गया। जैनाचार्यो ने द्रौपदी के बहुपति होने की अवधारणा को इस आधार पर औचित्यपूर्ण बताने का प्रयास किया है कि सुकमालिका आर्या के भव मे उसने अपने तप के प्रताप से पाँच पति प्राप्त करने का निदान (निश्चय कर) लिया था।[1] अत इसे पूर्वकर्म का फल मानकर सन्तोष किया गया। किन्तु दूसरी ओर पुरुष के सम्बन्ध मे बहुपत्नी प्रथा की स्पष्ट अवधारणा आगमो और आगमिक व्याख्या साहित्य मे मिलती है। इनमे ऐसे अनेक सन्दर्भ है जहाँ पुरुषो को बहुविवाह करते दिखाया गया है। दुख तो यह है कि उनकी इस प्रवृत्ति की समालोचना भी नही की गई है। अत उस युग मे जैनाचार्य इस सम्बन्ध मे तटस्थ भाव रखते थे यही कहा जा सकता है। क्योकि किसी जैनाचार्य ने बहुविवाह को अच्छा कहा हो, ऐसा भी कोई सन्दर्भ नही मिलता है।

बहुपत्नी प्रथा के आविर्भाव पर विचार करे तो हम पाते है कि यौगलिक काल तक बहुपत्नी प्रथा प्रचलित नही थी। आवश्यकचूर्णि के अनुसार सर्वप्रथम ऋषभदेव ने दो विवाह किये थे। उनके लिये दूसरा विवाह इसलिये आवश्यक हो गया था कि एक युगल मे पुरुष की अकाल मृत्यु हो जाने के कारण उस स्त्री को सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से यह आवश्यक था। किन्तु जब आगे चलकर स्त्री को एक सम्पत्ति के रूप मे देखा जाने लगा तो स्वाभाविक रूप से स्त्री के प्रति अनुग्रह की भावना के

---

१ ज्ञाताधर्मकथा अध्याय १६, सूत्र ७२-७४।

आधार पर नही अपितु अपनी कामवासना और प्रतिष्ठा के लिए बहुविवाह की प्रथा आरम्भ हो गयी। यहाँ हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि समाज मे बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी किन्तु इसे जैन-धर्म सम्मत एक आचार मानना अनुचित होगा। क्योकि जब जैनो मे विवाह को ही एक अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य के रूप मे स्वीकार नही किया गया तो बहुविवाह को धार्मिक कर्तव्य के रूप मे स्वीकार करने का प्रश्न ही नही उठता। जैन आगम और आगमिक व्याख्या साहित्य मे यद्यपि पुरुष के द्वारा बहुविवाह के अनेक सन्दर्भ उपलब्ध होते है किन्तु हमे एक भी ऐसा सन्दर्भ नही मिलता जहाँ कोई व्यक्ति गृहस्थोपासक के व्रतो को स्वीकार करने के पश्चात् बहुविवाह करता है। यद्यपि ऐसे सन्दर्भ तो है कि मुनिव्रत या श्रावकव्रत स्वीकार करने के पूर्व अनेक गृहस्थोपासको की एक से अधिक पत्नियाँ थी। किन्तु व्रत स्वीकार करने के पश्चात् किसी ने अपनी पत्नियो की सख्या मे वृद्धि की हो, ऐसा एक भी सन्दर्भ मुझे नही मिला। आदर्श स्थिति तो एक-पत्नी प्रथा को ही माना जाता था। उपासकदशा मे १० प्रमुख उपासको मे केवल एक की ही अधिक पत्नियाँ थी। साथ ही उस मे श्रावको के व्रतो के जो अतिचार बताये गये है उनमे स्वपत्नी सन्तोष व्रत का एक अतिचार पर विवाहकरण है।[1] यद्यपि कुछ जैनाचार्यो ने पर विवाहकरण का अर्थ स्व-सन्तान के अतिरिक्त अन्यो की सन्तानो का विवाह-सम्बन्ध करवाना माना है किन्तु उपासकदशाग की टीका मे आचार्य अभयदेव ने इसका अर्थ एक से अधिक विवाह करना माना है।[2] अत हम यह कह सकते है कि धार्मिक आधार पर जैनधर्म बहुपत्नी प्रथा का समर्थक नही है। बहुपत्नी-प्रथा का उद्देश्य तो वासना मे आकण्ठ डूबना है और निवृत्तिप्रधान जैनधर्म की मूल भावना के अनुकूल नही है। जैन ग्रन्थो मे जो बहुपत्नी प्रथा की उपस्थिति के सकेत मिलते है वे उस युग की सामाजिक स्थिति के सूचक है। आगम साहित्य मे पार्श्व, महावीर, एव महावीर के नौ प्रमुख उपासको की एक पत्नी मानी गई है।

विधवा विवाह एव नियोग—

यद्यपि आगमिक व्याख्या साहित्य मे नियोग और विधवा-विवाह के कुछ सन्दर्भ उपलब्ध हो जाते है किन्तु हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि ये भी जैनाचार्यो द्वारा समर्थित नही है। निशीथचूर्णि मे एक राजा को अपनी पत्नी से नियोग के द्वारा सन्तान उत्पन्न करवाने के सन्दर्भ मे यह कहा गया है कि जिस प्रकार खेत मे बीज किसी ने भी डाला हो फसल का अधिकारी भूस्वामी ही होता है। उसी प्रकार स्वस्त्री से उत्पन्न सन्तान का अधिकारी उसका पति ही होता है।[3] यह सत्य है कि एक युग मे भारत मे नियोग की परम्परा प्रचलित रही किन्तु निवृत्तिप्रधान जैनधर्म ने न तो नियोग का समर्थन किया न ही विधवा विवाह का। क्योकि उसकी मूलभूत प्रेरणा यही रही कि जब भी किसी स्त्री या पुरुष को काम-वासना से मुक्त होने का अवसर प्राप्त हो वह उससे मुक्त हो। जैनआगम एव आगमिक व्याख्याओ मे हजारो सन्दर्भ प्राप्त है जहाँ पति की मृत्यु के पश्चात् विधवाये भिक्षुणी बनकर सघ की शरण मे चली जाती थी। जैन सघ मे भिक्षुणियो की सख्या के अधिक होने का एक कारण यह भी था कि भिक्षुणी सघ विधवाओ के सम्मानपूर्ण एव सुरक्षित जीवन जीने का आश्रयस्थल था। यद्यपि कुछ लोगो द्वारा यह कहा जाता है कि ऋषभदेव ने मृत युगल की पत्नी से विवाह करके विधवा-विवाह की परम्परा को स्थापित

---

१ उवासकदसा १, ४८। २ उवासगदसा, अभयदेवकृतवृत्ति पृ० ४३

३ निशीथचूर्णि, भाग २, ३८१।

किया था। किन्तु आवश्यक चूर्णि से स्पष्ट होता है कि वह स्त्री मृत युगल की बहन थी, पत्नी नही। क्योकि उस युगल मे पुरुष की मृत्यु बालदशा मे हो चुकी थी। अत इस आधार पर विधवा विवाह का समर्थन नही होता है। जैनधर्म जैसे निवृत्तिप्रधान धर्म मे विधवा-विवाह को मान्यता प्राप्त नही थी।

विधुर-विवाह

जब समाज मे बहु-विवाह को समर्थन हो तो विधुर-विवाह को मान्य करने मे कोई आपत्ति नही होगी। किन्तु इसे भी जैनधर्म मे धार्मिक दृष्टि से समर्थन प्राप्त था, यह नही कहा जा सकता। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् आदर्श स्थिति तो यही मानी गई थी कि व्यक्ति वैराग्य ले ले। मात्र यही नही अनेक स्थितियो मे पति, पत्नी के भिक्षुणी बनने पर स्वय भी भिक्षु बन जाता है। यद्यपि सामाजिक जीवन में विधुर-विवाह के अनेक प्रसग उपलब्ध होते है।

विवाहेतर यौन सम्बन्ध

जैनधर्म मे पति-पत्नी के अतिरिक्त अन्यत्र यौन सम्बन्ध स्थापित करना धार्मिक दृष्टि से अनुचित माना गया। वेश्यागमन और परस्त्रीगमन दोनो को ही अनैतिक कर्म माना गया। फिर भी न केवल गृहस्थ स्त्री-पुरुष अपितु भिक्षु-भिक्षुणियाँ भी अनैतिक यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे। आगमिक व्याख्या साहित्य मे ऐसे सैकडो प्रसग उल्लिखित है जिनमे ऐसे सम्बन्ध हो जाते थे। जैन आगमो और उनकी टीकाओ आदि मे ऐसी अनेक स्त्रियो का उल्लेख मिलता है जो अपने साधना-मार्ग से पतित होकर स्वेच्छाचारी बन गयी थी। ज्ञाताधर्मकथा उसकी टीका, आवश्यकचूर्णि आदि मे पार्श्वपत्थ परम्परा की अनेक शिथिलाचारी साध्वियो के उल्लेख मिलते हैं।[1] ज्ञाताधर्मकथा मे द्रौपदी का पूर्व जीवन भी इसी रूप मे वर्णित है। साधना काल मे वह वेश्या को पाच पुरुषो से सेवित देखकर स्वय पाँच पतियो की पत्नी बनने का निदान कर लेती है।[2] निशीथचूर्णि मे पुत्रियो और पुत्रवधू के जार अथवा धूर्त व्यक्तियो के साथ भागने के उल्लेख हैं। आगमिक व्याख्याओ मे मुख्यत निशीथचूर्णि, बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहार-भाष्य आदि मे ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं जहाँ स्त्रियाँ अवैध सन्तानो को भिक्षुओ के निवास स्थानो पर छोड जाती थी।[3] आगम और आगमिक व्याख्याये इस बात की साक्षी है कि स्त्रियाँ सम्भोग के लिए भिक्षुओ को उत्तेजित करती थी[4] उन्हे इस हेतु विवश करती थी और उनके द्वारा इन्कार किये जाने पर उन्हे बदनाम किये जाने का भय दिखाती थी। आगमिक व्याख्याओ मे इन उपरिस्थितियो मे भिक्षु को क्या करना चाहिए इस सम्बन्ध मे अनेक आपवादिक नियमो का उल्लेख मिलता है। यद्यपि शीलभग सम्बन्धी अपराधो के विविध रूपो एव सम्भावनाओ के उल्लेख जैन परम्परा मे विस्तार से मिलते हैं किन्तु इस चर्चा का उद्देश्य साधक को वासना सम्बन्धी अपराधो से विमुख बनाना ही रहा है। यह जीवन का यथार्थ तो था किन्तु जैनाचार्य उसे विकृतपक्ष मानते थे और उस आदर्श समाज की कल्पना करते है, जहाँ इनका अभाव हो।

---

१ ज्ञाताधर्मकथा, द्वितीयश्रुत स्कन्ध, प्रथम वर्ग, अध्याय २-५
द्वितीय वर्ग, अध्याय, ५ तृतीय वर्ग, अध्याय १-५४

२ ज्ञाताधर्मकथा, प्रथमश्रुतस्कन्ध, अध्याय १६, सूत्र ७२-७४।

३ निशीथचूर्णि, भाग ३ पृ० २६७।

४ निशीथचूर्णि भाग २, पृ० १७३।

आगमिक व्याख्याओ मे उन घटनाओ का भी उल्लेख है जिनके कारण स्त्रियो को पुरुषो की वासना का शिकार होना पडा था। पुरुषो की वासना का शिकार होने से बचने के लिए भिक्षुणियो को अपनी शील-सुरक्षा मे कौन-कौन-सी सतर्कता बरतनी होती थी यह भी उल्लेख निशीथ और बृहत्कल्प दोनो मे ही विस्तार से मिलता है। रूपवती भिक्षुणियो को मनचले युवको और राजपुरुषो की कुदृष्टि से बचने के लिए इस प्रकार का वेश धारण करना पडता था ताकि वे कुरूप प्रतीत हो। भिक्षुणियो को सोते समय क्या व्यवस्था करनी चाहिए इसका भी बृहत्कल्पभाष्य मे विस्तार से वर्णन है। भिक्षुणी सघ मे प्रवेश करने वालो की पूरी जाँच की जाती थी। प्रतिहारी भिक्षुणी उपाश्रय के बाहर दण्ड लेकर बैठती थी। शील सुरक्षा के जो विस्तृत विवरण हमे आगमिक व्याख्याओ मे मिलते है उससे स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष वर्ग स्त्रियो एव भिक्षुणियो को अपनी वासना का शिकार बनाने मे कोई कमी नही रखता था। पुरुष द्वारा बलात्कार किये जाने पर और ऐसी स्थिति मे गर्भ रह जाने पर सघ उस भिक्षुणी के प्रति सद्भावनापूर्वक व्यवहार करता था तथा उसके गर्भ की सुरक्षा के प्रयत्न भी किये जाते थे। प्रसूत बालक को जब वह उस स्थिति मे हो जाता था कि वह माता के बिना रह सके तो उसे उपासक को सौपकर अथवा भिक्षु सघ को सौपकर ऐसी भिक्षुणी पुन भिक्षुणी सघ मे प्रवेश पा लेती थी।[1] ये तथ्य इस बात के सूचक है कि सदाचारी नारियो के सरक्षण मे जैनसघ सदैव सजग था।

नारी-रक्षा

बलात्कार किये जाने पर किसी भिक्षुणी की आलोचना का अधिकार नही था। उसके विपरीत जो व्यक्ति ऐसी भिक्षुणी की आलोचना करता उसे ही दण्ड का पात्र माना जाता था। नारी की मर्यादा की रक्षा के लिए जैनसघ सदैव ही तत्पर रहता था। निशीथचूर्णि मे उल्लेखित कालकाचार्य की कथा इस बात का प्रमाण है कि अहिंसा का प्राणपण से पालन करने वाला भिक्षु सघ भी नारी की गरिमा को खण्डित होने की स्थिति में दुराचारियो को दण्ड देने के लिए शस्त्र पकडकर सामने आ जाता था। निशीथचूर्णि मे कालकाचार्य की कथा इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि आचार्य ने भिक्षुणी[2] एव बहन सरस्वती की शील-सुरक्षा के लिये गर्दभिल्ल के विरुद्ध शको की सहायता लेकर पूरा सघर्ष किया था। निशीथ, बृहत्कल्प, भाष्य आदि मे स्पष्ट रूप से ऐसे उल्लख है कि यदि सघस्थ भिक्षुणियो की शील-सुरक्षा का प्रश्न है और उसके लिए दुराचारी की हत्या करने का भी प्रश्न उपस्थित हो जाये तो ऐसी हत्या का भी समर्थन किया गया था और ऐसे भिक्षु को सघ मे सम्मानित ही किया जाता था। बृहत्कल्प भाष्य मे कहा गया है कि जल, अग्नि, चोर और दुष्काल की स्थिति मे सर्वप्रथम स्त्री की रक्षा करनी चाहिए। इसी प्रकार डूबते हुए श्रमण और भिक्षुणी मे पहले भिक्षुणी की और क्षुल्लक और क्षुल्लिका मे से क्षुल्लिका की रक्षा करनी चाहिए।

सती प्रथा और जैनधर्म

उत्तरमध्य युग मे नारी उत्पीडन का सबसे वीभत्स रूप सती प्रथा बन गया था, यदि हम सती प्रथा के सन्दर्भ मे जैन आगम और व्याख्या साहित्य को देखे तो स्पष्ट रूप से हमे एक भी ऐसी घटना का उल्लेख नही मिलता जहाँ पत्नी पति के शव के साथ जली हो या जला दी गयी हो। यद्यपि निशीथचूर्णि मे एक ऐसा उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार सोपारक के पाँच सौ व्यापारियो को कर न देने के कारण राजा ने जला देने का आदेश दे दिया था, और उक्त उल्लेख के अनुसार उन व्यापारियो की पत्नियाँ भी

१ निशीथचूर्णि, भाग १, पृ० १२६। २ निशीथचूर्णि, भाग ३, पृ० २२८।

उनकी चिताओ मे जल गयी थी ।[1] लेकिन जैनाचार्य इसका समर्थन नही करते है । पुन इस आपवादिक उल्लेख के अतिरिक्त हमे जैन साहित्य मे इस प्रकार के उल्लेख उपलब्ध नही होते है, महानिशीथ मे इससे भिन्न यह उल्लेख भी मिलता है कि किसी राजा की विधवा कन्या सती होना चाहती थी किन्तु उसके पितृकुल मे यह रिवाज नही था अत उसने अपना विचार त्याग दिया ।[2] इससे लगता है कि जैनाचार्यो ने पति की मृत्यूपरान्त स्वेच्छा से भी अपने देह-त्याग को अनुचित ही माना है और इस प्रकार के मरण को बाल-मरण या मूर्खता ही कहा है । सती प्रथा का धार्मिक समर्थन जैन आगम साहित्य और उसकी व्याख्याओ मे हमे कही नही मिलता ।

यद्यपि आगमिक व्याख्याओ मे दधिवाहन की पत्नी एव चन्दना की माता धारिणी आदि के कुछ ऐसे उल्लेख अवश्य हैं जिनमे ब्रह्मचर्य की रक्षा के निमित्त देह-त्याग किया गया है[3] किन्तु यह अवधारणा सती प्रथा की अवधारणा से भिन्न है । जैन धर्म और दर्शन यह नही मानता है कि मृत्यु के बाद पति का अनुगमन करने से अर्थात् जीवित चिता मे जल मरने से पुन स्वर्गलोक मे उसी पति की प्राप्ति होती है । इसके विपरीत जैनधर्म अपनी कर्म सिद्धान्त के प्रति आस्था के कारण यह मानता है कि पति-पत्नी अपने-अपने कर्मो और मनोभावो के अनुसार ही विभिन्न योनियो मे जन्म लेते है । यद्यपि परवर्ती जैन कथा साहित्य मे हमे ऐसे उल्लेख मिलते है जहाँ एक भव के पति-पत्नी आगामी अनेक भवो मे जीवनसाथी बने, किन्तु इसके विरुद्ध भी उदाहरणो की जैन कथा साहित्य मे कमी नही है ।

अत यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि धार्मिक आधार पर जैन धर्म सतीप्रथा का समर्थन नही करता । यद्यपि जैन धर्म के सती प्रथा के समर्थक न होने के कुछ सामाजिक कारण भी है । व्याख्या साहित्य मे ऐसी अनेक कथाएँ वर्णित है जिनके अनुसार पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी न केवल पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करती थी अपितु पति के व्यवसाय का सचालन करती थी । शालिभद्र की माता भद्रा को राजगृह की एक महत्वपूर्ण श्रेष्ठी और व्यापारी निरूपित किया गया है जिसके वैभव को देखने के लिये श्रेणिक भी उसके घर आया था । आगमो और आगमिक व्याख्याओ मे ऐसे अनेक उल्लेख हैं जहाँ कि स्त्री पति की मृत्यु के पश्चात् विरक्त होकर भिक्षुणी बन जाती थी । यह सत्य है कि जैन भिक्षुणी सघ विधवाओ, कुमारियो और परित्यक्ताओ का आश्रय-स्थल था । यद्यपि जैन आगम साहित्य एव व्याख्या साहित्य दोनो मे हमे ऐसे उल्लेख मिलते है जहाँ पति और पुत्रो के जीवित रहते हुए भी पत्नी या माता भिक्षुणी बन जाती थी । ज्ञाताधर्मकथा मे द्रौपदी पति और पुत्रो की सम्मति से दीक्षित हुई थी किन्तु इनके अलावा ऐसे उदाहरणो की भी विपुलता देखी जाती है जहाँ पत्नियाँ पति के साथ अथवा पति एव पुत्रो की मृत्यु के उपरान्त विरक्त होकर सन्यास ग्रहण कर लेती थी । कुछ ऐसे उल्लेख भी मिले हैं जहाँ स्त्री आजीवन ब्रह्मचर्य को धारण करके या तो पितृगृह मे ही रह जाती थी अथवा दीक्षित हो जाती थी । जैन परम्परा मे भिक्षुणी सस्था एक ऐसा आधार रही है जिसने हमेशा नारी को सकट से उबारकर आश्रय दिया है ।

जैन भिक्षुणी सघ, उन सभी स्त्रियो के लिये जो विधवा, परित्यक्ता अथवा आश्रयहीन होती थी, शरणदाता होता था । अत जैन धर्म मे सती प्रथा को कोई प्रश्रय नही मिला । जब-जब भी नारी पर

---

१ (अ) निशीथचूर्णि, भाग २, पृ० ५९-६० ।
(ब) तेमि पच महिलसताइ, अगणि वि अग्गि पावट्ठाणि । —निशीथचूर्णि, भाग ४, पृ० १४ ।

२ महानिशीथ पृ० २९ । देखें, जैनागम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ० २७१ ।

३ आवश्यकचूर्णि, भाग १, पृ० ३१८ ।

कोई अत्याचार किये गये, जैन भिक्षुणी सघ उसके लिए रक्षाकवच बना क्योकि भिक्षुणी सघ मे प्रवेश करने के बाद न केवल वह पारिवारिक उत्पीडन से बच सकती थी अपितु एक सम्मानपूर्ण जीवन भी जी सकती थी। आज भी विधवाओ, परित्यक्ताओ, पिता के पास दहेज के अभाव के कारण अथवा कुरूपता आदि किन्ही कारणो से अविवाहित रहने के लिये विवश कुमारियो के लिये जैन भिक्षुणी सघ आश्रय-स्थल है। जैन भिक्षुणी सघ ने नारी की गरिमा और उसके सतीत्व दोनो की रक्षा की। यही कारण था कि सती-प्रथा जैसी कुत्सित प्रथा जैन धर्म मे कभी भी नही रही।

महानिशीथ मे एक स्त्री को सती होने का मानस बनाने पर भी अपनी कुल-परम्परा मे सती प्रथा का प्रचलन नही होने के कारण अपने निर्णय को बदलता हुआ देखते है। यह इस बात का प्रमाण है कि जैनाचार्यो की दृष्टि सतीप्रथा विरोधी थी। जैन परम्परा मे ब्राह्मी, सुन्दरी और चन्दना आदि को सती कहा गया है और तीर्थकरो के नाम-स्मरण के साथ-साथ आज भी १६ सतियो का नाम स्मरण किया जाता है, किन्तु इन्हे सती इसलिये कहा गया कि ये अपने शील की रक्षा हेतु या तो अविवाहित रही या पति की मृत्यु के पश्चात् इन्होने अपने चरित्र एव शील को सुरक्षित रखा। आज जैन साध्वियो के लिये एक बहुप्रचलित नाम महासती है उसका आधार शील का पालन ही है। जैन परम्परा मे आगमिक व्याख्याओ और पौराणिक रचनाओ के पश्चात् जो प्रबन्ध साहित्य लिखा गया, उसमे सर्वप्रथम सती प्रथा का ही जैनीकरण किया हुआ एक रूप हमे देखने को मिलता है। तेजपाल—वस्तुपाल प्रबन्ध मे बताया गया है कि तेजपाल और वस्तुपाल की मृत्यु के पश्चात् उनकी पत्नियो ने अनशन करके अपने प्राण त्याग दिये।[1] यहाँ पति की मृत्यु के पश्चात् शरीर त्यागने का उपक्रम तो है किन्तु उसका स्वरूप सौम्य बना दिया गया है। वस्तुत यह उस युग मे प्रचलित सती प्रथा की जैनधर्म मे क्या प्रतिक्रिया हुई थी, उसका सूचक है।

गणिकाओ की स्थिति

गणिकाये और वेश्याये भारतीय समाज का आवश्यक घटक रही है। उन्हे अपरिगृहीता माना जाये या परिगृहीता, इसे लेकर जैन आचार्यो मे विवाद रहा है। क्योकि आगमिक काल से उपासक के लिये हम अपरिगृहीता गमन का निषेध देखते है। भ० महावीर के पूर्व पार्श्वापत्य परम्परा के शिथिलाचारी श्रमण यहाँ तक कहने लगे थे कि बिना विवाह किये अर्थात् परिगृहीत किये यदि कोई स्त्री कामवासना की आकाक्षा करती है तो उसके साथ सम्भोग करने मे कोई पाप नही है।[2] ज्ञातव्य है कि पार्श्व की परम्परा मे ब्रह्मचर्य व्रत अपरिग्रह के अधीन माना गया था क्योकि उस युग मे नारी को भी सम्पत्ति माना जाता था, चूकि ऐसी स्थिति मे अपरिग्रह के व्रत का भग नही था इसलिये शिथिलाचारी श्रमण उसका विरोध कर रहे थे। यही कारण था कि भ० महावीर ने ब्रह्मचर्य को जोडा था।

चूँकि वेश्या या गणिका परस्त्री नही थी, अत परस्त्री निषेध के साथ स्वपत्नी सन्तोषव्रत को जोडा गया और उसके अतिचारो मे अपरिगृहीतगमन को भी सम्मिलित किया गया और कहा गया कि गृहस्थ उपासक को अपरिगृहीत (अपने से अविवाहित) स्त्री से सम्भोग नही करना चाहिये। पुन जब

---

१ मन्त्रिण्यौ ललितादेवी सौख्यौ अनशनेन मृते ।   —प्रबन्धकोश, पृष्ठ १२८

२ एवमेगे उ पासत्था, पन्नवति अणारिया ।
इत्थीवसगया बाला, जिणसासणपरम्मुहा ॥
जहा गड पिलाग वा, परिपीलेज्ज मुहुत्तग ।
एव विन्नवणित्थीसु, दोसो तत्थ कओ सिया ॥

यह माना गया कि परिग्रहण के बिना सम्भोग सम्भव नही, साथ ही द्रव्य देकर कुछ समय के लिये ग्रहीत अत वेश्या भी परिग्रहीत की कोटि मे आ जाती है, परिणामस्वरूप धनादि देकर अल्पकाल के लिए ग्रहीत स्त्री (इत्वरिका)[1] के साथ भी सम्भोग का निषेध किया गया और गृहस्थ उपासक के लिए आजीवन हेतु गृहीत अर्थात् विवाहित स्त्री के अतिरिक्त सभी प्रकार के यौन सम्वन्ध निपिद्ध माने गये।

यद्यपि आगमो एव आगमिक व्याख्याओ से प्राप्त सूचनाओ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अन्य सभी लोगो के साथ जैनधर्म के प्रति श्रद्धावान सामान्यजन भी किसी न किसी रूप मे गणिकाओ से सम्वद्ध रहा। कृष्ण वासुदेव की द्वारिका नगरी मे अनगसेना प्रमुख अनेक गणिकाएँ भी थी।[2] स्वय ऋषभदेव के नीलाजना का नृत्य देखते समय उसकी मृत्यु से प्रतिवोधित होने की कथा दिगम्वर परम्परा मे सुविश्रुत है।[3] कुछ विद्वान् मथुरा मे इसके अकन को भी स्वीकार करते है। ज्ञाता आदि मे देवदत्ता आदि गणिकाओ की समाज मे सम्मानपूर्ण स्थिति की सूचना मिलती है।[4] समाज के सम्पन्न परिवारो के लोगो के वेश्याओ से सम्वन्ध थे, इसकी सूचना आगम, आगमिक व्याख्या साहित्य और जैन पौराणिक साहित्य मे विपुल मात्रा मे उपलब्ध है। कान्हड कठिआरा और स्थूलभद्र के आख्यान सुविश्रुत है, किन्तु इन सव उल्लेखो से यह मान लेना कि वेश्यावृत्ति जैनधर्मसम्मत थी या जैनाचार्य इसके प्रति उदासीन भाव रखते थे, सवसे वडी भ्रान्ति होगी। हम पूर्व मे सकेत कर ही चुके है कि जैनाचार्य इस सम्वन्ध मे सजग थे और किसी भी स्थिति मे इसे औचित्यपूर्ण नही मानते थे। सातवी-आठवी शती मे तो जैनधर्म का अनुयायी बनने की प्रथम शर्त यही थी कि व्यक्ति सप्त दुर्व्यसन का त्याग करे। इसमे परस्त्रीगमन और वेश्यागमन दोनो निपिद्ध माने गये थे।[5] उपासकदशा मे "असतीजन पोषण" श्रावक के लिये निषिद्ध था।[6]

आगमिक व्याख्याओ मे प्राप्त उल्लेखो से ज्ञात होता है कि अनेक वेश्याओ और गणिकाओ की अपनी नैतिक मर्यादाएँ थी, वे उनका कभी उल्लघन नही करती थी। कान्हडकठिआर और स्थूलिभद्र के आख्यान इसके प्रमाण है।[6] ऐसी वेश्याओ और गणिकाओ के प्रति जैनाचार्य अनुदार नही थे, उनके लिये धर्मसघ मे प्रवेश के द्वार खुले थे, वे श्राविकाएँ बन जाती थी। कोशा ऐसी वेश्या थी, जिसकी शाला मे जैन मुनियो को नि सकोच भाव से चातुर्मास व्यतीत करने की अनुज्ञा आचार्य दे देते थे। मथुरा के अभिलेख इस वात के साक्षी हैं कि गणिकाएँ जिनमन्दिर और आयागपट्ट (पूजापट्ट) बनवाती थी।[8] यह जैनाचार्यो का उदार दृष्टिकोण था, जो इस पतित वर्ग का उद्धार कर उसे प्रतिष्ठा प्रदान करता था।

नारी-शिक्षा

नारी-शिक्षा के सम्वन्ध मे जैन आगमो और आगमिक व्याख्याओ से हमे जो सूचना मिलती है,

---

१ उपासकदशा १, ८८।

२ अणगसेणा पामोक्खाण अणेगाण गणियासाहस्सीण । —आवश्यकचूर्णि भाग १, पृ० ३५६

३ आदिपुराण, पृ० १२५, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९१९।

४ अड्ढा जाव सामित्त भट्टित्त महत्तरगत आणा ईसर सेणावच्च कारेमाणी • ।

५ देखें, जैन, वौद्ध और गीता का आचार दर्शन, भाग २, डा० सागरमल जैन, पृ० २६८।

६ • असईजणपोसणया। —उपासकदशा १/५१

७ साविका जाया अवभस्स पच्चक्खाइ णण्णत्थ रायाभियोगेण। —आवश्यकचूर्णि, भाग १, पृ० ५५४-५५

८ जैनशिलालेख सग्रह।

उसके आधार पर कहा जा सकता है कि प्रागैतिहासिक काल मे नारी को समुचित शिक्षा प्रदान की जाती थी। अपेक्षाकृत परवर्ती आगम जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, आवश्यकचूर्णि व आदिपुराण आदि मे उल्लेख है कि ऋषभदेव ने अपनी पुत्रियो ब्राह्मी और सुन्दरी को गणित और लिपि विज्ञान की शिक्षा दी थी। मात्र यही नही ज्ञाताधर्मकथा और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति मे स्त्री की चौसठ कलाओ का उल्लेख मिलता है यद्यपि यहाँ इनके नाम नही दिये गये है। सर्वप्रथम जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की टीका मे इनका विवरण उपलब्ध होता है।[1] आश्चर्यजनक यह है कि जहाँ ज्ञाताधर्मकथा मे पुरुष की ७२ कलाओ का वर्णन है वहाँ नारी की चौसठ कला होने का निर्देशमात्र है। फिर भी इतना निश्चित है कि भारतीय समाज मे यह अवधारणा बन चुकी थी। ज्ञाताधर्मकथा मे देवदत्ता गणिका को चौसठ कलाओ मे पण्डित, चौसठ गणिका गुण (काम-कला) से उपपेत, उनतीस प्रकार से रमण करने मे प्रवीण, इक्कीस रतिगुणो मे प्रधान, बत्तीस पुरुषोपचार मे कुशल, नवागसूत्र प्रतिबोधित और अठारह देशी भाषाओ मे विशारद कहा है।[2] इन सूचियो को देखकर स्पष्ट रूप से ऐसा लगता है कि स्त्रियो को उनकी प्रकृति और दायित्व के अनुसार भाषा, गणित, लेखनकला आदि के साथ-साथ स्त्रियोचित नृत्य, सगीत और ललितकलाओ तथा पाक-शास्त्र आदि मे शिक्षित किया जाता था।

यद्यपि आगम और आगमिक व्याख्याएँ इस सम्बन्ध मे स्पष्ट नही है कि ये शिक्षा उन्हे घर पर ही दी जाती थी अथवा वे गुरुकुल मे जाकर इनका अध्ययन करती थी। स्त्री-गुरुकुल के सन्दर्भ के अभाव से ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही की जाती थी। सम्भवत परिवार की प्रौढ महिलाएँ ही उनकी शिक्षा की व्यवस्था करती थी किन्तु सम्पन्न परिवारो मे इस हेतु विभिन्न देशो की दासियो एव गणिकाओ की भी नियुक्ति की जाती थी, जो इन्हे इन कलाओ मे पारगत बनाती थी। आगमिक व्याख्याओ में हमे कोई भी ऐसा सन्दर्भ उपलब्ध नही हुआ जो सहशिक्षा का निर्देश करता हो। नारी की गृहस्थ-जीवन सम्बन्धी इन शिक्षाओ के प्राप्त करने के अधिकार मे प्रागैतिहासिक काल से लेकर आगमिक व्याख्याओ के काल तक कोई विशेष परिवर्तन हुआ हो ऐसा भी हमे ज्ञात नही होता मात्र विषयवस्तु मे क्रमिक विकास हुआ होगा। यद्यपि लौकिक शिक्षा मे स्त्री और पुरुष की प्रकृति एव कार्य आधार पर अन्तर किया गया था किन्तु इसका यह अर्थ नही है कि स्त्री और पुरुष मे कोई भेद-भाव किया जाता था।

जहाँ तक धार्मिक आध्यात्मिक शिक्षा का प्रश्न है वह उन्हे भिक्षुणियो के द्वारा प्रदान की जाती थी। सूत्रकृताग से ज्ञात होता है कि जैन-परम्परा मे भिक्षु को स्त्रियो को शिक्षा देने का अधिकार नही था।[3] वह केवल स्त्रियो और पुरुषो की सयुक्त सभा मे उपदेश दे सकता था। सामान्यतया भिक्षुणियो और गृहस्थ उपासिकाओ दोनो को ही स्थविरा भिक्षुणियो के द्वारा ही शिक्षा दी जाती थी। यद्यपि आगमो एव आगमिक व्याख्याओ मे हमे कुछ सूचनाये उपलब्ध होती है जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि आचार्य और उपाध्याय भी कभी-कभी उन्हे शिक्षा प्रदान करते थे। व्यवहारसूत्र मे उल्लेख है कि तीन वर्ष की पर्याय वाला निर्ग्रन्थ, तीस वर्ष की पर्याय वाली भिक्षुणी का उपाध्याय तथा पाँच वर्ष का पर्याय वाला निर्ग्रन्थ साठ वर्ष की पर्याय वाली श्रमणी का आचार्य हो सकता था।[4] जहाँ

---

१ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति शान्तिसूरीय वृत्ति अधिकार २, ३०। २ ज्ञाताधर्मकथा ४/६।

३ तम्हा उ वज्जए इत्थी आघाते ण सेवि णिग्गथे। —सूत्रकृताग १, ४, १, ११

४. कप्पइ निग्गथीण विइकिट्ठए काले सज्झाय करेत्तए निग्गथ निस्साए।
(तथा) पचवासपरियाए समणे निग्गथे, सट्ठिवास परियाए समणीए निग्गथीए कप्पइ आयरिय उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए। —व्यवहारसूत्र ७, १५ व २०

तक स्त्रियो के द्वारा धर्मग्रन्थो के अध्ययन का प्रश्न है प्रागैतिहासिककाल मे इस प्रकार का कोई बन्धन रहा हो हमे ज्ञात नही होता। अन्तकृद्दशा आदि आगम ग्रन्थो मे ऐसे अनेक उल्लेख मिलते है जहाँ भिक्षुणियो के द्वारा सामायिक आदि ११ अगो का अध्ययन किया जाता था। यद्यपि आगमो मे न कही ऐमा कोई स्पष्ट उल्लेख है कि स्त्री दृष्टिवाद का अध्ययन नही कर सकती थी और न ही ऐसा कोई विधायक सन्दर्भ उपलब्ध होता है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि स्त्री दृष्टिवाद का अध्ययन करती थी। किन्तु आगमिक व्याख्याओ मे स्पष्ट रूप से दृष्टिवाद का अध्ययन स्त्रियो के लिए निषिद्ध मान लिया गया। भिक्षुणियो के लिए दृष्टिवाद का निषेध करते हुए कहा गया कि स्वभाव की चचलता, बुद्धि प्रकर्ष मे कमी के कारण उसके लिए दृष्टिवाद का अध्ययन निषिद्ध बताया गया। जब एक ओर यह मान लिया गया कि स्त्री को सर्वोच्च केवलज्ञान की प्राप्ति हो सकती है तो यह कहना गलत होगा कि उनमे बुद्धि प्रकर्ष की कमी है। मुझे ऐसा लगता है जब हिन्दू परम्परा मे उस नारी को, जो वैदिक ऋचाओ की निर्मात्री थी वेदो के अध्ययन से वचित कर दिया गया तो उसी के प्रभाव मे आकर नारी को जो तीर्थंकर के रूप मे अग और मूल साहित्य का मूलस्रोत थी, दृष्टिवाद के अध्ययन मे वचित कर दिया गया। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि दृष्टिवाद का मुख्य विषय मूलत दार्शनिक और तार्किक था और ऐसे जटिल विषय के अध्ययन को उनके लिए उपयुक्त न समझकर उनका अध्ययन-निषेध कर दिया गया हो। बृहत्कल्पभाष्य और व्यवहारभाष्य की पीठिका मे उनके लिए महापरिज्ञा, अरुणोपपात और दृष्टि-वाद के अध्ययन का निषेध किया गया है। किन्तु आगे चलकर निशीथ आदि अपराध और प्रायश्चित्त सम्बन्धी ग्रन्थो के अध्ययन से भी उसे वचित कर दिया गया। यद्यपि निशीथ आदि के अध्ययन के निषेध करने का मूल कारण यह था कि अपराधो की जानकारी से या तो वह अपराधो की ओर प्रवृत्त हो सकती थी या तो दण्ड देने का अधिकार पुरुष अपने पास सुरक्षित रखना चाहता था। किन्तु निषेध का यह क्रम आगे बढता ही गया। बारहवी-तेरहवी शती के पश्चात् एक युग ऐसा भी आया जब उससे आगमो के अध्ययन का मात्र अधिकार ही नही छीना गया अपितु उपदेश देने का अधिकार भी समाप्त कर दिया गया। आज भी श्वेताम्बर मूर्ति-पूजक परम्परा के तपागच्छ मे भिक्षुणियो को इस अधिकार से वचित ही रखा गया है। यद्यपि पुनर्जागृति के प्रभाव से आज अधिकाश जैन सम्प्रदायो मे साध्वियाँ आगमो के अध्ययन और प्रवचन का कार्य कर रही है।

निष्कर्ष के रूप मे हम यह कह सकते हैं कि प्रागैतिहासिक काल और आगम युग की अपेक्षा आगमिक व्याख्या युग मे किसी सीमा तक नारी के शिक्षा के अधिकार को सीमित किया गया था। तुलनात्मक दृष्टि से यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि नारी-शिक्षा के प्रश्न पर वैदिक और जैन परम्परा मे किस प्रकार समानान्तर परिवर्तन होता गया। आगमिक व्याख्या साहित्य के युग मे न केवल शिक्षा के क्षेत्र मे अपितु धर्मसघ मे और सामाजिक जीवन मे भी स्त्री की गरिमा और अधिकार सीमित होते गये। इसका मुख्य कारण तो अपनी सहगामी हिन्दू परम्परा का प्रभाव ही था किन्तु इसके साथ ही अचेलता के अति आग्रह ने भी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यद्यपि श्वेताम्बर परम्परा अपेक्षाकृत उदार रही, किन्तु समय के प्रभाव से वह भी नही बच सकी और उसमे भी शिक्षा, समाज और धर्मसाधना के क्षेत्र मे आगम युग की अपेक्षा व्याख्या युग मे नारी के अधिकार सीमित किये गये।

●

भारतीय नारी : युग-युग में और आज

—राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराज जी (डी० लिट्०)

[प्रसिद्ध विद्वान्, विचारक, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के जैन मनीषी]

उपेक्षा के चक्रव्यूह मे

महर्षि मनु ने कहा—"*यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता*" जहाँ स्त्रियो की प्रतिष्ठा है, वहाँ देवो का निवास है। स्त्रियो के विषय मे यह सर्वोत्तम उक्ति है। इसी उक्ति के आधार पर बताया जाता है, भारतीय सस्कृति मे नारी का स्थान बहुत ऊँचा है। किसी अपेक्षा विशेष से यह सत्य भी होगा, पर कुल मिलाकर देखे, तो क्या भारत मे, विश्व मे नारी पुरुष की अपेक्षा बहुत ही पिछडी दशा में रही है। समाज का नियन्ता पुरुष रहा है और उसने नारी को सदैव सकीर्ण सीमाओ मे बाधा है। इसमे पुरुष का नारी के प्रति दौर्मनस्य था, ऐसा नही पर, स्वय का व समाज का हित उसको इसी मे लगा। यह एक प्रकार का दृष्टि-दोष था। नारी के व्यक्तिगत हितो को इसमे सर्वथा गौण कर दिया गया था। समाज-हित जो उसमे समझा गया था, वह भी उसका व्यक्तिगत स्वार्थ ही था। उसने सारे सामाजिक नियमन स्त्री पर डाले और स्वय उनसे मुक्त रहा। इसके उदाहरण है—स्त्री एक ही पति करे, पुरुष चाहे तो सहस्रो पत्नियाँ भी कर सकता है—पति की चिता पर स्त्री आत्मदाह करे, सती हो जाये, पुरुष स्त्री के पीछे ऐसा तो करेगा ही नही, पर, उसके पीछे विधुर भी नही रहेगा। उसके घर को फिर से कोई नवोढा सुशोभित करेगी। सदाचार समाज मे आवश्यक है, पर घूँघट इसके लिए स्त्री लगायेगी पुरुष नही। ये नियमन ही पुरुष ने स्वय पर किये होते, तो उसे अनुभव होता, ये कितने कठोर और कितने अव्यवहार्य है। उसने नारी की सीमाओ को इस प्रकार से सोचा ही नही कि ये ही सीमाएँ यदि मेरे लिए हो तो ?

नारी इनको व इस प्रकार के अन्य नियमो को शताब्दियो तक निभाती रही। आज भी वैसी ही अनेक रूढियो से वह चिपटी बैठी है। वह स्वय भी उन्हे छोडना नही चाहती। इसका कारण है, उसका चैतन्य मूर्च्छित हो चला है। उसे स्वत्व का भान भी नही हो पा रहा है। जिन शृखलाओ से वह बाधी गई है और उनकी उपयोगिता जैसे उसे समझाई गई है, वह उसके अणु-अणु मे रम गई है। उसने उसे ही अपना अजर-अमर स्वरूप मान लिया है।

शिक्षा के क्षेत्र मे भी पुरुष ने स्त्री को अपने साथ नही रखा। पुरुष मे विद्या का, बुद्धि का विकास होता चला। नारी जहाँ की तहाँ रही। योग्यता के अभाव मे वह और उपेक्षित होती गई। वाणिज्य

को स्त्री क्या समझे, राजनीति को स्त्री क्या समझे, यह कहकर पुरुष ने उसको घर की चहार-दीवारी तक सीमित कर दिया। पति अपनी आय व सम्पत्ति भी पत्नी को नही बताता, यह कहकर कि उसके पेट मे बात पचेगी नही। गृह, समाज, व्यापार आदि मे स्त्रियो का परामर्श हास्यास्पद बना दिया गया। समाज मे यह मान्यता बन गई, स्त्रियो के परामर्श पर चलने वाला परिवार, समाज या राज्य नष्ट ही हो जायेगा। पुरुष ने नही सोचा, नारी इतनी अयोग्य या अक्षम क्यो है तथा वह योग्य सक्षम कैसे बन सकती है? ऐसा होना प्रकृतिगत मानकर वह उससे वैसे ही बर्तता रहा। परिणाम हुआ, नारी अक्षम बनती गई और उसी आधार पर पुरुष उसकी अधिकाधिक उपेक्षा करता गया। उपेक्षा से अक्षमता की एक शृखला बन गई। उपेक्षा से अक्षमता और अक्षमता से उपेक्षा इस चक्र-व्यूह मे नारी शताब्दियो और सहस्राब्दियो तक फँसी रही।

आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी हेयता

इस प्रकार नारी सामाजिक जीवन मे तो उपेक्षित थी ही, आध्यात्मिक जगत् मे भी वह हेय बताई जाती रही। ऋषियो ने, महर्षियो ने, सन्तो ने, साधको ने पुरुष के पतन का हेतु स्त्रियो को ही बताया। उसे कूट-कपट की खान कहा, पुरुष को नरक-कुण्ड मे डाल देने वाली कहा। और न जाने क्या-क्या कहा? वस्तुस्थिति यह थी कि विकार—हेतु पुरुष के लिए स्त्री थी और स्त्री के लिए पुरुष था। पता नही, स्त्री ने ही पुरुष को कैसे डुबोया? अधिक यथार्थ तो यह रहा कि पुरुष ही नारी को पथ-भ्रष्ट करने मे अगुआ रहे है। पुरुष स्त्रियो को बलात् उठाकर ले भागे, ये उदाहरण तो इतिहास के पृष्ठो पर व धर्म-ग्रन्थो मे अनगिनत मिलेगे, पर स्त्री पुरुषो पर बलात्कार करती प्राय न देखी गई है, न सुनी गई है।

ऋषि-महर्षि और साधु-मुनि विरक्त वृत्ति मे थे। अन्य पुरुषो को भी वे विरक्त देखना चाहते थे। उनकी निरकुश काम-वृत्ति को सीमित करने के लिये उन्होने स्त्री की गर्हा की, पर, समाज ने यही समझा, ज्ञानी पुरुषो ने कहा है अत स्त्री ही ऐसी है, पुरुष ऐसा नही।

अध्यात्म की अन्य अनेक दिशाओ मे भी नारी तर्जित ही रही। नारी होना भी पाप माना गया। किसी ने कहा – यह मोक्ष की अधिकारिणी नही है। किसी ने कहा—यह सन्यास और दीक्षा की अधिकारिणी नही है। अध्यात्म मे और शिक्षा मे स्त्री के पिछडेपन का कितना सबल उदाहरण है कि वैदिक, बौद्ध, जैन परम्परा के असीम वाड्मय मे एक भी ऐसा आधारभूत ग्रन्थ नही है, जो किसी विदुषी साधिका के द्वारा लिखा गया हो।

भारती का या ऐसे कुछ एक अन्य नाम लेकर समस्त नारी समाज को शिक्षा के क्षेत्र मे समुन्नत बताया जाता है। शताब्दियो और सहस्राब्दियो के इतिहास मे दो-चार नामो का मिल जाना नारी समाज की शिक्षित दशा का मान-दण्ड नही बन जाता। उन नामो का उपयोग तो केवल इसी सन्दर्भ मे सगत हो सकता है कि अविद्या के उस युग मे भी नारी ऐसी हो सकती है, तो आज के विद्या-बहुल-युग मे वह अशिक्षित व अपढ रहे, यह लज्जा की बात है।

बुद्ध व महावीर के युग मे

नारी युग-युग के अकन मे इतनी पिछडती गई कि उसे पर्याप्त रूप से उठा लेना किसी एक ही युग-पुरुष के वश की बात नही रही। नारी के प्रति अनेक कुण्ठित लोक-धारणाएँ प्रचलित हो गई थी। किसी भी क्षेत्र मे उसे आगे लाने मे सामाजिक विरोध से लोहा लेना पडता था। बुद्ध के सामने प्रश्न आया, सघ मे पुरुषो की तरह स्त्रियो को भी दीक्षित किया जाये। बुद्ध इस पक्ष मे नही थे। स्त्रियो को

लगता है, नारी के प्रति रहा हीनता और उपेक्षा का भाव गोस्वामी तुलसीदासजी के समय तक तो बना ही रहा। उन्होने स्वय जो नारी को तर्जना के योग्य कहा, इससे उस युग तक की सामाजिक धारणाएँ ही प्रतिबिम्बित होती है। तुलसीदासजी के पश्चात् भी बहुत समय तक भारतीय सस्कारो में वही धारणाएँ पनपती रही। लोक-धारणाएँ थी—एक घर मे दो कलमे नही चलती अर्थात् पत्नी का पढना पति के लिये शुभ नही है। स्त्री के मानस मे इतना भय भर दिया जाये, तो उसके पढने का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। बिना शिक्षा के अन्य विकास स्वय कुण्ठित रह ही जाते है।

नये युग मे काराएँ कटीं

नया युग आया। विज्ञान ने उक्त प्रकार के अन्धविश्वासो को कोसो दूर ढकेल दिया। सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र मे ज्यो ही समानता और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के विचार उभरे, नारी की बहुत सारी काराएँ एक साथ कटी। शिक्षा, साहित्य, राजनीति और सार्वजनिक क्षेत्रो के द्वार प्रथम बार नारी के लिये खुले। युग-युग से सामाजिक घुटन मे रही नारी मुक्त श्वास का वातावरण मिलते ही अप्रत्याशित रूप से आगे बढ गई। अब वह प्रधानमन्त्री के पद पर भी देखी जाती है और अन्य शीर्षस्थ पदो पर भी। सार्वजनिक क्षेत्र मे भी वह पुरुष से पीछे नही है, उसने चन्द दिनो मे यह प्रमाणित कर दिया कि अक्षमता और अयोग्यता परिस्थितिजन्य थी, न कि नैसर्गिक।

स्वाधीनता के लिये नारी ने कोई विप्लव नही किया था। युग की करवट के साथ पुरुष का चिन्तन ही उदार और विकसित हुआ। उसने ही सोचा, समाज का एक अग इस प्रकार प्रक्षाघात से पीडित रहे, यह किसी भी स्थिति मे श्रेयस्कर नही है। वह नारी के साथ न्याय भी नही है। पुरुष की युगीन चेतना ने श्रमिको को अवसर दिया, किसान को अवसर दिया, अछूत को अवसर दिया, इसी प्रकार नारी को भी अपने पैरो पर खडा होने का एव अपनी सुपुप्त शक्तियो को विकसित करने का भी अवसर दिया है।

हेय और उपादेय का मापदण्ड

वर्तमान युग ने भारतीय नारी को सक्रान्ति रेखा पर खडा कर दिया है, एक ओर उसके सामने सीता, सावित्री, आदि के शील व सेवा के आदर्श हैं, एक ओर उसके सामने अपने समानाधिकार के उपयोग का प्रश्न है। दूसरे शब्दो मे एक ओर सस्कृति का प्रश्न है तथा एक ओर आधुनिक प्रगति का प्रश्न है। वर्तमान मे सस्कृति विकृति मिश्रित हो रही है। उसके नाम पर नाना अन्धविश्वास, नाना रूढियाँ चल रही है। नारी को अपनी हस मनीषा से सस्कृति और विकृति का पृथक्करण करना होगा। प्रगति भी आज अन्धानुकरण से पीडित है। उसे भी अपनी स्वस्थ दशा मे लाना होगा। इस प्रकार प्राचीन व अर्वाचीन की समन्वित रूप-रेखा पर भारतीय नारी का नया दर्शन खडा होगा।

भारतीय नारी को अपनी बद्धमूल धारणा का विसर्जन कर देना होगा कि प्राचीन है, वही श्रेष्ठ है। जो पूर्वपुरुषो ने कहा है, वही श्रेष्ठ है। प्राचीन मे भी श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ दोनो रहे है। राम था, उसी युग मे रावण था। सीता थी उसी युग मे शूर्पणखा थी। कृष्ण था, उसी युग मे कस और युधिष्ठिर था, उसी युग मे दुर्योधन था। पूर्वपुरुषो ने जो कहा, अपनी समझ से अपने देश काल मे कहा। आज नारी को अपनी समझ से अपने देश-काल मे सोचना है। बुद्ध ने अपने शिष्यो से कहा—"भिक्षुओ! तुम इसलिए किसी बात को स्वीकार न करो, कि वह तथागत (बुद्ध) की कही हुई है। तुम वही बात स्वीकार करो, जिसके लिए तुम्हारा विवेक तुम्हे प्रेरित करता है।" अस्तु, हेय या उपादेय का मानदण्ड नवीनता या प्राचीनता नही, मनुष्य का प्रबुद्ध विवेक ही उसका अन्तिम मानदण्ड है। भारतीय नारी

पूर्व पुरुषो की बात को विवेकपूर्वक स्वीकार करे, तो वह नवीन युग के स्रष्टाओ का भी आँख मूदकर अनुसरण न करे, भले ही वे डार्विन, मार्क्स या फ्रायड हो।

विभिन्न कार्य-क्षेत्र

क्रमागत भारतीय समाज-व्यवस्था का स्वरूप रहा है—नारी घर को सम्भाले, भोजन-पानी की व्यवस्था करे, बच्चो की सार-सम्भाल करे। शेष सब पुरुष करे। इस व्यवस्था मे स्त्री के पल्ले बहुत ही सीमित दायित्व रहता है। सीमित दायित्व मे नारी का विकास भी सीमित ही रह जाता है। वर्तमान युग का मानदण्ड बन गया है, स्त्री पुरुष के सभी प्रकार के दायित्व मे हाथ बटाएँ और उसे बल दे। शिक्षा, साहित्य, राजनीति, वाणिज्य और सार्वजनिक क्षेत्र मे पुरुष जितना ही दायित्व वह अपना समझे। प्रश्न आता है इससे गृह-व्यवस्था भग हो जायेगी। पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जायेगा। यह प्रश्न यथार्थ नही है। गृहकार्य का सामजस्य बिठाकर भी महिला अन्य किसी भी क्षेत्र मे सुगमता से कार्य कर सकती है। एक वकील अपनी वकालत भी चलाता है, सार्वजनिक क्षेत्र व राजनीति मे भी सुगमता से कार्य करता है। देखा जाता है, वह अपने दोनो क्षेत्रो मे शीर्षस्थ स्थिति तक पहुँचता है। अन्य अनेक लोग बडे-बडे विभिन्न दायित्व एक साथ सभालते है। नारी के लिये ही ऐसा क्यो सोचा जाये कि वह अन्य क्षेत्रो मे आई, तो घर चौपट हो जायेगा।

आर्थिक दायित्व

भारत मे ऐसी परम्परा भी व्यापक रूप से रही है कि परिवार मे एक कमाये और दस व्यक्ति बैठे-बैठे खाये। धनिको, उद्योगपतियो एव बडी नौकरीवालो के ऐसा निभता भी रहा है। युग समाजीकरण की ओर बढ रहा है। कानून और व्यवस्थाएँ निम्न वर्ग के पक्ष में जा रही है। अधिक सग्रह विभिन्न प्रकार से रोके जा रहे है। इस स्थिति में चन्द उद्योगपतियो को छोडकर कोटि-कोटि मध्यम वर्गीय लोगो के लिये तो यह असम्भव ही होता जा रहा है कि एक कमाये और परिवार के अन्य दस बैठे-बैठे खाये। अस्तु, नारी के लिये चिन्तनीय विषय इतना ही है कि किस प्रकार की आजीविका या व्यवसाय को अपनाये, जिससे उसके गृह-दायित्व एव आचरण पर कोई आँच न आये।

कला और सामाजिक श्लाघ्यता

अभिनेता और अभिनेत्री, ये दो शब्द समाज में बहुचर्चित हो चले है। युवक और युवतियाँ इस ओर कटिबद्ध हो रहे है। माता-पिता के चाहे-अनचाहे वे इस ओर बढ़े ही जा रहे है। भारत मे जब चलचित्रो का निर्माण शुरू हुआ तब निर्माताओ को अभिनय के लिये युवतियाँ सुगमता से मिलती ही नही थी। समाज मे इस कार्य को अश्रेष्ठ माना जाता था, अत लडकियाँ इस ओर आने का साहस ही नही करती। अब अभिनेत्रियो की बाढ-सी आ गई है। इस प्रकार के व्यवसाय देश मे पहले भी किसी रूप मे चलते थे। पर समाज मे वे उच्चता की भावना से नही देखे जाते थे। अब इस पहलू को चारो ओर से उभार मिल रहा है। प्रशासन उन्हे सम्मानित करता है। समाज कुछ-कुछ ऊँची निगाहो से देखने लगा है। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओ ने भी उनके लिये स्वतन्त्र पृष्ठ खोल दिये है। व्यावसायिक लोगो के विज्ञापन का निरुपम प्रतीक अभिनेत्री ही बन गई है। अभिनेता और अभिनेत्रियो के साक्षात् मात्र के लिये लाखो लोग एकत्रित हो जाते है। समाज मे सभी प्रकार के व्यवसाय चलते है। श्रेष्ठता की छाप उस पर जब लगाई जाये, तब यह अवश्य सोचना चाहिये, यह हमारी सस्कृति के अनुरूप है या नही। किसी युवती का किसी पुरुष के साथ सार्वजनिक रूप से अभिनय करना श्लाघ्य नही है। समाज मे उसे प्रतिष्ठित करने का तात्पर्य है, समाज की युवतियाँ सामूहिक रूप से इस ओर प्रवृत्त हो। यह

संस्कृति के लिये एक बडा धक्का होता है। ऐसे व्यवसायो में कला का सम्बन्ध अवश्य है, पर उन कलाओ का समाज मे सीमित महत्व ही रहना चाहिए, जो जीवन को श्रेय की ओर प्रेरित करने वाली न हो। कलाकारो के लिये भी यह चिन्तन का विषय है, उनकी कला का समाज के लिये रचनात्मक उपयोग क्या हो ? मनोविनोद तक ही सीमित रहने वाली कलाएँ असामान्य नही होती।

सौन्दर्य प्रतियोगिता

सौन्दर्य प्रतियोगिता का ढर्रा भी देश मे वल पकड रहा है। प्रतिवर्ष एक भारतसुन्दरी व एक विश्वसुन्दरी सामने आती है। सौन्दर्य प्रतियोगिता एक पश्चिमी प्रवाह है। उसका सृजनात्मक पक्ष कोई है ही नही। फिर भी युवतियो के लिये यह एक गड्डुरी-प्रवाह वन रहा है। उसका कारण है, पत्र-पत्रिकाओ के द्वारा इसको महत्व दिया जाना। भारतसुन्दरी या विश्वसुन्दरी चुने जाते ही एक अन-जाना व्यक्तित्व पत्र-पत्रिकाओ के मुखपृष्ठ पर आ जाता है। एक "नोवल प्राइज" पाने वाले को जितनी ख्याति नही मिलती उतनी एक विश्वसुन्दरी को मिल जाती है। कार्य उपयोगिता और निरुपयोगिता के अकन मे कोई अन्तर न हो, तो समझना चाहिये, समाज का बौद्धिक स्तर वहुत न्यून है। यही स्थिति सौन्दर्य प्रतियोगिता के सम्बन्ध मे समाज मे वन रही है।

सौन्दर्य प्रतियोगिता के निर्णायक पुरुष होते है, उनके निर्णय का प्रकार भारतीय सभ्यता से वहुत ही परे का होता है। 'भारतसुन्दरी' और 'विश्वसुन्दरी' ये नाम भी यथार्थ नही है। प्रतियोगिता मे भाग लेने वाली कुछ एक महिलाओ मे जो सर्वाधिक सुन्दर है, उसे भारत मे या विश्व मे सवसे सुन्दर ख्यात कर देना कैसे यथार्थ हो सकता है ? अस्तु, सौन्दर्य प्रतियोगिता का वढता हुआ प्रवाह पश्चिम के अन्धानुकरण का एक ज्वलन्त उदाहरण माना जा सकता है।

पर्दा-प्रथा

इसी प्रकार भारत मे प्रचलित पर्दा-प्रथा सस्कृति के नाम पर होने वाली विकृति की उपासना का ज्वलन्त उदाहरण है। युग के पैने प्रहारो ने पर्दा-प्रथा की जडे खोखली कर दी हैं, फिर भी अन्ध-विश्वासो का यह जर्जर वृक्ष धडाम से गिर नही गया है। कहा जाता है, यह प्रथा यवन-युग की देन है। हो सकता है, यवन-युग मे इसने विशेष वल पकडा हो, पर इसके विरल पद-चिह्न तो बहुत प्राचीनकाल मे भी देखे जाते है। महाकवि कालिदास ने अपने विख्यात नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' मे अयोध्या-नरेश दुष्यन्त की पत्नी व भरत की माता शकुन्तला के अवगुठित होने का वर्णन किया है। महाकवि माघ ने अपने 'शिशुपाल वध' काव्य मे श्रीकृष्ण की रानियो के अवगुठन बताया है। बुद्ध की पत्नी यशोदा ने जो घूघट न रखने का आग्रह लिया, उससे घूघट प्रथा की प्राचीनता ही सिद्ध होती है। प्रश्न प्राचीनता का नही, उपयोगिता का है। प्राचीनकाल मे वह चाहे सदा से ही क्यो न रही हो, आज हमे उसकी कोई उपयोगिता नही लग रही है, तो वह त्याज्य ही है। उसे भारतीय सस्कृति या भारतीय सभ्यता का अग मानकर पुष्ट करते रहना नितान्त हास्यास्पद ही है।

आकर्षक वेशभूषा

नारी समाज मे सौन्दर्य प्रसाधनो का उपयोग पहले भी था, प्रकारान्तर से आज भी है। बहु-मूल्य और जगमगाते आभूषणो से, रग-रगीली साडियो से उसकी मजूषाएँ पहले भी भरी मिलती थी, आज भी भरी मिलती है। पहले स्त्रियो की तरह पुरुष भी चाकचिक्य के समीप था। वह भी रग-रगीले वस्त्रो व वहुमूल्य और विविध आभूषणो मे सजा रहता था। आधुनिक सभ्यता ने उसको बदल दिया।

आभूपण तो उसके शरीर से हट ही गये, वेशभूषा भी एक मान्य स्तर पर आने लगी है। आज बाजार जितना साडियो पर चलता है, उतना धोती और पैटो पर नही चलता। घर मे भी देखे, तो पुरुप और स्त्री के व्यक्तिगत व्यय और सग्रह मे बहुत अन्तर मिलेगा। नारी को इस दिशा मे पुरुष की तरह ही सुधार लाने की अपेक्षा है। भारतीय सस्कृति के अनुसार नारी के लिये शील ही शृगार है, इस आदर्श को वह जीवन मे चरितार्थ क्यो नही करती ? स्त्री और पुरुष के बीच एक-दूसरे का आकर्षण समान है, तो साज-सज्जा का अनहोना भार केवल नारी ही अपने सिर क्यो ले लेती है ? उसे भी अपनी वेष-भूषा के स्तर को पुरुप की तरह सयत और सादा बनाना चाहिये।

आधुनिक वातावरण मे नारी पहले से भी अधिक कृत्रिम होती जा रही है। लिपिस्टिक, पाउडर, विचित्र केशविन्यास कृत्रिमता के सजीव उदाहरण है। अनावरण की मानो प्रतियोगिता चल पडी है। अभयता के नाम पर नग्नता बढ रही है। आवरण और अनावरण की जैसे कोई रेखा ही नही रही है। एक सभ्य पुरुष धोती मे या कुर्ते मे, कोट, बुशशर्ट और पैंट मे आवृत रहता है। सिर पर भी कुछ लोग टोपी या पगडी रख लेते है। स्त्रियो का आवरण मुख से गया, सिर से गया और अब पेट व पीठ से भी जा रहा है।

यह निम्नता की प्रगति अश्लाघ्य है। नारी को स्वय प्रबुद्ध होकर अपनी वेश-भूषा की सयत रेखाएँ स्थिर करनी चाहिये। उसके पक्ष मे जनमत जागृत करना चाहिये ताकि सीमातीत अनावरण सामाजिक मान्यता न पा सके। अस्तु, कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है, नारी प्रगति पाये, पर-सत्य, सयम और सदाचार की पृष्ठभूमि पर।

□□

नारी का मोह पाश

पासेण पजरेण य वज्झति चउपयाय पक्खीइ।
इय जुवइ पजरेण य बद्धा पुरिसा किलिस्सति ॥

—इन्द्रिय पराजयशतक ५२

जैसे रस्सी से बँधे हुए चतुष्पाद—गाय, भैस आदि एव पिजरे मे बन्द पक्षी क्लेश को पाते है उसी प्रकार स्त्री रूपी पिजरे मे फँसा हुआ व्यक्ति भी क्लेश को पाता है।

● ●

सज्जन-वाणी :—

१ धर्म हमे सदाचरण सिखाता है और दुराचरण पर अकुश लगाता है ?
२ धर्म का चिन्तन चरित्र और व्यवहार मे उत्कृष्टता और नैतिकता लाता है।
३ शालीनता, कारुण्य भावना, साम्य भावना और आदर्शवादिता धार्मिक शिक्षा की ही देन है।
४ धर्म नीति की निष्ठा और मर्यादाओ मे रहना सिखाता है जिससे मानव जीवन सुखी बनता है।

जैन आगमों में वर्णित ध्यान-साधिकाएँ

—डॉ० शान्ता भानावत

[प्रिन्सीपल, श्री वीर बालिका महाविद्यालय, जयपुर।

जैन धर्म एव दर्शन की विदुषी लेखिका]

जैन आगमो मे भगवान महावीर का तत्त्व-चिन्तन एव उसे आत्मसात कर साधना पथ पर बढने वाले श्रमण-श्रमणियो और श्रावक-श्राविकाओ का वर्णन है। ध्यान, मन को इन्द्रिय-विषयो से हटाकर आत्म-स्वरूप की ओर अभिमुख करता है। इससे बाहरी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी बनती है। ध्यान आन्तरिक ऊर्जा का स्रोत है। इससे आत्मा निर्मल, शक्तिसम्पन्न और शुद्ध बनती है। जीवन मे पवित्रता, विचारो मे विशुद्धि और व्यवहार मे प्रेम, करुणा, मैत्री व विश्व-वत्सलता का भाव जागृत होता है। कर्म-निर्जरा मे ध्यान सहायक होता है। यह आभ्यन्तर तप है। इससे कर्म अर्थात् पाप दग्ध होकर नष्ट हो जाते है। कर्मो के नष्ट होने से आत्मा की सुषुप्त शक्तिया जाग उठती है। आत्मा परमात्मा बन जाती है। आत्मा के इस चरम आध्यात्मिक विकास मे जैन दर्शन मे स्त्री और पुरुष में किसी प्रकार का भेद नही किया गया है।

मानव सृष्टि के मगल रथ के दो चक्र है—पुरुष और नारी। रथ का एक चक्र दुर्बल अथवा क्षत-विक्षत रहने से जिस प्रकार रथ की गति मे अवरोध पैदा हो जाता है, उसी प्रकार मानव सृष्टि का कोई एक चक्र उपेक्षित, दुर्बल व अशक्त रहने से उसकी गति भी लडखडा जाती है। इसलिये भारतीय मनीषियो ने मानव सृष्टि के इन दोनो अगो को समान महत्व दिया। उपादेयता एव उपकारिता मे कोई भी अग किसी से कम नही है।

वेद, उपनिषद् एव आगम ग्रन्थो के अनुशीलन से यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि नारी भारतीय सस्कृति एव सभ्यता की आदि शक्ति रही है। मानव सभ्यता के विकास मे ही नही किन्तु उसके निर्माण मे भी नारी का योगदान पुरुष से कई गुना अधिक है। भारतीय नारी का समूचा इतिहास नारी के ज्वलन्त त्याग-प्रेम-निष्ठा-सेवा-तप और आत्मविश्वास के दिव्य आलोक से जगमगा रहा है। आत्मा की दृष्टि से श्रमण सस्कृति ने नारी और पुरुष मे कोई तात्त्विक भेद नही माना। उसने पुरुषो की भाँति स्त्रियो को भी तमाम अधिकार दिये। आत्म-विकास की श्रेष्ठतम स्थिति मोक्ष है। मोक्ष के द्वार तक पुरुष भी पहुँचा है और नारी भी पहुँची है। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार सर्वप्रथम मोक्ष जाने वाली (वर्तमान कालचक्र की अपेक्षा) स्त्री ही थी। वह थी भगवान ऋषभदेव की माता मरुदेवी। जिन्होने हाथी पर बैठे-बैठे ही निर्मोह दशा मे कैवल्य प्राप्त कर लिया।

जैन श्रुतिया इसका साक्ष्य है कि प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर चरम तीर्थकर भगवान महावीर के शासन तक मे साधुओ की अपेक्षा साध्वियो तथा श्रावको की अपेक्षा श्राविकाओ की सख्या अधिक रही है। स्त्री स्वभावत ही धर्मप्रिय, करुणाशील एव कष्टसहिष्णु होती है। धार्मिक साधना मे उसकी रुचि तीव्र होती है। तपस्या एव कष्टसहिष्णुता मे भी वह पुरुष से आगे रहती है। जैन शास्त्रो मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है जिनमें किसी तीर्थंकर या आचार्य आदि की एक ही देशना से हजारो स्त्रियाँ एक साथ प्रबुद्ध हो उठती और वे एक साथ ही अपने समस्त भोग, ऐश्वर्य एव सुखो का परित्याग कर रमणी मे श्रमणी बन जाती।

अन्तकृत्‌दशाग सूत्र मे वासुदेव श्रीकृष्ण की रानियो की चर्चा आती है, जिन्होने भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन कर धर्मदेशना सुनी और एक प्रवचन से प्रबुद्ध होकर पद्‌मावती आदि रानियो ने ससार त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा ग्रहण कर ग्यारह अगो का अध्ययन किया। बहुत मे उपवास, वेले, तेले, चोले, पचोले, मासखमण आदि विविध तपस्याओं से आत्मा को भावित करते हुए जीवन पर्यन्त चारित्रधर्म का पालन करते हुए सलेखनापूर्वक उपसर्ग सहन करते हुए अन्तिम श्वास से सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुई। इन रानियो मे मुख्य है—पद्‌मावती, गौरी, गाधारी, लक्ष्मणा सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा, रुक्मिणी आदि।

जैनधर्म-दर्शन मे नारी के भोग्या स्वरूप की सर्वत्र भर्त्सना की गई है और साधिका स्वरूप की सर्वत्र वन्दना, स्तवना। "अन्तकृतशाग" सूत्र मे मगध के सम्राट श्रेणिक की काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा, वीरकृष्णा, पितृसेनकृष्णा, और महासेनकृष्णा आदि दस रानियो का वर्णन है। जिन्होने श्रमण भगवान महावीर के उपदेश से प्रतिवोध पाकर सयम पथ स्वीकार किया। जो महारानियाँ राजप्रासादो मे रहकर विभिन्न प्रकार के रत्नो के हार एव आभूषणो से अपने शरीर को विभूषित करती थी वे जव साधनापथ पर बढी तो कनकावली, रत्नावली आदि विविध प्रकार की तपश्चर्या के हारो को धारण कर अपनी आत्म-ज्योति को चमकाया।

उन्नीसवे तीर्थकर भगवती मल्लीनाथ का नाम जैन इतिहास मे स्वर्णाक्षरो से अकित है। नारी भी आध्यात्मिक विभूतियो एव ऋद्धि-सिद्धियो की स्वामिनी होकर उसी प्रकार तीर्थकर पद को प्राप्त कर सकती है जिस प्रकार पुरुष। भगवती मल्ली का जन्म मिथिला के राजा इक्ष्वाकुवशीय महाराज कुम्भ की महारानी प्रभावती की कुक्षि से हुआ। जन्म से ही विशिष्ट ज्ञान की धारिका होने के कारण इनके पिता ने इनका नाम मल्ली भगवती रखा।

मल्लीकुमारी रूप, गुण, लावण्य मे अत्यन्त उत्कृष्ट थी। इनकी उत्कृष्टता की चर्चा देश-देशान्तरो मे फैल चुकी थी। अनेक देशो के बडे-बडे महिपाल मल्ली पर मुग्ध हो रहे थे। मल्लीकुमारी की याचना के लिए विभिन्न देशो के राजा-महाराजा कुम्भ के पास अपने-अपने दूत भेज रहे थे। इस घटना से राजा चिन्तित हो रहे थे। मल्लीकुमारी ने अपने पिता की चिन्ता दूर करते हुए विभिन्न देशो के भूपतियो को सम्बोधित करते हुए शरीर की क्षणभगुरता और निस्सारता का वोध कराया। मल्ली भगवती का उद्‌वोधन सुन सभी को उनके वचनो पर श्रद्धा हो गई और सभी अध्यात्म-मार्ग पर अग्रसर होने के भाव व्यक्त करने लगे। मल्ली भगवती ने तपपूर्वक सावद्य कर्मो की निर्जरा कर दीक्षा ग्रहण की। आपके साथ तीन सौ स्त्रियाँ और तीन सौ राजकुमार दीक्षित हुए। मल्ली भगवती जिस दिन दीक्षित हुई उसी दिन अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिला पट्ट पर सुखासन से ध्यान स्थित हो गई। अपने शुद्ध भावो मे रमण करते हुए उसी दिन केवलज्ञान की उपलब्धि कर ली।

नारी उच्चकोटि की शिक्षिका और उपदेशिका रही है। उसके उपदेशो मे हृदय की मधुरिमा के साथ मार्मिकता भी छिपी रहती है। तपस्या मे लीन वाहुवली के अभिमान को चूर करने वाली उनकी वहने भगवान ऋपभदेव की दो पुत्रियाँ—ब्राह्मी और सुन्दरी ही थी। उनकी देशना मे अहकार एव अभिमान मे मदोन्मत्त बने मानव को निरहकारी वनने की प्रेरणा थी। उनका स्वर था—

वीरा म्हारा ! गज थकी नीचे उतरो,
गज चढ्या केवली न होसी रे।

वहनो के वचन सुन वाहुवली वाहर से भीतर की ओर मुडे। घोर तपस्वी वाहुवली की अन्तश्चेतना स्फुटित हुई, अहकार चूर-चूर हो गया। लघु वन्धुओ को वन्दना के लिए उनके चरण भूमि मे उठे। वस तभी केवली बाहुवली की जय से दिग-दिगन्त गूँज उठा।

शिक्षा जगत् मे व्राह्मी और सुन्दरी का नाम स्वर्ण-कलश की भाँति जाज्वल्यमान है। 'व्राह्मी लिपि' व्राह्मी की अलौकिक प्रतिभा का परिचायक है तो अकविद्या का आदिस्रोत सुन्दरी द्वारा प्रवाहित किया गया।

श्रमण सस्कृति ने नारी जाति के आध्यात्मिक उत्कर्प को ही महत्व दिया हो ऐसी वात नही है। किन्तु उसके साहस, उदारता एव वलिदान को भी महत्व दिया है। राजीमती, मृगावती, धारिणी, चेलणा आदि नारियो की ऐसी परम्परा मिलती है जो अपने आदर्शो की रक्षा के लिए नारी-सुलभ सुकुमारता को छोडकर कठोर साहस, वौद्धिक कौशल एव आत्मउत्सर्ग के मार्ग पर चल पडी। राजीमती से विवाह करने के लिए वरात सजाकर आने वाले नेमिनाथ जव वाडे मे वधे पशुओ का करुण-क्रन्दन सुनकर मुह मोड लेते हैं, दूल्हे का वेश त्यागकर साधु वेश पहनकर गिरनार की ओर चल पडते है, तव परिणयोत्सुक राजुल विरह-विदग्ध होकर विभ्रान्त नही वनती, प्रत्युत विवेकपूर्वक अपना गन्तव्य निश्चित कर सयममार्ग पर अग्रसर हो जाती है। जव नेमिनाथ के छोटे भाई मुनि रथनेमि उस पर आसक्त होकर सयमपथ से विचलित होते है तो वह सती साध्वी राजीमती उन्हे उद्वोधन देकर पुन चारित्रधर्म मे स्थिर करती हैं। महासती धारिणी आर्या चन्दनवाला की माता थी। जिन्होने अपने शील धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणो का उत्सर्ग कर दिया। धन्य है वह माँ ! सचमुच नारी अवला नही, सवला है। मृगी-सी भोली नही, सिहनी-सी प्रचड भी है।

आर्या चन्दनवाला की कहानी भारतीय नारी की कष्टसहिष्णुता, परदुखकातरता, समभाव, शासन कौशल की कहानी है। राजसी वैभव मे जन्मी, पली-पुसी राजकुमारी एक दिन रथी द्वारा गुलामो के वाजार मे वेश्या के हाथो वेची गई। माँ की तरह ही 'प्राण जाय पर शील न जाय' की दृढप्रतिज्ञ चन्दना जव वेश्या के इरादे को पूरा न कर सकी तो एक सदाचारी सेठ को वेची गई। पितृछाया मे भी दासी की तरह यत्रणा। ईर्ष्यालु सेठानी ने उसके लम्वे-लम्वे वाल कैंची से काट दिये। हाथो मे हथकडियाँ, पैरो मे वेडियाँ पहनाकर भूमिगृह मे डाल दिया घोर अपराधी की तरह। तीन दिन की भूखी-प्यासी वाला को खाने के लिए दिये गये उडद के वाकले।

सकटो और यत्रणाओ की इस घडी मे चन्दना के धैर्य एव साहस का प्रकाश क्षीण नही हुआ। उसकी शान्ति एव समता का सरोवर नही सूखा। वह अपने हृदय मे निरन्तर एक दिव्य-भावना सजोए अज्ञानग्रस्त आत्माओ के मगल-कल्याण की कामना करती रही।

प्रभु महावीर ने चन्दना के अन्तस् को पहचाना। आध्यात्मिक पथ पर बढने वाली नारी का उन्मुक्त हृदय से स्वागत किया। उन्होने चन्दना को उसका खोया हुआ सम्मान दिया। चन्दना प्रभु के चरणो में आई। युगो की जड मान्यताओ को चुनौती देकर उसे श्रमणी रूप में दीक्षित किया। उसे अपनी प्रथम शिष्या बनाया और श्रमणी संघ के नेतृत्व की बागडोर सौपी। चन्दनबाला ने ३६ हजार श्रमणियो एवं ३ लाख से अधिक श्राविकाओं का नेतृत्व कर इस बात को प्रमाणित किया कि नारी में नेतृत्व क्षमता पुरुष से किसी प्रकार कम नही है। चन्दनबाला के साध्वीसघ मे पुष्पचूला, सुनन्दा, रेवती, सुलसा, मृगावती आदि प्रमुख अनेक साध्वियां थी।

तत्त्वज्ञ श्राविका के रूप में जयन्ती का नाम बडे गौरव से लिया जाता है। उसकी तर्क शैली बडी सूक्ष्म और सतुलित थी। वह अनेक बार भगवान महावीर की धर्मसभाओ मे प्रश्नोत्तर किया करती थी। ज्ञान के साथ विनय उसका आदर्श था। प्रभु की वाणी पर उसे अपार श्रद्धा थी। उसका मन विरक्त था। उसने भगवान महावीर का शिष्यत्व स्वीकार किया और आर्या चन्दनबाला के पास प्रव्रजित हुई।

कुछ लोगो ने नारी को विष की बेलड़ी, कलह की जड कहकर उसकी उपेक्षा की है। उन्होने नारी के उज्ज्वल रूप को नही देखा। वह युद्ध की ज्वाला नही, शान्ति की अमृत वर्षा है। वह अन्धकार मे प्रकाश किरण है। उसने अपने बुद्धि चातुर्य और आत्मविश्वास से मानव जाति को शान्ति से जीने की कला सिखाई।

वैशाली गणराज्य चेटक की पुत्री एव वत्सराज शतानीक की पट्टमहिषी मृगावती भी अपने रूप लावण्य में अद्वितीय थी। उसके रूप पर उज्जयिनीपति चण्डप्रद्योत मुग्ध था। मृगावती ने अपनी आध्यात्मिक प्रेरणा से चण्डप्रद्योत को चारित्रधर्म में स्थिर किया। तथा प्रभु महावीर की देशना सुनकर उन्हे वन्दन नमस्कार कर आर्या चन्दनबाला के पास दीक्षा अगीकार की। एक दिन भगवान की सेवा मे साध्वी मृगावती कुछ सतियो के साथ गई हुई थी। वहां से लौटकर पौषधशाला मे चन्दनबाला के पास आने में उन्हे सूर्यादि देवो के प्रकाश के भ्रम के कारण विलम्ब हो गया। रात्रि का अन्धकार बढ गया था। इस प्रकार विलम्ब से मृगावती को आते देख चन्दनबाला ने मृगावती से कहा—महाभागे! तुम कुलीन, विनयशील और आज्ञाकारिणी होते हुए भी इतनी देर तक कहां रही?

गुरुवर्या के उपालभपूर्ण वचन सुन मृगावती का हृदय पश्चात्ताप की ज्वाला से तिलमिला उठा। वे चन्दनबाला के चरणो मे गिर पडी और अपने अपराध के लिये क्षमा मांगते हुए आत्माभिमुख हो गई। आत्मचिन्तन करते-करते सती जी को कुछ ही क्षणो में केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। आर्या चन्दनबाला को जब वास्तविक स्थिति का पता चला तो उन्हे बडा पश्चात्ताप हुआ। वे सोचने लगी कि मैंने आज उपालम्भ देकर केवलज्ञानी मृगावती की आशातना की है। वे उनसे खमाने लगी और आत्मालोचन करते-करते स्वय केवलज्ञान को प्राप्त हो गई। इस प्रकार क्षमा लेने वाली और क्षमा देने वाली दोनो ही आत्म-निरीक्षण करते-करते अपनी कर्म निर्जरा कर केवली बन गई।

सीता, द्रौपदी, दमयन्ती, अजना आदि सतियो का जीवन चरित्र आर्य सस्कृति की एक महान थाती है। इन नारियो ने सद्गुणो के ऊर्ध्वमुखी विकास मे, चारित्रिक श्रेष्ठता मे, सेवा, साधना, सयम एव सहिष्णुता में जो आदर्श उपस्थित किया है, वह ससार मे देव-दुर्लभ सिद्धि है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अबला कही जाने वाली नारी मे जो शील, सयम और शक्ति का विकास हुआ है, उसके मूल मे ध्यान साधना से फलित एकाग्रता, जागरूकता और मानसिक पवित्रता का विशेष योगदान रहा है।

उपर्युक्त ध्यान साधिकाओ का जीवन हमारे वर्तमान जीवन के लिये विशेप प्रेरणादायक है। आज स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे पहले की अपेक्षा काफी प्रगति हुई है। पर इस वहिर्मुखी ज्ञान से जीवन मे इन्द्रिय भोगो के प्रति विशेष आकर्पण और पारिवारिक जीवन मे इर्ष्या-द्वेष-कलह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि काषायिक वृतियो से उत्पन्न तनाव अधिक बढा है। मन अधिक चंचल और अशात वना है। फैशन-परस्ती, दिखावा और धार्मिक आडम्वरो मे भी विशेष वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण ध्यान-साधना की कमी है।

तप के नाम पर भी लम्बे समय तक भूखे रहने पर अधिक वल दिया जाता है। भूखे रहने से इन्द्रियो की उत्तेजना कम होती है, शरीर के प्रति ममत्व भाव मे कमी आती है पर इस लाभ का उपयोग अन्तर्मुखी वनकर कषायो को उपशात करने, किये हुए पापो का सच्चे हृदय से प्रायश्चित्त कर उन्हे पुन न करने, दीन-दु खियो की सेवा करने तथा सत्-साहित्य के अध्ययन-मनन और चिन्तन मे नही किया जाता। इसका परिणाम यह होता है कि तप ताप वनकर रह जाता है। उससे आत्मा को विशेष शक्ति और प्रकाश नही मिल पाता। आवश्यकता इस वात की है कि तप के साथ ध्यान साधना को विशेष रूप से जोडा जाय तभी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एव राष्ट्रीय तनावो से मुक्त हुआ जा सकता है और सच्चे अर्थो मे वास्तविक शाति का अनुभव किया जा सकता है।

○ ○

नारी रूप नदी

सिगार तरगाए, विलासवेलाइ जुव्वणजलाए।
के के जयम्मि पुरिसा, नारी नइए न बुड्डन्ति ॥

—इन्द्रिय पराजयशतक ३६

श्रृगार रूप तरगो वाली, विलासरूप प्रवाह वाली और यौवन रूप जल वाली नारी रूपी नदी मे इस ससार मे कौन पुरुष नही डूवता ?

— ❀ —

प्राकृत साहित्य में वर्णित शील-सुरक्षा के उपाय

डॉ. हुकमचन्द जैन
(सहायक आचार्य,
जैन विद्या एव प्राकृत विभाग,
सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर,
र जस्थान ।)

भारतीय सस्कृति में नारी परम लावण्य एव सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति रही है। परिणामत वह पुरुषो का आकर्षण केन्द्र बनी रही। प्राकृत साहित्य में वर्णित नारियाँ भी परमलावण्य एव सौन्दर्य की खान रही है। यौवन अवस्था की देहली पर आरूढ होकर तरुणियाँ रति की तरह रूपवती दिखाई देने लगती है। ऐसी अनिन्द्य सुन्दरियो पर पुरुषो का आकर्षित होना स्वाभाविक है। किन्तु भारतीय नारियाँ ऐसे कामुक पुरुषो से सघर्ष करती हुई अपने शील को बचाने का प्रयत्न करती रही है। ऐसे उल्लेख आगमसाहित्य मे लगाकर प्राकृत के स्वतन्त्र कथा ग्रन्थो तक मे प्राप्त है। उनमें से शील-रक्षा के कतिपय प्रमुख उपाय इस प्रकार है—

१ दृष्टान्त-उद्बोधन द्वारा।
२ रौद्र रूप प्रदर्शन द्वारा।
३ रूप परिवर्तन द्वारा।
४ पागलपन के अभिनय द्वारा।
५ किसी विशेष युक्ति द्वारा।
६ समय-अन्तराल द्वारा।
७ आत्म-घात द्वारा।
८ लोक-निन्दा का भय दिखाकर।
९ पुरुषो द्वारा शील-रक्षा के उपाय।

(१) दृष्टान्त-उद्बोधन द्वारा—ज्ञाताधर्म कथा के मल्ली अध्ययन मे विवाह के लिए आये हुए सातो राजकुमारो को एक साथ एकत्रित कर मल्ली स्वर्णमय प्रतिमा के दृष्टान्त द्वारा उद्बोधन करती है। उसकी सक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

(क) विदेह राजकुमार मल्ली के रूप यौवन पर मुग्ध होकर अत्यन्त लालायित होकर अनिमेष दृष्टि से उसे देखने लगे। वे सब उससे विवाह करना चाहते थे। इसके लिये वे युद्ध करने के लिए तैयार थे। तब मल्ली अपने को असहाय एव विकट परिस्थितियो मे पा स्वर्ण-प्रतिमा मे एकत्रित सडे हुए भोजन की दुर्गन्ध का उदाहरण प्रस्तुत कर उन्हे सम्बोधित करती हुई कहती है कि—हे देवानुप्रियो! इस स्वर्णमयी प्रतिमा मे प्रतिदिन अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार मे से एक-एक पिण्ड डालते ऐसे अशुभ पुद्गलो का परिणमन हुआ।

इमस्स पुण ओरालिय सरीरस्स खेलासवस्स वतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कसोणियपूयासवस्स दुरूवऊसासनीमासस्स दुरूवमुत्तपूतियपुरिस्सपुण्णस्स सडण जाव धम्मस्स ।[1]

अर्थात् यह एक औदारिक शरीर है, कफ को फराने वाला है, खराब उच्छ्वास एव निश्वास को निकालने वाला है, मूत्र एव दुर्गन्धित मल से परिपूर्ण है, सडना उसका स्वभाव है। अत हे देवानुप्रियो ! आप ऐसे काम-भोगो से राग मत करो। इस उद्बोधन से राजकुमारो को वैराग्य हो गया। अशुचि पदार्थो के दृष्टान्त उद्बोधन देकर शीलरक्षा की कथा प्राकृत के स्वतन्त्र कथा-ग्रन्थो मे भी मिलती है।

(ख) आचार्य नेमिचन्द्र सूरि कृत रयणचूडरायचरिय मे कुलवर्द्धन सेठ की पत्नी अपने शील रक्षा का कोई उपाय नही देखकर दृष्टान्त उद्बोधन के लिए राजा कामपाल एव मदनश्री की कथा सुनाती है। मदनश्री पर राजा विक्रमसेन आसक्त हो गया। उसने अपना प्रणय प्रस्ताव मदनश्री के पास भेजा। मदनश्री ने बडी कुशलता से काम लिया और राजा को अपने भवन मे बुलवा लिया।

जब राजा भोजन करने के लिए बैठा और मनोहर वस्त्रो से ढकी हुई बहुत-सी थालियो को उसने देखा तो उसने सोचा—अहो ! मुझे प्रसन्न करने के लिए मदनश्री ने अनेक प्रकार की रसोई तैयार की है। इससे राजा खुश हो गया। मदनश्री ने सभी थालियो से थोडा-थोडा भोजन राजा को दिया। तब कौतूहल से राजा ने पूछा—अनेक थालियो मे से एक ही प्रकार का भोजन रखने का क्या प्रयोजन ? तब मदनश्री ने कहा—'ऊपर से ढके हुए रेशमी वस्त्रो को दिखाने का प्रयोजन था।' तो राजा ने कहा कि इस प्रकार की व्यर्थ मेहनत करने से क्या लाभ ? जबकि भोजन एक ही था। तब मदनश्री ने कहा—जिस प्रकार से एक ही भोजन अलग-अलग थालियो मे विचित्र दिखाई देता है उसी प्रकार बाहर के वेश से युवतियो का शरीर अलग-अलग दिखाई देता है किन्तु भीतर चर्बी, माँस, मज्जा, शुक्र, फिप्फिस, रुधिर, हड्डी आदि से युक्त अपवित्र वस्तुओ का भण्डार रूप सभी स्त्रियो का शरीर एक जैसा है। फिर भी पुरुष बाहरी रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। जैसे सभी भोजन का स्वाद एक जैसा है वैसे ही सभी स्त्रियो मे एक जैसा ही आनन्द है। अत अपनी पत्नी मे ही सन्तोष कर लेना चाहिए। इस दृष्टान्त से राजा प्रतिबोधित हो जाता है।[2]

(ग) आचार्य नेमिचन्द्रसूरि ने अपने प्रसिद्ध कथाग्रन्थ आख्यानकमणिकोश मे रोहिणी कथा मे भी इसी तरह की कथा दी है। इसमे रोहिणी का पति धनावह सेठ धनार्जन के लिए विदेश चला जाता है। वहाँ का राजा रोहिणी पर मुग्ध हो उससे काम-याचना करता है। रोहिणी अपने शील रक्षा का अन्य उपाय न देखकर राजा को स्वय अपने यहाँ बुलवा लेती है तथा राजा को मर्मस्पर्शी शब्दो मे उपदेश देती है—

हे राजन ! अनीति मे लगे हुए दूसरो को आप शिक्षा देते हैं किन्तु अनीति मे लगे हुए आपको कौन शिक्षा देगा ? हे राजन् ! अनुराग के वश से थोडे से किये गये अनुचित कार्य का भारी परिणाम जीवो को भोगना पडता है। यौवन की मदहोशी से बिना विचारे जो कार्य किये जाते हैं उन कार्यो के परिणाम हृदय को पीडा पहुँचाने वाले होते हैं। आपकी पीब, वसा, माँस, रुधिर, हड्डी (अशुचि पदार्थो) से भरी हुई इन महिलाओ के प्रति इतनी आसक्ति क्यो है और आप अपने कुल को कलकित क्यो कर रहे हैं ? आप प्रजा के लिए पिता के समान हो। आपको ऐसा अनुचित कार्य नही करना चाहिए।

---

१ नायाधम्मकहा (मल्ली अध्ययन) पाथर्डी, १९६४

२, जैन, हुकमचद, रयणचूडरायचरिय का आलोचनात्मक सम्पादन एव अध्ययन—थीसिस १९८३ पृ० ५०६

बहु-पूय-असुइ-वस-मस रुहिर-परिपुरियाण महिलाण ।
कज्जे कि कुणसि नरिद असरिस निय-कुल-कलक ।।

तब वह राजा इस उपदेश से प्रतिबोधित हो जाता ।[1]

(घ) दृष्टान्त उद्बोधन से प्रतिबोधित नही होने की स्थिति में नारी एक कदम और आगे बढकर अर्थात् अशुचि पदार्थों को दिखाकर शील रक्षा करती हुई दिखाई देती है । उत्तराध्ययनसूत्र में राजीमती एव रथनेमि की कथा वर्णित है । इस कथा मे राजीमती पानी से भीगी हुई गुफा मे प्रवेश करती है । उसके पूर्व ही रथनेमि वहाँ साधना कर रहे होते है । ऐसी अवस्था मे राजीमती को देखकर उनकी आसक्ति तीव्र हो उठती है । तब वे राजीमती को कहते है —

हे भद्रे ! हे कल्याणकारिणी ! हे सुन्दर रूप वाली ! हे मनोहर बोलने वाली ! हे सुन्दर शरीर वाली ! मै रथनेमि हूँ । तू मुझे सेवन कर । तुझे किसी प्रकार की पीडा नही होगी । निश्चय ही मनुष्य जन्म का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है । इसलिए हे भद्रे ! इधर आओ । हम दोनो भोगो का उपभोग करे । फिर मुक्तभोगी होकर बाद मे जिनेन्द्र के मार्ग का अनुसरण करेगे ।

यह सुनकर राजमती हतप्रभ रह जाती है । वह रथनेमि को फटकारती हुई कहती है कि—

यदि तू रूप मे वैश्रमण देव के समान और लीला-विलास मे नलकूबर देव के समान हो । अधिक तो क्या यदि साक्षात् इन्द्र भी हो तो भी मै तेरी इच्छा नही करती । अन्त मे राजीमती रथनेमि को अपना वमन पात्र बताती हुई कहती है कि तुम इसे पी लो । तब रथनेमि कहता है कि यह अशुचि पदार्थ है ।

इस पर राजीमती कहती है कि तब मुनि-दशा को छोडकर काम-वासना रूपी ससार मे घृणित पदार्थ रूपी वमन को तुम क्यो पीना चाहते हो ? सयम से विचलित मनुष्य का जीवन उस हरड वृक्ष के समान है जो हवा के एक छोटे से झोके से उखड कर नदी मे बह जाता है । वैसे ही सयम से शिथिल होकर तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से नीचे गिर जायेगी और ससार ससुद्र मे परिभ्रमण करती रहेगी ।[2]

जइ त काहिसि भाव जा जा दिच्छसि नारीओ ।
वाया-इद्धो व हडो, अट्ठिअप्पाभविस्ससि ।।

—उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन २२, सैलाना, १९७४

यह कथा अन्य प्राकृत ग्रन्थो मे भी कुछ हेर-फेर के साथ मिलती है ।[3]

(२) रौद्ररूप प्रदर्शन द्वारा – उपदेश एव दृष्टान्त उद्बोधन द्वारा भी यदि कामी पुरुष नही मानता है और बलात् शील खण्डन करना चाहता है । उस समय नारी अपना विकट रूप धारणकर गर्जना करती है और तब कामी पुरुष डरकर हट जाता है । ऐसी एक कथा आवश्यक निर्युक्ति मे मिलती है ।

चण्डप्रद्योत राजा की शिवा रानी पर उसका मन्त्री भूतदेव मोहित हो जाता है । एक बार

---

१ जैन, प्रेम सुमन, "रोहिणी कथानक" साहित्य सस्थान, उदयपुर १९८६, पृ० २४ से २७

२ (क) उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन २२, सैलाना, १९७४
(ख) जैन, जगदीश चन्द्र, जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, चौखम्बा, वाराणसी, १९६५, पृ० २५१

३. (क) दशवैकालिक सूत्र—२, ७-११
(ख) दशवैकालिकचूर्णी २ पृ० ८७

एकान्त अवसर एव राजा की अनुपस्थिति देखकर, रनिवास मे प्रवेश कर वह रानी से काम-याचना करता है। रानी पहले उसे उद्बोधन देती है। तव भी वह काम के लिए लपकता है। तव शिवा रानी मे अद्भुत शक्ति एव साहस का सचार हो जाता है। वह विजली की तरह त्वरितगति से कुछ चरण पीछे हटी एव प्रलयकर मेघो के समान गर्जना करती हुई उस मन्त्री पर वरस पडी। वह वोली—कामी-कुत्ते! वही ठहर जा। खवरदार जो एक चरण भी आगे वढा। तू तो है ही क्या? इन्द्र स्वय भी प्रयत्न करे तो भी मुझे शील से खण्डित नही कर सकता। अवन्ती नरेश का मित्र होने का तू दावा करता है और उन्ही मे यह भयकर छल करते हुए तुझे लज्जा नही आती। ऐसे चण्डी रूप को देखकर वह मन्त्री डरकर भाग खडा होता है और शिवारानी अपने शील की रक्षा कर लेती है।[1]

(३) **रूप परिवर्तन द्वारा**—नारी विचित्र औषधि प्रयोग एव रूप परिवर्तन से भी अपने शील की सुरक्षा कर लेती है। ऐसी ही एक कथा रूपवती तारा की है। चन्द्र एव उसकी पत्नी तारा को घर छोडने के लिए कहा गया। वे ताम्रलिप्ती नगर मे एक माली के घर रहने लगे। तारा को एक दिन परिव्राजिका के दर्शन हुए। परिव्राजिका ने उसे एक गोली दी जिसके प्रभाव से स्त्री पुरुष और पुरुष स्त्री वन जाय। एक वार वहाँ का राजा तारा पर मोहित हो गया और कहने लगा—प्रिये! तेरे विरह की अग्नि से मेरा अग-अग झुलस रहा है, अपने सगम-सुख मे उसे शान्त कर। ऐसा कहकर राजा ने ज्योही उसे आलिगन-पाश मे वाँधना चाहा, उसने तुरन्त दूर होकर कहा—महाराज! यह क्या? राजा अपने सामने एक पुरुष को खडा देखकर लज्जित हो जाता है और वह रूप-परिवर्तन द्वारा अपने शील की रक्षा करती है। नारियाँ अपने को असहाय अनाथ समझकर, कोई वहाना बनाकर, नाटकीय ढग से अपनी शील रक्षा करती हुई देखी गयी है।[2]

(४) **पागलपन के अभिनय द्वारा**—नर्मदासुन्दरी उसके चाचा वीरदास की अगूठी के वहाने बुलाकर कैद कर ली जाती है और वेश्या वनाने के लिए उसे कितनी ही पीडाएँ सहनी पडती है किन्तु वह वेश्या नही वनती। तव उसे रसोईघर मे काम मिल जाता है। लेकिन शील खण्डन का सकट पुन खडा हो जाता है। अत्यन्त रूपवती होने के कारण राजा उसे बहुत चाहने लगता है। राजा दण्डरक्षक को भेजकर नर्मदासुन्दरी को बुलाता है। तब रास्ते मे ही पानी की एक वावडी देखकर नर्मदा को पालकी से उतार दिया। लेकिन बावडी के पास पहुँचते ही वह फिसल कर गिर पडती है। उसके बाद वह अट्टहासपूर्वक चिल्लाकर कहने लगी—क्या राजा ने मेरे लिए यही आभूषण भेजा है? उसने अपने शरीर पर कीचड लपेट लिया। दण्डरक्षक ने कहा—अरी स्वामिनी! यह क्या? वह उसकी ओर बढा। नर्मदा ने उत्तर दिया—अरे तू राजा की रानी को अपनी रानी वनाना चाहता है? यह कहकर दण्डरक्षक के मुह पर कीचड फेकने लगी। भूतनी-भूतनी का शोर मच गया। नर्मदा नेत्रो को फाड, जीभ निकाल, गीदड की

---

१ (क) शास्त्री, राजेन्द्र मुनि "सत्य-शील की अमर साधिकाएँ", उदयपुर १९७७, पृ० १३०
(ख) आवश्यक निर्युक्ति, गा० १२८४ पृ० १३०

२ (अ) जैन जगदीश चन्द्र, रमणी के रूप, वाराणसी, पृ० २१-२५
(व) जैन, जगदीशचन्द्र, "नारी के विविध रूप" वाराणसी, १९७८, पृ० ६०
(स) वसुदेव हिण्डी, (सघदासगणि), भावनगर, २३३
(द) जैन, जगदीश चन्द्र, प्राकृत जैन कथा साहित्य, अहमदावाद, १९७१, पृ० ४८

बोली बोलती हुई भीड की ओर दौडी। दण्डरक्षक ने राजा के पास पहुँचकर सब हाल सुनाया। राजा उसे पागल मानकर छोड देता है। और इस प्रकार नर्मदा अपने शील को बचा लेती है।[1]

(५) **किसी विशेष युक्ति द्वारा**– किसी विचित्र युक्ति द्वारा भी प्राकृत साहित्य मे शील रक्षा के उपाय वाले दृष्टान्त मिलते है। युक्तिपूर्ण तरीके से शील सुरक्षा करने की कथा कुमारपाल प्रतिबोध नामक ग्रन्थ में मिलती है। कथा इस प्रकार है—

एक बार अजितसेन की पत्नी शीलवती की राजा ने परीक्षा लेनी चाही। उसने एक-एक करके चार युवको को उसके पास भेजा। उन चारो युवको ने शीलवती से काम-भोग की प्रार्थना की। नही मानने पर उन चारो ने शीलवती को धमकाया। जब उसे यह अनुमान हुआ कि यह पूर्वनियोजित योजना है। इससे कभी भी शील भग हो सकता है। तब उसने एक युक्ति का सहारा लिया। वह सहसा अपने व्यवहार मे कोमल हो गयी। उसके वार्तालाप मे सहज अनुराग का स्वर आ गया। उसने उन चारो युवको को पृथक-पृथक रूप से अपनी स्वीकृति दे दी। उसने सन्ध्या के समय एक उद्यान मे चारो को बुलाया गया। पूर्ण नियोजित ढग से उसने उन चारो को एक कुए मे धकेल कर बन्दी बना लिया। इस प्रकार विशेष युक्ति द्वारा उसने अपने शील की रक्षा कर ली।[2]

(६) **समय-अन्तराल द्वारा**—युक्ति, अभिनय, रूप परिवर्तन एव अन्य उपायो द्वारा शील-रक्षा का कोई उपाय नही दिखाई देने पर नारियो द्वारा कामुक व्यक्तियो की प्रणय-याचना को स्वीकार कर उनसे कुछ समय का अवकाश माँगकर अपनी शील रक्षा की जाती थी। इस प्रकार की कथा इस प्रकार है। ज्ञाताधर्म कथा मे, द्रौपदी की कथा वर्णित है जिसमे द्रौपदी राजा पद्मनाभ द्वारा अपहरण कर ली जाती है। राजा उसे अन्त पुर मे लाकर उससे कामना-प्रार्थना करता है। तब द्रौपदी पद्मनाभ से इस प्रकार कहती है—

हे देवानुप्रिय! द्वारवती नगरी मे कृष्ण नामक वासुदेव मेरे स्वामी के भ्राता रहते है। यदि वे छ महीने तक लेने के लिए यहाँ नही आयेंगे तो हे देवानुप्रिय! आप जो कहेगे वही मैं करूँगी।[3]

इस प्रकार समय माँगने को कथाएँ परवर्ती प्राकृत साहित्य मे भी मिलती है यथा—

(१) सती मृगावती एव चण्डप्रद्योत की कथा।[4]

(२) तिलकसुन्दरी एव मदनकेशरी की कथा।[5]

(३) जयलक्ष्मी एव विजयसेन की कथा।[6]

(४) रत्नवती एव रुद्रमत्री की कथा।[7]

---

१ (अ) जैन जगदीश चन्द्र, नारी के विविध रूप, पृ० २६-२७
(ब) शास्त्री, नेमिचन्द्र, वाराणसी, १९६६, पृ० ४९४

२. शास्त्री राजेन्द्र मुनि, सत्यशील की अमर साधिकाएँ, पृष्ठ २२६।

३. (अ) णायाधम्मकहा (१६ वाँ अध्ययन) पायर्डी, पृ० ४९९-५००
(ब) शास्त्री, राजेन्द्र मुनि, सत्यशील की अमर साधिकाएँ, पृ० ७७ ७९।

४ वही, पृ० ११०, पर उद्धृत, आवश्यक निर्युक्ति, गा०, १०४८ एव दशवैकालिक निर्युक्ति-अ० १ गा० ७

५. जैन, हुकुमचन्द, "रयणचूडरायचरिय का आलोचनात्मक सम्पादन एव अध्ययन" थीसिस १९८३, अनु० ६६ पं० ०-३।

६. प्राकृत कथा संग्रह, सूरत, १९५२, पृ० १७, गा० ९०-९५

७ वही पृ० २ गा० ५०-६०

(७) **आत्मघात द्वारा**—शील रक्षा का कोई उपाय नही दिखाई देने पर शीलवती नारियाँ आत्मघात करने के लिए प्रवृत्त हो जाती है किन्तु शील खण्डित नही होने देती। ऐसी कथाओ मे सती चन्दना की कथा प्रसिद्ध है।[1]

कभी-कभी कोई कामी व्यक्ति अपने घर मे ही अपने छोटे भाई की पत्नी के साथ उदाहरणार्थ—राजा मणिरथ अपने छोटे भाई की पत्नी, तो कभी पुत्रवधु तो कभी निकटतम सम्बन्धियो की स्त्रियो के साथ अपनी काम-भावना व्यक्त करने लगते है। ऐसी विकट परिस्थितियो मे भी नारी ने अपने शील की रक्षा की है। ऐसी ही एक कथा सत्य शील की अमर साधिकाएँ नामक पुस्तक मे वर्णित है।

(८) **लोक-निन्दा का भय दिखाकर**—राजा मणिरथ अपने छोटे युगबाहु की पत्नी मदनरेखा पर आसक्त था किन्तु मदनरेखा इस बात से अनभिज्ञ थी। वह बडे भाई (राजा) को पिता की तरह मानती थी किन्तु कामाभिभूत राजा कई प्रकार के उपहार उसे भेजता रहता था। उसे राजा के प्रति किंचिन मात्र शका नही थी। एक दिन राजा उसे अकेली समझकर उसके भवन मे चला गया और और काम-भावना दर्शाने लगा। तव मदनरेखा उस बात को भाँप गयी। उसने राजा को ललकार कर भगा दिया। राजा उसे कई वार प्राप्त करने का प्रयत्न करता है किन्तु लोक-निन्दा का भय दिखाने पर वह विफल हो जाता है।[2]

(९) **पुरुषो द्वारा शील-सुरक्षा**—प्राकृत साहित्य मे ऐसी कथाएँ भी मिलती है जिसमे स्त्री पुरुषो से काम-याचना करती है। पुरुष उपदेश द्वारा या अन्य उपायो द्वारा अपनी शील वृत्ति का पालन करते है। यथा—

(क) 'समराइच्चकहा' के पचम भव मे ऐसी ही एक कथा वर्णित है जिसमे सनत्कुमार अपने पिता से रुष्ट होकर घर से चला गया। एक बार ताम्रलिप्ति मे विलासवती के भवन के समीप से निकला दोनो एक-दूसरे पर मोहित हो गये। ये प्रेम-प्रसग चल ही रहा था कि एक दिन प्रेमिका की सौतेली माता रानी अनगवती ने सनत्कुमार को अपने पास बुलाया और स्वय उससे प्रेम याचना को किन्तु सनत्कुमार ने उसकी वात को अस्वीकार करके अपने शीलव्रत का पालन किया।[3]

(ख) ऐमी ही एक कथा समराइच्च कहा के अष्टम भव मे भी आयी है जिसमे रत्नवती की को अज्ञान चेष्टा के फल के उदाहरण मे गजिनी रत्नावती के पूर्व भव की कथा कही गयी है।[4]

(ग) ऐसी ही एक कथा आख्यानक मणिकोश मे भी मिलती है जिसमे सुदर्शन अपने को नपुसक वताकर अपने शील की सुरक्षा कर लेता है।

एक वार कपिल घर पर नही थे तब उसकी पत्नी कपिला ने अवसर देखकर सुदर्शन सेठ से काम भोग की प्रार्थना की। तब सुदर्शन सेठ अपने शील की सुरक्षा करता हुआ कहता है—मैं तुम्हे चाहता हुआ भी नपुसक हूँ। ऐसा कहता हुआ वह वहाँ से भाग निकला। यथा—

---

१ आख्यानकमणिकोश (नेमिचन्द्र) पृ० ३६, गा० ६-७

२ शास्त्री, राजेन्द्र मुनि, "सत्य-शील की अमर साधिकाएँ", पृ० १५६-१५७

३ वही पृ० १८४-१९१

४ जैन रमेश चन्द्र, समराइच्चकहा (अष्टम भव), मेरठ १९८०, पृ० ६०

भणिय सविसाएणं सुयणु समीहेमि सगय तुज्झ ।
कितु नियदुकियकम्मेण निमिओ पडओ अहय ॥

—आ म को पृ १४२

डा० हीरालाल जैन ने "सुदसणचरिउ" की भूमिका मे पुरुष द्वारा शील-रक्षा के उपायो के कई सन्दर्भ भारतीय साहित्य से खोज कर प्रस्तुत किये है ।[1]

प्राकृत साहित्य मे उपलब्ध शील-रक्षा के उपर्युक्त उपायो के प्रसगो से स्पष्ट है कि भारतीय समाज मे शील का पालन करना एक महत्वपूर्ण जीवन मूल्य रहा है। भारतीय नारी का शील एक ऐसा आभूपण माना गया है, जो उसे भौतिक आभूपणो से अधिक सुशोभित करता है। इसीलिए शील की महिमा सर्वत्र गायी गयी है। इस विवरण से यह भी प्रकट होता है कि भारतीय नारी सघर्पशीला रही है। वह सकटो से घवडाती नही है। ये प्रसग इस बात की शिक्षा देते है कि नारी केवल भोग्या नही है। उसका भी अपना सम्मान एव स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। पुरुपो को उसकी रक्षा करनी चाहिए। यही बात नारी को भी सोचनी चाहिए कि वह भौतिक सुख से ऊपर उठे। प्राकृत साहित्य का शील, सदाचार, पुरुपार्थ, आत्मनिर्भरता आदि जीवनमूल्यो की दृष्टि से अध्ययन किया जाना चाहिए।

---

१. जैन हीरालाल, सुदसणचरिउ, वैशाली—१६७० भूमिका पृ० १८-२३

○○

नारी के विविध रूप

गाहा कुला सुदिव्वा व भावका मधुरोदका ।
फुल्ला व पउमिणि रम्मा वालक्कता व मालवी ॥
हेमा गुहा ससीहा वा, माला वा वज्झकप्पिता ।
सविसा गधजुत्ती वा अन्तो दुट्ठा व वाहिणी ॥
गरता मदिरा वा वि जोगकण्णा व सालिणी ।
नारी लोगम्मि विण्णेया जा होज्जा सगुणोदया ॥

—इसिभासियाइं २२, ३, ८

नारी सुदिव्य कुल की गाथा के सदृश है, वह सुवासित मधुर जल के समान है, विकसित रम्य पद्मिनी (कमलिनी) के समान है और व्याल से लिपटी मालती के समान है।

वह स्वर्ण की गुफा है, पर उसमें सिंह बैठा हुआ है। वह पुष्पों की माला है, पर विष पुष्प की बनी हुई है। दूसरों के संहार के लिए वह विष मिश्रित गध-पुटिका है। वह नदी की निर्मल जल-धारा है, किन्तु उसके बीच मे भयंकर भँवर है जो प्राणापहारक है।

वह मत्त बना देने वाली मदिरा है। सुन्दर योग-कन्या के सदृश है। यह नारी है, स्वगुण के प्रकाश मे यथार्थ नारी है।

—●—

भगवान् महावीर की दृष्टि में—नारी

विमला मेहता
(चिन्तनशील लेखिका, सामाजिक कार्यकर्त्री)

ईसा के लगभग पाँच सदी पूर्व समाज की प्रचलित सभी दूषित मान्यताओ को अहिंसा के माध्यम से बदल देने वाले महावीर वर्द्धमान थे। उनके सघ मे एक ओर हरिकेशी और मैतार्य जैसे शूद्र थे तो दूसरी ओर महाराजा अजातशत्रु व वैशालीपति राजा चेटक जैसे सम्राट् भी थे। विनम्र परन्तु सशक्त शब्दो मे महावीर ने घोषणा की कि समस्त विराट् विश्व मे सचराचर समस्त प्राणी वर्ग मे एक शाश्वत स्वभाव है—जीवन की आकाक्षा। इसलिये "मा हणो"। न कष्ट ही पहुचाओ, न किसी अत्याचारी को प्रोत्साहन ही दो। अहिसा के इस विराट स्वरूप का प्रतिपादन करने का ही यह परिणाम है कि आज भ० महावीर, अहिसा, जैन धर्म, तीनो शब्द एक दूसरे के पर्याय बन चुके है।

क्रान्तिकारी कदम

युग-पुरुष भ० महावीर जिन्होने मनुष्य का भाग्य ईश्वर के हाथो मे न देकर मनुष्य मात्र को भाग्य-निर्माता बनने का स्वप्न दिया, जिन्होने शास्त्रो, कर्मकाण्डो और जन समुदाय की मान्यताएँ ही बदल दी, उन महावीर की दृष्टि मे मानव जगत् के अर्धभाग नारी का क्या स्थान है?

यदि उस समय के सामाजिक परिवेश मे देखा जाये तो यह दृष्टि-गोचर होता है कि जिन परिस्थितियो मे महावीर का आविर्भाव हुआ, वह समय नारी के महापतन का समय था। 'अस्वतन्त्रता स्त्री पुरुष-प्रधाना" तथा "स्त्रिया वेश्यास्तथा शूद्रा येपि स्यु पाप-योनय" जैसे वचनो की समाज मे मान्यता थी। ऐसे समय महावीर द्वारा नारी का खोया सम्मान दिलाना एक क्रातिकारी कदम था। जहाँ स्त्री वर्ग मे इस परिवर्तन का स्वागत हुआ होगा, वहाँ सम्भवत पुरुष वर्ग विशेषकर तथाकथित उच्च वर्ग को ये परिवर्तन सहन न हुए होगे।

नारी को खोया सम्मान मिला

बचपन से निर्वाण प्राप्ति तक का भ० महावीर का जीवन-चरित्र एक खुली पुस्तक के समान है। उनके जीवन की घटनाओ और विचारो-त्तेजक वचनो का अध्ययन किया जाय तो उसके पीछे छिपी एकमात्र भावना, नारी को उसका खोया सम्मान दिलाने का सतत् प्रयत्न, का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

मे कई प्रकार की दासियो जैसे धाय, क्रीतदासी, कुलदासी, ज्ञातिदासी आदि की सेवा प्राप्त की थी व उनके जीवन से भी परिचित थे। इस प्रथा का प्रचलन न केवल सुविधा की खातिर था, बल्कि दासियाँ रखना वैभव व प्रतिष्ठा की निशानी समझा जाता था। जब मेघकुमार की सेवा-सुश्रूषा के लिए नाना देशो से दासियो का क्रय-विक्रय हुआ तो महावीर ने खुलकर विरोध किया और धर्म-सभाओ मे इसके विरुद्ध आवाज बुलन्द की।

बौद्ध आगमो के अनुसार आम्रपाली वैशाली गणराज्य की प्रधान नगरवधू थी। राजगृह के नैगम नरेश ने भी सालवती नाम की सुन्दरी कन्या को गणिका रखा। इसका जनता पर कुप्रभाव पडा और सामान्य जनता की प्रवृत्ति इसी ओर झुक गई। फलस्वरूप गणिकाएँ एक ओर तो पनपने लगी, दूसरी ओर नारी वर्ग निन्दनीय होता गया।

भिक्षुणी का आदर

जब महावीर ने भिक्षुणी सघ की स्थापना की तो उसमे राजघराने की महिलाओ के साथ दासियो व गणिकाओ-वेश्याओ को भी पूरे सम्मान के साथ दीक्षा देने का विधान रखा। दूसरे शब्दो मे महावीर के जीवन-काल मे जो स्त्री गणिका, वेश्या, दासी के रूप मे पुरुष वर्ग द्वारा हेय दृष्टि से देखी जाती थी, भिक्षुणी सघ मे दीक्षित हो जाने के पश्चात् वह स्त्री समाज की दृष्टि मे वन्दनीय हो जाती थी। नारी के प्रति पुरुष का यह विचार परिवर्तन युग-पुरुष महावीर की देन है।

भगवान बुद्ध ने भी भिक्षुणी सघ की स्थापना की थी, परन्तु स्वयमेव नही आनन्द के आग्रह से और गौतमी पर अनुग्रह करके। पर भगवान् महावीर ने समय की माँग समझ कर परम्परागत मान्यताओ को बदलने के ठोस उद्देश्य से सघ की स्थापना की। जैन शासन-सत्ता की बागडोर भिक्षु-भिक्षुणी, श्रावक-श्राविका इस चतुर्विध रूप मे विकेन्द्रित कर तथा पूर्ववर्ती परम्परा को व्यवस्थित कर महावीर ने दुहरा कार्य किया।

इस सघ मे कुल चौदह हजार भिक्षु, तथा छत्तीस हजार भिक्षुणियाँ थी। एक लाख उनसठ हजार श्रावक और तीन लाख अठारह हजार श्राविकाएँ थी। भिक्षु सघ का नेतृत्व इन्द्रभूति के हाथो मे था तो भिक्षुणी सघ का नेतृत्व राजकुमारी चन्दनबाला के हाथ मे था।

पुरुष की अपेक्षा नारी सदस्यो की सख्या अधिक होना इस बात का सूचक है कि महावीर ने नारी जागृति की दिशा मे सतत् प्रयास ही नही किया, उसमे उन्हे सफलता भी मिली थी। चन्दनबाला, काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, महाकृष्णा आदि क्षत्राणियाँ थी तो देवानन्दा आदि ब्राह्मण कन्याएँ भी सघ मे प्रविष्ट हुईं।

"भगवती-सूत्र" के अनुसार जयन्ती नामक राजकुमारी ने महावीर के पास जाकर गम्भीर तात्त्विक एव धार्मिक चर्चा की थी। स्त्री जाति के लिए भगवान् महावीर के प्रवचनो मे कितना महान् आकर्षण था, यह निर्णय भिक्षुणी व श्राविकाओ की सख्या से किया जा सकता है।

नारी जागरण विविध आयाम

गृहस्थाश्रम मे भी पत्नी का सम्मान होने लगा तथा शीलवती पत्नी के हित का ध्यान रखकर कार्य करने वाले पुरुष को महावीर ने सत्पुरुष बताया। सप्पुरिसो " पुत्तदारस्स अत्थाए हिताय सुखाय होति"""" विधवाओ की स्थिति मे सुधार हुआ। फलस्वरूप विधवा होने पर बालो का काटना आवश्यक

नही रहा। विधवाएँ रगीन वस्त्र भी पहनने लगी जो पहले वर्जित थे। महावीर की समकालीन थावच्चा सार्थवाही नामक स्त्री ने मृत पति का सारा धन ले लिया था जो उस समय के प्रचलित नियमो के विरुद्ध था। "तत्थण बारवईए थावच्चा नाम गाहावइणी परिवसई अड्ढा जाव' ''' ।

महावीर के समय मे सती प्रथा बहुत कम हो गई थी। जो छुटपुट घटनाएँ होती थी वे जीव हिसा के विरोधी महावीर के प्रयत्नो से समाप्त हो गईं। यह सत्य है कि सदियो पश्चात् वे फिर आरम्भ हो गयी।

बुद्ध के अनुसार स्त्री सम्यक् सम्बुद्ध नही हो सकती थी, किन्तु महावीर के अनुसार मातृजाति तीर्थंकर भी बन सकती थी। मल्ली ने स्त्री होते हुए भी तीर्थंकर की पदवी प्राप्त की थी।

महावीर की नारी के प्रति उदार दृष्टि के कारण परिव्राजिका को पूर्ण सम्मान मिलने लगा। राज्य एव समाज का सबसे पूज्य व्यक्ति भी अपना काम छोडकर उन्हे नमन करता व सम्मान प्रदर्शित करता था। "नायधम्मकहा" आगम मे कहा है —

तए ण से जियसत्तु चोक्ख परिव्वाइय एज्जमाण पासइ सीहासणाओ अब्भुट्ठेई 'सक्कारेई आसणेण उवनिमन्तेई।

इसी प्रकार बौद्ध—युग की अपेक्षा महावीर युग मे भिक्षुणी सघ अधिक सुरक्षित था। महावीर ने भिक्षुणी सघ की रक्षा की ओर समाज की ध्यान आकर्षित किया।

यह सामयिक व अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा कि महावीर स्वामी के उन प्रवचनो का विशेष रूप से स्मरण किया जाये जो पच्चीस सदी पहले नारी को पुरुष के समकक्ष खडा करने के प्रयास मे उनके मुख से उच्चरित हुए थे।

○○

सज्जन वाणी :—

१. जो व्यक्ति धार्मिकता, और नैतिकता तथा मर्यादाओ का परित्याग कर देता है, वह मनुष्य कहलाने का अधिकार खो देता है।

२. धर्म से ही व्यक्तिगत जीवन मे अनुशासन, सामाजिक जीवन मे समानता, सेवा और श्रद्धा का सुयोग मिलता है जिससे व्यावहारिक जीवन भी सुखमय बनता है।

३. स्वभाव की नम्रता से जो प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, वह सत्ता और धन से नही मिल सकती न कोरी विद्या से मिलती है।

४ जिन्होने मन, वचन काया से अहिसा व्रत का आचरण किया है उनके आस-पास का वातावरण अत्यन्त पवित्र वन जाता है। और पशु भी अपना वैर भाव भूल जाते है। —पू० प्र० सज्जनश्री जी म०

卐 卐

पुन इस आपवादिक उल्लेख के अतिरिक्त हमे जैन साहित्य मे इस प्रकार के उल्लेख नही मिलते है। "महानिशीथ" मे एक विवरण मिलता है जिसके अनुसार किसी राजा की विधवा कन्या सती होना चाहती थी, किन्तु उसके पितृकुल मे इस प्रथा का प्रचलन नही था। अत अत मे उसने अपना यह विचार त्याग दिया।[1] इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनाचार्यो ने पति की मृत्यु के बाद स्वेच्छापूर्वक देहत्याग को अनुचित माना है और इस प्रकार के मरण को 'बाल-मरण' या 'लोकमूढता' कहा है। सती प्रथा का धार्मिक समर्थन जैन आगम साहित्य और उसकी व्याख्याओ मे कही नही मिलता है।

'आवश्यक चूर्णि' मे दधिवाहन की पत्नी एव चन्दना की माता आदि के कुछ ऐसे उदाहरण अवश्य मिलते है जिनमे ब्रह्मचर्य की रक्षा के निमित्त देह-त्याग किया गया है।[2] परन्तु यह देह-त्याग सती-प्रथा की अवधारणा से अलग है। जैनधर्म यह नही मानता है कि मृत्यु के बाद पति का अनुगमन करने से अर्थात् जीवित चिता मे जल जाने से पुन स्वर्गलोक मे उसी पति की प्राप्ति होती है[3] लेकिन हिन्दू धर्म मे ऐसा विश्वास किया जाता है। जैन धर्म अपने कर्म सिद्धान्त के प्रति आस्था रखता है और यह मानता है कि पति-पत्नी अपने-अपने कर्मो और मनोभावो के अनुसार ही विभिन्न योनियो मे जन्म लेते है। यद्यपि परवर्ती जैन-कथा-साहित्य मे हमे ऐसे उल्लेख मिलते है जहाँ एक भव के पति-पत्नी आगामी भवो मे जीवन-साथी बने, किन्तु इसके विरुद्ध भी उदाहरणो की जैन-कथा-साहित्य मे कमी नही है।

अत यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि धार्मिक आधार पर जैन-धर्म सती-प्रथा का समर्थन नही करता। जैन-धर्म के सती-प्रथा के समर्थक न होने के कुछ सामाजिक कारण भी है। व्याख्या साहित्य मे ऐसी अनेक कथाएँ वर्णित है जिनके अनुसार पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी न केवल पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करती थी, अपितु पति के व्यवसाय का सचालन भी करती थी। अनुत्तरोपपातिक मे एक उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार एक सार्थवाह की पत्नी विधवा होने पर स्वय व्यापार का सचालन करती थी।[4] उत्तराध्ययन मे लिखा हुआ है कि पुत्रहीना अथवा पुत्र के वयस्क न होने की स्थिति मे विधवा रानी मत्री के माध्यम से राज्य कार्य का सचालन करती थी।[5]

इसके अतिरिक्त जैनागमो और उसकी व्याख्याओ में ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते है जहा कि विधवा भिक्षुणी बन जाती थी। उदाहरणस्वरूप मदनरेखा के पति की हत्या उसके भाई ने कर दी। इस घटना से दु खी होकर वह भिक्षुणी बन गई।[6] इसी तरह दु खी या किसी तरह की विरक्ति के कारण विधवाएँ सती न होकर भिक्षुणी बन जाती थी। मदनरेखा की ही तरह यशभद्रा,[7] पद्मावती[8] आदि स्त्रियों का उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत होता है। 'ज्ञाताधर्म कथा' मे पोट्टिला[9] तथा सुकुमालिका[10] के भिक्षुणी बनने के प्रसग का वर्णन मिलता है।

यद्यपि जैन परम्परा में ब्राह्मी,[11] सुन्दरी[12] वसुमती[13] राजमती[14] द्रौपदी[15] पद्मावती[16] आदि

---

१ महानिशीथ, पृ० २९, वि० द्र० जैनागम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० २६९

२ आवश्यकचूर्णि, भाग १, पृ० ३१८

३ पाराशरस्मृति, ३२, ३३

४ अनुत्तरोपपातिक, ३१९

५ उत्तराध्ययनसूत्र, १३

६. उत्तराध्ययन नियुक्ति, पृ० १३६-१४०

७ आवश्यक नियुक्ति, १२८३

८. आवश्यक चूर्णि भाग २, पृ० १८३

९. ज्ञाता धर्मकथा, १/१४

१०. ज्ञाताधर्मकथा, १/१६

११ श्री सोलह सती, पृ० १-५

१२. श्री सोलह सती पृ० ६-१२

१३. श्री सोलह सती पृ० १३-६४

१४. श्री सोलह सती पृ० ६५-९१

१५. श्री सोलह सती पृ० १८२

१६. श्री सोलह सती

सोलह स्त्रियो को सती कहा गया है और तीर्थंकरो के नाम स्मरण के साथ-साथ इन सोलह सतियो का स्मरण किया जाता है। अब यहाँ प्रश्न यह है कि जब जैनधर्म मे सती प्रथा को प्रश्रय नही दिया गया, तो इन सतियो को इतना आदरणीय स्थान क्यो प्रदान किया जाता है ? प्रत्युत्तर मे यही कहा जा सकता है कि उनका आचरण एव शीलरक्षण के जिन उपायो का इन्होने आलम्बन लिया, उसी के कारण इन्हे इतना आदरणीय स्थान प्रदान किया जाता है। इन्हे सती इसीलिए भी कहा जाता है क्योकि इन स्त्रियो ने अपने शील की रक्षा हेतु आजीवन अविवाहित जीवन विताया था, पति की मृत्यु के पश्चात् भी अपने शील को सुरक्षित रख सकी। वर्तमान मे जैन साध्वियो के लिए 'महासती' शब्द का प्रयोग किया जाना है, उसका मुख्य आधार शील का पालन है।

जैन आगमिक व्याख्याओ और पौराणिक रचनाओ के पश्चात् जो प्रवन्ध-साहित्य लिखा गया उसमे सर्वप्रथम सती-प्रथा का जैनीकरण रूप हमे देखने को मिलता है। 'तेजपाल-वस्तुपाल-प्रवन्धकोश' मे उल्लिखित है कि तेजपाल और वस्तुपाल की मृत्यु के उपरान्त उनकी पत्नियो ने अनशनपूर्वक अपने प्राण का त्याग किया था।[1] यहाँ पति की मृत्यु के पश्चात् शरीर-त्यागने का उपक्रम तो है, किन्तु उसका स्वरूप सौम्य बना दिया गया है। वस्तुत यह उस युग मे प्रचलित सती-प्रथा की जैनधर्म मे क्या प्रतिक्रिया हुई थी, उसका सूचक है।

अब यहाँ एक विचारणीय प्रश्न है कि सती जैसी प्रथा का इतना कम प्रचलन जैनधर्म मे क्यो रहा ? इस बारे मे तो यही कहा जा सकता है कि जैन भिक्षुणी सघ इसके लिए उत्तरदायी रहा। क्योकि भिक्षुणी वनी स्त्रियाँ भिक्षुणी सघ को अपना आश्रयस्थल समझती थी। जैन भिक्षुणी सघ उन सभी स्त्रियो के लिए शरणस्थल होता था जो विधवा, परित्यक्ता अथवा आश्रयहीना होती थी। जब कभी भी ऐसी नारी पर किसी तरह का अत्याचार किया जाता था जैन भिक्षुणी सघ उनके लिए कवच बन जाता था। क्योकि भिक्षुणी सघ मे प्रवेश करने के बाद स्त्रियाँ पारिवारिक उत्पीडन मे बचने के साथ ही साथ एक सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करती थी। आज भी ऐसी बहुत सी अबलाएँ है जो कुरूपता, धनाभाव तथा इसी तरह की अन्य समस्याओ के कारण अविवाहित रहने पर विवश हैं ऐसी कुमारी, अबलाओ के लिए जैन भिक्षुणी सघ आश्रय स्थल है। जैन भिक्षुणी सघ ने नारी गरिमा और उसके सतीत्व की रक्षा की जिसके कारण सती-प्रथा जैसी एक कुत्सित परम्परा का जैनधर्म मे अभाव रहा।

इसी सन्दर्भ मे यह विचार कर लेना भी उपयुक्त जान पडता है कि सती जैसी प्रथा का प्रचलन हिन्दू धर्म मे क्यो इतने व्यापक पैमाने पर चलता रहा। यहाँ यही कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म में जैनधर्म की तरह कोई भिक्षुणी सघ नही रहा होगा ? क्योकि अगर इस तरह की सस्था हिन्दू धर्म मे भी कायम रहती तो निस्सदेह इतने अधिक सती के उदाहरण हिन्दू परम्परा मे नही मिलते।

○○

---

१ प्रबन्धकोश, पृ० १२९

अहिंसा-अपरिग्रह के सन्दर्भ में: नारी की भूमिका

श्रीमती सरोज जैन,
एम० ए०
श्री जवाहर जैन शिक्षण संस्थान,
उदयपुर ।

विश्व में शान्ति और सद्भाव तभी स्थापित हो सकता है जब मानव का विकास सही ढंग से हो। मानव-जीवन के विकास में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव का विकास उन चारित्रिक गुणों से होता है जिनकी शिक्षा व्यक्ति को माता के रूप में सर्वप्रथम नारी से ही मिलती है। इसी तरह गृहस्थ-जीवन को संयमित बनाने में भी नारी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इतिहास साक्षी है कि नारी ने घर, परिवार, समाज और देश के उत्थान में हमेशा पुरुष को सहयोग प्रदान किया है। महासती चन्दना, चेलना राजीमती, मल्लीकुमारी, अंजना, सीता आदि कितनी ही नारियों के आदर्श हमारे सामने हैं, जिन्होंने पुरुष को चरित्र के पथ से विचलित नहीं होने दिया। चरित्र की सुरक्षा के लिये व्यक्ति का अपरिग्रही और अहिंसक होना अनिवार्य है। सन्तोष और करुणा के सरोवर में ही सुख के कमल खिलते हैं। अतः नारी पुरुष को परिग्रही और क्रूर बनने से रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

जैन शास्त्रों में पाँच व्रतों के अन्तर्गत पाँचवाँ व्रत अपरिग्रह व्रत बतलाया गया है। जैन गृहस्थ जब अपने जीवन में अहिंसा, सत्य, अचौर्य व ब्रह्मचर्य का मर्यादा-पूर्वक पालन करता है तब उसके मन में जीवन के प्रति सन्तोष जागृत होता है। तब वह अपरिग्रही बनता है। अतः व्यक्ति को अपरिग्रही बनाने के लिये आवश्यक है कि परिवार की महिलाएँ पुरुषों को पहले इन चार व्रतों को पालन करने की प्रेरणा दें और उसमें सहयोग करें।

व्यक्ति को परिग्रही बनाने में जनित और अनुचित इच्छाओं का प्रमुख हाथ होता है। संसार की वस्तुओं का आकर्षण हमारे मन में तरह-तरह की इच्छाएँ पैदा कर देता है। इन इच्छाओं की पूर्ति करने के लिये व्यक्ति अच्छे-बुरे साधनों का ध्यान नहीं रखता। वह अनुचित साधनों से वस्तुओं का संग्रह करने में जुट जाता है। व्यक्ति को इस कार्य में लगाने में महिलाओं का विशेष हाथ होता है। वे पर दूसरे की देखा-देखी गहनों, फर्नीचर, प्रसाधन सामग्री, कीमती वस्त्रों आदि के लिये पुरुषों पर अनुचित दबाव डालती रहती हैं। अपनी आर्थिक स्थिति का ध्यान नहीं रखतीं। इससे पुरुष मजबूरन गलत साधनों के द्वारा महिलाओं की इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। इससे पूरा परिवार संकट में पड़ जाता है। अतः महिलाओं की यह भूमिका

होनी चाहिये कि वे अनुचित और असीम इच्छाओ पर स्वय सयम रखे और घर के पुरुषो पर भी अनुचित प्रभाव न डाले ।

उत्तराध्ययन सूत्र की कपिल ब्राह्मण की कथा से हम सब परिचित है कि वह अपनी प्रेमिका की प्रेरणा से दो मासे सोने की प्राप्ति के फेर मे करोडो स्वर्ण - मुद्राओ का लालची बन बैठा था। अत महिलाओ को इच्छा और आवश्यकता इन दोनो के अन्तर को समझकर ही किसी वस्तु के प्रति आग्रह करना चाहिये । इसीलिए भगवान् महावीर ने अपरिग्रह को इच्छा-परिमाण व्रत भी कहा है ।

जैनशास्त्रो मे परिग्रह को पाप बध का मूल कारण कहा है । भगवती सूत्र मे कहा गया है कि परिग्रह, क्रोध, मान, माया और लोभ इन सब पापो का केन्द्र है । प्रश्नव्याकरण सूत्र मे भी स्पष्ट किया गया है कि परिग्रह के लिये ही लोग हिसा करते है, झूठ बोलते है, बेईमानी करते है और विषयो का सेवन करते है । वर्तमान मे भी हम परिग्रह के कारण इन घटनाओ को देखते रहते है । परिग्रह के मूल मे वस्तुओ का प्रदर्शन आज सबसे बडा कारण है । आज हम अपने बैठक कक्ष मे इतनी कीमती वस्तुएँ सजाने की होड मे लगे है कि हमारा रसोईगृह खाली रहने लगा है । हम पहनने-ओढने मे उतना खर्च करने लगे है कि हमारे भीतरी गुण रिक्त हो गये है । इसी बाहरी प्रदर्शन के कारण ही हमारी समाज मे दहेज प्रथा का कोढ व्याप्त हो गया है । प्रदर्शन के लिये ही हम अपनी बहुओ के प्राण लेने मे भी नही हिचकते । इस सबको बन्द करने मे महिलाओ को आगे आना होगा । यदि वे प्रदर्शन और सजावट की फिजूलखर्ची कम करदे तो समाज मे परिग्रह का रोग नही फैल सकता । परिग्रह मिटेगा तो उससे होने वाले अन्य पाप अपने आप कम होने लगेगे ।

अपरिग्रह के वातावरण को विकसित करने के लिये यह आवश्यक है कि महिलाये अधिक से अधिक जैनदर्शन की मूलभूत बातो से स्वय परिचित हो और अपने सम्पर्क मे आने वाली अन्य बहिनो को भी उनसे परिचित करायें । जैनधर्म अपरिग्रही होने के लिये कहता है, निर्धन होने के लिये नही । अत गृहस्थ जीवन मे रहते हुए हर व्यक्ति उचित साधनो द्वारा इतना धनार्जन कर सकता है कि जिससे वह अपने परिवार का भरण-पोषण कर सके । तथा अपनी जाति, धर्म और देश की उन्नति मे सहयोग प्रदान कर सके । अत महिलाओ का यह कर्तव्य है कि वे बचपन से ही अपने बच्चो को स्वावलम्बी बनाये । इससे यह परिणाम निकलेगा कि परिवार का हर सदस्य अपनी जीविका के लिये उचित साधन जुटा सकेगा । ऐसा होने पर परिवार के अकेले मुखिया को ही बेईमानी और अनुचित साधनो के सारे कुटुम्ब के लिये धन नहीं जोडना पडेगा । जब हम अपने परिवार की पीढियो की सुख-सुविधा को ध्यान मे रखते हैं तब हमे जिस किसी प्रकार से धन जोडने और वस्तुओ के सग्रह करने के लिये विवश होना पडता है । यदि परिवार का हर सदस्य स्वावलम्बी हो, पुरुषार्थी हो, शिक्षित हो, तो अपने आप उनके लिए परिग्रह जोडने की जरूरत नही रहेगी ।

परिग्रह के दुष्परिणाम से भी महिलाओ को अच्छी तरह परिचित होना चाहिये । आज जो समाज मे अनाप-सनाप परिग्रह एकत्र हुआ है उससे मुख्य-रूप से तीन बुराइयो ने जन्म लिया है— १—विषमता, २—विलासिता और ३— क्रूरता । जब वस्तुओ का सग्रह एक स्थान पर हो जाता है तब दूसरे लोग उन वस्तुओ के अभाव मे दु खी हो जाते हैं । गरीबी-अमीरी, ऊँच-नीच आदि समस्याएँ इसी के परिणाम हैं । इस विषमता को रोकने के लिये जैनदर्शन मे त्याग और दान के उपदेश दिये गये है । महिलाओ को चाहिये कि वे बिना किसी दिखावे के और घमन्ड के जरूरतमन्द व्यक्तियो की मदद के लिये दान और सेवा के कार्य में आगे आये ।

हमारी बहिनो के मन मे यह प्रश्न आ सकता है कि मेरे अकेले द्वारा सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग न करने से जीवो की हिंसा कैसे रुक जायेगी ? अथवा मुझ अकेले द्वारा दहेज न लेने अथवा उसका प्रदर्शन न करने से मन की क्रूरता कैसे कम होगी, कैसे रुक जायेगी ? ये प्रश्न स्वाभाविक है। किन्तु किसी अच्छे कार्य का प्रारम्भ थोडे ही लोगो द्वारा होता है। जब धीरे-धीरे सौन्दर्य प्रसाधनो की माँग और उपयोग कम हो जायेगा तो उनका निर्माण भी कम होने लगेगा। जब हम दहेज के प्रदर्शन के स्थान पर वहू के गुणो और उसके कुल के सस्कारो को प्रदर्शित करने लगेगे तो अपने आप दहेज के प्रदर्शन का मूल्य कम हो जायेगा। किन्तु इस सबके लिये साहित्य प्रचार द्वारा, चर्चाओ के द्वारा, फिल्म प्रदर्शन के द्वारा महिलाओ के भीतर सौन्दर्य प्रसाधन के प्रति घृणा पैदा करनी होगी। विदेशो मे यह कार्य प्रारम्भ हो गया है। वहाँ सौन्दर्य प्रसाधन बनते हुए दिखलाये जाते है। उनमे पशुओ की क्रूर हत्या के दृश्य देखकर महिलाएँ अपने प्रसाधन कूडे मे फैकने लगी है। मासाहार की क्रूरता देखकर हजारो लोग शाकाहारी बनने लगे है। अमेरिका मे अब हर प्रकार की क्रूरता को रोकने के लिये अहिंसक सस्थाएँ कार्यरत है। अभी हाल मे वहाँ "साइलैण्ट स्क्रीन" नामक ३८ मिनट की फिल्म दिखाकर महिलाओ को भ्रूण-हत्या (गर्भपात) की क्रूरता से रोका जा रहा है। जब इतनी बड़ी-बडी हिंसाएँ रोकी जा रही है तो प्रसाधन मे हिसा और क्रूरता को क्यो स्थान दिया जाय ? विदेशी महिलाएँ जब अहिंसा का अनुकरण कर रही है तब भारत की नारियाँ इसमे पीछे क्यो रहे ? आइये, आज हम अपने धार्मिक जीवन को सार्थक करने के लिये और विश्व मे सभी प्राणियो को जीने का अधिकार देने के लिये यह प्रण करे कि हम किसी भी प्रकार की क्रूरता मे सम्मिलित नही होगी।

हम सब पर्यूषण मे सुगन्ध दशमी का व्रत करती है। उसके भीतर जो मूल भावना छिपी है कि हम ऐसी बनावटी और हिसक सुगन्धी का त्याग करे जो हमारे अहिंसा धर्म की विरोधी हो। तभी हम "जिओ और जीने दो" के सिद्धान्त को अमल मे ला सकेंगे। सभी "परस्परोपग्रहो जीवानम्" के सूत्र को जीवन मे उतार सकेगे। मै आपको यही कहना चाहूँगी कि हम दिखावटी सुखो को छोडकर सच्ची मानवता की सेवा करे। महाकवि दिनकर ने ठीक ही कहा है—

जब तक नित्य नवीन सुखो की प्यासी बनी रहेगी।

मानवता तब तक मशीन की दासी बनी रहेगी॥

अत मशीनो द्वारा हिसक पदार्थो से बने हुए सौन्दर्य प्रसाधनो का प्रयोग अहिसा मे विश्वास रखने वाली जैन महिलाओ को नही करना चाहिये। यदि उन्हे अपना शृगार करना ही है तो ऐसी वस्तुओ का वे प्रयोग करे जो प्राकृतिक साधनो से बनी हो। भारत जडी-बूटियो का देश है। अत यहाँ पर देशी वस्तुओ से भी ऐसे प्रसाधन बनते है, जो कि न हिंसक है और न नुकसानदायक। उनका प्रयोग करके महिलाएँ अनावश्यक क्रूरता से बच सकती हैं। फैशनपरस्त महिलाओ के अन्धानुकरण से सदाचारी महिलाओ को बचना चाहिये। सादा जीवन और उच्च विचार को जीवन मे अपनाने से महिलाओ के व्यक्तित्व की स्थायी छाप लोगो मे पडती है। इससे भारतीय सस्कृति का नाम उजागर होता है। अत प्रदर्शन की क्रूरता को रोकने मे महिलाओ की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। यदि घरेलू जीवन में क्रूरता न हो और परिग्रह के परिणामो की सही जानकारी हो तो विश्व-शान्ति की स्थापना मे मदद मिल सकती है।

●●

चाहिये था। आगमिक प्रतिपादनो से विपरीत होने पर भी इतनी लम्बी अवधि तक टिक रह जाना पुरुष वर्ग की दुरभिसन्धि का द्योतक है।

स्त्री के आत्मिक विकास की सम्भावना के विरुद्ध प्रथम तर्क है कि स्त्रीशरीर की सरचना ऐसी है कि उसमे रक्तस्राव एक नियमित प्राकृतिक प्रक्रिया है। रक्तस्राव का आत्मिक विकास से क्या सम्बन्ध है, यह समझना कठिन है। और फिर रक्तस्राव तो एक आयु विशेष तक ही होता है, उसके बाद ? ऐसा ही दूसरा तर्क है कि स्त्री पर बलात्कार हो सकता है इसलिये वह अचेल नही रह सकती। क्या सचेल रहने पर बलात्कार नही हो सकता ? क्या पुरुष पर बलात्कार नही हो सकता ? क्या उस पर होने वाले बलात्कार को परीषह कहकर गौरवान्वित कर देने से वह मोक्ष का अधिकारी हो गया ?

अन्य तर्क बताया गया है कि स्त्री करुणा प्रधान है—तीव्र पुरुषार्थ नही कर सकती। यह तर्क अपने आप मे ही आधारहीन है क्योकि यथार्थ सत्य के विपरीत है। जहाँ तक तीव्र पुरुषार्थ का प्रश्न है स्त्री पुरुष से कही अधिक तीव्र पुरुषार्थ की सभावना रखती है और पुरुष से कही अधिक निर्दय हो सकती है। इतिहास को देखे तो अनगिनत उदाहरण मिल जायेगे जहाँ स्त्री ने इन दोनो मे पुरुष को बहुत पीछे छोड दिया है। आगे कहा है कि चचल स्वभावी होने के कारण स्त्री मे ध्यान व स्थिरता का अभाव होता है। तथ्य यह है कि स्त्री की तुलना मे पुरुष अधिक क्षेत्रो मे चचल स्वभावी है। ठीक वैसे ही यथार्थ मे परे है यह तर्क कि स्त्री मे वाद सामर्थ्य और तीव्र बुद्धि का अभाव होता है।

आत्मिक विकास के क्षेत्र की ये आधारहीन धारणाएँ पुरुष ने ही बनाई। वहाँ से यही धारणाएँ नियम बनकर धर्म के क्षेत्र से होती हुई समाज के क्षेत्र मे आ गई। पुरुष को नारी-दासता के लिये बडी सशक्त बेडियाँ मिल गई और आरम्भ हो गया उस दमन-चक्र का जिसमे भिन्न परम्पराओ के भेद भूल समस्त पुरुष वर्ग एक हो गया, चाहे वह वैदिक परम्परा का हो, बौद्ध परम्परा का, जैन परम्परा का या अन्य किसी परम्परा का।

दायित्वो का सन्तुलन स्वस्थ परिवार व समाज के लिये अत्यन्त आवश्यक है। परिवार व समाज के बिखराव का कारण इस सन्तुलन का बिगडना ही है। पुरुष वर्ग ने जब अपनी व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ के लिये नारी-दमन का चक्र आरम्भ किया तभी से यह सन्तुलन बिगडता चला गया। आधारहीन तर्क और भी विकसित होकर कुतर्को मे ढल गये। कुछ उदाहरण है वे तर्क जो स्त्री के लिये उपयोग मे लाये गये है पर उपयुक्त है पुरुष के लिये। "स्त्रियाँ थोडे से उपहारो से ही वशीभूत की जा सकती हैं और पुरुषो को विचलित होने मे सशक्त होती है।" "सन्ध्याकालीन आभा के समान क्षणिक प्रेम वाली और अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर पुरुष का परित्याग करने वाली।" "पाप कर्म नही करने का वचन देकर भी पुन अपकार्य मे लग जाती है।"

स्त्री की दासता की यह परम्परा जो मूलभूत दार्शनिक सिद्धान्तो के विपरीत थी, निर्बाध चलती गई। विदेशी आक्रमणो की शृखला ने भी उसके अधिक पुष्ट होने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मानव समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अग सामाजिक अनुशासन के नाम पर दासता के दलदल मे धँसता चला गया। उसकी चरम परिणति हुई स्त्री को अबला, ताडना के योग्य, नरक का द्वार आदि गर्हित नामो से सम्बोधित करने मे।

स्थिति की दयनीयता यह है कि स्वय नारी का सोचने का तरीका वैसा ही हो गया है जैसा पुरुषप्रधान समाज चाहता है। युगो के दबाव ने उसे अपने आपको पुरुष का सहभोगी मात्र समझने का आदी बना दिया है। वह भूल-सी गई है कि नैसर्गिक यथार्थ यह है कि पुरुष और नारी परस्पर एक-

दूसरे के सहयोगी है। ऐसा नही है कि मात्र स्त्री ही पुरुष की सहभोगी है और पुरुष ऐसे किसी भी दायित्व से मुक्त है।

पुरुष ने साम, दाम, दण्ड, भेद सभी प्रकार के उपायो से स्त्री को दासता की ओर धकेला है। आवश्यकता पडने पर उसे पूजा भी, सोने से लादा भी, सहलाया भी। अन्तत नारी अपनी पहचान ही भूल गई। पुरुष ने कहा नारी बुद्धिहीन है और वह मान गई। पुरुष ने कहा कि वह आत्मिक विकास के पथ पर चलने की योग्य नही है और वह मान गई। पुरुष ने कहा कि वह जन्म-जन्मान्तर से पुरुष की दासी है और वह मान गई। पुरुष ने कहा कि उसके विकास की चरम परिणति पुरुष के नाम पर बलि दी जाने मे है और वह मान कर सहर्ष चिता पर चढ गई। पुरुष ने कहा कि वह अबला है और वह मानकर समर्पित होने मे ही अपने को धन्य समझने लगी।

नारी जब-जब भी उस निरन्तर जकडते धर्म, राज्य तथा समाज के शासन के विरोध मे आवाज उठाती है, एक अजीब-सी प्रतिक्रिया सामने आती है—"नारी स्वतन्त्र होने के नाम पर स्वच्छन्द होने की चेष्टा करती है।" स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता के बीच की सीमा-रेखा क्षेत्र तय होगा। स्वच्छन्द न होने के नियम क्या केवल नारी के लिये ही है? सामाजिक तथा नैतिक विधानो का पुरुष के द्वारा उल्लघन क्या स्वच्छन्दता नही है? काल के परिप्रेक्ष्य मे देखे तो क्या पिछले पचास वर्षो मे पुरुष समुदाय ने सभी सीमा रेखाएँ पार नही कर दी है? फिर स्त्री पर ही स्वच्छन्दता की ओर बढने का आरोप क्यो?

सत्रस्त नारी के भीतर का ज्वालामुखी यदि फूट पडता है तब उसके भटक जाने का दोष नारी पर नही उसी वर्ग पर है जिसके त्रास ने उसे ज्वालामुखी बना दिया। और यह त्रास मात्र भौतिक या शारीरिक नही है। कोई क्षेत्र ऐसा नही छोडा गया जहाँ नारी को पीडित न किया गया हो।

तब उसने समय रहते प्रतिकार क्यो नही किया? क्या स्त्री सचमुच अबला है? क्या वह शारीरिक तथा मानसिक रूप से वास्तव मे पुरुष की तुलना मे हेय है? नही? यथार्थ तो पारम्परिक मान्यताओ से सर्वथा विपरीत है। पिछले दशक के खेल रिकार्डो को देखे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री ने पुरुष को अनेक क्षेत्रो मे पीछे छोड दिया है। शरीर के वजन के अनुपात से पता चलता है, वह शरीर सौष्ठव (बाडी बिल्डिग) के हर अग मे पुरुष से स्पर्धा जीत सकती है। दौड, तैराकी तथा अन्य व्यायामो मे उसकी स्पर्धा की क्षमता पुरुष के समान पाई गई है।

बीस वर्ष पूर्व स्त्रियो को डेढ मील से अधिक दूरी की दौड मे भाग नही लेने दिया जाता था, यह सोचकर कि इससे उसके शरीर को हानि पहुँचेगी। पांच वर्ष पूर्व महिलाओ की मेराथन दौड ओलम्पिक खेलो मे प्रथम बार शामिल हुई। दौडने की गति मे विकास को देखे तो पाते है कि पिछले पन्द्रह वर्षो मे महिलाओ ने अपने मेराथन दौड के समय मे ४० मिनिट की कमी की है जबकि इसी दौरान पुरुष धावक केवल २ मिनिट ही कम कर पाये।

पिछले वर्ष ही बर्फीली हवाओ मे हिमांक से ५० डिग्री नीचे के तापमान मे ३३ वर्षीय महिला सूसर नबुकर ने १०४९ मील कुत्तागाडी दौड लगातार तीसरी बार जीती थी। इस दौड मे विश्व के सर्वश्रेष्ठ पुरुष प्रतियोगी भी शामिल होते है। खेल चिकित्सको तथा मनोवैज्ञानिको का मानना है कि स्त्री मे लम्बी अवधि तथा दूरी के खेलो के लिए स्वाभाविक शारीरिक व मानसिक अभिरुचि तथा क्षमता होती है।

स्त्री शरीर की सरचना मे चर्बी की मात्रा अधिक होती है। इस चर्बी का सर्वाधिक अश उसके नितम्बो मे केन्द्रित होता है। इससे उसका शारीरिक सन्तुलन पुरुष की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है। स्त्री की मासपेशियाँ दीर्घ सहनशक्ति की क्षमता लिये होती है तथा शक्ति के लिए वात-कायाग्नि पर निर्भर करती है। उसकी मासपेशियो के ततु पतले होते है जिससे पोषक तत्त्वो तथा ऑक्सीजन की रक्त तथा कोशिकाओ के बीच रचनान्तर की गति तीव्र होती है। अपेक्षाकृत कम शारीरिक वजन तथा कम ऑक्सीजन की आवश्यकता के कारण उसमे दीर्घकालीन क्रियाशीलता की क्षमता होती है। मासपेशियो के जोड वाले ततुओ मे अधिक लचीलापन होने के कारण उसको चोटग्रस्त होने के प्रति अधिक प्रतिरोधकता होती है। पुरुष की तुलना मे स्त्री अभ्यास के दौरान कम थकती है तथा अधिक एकाग्रता बनाये रखती है।

ये सब गुण उसे शारीरिक खेलो के क्षेत्र मे अधिक सतुलित प्रगति की ओर ले जा रहे हैं। हाँ पुरुष के मुकाबले उनमे विस्फोटक शक्ति की कमी अवश्य होती है। जिससे कम समय व दूरी तथा विशुद्ध शारीरिक शक्ति वाले खेलो मे वह पुरुष से पीछे रह सकती है।

मानसिक व बौद्धिक क्षेत्रो मे भी अनेक स्थानो पर स्त्री पुरुष से अधिक सक्षम पाई गई है। विपरीत परिस्थितियो मे सतुलन बनाये रखने की क्षमता स्त्री मे पुरुष से अधिक होती है। मानसिक तनाव के जिस बिन्दु पर पुरुष टूट जाता है, स्त्री सहजता से पार कर लेती है। तकनीकी कार्यो मे भी वे सभी क्षेत्र जिनमे सूक्ष्म, कलात्मक तथा सवेदनशील कार्य प्रणालियाँ होती हैं, स्त्री पुरुष से अधिक कुशलता प्राप्त कर लेती है।

किसी भी क्षेत्र का अध्ययन करे तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रकृति ने स्त्री को क्षमता मे पुरुष से किसी भी भाँति निर्बल या हेय नही बनाया है। सामाजिक विकृतियो तथा पुरुष की दुरभिसधियो ने उसे निर्बल बना दिया है।

इसमे कोई सदेह नही कि पिछले पचास वर्षो से नारी की स्थिति मे निरन्तर सुधार हुआ है। किन्तु यह सुधार अपेक्षानुसार व्यापक और स्वस्थ है या नही इसमे सन्देह है। आज भी स्त्री पर पुरुष की अपेक्षा अत्यधिक अत्याचार होते हैं। आज भी वह अपने आपको असुरक्षित पाती है। आज भी उसे हर कदम पर अपने आपको तैयार करना पडता है पुरुष द्वारा नियन्त्रित समाज के विरोध का सामना करने को। आज भी दहेज का दाह और वैधव्य की विडम्बना उसका पीछा नही छोडते। और ऐसे ही अनेको कारणो से आज भी उसके जन्म को कोसा जाता है। इतनी भी प्रगति हो गई है कि यह सब खुलेआम कम होता है चुपके-चुपके अधिक। और वह भी इसलिए नही कि नारी का वर्चस्व किसी मात्रा मे स्थापित हो गया है अपितु इसलिए कि पुरुष की सभ्रान्तता की परिभाषा कुछ बदल गई है।

नारी विकास की इस मथरगति के पीछे है हमारी सामूहिक कुण्ठित मानसिकता। पराधीनता के सैकडो वर्षो ने हमारी सस्कृति के अनेक स्वस्थ अशो को नष्टप्राय कर दिया था। स्वाधीनता के बाद हम उन्हे पुन जीवन्त कर पाने की ओर एक कदम भी नही बढ पाये। कारण है कि आज भी शासन, समाज, शिक्षा आदि सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रो पर नियन्त्रण उसी समुदाय या उसके उत्तराधिकारियो का है जिसकी रचना विदेशी शासन ने शासित समुदाय के शोषण के लिये की थी। इस समुदाय मे स्त्री और पुरुष दोनो ही शामिल हैं।

तनिक गहराई मे उतरें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हमारे सर्वांगीण विकास मे बाधारूपी यह समर्थ समुदाय अन्य सभी क्षेत्रो के समान नारी वर्ग को भी पूर्णतया अपने नियन्त्रण से रखने की चेष्टा मे निरन्तर जुटा रहता है। यह चतुर समुदाय भलीभाँति समझता है कि स्वस्थ समाज की रचना स्त्री

जाति को उसका उचित स्थान देने पर ही हो सकती है। स्वस्थ समाज की रचना से सर्वाधिक हानि निहित स्वार्थों वाले नियन्त्रक समुदाय की ही होगी। अपने ही स्वार्थो के विरोध मे स्वय ही कौन कदम उठायेगा। और यो ये गुत्थी सुलझने की जगह उलझती चली जाती है। इसका सारा उत्तरदायित्व है उस वर्ग का जो कही शासन की बागडोर थामे है तो कही धर्म की, कही शिक्षा की नीति निर्धारक बना बैठा है तो कही सामाजिक रीति-रिवाजो का।

सचमुच यदि नारी की स्थिति सुधारनी है तो समर्थ तत्वो को स्वार्थ त्याग करना होगा और सामान्य तत्वो को अपनी कुठित मानसिकता को दूर करना होगा। इस कुठा से पुरुष और स्त्री दोनो ही पीडित है। कोई भी एकागी उपाय समस्या को जटिल ही करेगा। नारी-मुक्ति का अर्थ यदि उसे मानवीय समाज में उसके अपने स्वाभाविक स्थान पर पुइस्थापित करना है तब तो उसकी दिशा स्वस्थ है। किन्तु यदि उसका अर्थ मात्र घर से निकलकर सडक पर आ जाना है तो वह एक कुठा से निकल कर दूसरी कुठा मे फस जाने से अधिक कुछ नही है।

मातृत्व स्त्री की प्राकृतिक क्रिया है। पुरुष ने उसके इस प्राकृतिक गुण को उसकी निर्बलता के रूप मे स्थापित कर दिया और वह आज भी उस मानसिकता से उबर नही पा रही है। इसका समाधान खोजने के लिये यदि वह मातृत्व से घृणा कर उससे परे हटेगी अथवा उसे गौण करेगी तो मात्र उसकी ही नही समस्त मानवता की हानि होगी। उसे यह समझना होगा कि जिसे वह अपनी सबसे बडी निर्बलता का स्रोत समझ बैठी है वह है उसकी सबसे बडी शक्ति जो प्रकृति ने उसे दी है।

प्रजनन की प्रक्रिया मे नारी का अश अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सामाजिक दृष्टिकोण से देखे तो भविष्य के समाज का भार अधिकाशत नारी पर है। सर्जनात्मक प्रक्रियाओ के अन्त के साथ समाज के भविष्य का अन्त होना निश्चित है। माँ के बिना सतान नही, सतान के बिना वश नही और वश के बिना भविष्य का समाज नही। इस सर्जन का उत्तरदायित्व मात्र भौतिक क्रिया-कलाप तक ही सीमित नही है। माँ सन्तान को जन्म ही नही देती, उसकी सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षिका भी होती है। इतिहास उठाकर देखे और निराग्रह विश्लेषण करें तो प्रतीत होगा कि नारी के अपने नैसर्गिक स्थान से धकेल दिये जाने के साथ-साथ आरम्भ हुआ है, मानव जाति मे मानवीयता के ह्रास का इतिवृत्त।

मानवता को निरन्तर जटिल होती आतकवाद, नशीली दवाओ के सेवन, पर्यावरण आदि की समस्याओ से यदि कोई उबार सकता है तो वह है नारी। आज का समाज तो अपने विकृत आग्रहो से मुक्त हो सकेगा यह कठिन लगता है। कल के नागरिको से ही आशा की जा सकती है कि वे विश्व को विकास की सम्यक् दिशा दे। और कल के नागरिक का निर्माण करने वाली है केवल स्वस्थ मानसिकता व आत्म-विश्वास लिये सुशिक्षित, सुसस्कारी व साहसिक नारी।

वह नारी जो न तो अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व का बलिदान व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ के लिए करती है और न परिवार के लिये अपनी महत्वाकाक्षाओ का गला घोटती है। वह नारी जिसके नारीत्व मे तो कोई कमी नही है किन्तु जो निर्बल नही है। वह नारी जो स्वाभिमानिनी है किन्तु हीन भावना से प्रेरित मिथ्याभिमान के आग्रह से ग्रसित नही है। वह नारी जो न तो पुरुष की दासी है न उसे अगुलियो पर नचाने वाली नायिका अपितु है कधे से कधा मिला मानवीय विकास के पथ पर बराबर के कदम उठा चलने वाली सहधर्मा।

जैनागमो के मूल प्रतिपादन इसमे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है, क्योकि वे उन कतिपय विचारधाराओ के प्रतिनिधि है जिन्होने नारी को सहज समानता की दृष्टि से देखा है। ●

जैनधर्म को जनधर्म बनाने में महिलाओं का योगदान

○

आर्या प्रियदर्शनाश्री

(पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी म० की विदुषी सुशिष्या)

●

वात्सल्यमूर्ति तुम रणचण्डी, तुम कोमल परम कठोर अति।
तुम शान्तिमन्त्र तुम युद्धतन्त्र, तुम मानव की शिरमौर मति ॥

जैनधर्म मे महिलाओ को भी वही स्थान प्राप्त है जो पुरुषो को है। आद्यतीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर महाप्रभु भगवान् महावीर वर्द्धमान ने दोनो को ही साधना के समान अधिकार व अवसर प्रदान किये थे। जब हम इतिहास का अनुशीलन करते है, तो ज्ञात होता है कि महिलाएँ कई गुणो मे पुरुषो से भी अग्रगामिनी रही हैं। उनका महत्व कई स्थानो पर पुरुषो से विशेष विवृद्ध हो गया है। शिक्षा मे, सयम मे, व्रतपालन मे, सतीत्वरक्षा मे, सेवा मे, सहनशीलता और स्वार्थ त्याग मे से सदा ही आगे रही और रहती है। सहनशीलता, लज्जा और सेवा तो उनके जन्मजात गुण है जो किसी मे कम और किसी मे अधिक प्रमाण मे रहते ही है। दूसरे विशिष्ट गुण सस्कार व परिस्थिति पर अवलम्बित हैं। सतीत्वरक्षा के लिए भारत की नारियो का "जौहर" तो ससार को आज भी चकित कर रहा है।

अत्यन्त प्राचीन समय की ओर दृष्टिपात करे तो भगवान युगादिदेव ऋषभ महाप्रभु की दोनो पुत्रियो—ब्राह्मी व सुन्दरी के दर्शन होते हैं। जो विद्या, शील और त्याग की जीती-जागती प्रतिमाएँ थी, ब्राह्मी ने तो ऋषभदेव भगवान को केवलज्ञान होने पर ही दीक्षा धारण कर ली थी। किन्तु चक्रवर्ती भरत ने तत्कालीन प्रथानुसार सुन्दरी को अपनी पत्नी बनाने की अभिलाषा से त्यागमार्ग के अनुसरण से रोक लिया था। पर वे तो अपने पूज्य पिता के पद-चिह्नो पर चलने का दृढ सकल्प कर चुकी थी। चक्रवर्ती उन्हे राज्य सम्पत्ति और ससार के भोगविलासो की ओर आकृष्ट करने मे असफल रहे। सुन्दरी ने साठ हजार वर्ष तक आयबिल तप करके अपने शरीर को सुखा डाला। चक्रवर्ती भरत को इस तप व त्याग की साक्षात् ज्वलन्त मूर्ति के आगे नतमस्तक होना ही पडा। भरत ने उसे सहर्ष साध्वी जीवन स्वीकार कर लेने की अनुमति दे दी। कुमारी "मल्लि" तो तीर्थंकर के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित हुई थी।

जब हम प्रात स्मरणीया, अद्भुत प्रेमिका, सती शिरोमणी राजीमती का जीवन जो शास्त्रो के स्वर्ण पृष्ठो पर अकित है, अवलोकन करते हैं तो मस्तक श्रद्धा से अपने आप झुक जाता है। उन्होंने पुनीत सयम के पथ पर चलते हुए रथनेमि को अस्थिर-विचलित होते हुए, उसकी वासना की दबी हुई चिनगारियो को उभरते हुए

अवलोकन किया तो तत्काल ही अपने पवित्र उपदेशामृत की वर्षा से ऐसा शान्त किया कि फिर वे कभी न उभरी न चमकी। यही तो उस महासती की विशिष्टता वह महत्ता थी, जो आज भी प्रत्येक स्त्री के लिए अनुकरणीय व आदरणीय है। उनमे सयम का वह तीव्र तेज था, जो रथनेमि को पुन सयम के पवित्र पथ पर दृढता से आरुढ कर सका। पतिदेव के मार्ग का अनुसरण करने वाली सतियो मे वे अग्रगण्या थी, अद्भुत पातिव्रत्य था उनका, उपदेश शक्ति भी अलौकिक थी। इसी प्रकार आवाल ब्रह्मचारिणी राजकुमारी चन्दनवाला के जीवनवृत्त पर दृष्टिपात करते है तो विस्मय और करुणा से अभिभूत हो जाना पडता है। सचमुच ही वह महाशक्तिस्वरूपा थी। राजकुल मे जन्म लेकर भी वाल्यावस्था मे ही वे मातृ-पितृ विहीना हो गई, मातृ-भूमि से तथा माता से वलात् पृथक कर दी गई। उसने अपनी जननी को सतीत्व रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करते देखा था, आततायी के पजे मे आकर वे सरे बाजार वेची गई, उन पर कष्टो, उपसर्गो के पर्वत टूट पडे फिर भी उस वीर वालिका ने अद्भुत सहनशीलता का परिचय देकर सवको अवाक् कर दिया।

उस जमाने में स्त्रियो का चाँदी के चन्द टुकडो के लिये क्रय-विक्रय होता था। पुरुष अपने सर्वाधिकार सुरक्षित रखकर महिलाओ को पाँव की जूती से अधिक महत्व नही देता था। धर्मानुष्ठानो मे भी उनका कोई अधिकार स्वीकृत न था। वे केवल पुरुषो की विलास सामग्री समझी जाती थी। उनका अपना कोई स्वत्व या सत्ता नही थी। कुमारी चन्दना को भी इस दशा का भोग्य वनना पडा था। उन्होने स्वय इस दयनीय अवस्था का अनुभव किया था। अत उन्होने इसे सुधारने की प्राण-पण से चेष्टा की। ससार के भौतिक सुखो को लात मारकर वे नारी जाति का उद्धार करने के लिए भगवान महावीर के सघ मे सम्मिलित हो गई। चतुर्विध सघ मे समस्त आर्याओ की आप नेत्री वनी।

हम शास्त्रो मे लोगो के चरित्रो को पढते है तो पता लगता है कि कमल कोमला असूर्यंपश्या वे राजरानियाँ भी कि जिनके एक सकेत मात्र पर सहस्रो सेवक-सेविकाएँ अपने प्राण तक न्यौछावर करने को प्रस्तुत रहते थे। भगवान् महावीर प्रभु के धर्म की शरण मे आकर चन्दनवाला की अनुगामिनी वन आत्मकल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण करती हुई राजवैभव मे पले हुए कोमल शरीर के सुख-दु ख की परवाह न करके तीव्र तप द्वारा कर्ममल को नष्ट करती थी। भगवान् का पवित्र सन्देश देने गाँव-गाँव नगर-नगर पादविहार करती। भयकर अटवियो, विषम पर्वतो घाटियो को पार करती मात्र भिक्षा-वृत्ति से सयम के साधनरूप शरीर का निर्वाह करती थी। वे श्रेष्ठी-पत्नियाँ, महाराज-कन्याएँ भी जिनके ऐश्वर्य को देखकर वडे-वडे सम्राट चकित हो जाते थे, तप-त्याग-सयम के पुनीत पथ की पथिकाएँ वन शीत, ताप, क्षुधा, पिपासा, अपमान, अनादर मे निरपेक्ष, आत्मस्वरूप मे तन्मय हो, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र की आराधना करती हुई अपने अमूल्य दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक करती थी।

भगवान् वर्द्धमान महाप्रभु के श्राविका सघ की मुख्याएँ, महाश्रद्धावती उदात्त विचारो के गगनागण मे विचरण करने वाली गृहस्थरमणियाँ—जयन्ती, रेवती, सुलसा आदि श्राविकायें क्या कम विदुषियाँ थी? "भगवती सूत्र" मे इनकी विद्वत्ता, श्रद्धा व भक्ति का अच्छा वर्णन मिलता है। श्राविका शिरोमणी जयन्ती ने भगवान् से कैसे गम्भीर प्रश्न किये थे। रेवती की भक्ति देवो की भक्ति का भी अतिक्रमण करने वाली थी। सुलसा की अडिग श्रद्धा देखकर मस्तक श्रद्धावनत हो जाता है।

श्रमणोपासिका सुलसा की सतर्कता एव अडिग श्रद्धा के विषय मे भी हमे विस्मित रह जाना पडता है। अम्बड ने इसकी कई प्रकार से परीक्षा की। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा तीर्थंकर का रूप धारण कर समवसरण की रचना रच डाली, किन्तु सुलसा को आकृष्ट न कर सका।

उस युग मे महिलाये कितनी शिक्षित थी, उनकी विचार शक्ति कितनी प्रबल थी, इसका अनुमान हम ऊपर लिखे उदाहरणो से भलीभाँति लगा सकते है। स्त्रियो की जागृति का प्रधान कारण भगवान् महावीर का वैदिक धर्म (जातिवाद वा यज्ञाश्रयाहिसा, स्त्री-शूद्र का धर्म मे, वेद मे अनधिकार, एक पतिव्रत धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्माचरण का निषेध) के विरुद्ध वह आन्दोलन था, जो उन्होने अपनी कैवल्यप्राप्ति के बाद आरम्भ किया था। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की थी कि सब जीव समान है, जाति कर्मानुसार होती है, यज्ञ की हिसा नरक मे जाने से नही बचा सकती, धर्म करने का अधिकार, शास्त्र पढने का अधिकार, स्त्री हो चाहे पुरुष, ब्राह्मण हो या शूद्र सभी को है। मुक्ति प्राप्त करने का अधिकार प्रत्येक प्राणी को है, स्त्रीत्व या नपुसकत्व अथवा पुस्त्व इसमे बाधक नही। आत्मा को मुक्त करने की साधना सभी करते है। उन्होने अपने चतुर्विध सघ मे जातिवाद को स्थान नही दिया। स्त्रियो का उन्होने साध्वी सघ और श्राविका सघ बनाया। स्त्रियो की सख्या पुरुषो से बहुत अधिक थी। उनके सघ मे साधु तो १४००० ही थे, साध्वियाँ ३६,००० हजार थी। इस तरह श्रावको की सख्या १,५६,००० तो श्राविकाओ की ३ १८,००० तक पहुँच गई थी।

यो हम देखते है कि अबला कहलाने वाली वे नारियाँ मानवीरूप मे साक्षात् भवानी थी, देवियाँ थी। उनकी पुण्य गाथाओ से भारतीय शोभा मे चार चाँद लग हुए है। ऐसे ही सयमी जीवन को अपने ज्ञानालोक से आलोकित करने वाली महान प्रभावशाली खरतरगच्छीय साध्वी शिरोमणि पुण्यश्लोकश्री पुण्यश्री जी म सा, आध्यात्म ज्ञान निमग्ना पूज्या प्र श्री स्वर्णश्री जी म सा, जापपरायण स्वनामधन्या पू प्र श्री ज्ञानश्री जी म सा एव समन्वय साधिका जैनकोकिला पू प्र श्री विचक्षणश्री जी म. सा. थी। जो त्याग-तप सयम की अनुपम आराधिका व शासन की प्रबल शक्तियाँ थी। जिनशासन की जाहो जलाली के लिए व उसकी सतत् अभिवृद्धि के लिए उन्होने ऐसे-ऐसे अद्भुत कार्य कर दिखाये जिन्हे सुन-पढ व देखकर न केवल जैन समाज अपितु सर्व मानव समाज दग रह जाता है। उनके उदात्त तेजस्वी व यशस्वी जीवन से जिनशासन का अणु-अशु आलोकित है।

ऐसी ही वर्तमान मे अनुपम गुणो से युक्त जैनशासन की जगमगाती ज्योतिर्मय दिव्य तारिका के रूप मे है हमारी परमाराध्या प्रतिपल स्मरणीया, वन्दनीया, पूजनीया खरतरगच्छ के पुण्य श्रमणी वृन्द की प्रभावशाली प्रवर्तिका परम श्रद्धेया गुरुवर्या श्री सज्जनश्री जी म सा। जिनकी सरलता, सहजता, उदारकार्यक्षमता, निर्मल समता, निश्छलता, निस्पृहता, विशालहृदयता, अद्भुत प्रतिभा मानव मात्र को सहज ही आकर्षित करती है। जिन्होने कई प्राचीन आचार्यो द्वारा रचित सस्कृतनिष्ठ क्लिष्ट कृतियो का परिष्कृत, परमार्जित व प्राजल हिन्दी भाषा मे अनुवाद कर जैन साहित्य शोभा की अभिवृद्धि मे चार चाँद लगाये है। वे जिनशासन के साध्वी वृन्द की मुकुटमणि हैं तथा त्याग, तप, वैदुष्य व वाग्मिता की जीवत प्रतिमा है। आपश्री के अनुपम गुणयुक्त जीवन से तथा अद्भुत कार्यकलापो से न केवल गच्छ व समाज अपितु सम्पूर्ण जैन शासन गौरवान्वित है।

जैन जगत की अनुपम थाती, आगमज्ञान की ज्योति है।
मृदु मधुर अमृतवाणी मे, जनमन पावन करती है।
त्याग-तप-सयम की त्रिवेणी, तव अन्तर् मे बहती है।
उसी सरित की अजस्रधार मे, हम भी पावन होती है॥